ताओ उपनिषद, भाग छह

107-127

प्रवचन-क्रम

107...............................मेरे तीन खजानेः प्रेम और अन-अति और अंतिम होना .......................................................................................................... 2

108..................................................प्रेम को सम्हाल लो, सब सम्हल जाएगा ........................................................................................................ 27

109.................................................................परमात्मा परम लयबद्धता है ........................................................................................................45

110............................................................श्रेष्ठता वह जो अकेली रह सके ........................................................................................................63

111.....................................................असंघर्षः सारा अस्तित्व सहोदर है ........................................................................................................83

112........................................आक्रामक नहीं, आक्रांत होना श्रेयस्कर है
...................................................................................................... 100

113.........................................................................मुझसे भी सावधान रहना
...................................................................................................... 121

114...............................................................संत को पहचानना महा कठिन है
...................................................................................................... 138

115................................................मूर्च्छा रोग है और जागरण स्वास्थ्य
...................................................................................................... 157

116.............................................................संत स्वयं को प्रेम करते हैं
...................................................................................................... 175

117.....................................................मुक्त व्यवस्था--संत और स्वर्ग की
...................................................................................................... 195

118...........................................................अभय और प्रेम जीवन के आधार हों ......................................................................................................214

119.............................................................राजनीति को उतारो सिंहासन से ......................................................................................................233

120...................................................धर्म का सूर्य अब पश्चिम में उगेगा ......................................................................................................250

121.............................................................जीवन कोमल है और मृत्यु कठोर ......................................................................................................271

122...................................................संत संसार भर को देता है, और बेशर्त ......................................................................................................290

123................................................................................निर्बल के बल राम ......................................................................................................311

124.........................................प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जिम्मेवार है ......................................................................................................331

1

125.........................................................राज्य छोटा और निसर्गोन्मुख हो ......................................................................................................349

126......................................................परमात्मा का आशीर्वाद बरस रहा है ......................................................................................................369

127.................................................................प्रेम और प्रेम में भेद है ......................................................................................................389

2

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ सातवां प्रवचन

मेरे तीन खजानेः प्रेम और अन-अति और अंतिम होना

Chapter 67 : Part 1

The Three Treasures

All the world says: my teaching (Tao) greatly resembles folly. Because it is great; therefore it resembles folly.
If it did not resemble folly,
It would have long ago become petty indeed!
I have Three Treasures;
Guard them and keep them safe:
The first is love.
The second is, never too much.
The third is, never be the first in the world. Through love, one has no fear;
Through not doing too much, one has amplitude
(of reserve power);
Through not presuming to be the first in the world,
One can develop one's talent and let it mature.

अध्याय 67 : खंड 1

तीन खजाने

सब संसार कहता हैः मेरा उपदेश (ताओ) मूढ़ता से बहुत मिलता-जुलता है।
क्योंकि यह महान है, इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है।
और यदि मूढ़ता जैसा नहीं लगता, तो यह कब का तुच्छ हो गया होता।
मेरे तीन खजाने हैं; उन पर पहरा दो, और उन्हें सुरक्षित रखो।
पहला हैः प्रेम।
दूसरा हैः अति कभी नहीं।
तीसरा हैः संसार में प्रथम कभी मत हो।
प्रेम के जरिए आदमी अभय को उपलब्ध होता है।
अति नहीं करने से आदमी के पास आरक्षित शक्ति का अतिरेक होता है।
और संसार में प्रथम होने की धृष्टता नहीं करने से
आदमी अपनी प्रतिभा का विकास कर सकता है और उसे प्रौढ़ बना सकता है।

आंखें जब अंधेरे की आदी हो जाएं तो प्रकाश अंधकार जैसा मालूम होगा।
अंधेरे में ही तुम जीए हो; तो आज अचानक सूरज द्वार पर आ जाए तो उसकी चकाचौंध में तुम्हारी आंखें बंद ही हो जाएंगी। प्रकाश को समझने के लिए प्रकाश की यात्रा, प्रकाश का स्वाद, प्रकाश का जीवन में प्रशिक्षण चाहिए। परमात्मा को खोजने बहुत लोग निकलते हैं, लेकिन परमात्मा अगर तुम्हें राह पर मिल जाए--और बहुत बार मिलता है--तो तुम उसे पहचान न पाओगे। तुम उसे पहचानोगे कैसे? तुमने अब तक जो जाना है उससे तो वह बिल्कुल भिन्न है। तुम्हारा अब तक जो भी ज्ञान है उस ज्ञान से तो उस परमात्मा को तुम बिल्कुल भी न पहचान पाओगे।
दो ही उपाय हैं। अगर तुमने अपना ज्ञान पकड़ा तो परमात्मा सामने भी होगा तो दिखाई न पड़ेगा। दूसरा उपाय है, अगर तुमने अपना ज्ञान छोड़ दिया तो परमात्मा सामने न भी हो तो भी सब तरफ वही दिखाई पड़ेगा। तुम्हारी ज्ञान की पकड़ तुम्हें अंधा बनाए हुए है।

इसलिए जब भी कभी किसी व्यक्तित्व में परमात्मा की ज्योति उतरती है तो
हम उसे पहचान नहीं पाते। अन्यथा जीसस को सूली पर चढ़ाने की जरूरत क्या थी? और जिन्होंने जीसस को सूली पर चढ़ाया उनको भी भ्रांति है कि वे परमात्मा के खोजी और प्रेमी हैं। न केवल यही, बल्कि उन्हें लगता है कि जीसस परमात्मा का दुश्मन है।
जीसस को वे न पहचान पाए, परमात्मा को तो कैसे पहचानेंगे! जीसस तो एक किरण हैं उसकी, वह भी पहचानी न जा सकी, तो जब समग्र सूर्य तुम्हारे सामने होगा तब तो तुम बिल्कुल अंधे हो जाओगे। तुम्हें सिवाय अंधकार के और कुछ भी दिखाई न पड़ेगा।
इसलिए ज्ञानी अक्सर अज्ञानियों के बीच महा अज्ञानी मालूम पड़ता है। ऐसा ही समझो कि तुम सब अंधे होओ और एक आंख वाला व्यक्ति भूल-चूक से पैदा हो जाए। तो सारे अंधे मिल कर या तो उसकी आंखें फोड़ देंगे, क्योंकि वे बरदाश्त न कर सकेंगे। और अंधों का तर्क यह होगा कि कभी तुमने सुना है कि आंख वाला आदमी होता है! जरूर प्रकृति की कहीं कोई भूल हो गई है। अंधा ही होता है आदमी; आंखों में कहीं कुछ भूल है।
यही ज्ञानियों के साथ हमारा व्यवहार रहा है। हम पूजते हैं उन्हें जब
वे मर जाते हैं, क्योंकि मृत्यु की भाषा हम समझते हैं। जीवन की भाषा का हमें कुछ भी पता नहीं। जब उन्हें कब्रों में दफना देते हैं तब हमारे पूजा के फूल बड़े मुखर हो उठते हैं, तब हमारे अर्चना के दीये जलने लगते हैं। क्योंकि अब हम समझ सकते हैं; कब्र में जो मौत है वह हमारी समझ में आ सकती है। कब्र में सिर्फ अंधेरा है; अंधेरे के हम आदी हैं। हम मृत्यु में ही जीते रहे हैं; जीवन को हमने कभी जाना नहीं। जीवन हमारी आशाओं में रहा है, सपनों में, लेकिन उसकी कोई प्रतीति हमें कभी हुई नहीं। हम केवल मृत्यु से भयातुर, मृत्यु से घिरे कंपते हुए जीए हैं। मृत्यु को हम समझ सकते हैं। इसलिए जैसे ही कोई ज्ञानी व्यक्ति मर जाता है, हजारों उसकी कब्र की पूजा पर संलग्न हो जाते हैं; मंदिर-मस्जिदें खड़ी होती हैं, गुरुद्वारे बनते हैं। और जब ज्ञानी जीवित होता है तब सिर्फ लोग पत्थर ही फेंकते हैं, तब सिर्फ लोग निंदा ही करते हैं।
गणित साफ है। जब ज्ञानी जीवित होता है तब तुमसे उसका कोई तालमेल नहीं बैठता। तुम अंधेरे के निवासी हो; वह रोशनी की खबर लाया। यह शब्द तुमने कभी सुना नहीं। शब्द भी सुना हो तो इस शब्द के रहस्य को तुमने कभी अनुभव नहीं किया। वह किसी अनजान देश से आया है; वह कुछ अजनबी बातें कह रहा है। और उन बातों पर भरोसा करना खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि अगर तुम उन बातों पर भरोसा करोगे तो तुम्हारी जो सुव्यवस्थित गुलामी है वह खंड-खंड हो जाएगी; जो तुम्हारा सुव्यवस्थित अंधकार है... । अंधकार में तुमने अपना घर बना लिया है। अंधकार को तुमने खूब साज-संवार लिया है। तुमने अंधकार को खूब सजावट औरशृंगार से भर लिया है। तुम भूल ही गए हो कि यह अंधकार है। तुमने अपनी जंजीरों पर भी हीरे-माणिक लगा लिए हैं, और तुमने उनको आभूषण मान लिया है। तुमने अपनी मृत्यु को भी जीवन समझ रखा है।
अगर तुम ज्ञानी की बात सुनोगे तो खतरा है। खतरा यही है कि वह तुम्हें अस्तव्यस्त कर देगा। वह तुम्हारी सारी व्यवस्था को तोड़ देगा। तुम्हारी सारी सुरक्षा की नींवें हिल जाएंगी। और तुमने जो भवन बड़ी मेहनत से बनाया है जन्मों-जन्मों में, अगर तुमने ज्ञानी का एक शब्द भी सुन लिया तो तुम पाओगे कि वह रेत का भवन है--अब गिरा, तब गिरा। तुमने ताश के पत्तों का घर बना लिया है। तुम उसके भीतर बड़े प्रसन्न हो। पता चल जाए कि ताश का घर है, तुम फिर कैसे प्रसन्न रह पाओगे? फिर दूसरे और असली घर की खोज पर निकलना होगा। और यात्रा दुर्गम है। और कभी कोई पहुंचता है; हजारों चलते हैं, एकाध पहुंचता है।
इसलिए सरल यही है तुम्हारे अज्ञान में कि तुम कह दो इस ज्ञानी को कि
यह मूढ़ है, पागल है। यह तुम्हारे बचने का उपाय है। यह तुम्हारी सुरक्षा है। जब तुम ज्ञानी को कह देते हो कि मूढ़ है, तब तुम अपनी मूढ़ता को बचा लेते हो। जब तुम ज्ञानी को कह देते हो पागल है, तब तुम अपने पागलपन को बचा लेते हो। क्योंकि तुम दो में से कोई एक ही सही हो सकता है, दोनों नहीं। अगर

बुद्ध सही हैं, अगर क्राइस्ट सही हैं, अगर मैं सही हूं, तो तुम गलत हो। और समझौता यहां न चलेगा। या तो मैं सही हूं, या तुम सही हो। ज्ञानी का कोई समझौता अज्ञानी से नहीं हो सकता। क्या समझौता करोगे? कैसे मिलाओगे अंधेरे और रोशनी को? कभी कोशिश की है?
लोग कहते हैं, पानी में तेल नहीं मिलाया जा सकता। लेकिन यह भी हो सकता
है कि पानी में तेल किसी तरकीब से मिला लिया जाए, लेकिन अंधेरे में रोशनी कैसे मिलाओगे? अंधेरा अभाव है प्रकाश का। तो अभाव को भाव से कैसे मिलाओगे? प्रकाश होता है तो अंधेरा हो नहीं सकता; अंधेरा होता है तो प्रकाश हो नहीं सकता। दोनों अलग-अलग ही हो सकते हैं। उनके बीच कोई समझौता नहीं है।
एक ही उपाय हैः अगर तुम ज्ञानी को सुनने को राजी हो जाओ; एक क्षण भी मौका दो, जरा सा झरोखा खोलो अपने हृदय का। तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हारे बनाए हुए सब घर झूठे हो जाएंगे, तुम्हारे बनाए हुए सारे इंतजाम व्यर्थ हो जाएंगे। तुमने जो सजावट की है वह सारी सजावट तुमने कागज के घर में कर रखी है। वह घर गिरेगा। वह घर गिर ही रहा है। उस घर में आग लगने वाली है। उस घर में आग लगी ही है। अगर तुम ज्ञानी की सुनोगे तो तुम्हें अपने इन घरघूलों को छोड़ कर बाहर आना होगा। वह तुम्हें खुले आकाश का निमंत्रण देता है। वह तुम्हें स्वतंत्रता के लिए पुकारता है। परम मोक्ष की तरफ उसका इशारा है। डर लगता है। अज्ञात में जाने में भय पकड़ता है। जिन रास्तों पर हम चले नहीं, उन पर वह बुलाता है। जिन मार्गों को हमने कभी छुआ नहीं, उन पर निमंत्रण देता है। और कोई नक्शा नहीं है उन मार्गों का कि तुम्हें आश्वस्त किया जा सके। उन मार्गों को कोई भी पूरा जान नहीं पाया है कि नक्शे बनाए जा सकें।
परमात्मा के नक्शे कभी भी न बनाए जा सकेंगे। क्योंकि वह कोई जड़ वस्तु नहीं है; गत्यात्मक है, प्रतिपल रूपांतरित हो रहा है, प्रतिपल पूर्ण से पूर्णतर की तरफ जा रहा है। तो केवल साहसी ही आ सकते हैं इस अभियान में। तो फिर तुम क्या करोगे अपने भय को? अपनी कायरता को कैसे छिपाओगे? क्योंकि यह स्वीकार करने से भी पीड़ा होती है कि मैं कायर हूं। यह स्वीकार करने से भी अहंकार को बड़ी चोट पहुंचती है कि मैं अज्ञानी हूं।
इसलिए जो भी ज्ञान का संदेश लेकर तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है वह तुम्हारे अहंकार पर चोट करता है। जो भी तुम्हारे पास लेकर आता है ज्ञान बांटने को वही तुम्हें दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है। क्योंकि अगर तुम ज्ञान लेते हो तो तुम अज्ञानी थे। अगर तुम उसका निमंत्रण स्वीकार करते हो तो अब तक तुमने जो यात्राएं कीं वे व्यर्थ ही गईं, उनमें कोई भी तीर्थयात्रा न थी; अब तक तुम भटके। अगर तुम गुरु को स्वीकार करते हो तो उस स्वीकार में यह छिपा है कि अनंत-अनंत जन्मों तक तुमने जो यात्रा की वह तुम्हारी भटकन थी, भटकाव था। गुरु को स्वीकार करने का अर्थ हैः जन्मों-जन्मों के अहंकार को छोड़ देना।
बहुत कठिन है। अहंकार तर्क खोजता है। अहंकार कहता है, यह आदमी मूढ़ मालूम होता है।
मैंने सुना है, एक सूफी कथा है कि एक आदमी परम गुरु की तलाश में था। बीस वर्षों तक उसने खोज की। न मालूम कितने गुरुओं के पास गया। लेकिन कुछ न कुछ भूल उसने निकाल ही ली। गुरु में कुछ न कुछ कमी मालूम पड़ी। कोई गुरु हंसता हुआ मिला। तो उसने सोचा, यह भी कोई गुरु हो सकता है! गुरु तो गंभीर होते हैं। हमारे पास शब्द हैः गुरु-गंभीरता। उसने कहा, यह भी कोई गुरु हो सकता है; संसारियों जैसा हंस रहा है! और गुरु मिले जो बिल्कुल उदासीन थे, उदास थे। उसने कहा, यह भी कोई गुरु है जिसके चेहरे पर आनंद की जरा भी झलक नहीं! ऐसा हर जगह उसने कुछ न कुछ खोज लिया। कोई गुरु उपवास करता था। तो उसने सोचा, यह तो आत्मघात है। और कोई गुरु ठीक से खाता-पीता था। तो उसने कहा, यह तो निपट भोगी है। बीस वर्ष अनेकों गुरुओं के पास गया, लेकिन परम गुरु, परफेक्ट मास्टर, नहीं मिल सका।
बीस साल बाद थक गया। मौत भी करीब आने लगी। इसलिए मापदंड उसने थोड़े शिथिल कर लिए, कि अब तो मरने के करीब आ रहा हूं, अब तो थोड़ा कमोबेश भी मिल जाए, अठारह-उन्नीस भी चलेगा। न हुआ बीस, लेकिन अब मौत करीब आ रही है। तो जब

उसने अपने मापदंड थोड़े शिथिल किए, एक गुरु मिल गया, जो उसे लगा कि परिपूर्ण है। सब तरफ से जांच-परख करके उसने भरोसा कर लिया।
एक दिन सुबह जाकर गुरु के चरणों में उसने निवेदन किया कि मैं परम गुरु
की तलाश में था; बीस साल भटका; अंततः आप मिल गए; मेरी यात्रा पूरी हुई। क्या आप परम गुरु हैं? गुरु ने कहा, अगर मैं कहूं हूं, तो वही कारण बन जाएगा मेरे परम गुरु न होने का; अगर मैं कहूं नहीं हूं, तो जब मैं खुद ही कह रहा हूं कि नहीं हूं तो सवाल ही कहां उठता है। लेकिन अब तुमने पूछ ही लिया है तो मुझे तो पता नहीं कि मैं परम गुरु हूं या नहीं, लेकिन ऐसी मेरी ख्याति है; लोग कहते हैं। ऐसा लोग कहते हैं कि यह परम गुरु है। तो उसने कहा, ठीक, अब मैं भी थक गया हूं खोजते-खोजते, और आप ने भी मुझे डरा दिया। लेकिन अब बहुत हो गई खोज, अब मौत करीब आती है, तो मैं तो स्वीकार करने को राजी हूं। मैं परम गुरु की तलाश में था, आप मिल गए, मुझे शिष्य की तरह स्वीकार कर लें।
उस गुरु ने कहा, यह जरा मुश्किल है।
शिष्य ने कहा, क्यों मुश्किल है? मैं मरने के करीब आ गया।
तुम्हारी मृत्यु से मेरा क्या लेना-देना, मैं परम शिष्य की तलाश में हूं।
अहंकार के बड़े रंग हैं, बड़े रूप हैं। और अहंकार हर जगह भूल-चूक खोज ही लेता है। अहंकार भूल-चूक खोजता है, उसका भीतरी अचेतन कारण हैः अपने लिए सांत्वना खोजना। तुम डरते हो कि अगर गुरु मिल ही गया, तो फिर तुम्हें रूपांतरित होना पड़ेगा। और मन तो रूपांतरित नहीं होना चाहता। क्योंकि मन तो जीता है आदतों में, बंधी हुई यांत्रिकता में। कम से कम प्रतिरोध उसका मार्ग है। बदलाहट में तो बड़ी मुसीबत होगी, सब बदलना पड़ेगा। इसलिए अचेतन रास्ता खोजता रहता है कि नहीं, यह भी गुरु नहीं; यह भी गुरु नहीं; यह भी गुरु नहीं; यह भी ज्ञान नहीं है। इस तरह तुम अपने को सुरक्षित करते हो। जब तुम कह देते हो कि यह गुरु नहीं है तो असली में तुम यह कह रहे हो कि शिष्य होने की झंझट से एक बार फिर बचे।
शिष्य होना बड़ी कठिन बात है। इस संसार में उससे ज्यादा कठिन बात कोई
भी नहीं। क्योंकि शिष्य होने का अर्थ है कि हमने किसी और का सहारा पकड़ लिया। और हमने सहारा बेशर्त पकड़ा; पाने की आशा से नहीं, प्रेम के भरोसे में पकड़ा। कहीं पहुंच जाएंगे, इस लोभ से नहीं; किसी ने हमारे भीतर वीणा जगा दी, किसी ने हमारे भीतर एक नये संगीत को जन्म दे दिया, और हमारे पैर बंधे हुए उसके पीछे चलने लगे। जैसे सांप नाचने लगता है बांसुरी को सुन कर ऐसा ही गुरु को देख कर, सदगुरु को देख कर शिष्य अपना भान खो देता है। अपनी अकड़, अपना होना खो देता है। दूर की बांसुरी बजने लगी; अज्ञात की पुकार आ गई। बिना पूछे--कहां जा रहा हूं! कहां ले जा रहे हो! क्योंकि बताने का कोई उपाय नहीं है। पूछा, कि बताने का कोई उपाय नहीं है। जाने से ही जाना जाता है। होने से ही हुआ जाता है। उस मंजिल के संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। तुम जाओगे, जानोगे, देखोगे, तो ही। श्रद्धा के किसी गहन क्षण में यात्रा शुरू होती है शिष्य की।
शिष्य का अर्थ है जो सीखने को तैयार है। सीखने को तैयार कौन है?
सीखने को वही तैयार है जिसने यह अनुभव कर लिया कि अब तक अपने तईं बहुत उपाय किए, कुछ भी सीख न पाया। सीखने को वही तैयार है जिसने अपने अज्ञान की पीड़ा की प्रतीति कर ली। सीखने को वही तैयार है जिसने देख लिया अपने हृदय के गहन अंधकार को। सीखने को वही तैयार है जिसने देख लिया कि मैं अपने जीवन को सिर्फ उलझा रहा हूं, सुलझा नहीं रहा। और जितना सुलझाने की कोशिश करता हूं, बात और उलझती चली जाती है। ऐसे पीड़ा के क्षण में, ऐसी संताप की अवस्था में, अपनी परिस्थिति को पूरा-पूरा देख कर, अपनी यात्रा की व्यर्थता को समझ कर शिष्यत्व का जन्म होता है। तब कोई सीखने को तैयार होता है।
और जो सीखने को तैयार है उसे अपनी अस्मिता और अहंकार को छोड़ देना पड़ता है। क्योंकि अहंकार सीखने न देगा। अहंकार बदलने न देगा। अहंकार अपने से ऊपर किसी को रखने को कभी राजी ही नहीं है। परमात्मा को भी करोड़ों लोग इनकार करते हैं सिर्फ इसी कारण; इसलिए नहीं कि उन्हें पक्का पता है कि परमात्मा नहीं है। कैसे पता हो सकता है?

मेरे पास कभी-कभी नास्तिक आ जाते हैं। कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। मैं उनसे कहता हूं, तुमने खोजा? तुमने सब खोज डाला? तुमने अस्तित्व के सब कोने-कातर देख डाले हैं? कुछ खोजने को जगह नहीं बची? अगर सब देख डाला हो और परमात्मा को न पाया हो, तब तो बात समझ में आती है। लेकिन खोजा कितना है? जब तक तुम पूरे अस्तित्व को रत्ती-रत्ती नाप न डालो तब तक यह कहने का हक नहीं है कि परमात्मा नहीं है। क्योंकि जो हिस्सा शेष रह गया है, कौन जाने वहां हो! और शेष तो बहुत बड़ा रह गया है। जो जाना है वह तो ना-कुछ है। जो शेष है उसका तो कोई अंत नहीं।
इसलिए नास्तिक अक्सर सोचता है कि मैं तर्कयुक्त हूं, लेकिन तर्कयुक्त होता नहीं। यहीं तो सारा तर्क व्यर्थ हो गया। बिना खोजे कहते हो नहीं है! अंधापन है यह तो। खोज लो, फिर न पाओ तो कह देना।
लेकिन असली सवाल नास्तिक को खोजने का नहीं है। वह यह कह रहा है, कोई परमात्मा नहीं है। इस कहने में वास्तविक क्या कह रहा है? वह यह कह रहा है कि मेरे ऊपर किसी को मानने की मुझे सुविधा नहीं है। और परमात्मा है तो मुझसे ऊपर कुछ है। अहंकार इनकार करता है परमात्मा का। अहंकार और परमात्मा के बीच गहन संघर्ष है। या तो तुम अहंकार को बचा लो, और या तुम परमात्मा को पा लो। दोनों तुम एक साथ न कर सकोगे। और वैसी करने की कोशिश की तो सिर्फ विक्षिप्त हो जाओगे, विमुक्त नहीं।
लाओत्से इन सूत्रों में बड़ी गहन बातें कह रहा है।
पहली गहन बात तो वह यह कह रहा है कि "सब संसार कहता है कि मेरा उपदेश (ताओ) मूढ़ता से बहुत मिलता-जुलता है। क्योंकि यह महान है, इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है।"
क्षुद्र को तुम पहचानते हो। महान से तुम्हारा कोई परिचय नहीं। क्षुद्र की ही तुम्हारी भाषा है। महान के साथ तुम्हारी भाषा एकदम अड़चन में पड़ जाती है। या तो तुम मौन हो जाओ तो महान तुम्हारे भीतर छा जाए, थोड़ा सा स्वाद तुम्हारी छाती में लगे। अगर तुम बोलते ही चले जाओ तो महान की जो भी चर्चा है वह मूढ़ता जैसी मालूम पड़ेगी। इसलिए परम ज्ञानी अक्सर पागल मालूम हुए हैं। और तुम्हारी भीड़ है। अगर तुम ही तय करने वाले हो तो एक ज्ञानी की कौन सुनेगा? तुम सब मताधिकारी हो। तुम मत डाल सकते हो, वोट डाल सकते हो, और तय कर सकते हो कि यह आदमी पागल है। क्योंकि यह जो बातें कह रहा है वे तुम्हारे मन से बड़ी हैं। या तो तुम मन को छोड़ने को राजी होओ तो इन बातें को समझ लो। अगर तुम मन को ही पकड़ते हो तो ये बातें इतनी बड़ी हैं। यह ऐसे ही है जैसे कोई चुल्लू में सागर को भरने की कोशिश कर रहा हो, या कोई मुट्ठी में आकाश को पकड़ने निकला हो, और न पकड़ पाए तो कहे कि आकाश है ही नहीं।
महान बातों की एक कठिनाई है कि महान बातें विरोधाभासी होती हैं, पैराडाक्सिकल होती हैं। क्षुद्र बातें तर्कयुक्त होती हैं। क्षुद्र बातों का तर्क बिल्कुल सीधा-साफ होता है। जितनी विराट होने लगती है बात उतनी ही अतर्क्य होने लगती है। क्योंकि विराट अतर्क्य है। सामान्य जीवन में रात अलग है, दिन अलग है; जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। विराट में तो दोनों इकट्ठे हैं; जन्म भी उसी में, मृत्यु भी उसी में। वहां तुम जन्म और मृत्यु को अलग-अलग न रख पाओगे। वहां तुम्हारे खंड करने की जो बुद्धिमत्ता है वह व्यर्थ हो जाएगी। वहां तो अखंड का निवास है। वहां तो मृत्यु में जन्म छिपा है, जन्म में मृत्यु छिपी है। वहां तो मृत्यु भी जन्म का एक चेहरा है, और जन्म भी मृत्यु का एक ढंग है, वेश है। वहां तो सब विरोध गिर जाते हैं। और जहां विरोध गिर जाते हैं वहां मुश्किल हो जाती है।
उपनिषद कहते हैं, ईश्वर पास से भी पास, दूर से भी दूर।
तुम कहोगे, यह पागलपन की बात है। या तो पास, या दूर, समझ में आता है। अगर दूर है तो कहो दूर, अगर पास है तो कहो पास। लेकिन तुम दोनों कहते हो, पास से भी पास, दूर से भी दूर। तो जो तर्कनिष्ठ मन है वह दुविधा में पड़ जाता है। करो क्या? तर्कनिष्ठ मन कहता है, जो चीज दूर होती है वह दूर होती है, जो पास होती है वह पास होती है। और दोनों तो कैसे हो सकती है?

लेकिन परमात्मा ऐसा ही है, पास से भी पास, दूर से भी दूर। और जिन्होंने जाना है, उनकी मजबूरी है। वे भी चाहते हैं कि तुम्हारी भाषा में बोल दें, लेकिन तब जो वे बोलते हैं वह परमात्मा के प्रति अन्याय हो जाता है। अगर तुम्हारी भाषा में बोलें तो परमात्मा के प्रति अन्याय होता है। अगर परमात्मा जैसा है वैसा ही बोलें, तुम्हारी भाषा के कटघरे टूट जाते हैं। उपनिषद ठीक ही कहते हैं। क्योंकि वह पास से भी पास है। उससे ज्यादा पास कोई भी नहीं। तुम भी अपने उतने पास नहीं जितने वह तुम्हारे पास है। क्योंकि तुम्हारे हृदय की धड़कन वही है। कबीर ने कहा है, सब सांसों की सांस में, तेरा साईं तुज्झ में। वह तुझमें ही छिपा है। अगर ठीक से कहें तो तेरा होना उस साईं का ही होना है। दूरी तो दूर, पास कहना भी बहुत दूर कहना है। पास भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि पास में भी थोड़ी तो दूरी होती ही है। तुम मेरे पास बैठे हो, लेकिन फासला तो है। तुम और पास आ जाओ, फासला कम हो लाएगा, रहेगा तो। तुम बिल्कुल आकर मेरे गले से मिल जाओ, फासला न के बराबर हो जाएगा, लेकिन न के बराबर भी फासला तो है ही। पास भी तो दूर ही है। परमात्मा पास से पास है, यह परम सत्य है।
लेकिन फिर तुम्हें मिल क्यों नहीं रहा है? अगर इतना पास है तो मिल ही जाना चाहिए था। अगर इतना पास है तो खोने का उपाय ही कहां था? अगर इतना पास है तो अब तक भटकन क्यों है?
इसलिए ज्ञानी कहते हैं, दूर से भी दूर। अगर इसको हम और सुलझा कर कहना चाहें तो यूं कह सकते हैं कि परमात्मा तो तुम्हारे बहुत पास है, तुम परमात्मा से बहुत दूर। मगर वह भी अतर्क्य है। क्योंकि तुम कहोगे, जब परमात्मा हमारे पास है तो हम भी उसके पास हैं। परमात्मा तो तुम्हारे पास है, तुम्हारे भीतर है, तुम हो; लेकिन तुम परमात्मा से बहुत दूर हो। तुम परमात्मा के भीतर नहीं हो। तुम्हारा फासला अनंत है।
अतर्क्य हो जाती है जितनी होती है विराट बात। और जब अतर्क्य हो जाती
है तो तर्कनिष्ठ मन कहता है, ये तो मूढ़ता की बातें हैं। और लाओत्से जैसा मूढ़ तुम न पा सकोगे; सब उपनिषदों को हरा देता है लाओत्से। उस जैसा पैराडाक्सिकल, उस जैसा विरोधाभासी कभी कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं। मैं उसे हराने की कोशिश कर रहा हूं, सफलता मुश्किल है; कोई उपाय नहीं दिखता। लाओत्से से ज्यादा विरोधाभासी होने की जगह नहीं बची है।
तुम पूछो लाओत्से से, कैसे पाएंगे परमात्मा को? वह कहता है, पाने की कोशिश की कि खो दोगे; भूल कर भी कोशिश मत करना। कोशिश में ही तो लोग भटक गए हैं। जो मिला ही हुआ है, उसे कहीं कोशिश करके कोई पाता है? तुम फिर भी पूछोगे, फिर क्या करें? वह कहता है, किया कि चूके; पाने का ढंग है न खोजना। लाओत्से कहता है, पाने का ढंग है न खोजना; खोजना ही नहीं। लाओत्से कहता है, उसकी तरफ जाने का ढंग है बैठ रहना, उठता ही मत। चले कि भटके; चले कि दूर निकले। वह तो पास था। तुम चल कर कहां जा रहे हो? शरीर ही न बैठ जाए, मन भी बैठ जाए, तुम्हारे भीतर कोई गति ही न रह जाए--और तुम उसे पा लोगे। पा लोगे कहना ठीक नहीं है! तुम अचानक हंसोगे और कहोगे, जिसे सदा से पाया हुआ था, उसे खोया कैसे था? यह अनहोनी घटी कैसे? यह चमत्कार कैसे संभव हुआ कि जो भीतर जाग रहा था, जो खोजने वाले में छिपा था, जो खोजी का हृदय था, उसको हम चूक कैसे गए?
अगर और ठीक से समझना चाहो तो लाओत्से यह कहता है कि वह पास है इसीलिए तुम्हें दूर मालूम पड़ता है। वह पास है इसीलिए तुम चूक गए हो। जैसे सागर की मछली चूक जाती है सागर को, उसे पता ही नहीं चलता कि सागर कहां है। पता चलेगा भी कैसे? पता चलने के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। मछली सागर में ही पैदा होती है; सागर में ही जवान होती है; सागर में ही जीती है; सागर में ही मर जाती है। मछली को पता कैसे चलेगा कि सागर है? कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कोई मछुआ मछली को पकड़ लेता है, कोई मछुआ जाल में फांस लेता है, कोई मछुआ सागर से उठा लेता है दूर मछली को, तट पर पटक देता है। तब मछली को पहली बार पता चलता है कि सागर क्या है! खोकर पता चलता है कि क्या है, होकर पता नहीं चलता।

लेकिन परमात्मा के साथ और भी अड़चन है। उसका कोई किनारा नहीं। और बहुत मछुओं ने जाल डाले हैं, मैं भी वही कर रहा हूं। मछलियां फंस भी जाएं तो भी उन्हें किनारे पर पटकने का कोई उपाय नहीं। किनारा ही नहीं है! परमात्मा तटहीन सागर है।
इसलिए तुम उसे जान नहीं पा रहे, क्योंकि वह बहुत करीब है। तुम उसे जान नहीं पा रहे, क्योंकि वह तुम में ही छिपा है। कबीर कहते हैं, कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढे बन मांहि। छिपी है वास भीतर और मृग पागल हो जाता है। और खोजता है जंगल में दूर-दूर। लहूलुहान हो जाता है, टकराता है, भागता है। सुगंध कहीं से आती मालूम पड़ती है। लगता है कहीं कोई प्रगाढ़ आकर्षण खींचे ले रहा है, कोई चुंबकीय शक्ति है। और कस्तूरी भीतर है। और कस्तूरी मृग की नाभि में छिपी है। पक गया है नाफा, गंध बाहर आ रही है।
तुम परमात्मा को खोजते फिरते हो जगह-जगह--काशी, कैलाश, काबा--और कस्तूरी कुंडल बसे। जो गंध तुम्हें मिल रही है जीवन की, वह तुम्हारे भीतर से आ रही है। लेकिन बाहर की प्रतिध्वनि तुम्हें सुनाई पड़ती है।
यूनान में एक कथा है। एक बहुत सुंदर युवक हुआ, नार्सीसस। वह इतना सुंदर था कि वह अपने ही प्रेम में पड़ गया। उसने अपनी छांह देख ली एक सरोवर में। तब दर्पण न रहे होंगे। बहुत पुरानी कथा है। एक सरोवर में अपनी छांह देख ली; इतनी सुंदर थी! निश्चित ही युवक बहुत सुंदर था। फिर बहुत युवतियों ने उस पर अपने तीर फेंके, वे कारगर न हो सकीं। क्योंकि वह जो छांव में उसने देख लिया था वैसा सुंदर फिर उसने किसी को पाया नहीं। वह भटकता रहा, वह खोजता रहा उस व्यक्ति को, जो उसने देख लिया था सरोवर के भीतर छिपा हुआ। वह घंटों, और दिनों, और महीनों सरोवर के किनारे बैठा रहता और देखता रहता टकटकी लगा कर। पानी में छलांग लगाता, प्रतिबिंब खो जाता; डुबकी मारता, खोजता, कुछ भी न पाता। वहां कुछ था तो नहीं, वहां तो बस प्रतिफलन था, वहां तो सिर्फ प्रतिछाया थी। उसके कूदते ही खो जाती। कहते हैं, नार्सीसस पागल हो गया। सरोवर दर्पण, प्रतिफलन, छलांग लगाना, खोजना; खाना-पीना भूल गया। जंगल-जंगल खोजता फिरा। पहाड़-पहाड़ उसकी आवाज से गूंजने लगे।
जो नार्सीसस की कथा है, वही तुम्हारी कथा है। तुम जिसे खोज रहे हो वह तुम्हारे भीतर छिपा है।
हो सकता है किसी की आंख के सरोवर में तुम्हें दिखाई पड़ा हो अपना प्रतिबिंब। हो सकता है किसी के चेहरे पर तुम्हारा प्रतिबिंब दिखाई पड़ा हो। हो सकता है कभी संगीत के माधुर्य में झलक गई हो बात। किसी सुबह सूरज के उगते क्षण में, आकाश के मौन में, पक्षियों के कलरव में, खिलते हुए गुलाब के फूल में तुम्हें दर्पण मिल गया हो। लेकिन जो तुमने देखा है, जो तुमने सुना है, जो तुमने पाया है कहीं भी बाहर, सब खोजियों की खोज एक है कि वह तुम्हारे भीतर छिपा है।
तो लाओत्से से पूछो, कहां खोजें? वह कहता है, कहीं भी खोजा तो मुश्किल में पड़ोगे। खोजो मत, रुक जाओ। बिल्कुल रुक जाओ। और तुम पा लोगे। निष्क्रियता है राज पाने का। लाओत्से कहता है, मिट जाओ तो हो जाओगे। अगर बने रहे तो मिटोगे, बुरी तरह मिटोगे। लाओत्से कहता है, अगर सफल होना हो तो सफल होने की कामना ही छोड़ देना; अगर तृप्ति चाहिए हो तो तृप्त होने की वासना ही मत रखना। सब कामनाएं परिपूर्ण हो जाती हैं जैसे ही कामना छूट जाती है। निर्वासना से भरे मन में वह परम गुह्य उतर आता है, उस परम गुह्य का नर्तन शुरू हो जाता है। घिर जाते हैं मेघ आनंद के उसके पास, जिसकी कोई चाह नहीं।
तुम्हारी मुसीबत यह है कि तुम कहते हो, चाह नहीं! हम तो लाओत्से के पास
भी इसीलिए जाते हैं कि चाह है। लाओत्से की बात भी तुम इसीलिए सुनते हो कि सोचते हो शायद इसकी बात सुनने से आनंद मिल जाए। तुम ज्ञानियों के पास भी अपने लोभ के कारण जाते हो। और ज्ञानी यह कह रहा है, तुम हमारे पास आ सकोगे तभी जब तुम्हारे पास कोई लोभ न हो।
बड़ी अड़चन है। गुरु और शिष्य के बीच बड़ा गहन संघर्ष है। उससे बड़ा कोई युद्ध संसार में नहीं। और अगर शिष्य जीत जाए तो वही उसकी हार होगी। और शिष्य अगर हार जाए तो वही उसकी जीत होगी।

अब यह सब विरोधाभास है। और जब लाओत्से ने ये सब बातें कहीं, और अपना ताओ तेह किंग का पहला वचन कहा, कि जो कहा जा सके वह सत्य है ही नहीं, और फिर कहना शुरू किया तो अगर लोगों ने समझा कि इस लाओत्से का उपदेश मूढ़ता से बहुत मिलता-जुलता है, तो कुछ हैरानी की बात नहीं।
तुम्हीं थे वे लोग। कुछ बदलता नहीं, नाटक की मंच बदल जाती है। वही हैं अभिनेता, वही हैं दर्शक; कथा वही है। जैसे रामलीला चलती है, हर गांव में चलती है; कथा वही है, मंच अलग है, राम भी अलग रूप के हैं, सीता भी अलग रूप की है; कथा वही है। सार वही है। जो लाओत्से के साथ तुमने किया वही तुम मेरे साथ करोगे। जो लाओत्से तुम्हारे साथ करना चाहता था वही मैं तुम्हारे साथ करना चाहता हूं। कथा वही है। हर गुरु-शिष्य के बीच कथा वही है। उसमें कुछ बहुत भेद नहीं है। रूप का भेद है, रंग का भेद है, नाम का भेद है। भीतर की धारा एक है।
तुम्हें मेरी बातें मूढ़ता जैसी ही लगेंगी। तुम अगर मेरे प्रेम में पड़
गए तो शायद तुम कहो न, लेकिन भीतर कहीं तुम्हारा तर्क कसमसाता रहेगा, और कहता रहेगा, इन बातों में कहां पड़े हो? मन इन बातों को समझ नहीं सकता। लाओत्से कहता है, "क्योंकि यह महान है--यह उपदेश--इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है।"
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। क्योंकि ज्ञानी करीब-करीब एक अर्थ में मूढ़ जैसा हो जाता है। वर्तुल पूरा हो जाता है। तुमने कभी किसी मूढ़ व्यक्ति को देखा है? मूर्खों की बात नहीं कर रहा हूं। मूढ़! मूढ़ का मतलब होता है ईडियट, जो सोच ही नहीं सकता। ज्ञानी का भी सोचना खो जाता है। फर्क बड़ा है; तालमेल भी बड़ा है। अगर तुम इतना ही देखो तो जिसको हम मूढ़ कहते हैं उसमें भी विचार की तरंगें नहीं होतीं। वह बैठा रहता है सुस्त--पत्थर की तरह। उसके भीतर कोई ऊहापोह नहीं होता। ज्ञानी भी बैठा रहता है, लेकिन पत्थर की तरह नहीं। बड़ा गतिमान, बड़ा प्रवाहमान; सतत धारा बहती है चैतन्य की; लेकिन विचार नहीं होता।
तो अगर तुम विचार से ही नापने चलो तो तुम्हें ज्ञानी और मूढ़ समान मालूम पड़ेंगे। अगर तुम चैतन्य से नापने चलो तो वे दो विपरीत छोर हैं। मूढ़ के पास कोई चैतन्य नहीं है, ज्ञानी के पास परम चैतन्य है। मूढ़ विचार से नीचे है, ज्ञानी विचार के ऊपर है, लेकिन दोनों के विचार... । मध्य में तुम हो जहां विचारों का झंझावात है। तुमसे नीचे है मूढ़, वहां कोई झंझावात नहीं है।
इसलिए मूढ़ भी कभी-कभी बड़ा प्रसन्न दिखता है। मूढ़ तुमसे ज्यादा आनंदित दिखता है। क्योंकि न कोई चिंता है, न कोई विचार है। मूढ़ जानवर जैसा है। वह तुमसे ज्यादा सुखी है, इसमें कोई शक नहीं। क्योंकि दुखी होने के लिए काफी चिंतन की जरूरत है। दुखी होने के लिए काफी विचार करना जरूरी है। जितना विचारशील आदमी हो, उतना दुख का जाल खड़ा कर लेता है।
संतों ने कहा है, सब ते भले मूढ़, जिन्हें न व्यापै जगत गति।
जगत चलता रहता है, मगर मूढ़ में व्यापती ही नहीं कुछ बात। उसे कुछ मतलब
ही नहीं है; खा लिया, पी लिया, सो गए। ज्ञानी भी ऐसा ही है; खा लिया, पी लिया, सो गए। लेकिन मूढ़ है अंधकार से भरा और ज्ञानी है प्रकाश से भरा। मूढ़ में विचार नहीं उठते, क्योंकि प्रकाश की जरा सी भी झलक वहां नहीं है। ज्ञानी में विचार नहीं उठते, क्योंकि प्रकाश परिपूर्ण हो गया, अंधकार का जरा सा भी कोना नहीं रह गया। मूढ़ अंधकार की दृष्टि से पूर्ण है, ज्ञानी प्रकाश की दृष्टि से पूर्ण है, तुम मध्य में हो। इसलिए तुम्हारी बड़ी दुर्गति है। मध्य में सदा दुर्गति रहेगी, क्योंकि खिंचाव रहेगा, तनाव रहेगा। एक तरफ मूढ़ता खींचती है कि चले आओ इसी किनारे, क्यों परेशान हो रहे हो? तो कभी-कभी तुम शराब पीकर मूढ़ हो जाते हो। इसलिए तो दुनिया में नशों का इतना प्रभाव है। वे मूढ़ होने के ढंग हैं। मूढ़ता खींचती है, लौट आओ पुराने किनारे पर! इस मध्य में खड़े-खड़े तुम बहुत परेशान, अशांत, बेचैन हो रहे हो। लेकिन कोई पीछे लौट नहीं सकता। जीवन में पीछे जाने का उपाय नहीं है। इसलिए तुम घड़ी, दो घड़ी के लिए लौट जाओ, फिर वापस लौट आना पड़ेगा। उपाय तो आगे

जाने का है। ज्ञानी बुलाते हैं आगे, कि बढ़ आओ! ज्ञानी भी कहते हैं, मत रुको सेतु पर।
अकबर ने फतेहपुर सीकरी बनाई। नयी बस्ती थी, नयी राजधानी थी। बड़ी मेहनत से बनाई गई थी। अरबों रुपये खर्च किए गए थे। फिर अकबर ने अपने पंडितों को, अपने दरबारियों को, अपने नवरत्नों को कहा कि कोई एक वचन खोजो दुनिया के साहित्य से जो इस फतेहपुर सीकरी के दरवाजे पर लिखा जा सके। बड़ा बहुमूल्य वचन लोगों ने खोजा; वह वचन है जीसस का। उस वचन का अर्थ है--जो फतेहपुर सीकरी के द्वार पर खुदा है--कि यह संसार एक सेतु है; इससे गुजर जाओ, इस पर घर मत बनाना। दिस वर्ल्ड इ.ज लाइक ए ब्रिज; पास थ्रू इट, गो बियांड इट, बट डोंट मेक योर हाउस ऑन इट।
सेतु का अर्थ होता हैः दो किनारों के मध्य में। सेतु पर जो है उसमें हमेशा तनाव होगा। तुम जिस अवस्था में हो वह अवस्था नहीं है, वह एक बीमारी है। इसलिए तो तुम बेचैन हो। मनुष्य सदा बेचैन रहेगा। पशु बेचैन नहीं है। परमात्मा बेचैन नहीं है। मनुष्य बेचैनी है। मनुष्य एक गहन संताप है। रहेगा ही। क्योंकि दो अतियां उसे खींच रही हैं। या तो गिर जाओ और बन जाओ पशु। कभी संभोग में, कभी शराब में--वही घटना घटती है, गिर जाते हो वापस, थोड़ी देर के लिए पशुओं के जगत में लीन हो जाते हो। थोड़ी देर को शांति मिलती है।
पर वह थोड़ी देर को ही हो सकता है। क्षणभंगुर! इसलिए तो तुम्हारे सारे सुख क्षणभंगुर हैं। क्षणभंगुर का इतना ही मतलब है कि जब तुम मूढ़ होते हो तभी तुम्हें सुख मिलता है। और मूढ़ता तुम क्षण भर को ही सम्हाल सकते हो। और उसके लिए भी तुम्हारे शरीर की केमिस्ट्री का बदला जाना जरूरी है। सेक्स में भी बदल जाती है। खूब भोजन कर लेते हो तब भी बदल जाती है शरीर की रसायन। शराब पी लेते हो, एल एस डी ले लेते हो, तब भी बदल जाती है शरीर की रसायन। शरीर की रसायन बदल जाए तो तुम थोड़ी देर के लिए पशु हो पाते हो फिर से। तब यह अंधी, मूढ़ प्रकृति के तुम हिस्से हो जाते हो।
मूर्च्छित हो जाओ तो तुम मूढ़ जैसे हो जाते हो। सजग हो जाओ तो संतत्व उपलब्ध होता है। संतत्व में फिर कोई विचार नहीं है; यात्रा समाप्त हो गई। मूढ़ के पास भी कोई विचार नहीं है; यात्रा अभी शुरू ही नहीं हुई। मूढ़ एक तरह की शून्यता है, अभाव। संतत्व एक तरह की पूर्णता है। दोनों की एक खूबी है कि दोनों पूर्ण हैं। मूढ़ अपनी मूढ़ता में, संत अपनी पूर्णता में, पर दोनों पूर्ण हैं। इसलिए सांसारिक लोगों को अक्सर संत या तो विक्षिप्त मालूम पड़ते हैं या मूढ़ मालूम पड़ते हैं।
इस सूत्र को ख्याल में ले लो।
या तो तुम्हारी चेतना पूरी अंधकार में डूब जाए, तुम बिल्कुल अचेतन हो जाओ, तो तुम्हें सुख मिल सकेगा। या तुम्हारी पूरी चेतना चैतन्य हो जाए, सब अचेतनता मिट जाए, सब मूर्च्छा टूट जाए, सब बेहोशी गिर जाए, तुम एक जलती हुई ज्योति बन जाओ परम चैतन्य की, तब तुम आनंद में लीन हो सकोगे।
और ध्यान रखना, पीछे लौटने का कोई भी उपाय नहीं, कितनी ही कोशिश करो। पीछे लौटना ऐसा ही है जैसे कोई आदमी जमीन पर खड़े होकर छलांग लगाए; एक क्षण को हवा में उठ जाता है, दूसरे क्षण वापस जमीन पर आ जाता है। तुम्हारे चित्त की दशा से तुम पीछे नहीं जा सकते, प्रकृति पीछे जाने को मानती ही नहीं, जानती ही नहीं। जवान कैसे बच्चा होगा! बूढ़ा कैसे जवान होगा! पीछे लौटना नहीं होता, आगे ही जाना है। जीवन एक विकास है, जीवन एक सतत विकास है, परमात्मा पर पूर्णाहुति है।
"सब संसार कहता है, मेरा उपदेश मूढ़ता से मिलता-जुलता है। क्योंकि यह महान है, इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है। आल दि वर्ल्ड सेज, माइ टीचिंग ग्रेटली रिजेंबल्स फॉली। बिकाज इट इ.ज ग्रेट, देयरफोर इट रिजेंबल्स फॉली। और यदि मूढ़ता जैसा न लगता, तो यह कब का तुच्छ हो गया होता। इफ इट डिड नाट रिजेंबल फॉली, इट वुड हैव लांग एगो बिकम पेटी इनडीड।"
और यह महान है और सदा ही ऐसा लगता रहेगा। अगर यह महान न होता तो कभी का तुच्छ हो गया होता। इसे भी थोड़ा समझ लो। महान शिक्षाएं सदा ताजी क्यों रहती हैं? तुम उन्हें बासी नहीं कर पाते। बुद्ध को गए पच्चीस सौ साल हो

गए। लाओत्से को गए भी पच्चीस सौ साल हो गए। पच्चीस सौ साल समय जरा सी भी धूल उनके ऊपर नहीं जमा पाया है। पच्चीस सौ साल! न मालूम कितने सम्राट आए और गए, कितने युद्ध हुए, कितनी क्रांतियां हुईं, समाज बदला, जीवन के ढंग, सभ्यता, संस्कृति बदली। आज कुछ भी तो वैसा नहीं है जैसा लाओत्से के समय में था। लेकिन लाओत्से बिल्कुल वैसा का वैसा, ऐसा ताजा जैसे सुबह की ओस हो, अभी-अभी खिला फूल हो, सद्यःस्नात, अभी-अभी स्नान करके आया हो। समय धूल नहीं जमा पाता महान सिद्धांतों पर।
छोटे सिद्धांत सामयिक होते हैं, महान सिद्धांत शाश्वत होते हैं, सनातन होते हैं। छोटे-छोटे सिद्धांत आते हैं, चले जाते हैं। महान सिद्धांत न तो आते हैं और न जाते हैं। जो लाओत्से कह रहा है वह लाओत्से के पहले भी मौजूद था। लाओत्से ने फिर से उसे वाणी दी। जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह सदा से मौजूद रहा है। मैं उसे फिर से वाणी दे रहा हूं। न लाओत्से का इसमें कुछ है, न मेरा इसमें कुछ है।
महान शिक्षाएं शाश्वत हैं, सनातन हैं। उन्हें कोई लाया नहीं; उन्हें कोई ले जा नहीं सकता। हां, इतना ही हो सकता है, जब कोई व्यक्ति मौजूद होता है जो अपने हृदय को माध्यम बना दे, जो अपने प्राण को बांसुरी बना दे, तब वे शिक्षाएं फिर से अनुगूंज उठा देती हैं, फिर से गीत गुनगुनाने लगती हैं। शिक्षाएं सदा मौजूद रहती हैं; उस व्यक्ति की तलाश में रहती हैं जो अपने को खुला छोड़ दे और शिक्षाएं उससे बह जाएं।
धर्म किसी की बपौती नहीं है। इसलिए तो मैं कहता हूं, धर्म न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है; धर्म तो सनातन है। कभी क्राइस्ट के ओंठों से बांसुरी ने गीत गाया; इससे गीत ईसाई नहीं हो गया। गाने वाला वही एक है। कभी लाओत्से के ओंठों पर स्वर गूंजे; गीत ओंठों के कारण भिन्न नहीं हो गया। कभी महावीर, कभी बुद्ध, कभी कृष्ण। रूप बदलते हैं, अभिव्यक्ति बदल जाती है; लेकिन सार, आत्मा वही है।
इसे ख्याल में रखो। क्योंकि ईसाई बन जाना बहुत सरल है, धार्मिक बनना बहुत कठिन। हिंदू बनना एकदम आसान है, मुफ्त; कुछ करना ही नहीं पड़ता। संयोग की बात है हिंदू घर में पैदा हो गए, हिंदू बन गए। धार्मिक बनना बड़ी क्रांति है। और जो सस्ते से राजी हो जाता है वह बहुमूल्य से वंचित रह जाता है। सस्ते से राजी मत होना। हिंदू होना इतना आसान नहीं है, न मुसलमान होना इतना आसान है, न ईसाई होना इतना आसान है जितना तुमने समझ रखा है। पैदा हो गए ईसाई घर में ईसाई हो गए। पैदाइश से धर्म का क्या संबंध है? धर्म से तो संबंध जन्म और मृत्यु का है ही नहीं। धर्म तो वही है जिसका कोई जन्म नहीं हुआ और जिसकी कभी कोई मृत्यु नहीं होती। तुम अपने जन्म और मृत्यु से धर्म को क्यों जोड़ रहे हो?
धार्मिक होना व्यक्ति का बड़े सचेतन अवस्था में लिया गया निर्णय है; जन्म नहीं। तुम्हें खोजना होगा; तुम्हें उठना होगा अपनी तंद्रा से; तुम्हें जागना होगा। जाग कर ही तुम धार्मिक हो सकोगे। सोए-सोए तुम हिंदू बने रहो, मुसलमान बने रहो, ईसाई बने रहो; कुछ फर्क न पड़ेगा। मंदिर-मस्जिदों में लोग सो रहे हैं। संप्रदाय एक तरह की गहन निद्रा है। जागना हो तो तुम्हें सनातन की खोज करनी पड़ेगी।
हां, जिस दिन तुम सनातन को समझ लोगे उस दिन तुम्हें उस सनातन की प्रतिध्वनियां मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजाघरों में, गुरुद्वारों में, सब जगह सुनाई पड़ने लगेगी। संप्रदाय से कोई कभी धर्म तक नहीं पहुंचता, लेकिन जो धार्मिक हो जाता है उसकी समझ में सब संप्रदाय आ जाते हैं। शास्त्र से कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंचता, लेकिन जिसने सत्य का जरा सा भी स्वाद चख लिया, सभी शास्त्रों में वही स्वाद अनुभव होने लगता है। तुम्हें गवाही बनना है; धार्मिक होकर ही तुम गवाही बन सकोगे। धार्मिक होते ही सारे शास्त्र तुम्हारी गवाही पर सच होंगे, तुम कहोगे इसलिए सच होंगे। एक व्यक्ति भी धार्मिक हो जाए तो कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, लाओत्से, महावीर सभी उस व्यक्ति के माध्यम से फिर पुनः अवतरित हो जाते हैं। क्योंकि फिर से वह व्यक्ति उस अज्ञात को खींच कर तुम्हारी पृथ्वी के अंधकारपूर्ण कोने में ले आता है; फिर से उन स्वरों को गुंजा देता है जो खो गए मालूम पड़ते थे।

लाओत्से कहता है, "और यदि मूढ़ता जैसा नहीं लगता... ।"
तो महान सिद्धांत सदा ही मूढ़ता जैसे लगेंगे। और महान सिद्धांतों की यात्रा पर केवल वे ही लोग जा सकते हैं जिन्हें मूढ़ होने की हिम्मत है। तुम अगर बहुत बुद्धिमान हो तब तो क्षुद्र से ही तुम्हें संतुष्ट होना पड़ेगा। बहुत बुद्धिमानों से मूढ़ तुम कहीं भी न खोज सकोगे। ज्यादा बुद्धिमानी मत दिखलाना, अन्यथा बुद्धिमत्ता से चूक जाओगे। पहली बुद्धिमानी तो मूढ़ होने की हिम्मत है। अज्ञानी होने का साहस ज्ञान की तरफ पहला चरण है।
तुम किसको धोखा दे रहे हो?
तुमने थोड़ा कचरा इकट्ठा कर लिया है; कहीं से सुने शब्द, बाजार में सुनी बातें, मां-बाप के उपदेश, स्कूल के शिक्षकों की चर्चा, वह सब तुमने इकट्ठा कर ली है। लेकिन उसका कोई भी मूल्य नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्कूल में शिक्षक था। और जैसा कि स्कूल में शिक्षकों की आदत होती है, वह अखबार लेकर आंख बंद करके विश्राम करता था। लड़के उसे कई दफे सोया हुआ पकड़ लेते थे। आखिर लड़कों ने एक दफे कहा कि आप हमें तो सोने नहीं देते और आप खुद घुर्राटे लेते हैं! उसने कहा, मैं घुर्राटे नहीं लेता। तुम सब काम में लगे हो, उस बीच मैं स्वर्ग की यात्रा पर जाता हूं; वहां देवी-देवताओं से मिलता हूं, भगवान के दर्शन करता हूं; वहीं से तो ज्ञान लाता हूं तुम्हारे लिए रोज-रोज।
एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन बीच में जग गया; एक मक्खी उसके ऊपर भिनभिना रही थी। तो उसने देखा, एक सामने ही बैठा लड़का घुर्राटे ले रहा है। तो उसने जगाया। अब लड़के भी कुशल हो गए थे। लोग सीख लेते हैं, आखिर गुरु जब इतना ज्ञानी तो लड़के भी ज्ञानी हो गए। उस लड़के ने कहा, आप यह मत समझना कि मैं कोई सो रहा था; मैं स्वर्ग गया था। नसरुद्दीन थोड़ा चिंतित हुआ। उसने कहा कि वहां क्या देखा? उसने कहा, क्या देखा? मैंने सब देवी-देवताओं से पूछा कि मुल्ला नसरुद्दीन इधर आते हैं? उन्होंने कहा, हमने तो कभी नाम ही नहीं सुना।
न गुरु जानते हैं, न मां-बाप को कुछ पता है। कोई भी उस स्वर्ग में गए नहीं, कोई उस मोक्ष को जाना नहीं, और वे तुम्हें सिखा रहे हैं। हर बच्चे को वे सिखा रहे हैं। मैं छोटा था तो मुझे ले जाया जाता था मंदिर, कि झुको! मैं पूछता कि अगर आपको पता हो पक्का तो मैं झुकने को राजी हूं, मुझे आप पर भरोसा है। लेकिन मुझे शक है कि आपको पता नहीं है। मुझे लगता है कि आपके मां-बाप ने आपको झुकाया, आप मुझे झुका रहे हैं। अगर आपको पक्का पता हो तो मैं भरोसे में झुकने को राजी हूं। मेरे पिता ईमानदार आदमी हैं। उन्होंने मुझे कहा, तो फिर हम ही झुकते हैं, तुम मत झुको। क्योंकि हमारी तो आदत हो गई, और न झुकने से बड़ी अड़चन होगी। अब तुम अपना सम्हालो। मगर इस तरह के कठिन सवाल मत उठाओ।
मां-बाप से सीख लिया है; स्कूल में सीख लिया है; किताबों में लिखा है।
सब तरफ प्रचार हो रहा है, उससे सीख लिया है। उसको तुम ज्ञान समझ रहे हो! किसको धोखा दे रहे हो? खुद ही धोखा खा रहे हो।
एक पंडित एक गांव की यात्रा पर गया था। बड़ा पंडित था। एक छोटी सी घोड़ागाड़ी में गांव का किसान उसे ले जा रहा था। गांव में कोई यज्ञ होने को था। एक मक्खी घोड़े के आस-पास सिर के चक्कर काटती। और कभी-कभी पंडित के सिर के पास भी चक्कर काटती। पंडित बकवासी था, जैसे कि पंडित होते हैं। लंबा रास्ता था तो कुछ बातचीत चलाने के लिए उसने कहा उस देहाती से, क्यों रे--वह जो देहाती घोड़ागाड़ी को हांक रहा था--इस मक्खी का क्या नाम है? पंडितों की उत्सुकता नाम में ही रहती है। भगवान का क्या नाम है? मक्खी का क्या नाम है? उस गांव के गंवार ने कहा कि इसका नाम घुड़-मक्खी है। घुड़-मक्खी? घुड़-मक्खी का क्या मतलब होता है? उस गांव के गंवार ने कहा कि यह घोड़े, खच्चर, गधे, उनके सिर के आस-पास चक्कर... इसलिए इसका नाम घुड़-मक्खी है। उस पंडित ने कहा, क्या तेरा मतलब कि मैं घोड़ा हूं? उस ग्रामीण ने कहा कि नहीं, आप घोड़ा बिल्कुल नहीं हैं, और घोड़ा जैसे लगते भी नहीं। तो उस पंडित को और थोड़ी बेचैनी हुई; उसने कहा, इसका क्या मतलब? तू मुझे खच्चर समझता है? उसने कहा कि नहीं, खच्चर भी आप नहीं हैं। आपके चेहरे से साफ है, आप खच्चर भी नहीं

हैं। नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। तो पंडित ने कहा, अब तो एक ही विकल्प बचा, क्या तू मुझे गधा समझता है? उस ग्रामीण ने पंडित को नीचे से ऊपर तक कई बार देखा और कहा कि नहीं, गधा भी आप नहीं हैं, और गधे जैसे लगते भी नहीं हैं। लेकिन घुड़-मक्खी को धोखा देना मुश्किल है।
धोखा किसको दे रहे हो? घुड़-मक्खी तक को धोखा देना मुश्किल है, तुम परमात्मा को, अस्तित्व को धोखा देने चले हो। वह तुम्हारा पांडित्य दो कौड़ी का है; जितने जल्दी कचरेघर पर रख आओ उतना अच्छा है।
लाओत्से कहता है कि अगर मूढ़ों को ये परम सिद्धांत मूढ़ता जैसे न लगते
तो वे कभी के तुच्छ हो गए होते। उनकी ताजगी है कि आज भी लाओत्से को समझने में उतनी ही अड़चन है जितनी कभी पहले थी। लाओत्से अब भी उतना ही बेबूझ है जितना कभी था। और लाओत्से सदा बेबूझ रहेगा। क्योंकि वह जिस सत्य की बात कर रहा है, सत्य का स्वभाव बेबूझ है। सत्य का स्वभाव रहस्य है। जिन्होंने अपने अज्ञान को समझ लिया वे तो शायद उसे समझने को तैयार हो जाएं, लेकिन जिन्होंने अपने अज्ञान को ज्ञान समझा है, उनके लिए वह सदा मूढ़ता जैसा ही रहेगा।
लाओत्से कहता है, "मेरे तीन खजाने हैं।"
यह लाओत्से की शिक्षाओं का सार है, निचोड़ है, नवनीत है।
"मेरे तीन खजाने हैं; उन पर पहरा दो, और उन्हें सुरक्षित रखो। पहला है प्रेम; दूसरा है अति कभी नहीं; तीसरा है संसार में प्रथम कभी मत हो। आई हैव थ्री ट्रेजर्स; गार्ड देम एंड कीप देम सेफ। दि फर्स्ट इ.ज लव; दि सेकेंड इ.ज नेवर टू मच; दि थर्ड इ.ज नेवर बी दि फर्स्ट इन दि वर्ल्ड।"
समझें। प्रेम। लाओत्से प्रार्थना नहीं कहता। क्योंकि प्रार्थना तो तुम अभी कर ही न सकोगे। अभी तो तुमने प्रेम ही नहीं किया। अभी तो प्रार्थना बड़ी दूर की बात हो जाएगी। और अभी तुम प्रार्थना अगर करोगे, बिना प्रेम किए, तो झूठी हो जाएगी प्रार्थना। क्योंकि प्रार्थना का सारा सत्य तो प्रेम से आता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ऐसा नहीं है कोई उपाय कि प्रेम को बचा कर और हम सीधे प्रार्थना में चले जाएं?
तुम प्रार्थना में जाओगे कैसे प्रेम को बचा कर? प्रेम कोई सीढ़ी होती
तो हम छलांग भी लगा लेते। प्रेम सीढ़ी नहीं है, प्रार्थना का प्राण है। अगर प्रेम कोई सीढ़ी होती तो छलांग लगा कर एक दूसरी सीढ़ी पर सीधे चले जाते। लेकिन प्रेम सीढ़ी नहीं है, प्रेम प्रार्थना का सारभूत प्राण है। और जब प्रेम से ही तुम बचना चाहते हो तो तुम प्रार्थना से भी बचना चाहोगे। हालांकि प्रार्थना में धोखा देना आसान है, प्रेम में धोखा देना मुश्किल है। इसलिए लोग पूछते हैं कि प्रेम से बचने का कोई उपाय नहीं?
प्रार्थना तुम मंदिर में करते हो। लेकिन तुम प्रार्थना को सीखोगे कहां? उसका स्वाद तुम्हें कहां मिलेगा?
अगर तुमने जीवन में प्रेम जाना हो तो मंदिर के द्वार खुलेंगे। क्योंकि जीवन में जिसने प्रेम को जाना वह आज नहीं कल मंदिर के द्वार पर दस्तक देगा। क्योंकि जब प्रेम में इतना रस पाया तो प्रार्थना में कितना रस न मिलेगा! प्रेम ही तो खींचेगा। जब एक बूंद पाकर इतना मिल गया तो सागर में कितना न मिलेगा! प्रेम अगर बूंद है, बिंदु है, तो प्रार्थना सागर है, सिंधु है।
और प्रेम उपलब्ध है। और प्रेम के लिए कोई थियोलाजी, कोई धर्मशास्त्र
की जरूरत नहीं। और प्रेम के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं। प्रेम तो परमात्मा ने तुम्हें दिया ही है। परमात्मा की महान अनुकंपा है कि उसने तुम्हें सारभूत दिया है, जिसको अगर तुम खोल लो तो उसी से तुम्हारा मार्ग खुल जाएगा। तुम्हारे पास उपकरण है।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः लव! एंड थ्रू लव यू विल नो गॉड। बिकाज लव इ.ज गॉड। प्रेम करो! प्रेम से तुम परमात्मा को जानोगे। क्योंकि परमात्मा प्रेम है।
यहां बड़ी बारीक बात है। जीसस ने यह नहीं कहा, लव गॉड सो दैट यू कैन नो गॉड। जीसस ने यह नहीं कहा कि परमात्मा को प्रेम करो, ताकि तुम परमात्मा को

जान सको। जीसस ने कहा, लव! एंड यू विल नो गॉड। प्रेम करो! और तुम परमात्मा को जान लोगे। क्योंकि परमात्मा प्रेम है।
इसलिए थोड़ी देर को परमात्मा को भूल जाएं, प्रेम को ही समझ लें कि प्रेम क्या है। उसी समझ में धीरे-धीरे प्रार्थना भी प्रकट होनी शुरू हो जाती है। प्रेम की प्रगाढ़ता प्रार्थना बन जाती है।
प्रेम है दो व्यक्तियों का मिलन; प्रेम है ऐसा क्षण जहां दो व्यक्ति अपने अहंकार को अलग हटा देते हैं; जहां दो व्यक्ति अहंकार को बीच में लेकर नहीं मिलते, अहंकार को हटा कर मिलते हैं। प्रेम है समर्पण दो व्यक्तियों का, एक-दूसरे के प्रति। प्रेम है भरोसा। प्रेम है इस भांति की चेष्टा कि देह तो दो होंगी, लेकिन आत्मा एक होगी।
और प्रेम प्रशिक्षण है। अगर तुमने प्रेम ही नहीं किया--और तुमने हजार उपाय कर लिए हैं ताकि तुम प्रेम न कर सको। विवाह तुमने ईजाद कर लिया है प्रेम से बचने को। जैसे संप्रदाय ईजाद किए हैं धर्म से बचने को ऐसा विवाह ईजाद किया है प्रेम से बचने को। प्रेम को काट ही दिया है। इसीलिए तो होशियार कौमें, चालाक कौमें बच्चों को प्रेम नहीं करने देतीं; मां-बाप तय करते हैं। मां-बाप के तय करने में प्रेम को छोड़ कर और सभी चीजों का विचार किया जाता है। धन का, कुल का, पद का, प्रतिष्ठा का, सब बातों का विचार किया जाता है, सिर्फ प्रेम को छोड़ कर। और इसीलिए तो बाल-विवाह प्रचलित रहा है। क्योंकि अगर युवक हो जाएं तो फिर तुम प्रेम को बिना विचारे छोड़ न पाओगे; फिर प्रेम भीतर घुस जाएगा।
और प्रेम सारे अर्थशास्त्र को बिगाड़ देता है। प्रेम खतरनाक सूत्र है। क्योंकि प्रेम जानता नहीं कि कौन भंगी है, कौन ब्राह्मण है। प्रेम जानता नहीं कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है। प्रेम तो सिर्फ प्रेम की भाषा जानता है। और सब, कुछ नहीं जानता। प्रेम संप्रदाय नहीं जानता। इसलिए तो मैंने कहा कि विवाह और संप्रदाय समानांतर, साथ-साथ हैं। प्रेम गरीब और अमीर को नहीं जानता। अमीर गरीब के प्रेम में पड़ सकता है; गरीब सम्राट के प्रेम में पड़ सकता है। प्रेम बड़ा खतरनाक है; कहां ले जाएगा, कुछ पता नहीं। इसलिए प्रेम को काट दो। बाल-विवाह ईजाद किया गया, ताकि प्रेम का कोई उपाय ही न रहे। फिर जब बचपन से ही एक पुरुष और स्त्री पास रहते हैं, तो उनके बीच एक तरह का लगाव बन जाता है जो प्रेम नहीं है। वह लगाव वैसे ही है जैसे बहन और भाई के बीच होता है। साथ-साथ रहने से पैदा होता है। उस लगाव में प्रेम का न तो कोई तूफान है, न कोई आंधी है।
वह लगाव औपचारिक है, फार्मल है। वह तो किसी के भी साथ बहुत दिन तक रहो
तो एक लगाव बन जाता है, उसके साथ एक मैत्री बन जाती है, एक पसंद हो जाती है। वह न हो तो खालीपन लगता है; वह मौजूद न हो तो अड़चन मालूम होती है। लेकिन उसमें न तो कोई तूफान आता है, न तुम्हारे प्राणों में कभी ऐसा उन्मेष उठता है कि गीत झर जाएं; न कभी प्राणों में ऐसी कोई आंधी आती है, ऐसा कोई झंझावात, कि सब दीवारें कंप जाएं, आधार कंप जाएं, तुम्हारा घर डोलने लगे भूकंप में। नहीं, उसमें कोई एक्सटैसी, कोई समाधि का कोई क्षण नहीं आता। एक सामाजिक व्यवस्था चलती है, घर-गृहस्थी चलती है।
प्रेम तो बड़ा खतरनाक है, संन्यास जैसा खतरनाक है। विवाह समाज की संस्था है, प्रेम परमात्मा का आमंत्रण है। समाज ने अपनी व्यवस्था कर ली है, क्योंकि प्रेम के साथ समाज अड़चन में पड़ेगा। प्रेम कहां ले जाएगा, कुछ पता नहीं; किन रास्तों पर चलाएगा, कुछ पता नहीं; कहां भटकाएगा, कुछ पता नहीं। क्या परिणति होगी आखिर में, उसका कुछ पता नहीं। प्रेम का रास्ता नापा-जोखा नहीं है।
प्रेम से तुम्हें बचा दिया गया है। और प्रेम से बचने के कारण तुम्हारे जीवन में एक कमी है। क्योंकि प्रेम के बिना कोई भी तृप्त नहीं हो सकता। प्रेम के बिना तुम जीओगे, लेकिन मरे-मरे, जीओगे अपने को ढोते बोझ की तरह। प्रेम ही तृप्त कर सकता है। क्योंकि जहां दो व्यक्ति मिलते हैं और अहंकार छूटते हैं, उस दो व्यक्तियों के मिलने के क्षण में वहां एक तीसरा व्यक्ति भी मौजूद होता है, जिसका नाम परमात्मा है। क्योंकि जहां भी अहंकार छूटते हैं वहीं परमात्मा प्रवेश कर जाता है। वह उसका द्वार है।

अगर दो व्यक्तियों ने ठीक से प्रेम किया एक-दूसरे को... ।
ठीक से प्रेम करने का अर्थ है उन्होंने अहंकार हटा कर प्रेम किया, अहंकार के माध्यम से नहीं। क्योंकि जब अहंकार के माध्यम से प्रेम होता है तब तुम दूसरे को प्रेम नहीं करते, तुम दूसरे के द्वारा अपने को ही प्रेम करते हो। तब तुम दूसरे की फिक्र नहीं कर रहे हो, दूसरे का शोषण कर रहे हो। तब दूसरे की हिफाजत नहीं है, दूसरे का उपयोग है। तब दूसरा एक उपकरण है, एक वस्तु है, व्यक्ति नहीं।
जब अहंकार बीच में होता है तो जीवंत व्यक्तियों को वस्तुओं में बदल देता है। पत्नी, पति वस्तुओं जैसे हो जाते हैं; एक-दूसरे का उपयोग कर रहे हैं। कोई पुलक नहीं है; कहीं कोई फूल नहीं खिलता; कहीं कोई सुगंध नहीं बिखरती। जहां भी कोई व्यक्ति अहंकार को बीच में ले आता है, वहां पजेशन, वहां मालकियत, परिग्रह, दूसरे पर दावा, कलह, संघर्ष, तरकीबें, चालाकी, सब राजनीति प्रविष्ट हो जाती है।
लेकिन जब कोई अहंकारों को हटा देता है, और दो व्यक्ति ऐसे मिल जाते हैं जैसे दो ज्योतियां करीब आकर अचानक एक हो जाएं, उस घड़ी में एक संध खुलती है इस जगत में जहां से परमात्मा झांकता है। प्रेम परमात्मा की पहली अनुभूति है।
लेकिन प्रेम वंचित कर दिया गया है। प्रेम रोक दिया गया है। प्रेम के रोक देने के कारण तुम सदा अतृप्त हो, बेचैन हो, परेशान हो। कुछ कम, कुछ कम मालूम पड़ता है; कुछ कमी, कोई अभाव। यह भी साफ नहीं कि किस चीज का अभाव है, क्या चाहिए। धन भी है, धन भी इकट्ठा कर लेते हो, फिर भी अभाव। पद भी है, प्रतिष्ठा मिल जाती है, फिर भी अभाव। और यह भी तुम्हें साफ नहीं कि अभाव किस बात का। जैसे एक प्यासा आदमी है, जिसको प्यास किसी तरकीब से भुला दी गई है। वह धन इकट्ठा कर लेता है, फिर भी अभाव। क्योंकि प्यास थी, पानी की जरूरत थी, धन की जरूरत न थी। फिर इस तरह के प्यासे लोग जिनको अपनी प्यास भूल गई है, और जिन्हें प्रेम का सूत्र खो गया है जिनके हाथ से, छीन लिया गया है, और झूठी संस्थाएं जिनके हाथ में दे दी गई हैं; प्रेम के काव्य की जगह जिनको विवाह का गणित पकड़ा दिया गया है; प्रेम के धर्म की जगह जिनके हाथ में प्रेम का अर्थशास्त्र, विवाह, जो ढो रहे हैं; ये लोग मंदिर-मस्जिदों में जाते हैं, घुटने टेकते हैं, प्रार्थना करते हैं।
इनका अभाव, इनको लगता है कि शायद प्रार्थना से पूरा हो जाए, शायद योग
से पूरा हो जाए, शायद ध्यान से पूरा हो जाए। और मैं तुमसे एक बात कह देना चाहता हूं कि धार्मिक पंडे-पुरोहित, मंदिर-मस्जिदों के अधिकारी, इस सत्य को बहुत पहले समझ गए कि अगर लोगों को प्रेम से वंचित कर दो तो ही मंदिरों और मस्जिदों में भीड़ रहेगी, अन्यथा नहीं। क्योंकि जब प्रेम न मिलेगा तब वे प्रार्थना मांगेंगे। अगर जगत में प्रेम अवतरित हो जाए, मंदिर-मस्जिद, पंडे-पुजारी अपने आप खो जाएं। तुम्हारा हृदय मंदिर हो जाएगा।
यह सबसे बड़ी खतरनाक साजिश है जो आदमी के साथ की गई है, कि उसका प्रेम
का सूत्र काट दिया गया है। तब वह बंधा हुआ अपने आप मंदिर आएगा ही। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, उसे मंदिर आना ही पड़ेगा। क्योंकि उसे लगेगा कि कुछ कम है जो संसार में पूरा नहीं होता, तो संसार के बाहर कहीं खोजें।
जिस दिन दुनिया में प्रेम परिपूर्ण रूप से मुक्त होगा, कोई प्रेम पर बाधा और अड़चन न होगी, और प्रेम स्वयं का निर्णय होगा--मां-बाप का नहीं, परिवार का नहीं, समाज का नहीं, किसी राजनीति का नहीं--जिस दिन प्रेम स्वयं का आविर्भाव होगा, जिस दिन भीतर का हृदय खिलेगा, उस दिन मंदिर-मस्जिदों से लोग अपने आप विदा हो जाएंगे। प्रेम का मंदिर काफी मंदिर है। फिर कोई और मंदिर की जरूरत नहीं है। और तब प्रार्थना उठेगी। जब प्रेम पकता है तो पके प्रेम से जो गंध उठती है वही प्रार्थना है।
जब दो व्यक्ति इतने लीन हो जाते हैं एक-दूसरे में कि एक हो जाते हैं,
तब उनको पहली दफा पता चलता है कि जब दो के एक हो जाने से इतनी अपरिसीम सुख की संभावना पैदा हुई है, तो काश हम अनंत के साथ एक हो जाएं! पहली दफा विचार उठता है कि जब एक के साथ खोकर, दो बूंद के मिलने से ऐसा महा सुख बरसा है, तो जब बूंद सागर से मिलती होगी, जब सागर बूंद से मिलता होगा, तब क्या घटता

होगा? प्रेम स्वाद देता है; प्रार्थना में जाने का बल देता है; प्रार्थना की तरफ पैर उठने की हिम्मत और साहस आता है।
लेकिन प्रेम से ही तुम बच रहे हो, तो तुम कायर हो गए हो, तुममें दुस्साहस रहा ही नहीं।
लाओत्से कहता है कि तीन खजाने हैं मेरे जो मैं तुम्हें देना चाहता हूं।
"पहला है प्रेम, दूसरा है अति कभी नहीं।"
लाओत्से परमात्मा की बात ही नहीं करता, प्रार्थना की बात ही नहीं करता। क्योंकि कहता है, बीज दे दिया, बाकी घटनाएं घटती रहेंगी। बीज को बो दिया, अंकुर निकलेगा अपने आप, तुम्हें कुछ करना नहीं। वृक्ष बड़ा होगा, घनी उसकी छाया होगी, फूल लगेंगे, फल आएंगे; यह सब अपने से होगा, तुम बीज की सम्हाल कर लेना। इसलिए प्रेम की बात की है, प्रार्थना की नहीं, परमात्मा की नहीं।
अनेकों को लगता है कि लाओत्से नास्तिक है।
लाओत्से महा आस्तिक है। और तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में जो बैठे हैं
वे सब नास्तिक हैं। उनकी साजिश गहन है, शड्यंत्र खतरनाक है। उन्होंने तुम्हारे जीवन को इस तरह से अवरुद्ध कर दिया है, इस तरह से काट दिया है; उन्होंने बीज को ही दग्ध कर दिया है। तब तुम जो भी करते हो सब झूठा-झूठा। ऐसी मेरी प्रतीति हैः जिस व्यक्ति का प्रेम झूठा, उसका पूरा जीवन झूठा होगा। क्योंकि प्रेम तक के संबंध में तुम सच्चे न हो सके तो अब तुम किस चीज के संबंध में सच्चे हो सकोगे? जब प्रेमी के साथ तुम सच्चे और प्रामाणिक न हो सके तो ग्राहक के साथ हो सकोगे? बाजार में, समाज में? जब निकटतम के साथ तुम झूठे हो, जब पत्नी को देख कर तुम मुस्कुराते हो क्योंकि मुस्कुराना चाहिए, जब तुम पिता के पैर दबाते हो क्योंकि दबाना चाहिए, जब तुम गुरु को देख कर खड़े हो जाते हो क्योंकि खड़ा होना चाहिए, तब सब खो गया। तुम्हारे जीवन में सब झूठ होगा अब। ये निकटतम बातें थीं जो हृदय के बहुत करीब थीं। ये झूठी हो गईं तो जो बहुत दूर हैं वे कैसे सच्ची होंगी?
प्रेम सच्चा हो तो तुम्हारे जीवन में सब तरफ सच्चाई आनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि प्रेम तुम्हें बड़ा करेगा, फैलाएगा। और धीरे-धीरे अगर तुमने एक व्यक्ति के प्रेम में रस पाया तो तुम औरों को भी प्रेम करने लगोगे। मनुष्यों को प्रेम करोगे--प्रेम की लहर बढ़ती जाएगी--पौधों को प्रेम करोगे, पत्थरों को प्रेम करोगे। अब सवाल यह नहीं है कि किसको प्रेम करना है, अब तुम एक राज समझ लोगे कि प्रेम करना आनंद है। किसको किया, यह सवाल नहीं है। अब तुम यह भूल ही जाओगे कि प्रेमी कौन है। नदी, झरने, पहाड़, पर्वत, सभी प्रेमी हो जाएंगे।
लेकिन जैसे झील में कोई पत्थर फेंकता है तो छोटा सा वर्तुल उठता है लहर का, फिर फैलता जाता, फैलता जाता, दूर तटों तक चला जाता है; ऐसे ही दो व्यक्ति जब प्रेम में पड़ते हैं तो पहला कंकड़ गिरता है झील में प्रेम की, फिर फैलता चला जाता है। फिर तुम परिवार को प्रेम करते हो, समाज को प्रेम करते हो, मनुष्यता को, पशुओं को, पौधों को, पक्षियों को, झरनों को, पहाड़ों को, फैलता चला जाता है। जिस दिन तुम्हारा प्रेम समस्त में व्याप्त हो जाता है, अचानक तुम पाते हो परमात्मा के सामने खड़े हो।
प्रेम पकता है तब सुवास उठती है प्रार्थना की। जब प्रार्थना परिपूर्ण होती है तो परमात्मा द्वार पर आ जाता है। तुम उसे न खोज पाओगे। तुम सिर्फ प्रेम कर लो; वह खुद चला आता है। तुम उसे खोजने जाओगे भी कहां? पता-ठिकाना भी तो मालूम नहीं।
और डर है कि उसे खोजने तुम गए तो तुम किसी साजिश के हिस्से न हो जाओ। क्योंकि काशी में, काबा में साजिश के अड्डे हैं। वहां तुम उलझ जाओगे। और वहां बैठे लोग तुम्हें समझाएंगे कि प्रेम पाप है, और छोड़ो प्रेम और प्रार्थना करो। वे बड़े कुशल लोग हैं। वे बड़ा गहरा खेल खेल रहे हैं। और उन्होंने इतने दिन से यह जहर तुम्हारे मन पर फेंका है कि तुमको भी उनकी बात जंचेगी कि बात तो ठीक ही है; प्रेम तो लगाव है, आसक्ति है।

प्रार्थना भी लगाव है और आसक्ति है। और परमात्मा परम आसक्ति है। क्योंकि जीवन जुड़ा है। यहां हम अलग-थलग नहीं हैं; यहां हम सब संयुक्त हैं, इकट्ठे हैं। यहां तुम्हारा होना और मेरा होना दो लहरों की तरह है; नीचे छिपा सागर एक है। और एक लहर दूसरी लहर से मिल रही है। मिलने की तैयारी प्रेम है; मिल जाने का अनुभव तत्क्षण प्रार्थना में उठा देता है। और जब प्रार्थना पूर्ण होती है, आंख तुम खोलते हो, द्वार पर पाते हो परमात्मा खड़ा है। वह सदा से खड़ा था। तुम तैयार न थे, तुम्हारी तैयारी चाहिए।
तो लाओत्से कहता है, पहला सूत्र प्रेम, पहला खजाना प्रेम। दूसरा है अति कभी नहीं।
यह भी बड़ा समझ लेना है। क्योंकि मनुष्य का मन अतियों में जीता है, एक्सट्रीम्स में। या तो तुम एक तरह की अति करते हो या दूसरे तरह की।
अभी कुछ दिन पहले की बात है। एक युवक इंग्लैंड से आया। वह उपवास में भरोसा करता है। उपवास को उसने अपनी साधना बना रखा है। शरीर दीन-हीन हो गया है। ऊर्जा क्षीण हो गई है। तो मैं उसे समझाया कि अगर मरना ही हो तो बात अलग, मजे से करो उपवास। लेकिन जीवन ऐसे न चलेगा। और ऊर्जा अगर इतनी क्षीण है तो तुम ध्यान कैसे करोगे? क्योंकि ऊर्जा तो चाहिए ही। और ध्यान के लिए तो बहुत ऊर्जा चाहिए। क्योंकि वह कोई छोटी-मोटी घटना नहीं है। तुम इतनी बड़ी क्रांति की तैयारी कर रहे हो तो बड़ा ईंधन चाहिए। अगर तुमने सब राख कर डालने का तय किया है तो एकाध चिनगारी से काम न चलेगा; दावानल, विराट लपटें चाहिए। ध्यान की यात्रा पर निकले हो; अगर थके-मांदे तुम यात्रा के पहले ही हो तो कदम कैसे उठाओगे?
कठिन था उसे समझना, फिर भी उसने समझने की कोशिश की। तीसरे दिन वह आया
और उसने कहा, आपने मुसीबत में डाल दिया। मैं बहुत ज्यादा खा गया। अब मेरे पेट में दर्द है और मैं बड़ी मुसीबत में पड़ा हूं।
उपवासी, अगर उपवास छुड़ाओ, ज्यादा खा लेगा। असल में, ज्यादा खाने वाले लोग ही उपवास करते हैं। उन दोनों में संबंध है। जहां-जहां ज्यादा भोजन उपलब्ध हो जाता है वहां-वहां उपवास का संप्रदाय प्रचलित हो जाता है। अभी अमरीका में बड़े जोर से चल रहा है, उपवास करो! हर चीज के लिए उपवास कारगर है। बीमारी है तो उपवास, किसी स्त्री को सुंदर होना है तो उपवास, शरीर को सुडौल बनाना है तो उपवास, स्वस्थ बनाना है तो उपवास; सबके लिए उपवास। अमरीका इस समय ज्यादा भोजन की अवस्था में है। ऐसी दशा भारत में भी आई थी; उसी वक्त जैन पैदा हुए। आज से पच्चीस सौ साल पहले भारत ऐसे ही समृद्ध था जैसा अमरीका। बड़ा धन-धान्य था। बड़ा सुख था। लोग कहते हैं, दूध-दही की नदियां बहती थीं। खूब था भोजन करने को, और लोगों ने खूब भोजन किया होगा। तत्क्षण उपवास महत्वपूर्ण हो गया।
यह तुमने कभी ख्याल किया कि जब गरीब आदमी का धार्मिक दिन आता है तो वह भोज करता है, और जब अमीर आदमी का धार्मिक दिन आता है तो वह उपवास करता है। बड़े मजे की बात है! लेकिन सीधा है, गणित तो साफ है। मुसलमान गरीब हैं, साल भर तो खींच-तान कर चलता है। हिंदू गरीब हैं, तो किसी तरह गुजारते हैं दिन। लेकिन जब उत्सव का दिन आ जाता है, दिवाली आ गई, तो गरीब आदमी भी मिष्ठान्न खरीद लाता है। लक्ष्मी की पूजा का दिन आ गया, कि जन्माष्टमी आ गई, कि कृष्ण का जन्म हो रहा है, तो अब यह तो उत्सव का क्षण हैः खाओ, पीओ, मौज करो। ईद आ गई, तो मित्रों को भी निमंत्रित करो। गरीब हैं मुसलमान, कपड़े रोज तो बदल नहीं सकते, पर ईद के दिन नये कपड़े पहन कर निकल आते हैं। धार्मिक दिन उत्सव का दिन है।
लेकिन जैन का उत्सव का दिन आए तो वह पर्यूषण के व्रत रखता है। क्योंकि साल भर तो उत्सव चल ही रहा है, साल भर तो अति भोजन चल ही रहा है, तो अब धार्मिक दिन को कुछ तो भिन्न बनाना चाहिए। तो वह भूखा मरता है। और भूखा मरने से साल भर में जो स्वाद खो गया था वह फिर लौट आता है।
तो पर्यूषण के दिनों में जैन भोजन तो नहीं करते, भोजन की कल्पना, फैंटेसी, खूब सोचते हैं कि दस दिन कब पूरे हो जाएं। बस एक ही प्रार्थना कि दस दिन कब पूरे हो जाएं। और दस दिन के बाद क्या-क्या करना है, क्या-क्या

खाना है, उसकी फेहरिस्त बनाते हैं। तो लाभ है इससे भी कि भोजन में फिर स्वाद लौट आता है। बस इतना ही लाभ है, और कोई लाभ नहीं है।
अति से जो बच जाए वही समझदार है। न तो उपवास, न अति भोजन; सम्यक आहार।
जितना शरीर के लिए जरूरी है, बस उतना। न इस तरफ ज्यादा, न उस तरफ ज्यादा।
क्योंकि दोनों हालतें रुग्णता की हैं। स्वास्थ्य मध्य बिंदु है।
स्वास्थ्य संतुलन है।
या तो लोग बहुत सोएंगे, या बिल्कुल नहीं सोएंगे। या तो कोई काम ज्यादा
कर लेंगे, पूरी जान लगा देंगे, और या फिर बिल्कुल छोड़ कर बैठ जाएंगे। नहीं, ऐसे न चलेगा। अति कितनी देर खींच सकते हो तुम? अति कभी जीवन की शैली नहीं बन सकती। कैसे बनाओगे अति को जीवन की शैली? अगर उपवास करोगे, कितने दिन जीओगे? अगर ज्यादा खाओगे, तो भी कितने दिन जीओगे? भूख भी मार डालती है; अति भोजन भी मार डालता है।
अगर जीवन का सार समझना है तो मध्य में कहीं, सम्यक, संतुलित, जितना जरूरी है बस उतना। नींद भी जितनी जरूरी है बस उतनी; भोजन भी उतना जितना जरूरी है; श्रम भी उतना जितना जरूरी है; विश्राम भी उतना जितना जरूरी है। और हर आदमी को खोजना है अपना संतुलन, क्योंकि इसके लिए कोई बंधी हुई कोटि और धारणा नहीं हो सकती। क्योंकि लोग अलग-अलग हैं।
अब बूढ़े आदमी मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, नींद नहीं आती। मैं पूछता हूं कि कितनी आती है? वे कहते हैं, बस मुश्किल से तीन-चार घंटे।
पर बूढ़े आदमी को तीन-चार घंटे पर्याप्त है। बच्चा पैदा होता है, बीस घंटे सोता है। मरते वक्त भी तुम्हें बीस घंटे सोने का इरादा है? जन्म के समय जरूरत है बीस घंटे की। क्योंकि बच्चे के शरीर में इतना काम चल रहा है कि अगर वह जागेगा तो काम में बाधा पड़ेगी। बच्चे के शरीर में निर्माण हो रहा है, उसे सोया रहना उचित है। अभी बढ़ रहा है बच्चा। गर्भ में तो चौबीस घंटे सोता है। क्योंकि उसका जरा सा भी जाग जाना, और बाधा पड़ेगी।
जब भी तुम्हारा शरीर थका होता है और निर्माण की जरूरत होती है तब नींद उपयोगी है। इसलिए तो चिकित्सक कहते हैं, अगर बीमारी हो और नींद न आए तो बीमारी से भी खतरनाक नींद का न आना है। पहले नींद लाओ, बीमारी की पीछे फिक्र करेंगे। क्योंकि आधी बीमारी तो नींद में ही ठीक हो जाएगी। तुम जब जागे रहते हो तो तुम बाधा डालते हो। और तुम्हारी ऊर्जा बाहर की तरफ बहती रहती है। जब तुम सो जाते हो, सारी ऊर्जा भीतर वर्तुलाकार घूमने लगती है। तो निर्माण होता है।
बूढ़ा आदमी तो मर रहा है। निर्माण तो कब का बंद हो चुका। अब तो चीजें टूट रही हैं। अब तो सेल नष्ट हो रहे हैं। अब तो जो भी मिट जाता है वह फिर नहीं बनता। तो उसकी नींद कम हो गई है। स्वाभाविक है। अब उसको नींद की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, कि वह सोचे कि हम जवान जब थे तो आठ घंटे सोते थे। तो तब तुम जवान थे, तुम नहीं सोते थे आठ घंटे, जवानी आठ घंटे सोती थी। तुम बच्चे थे, बीस घंटे सोते थे। तुम नहीं सोते थे, बचपना बीस घंटे सोता था।
और फिर हर व्यक्ति के जीवन में रोज बदलाहट होती है। तो व्यक्ति को सजग होकर संतुलन को सम्हालना चाहिए। जड़ नियम जो बना लेता है वह हमेशा असंतुलित हो जाएगा। क्योंकि तुम रोज बदल रहे हो। बचपन में एक नियम बना लिया; जवान हो गए, अब क्या करोगे? जवानी में एक नियम बना लिया; अब बूढ़े हो गए, अब क्या करोगे? नहीं, आदमी को सजग रह कर रोज-रोज संतुलन खोजना पड़ता है। जैसे तुमने कभी किसी नट को देखा हो रस्सी पर चलते। तो वह ऐसा थोड़े ही
कि एक दफा सम्हाल लिया संतुलन और चल पड़े; बस एक दफा पहले कदम पर सम्हाल लिया, चल पड़े। हर कदम पर सम्हालना होता है। क्योंकि हर कदम नया कदम है; हर यात्रा नयी यात्रा है। हर पल नया है, तुम्हारा पुराने पल का जो तुमने तय किया था वह नये पल में काम न आएगा। तो नट एक लकड़ी हाथ में लिए रहता है। अगर बाएं जरा ही ज्यादा झुकता है तो तत्क्षण दाएं लकड़ी को झुका देता है ताकि संतुलन हो जाए। दाएं जरा ही ज्यादा झुकने लगता है तो तत्क्षण बाएं झुक जाता है ताकि संतुलन हो जाए। बाएं और दाएं के बीच में प्रतिपल गत्यात्मक रूप से संतुलन को साधता है।

अतियों के बीच तुम्हें गत्यात्मक रूप से संतुलन साधना होगा। और जीवन
एक नट की ही यात्रा है। वहां दोनों तरफ खड्डे और खाई हैं। इधर गिरो तो खाई, उधर गिरो तो खड्ड। ठीक मध्य में खड्ग की धार की तरह बारीक है रास्ता। इसलिए लाओत्से कहता है, अति कभी नहीं; नेवर टू मच। किसी भी चीज का नहीं।
दूसरा कोई तुम्हारे लिए सिद्धांत तय नहीं कर सकता। अब विनोबा उठते हैं सुबह तीन बजे तो उनके आश्रम में सभी को सुबह तीन बजे उठना। अब यह पागलपन है। विनोबा बूढ़े हो गए। और उनको जमता रहा है तीन बजे उठना, क्योंकि वे आठ बजे सोने भी चले जाते हैं। उनके शरीर को रास आता है; ठीक है। वह उनके लिए नियम है। इसलिए उनके आश्रम में तुम हर आदमी को दिन भर जम्हाई लेते, आंखें बंद करे, परेशान पाओगे। ब्रह्ममुहूर्त में क्या उठे, पूरा दिन निद्रा का आक्रमण होता है।
एक आदमी मेरे पास आया। उसने स्वामी शिवानंद की किताबें पढ़ लीं। उसमें उन्होंने लिखा है कि चार घंटे से ज्यादा सोना तामस का लक्षण है। अब यह आदमी अभी मुश्किल से बत्तीस साल का था, जवान था। वह चार घंटे सोने लगा। जब तामस है तो तामस से तो छुटकारा पाना ही है। तो जब चार घंटे सोने लगा तो दिन भर तामस आने लगा। पहले सात घंटे सोता था तो सात घंटे तामस था। अब चौबीस घंटे तामस हो गया। जब उसने पाया कि यह तो तामस बढ़ता ही जा रहा है तो शिवानंद की किताबें और उसने गौर से देखीं कि गुरु इस संबंध में क्या कहते हैं? तो उन्होंने बताया कि अगर तामस न मिटता हो तो उसका मतलब कि तुम भोजन ज्यादा कर रहे हो। तो भोजन एक दफा कर दिया। नींद और कमजोरी--इन दो पंखों से वह परमात्मा की यात्रा करने लगे। चौबीस घंटे भूखे और भोजन का चिंतन, और चौबीस घंटे प्यासे नींद के और जम्हाइयां।
वे मेरे पास आए। मैंने उनसे कहा कि अब किताब खतम हो गई कि उसमें और कुछ लिखा है? कुछ और लिखा हो जल्दी कर लो, नहीं तुम खतम हो जाओगे। शिवानंद का शरीर देखा है? फोटो देखी? ये उपवासी मालूम पड़ते हैं? शिवानंद को चलाने के लिए दो आदमियों के हाथ कंधों पर रख कर उनको उठाना पड़ता था। पहले उनकी फोटो तो देखते, फिर किताब पढ़ते।
पर लोगों को कोई होश से जीने की कुछ नहीं है; कुछ भी पकड़ लेते हैं; कुछ
भी पकड़ लेते हैं। और शिवानंद की मृत्यु कैसे हुई? मस्तिष्क में रक्तस्राव से। स्टैलिन की हुई, समझ में आता है। शिवानंद की मस्तिष्क में रक्तस्राव से मृत्यु का मतलब है कि चित्त में बहुत तनाव, अशांति। स्टैलिन की हो, बिल्कुल मौजूं है बात, जमती है। राजनीतिज्ञ किसी और ढंग से मरे, चमत्कार है। लेकिन संन्यासी ऐसे मरे तो भी चमत्कार है।
होश रखो; सुनो, समझो, अपने जीवन को पहचानो, और अपने मार्ग एक-एक कदम आहिस्ता-आहिस्ता उठाओ। और ध्यान रखो कि अति न हो जाए।
तो मैंने उन सज्जन को कहा कि सात घंटे सोना शुरू करो।
अगर परमात्मा को ऐसा ख्याल होता कि तामस की बिल्कुल जरूरत ही नहीं तो तामस उसने बनाया ही न होता। विश्राम की जरूरत है, तामस में कुछ निंदा योग्य नहीं है। निंदा योग्य तभी है जब तामस में अति हो जाए। अब कोई दिन भर ही सोने लगे तो फिर निंदा योग्य है। लेकिन निंदा तामस के कारण नहीं है, निंदा अति के कारण है। अन्यथा तामस की भी जरूरत है, क्योंकि तामस विश्राम का सूत्र है। राजस श्रम का सूत्र है तो तामस विश्राम का सूत्र है। और दोनों संतुलित हों तो तुम्हारे जीवन में सत्व की ज्योति जलेगी। त्रिकोण, ट्रायंगल समझ लो। नीचे के दो कोण तामस और राजस, और ऊपर का उठा हुआ कोण सत्व। जब दोनों संतुलित हो जाते हैं, तब तुम्हारे भीतर संतुलन के माध्यम से धीरे-धीरे सत्व का स्वर आना शुरू होता है। सत्व का अर्थ है परम संतुलन, अल्टीमेट बैलेंस। इसलिए लाओत्से कहता है, संसार में अति कभी नहीं।
"और तीसरा, संसार में प्रथम कभी मत होना।"
वही दौड़ लोगों को परमात्मा से वंचित करवा देती है।
ऐसा हुआ कि एक राजनीतिज्ञ मित्र के साथ मैं एक यात्रा पर था। वही कार ड्राइव कर रहे थे। जाते थे हम जबलपुर से इलाहाबाद की तरफ। बीच में एक जगह मुझे ऐसा लगा कि रास्ता कुछ गलत पकड़ लिया है। मील के पत्थर देखे तो हम जा

रहे थे छतरपुर की तरफ। वह तो अलग रास्ता है। मैंने उनसे कहा, क्या कर रहे हो तुम, भूल गए? उन्होंने कहा, भूला नहीं हूं। एक आदमी कार उनके आगे निकाल ले गया। और वह जा रहा है छतरपुर। और जब तक वे उसकी कार को पीछे न कर दें, अब इलाहाबाद नहीं जा सकते। दो घंटे लगे। आखिर उसको पीछे करके रहे। जब उसको पीछे कर दिया तब उन्हें शांति मिली।
दो घंटे में लौट आए, क्योंकि इलाहाबाद जाना एकदम जरूरी था। लेकिन जिंदगी में ऐसा मामला नहीं है। रास्ते इतने साफ नहीं हैं कि तुम छतरपुर गए कि इलाहाबाद गए; जिंदगी में रास्ते बहुत जटिल हैं। और जिंदगी में रास्ते ऐसे हैं कि उन पर वापस नहीं लौटा जा सकता; गए तो गए। और तुम सब यही करते रहे हो।
एक आदमी के पास तुमने देखी कि कार है; अब तुम्हारे पास भी होनी चाहिए।
अब तुम एक दौड़ में लग गए। तुम भूल ही गए कि कार की तुम्हारी जरूरत थी? या इसके पास है इसलिए जरूरत पैदा हो गई! अब तुम अपना सारा जीवन दांव पर लगा कर पहले एक कार... । तब तक कोई ने बड़ा मकान बना लिया। अब यह कैसे हो सकता है कि तुम और छोटे मकान में रह जाओ। अब तुम बड़ा मकान बनाने लगे। तब तक कोई किसी फिल्म अभिनेत्री से शादी करके आ गया। रास्ता चलता ही जाता है। और लोगों को तुम्हें पीछे करना है।
आखिर में तुम पाते हो कि लोग पीछे हुए कि नहीं हुए, तुम बरबाद हो गए। जहां तुम्हें जाना था, जो तुम्हारी नियति थी, वहां तो तुम पहुंच ही न पाए। हर किसी ने तुम्हें लुभा लिया। और हर किसी ने तुम्हारे रास्ते में विघ्न खड़ा कर दिया। और हर किसी ने तुम्हें धक्का दे दिया। और हर किसी ने तुम्हें रास्ता सुझा दिया।
तुम्हारी कोई नियति है। तुम ऐसे ही अर्थहीन नहीं हो यहां, तुम कुछ होने को हो। तुम्हारे जीवन से कुछ फलित होने को है। तुम्हारी कोई पूर्णाहुति है। तुम्हारे भीतर चेतना किसी मार्ग पर जा रही है। कितनी विघ्न-बाधाएं तुम खड़ी कर रहे हो! तो मार्ग तो छूट ही जाता है; कुछ और होने में लग जाते हो।
लाओत्से इसलिए तीसरा खजाना देता है। वह कहता है, जीवन में कभी तुम प्रथम होने की चिंता मत करना।
"दि थर्ड इ.ज, नेवर बी दि फर्स्ट इन दि वर्ल्ड।"
कोशिश ही मत करना। अगर तुमने इसे जीवन की गहनतम आस्था बना लिया कि मैं किसी की प्रतिस्पर्धा में नहीं हूं, और किसी के साथ मेरी महत्वाकांक्षा की कोई दौड़ नहीं चल रही है, तो ही तुम अपनी नियति को उपलब्ध हो पाओगे। अन्यथा मुश्किल है। चार अरब आदमी हैं चारों तरफ। इसमें बड़ी धक्का-मुक्की है। और हरेक अपने-अपने ढंग से अपने काम में लगा है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मस्जिद गया। रमजान के दिन थे और सारे मुसलमान गांव के इकट्ठे थे। जब सब घुटने टेक कर नमाज पढ़ने को बैठे तो मुल्ला नसरुद्दीन का अंगरखा पीछे से थोड़ा उठा था, पाजामे का नाड़ा दिखाई पड़ रहा था। तो पीछे के आदमी ने, अच्छा नहीं लगता, एक झटका मार कर उसका अंगरखा ठीक कर दिया। उसके आगे वाले आदमी का अंगरखा ठीक ही था; एक झटका उसने मारा। तो उस आगे वाले आदमी ने पूछा कि क्यों भई, क्या बात है? उसने कहा, मुझसे मत पूछो, उसने शुरू किया है, पीछे वाले ने। हम तो सिर्फ अनुकरण कर रहे हैं। राज क्या है, हमें पता नहीं। मगर कुछ न कुछ होगा; नहीं तो वह आदमी करता ही क्यों?
हर जगह तुम डांवाडोल किए जा रहे हो। कोई भी तुम्हें कुछ भी समझाए जा रहा है। चारों तरफ से हजारों प्रवाह तुम्हारे मन पर पड़ रहे हैं। सब तुम्हें अपनी तरफ खींच रहे हैं। यह बड़ा बाजार है। कई दुकानदार हैं। वे सब तुम्हें बुला रहे हैं कि यहां आ जाओ! तुम अगर सम्हले न तो तुम इस बाजार में खो जाओगे। अनेकों खो गए हैं। सम्हलो! अपनी जरूरत पहचानो, उसे पूरा करो। अपनी आवश्यकता पहचानो, उसे पूरा करो। लेकिन दूसरे की प्रतिस्पर्धा में नहीं, क्योंकि दूसरे की प्रतिस्पर्धा तुम्हें गलत मार्ग पर ले जाएगी। अपने को पहचान कर, इस भरे बाजार से अपने को बचा कर निकल जाना है। और बचाने

का सूत्र एक ही हो सकता है कि तुम पहले होने की आकांक्षा छोड़ दो। तुम अंतिम होने को राजी हो जाओ तो ही तुम अपनी नियति को पा सकोगे।
जीसस ने कहा है, जो प्रथम हैं इस संसार में वे मेरे राज्य में अंतिम खड़े होंगे, और जो अंतिम हैं वे प्रथम।
अंत में खड़ा होना एक बड़ा राज है। क्योंकि जो अंत में खड़ा है वह प्रतिस्पर्धा में उत्सुक नहीं होता। जो अंत में खड़े होने को राजी है, दुनिया उसे परेशान भी नहीं करती। उसकी कोई टांग नहीं खींचता। वे पहले ही से अंत में खड़े हैं। और कहां गिराओगे? आखिरी जगह बैठे हैं। अब यहां से और कहां भगाओगे?
कहते हैं, लाओत्से कहीं भी जाता तो सभा होती तो वह पीछे, आखिर में, जहां जूते उतारे जाते हैं, वहीं बैठता। किसी ने उससे पूछा कि लाओत्से, तुम यहां क्यों बैठे हो?
उसने कहा कि यहां से कोई कभी भगाता नहीं। क्योंकि हमने बड़ी फजीहत होते देखी है लोगों की जो प्रथम बैठते हैं। सिंहासनों पर जो बैठते हैं, उनकी टांग तो हमेशा कोई न कोई खींच ही रहा है। सिंहासन पर बैठे नहीं कि टांग खींचने वाले तैयार हुए। वे पहले ही से तैयार थे। तुम उनको धक्का- मुक्का देकर ही तो वहां पहुंच गए हो। जो तुमने किया है वही वे तुम्हारे साथ करना चाह रहे हैं।
एक ही राज है इस जगत में शांति से जीने का और अपनी नियति पूरी कर लेने का, उस अर्थ को उपलब्ध हो जाने का जिसके लिए परमात्मा ने तुम्हें जन्म दिया, वह काव्य तुमसे फूट जाए, वह गीत तुम गा लो, वह नृत्य तुमसे पूरा हो सके, एक ही रास्ता है। और वह तीसरा खजाना है लाओत्से का कि तुम महत्वाकांक्षा छोड़ दो, तुम प्रतिस्पर्धा छोड़ दो। तुम अपना जीवन जीओ। तुम दूसरे के जीवन का अनुकरण क्यों करते हो? दूसरे को जाने दो जहां जाता हो। वह उसकी मौज है। उसका रास्ता होगा। तुम उसके पीछे क्यों हो जाते हो?
किसी को मकान बनाने का राज है, बनाने दो। तुम अगर अपने झोपड़े में प्रसन्न हो तो तुम व्यर्थ की दौड़ में क्यों पड़ जाते हो? क्योंकि दौड़ समय लेगी, शक्ति लेगी, जीवन लेगी। और जो तुम पा लोगे उससे तुम्हें कभी तृप्ति न मिलेगी, क्योंकि वह तुम्हारी कभी चाह ही न थी। इसीलिए तो इतनी अतृप्ति है। नहीं मिलती तो तकलीफ है; मिल जाए तो तुम पाते हो कोई सार नहीं, क्योंकि तुम्हारी वह चाह ही न थी।
समझ लो कि एक आदमी बांसुरी बजा रहा है। बड़ी अच्छी बजा रहा है; लोग प्रशंसा कर रहे हैं।
तुम्हें प्रशंसा पकड़ जाती है। तुम्हें गुदगुदी शुरू होती है। तुम्हारा अहंकार कहता है कि यह इससे अच्छी बजा कर बता देंगे। यह तो ठीक है कि शायद कोशिश करो तो बजा भी लोगे इससे अच्छी। लेकिन अगर बांसुरी बजाना तुम्हारे जीवन का हिस्सा ही न था, तो जिस दिन तुम अच्छी भी बजा लोगे उस दिन भी तुम पाओगे कि कुछ पाया नहीं, समय व्यर्थ गया।
कभी नकल में पत पड़ो। प्रतिस्पर्धा नकल में ले जाती है। प्रतिस्पर्धा अनुकरण में ले जाती है। तब तुम अपने स्वभाव से वंचित हो जाते हो, च्युत हो जाते हो। महत्वाकांक्षी व्यक्ति हमेशा स्वभाव से च्युत होता रहता है; भटकता रहता है सब जगह, सिर्फ अपने को छोड़ कर। अपने घर नहीं आता, और सभी घरों पर दस्तक लगाता है। और आखिर में पाता है कि बिना घर पहुंचे कब्र करीब आ गई। तब न लौटने की सामर्थ्य रह जाती है, न समय रह जाता है।
और जब तक तुम अपनी नियति पूरी न कर लो--यह जीवन का आधारभूत नियम है--तुम वापस बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्कर में फेंके जाओगे। तुम यहां कुछ उत्तीर्ण करने को हो; यहां तुम कुछ अतिक्रमण करने के लिए भेजे गए हो; कुछ जानने, सीखने, कुछ प्रौढ़ होने को। तुम प्रौढ़ हो जाओगे तो ही उठा लिए जाओगे। जीसस ने कहा है कि जैसे कोई मछुआ जाल फेंकता ऐसा परमात्मा रोज जाल फेंकता है। मछुआ मछलियां पकड़ लेता है; जो योग्य हैं उन्हें चुन लेता है, बाकी को वापस सागर में डाल देता है। ऐसा ही परमात्मा जाल फेंकता है। बहुत पकड़े जाते हैं; बहुत कम चुने जाते हैं। केवल वे ही चुने जाते हैं जिनकी

नियति पूरी हो गई, जिन्होंने अपने जीवन का सौरभ पा लिया, जिनका फूल खिल गया।
मंदिर में तुम फूल चढ़ाने जाते हो; तुम्हें पता है उसका अर्थ क्या होता है? ये बाहर के फूल चढ़ाने से उसका कोई लेना-देना नहीं। तुम खिल जाओ, फूल बन जाओ; वह तुम्हारी नियति की परिपूर्णता का प्रतीक है। तभी तुम मंदिर की वेदी पर स्वीकार हो सकोगे।
"प्रेम के जरिए आदमी अभय को उपलब्ध होता है। अति नहीं करने से आदमी के पास आरक्षित शक्ति का अतिरेक होता है। और संसार में प्रथम होने की धृष्टता नहीं करने से आदमी अपनी प्रतिभा का विकास कर सकता है और उसे प्रौढ़ बना सकता है। थ्रू लव वन हैज नो फियर। थ्रू नाट डूइंग टू मच वन हैज एंप्लीट्यूड ऑफ रिजर्व पावर। थ्रू नाट प्रिज्यूमिंग टु बी दि फर्स्ट इन दि वर्ल्ड वन कैन डेवलप वंस टैलेंट एंड लेट इट मैच्योर।"
और प्रौढ़ होकर ही तुम स्वीकार किए जा सकोगे। तुम्हारी अर्चना का दीप कच्चा रहा तो परमात्मा के मंदिर में प्रवेश न पा सकेगा। तुम जो होने को भेजे गए हो तुम अगर वही हो सके, बस, तुम उठा लिए जाओगे, चुन लिए जाओगे। और जरूरी नहीं है कि तुम पिकासो जैसे बड़े चित्रकार हो जाओ तब तुम चुने जाओ। जरूरी नहीं है कि तुम कालिदास जैसे कवि हो जाओ, तब चुने जाओ। यह सवाल ही नहीं है। तुम अगर जूते भी सीते हो, और अगर जूते सीने में भी तुमने अपना पूरा तन-प्राण, अपनी पूरी ऊर्जा संलग्न कर दी है, और अगर जूता सीना भी तुम्हारा प्रेम और प्रार्थना बन गई है, और जूते सीने को भी तुमने परम सौभाग्य की तरह स्वीकार कर लिया है, किसी निराशा में नहीं... ।
ऐसा हुआ कि अब्राहम लिंकन जब प्रेसिडेंट बना अमरीका का तो लोगों को बहुत अच्छा नहीं लगा। क्योंकि वह कुलीन घर का न था, गरीब घर का था। असल में, एक चमार का लड़का था। तो लोगों को बड़ी बेचैनी थी कि एक चमार और प्रेसिडेंट हो गया! जिस दिन पहले दिन उसने शपथ ली और अपना पहला वक्तव्य दिया सिनेट में, एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि महानुभाव लिंकन, यह मत भूल जाना कि तुम्हारे बाप मेरे बाप के जूते सीया करते थे।
सारी सिनेट हंसी व्यंग्य से, लेकिन लिंकन ने जो उत्तर दिया वह बड़ा महत्वपूर्ण था। लिंकन ने कहा कि मैं समझ नहीं पाता कि इस बात को आज क्यों उठाया गया, लेकिन मैं धन्यवाद देता हूं कि यह बात उठाई गई। क्योंकि इस क्षण में मैं अपने पिता को शायद भूल जाता, याद न कर पाता, तुमने याद दिला दी। और जहां तक मैं समझता हूं, मैं उतना अच्छा प्रेसिडेंट न हो सकूंगा, जितने अच्छे मेरे पिता चमार थे।
और असली गणित तो वही है। प्रेसिडेंट और चमार थोड़े ही चुने जाएंगे। कितने अच्छे! कितने कुशल!
और लिंकन ने कहा कि जहां तक मुझे याद है, तुम्हारे पिता की तरफ से मेरे पिता के जूतों के संबंध में कोई शिकायत कभी नहीं आई। वे कुशल थे, अदभुत थे। और उन्होंने चमार होने में अपनी समग्रता को पा लिया था। वे आनंदित थे। मैं इतना अच्छा प्रेसिडेंट न हो पाऊंगा।
आखिरी हिसाब में, तुमने क्या किया, यह नहीं पूछा जाएगा। तुमने कैसे किया! आखिरी हिसाब में, तुमने बहुत धन इकट्ठा किया, बहुत बड़े मकान बनाए, कि बड़े चित्र बनाए, कि मूर्तियां गढ़ीं, यह नहीं पूछा जाएगा। तुमने जो भी किया, क्या उससे तुम तृप्ति पा सके? जो भी किया, क्या तुम संतुष्ट लौटे हो? जो व्यक्ति संतुष्ट लौटता है परमात्मा की तरफ वही उसके हृदय में विराजमान हो जाता है। जहां हो जैसे हो, अपनी नियति खोजो। दूसरे को भूल जाओ। दूसरे से कुछ प्रयोजन नहीं है।
"प्रेम से आदमी अभय को उपलब्ध होता है।"
और जब तक तुम प्रेम को उपलब्ध न होओगे अभय भी उपलब्ध न होगा। प्रेम के बिना तो आदमी कंपता ही रहता है भय से। क्यों? क्योंकि प्रेम के बिना जीवन में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; प्रेम के अनुभव से ही अमृत की पहली झलक आती है। फिर अभय आ जाता है।
अति न करने से मनुष्य के पास शक्ति संयोजित होती है; अपूर्व शक्ति इकट्ठी हो जाती है। क्योंकि वह गंवाता नहीं; न दाईं तरफ, न बाईं तरफ। न वह

लेफ्टिस्ट होता है, न राइटिस्ट; वह गंवाता ही नहीं है। वह अपनी शक्ति को बचाता है। उसके पास इतनी ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है कि ऊर्जा का परिमाणात्मक बल गुणात्मक क्रांति कर देता है। जैसे सौ डिग्री तक पानी को गरम करो, पानी भाप बन जाता है। निन्यानबे तक करो, नहीं बनता; अट्ठानबे तक, नहीं। निन्यानबे तक भी नहीं बनता। एक डिग्री का फासला है, लेकिन अभी भी नहीं बनता। एक डिग्री और, तत्क्षण पानी की यात्रा बदल गई। पानी नीचे बहता था, भाप ऊपर उठने लगी। आयाम अलग हो गया। पानी दिखाई पड़ता था, भाप अदृश्य होने लगी। आयाम बदल गया।
एक ऊर्जा का संगठन चाहिए भीतर। एक स्रोत चाहिए, अदम्य, भरपूर। उस ऊर्जा के होने मात्र से ही, उसकी बढ़ती हुई उठता हुआ तल, उसका बढ़ता हुआ संग्रह तुम्हारे भीतर गुणात्मक परिवर्तन ले आता है। विज्ञान एक सिद्धांत को मानता है। और वह सिद्धांत यह है दैट एवरी क्वालिटेटिव चेंज इ.ज थ्रू क्वांटिटेटिव चेंज। सब परिवर्तन, सब क्रांतियां, परिमाण के आधिक्य से गुणात्मक क्रांतियों में रूपांतरित हो जाती हैं। वही चीज निन्यानबे डिग्री पर पानी थी। वही सौ डिग्री पर भाप बन जाती है।
तुम परमात्मा को पाने चले हो; बड़ी ऊर्जा चाहिए होगी। बड़ी यात्रा है। तुम्हारे पंख बड़े सबल चाहिए। तुम बीच में चुक न जाओ। संयम! संयम का अर्थ है अति से बच जाना।
तुम्हारे तो संयमी भी अतिवादी हैं। तुम मेरे संयम का अर्थ समझ लेना। तुम तो उनको संयमी कहते हो जो अतिवादी हैं। घर छोड़ दिया, पत्नी को छोड़ कर भाग गए, धन नहीं छूते, उपवास करते हैं, सिर के बल खड़े हैं, कांटों पर लेटे हैं; उनको तुम कहते हो, कैसा संयमी आदमी!
यह संयमी नहीं है। यह तुम्हारा ही रोग है, उलटा खड़ा हो गया। शीर्षासन
कर रहा है, बस। यह तुम्हीं हो उलटे खड़े। संयमी आदमी तो मध्य में होता है। संयमी आदमी में अति की कठोरता नहीं होती, मध्य का माधुर्य होता है। संयमी आदमी प्रफुल्ल होता है; न उदास, न विक्षिप्त रूप से हंसता हुआ; प्रफुल्ल, एक सहज प्रफुल्लता होती है। एक स्मित होता है संयमी आदमी के जीवन में, एक मुस्कुराहट होती है, और एक माधुर्य होता है।
तुम्हारे संयमी तो बड़े कठोर हैं। इतनी कठोरता मध्य में है ही नहीं। तुम जैसे धन के पीछे लगे हो, वे धन छोड़ने के पीछे लगे हैं। तुम जैसे स्त्रियों के पीछे भाग रहे हो, वे स्त्रियों को छोड़ कर भाग रहे हैं। लेकिन दोनों की गति समान है। दिशा अलग हो, अति समान है। तुम अगर दीवाने हो कि कैसे ज्यादा खा जाएं, वे दीवाने हैं कि कैसे और खाने में कमी कर दें। दोनों के मध्य में कहीं छिपा है संयम।
अति न करने से आदमी के पास शक्ति आरक्षित होती है, संयम उपलब्ध होता है। और संसार में प्रथम न होने की धृष्टता से, संसार में प्रथम होने के पागलपन से जो बच जाता है, वह शांत हो जाता है।
उसकी सब अशांति खो जाती है। और उस शांति में वह चुपचाप अपने भीतर की प्रौढ़ता की तरफ गतिमान होने लगता है। बाहर की दौड़ न रही, तो ऊर्जा अब भीतर की यात्रा पर निकल जाती है। वह शायद दूसरी मूर्तियां नहीं बनाता, लेकिन खुद की मूर्ति निर्मित होती है। शायद दुनिया उसे जान भी न पाए कि वह कब जीया और कब चला गया; शायद उसकी पगध्वनि भी न सुनाई पड़े। सभी बुद्ध जाने नहीं जाते, बहुत से बुद्ध तो चुपचाप विदा हो जाते हैं, पता भी नहीं चलता। क्योंकि तुम उसे पहचान भी न पाओगे। वह इतने आखिर में खड़ा था, इतने अंत में खड़ा था। उसका कोई भी दावा न था। जिसको झेन फकीर कहते हैं कि वह इतना अति साधारण हो गया कि उसे कोई पहचान भी नहीं पाता। पहचान के लिए भी तो पताकाएं चाहिए, झंडे चाहिए, शोरगुल चाहिए। जो व्यक्ति अंत में होने को राजी है, वह दुनिया के बाहर हो गया।
अगर तुम मुझसे पूछो तो इसे मैं संन्यास कहता हूं। हिमालय पर जाने से संन्यास नहीं होगा, क्योंकि वहां भी प्रतिस्पर्धा जारी रहेगी कि कोई शिवानंद, कोई अखंडानंद, कोई फलानंद, वे अभी तक आगे हैं; कि फलाना शंकराचार्य होकर मठ पर बैठ गया है, अभी हम वहां तक नहीं पहुंचे। वहां भी

राजनीति चलेगी। शंकराचार्य भी अदालतों में खड़े रहते हैं, मुकदमे लड़ते हैं कि असली शंकराचार्य कौन है।
तुम कहीं भी भाग जाओगे, उससे हल न होगा। अगर भागना ही है तो अंतिम होने में भाग जाओ। तुम जैसे हो अपने को वैसा स्वीकार कर लो। मत पड़ो प्रतिस्पर्धा में; मत करो दूसरे के साथ कोई दौड़। और तब तुम पाओगे, तुम्हारा सहज स्वभाव धीरे-धीरे विकसित होने लगा। तुम प्रौढ़ता को, मैच्योरिटी को, सघनता को, आंतरिक केंद्र को उपलब्ध हो सकोगे। जिसने बाहर की प्रतिस्पर्धा छोड़ दी उसकी अंतर्यात्रा शुरू हो जाती है।
ये तीन खजाने, लाओत्से कहता है, सम्हाल कर रखना। इन पर पहरा देना। ये बचाने योग्य हैं। और इनको जिसने बचा लिया उसने सब बचा लिया। इनको जिसने खो दिया वह भिखारी ही जीएगा और भिखारी ही मरेगा। तुमसे मैं यही कहता हूं, भिखारी मत बनना; भिखारी मत मरना; भिखारी बन कर मत जीना। तुम सम्राट होने को पैदा हुए हो। वह तुम्हारा स्वभावसिद्ध अधिकार है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ आठवां प्रवचन

प्रेम को सम्हाल लो, सब सम्हल जाएगा

Chapter 67 : Part 2

The Three Treasures

If one forsakes love and fearlessness,
Forsakes restraint and reserve power,
Forsakes following behind and rushes in front,
He is doomed!
For love is victorious in attack,
And invulnerable in defense.
Heaven arms with love
Those it would not see destroyed.

अध्याय 67: खंड 2

तीन खजाने

यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे,
कोई मिताचार और आरक्षित शक्ति को छोड़ दे,
कोई पीछे चलना छोड़ कर आगे दौड़ जाए,
तो उसका विनाश सुनिश्चित है।
क्योंकि प्रेम आक्रमण में जीतता है, और सुरक्षा में वह अभेद्य है।
जिन्हें वह नष्ट होने से बचाना चाहता है,
स्वर्ग उन्हें प्रेम के कवच से सुसज्जित करता है।

प्रेम आत्मा का भोजन है। प्रेम आत्मा में छिपी परमात्मा की ऊर्जा है।
प्रेम आत्मा में निहित परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है।
उसके बिना जो जीता है, भूखा ही जीता है। उसके बिना जो जीता है, वह क्षुधातुर ही जीता है। उसके बिना जो जीता है, उसका शरीर भला जीता हो, उसका मन भला जीता हो, उसकी आत्मा मरी-मरी ही रहती है। उसे आत्मा का कोई अनुभव भी नहीं होता। आत्मा उसके लिए केवल एक शब्द है--सुना गया, पढ़ा गया; लेकिन शब्द बिल्कुल अर्थहीन है। क्योंकि बिना प्रेम के कभी किसी ने जाना ही नहीं कि वह कौन है। बिना प्रेम के तो आदमी अपने से बाहर-बाहर ही भटकता है; अपने घर को उपलब्ध नहीं हो पाता।
भीतर आने का एक ही द्वार है, वह प्रेम है। जैसे शरीर को श्वास की जरूरत
है प्रतिपल; श्वास न मिले तो शरीर का जीवन से संबंध टूट जाता है। श्वास सेतु है। उससे हमारा शरीर अस्तित्व से जुड़ा है। श्वास भी दिखाई तो पड़ती नहीं, सिर्फ उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं कि आदमी जीवित है। श्वास चली जाती है तब भी परिणाम ही दिखाई पड़ते हैं, श्वास का जाना तो दिखाई नहीं पड़ता। यह दिखाई पड़ता है कि आदमी मुर्दा है। प्रेम और भी गहरी श्वास है, और भी अदृश्य; वह आत्मा और परमात्मा के बीच जोड़ है। जैसे शरीर और अस्तित्व के बीच श्वास ने जोड़ा है तुम्हें, वैसे ही प्रेम की तरंगें जब बहती हैं तभी तुम परमात्मा से जुड़ते हो। उस जुड़ने में ही पहली बार तुम्हें अपने होने के यथार्थ का पता चलता है। इसलिए प्रेम से महत्वपूर्ण कोई दूसरा शब्द नहीं। प्रेम से गहरी दूसरी कोई अनुभूति नहीं।
प्रेम है क्या? और जो इतना महत्वपूर्ण है, उसे हम कैसे समझें?
प्रेम की कीमिया को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

तुम अपने चेहरे को भी पहचानते हो तो इसीलिए कि दर्पण में तुमने चेहरे
को देखा है। अन्यथा बताओ मुझे, कैसे अपना चेहरा पहचानते? अगर दर्पण में कभी चेहरा न देखा होता और कभी अनायास तुम्हारी तुमसे ही मुलाकात हो जाती, तो तुम पहचान न पाते। कैसे पहचानते? स्वयं को भी देखने के लिए एक दर्पण की जरूरत है।
प्रेम दूसरे की आंखों में अपने को देखना है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।
जब किसी की आंखें तुम्हारे लिए आतुरता से भरती हैं, कोई आंख तुम्हें ऐसे देखती है कि तुम पर सब कुछ न्योछावर कर दे, किसी आंख में तुम ऐसी झलक देखते हो कि तुम्हारे बिना उस आंख के भीतर छिपा हुआ जीवन एक वीरान हो जाएगा, तुम ही हरियाली हो, तुम ही हो वर्षा के मेघ; तुम्हारे बिना सब फूल सूख जाएंगे, तुम्हारे बिना बस रेगिस्तान रह जाएगा; जब किसी आंख में तुम अपने जीवन की ऐसी गरिमा को देखते हो, तब पहली बार तुम्हें पता चलता है कि तुम सार्थक हो। तुम कोई आकस्मिक संयोग नहीं हो इस पृथ्वी पर; तुम कोई दुर्घटना नहीं हो। तुम्हें पहली बार अर्थ का बोध होता है; तुम्हें पहली बार लगता है कि तुम इस विराट लीला में सार्थक हो, सप्रयोजन हो; इस विराट खेल में तुम्हारा भाग है; यह मंच तुम्हारे बिना अधूरी होगी; यहां तुम न होओगे तो कुछ कमी होगी; कम से कम एक हृदय तो तुम्हारे बिना रेगिस्तान रह जाएगा, कम से कम एक हृदय में तो तुम्हारे बिना सब काव्य खो जाएगा; फिर कोई वीणा न बजेगी। ऐसा एक व्यक्ति की आंखों में, उसके हृदय में झांक कर तुम्हें पहली बार तुम्हारे मूल्य का पता चलता है। अन्यथा तुम्हें कभी मूल्य का पता न चलेगा।
तुम कितना ही धन इकट्ठा कर लो, तुम व्यर्थ ही लगोगे। क्या सार है? तुम कितने ही बड़े पदों पर पहुंच जाओ, भीतर तुम जानते ही रहोगे कि खोखले हो और पदों पर तुम जबरदस्ती पहुंचते हो। इसलिए अगर तुम लोगों की आंखों में पदों पर से देखोगे तो तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे बिना वे कहीं ज्यादा आनंदित होंगे; तुम्हारे होने से ही उन्हें कष्ट है; तुम्हारे न होने से बड़ी शांति होगी। तुम्हारे पास धन हो और तुम लोगों की आंखों में देखो तो तुम्हें लगेगा कि तुम शत्रु हो; तुमने जैसे उनका कुछ छीन लिया है, जो तुम्हारे हटते ही उन्हें वापस मिल जाएगा।
प्रेम के अतिरिक्त तुम न केवल अपने को अकारण पाओगे, न केवल व्यर्थ पाओगे, बल्कि तुम हजारों आंखों में अनुभव करोगे कि तुम एक दुर्घटना हो, तुम्हारा होना एक अपशकुन है, कोई तुम्हारे कारण सौभाग्य से नहीं भरा है, तुम्हारे कारण सब तरफ दुर्भाग्य के चिह्न हैं। इन दुर्भाग्य के चिह्नों में, इन दुर्भाग्य की चीखती-पुकारती आवाजों के बीच तुम नर्क से घिर जाओगे। और अगर तुम्हें अपना जीवन नारकीय मालूम पड़ता है तो समझ लेना कि यही कारण है।
प्रेम में कोई उतरा कि स्वर्ग में उतरा। प्रेम के अतिरिक्त और सब स्वर्ग कल्पनाएं हैं, प्रतीक हैं। एक ही स्वर्ग है वास्तविक, और वह यह है कि तुम किसी के लिए इतने सार्थक हो उठो कि दूसरा अपना जीवन खोने को राजी हो जाए तुम्हारे लिए।
लेकिन इतने सार्थक तो तुम तभी हो सकोगे जब तुम दूसरे के लिए अपना जीवन खोने को राजी हो जाओ। प्रेम का अर्थ है जीवन से किसी बड़ी चीज को जान लेना, जिसके लिए जीवन भी गंवाया जा सकता है। जब तक जीवन तुम्हारे लिए सबसे बड़ी चीज है, तब तक तुम गरीब ही रहोगे। जीवन तो केवल अवसर है--जीवन से महत्तर को पा लेने का। जीवन तो केवल एक घड़ी है--अतिक्रमण के लिए; एक सीढ़ी है, जिससे तुम ऊपर उठ जाओ। जीवन मंदिर नहीं है, केवल मंदिर का द्वार है। द्वार से ही कोई कभी कैसे तृप्त हो सकेगा?
पर कैसे तुम जानोगे पहली झलक? पहली किरण कैसे उतरेगी तुम्हारे जीवन में जिससे तुम अनुभव कर पाओ कि तुम्हारे होने से कहीं कोई सौभाग्य फलित हुआ है?
यह थोड़ा सा बारीक है, नाजुक है, और एक-एक कदम सम्हाल कर रखना।
जब तुम किसी के प्रेम में उतर जाते हो--वह कोई भी हो, मित्र हो, मां हो, पति हो, पत्नी हो, प्रेयसी हो, प्रेमी हो, बच्चा हो, बेटा हो, तुम्हारी गाय हो, तुम्हारे बगीचे में खड़ा हुआ वृक्ष हो, तुम्हारे द्वार के पास पड़ी एक

चट्टान हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई भी हो--जहां भी प्रेम की रोशनी पड़ती है, उस प्रेम की रोशनी में दूसरी तरफ से प्रत्युत्तर आने शुरू हो जाते हैं। प्रेम की घड़ी में तुम अकेले नहीं रह जाते; कोई संगी है, कोई साथी है। और कोई तुम्हें इतना मूल्यवान समझता है कि तुम्हें अपना जीवन दे दे; तुम किसी को इतना मूल्यवान समझते हो कि अपना जीवन दे दो। जरूर तुमने कुछ पा लिया जो जीवन से बड़ा है, जिसके सामने जीवन गंवाने योग्य हो जाता है। प्रेम का स्वर तुम्हारे जीवन में उतर आया।
ऐसा दूसरे की आंखों से घूम कर, दूसरे के दर्पण से घूम कर ही तुम्हें अपनी पहली खबर मिलती है कि मैं कौन हूं। अन्यथा तुम राह के किनारे पड़े कंकड़-पत्थर हो। प्रेम के माध्यम से गुजर कर ही पहली दफे तुम्हें अपने हीरे होने का पता चलता है। और जब ऐसी प्रतीति होने लगती है कि तुम मूल्यवान हो, तो यह बड़े राज की बात है कि जितना तुम्हें एहसास होता है तुम मूल्यवान हो, उतने ही मूल्यवान तुम होने भी लगते हो। क्योंकि अंततः तो तुम परमात्मा हो; अंततः तो तुम इस सारे जीवन का निचोड़ हो; अंततः तो तुम्हारी चेतना नवनीत है सारे अस्तित्व का। लेकिन प्रेम से ही तुम्हें पहली खबर मिलेगी कि तुम यहां यूं ही नहीं फेंक दिए गए हो। संयोगवशात तुम नहीं हो। कोई नियति तुमसे पूरी हो रही है। अस्तित्व की तुमसे कुछ मांग है। अस्तित्व ने तुमसे कुछ चाहा है। अस्तित्व ने तुम्हें कोई चुनौती दी है। अस्तित्व ने तुम्हें यहां बनाया है ताकि तुम कुछ पूरा कर सको।
दुकान और बाजार काफी नहीं हैं; उन्हें कोई दूसरा भी कर लेगा। धन इकट्ठा करना जरूरी भला हो, पर्याप्त नहीं है; क्योंकि जब तुम मरोगे, वह सब पड़ा रह जाएगा। कुछ ऐसा भी कमा लेना जरूरी है जो मौत न मिटा सके। और मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम एकमात्र संपदा है जिसे मृत्यु नहीं मिटा सकती। क्यों? क्योंकि प्रेम की संपदा के लिए तुम जीवन का दान देने को तैयार हो। जिस संपदा के लिए तुम जीवन का दान देने को तैयार हो, वह जीवन से बड़ी है। जो जीवन से बड़ी है वह मृत्यु से भी बड़ी है; क्योंकि मृत्यु तो जीवन का ही हिस्सा है।
प्रेम के क्षण में ही तुम्हें जीवन और मृत्यु के पार होने का पहला अनुभव होता है। अगर इससे तुम वंचित रह गए, अगर तुम जान ही न पाए कि प्रेम क्या है, तो तुम अकारण ही आए, अकारण ही गए; तुमने जीवन से कुछ सीखा न। तुमने फूल तो बहुत देखे, लेकिन सुवास तुम न पा सके। तुमने घटनाएं तो बहुत देखीं, बहुत ऊहापोह से गुजरे, बड़ी आपाधापी में रहे, बड़ी यात्रा की, लेकिन कहीं पहुंच न सके। अंत की यात्रा में किसी मंदिर में निवास न हो पाया; तुम राह पर ही मरे; तुम राह के भिखारी ही रहे; कोई घर न मिला, कोई जगह न मिली जहां तुम शांत हो जाते, जहां तुम आनंदित हो जाते।
प्रेम एक विराम है संसार के लिए। प्रेम के क्षण में संसार खो जाता है। प्रेम के क्षण में न बाजार है, न गणित है, न तर्क है। प्रेम के क्षण में जैसे इस बड़े मरुस्थल में एक मरूद्यान बन जाता है, एक छोटा सा हरा-भरा सरोवर! चारों तरफ रेगिस्तान है; उसके मध्य में तुम एक सरोवर में लीन हो जाते हो। उस सरोवर से तुम्हें और बड़े सरोवरों की खबर मिलती है। उस हरित उद्यान से तुम्हें और बड़ी हरियालियों के इशारे मिलते हैं। उस थोड़े से विश्राम से तुम्हें परम विश्राम की याद आती है।
प्रेम प्रशिक्षण है प्रार्थना के लिए। और जिसके पास प्रेम है, उसका
भय खो जाता है। उसके पास डरने योग्य कुछ रहा ही नहीं। भयभीत तो तुम इसीलिए हो कि जीवन जा रहा है और संपदा तो तुमने कुछ कमाई नहीं। भयभीत तो तुम इसीलिए हो कि सांझ आने लगी, सूरज के ढलने का वक्त हुआ, पक्षी अपने घरों को लौटने लगे और तुम्हें अपने घर का पता भी नहीं है। भयभीत होकर तुम घबड़ा जाते हो। रात उतरने के करीब है! मौत आने लगी! और अभी तुम राह पर ही थे। अभी तुम कहीं भी पहुंचे न थे। इसलिए कंपता ही रहता है व्यक्ति, जिसके जीवन में प्रेम की छाया नहीं है। वह ऐसे ही कंपता है जैसे तूफान में वृक्ष के पत्ते कंपते हैं; या भयंकर उत्तुंग लहरें उठती हैं सागर की, छोटी सी नाव कंपती है। ऐसे ही तुम कंपते हो।

जीवन में बड़े तूफान हैं, बड़ी आंधियां हैं; और तुम्हारे पास प्रेम का लंगर भी नहीं है। नाव बड़ी छोटी है। जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण है। लहरें भयंकर हैं; और तुम्हारे पास जीवन से पार की कोई कुंजी नहीं; एक भी ऐसा अनुभव नहीं जहां तुम्हारे अंधकार में कोई किरण उतरी हो जो तुम्हारे अंधकार का हिस्सा न हो, जहां तुम्हारे हृदय में कोई वाद्य बजा हो जो तुमने न बजाया हो, जो तुम्हारे हाथों की कृति न हो, जो अनंत ने बजाया हो।
प्रेम की एक खूबी हैः तुम प्रेम कर नहीं सकते; हो जाए, हो जाए; घट जाए,
घट जाए। तुम इतना ही कर सकते हो कि बाधा न डालो; जब प्रेम घटता हो तो तुम भाग मत जाओ; जब प्रेम घटता हो तो तुम पीठ न कर लो; जब प्रेम घटता हो तो तुम आंख बंद न करो। तुम इतना ही कर सकते हो कि तुम बाधा न डालो। लेकिन प्रेम को करने के लिए तुम और क्या कर सकते हो? कुछ भी नहीं।
इसलिए प्रेम तुम्हारे हाथों का संगीत नहीं है; तुमसे विराट अपनी अंगुलियां तुम्हारे ऊपर रखता है। हां, तुम चाहो तो बजने से इनकार कर सकते हो; तुम चाहो तो अकड़ में रह सकते हो; तुम इतने अकड़ सकते हो कि अनंत की अंगुलियां तुम्हारे भीतर कोई स्वर पैदा न कर पाएं।
इसलिए तो हम कहते हैं कि प्रेम पागलपन है, अंधापन है; क्योंकि पता नहीं, कहां से आता है, कहां ले जाता है। अनजान की पुकार है। अचानक तुम्हें लगता है, एक क्षण में--कोई तर्कयुक्त गणित नहीं बिठाना पड़ता कि इस व्यक्ति को मैं प्रेम करूं, कुछ सोचना नहीं पड़ता कि इस व्यक्ति में क्या-क्या प्रेम योग्य है, कुछ हिसाब नहीं लगाना पड़ता--अचानक एक क्षण में, समय का व्यवधान भी नहीं पड़ता, तुम पाते हो कि तुम प्रेम में हो, किसी व्यक्ति ने तुम्हारे हृदय को बजा दिया, किसी ने सोए तार छेड़ दिए। वह प्रेमी हो सकता है, वह गुरु हो सकता है, वह मित्र हो सकता है; लेकिन प्रेम का स्वर एक है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम क्या नाता-रिश्ता बनाते हो; लेकिन अचानक घटना घटती है। यह मूल्यवान है समझ लेना। क्योंकि जिसे तुम घटाते हो, वह तुमसे बड़ा न होगा; जिसे तुम कर सकते हो, वह तुमसे छोटा होगा; जो तुमसे किया जाएगा, वह तुम्हारे जीवन के पार ले जाने वाला नहीं हो सकता।
इसलिए तो बहुत बार मुझे ऐसा लगता है कि ध्यान से भी गहन है प्रेम; क्योंकि ध्यान तो तुम शुरू करते हो, कुछ तुम करते हो। ऐसे भी ध्यान हैं जिन्हें तुम शुरू नहीं करते, अगर तुम्हारी समझ हो तो तुम उन्हें पहचान लोगे। लेकिन वैसे ध्यान तुम प्रेम के बिना न पहचान पाओगे। एक बार तुमने अपने को बह जाने दिया अनंत के हाथों में; एक बार तुमने सिर्फ रोका नहीं; जहां ले जाना चाहती थीं हवाएं, तुम्हें ले गईं; जिस तरफ उड़ाना चाहती थीं, तुम उड़ गए; तुमने यह न कहा कि मुझे तो पूरब जाना है और यह तो पश्चिम की यात्रा हो रही है; तुमने यह न कहा कि मेरी तो ये अपेक्षाएं हैं, ये शर्तें हैं; तुमने न कोई शर्त रखी, न कोई बाधा खड़ी की, तुम चुपचाप समर्पित बह गए; अगर एक बार तुमने प्रेम में बहना जान लिया तो तुम्हें ध्यान की कुंजी भी हाथ लग जाएगी। क्योंकि वह भी करने की बात नहीं है, वह भी बह जाने की बात है। कर-करके तुम क्या करोगे? तुम्हीं तो करोगे। तुम्हारे अज्ञान से ही तो तुम्हारा कृत्य उठेगा। तुम्हारे रोग से ही तो उठेगा तुम्हारा ध्यान। तुम्हारा ध्यान भी रुग्ण होगा। तुम्हारा ध्यान भी अंधकारपूर्ण होगा। तुमसे ऊपर से कुछ आए तो ही प्रकाश हो सकता है। और तुमसे ऊपर से कुछ आए, इसकी तैयारी कैसे होगी?
ध्यान दूर है, अगर प्रेम पास नहीं। अगर प्रेम पास है, तो ध्यान भी बहुत पास है। इसलिए लाओत्से, जीसस, कृष्ण प्रेम पर बड़ी प्रगाढ़ता से जोर देते हैं। वह जोर महत्वपूर्ण है।
क्या घटता है प्रेम के क्षण में?
दो व्यक्ति इतने करीब आ जाते हैं कि उन्हें ऐसा नहीं लगता कि हम दो हैं; अद्वैत घटता है प्रेम के क्षण में। ऐसा भी नहीं लगता कि हम एक हो गए, और ऐसा भी नहीं लगता कि हम दो हैं।
कबीर जो कहते हैं, कि एक कहूं तो है नहीं। कहना ठीक नहीं है; गलत होगा; क्योंकि एक है नहीं। दो कहूं तो गारी। और दो कह दूं तो गाली हो जाती है।

प्रेम के क्षण में तुम्हें पहली दफा पता चलता है--दो भी हो, एक भी हो।
एक कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि दो हो; दो कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रेम का स्वर ऐसा बज रहा है कि जैसे एक ही तरंग के दो छोर हों। ये दोनों हृदयों के वाद्य अलग-अलग नहीं बज रहे हैं; एक आर्केस्ट्रा है, एक साथ बज रहे हैं। उनमें एक लयबद्धता है। एक के बीच दो का होना अनुभव होता है; दो के बीच एक का होना अनुभव होता है। प्रेम पहेली हो जाती है; और परम पहेली की पहली खबर मिलती है। और जब तुम एक बार किसी को करीब आने देते हो, इतने करीब कि खतरा हो सकता है... ।
हम साधारणतः जीवन में करीब लोगों को आने नहीं देते। क्योंकि करीब का मतलब है दूसरे के हाथों में अपने को छोड़ना।
पश्चिम में वैज्ञानिकों ने अभी नयी-नयी एक खोज की है, उसको वे टेरीटोरियल इम्पेरेटिव कहते हैं। वे कहते हैं, हर पशु अपने आस-पास एक सुरक्षित क्षेत्र बना लेता है, जिसके भीतर किसी को प्रवेश नहीं करने देता। तुम भी गौर कर सकते हो। एक बंदर बैठा हो, तुम धीरे-धीरे उसके पास जाना शुरू करो, बहुत धीरे। एक सीमा तक वह बिल्कुल बेपरवाह रहेगा। समझो तुम दस फीट करीब आ गए, वह बेपरवाह है, उसे कोई मतलब नहीं तुमसे। लेकिन दस फीट के भीतर तुमने एक कदम रखा कि वह सजग हो जाएगाः अब खतरा है। तुम इतने करीब आ रहे हो; कौन जाने, दोस्त हो कि दुश्मन हो। वैज्ञानिक कहते हैं, हर पशु की सीमा-रेखा है। उसके भीतर आने पर वह सजग हो जाता है और लड़ने को तत्पर हो जाता है।
वैसी ही सीमा-रेखा मनुष्य की भी है। समझो, एक स्त्री रास्ते पर खड़ी है। तुम उसके पास जाते हो। एक सीमा तक वह कोई फिक्र न लेगी। समझो कि तुम पांच फीट दूर हो, वह कोई फिक्र नहीं कर रही। लेकिन तुम तीन फीट दूर आ गए, अचानक वह सजग हो जाती है। अब वह तैयार है। अब तुम उसकी सीमा-रेखा के भीतर आ रहे हो, जहां खतरा हो सकता है, जहां डर है। एक स्त्री को तुम देखते रहो; वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन सेकेंड तक वह बेचैन नहीं होती, तीन सेकेंड के बाद तुमको वह लुच्चा समझेगी। तीन सेकेंड सीमा-रेखा है। इतनी देर तक ठीक है। जीवन में देखना इतना तो होगा। लेकिन तीन सेकेंड के बाद अब तुम सीमा के बाहर जा रहे हो, अब तुम सज्जनता की, शिष्टाचार की, सभ्यता की सीमा तोड़ रहे हो।
लुच्चा का मतलब तुम जानते हो? मतलब होता हैः घूर कर देखने वाला। और कोई मतलब नहीं होता। लुच्चा शब्द का ही मतलब होता हैः घूर कर देखना। लुच्चा शब्द आता है लोचन से, आंख से। उसी से आता है आलोचक; वह भी घूर-घूर कर देखता है। तो लुच्चा और आलोचक में कोई बहुत फर्क नहीं है। शब्द की दृष्टि से दोनों एक ही धातु से आते हैं। कब आदमी लुच्चा हो जाता है, एक सीमा है। वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया है बड़े गौर से। तो वे कहते हैं कि अगर एक स्त्री तुम्हें एक बार देखे तो कोई बात नहीं; अगर लौट कर देखे तो खतरा है। तुम एक होटल में गए और एक स्त्री बैठ कर खाना खा रही है; उसने एक दफा तुम्हें देखा, यह ठीक है। एक दफा कोई भी देखता हैः कौन आ रहा है? लेकिन अगर वह दुबारा देखे तो तुम सावधान हो जाना; वह तुम में उत्सुक है। खतरे की सीमा आ गई।
इसलिए जो लोग बहुत सी स्त्रियों के साथ खेल करते रहे हों, उन्हें बहुत
सी बातों का पता चल जाता है, वे बहुत से आंतरिक कोड पहचानने लगते हैं। वे उस स्त्री के पास कभी भी न जाएंगे, जिसने एक ही दफा देखा। जिसने दुबारा देखा, उस स्त्री में निमंत्रण है; उसने कुछ कहा नहीं है, लेकिन स्त्री ने निमंत्रण दे दिया है, बड़ा अनजान। शायद उसे भी पता न हो, अचेतन में निमंत्रण दे दिया है। यह स्त्री राजी है; इससे आगे संबंध बढ़ाया जा सकता है।
अगर तुम एक स्त्री के पास खड़े हो, अगर वह तुममें उत्सुक नहीं है तो उसकी कमर पीछे की तरफ झुकी रहेगी, जैसे वह तुमसे दूर होना चाहती है। लेकिन अगर वह तुममें उत्सुक है तो वह आगे की तरफ झुकी रहेगी, जैसे वह तुम्हारे पास आना चाहती हो। उसे भी पता नहीं है, लेकिन वह निमंत्रण दे रही है; वह तुम्हें कह रही है कि पास आने को मैं तैयार हूं।

खतरा है। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति पास आता है, तुम्हारे एकांत पर दूसरे का कब्जा होना शुरू हो जाता है। तुम्हारी प्राइवेसी समाप्त हुई, तुम्हारी निजता अब निजता न रही; एक दूसरा आदमी प्रविष्ट हुआ। अब तुम्हारा बुरा भी वह जान लेगा, भला भी जान लेगा। एक फासला रखना जरूरी है; तो हम भले बने रहते हैं, बुरे को हम छिपाए रखते हैं। निकट जो आता है उसके सामने बुरा भी प्रकट हो जाएगा; तुम अपनी सहज यथार्थता में जाहिर हो जाओगे। तुम डरते हो; वह दिखाने योग्य रूप नहीं तुम्हारा, वह बताने योग्य नहीं है।
तो जैसे घरों में तुम्हारा बैठकखाना होता है, जिसको तुम सजा कर रखते हो, ऐसे तुम्हारे व्यक्तित्व का बैठकखाना है, जिसको तुम सजा कर रखते हो। वहां तक मेहमानों को तुम ले जाते हो, उससे भीतर नहीं। क्योंकि उसके भीतर तुम्हारे जीवन का यथार्थ है। अपने जीवन के यथार्थ में जिसने बहुत कुछ छिपाया हो--रुग्ण, क्रोध, घृणा, हिंसा, वैमनस्य, द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर--वह किसी को पास न आने देगा। वह भयभीत होगा कि अगर कोई पास आया तो यह सब जान लेगा; वह जीवन के अंतःगृह में प्रवेश कर जाएगा। और वहां तो तुम खुद भी जाने से डरते हो, दूसरे को ले जाने की तो बात दूर। तुम खुद भी वहां पीठ किए रहते हो। तुम खुद भी देखने से डरते हो, क्योंकि इतना कूड़ा-कचरा, इतनी गंदगी, इतनी दुर्गंध वहां है।
प्रेम के लिए एक ही बाधा है कि तुम अपने से डरे हुए हो और शायद तुम दूसरे को पास न आने दो। तो हर आदमी ने कवच बना लिया है अपने चारों तरफ, वह उसके भीतर जीता है। उस कवच के बाहर वह हाथ निकालता है--लोहे के कवच के बाहर--हाथ मिला कर फिर हाथ को भीतर ले लेता है। उसी कवच के भीतर से थोड़ा सा मुस्कुराता है; उसी कवच के भीतर से देखता है।
लेकिन कवच के बाहर जब तक कोई न आए तब तक प्रेम नहीं घट सकता। प्रेम का अर्थ हैः दूसरे को अपना इतना बना लेना कि कुछ छिपाने को न रहे, दूसरे को अपना इतना मान लेना कि जैसे वह तुम ही हो, अब उससे छिपाना क्या! अगर तुम अपने प्रेमी से कुछ छिपाते हो तो अभी प्रेम में फासला है--कुछ भी हो वह छिपाना। अगर तुमने अपने प्रेमी के सामने सब खोल दिया है--सब, बेशर्त, कुछ भी छिपाया नहीं है--तो ही तुम्हारे जीवन में वह घटना घटेगी जिसको प्रेम कहते हैं।
नहीं तो तुम अपनी सुरक्षा तैयार किए हुए हो। प्रेमी से भी तुमने बहुत
सी बातें छिपा रखी हैं। और बड़े मजे की बात है, अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम अजनबियों से ऐसी बातें कह देते हो जो तुमने प्रेमियों से छिपा रखी हैं। ट्रेन में चलते हो, ऐसे ही ऐरा-गैरा कोई आदमी रास्ते में मिल जाता है, उससे तुम ऐसी बातें कह देते हो जो तुमने कभी अपनी मां से नहीं कहीं, अपने पिता से, अपनी पत्नी से नहीं कहीं। क्यों? क्योंकि अजनबी से कोई खतरा नहीं है, घड़ी भर बाद तुम अपने स्टेशन उतर जाओगे, वह कहीं और चला जाएगा। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन जिनसे चौबीस घंटे लेना-देना है उनसे तो छिपाना पड़ेगा; उनसे खतरा है।
यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अजनबियों के साथ लोग अपने जीवन के बड़े गहरे कन्फेशन कर देते हैं, लेकिन निकट के लोगों से छिपाते हैं। क्योंकि अजनबी न तुम्हारा नाम-धाम जानता है, न तुममें उत्सुक है। तुम कहते हो तो इसलिए सुन लेता है कि चलो ठीक है, सफर है, साथ बैठे हैं तो सुन लो। अन्यथा तुम छिपाए रहते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा पर जा रहा था। और जैसा कि पति जानते हैं, उसने अपनी पत्नी से कहा कि बहुत जरूरी काम है, तीन दिन में निपट जाएगा, ऐसी आशा करते हैं। काम-धंधे की बात है, न भी निपटे, ज्यादा समय भी लग जाए, तो मैं तुम्हें वहां से कार्ड डाल दूंगा कि कितनी देर और रुकना पड़ेगा। पत्नी ने कहा, तुम फिक्र मत करो। तुम्हारे कोट में से कार्ड निकाल कर मैंने पढ़ लिया है। वह मिल गया कार्ड कि तुम पंद्रह दिन के पहले लौटने वाले नहीं हो। और यह कोई धंधे की यात्रा नहीं है।
पति हैं, पत्नी हैं, मित्र हैं, पिता हैं, बेटे हैं, एक-दूसरे से बहुत कुछ छिपा रहे हैं। उसी छिपाने में प्रेम मर जाता है, क्योंकि प्रेम किसी

तरह की गुप्तता नहीं चाहता। प्रेम चाहता है प्रकटता, प्रेम चाहता है सहजता, प्रेम चाहता है खुला आकाश।
इसलिए तुम प्रेम को रोक सकते हो, ला नहीं सकते। ऐसे ही जैसे कोई अपना दरवाजा बंद कर ले; सूरज बाहर रहा आएगा, भीतर नहीं आ सकेगा। तुम कोई सूरज को भीतर थोड़े ही ला सकते हो; इतना ही कर सकते हो कि दरवाजा खोल दो; सूरज अगर है तो भीतर आ जाएगा। प्रेम को कोई पैदा नहीं कर सकता। प्रेम तो परमात्मा से अवतरित होता है। प्रेम तो परमात्मा की रोशनी है। तुम इतना ही कर सकते हो कि या तो दरवाजे बंद करके भीतर छिप रहो या दरवाजे खुले छोड़ दो ताकि प्रेम चला आए, जब भी चाहे चला आए।
लेकिन डर है, भय है। और दुष्टचक्र यह है कि जितना तुम भयभीत हो उतना ही प्रेम न आ सकेगा, दरवाजे तुम बंद रखोगे; और जितने तुम दरवाजे बंद रखोगे, उतने ही तुम भयभीत होते जाओगे। यह दुष्टचक्र है। इससे पार होना बड़ा मुश्किल मामला है। क्योंकि कहां से शुरू करें? जितना तुम अपने भीतर अपने को बंद रखोगे, प्रेम नहीं आ सकेगा; उतने ही ज्यादा तुम भयभीत होने लगोगे। क्योंकि प्रेम ही एकमात्र अभय है। प्रेम में ही तुम पहली दफा जानते हो, कोई मृत्यु नहीं है।
प्रेमी मर जाते हैं, प्रेम नहीं मरता। तो प्रेमी तो रूप थे, प्रेम ही
था जो रूपायित हुआ था। मैं नहीं रहूंगा, तुम नहीं रहोगे; लेकिन जो हम दोनों के बीच घट रहा है, वह बचेगा। वह घटता ही रहेगा। किनारे खो जाते हैं, सरिता बचती है। ज्ञानी-ज्ञाता खो जाता है, ज्ञान बचता है। प्रेमी-प्रेयसी खो जाती है, प्रेम बचता है। प्रेम ही अनेक-अनेक बार रूप लेता है प्रेमी के और प्रेयसी के, ज्ञाता के और ज्ञेय के।
परमात्मा जीवन की ऊर्जा है; वह बचती है। सब रूप बनते हैं, मिटते हैं। तुम भयभीत रहोगे ही जब तक तुमने प्रेम को नहीं जाना; क्योंकि प्रेम में ही तो पहली दफे तुम्हें पता लगेगाः आ जाए मृत्यु, कुछ भी मिटेगा नहीं; आज आना हो आज आ जाए, क्योंकि जो पाना था वह पा लिया। प्रेम का एक क्षण बिना प्रेम के जीए हजारों जीवनों से बड़ा है। प्रेम का एक क्षण अनंत है। अगर तुमने एक क्षण को भी प्रेम जान लिया तो तुम मौत से कह सकते हो, अब आ जाओ, अब कोई अड़चन नहीं है; जो होना था हो गया, जो पाना था पा लिया। और वह समाधि जान ली जो मृत्यु के पार है; अब तुम आ जाओ; अब तुम्हारे आने से कुछ भी मिटेगा नहीं। सिर्फ प्रेमी ही निश्चिंत मरता है; क्योंकि मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। उसने अपनी प्रतिमा भी देख ली है प्रेम-पात्र के द्वारा, जो अमृत की है; और उसने अपने प्रेम-पात्र की भी प्रतिमा देख ली है, जो अमृत की है। भीतर तो तुम्हारे अमृत है, मृत्यु तो बाहर-बाहर है। प्रेम तुम्हें मौका देगा कि तुम्हारा भीतर खिल जाए; तुम्हारा भीतर फूल बन जाए और तुम देख लो।
प्रेम अभय करता है।
अब कठिनाई है जो वह यह है कि तुम शुरू कहां से करो? भयभीत रहोगे, प्रेम
न हो सकेगा; प्रेम न होगा, और भयभीत होओगे; और भयभीत होओगे तो और तुम सुरक्षा कर लोगे, प्रेम के होने की और संभावना समाप्त हो जाएगी। कहां से शुरू करो?
साहस की जरूरत है; दुस्साहस की जरूरत है। भयभीत हो माना, फिर भी दरवाजा खोल दो। दरवाजा खोले बिना तुम अभय न हो सकोगे। इसलिए प्रतीक्षा मत करो कि जब अभय हो जाएंगे तब दरवाजा खोलेंगे; तब तो तुम कभी भी न खोल पाओगे। दरवाजा खोलो। कंपते हाथों से खोलो। कंपती छाती से खोलो। रोआं-रोआं भयभीत हो, लेकिन दरवाजा खोलो। इसलिए कहता हूं, दुस्साहस है। भय के बावजूद दरवाजा खोलना पड़ेगा। तुम यह अगर मांग रखोगे कि जब अभय हो जाऊंगा तब दरवाजा खोलूंगा, अभी तो बहुत भयभीत हूं, दरवाजा खोलने से पता नहीं कौन भीतर आ जाए! कैसी हवाएं, कैसे तूफान, कैसी आंधियां भीतर आ जाएं! अभी तो सुरक्षित हूं अपने घर में। तो सुरक्षा तुम्हारी कब्र बन जाएगी। फिर तुम दरवाजा कभी भी न खोल सकोगे।
छोटा बच्चा चलता है। वह यह नहीं कहता कि मैं तभी चलूंगा जब गिरने का
सब डर मिट जाए। छोटे बच्चे अगर ऐसा कहें तो दुनिया में कोई फिर कभी चल ही न

पाए। छोटे बच्चे बड़े दुस्साहसी होते हैं। छोटा बच्चा चलना शुरू कर देता है बिना भय के। और जानता है कि हाथ-पैर कंप रहे हैं, डगमगा रहा है, सहारे की जरूरत है, फिर भी छोटा बच्चा चाहता है, सहारा मत दो। मां सहारा देती है, छोटा बच्चा उसको छोड़ कर चलना चाहता है; क्योंकि सहारा अपमान है। और सहारे से कौन कब तक चलेगा? कितने दूर तक चलेगा? सहारा तो उधार है। दूसरे के सहारे पर कितनी देर टिका जा सकता है? छोटा बच्चा हाथ हिलाता है कि नहीं; वह अपनी तरफ से कोशिश करता है।
बड़ी महत्वपूर्ण घटना है छोटे बच्चे को चलते हुए देखना। उससे महत्वपूर्ण घटना जीवन में फिर दुबारा घटती ही नहीं, जब तक कि तुम आत्मा की यात्रा पर न निकलो। क्योंकि फिर एक नयी चाल शुरू होती है; अब वह शरीर की नहीं है, अब वह आत्मा की है। फिर तुम डगमगाते हो। छोटे बच्चे को देखो! उठाता है पैर, डरता है, सम्हालता है, कंप रहा है; फिर भी चलने की कोशिश करता है। वह यह नहीं कहता कि जब मैं चलना ठीक से कर सकूंगा, तभी चलूंगा। तो फिर ये पैर ठीक से चलेंगे कैसे? कब चलेंगे? छोटा बच्चा चलता है, गिरता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम भी नहीं गिरोगे। गिरोगे। क्योंकि कोई
भी एकदम से नहीं चल सकता। चलना एक कला है जो धीरे-धीरे आती है। बच्चा गिरेगा, घुटने टूट जाएंगे, खून निकलेगा। लेकिन इससे कुछ बाधा न पड़ेगी। इससे चुनौती मिलेगी, बच्चा और चलने की कोशिश करेगा। अगर बच्चा तुम जैसा बुद्धिमान हो और एक दफा घुटने टूट जाएं और बिस्तर पर लेट जाए, और कह दे कि बस हो गया, अब यह काम दुबारा नहीं करना। नहीं, घुटने टूटते हैं तो और आकर्षण बढ़ता है; रस आता है चुनौती से। बच्चा फिक्र नहीं करता घुटने टूटने की; फिर चलता है, फिर-फिर चलता है। बहुत बार गिरता है। कोई हिसाब है बच्चे के गिरने का? लेकिन एक दिन खड़ा हो जाता है। जिस दिन बच्चा खड़ा होता है अपने पैरों पर, उस दिन उसकी शान देखने जैसी है। कितना छोटा, कितना कमजोर, असहाय; फिर अपने पैर पर खड़ा है। उसकी शान का कोई मुकाबला नहीं।
बस वैसी शान एक दफा और आती है जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। फिर छोटा सा दीया ऐसी शान से जगमगाता है जैसे महा सूरजों को फीका कर देगा। वह बोधिवृक्ष के नीचे जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, उस क्षण सब सूरज फीके हो गए। उस दिन एक छोटी सी बूंद ने सागर को छोटा कर दिया। उस दिन यह सारा अस्तित्व, इतना बड़ा होकर भी, बुद्धत्व से छोटा हो गया। क्योंकि एक बच्चा फिर अपने पैरों पर खड़ा हो गया; एक बच्चा फिर प्रौढ़ हुआ। अस्तित्व ने बुद्ध के द्वारा फिर से प्रौढ़ता का रस पाया। फिर से बोध का आनंद!
तो कथाएं हैं कि सारा गगन गूंज उठा अनंत-अनंत वाद्यों से; देवता नाच उठे; देवता बुद्ध के चरणों में झुके। क्योंकि जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो सारा अस्तित्व समारोह से भर जाता है; क्योंकि सारा अस्तित्व मां जैसा है। जैसे मां, जिस दिन पहले दिन उसका बच्चा खड़ा हो जाता है, अपने बल चलने लगता है, जैसी प्रफुल्लता से भर जाती है, वैसी प्रफुल्लता फूल-फूल पर, पत्ती-पत्ती पर, कण-कण पर छा जाती है। ये तो कथाएं इसी की सूचक हैं। कोई देवता हैं कहीं? कि कोई वाद्य बजाता है? कि कहीं कोई ब्रह्मा हैं जो आकर बुद्ध के चरणों में झुक जाते हैं? नहीं, ये तो सूचक हैं; ये तो काव्य-प्रतीक हैं। लेकिन इन्होंने बड़ी बात कही है।
आत्मा के पैरों के बल तुम जब खड़े हो जाओगे; जब तुम अपने दीपक स्वयं बन जाओगे। बुद्ध ने कहा है, अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बन जाओ।
कहां से शुरू करो? माना कि भय है, मान लो कि भय है; लेकिन भय को किनारे रखो और उठो। मान लो कि गिरोगे, निश्चित है कि गिरोगे; कभी कोई नहीं चल पाया बिना गिरे। बहुत बार चोट लगेगी; बहुत बार भटकोगे; भूल-चूक होगी। भूल-चूक होती ही है उससे जो चलने की कोशिश करता है; जो नहीं चलता उसी से भूल-चूक नहीं होती। तो मेरे हिसाब में तो एक ही भूल-चूक है, वह है न चलना। कोई भूल-चूक नहीं होती; तुम गोबर-गणेश की तरह बैठे रह जाते हो। हलन-चलन ही नहीं करते तो और आनंद से वंचित रह जाओगे। तुम कभी अमृत को उपलब्ध न हो सकोगे। उठो! भय है, स्वीकार करो। भय के बावजूद खड़े होने की चेष्टा करो। भय है; द्वार खोलो। खतरा है, माना; मित्र भी आ सकता है, शत्रु भी आ सकता है। लेकिन शत्रु के भय से मित्र को गंवा देना बहुत बड़ी भूल है। आंधी-तूफानों के डर से

घर के भीतर बंद होकर जी लेना, तो जैसे जीए ही न; कब्र में ही रहे और मर गए।
कब्र बड़ी सुरक्षित है; और जीवन में असुरक्षा है। दुस्साहस चाहिए। धीरे- धीरे कदम सम्हलने लगते हैं। और जब कदम सम्हल जाते हैं तो सब भय मिट जाता है।
प्रेम एकमात्र कवच है। और कोई कवच नहीं है, और कोई सुरक्षा नहीं है।
और तुम जितने भी इंतजाम करोगे सुरक्षा के, सब गलत सिद्ध होंगे। तुम्हारे हाथों से बनाई गई सुरक्षा मृत्यु के पार न ले जा सकेगी। मृत्यु सब सुरक्षा को तोड़ देगी।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर डाका पड़ा। सब लोगों ने सोचा लुट गया। और बचाने की कोशिश में मुल्ला नसरुद्दीन बुरी तरह पीटा भी गया; ऐसा पीटा गया कि मरणासन्न अस्पताल में पड़ा है। जरा सा होश आया तो उसने अपनी पत्नी के नाम पत्र लिखा, जो दूसरे गांव गई थी। और लिखा, घबड़ाना मत। संयोग और सौभाग्य की बात समझो कि एक ही दिन पहले सब बैंक में सेफ डिपाजिट में जमा करवा दिया था। कुछ गया नहीं है। कुछ ले जाने को था भी नहीं। सिवाय मेरे जीवन के, कुछ भी नहीं गंवाया है। क्योंकि वह मरणासन्न है, और मर रहा है। सिवाय जीवन के और कुछ नहीं गंवाया है!
मरते वक्त तुम भी ऐसा ही पाओगे कि सिवाय जीवन के और कुछ नहीं गंवाया है। सब बचा है, सब तिजोरी में रखा है, बैंक में जमा है; सिर्फ तुम अपने को गंवा बैठे हो! लेकिन उस जमा का करोगे क्या? जीवन को ही खोकर अगर सब बचा लिया तो क्या बचाया? अगर सब खोकर भी जीवन बच सके तो बचा लेना। उसे ही मैं दुस्साहस कह रहा हूं।
लाओत्से के शब्दों को समझें।
"यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे... ।"
और वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस तरफ प्रेम, उस तरफ अभय; आया प्रेम, पीछे चला आता है अभय।
"यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे, कोई मिताचार और आरक्षित शक्ति को छोड़ दे, कोई पीछे चलना छोड़ कर आगे दौड़ जाए, तो उसका विनाश सुनिश्चित है।" लाओत्से यह कह रहा है कि जिसने प्रेम को छोड़ा, वह विनष्ट हो गया। और तुमने प्रेम को छोड़ कर सब बचा लिया है। तुमने अपनी होशियारी में प्रेम को छोड़ कर सब बचा लिया है। तुम अपनी होशियारी में सब गंवा बैठे हो। जिसने प्रेम को छोड़ा, उसका विनाश सुनिश्चित है। क्योंकि उसे जीवन का भोजन ही मिलना बंद हो गया।
पश्चिम में वैज्ञानिकों ने इधर बहुत सी खोजें की हैं, उनमें एक खोज प्रेम से संबंधित भी है। उन्होंने यह पाया है अनेक प्रयोगों के बाद... । इजिप्त में एक प्रयोग चलता था, अनाथालय में। तो अनाथालय के दो हिस्से
कर दिए थे उन्होंने; दो सौ बच्चे एक तरफ, दो सौ दूसरी तरफ। इन दो सौ बच्चों को पहले खंड में सब भोजन, कपड़े, सारी सुविधाएं दी जाती थीं, सिर्फ प्रेम को छोड़ कर। नर्स आएगी, दूध दे देगी, लेकिन किसी तरह का व्यक्तिगत संपर्क नहीं करेगी, मुस्कुराएगी नहीं; कठोर, यंत्रवत। डाक्टर आएंगे, इलाज कर देंगे, लेकिन इम्पर्सनल, अवैयक्तिक; व्यक्तिगत कोई संबंध बच्चों से नहीं बनाया जाएगा। न बच्चों को थपथपाया जाएगा, न उन्हें गले लगाया जाएगा। यह एक खंड; सारी वैज्ञानिक सुविधा दी जाएगी। और दूसरा खंड है, वहां भी उतनी ही सुविधा दी जाएगी, लेकिन बच्चों के साथ व्यक्तिगत संबंध बनाए जाएंगे। डाक्टर आएगा तो मुस्कुराएगा, बैठ कर दो बात करेगा, कभी बच्चे को गले लगा लेगा। नर्स आएगी तो थपथपाएगी, कभी बच्चे को उठा कर उछालेगी।
जो अनुभव हुआ तीन महीने के प्रयोग से वह यह हुआ कि पहले खंड के बच्चे सिकुड़ते गए। भोजन पूरा दिया जा रहा था, इलाज की पूरी व्यवस्था थी; लेकिन जीवनधारा सूखती गई। बच्चे तीन गुने ज्यादा बीमार पड़े पहले खंड में। करीब-करीब बच्चे बीमार रहे, स्वस्थ बच्चे धीरे-धीरे खो गए। दो सौ के दो सौ बच्चे धीरे-धीरे किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त हो गए। दूसरे खंड के बच्चे धीरे- धीरे सभी बीमारियों के बाहर हो गए। और अगर बीमारी आती भी तो टिकती न। पहले खंड में बीमारी आ जाती तो हटती न। सब एक सा था, सिर्फ एक प्रेम के तत्व को हटा लिया था। और प्रेम भी क्या, कोई खास प्रेम नहीं दिया जा रहा था; थोड़ा

थपथपा दिया, थोड़ा बच्चे से बात कर ली। लेकिन ऐसा अनुभव हुआ कि इन बच्चों को दूसरे खंड में कुछ मिल रहा था, अदृश्य, जो पहले खंड में नहीं मिल रहा था। अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में वे एक प्रयोग कर रहे थे बंदर
के बच्चों के साथ। तो एक तरफ उन्होंने बंदरिया बनाई थी, जो बिल्कुल तारों की बनी थी। उसके स्तन से बच्चा दूध पी सकता था, लेकिन सिर्फ तार ही तार थे, ठंडे तार, कि बच्चा जब दूध पीने आए तो मां से कोई ऊष्मा न मिले, कोई गर्मी न मिले; दूध पी ले। और एक दूसरी मां उन्होंने बनाई थी, जिसके तारों पर गर्म कंबल चढ़ा हुआ था और जिसके भीतर बिजली का एक छोटा सा बल्ब जलता था जिससे थोड़ी गर्मी बनी रहती थी। जो बच्चे उसके पास दूध पीते थे, वे तो स्वस्थ रहे। कोई प्रेम न था, लेकिन बच्चों को भ्रांति थी। भ्रांति तक भी कि मां ऊष्ण है। और जो बच्चे ठंडी मां के पास दूध पी रहे थे--दूध वही था--लेकिन धीरे- धीरे सूखने लगे। फिर दोनों मां को एक जगह लाकर एक ही कमरे में रख दिया और सब बच्चों को उसी कमरे में रख दिया। बच्चे दूध तो पी आते ठंडी मां के पास, लेकिन लिपट कर सोते--सारे बच्चे लिपट कर सोते--कंबल वाली मां के पास। वहां थोड़ी ऊष्मा थी, वहां थोड़ा जीवन था, वहां थोड़ी गर्मी थी। और कंबल का स्पर्श थोड़ा सा मां की भ्रांति देता था। लेकिन यह भी कोई मां हुई?
हार्वर्ड में भी पाया गया कि बच्चे को अगर ख्याल भी हो कि दूसरी तरफ
से कुछ संवेदना है तो भी बच्चे को जीवन मिलता है। मां दूध ही नहीं दे रही है बच्चों को, दूध के साथ कुछ और भी दे रही है। वह और अदृश्य है, और वह और जीवन का सूत्र है। वह प्रेम है।
तुम्हारे जीवन में जितना ज्यादा प्रेम होगा उतना ही तुम पाओगे कि तुम जीवंत हो; जितना प्रेम कम होगा उतना ही तुम पाओगे, दीन, जर्जर, मुर्झाए हुए; किसी तरह चले जा रहे हो, कोई गति नहीं है; तुम ऐसी सरिता नहीं हो जो सागर तक पहुंच सके; तुम्हारे पैर ही नहीं उठ रहे हैं। तुम कहीं न कहीं किसी मरुस्थल में खो जाओगे।
इसलिए लाओत्से कहता है, जिन्होंने जीवन में प्रेम छोड़ दिया; और प्रेम छूटा कि अभय छूटा; और जिन्होंने मध्यमार्ग चलने की कला न सीखी, जो अतियों में डोलते रहे; और जिन्होंने महत्वाकांक्षा का जहर पी लिया; और जो पीछे रहने को राजी न रहे, और दौड़ कर आगे होने का पागलपन जिन पर सवार हो गया; उनका विनाश सुनिश्चित है।
"इफ वन फोरसेक्स लव एंड फियरलेसनेस, फोरसेक्स रेस्ट्रेंट एंड रिजर्व पावर, फोरसेक्स फालोइंग बिहाइंड एंड रशेज इन फ्रंट, ही इ.ज डूम्ड!"
उसे बचाने का कोई उपाय नहीं। उसका विनाश बिल्कुल निश्चित है। क्योंकि प्रेम, जब आक्रमण हो तब तुम्हें बचाता है, आक्रमण की घड़ी में प्रेम ही तुम्हारी जीत बनेगा। जब कोई तुम पर हमला करे तो प्रेम तुम्हें बचाता है। इस बात को थोड़ा समझने की कोशिश करो।
पहली तो बात कि अगर तुम बहुत प्रेमपूर्ण हो तो हमले की संभावना सौ में
से निन्यानबे प्रतिशत समाप्त हो जाती है। अगर तुम प्रेम दे रहे हो तो दूसरे में हमले की आकांक्षा को तुम वैसे ही नष्ट कर रहे हो। लेकिन फिर भी पागल लोग हैं। बुद्ध पर भी पत्थर फेंकने वाले लोग मिल ही जाते हैं। जीसस को भी आखिर सूली पर चढ़ाने वाले लोग मिल ही गए। सुकरात को जहर देने वाले लोग थे ही।
तो तुम अगर कितने ही प्रेम से भरे हो तो भी निन्यानबे प्रतिशत ही मौका कटता है; क्योंकि दूसरी तरफ ऐसे हृदय भी हैं, तुम जितने प्रेम से भरे हो उससे ज्यादा घृणा से भरे हैं। पाषाण हृदय भी हैं। इतने रुग्ण लोग भी हैं कि तुम्हारे प्रेम के कारण ही तुम पर हमला कर देंगे। उनकी बरदाश्त के बाहर होगा कि कोई इतने प्रेम में जीए। तुम उनके लिए शत्रु मालूम पड़ोगे। निन्यानबे प्रतिशत तो तुम्हारा प्रेम ही तुम्हारे ऊपर आक्रमण की संभावना को समाप्त कर देगा। एक प्रतिशत जो आक्रमण की संभावना शेष रह जाएगी, उस क्षण में भी अगर तुम्हारा हृदय प्रेम से भरा हो, तो वही तुम्हारी सुरक्षा है, और कोई सुरक्षा नहीं हो सकती।
बुद्ध पर पागल हाथी छोड़ दिया था। बड़ी हैरानी हुई कि पागल हाथी आकर बुद्ध के सामने ठिठक कर खड़ा हो गया।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हैः जोश देलगादो। उसने एक प्रयोग किया
है सांड के साथ। उसने सांड के भीतर मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगा दिए थे और एक छोटे ट्रांजिस्टर रेडियो से उन भीतर लगे हुए तारों को संदेश दिया जा सकता था।
मस्तिष्क में केंद्र हैं; क्रोध का केंद्र है, घृणा का केंद्र है, प्रेम का केंद्र है, आक्रमण का केंद्र है, भय का केंद्र है; मस्तिष्क में सब केंद्र हैं। वैज्ञानिकों ने सारे केंद्र खोज लिए हैं। और उन केंद्रों पर अगर बिजली का प्रवाह डाला जाए, तो जिस केंद्र पर प्रवाह डाला जाता है वही केंद्र सक्रिय हो जाता है। तो अब ऐसा उपाय है कि तुम बिल्कुल शांत बैठे हो और तुम्हारी खोपड़ी पर एक खास जगह जरा सी चोट की जाए कि तुम एकदम क्रोध से भर जाओगे, क्योंकि वहां से क्रोध का जहर तुम्हारे शरीर में फैलता है।
जोश देलगादो ने एक भयंकर सांड के भीतर इलेक्ट्रोड लगा दिए, दो इलेक्ट्रोड, एक क्रोध के ऊपर और एक भय के ऊपर। और दो बटन का एक छोटा सा रेडियो वह अपने हाथ में लिए है। हजारों लोग देखने इकट्ठे हुए थे इस प्रयोग को, क्योंकि यह खतरनाक से खतरनाक प्रयोग सिद्ध हो सकता है। कोई सौ कदम दूर खड़ा है सांड भयंकर। एक बटन देलगादो ने दबाया--किसी को पता नहीं कि वह क्या कर रहा है अपने हाथ में--उसने क्रोध का बटन दबाया। तो जैसे सांड को लाल झंडी दिखा दो और वह गुस्से में आ जाता है, वह कुछ भी नहीं है; क्योंकि भीतर जैसे ही बिजली का प्रवाह उसके क्रोध पर हुआ, सांड बिल्कुल पागल हो गया। वह झपटा। अकेला एक आदमी खड़ा है उसके सामने। वह इतना विक्षिप्त भाव से भागा धुआंधार कि लाखों लोग जो देखने इकट्ठे हुए थे, उन्होंने समझा कि मारा गया यह आदमी। यह प्रयोग, यह इतना पागल सांड, इससे बचने का कोई उपाय नहीं। और देलगादो के हाथ में कोई तलवार नहीं है, कोई उपाय नहीं है। एक छोटा सा ट्रांजिस्टर रेडियो लिए है, वह भी किसी को दिखाई नहीं पड़ता, वह भी उसकी हथेली में छिपा है। लोग खड़े हो गए, सांसें रुक गईं। और ठीक दो कदम पर सांड आया और देलगादो ने उसका भय का बटन दबाया, वह वहीं ठिठक गया जैसे कि कोई भयंकर दीवाल सामने खड़ी हो गई हो। दो कदम! एक क्षण और, और उसके सींग देलगादो की छाती में घुस गए होते। वह एकदम कंपने लगा भय से।
देलगादो ने जो प्रयोग किया है वैसा प्रयोग कभी नहीं किया गया। लेकिन जिनके जीवन में प्रेम रहा है, उनके आस-पास ऐसे प्रयोग बहुत बार अपने आप हो गए हैं।
ऐसा हुआ बुद्ध के जीवन में, पागल हाथी छोड़ दिया गया। अगर तुम मेरी बात समझ सको तो देलगादो ने जो यंत्र से किया है, वह बुद्ध ने सिर्फ भाव से किया। वह भी किया, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि बुद्ध तो प्रेम से भरे हैं। पागल हाथी आया भागा हुआ। बुद्ध के भीतर से जो जीवन-ऊर्जा का प्रवाह हो रहा है, वह तो प्रेम है; तो वह उस पागल हाथी के प्रेम के केंद्र पर चोट कर रहा है, जैसे देलगादो बिजली का प्रवाह दे रहा है। प्रेम भी तो विद्युत है; प्रेम भी तो बड़ी सूक्ष्म ऊर्जा है। बुद्ध का हृदय प्रेम से भरा है; उनके आस-पास प्रेम बरस रहा है। वह हाथी अचानक आकर ठिठक कर खड़ा हो गया। और न केवल खड़ा हुआ--क्योंकि यह कोई यंत्र के द्वारा खड़ा नहीं किया गया था--वह झुका और बुद्ध के चरणों में सिर टेक दिया।
किसने बचाया? प्रेम कवच है।
लेकिन आदमी हाथियों से ज्यादा खतरनाक है। हाथी पागल भी आदमी जितना पागल नहीं, स्वस्थ आदमी जितना भी पागल नहीं। क्योंकि जीसस प्रेम से भरे रहे और लोगों ने सूली लगा दी। आदमी के अंधेपन का मुकाबला नहीं है। आदमी बेजोड़ है। कोई जानवर आदमी के जानवरपन से मुकाबला नहीं कर सकता। जिसने भेजा था पागल हाथी, देवदत्त, वह बुद्ध का चचेरा भाई था। उस पर बुद्ध का प्रेम काम न कर पाया। पागल हाथी ठहर गया। देवदत्त नये आयोजनों में लग गया; वह जीवन भर बुद्ध को मारने की चेष्टा करता रहा। कभी पहाड़ से चट्टान सरका दी उसने। शायद चट्टान भी बुद्ध को छोड़ कर मार्ग से हट कर गिर गई हो, क्योंकि बुद्ध उससे मरे नहीं। चट्टानें भी आदमी के हृदय जैसी चट्टानें नहीं।

आदमी एक अनूठी बात है। आदमी उठे तो परमात्मा जैसा है; गिरे तो पाषाण
भी काफी नहीं; उनसे भी नीचे गिर जाता है। आदमी गिरे तो ठीक नर्क निर्मित कर लेता है; उठे तो उसके चारों तरफ स्वर्ग है। आदमी इस छोर से उस छोर तक फैला हुआ है। आखिरी पशुता और आखिरी परमात्मा, आदमी में दोनों संभव हैं। आदमी एक सीढ़ी है, जिसका एक छोर आखिरी जमीन में लगा है, नर्क में टिका है, और दूसरा छोर आकाश में।
"यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे, कोई मिताचार और आरक्षित शक्ति को छोड़ दे, कोई पीछे चलना छोड़ कर आगे दौड़ जाए, तो उसका विनाश सुनिश्चित है। क्योंकि प्रेम आक्रमण में जीतता है।"
अगर तुम्हारे पास प्रेम ही न रहा तो तुम्हारे पास कोई सुरक्षा न रही। तुम बिल्कुल असहाय हो फिर। और तुम उलटा ही कर रहे हो। तुम सुरक्षा के दूसरे इंतजाम जमा रहे हो जिनके कारण प्रेम भीतर न आ सकेगा। और प्रेम एकमात्र सुरक्षा है। तुम्हारे भय के कारण तुम अपनी एकमात्र सुरक्षा को बाहर कर दिए हो।
छोड़ो भय को! साहसी बनो! उठाओ कदम प्रेम में! खोने को कुछ भी नहीं है। पाने को सब कुछ है।
"और सुरक्षा में वह अभेद्य है।"
जिसके पास प्रेम है, उसकी सुरक्षा अभेद्य है। माना कि जीसस को लोगों
ने सूली पर लटका दिया, मिटा दिया शरीर उनका; लेकिन जीसस के अंतर्प्राण में वे प्रवेश न कर पाए। जीसस अभेद्य ही रहे, क्योंकि आखिरी क्षण में भी जीसस ने कहा कि परमात्मा, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि ये जानते नहीं ये क्या कर रहे हैं। जीसस का प्रेम अखंड रहा। जीसस का हृदय जरा भी डगमगाया न, जरा भी क्रोध न उठा, जरा भी जहर की संभावना न बनी। ठीक हत्या की जा रही है, उस क्षण में भी जीसस की करुणा अपराजित, अजेय रही, अभेद्य रही।
इसलिए लाओत्से कहता है, "जिन्हें स्वर्ग नष्ट होने से बचाना चाहता है, उन्हें प्रेम के कवच से सुसज्जित करता है।"
यह तो कहने की बात है। यह तो सिर्फ कहने का ढंग है। अच्छा तो यही हो कि तुम यह समझो कि जो बचना चाहते हैं, वे अपने को प्रेम से सुसज्जित कर लेते हैं। स्वर्ग तो सिर्फ साथ देता है; तुम जो करना चाहते हो, उसी में साथ दे देता है। स्वर्ग तो सहयोग है। परमात्मा तो राजी है--तुम जो होना चाहो। तुम अगर नर्क में गिरना चाहते हो तो परमात्मा का हाथ तुम्हें सहारा दे देता है। क्योंकि परमात्मा तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट न करना चाहेगा। परमात्मा जबरदस्ती तुम्हें स्वर्ग में न उठाएगा। क्योंकि जबरदस्ती भी कहीं कोई स्वर्ग में गया है? अगर तुम जबरदस्ती स्वर्ग में भेज दिए जाओ तो स्वर्ग कारागृह मालूम पड़ेगा। क्योंकि जबरदस्ती परतंत्रता है। स्वतंत्रता से तुम नर्क में भी चले जाओ तो भी स्वर्ग मालूम पड़ेगा, तुमने ही चुना है।
परमात्मा किसी के साथ कोई जबरदस्ती नहीं करता। अस्तित्व सहयोग है, और परम स्वतंत्रता है। तुम जो होना चाहो, अस्तित्व कहता है, हम तुम्हारे साथ वहीं चलने को राजी हैं। अगर तुम अपने जीवन को कब्र बनाना चाहते हो तो कब्र के लिए ईंटें जुटा देगा अस्तित्व; तुम्हारे हाथों को बल दे देगा कि तुम सब रंध्र, द्वार, सब बंद कर दो। अगर तुम स्वर्ग में उठना चाहते हो तो अस्तित्व सीढ़ियां लगा देगा, पांव-पांखड़े बिछा देगा; अस्तित्व अपनी पलकें बिछा देगा कि आओ स्वागत है। लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता को अस्तित्व बाधा नहीं देता।
मनुष्य परम स्वतंत्र है। यही उसकी गरिमा भी है, यही उसका दुर्भाग्य भी। गरिमा; क्योंकि स्वतंत्रता से बड़ा और कुछ भी नहीं है। इसलिए तो हम मोक्ष की चर्चा करते रहे हैं सदियों से। गरिमा; कि मनुष्य उठ सकता है आखिरी छोर तक, जिसके पार और कुछ भी नहीं; वह बन सकता है शिखर उत्तुंग, गौरीशंकर। और दुर्भाग्य; क्योंकि स्वतंत्रता के कारण वह नर्कों की यात्रा भी कर सकता है। तुम्हारे हाथ में है सारी बाजी! शिकायत किसी से कर न सकोगे। नर्क गए तो अपने कारण; दुखी हो तो अपने कारण; सुखी होओगे तो अपने कारण। चाहो तो विषाद की मूर्ति बन सकते हो, कोई बाधा न डालेगा; चाहो तो

समाधिस्थ आनंद की प्रतिमा बन सकते हो, सारा अस्तित्व साथ देगा। हर हाल में राजी है अस्तित्व; तुम जहां जाते हो, वहीं जाने को राजी है।
इसे स्मरण रखना। यह तो कहने का ढंग है लाओत्से का कि जिन्हें वह नष्ट होने से बचाना चाहता है स्वर्ग उन्हें प्रेम के कवच से सुसज्जित कर देता है। इसका कुल मतलब इतना है कि केवल वे ही बचते हैं जो प्रेम के कवच को उपलब्ध हो जाते हैं।
ये तीन खजाने हैं लाओत्से के। प्रेम पहला खजाना; सम्हालना, बचाना। जिंदगी में बहुत आंधियां आएंगी, उस छोटे से दीये को बुझाने की संभावनाएं बनेंगी; तुम उसे बचाना, क्योंकि वही जीवन की संपदा है। कुछ भी हो, तुम प्रेम को मत खो देना।
और तुम बड़े जल्दी खो देते हो। एक आदमी धोखा दे देता है, तुम कहते हो, हमारा आदमियत पर से विश्वास उठ गया। आदमियत पर से विश्वास उठ गया? एक आदमी ने धोखा दे दिया तुम्हें, तुम्हारा पूरी आदमियत पर से विश्वास उठ गया? जैसे तुम तैयार ही बैठे थे विश्वास उठाने को। तुमने यह न कहा कि एक आदमी ने धोखा दिया है, इससे आदमियत का क्या लेना-देना!
अगर तुम प्रेम को बचाना चाहते हो तो सारी मनुष्यता भी तुम्हें धोखा
दे दे, और एक आदमी बच रहे जिसने धोखा न दिया, तो भी तुम भरोसा कायम रखोगे कि अभी एक आदमी बाकी है। अभी एक आदमी काफी है भरोसे को बचाने को, अगर भरोसा बचाना है। अन्यथा एक आदमी काफी है मिटाने को। एक जगह तुम असफल हो जाते हो, कि बस उसी असफलता को तुम अपना घर बना लेते हो कि असफल हो गए। जिंदगी में कोई सार नहीं है!
झेन फकीर जेनरेन ने कहा है कि जब पतझड़ आए और वृक्षों से पत्ते सब गिर जाएं और वृक्ष नग्न हो जाएं, तब तुम सावधान रहना, यह मत कहना कि सब जीवन उजाड़ है। क्योंकि यह केवल वसंत की तैयारी है। और जब पानी का बुलबुला फूटे तो तुम यह मत कहना कि सब जीवन पानी का बुलबुला है। तुम जल्दी मत करना निषेध को इकट्ठी करने की।
इस देश में निषेध भयंकर है। उसने तुम्हारे प्रेम को बिल्कुल मार डाला है। सब संसार माया है। सब सुख दुख हैं। सब क्षणभंगुर है! कुछ सार नहीं। उससे तुम परमात्मा को उपलब्ध नहीं हुए हो; उससे तुम भयंकर विषाद में डूब गए हो। उससे तुम ऊपर उबरे नहीं हो; उससे तुम्हारी नाव पत्थरों से बोझिल हो गई है, और यात्रा कठिन हो गई है। उसके कारण तुम्हारे जीवन में परमात्मा का आनंद तो नहीं उतरा, केवल संसार की उदासी सघन हो गई है। तुम्हारे आस-पास वह शांति तो नहीं पैदा हुई जो कि आनंद की छाया है, तुम्हारे पास शांति पैदा हो गई है जो मरघट की छाया है। श्मशान जैसे तुम शांत हो गए हो--उदास, हारे-थके, पराजित।
नहीं; एक आदमी धोखा दे तो मनुष्यता से विश्वास मत उठा लेना। और अगर ठीक से समझो तो जिस आदमी ने धोखा दिया है, यह आदमी भी इसी कृत्य में पूरा नहीं हो जाता है; इसके जीवन में करोड़ों कृत्य हैं। एक आदमी जीवन में करोड़ों काम करता है; उसके एक काम ने धोखा दिया, उसके करोड़ों काम से क्यों आस्था उठा लेते हो? इस क्षण में इस आदमी ने धोखा दिया, लेकिन भविष्य तो सदा उन्मुक्त है; दूसरे क्षण यह बदल सकता है। जल्दी निर्णय क्यों ले लेते हो? और धोखे से धोखा देने वाला आदमी भी पूरा तो धोखे में नहीं जीता; जी नहीं सकता। झूठ से झूठ बोलने वाला आदमी भी तो कभी-कभी सच बोलता है। बेईमान से बेईमान भी तो कभी-कभी ईमानदार होता है। तुम क्यों इसकी बेईमानी को आधार बना लेते हो?
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम धोखा खाओ; मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम अपने प्रेम को मत मरने देना। प्रेम बड़ा छोटा दीया है, और आंधियां बहुत हैं। सब तरफ से बुझाने के लिए आंधियां हैं। और अगर तुमने बुझाने में खुद सहयोग दिया तो कौन तुम्हारे दीये को बचाएगा?
कैसी भी स्थिति हो, कैसा भी मनुष्य हो, कैसे भी लोग हों तुम्हारे आस-पास, कैसा ही परिवार हो, कैसे ही संबंधी हों, तुम एक बात ख्याल रखना, उन सब के बावजूद तुम प्रेम के दीये को बचा लेना। क्योंकि उससे ही तुम बचोगे। इनके धोखे तो सपने जैसे हैं, पानी पर खींची लकीरें हैं--बनेंगी, मिट

जाएंगी। किसी ने तुम्हारी जेब से चार पैसे निकाल लिए; क्या बनता-बिगड़ता है? थोड़ी-बहुत देर बाद तुम अपने ही हाथ से निकालते; किसी दूसरे हाथ ने वह काम कर दिया है। धन्यवाद देना और आगे बढ़ जाना।
जीसस ने कहा है, कोई तुमसे कोट छीन ले, कमीज भी दे देना; मगर प्रेम को बचाना। कोई तुमसे कहे एक मील बोझा ढो चलो, तुम दो मील तक साथ चले जाना; क्योंकि हो सकता है, संकोची आदमी, दो मील ले जाना चाहता हो और एक ही मील कहा; मगर प्रेम को बचा लेना। क्योंकि जो प्रेम करेगा, वह परमात्मा को जानेगा। क्योंकि परमात्मा प्रेम है।
अगर तुम एक ही बात को बचा लो जीवन में तो कुछ चिंता करने की जरूरत नहीं है। छोड़ दो फिक्र परमात्मा की, छोड़ दो फिक्र मोक्ष की; अगर प्रेम का दीया बच गया तो सब बच जाएगा। तुमने मूल आधार बचा लिया है, बुनियाद बचा ली है। भवन बना लेना बहुत कठिन नहीं है।
लेकिन बिना आधार के तुम भवन तो बना लेते हो, और आधार नहीं होता। आज नहीं कल, भवन गिरता है। और उसके गिरने में तुम भयंकर पीड़ा पाते हो।
क्योंकि उसके गिरने में तुम्हारा सारा श्रम, सारी ऊर्जा, सारा जीवन व्यर्थ हो जाता है।
प्रेम है एकमात्र अभेद्य सुरक्षा; उसे बचा लो।
और जो प्रेम में जीता है--यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि जीवन का गणित बहुत एक-दूसरे सेशृंखलाबद्ध है--जो प्रेम में जीता है वह हमेशा संतुलित होता है। उसके जीवन में एक बैलेंस होता है। क्रोध में बैलेंस टूटता है, संतुलन टूटता है। क्योंकि क्रोध में तुम वह कर बैठते हो जो नहीं करना था। क्रोध में तुम वह कर बैठते हो जिसके लिए तुम पछताओगे। प्रेम से कभी कोई नहीं पछताया है। और अगर तुम प्रेम के कारण पछताए हो तो समझना कि प्रेम नहीं, कुछ और रहा होगा। वासना रही होगी, मोह रहा होगा, लोभ रहा होगा, काम रहा होगा; प्रेम नहीं। प्रेम के कारण कोई कभी नहीं पछताया। प्रेम पछतावा जानता ही नहीं है। प्रेम का कोई पश्चात्ताप नहीं है।
प्रेम एक संतुलन देता है। क्योंकि प्रेम तुम्हारे व्यक्तित्व को एक माधुर्य देता है, एक स्निग्धता देता है। प्रेम तुम्हारे रोएं-रोएं को एक हलकी शांति, एक रस देता है। उस रस के कारण तुम अति पर जाने से बचने लगते हो। क्योंकि अगर अति पर जाओगे तो रस टूटता है। उस रस के कारण तुम अति पर नहीं जाते।
प्रेमी ऐसे चलता है जैसे गर्भवती स्त्री चलती है--ऐसा जीवन में चलता है। क्योंकि वह दौड़ नहीं सकती, उसे पता है कि एक और जीवन सम्हाल रही है; दौड़ेगी, गर्भपात हो सकता है। गर्भवती स्त्री कैसे चलती है, कभी गौर से देखा? कुछ उसके पास सम्हालने को है; वह कुछ सम्हाल कर चलती है। उसकी चाल में एक शालीनता है, एक खजाना है; अपने से भी महत्वपूर्ण कोई भीतर छिपा है-- जिसके जन्म के लिए वह कितनी ही पीड़ा झेलने को तैयार है; जिसके जन्म के लिए वह अपने जीवन को भी खोने को तैयार हो सकती है। प्रेमी भी ऐसे ही जीता है; उसके भीतर कुछ सम्हालने के लिए कोई दीया जल रहा है भीतर।
ऐसी पुरानी कथा है कि एक संन्यासी ने सम्राट जनक को कहा कि मैं भरोसा नहीं कर सकता कि आप इस सब गोरखधंधे में--राज्य, महल, संपत्ति, शत्रु, मित्र, दरबार, राजनीति, कूटनीति, वेश्याएं, नाच-गान, शराब--इस सबके बीच, और आप परम ज्ञानी रह सकते हैं। मैं भरोसा नहीं कर सकता। क्योंकि हम तो झोपड़ों में भी रह कर न हो सके। और हम तो नग्न रह कर भी जंगलों में खड़े रहे और संसार से छुटकारा न मिला। तो आपको कैसे मिल जाएगा? भरे संसार में हैं, संसार के मध्य में खड़े हैं।
जनक ने बिना उत्तर दिए दो सैनिकों को आज्ञा दीः पकड़ लो इस संन्यासी को! संन्यासी बहुत घबड़ाया। उसने कहा, हद हो गई! हम तो सोचते थे कि आप महा करुणावान और ज्ञानी हैं। तो आप भी साधारण सम्राट ही निकले। पर जनक ने उनकी कुछ बात सुनी नहीं, और कहा कि आज रात नगर की सबसे सुंदर वेश्या नृत्य करने आने वाली है महल में, तो बाहर मंडप बनेगा, उसका नृत्य चलेगा। इससे सुंदर कोई स्त्री मैंने नहीं देखी। नृत्य चलेगा, दरबारी बैठेंगे, संगीत होगा, रात भर जलसा रहेगा। तुम्हें एक काम करना है। ये दो सैनिक तुम्हारे दोनों

तरफ नंगी तलवार लिए चलेंगे और तुम्हारे हाथ में एक पात्र होगा--तेल से भरा, लबालब भरा, कि एक बूंद और न भरी जा सके--उसे सम्हाल कर तुम्हें सात चक्कर लगाने हैं। और अगर एक बूंद भी तेल की गिरी, ये तलवारें तुम्हारी गर्दन पर उसी वक्त उतर जाएंगी।
संन्यासी फंस गया, अब क्या करे! और यह आदमी कम से कम मौका दे रहा है एक सात दफे चक्कर लगाने का, वैसे भी मरवा सकता है। तो एक अवसर तो है कि शायद कोशिश कर लें। सुंदर स्त्री का नाच शुरू हुआ। उसने पहले अपने आभूषण फेंक दिए, फिर वह अपने वस्त्र फेंकने लगी, फिर वह बिल्कुल नग्न हो गई। बड़ा मधुर संगीत था। बड़ा प्रगाढ़ आकर्षण था। लोग मंत्रमुग्ध बैठे थे। ऐसा सन्नाटा था, जैसा मंदिरों में होना चाहिए; लेकिन केवल वेश्याघरों में होता। दो तलवारें नंगी और वह संन्यासी बीच में फंसा हुआ बेचारा।
अब तुम सोच ले सकते हो, गृहस्थ होता तो भी चल लेता। संन्यासी! संन्यासी के मन में स्त्री का जितना आकर्षण होता है, गृहस्थ के मन में कभी नहीं होता। जैसे भूखे के मन में भोजन का आकर्षण होता है; भरे पेट के मन में क्या आकर्षण होता है? अगर वेश्या के घर में ही पड़े रहने वाले किसी आदमी को यह काम दिया होता, उसने मजे से कर दिया होता; इसमें कोई अड़चन न आती। लेकिन संन्यासी ने सपने में देखी थीं नग्न स्त्रियां; जब ध्यान करने बैठता था तब दिखाई पड़ती थीं। आज जीवन में पहला मौका मिला था जब देख लेता एक झलक। और कोई अड़चन न थी, बिल्कुल किनारे पर ही सब घटना घट रही थी। आवाज सुनाई पड़ने लगी कि उसने अपने आभूषण फेंक दिए हैं। सैनिक बात करने लगे, जो दोनों तरफ चल रहे थे कि अरे, उसने कपड़े भी फेंक दिए! अरे, वह बिल्कुल नग्न भी हो गई! और वह अपना दीया सम्हाले है और बूंद तेल न गिर जाए। उसने सात चक्कर पूरे कर लिए, एक बूंद तेल न गिरी।
सम्राट ने उसे बुलाया और कहा, समझे? जिसके पास कुछ सम्हालने को हो, सारी दुनिया चारों तरफ नाचती रहे, कोई अंतर नहीं पड़ता। तुझे अपना जीवन बचाना था, तो वेश्या नग्न हो गई तो भी तेरी आंख उस तरफ न गई। ये सैनिक बड़ी रसभरी चर्चा कर रहे थे--ये मेरे इशारे थे कि तुम रसभरी चर्चा करना, लुभाना--और दोनों तरफ से बोल रहे थे, और इन दोनों के बीच तू फंसा था; फिर भी तूने ध्यान न छोड़ा, तूने ध्यान अपने पात्र पर रखा। भरा पात्र था, कुशल से कुशल व्यक्ति भी मुश्किल में पड़ जाता। बड़े सात लंबे चक्कर थे। एक बूंद तेल गिर जाती, गर्दन तेरी उतर जाती। जीवन तुझे बचाना था।
जनक ने कहा, कुछ मेरे पास है जिसे मुझे बचाना है।
और जब तुम्हारे पास कुछ बचाने को होता है तो वही तुम्हें बचाता है। प्रेम जब जिसके भीतर होता है, प्रेम को तुम बचाते हो, प्रेम तुम्हें बचाता है। तुम प्रेम को सम्हालते हो, प्रेम तुम्हें सम्हालता है। प्रेम को बचाना। प्रेम से संतुलन आ जाएगा, क्योंकि कुछ बचाने को है। तुम अतियों पर न जाओगे।
और जिसने प्रेम जान लिया, वह महत्वाकांक्षा पर हंसने लगता है; क्योंकि महत्वाकांक्षा प्रेम के अभाव में पैदा होती है। जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, वे धन पाना चाहते हैं। धन सब्स्टीट्यूट है। प्रेम तो न मिला, किन्हीं आंखों ने ऐसा तो न कहा कि धन्यभाग हैं कि तुम हो; किन्हीं हाथों ने छुआ नहीं और कहा नहीं कि फूल की पंखुरियां भी इतनी कोमल नहीं; किसी ने गले न लगाया और कहा कि तुम्हीं मेरी आत्मा हो और तुम्हारे बिना सब सूना हो जाएगा। किसी ने तुम्हारे लिए गीत न गाए। किसी ने वीणा न बजाई। कोई आनंदमत्त होकर तुम्हारे चारों तरफ नाचा नहीं। अब एक कमी रह गई। तो अब तुम कोशिश कर रहे हो कि धन हो जाए तो लोग कहें कि हां, तुम कुछ हो; खूब धन है तुम्हारे पास, ऐसा किसी के भी पास नहीं। कि पद मिल जाए, कि तुम राष्ट्रपति हो जाओ, कि प्रधानमंत्री हो जाओ, कि सारी दुनिया कहे कि हां, सिद्ध कर दिया कि तुम कुछ हो।
मेरे जानने में, जिनका प्रेम असफल हो गया है, वे ही राजनीति में उतरते हैं; जिनका प्रेम असफल हो गया है, वे ही धन की दौड़ में लगते हैं; जिनका प्रेम असफल हो गया है, वे ही प्रसिद्धि की आकांक्षा करते हैं। वे सब्स्टीट्यूट हैं, परिपूरक हैं। पर ध्यान रखना, प्रेम का कोई परिपूरक

नहीं है। आखिर में तुम धन कमा लोगे, बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठ जाओगे और भीतर पाओगे वही रिक्तता। क्योंकि प्रेम को सिर्फ प्रेम ही भर सकता है, कोई और नहीं। प्रेम की आकांक्षा को सिर्फ प्रेम ही तृप्त कर सकता है।
तुम थोड़ा सोचो, किसी को प्यास लगी है, वह पानी मांग रहा है; तुम उसे करेंसी नोट दे रहे हो। किसी को प्यास लगी है, वह पानी मांग रहा है; तुम कह रहे हो कि हम तुम्हें राष्ट्रपति बनाए देते हैं। वह कहेगा, हमें पानी चाहिए। पानी के लिए कुछ भी तो परिपूरक नहीं हो सकता। साधारण प्यास के लिए परिपूरक नहीं मिल सकता तो प्रेम की प्यास के लिए परिपूरक मिल जाएगा? कोई परिपूरक नहीं है।
इसलिए जिसने प्रेम को सम्हाला, उसका संतुलन सम्हल जाता है। जिसने संतुलन सम्हाल लिया, वह आगे होने की दौड़ में कभी भी उतरता ही नहीं। तुम उसे राजी ही न कर पाओगे।
च्वांगत्सु की कथा से पूरी करूं।
बैठा है च्वांगत्सु एक तालाब के किनारे; मारता है मछली। सम्राट ने भेजे हैं अपने मंत्री और कहा कि सुनो, राजा चाहता है कि तुम आ जाओ और प्रधानमंत्री हो जाओ। बैठा रहा च्वांगत्सु। आंख भी मछली से न हटाई। अपनी बंसी को सम्हाले रहा। देखा भी नहीं वजीरों की तरफ। इतना ही कहा कि देखते हो उस किनारे कछुए को? कीचड़ में कछुआ अपनी पूंछ हिला कर मजा कर रहा है, आनंदित हो रहा है। कछुए का मजा कीचड़ में है। देखते हो उस कछुए को? उन्होंने देखा और उन्होंने कहा, हम कुछ समझे नहीं, कछुए से इसका क्या लेना- देना?
तो च्वांगत्सु ने कहा, हमने सुना है कि सम्राट के महल में सोने में मढ़ा एक मरा हुआ कछुआ है तीन हजार साल पुराना। उसकी पूजा की जाती है। वह राज्य चिह्न है। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि अगर इस कछुए को तुम कहो कि चल राजमहल, सोने में मढ़ देंगे; तेरी पूजा होगी हजारों-हजारों साल तक; सम्राट झुकेंगे तेरे सामने। तो यह कछुआ वहां जाना पसंद करेगा या कीचड़ में अपनी पूंछ हिलाना ही पसंद करेगा?
उन वजीरों ने कहा कि कछुआ तो कीचड़ में पूंछ हिलाना ही पसंद करेगा। क्या सार मरने में? और क्या सार सोने में मढ़े जाने में? और क्या सार पूजा- पत्री में?
तो च्वांगत्सु ने कहा, जाओ। कह देना सम्राट से कि हम भी कीचड़ में ही पूंछ हिलाना पसंद करते हैं। जब कछुआ इतना समझदार है तो हम कोई उससे ज्यादा नासमझ हैं? हम मगन हैं अपने आनंद में! तुम्हारे महलों की, तुम्हारे सिंहासनों की, तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा की हमें जरूरत नहीं।
जो प्रेम में मगन है उसे किसी और चीज की जरूरत नहीं। प्रेम तृप्त कर जाता है; दौड़ छूट जाती है। और महत्वाकांक्षा जिसकी छूट गई, उसका मन गिर जाता है। मन महत्वाकांक्षा है। जिसकी महत्वाकांक्षा छूट गई, वह अ-मन हो जाता है, नो-माइंड हो जाता है। और उसी घड़ी में द्वार खुलते हैं जो सदा से बंद हैं, और तुम पाते हो, प्रभु द्वार पर खड़े हैं। प्रभु सदा से ही द्वार पर खड़े थे, लेकिन तुम्हारी नजर कहीं और थी। जब तुम प्रेम से भरे, संतुलन में डूबे, महत्वाकांक्षा-मुक्त खड़े हो जाते हो, तब कोई पर्दा न रहा, सब पर्दे उठ जाते हैं।
बहुत दौड़ लिए सिंहासनों की दौड़ में, बहुत तरह के स्वर्ण से ढंके जा चुके। और हर बार स्वर्ण ने कब्र बनाई, जीवन का संगीत और जीवन की समाधि न दी। अब समय है, जाग जाना चाहिए।
कबीर कहते हैं, जाग सके तो जाग।
आज इतना ही।

एक सौ नौवां प्रवचन

# परमात्मा परम लयबद्धता है

Chapter 65

The Grand Harmony

The ancients who knew how to follow the Tao
Aimed not to enlighten the people,
But to keep them ignorant.
The reason it is difficult for the people to live in peace
Is because of too much knowledge.
Those who seek to rule a country by knowledge
Are the nation's curse.
Those who seek not to rule a country by knowledge
Are the nation's blessing.
Those who know these two (principles)
Also know the ancient standard,
And to know always the ancient standard
Is called the Mystic Virtue.
When the Mystic Virtue becomes clear, far-reaching,
And things revert back (to their source),
Then and then only emerges the Grand Harmony.

अध्याय 65

भव्य लयबद्धता

जो ताओ का अनुगमन करना जानते थे,
उन पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा नहीं किया;
बल्कि वे उन्हें अज्ञानी ही रखना चाहते थे।
कारण है कि लोगों के लिए शांति में रहना कठिन है, अतिशय ज्ञान के चलते।
जो ज्ञान से किसी देश पर शासन करना चाहते हैं, वे राष्ट्र के अभिशाप हैं।
जो ज्ञान से देश पर शासन करना नहीं चाहते, वे राष्ट्र के वरदान हैं।
जो इन दोनों सिद्धांतों को जानते हैं वे प्राचीन मानदंड को भी जानते हैं,
और प्राचीन मानदंड को सदा जानना ही रहस्यमय सदगुण कहाता है।
जब रहस्यमय सदगुण स्पष्ट, दूरगामी बनता है,
और चीजें अपने उदगम को लौट जाती हैं;
तब, और तभी, उदय होता है भव्य लयबद्धता का।

ज्ञान और ज्ञान में बड़ा भेद है।

एक तो ज्ञान है जो तुम्हें बिल्कुल मिटा जाता है, भीतर बच रहती है एक गहन शांति, एक निबिड़ मौन। सब स्वर खो जाते हैं, सब विचार विलीन हो जाते हैं; रह जाता है मौन संगीत। इस शून्य की तरफ जो ज्ञान ले जाए वह ज्ञान और। उस ज्ञान को ही लाओत्से अज्ञान कहता है। क्योंकि जिसे तुम ज्ञान कहते हो, अगर वही ज्ञान है, तो जिसे लाओत्से ज्ञान कहता है उसे अज्ञान ही कहना उचित है। क्योंकि वहां कुछ भी तो जानने को बचता नहीं, न जानने वाला ही बच रहता है। जानने का उपद्रव ही समाप्त हो जाता है। इतनी परिपूर्ण शून्यता होती है

जैसे आकाश हो बिना बदलियों का। विचार तो बादलों की भांति हैं। वे आकाश नहीं हैं; आकाश में उठ गया उत्पात हैं। जहां विचार ही नहीं हैं वहां ज्ञान कैसे होगा?
इसलिए लाओत्से उसे अज्ञान कहता है।
तुम चाहो तो उसे परम ज्ञान कह सकते हो। शब्द में मत उलझ जाना। और लाओत्से का शब्द बिल्कुल ठीक है। अज्ञान का अर्थ हैः जहां कोई ज्ञान की तरंग नहीं रह गई; अभाव हो गया जानने का। और जहां जानना बिल्कुल मिट जाता है वहीं तो पहली दफा जानने की वास्तविक क्षमता का उदय होता है। क्योंकि उसी शून्य में तो सत्य की परख आती है। और उसी रिक्तता में ही तो उतरता है परमात्मा। उसी द्वार पर तो दस्तक पड़ती है प्रभु की जिस द्वार के भीतर सन्नाटा हो जाता है। जब तक भीतर शोरगुल है तब तक शोरगुल ही तो उसे भीतर न आने देगा। और जब तक भीतर बहुत-बहुत बदलियां घिरी हैं तब तक तुम अंतर-आकाश को कैसे जान पाओगे?
दूसरा ज्ञान है जिसे हम ज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान तुम्हारे भीतर किसी शून्यता से नहीं जन्मता, वरन विपरीत शब्दों से, सिद्धांतों से, शास्त्रों से तुम अपने को भर लेते हो। उसे भरेपन को भी ज्ञान हम कहते हैं।
तो एक तो ज्ञान है शून्यता का, और एक ज्ञान है शब्दों के भराव का। जैसे आकाश बादलों से इतना घिर गया कि अब कहीं से कोई नील-आकाश दिखाई नहीं पड़ता। सब तरफ बदलियां ही बदलियां घिरी हैं। ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर जानकारियों की पर्तें ही पर्तें हो जाती हैं तब तुम लगते तो हो कि बहुत जानकार हो, और तुम जैसा अज्ञानी कोई भी नहीं होता। जानते बहुत हो और जानते कुछ भी नहीं। ऐसी गति होती है। बताना चाहो तो बहुत बता सकते हो, शास्त्र तुम्हें कंठस्थ हो जाते हैं, लेकिन तुम्हारे जीवन में कहीं वह सुरभि नहीं उठती जो ज्ञानी के जीवन में उठनी चाहिए। तुम्हारे पास मुर्दा शब्द होते हैं। मरघट और लाशें तुमने इकट्ठी कर लीं। तुम उस मूल स्रोत तक नहीं पहुंचे जहां भीतर ज्ञान का आविर्भाव होता है। तुमने तो कचरा बटोर लिया राह के किनारे से। दूसरों ने छोड़ी थी जो जूठन, उसे तुमने इकट्ठा कर लिया। वे कितने ही सुंदर शब्द हों--बुद्ध के हों, महावीर के हों, कृष्ण के हों, क्राइस्ट के हों-- इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम उधार से कभी भी वास्तविक को न पा सकोगे। लाओत्से कहता है, ऐसा ज्ञान खतरनाक है। क्योंकि ऐसा ज्ञान तुम्हारे
और तुम्हारी वास्तविकता के बीच दीवार बन जाता है। और इस ज्ञान के चलते तुम धीरे-धीरे भूल ही जाओगे कि तुम अज्ञानी हो। और यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जो व्यक्ति यह भूल जाए कि मैं अज्ञानी हूं, उसके ज्ञान की तरफ जाने का मार्ग ही सदा के लिए खो गया। अज्ञान की स्मृति बनी रहे तो तुम यात्रा करते रहोगे खोज की। तुम चेष्टा करोगे, उठोगे, चलोगे; कुछ उपाय करोगे।
अगर तुम्हें यह ख्याल हो गया कि तुमने तो जान लिया... । और कितनी सरलता
से यह ख्याल नहीं हो जाता है! पढ़ लिए उपनिषद, वेद, गीता; आ गया ख्याल कि जान लिया; दोहराने लगे शब्द बासे, तोतों की तरह, रटने लगे। रटन बिल्कुल व्यवस्थित हो गई, कहीं कोई भूल-चूक नहीं है तुम्हारी रटन में। तुम वे ही शब्द दोहराते हो जो कृष्ण दोहराते हैं। कृष्ण से भला भूल-चूक हो जाए, तुमसे नहीं होती। क्योंकि कृष्ण ने तो पहली ही बार दोहराए थे, कोई और रिहर्सल का मौका तो मिला न था। और तुमने तो बहुत बार दोहराए हैं; रिहर्सल ही रिहर्सल चलता रहा है। कृष्ण अगर फिर से कहेंगे गीता तो बड़ी भिन्न हो जाएगी। कहां याद किए बैठे रहेंगे कि क्या कहा था अर्जुन से! बड़े रूपांतरण हो जाएंगे। अर्जुन भी बदल चुका होगा; कृष्ण भी बदल चुके होंगे; परिस्थिति भी नयी हो गई होगी। कृष्ण अगर फिर से गीता कहेंगे तो तुम्हारी गीता से उसका तालमेल न के बराबर होगा। लेकिन तुम जो गीता याद किए बैठे हो वह कभी न बदलेगी। संसार बदलता रहेगा, गंगा बहती रहेगी, तुम्हारी गीता थिर और जड़ हो जाएगी। तुम्हारी गीता मुर्दा होगी। जीवन तो बदलता है, जीवन तो प्रतिपल प्रवाहमान है।
पंडित के पास जो ज्ञान है वह ज्ञान नहीं है; वह ज्ञान का धोखा है। लाओत्से कहता है, पंडित होने से तो अज्ञानी होना बेहतर। कम से कम अज्ञानी की संभावना तो है। पंडित ने तो संभावना भी बंद कर ली। पंडित तो ऐसी दशा में

है जैसे किसी बीमार आदमी को ख्याल आ जाए कि वह स्वस्थ हो गया; स्वास्थ्य के संबंध में किताबें पढ़ ले, और स्वास्थ्य की चर्चा से भर जाए, और सोच ले कि स्वस्थ हो गया, क्योंकि स्वास्थ्य के संबंध में मुझे इतना पता है।
लेकिन स्वास्थ्य के संबंध में पता होने से क्या कोई स्वस्थ होता है? स्वस्थ होने का रास्ता कुछ और है; स्वास्थ्य के संबंध में पता होने से नहीं। स्वस्थ होना एक जीवंत प्रक्रिया है, जानकारी नहीं। नहीं तो डाक्टर कभी बीमार ही न पड़ें। डाक्टर भी बीमार पड़ता है। जानता है बहुत स्वास्थ्य के संबंध में, इससे क्या फर्क पड़ता है!
जानकारी से स्वास्थ्य नहीं आता। जानकारी से आत्मा का भी अनुभव न होगा। लेकिन जानकारी खड़ी हो जाती है पर्त बांध कर। जानकारी ज्ञान की झूठी प्रतिछवि है, खोटा सिक्का है। लगता है बिल्कुल असली सिक्के जैसा। और जिन्होंने असली सिक्का न जाना हो उनकी मजबूरी साफ है। क्योंकि वे पहचानें भी कैसे कि यह खोटा है?
तो क्या है पहचान जिससे तुम समझ लोगे कि तुम्हारा ज्ञान खोटा है? एक
ही पहचान है, और वह यह कि तुम्हारा ज्ञान तुम्हें शांति दे तो समझना कि सच और तुम्हारा ज्ञान तुम्हें और अशांत करे तो समझना कि खोटा। तर्क से निर्णय नहीं होगा; तुम्हारे भीतर के स्वास्थ्य, तुम्हारे भीतर की निर्मलता, तुम्हारे भीतर की शांति से ही निर्णय होगा।
लाओत्से कहता है कि अज्ञानी बेहतर। क्योंकि अज्ञानी विनम्र होगा, और अज्ञानी कहेगा मैं जानता नहीं हूं। सीखने को तैयार होगा। अज्ञानी शिष्य होने को तत्पर होगा। तथाकथित ज्ञानी शिष्य नहीं होना चाहेगा। वह तो शिष्य होने के पहले गुरु हो गया है। उसने तो जान ही लिया है। अब तो वह दूसरों को जनाने को तैयार है। और जो उसने जाना है वह जीवन नहीं है। क्योंकि तुम्हें उसके पैरों में जीवन की कोई भनक न मिलेगी। तुम्हें उसकी आंखों में जीवन की कोई छाया न मिलेगी। तुम्हें उसके हृदय के पास जीवन की कोई धड़कन न मिलेगी। तुम सब तरफ से उसे मुर्दा पाओगे। लेकिन जानकारी का बड़ा संग्रह कर लिया है उसने। सिक्कों की तरह उसने ज्ञान इकट्ठा कर लिया है।
ज्ञान ऐसा ही है जैसा कभी तुमने इंग्लैंड की महारानी को लोगों से हाथ मिलाते देखा हो। अब हाथ मिलाने का इतना ही प्रयोजन है कि दो व्यक्तियों के शरीर निकट आएं, एक-दूसरे की चमड़ी एक-दूसरे का स्पर्श करे, सीमा टूटे। दोनों की सीमाएं करीब आएं, एक-दूसरे की ऊष्मा एक-दूसरे में बहे; प्रेम का थोड़ा सा प्रवाह हो; हाथ से ऊर्जा का थोड़ा लेन-देन हो। वही प्रयोजन है हाथ मिलाने का। लेकिन इंग्लैंड की महारानी हाथ मिलाती है तो दस्ताने पहने हुए। अब हाथ मिलाने की जरूरत ही न रही, क्योंकि दस्ताना न मिलने देगा। दस्ताना इसलिए है कि कहीं साधारण आदमी, और महारानी के हाथ से हाथ मिला ले! तो बंद ही कर दो बेहतर है हाथ मिलाना। लेकिन हाथ मिलाना भी जारी है और बीच में दस्ताना भी है।
ज्ञानी और जीवन के बीच दस्ताना आ जाता है। जहां भी वह जाता है जीवन में, उसका ज्ञान आड़ बन कर खड़ा हो जाता है। तब ऊपर-ऊपर लगता है कि वह हाथ भी मिला रहा है, लेकिन भीतर-भीतर दोनों के शरीर करीब नहीं आते। ज्ञानी अगर वृक्ष के पास से निकलता है तो दस्ताना रहता है।
एक महात्मा थे। उनका बड़ा नाम था। वे एक बार मेरे पास मेहमान हुए तो उन्हें मैं सुबह-सुबह घुमाने ले गया। जैसा पंडित होना चाहिए वैसे वे पंडित थे। ऐसी कोई भी बात मुश्किल थी जो वे न जानते हों। मेरे अनुभव में नहीं आई ऐसी कोई बात जो वे न जानते हों। ऐसी क्षुद्र बातें भी वे जानते थे जिनका कोई प्रयोजन समझ में नहीं आता। उन्हें जंगल में भी मैं ले जाकर देखा तो ऐसा एक वृक्ष नहीं था, जिसका नाम उन्हें मालूम न हो। जंगली पक्षियों को भी मैंने उनको दिखा कर देखा, ऐसा कोई पक्षी न था जिसका नाम उन्हें मालूम न हो। और नाम से ही निपटारा कर देते थे वे। मैंने उनको कहा कि देखें, सूरज की किरण इस पक्षी पर कितनी सुंदर पड़ रही है! तो वे कहते, पक्षी? यह नीलकंठ है। नीलकंठ नहीं देखा कभी? कि यह चिड़िया कितना मीठा गीत गा रही है! वे कहते, गौरैया है। गौरैया कभी सुनी नहीं? जो भी उनसे कहो, वे तत्क्षण जानकारी खड़ी कर देते थे। और जब जानकारी ही है, गौरैया का पता ही है, तो गौरैया का गीत

कौन सुने? और नीलकंठ ही हैं, तो अब इनमें परेशान होने की क्या जरूरत? कौन देखे इनका नीला कंठ, नाम से तृप्ति हो गई। कभी-कभी सूरज की किरण में नीलकंठ का कंठ ऐसा चमकता है, ऐसा अपरिसीम सौंदर्य उसमें उठता है! लेकिन उनकी आंखों में मैंने कभी कोई झलक न देखी। वे एक चलते-फिरते कंप्यूटर थे। जो भी कहो, वे फौरन बता दें कि इसका नाम यह है।
नाम देने को लोग ज्ञान समझते हैं। और नाम देने से ज्ञान का क्या संबंध है? शब्द नीलकंठ से नीलकंठ का क्या संबंध है? नीलकंठ को तो पता भी नहीं होगा कि उनका नाम नीलकंठ है। गुलाब के फूल को तो पता भी नहीं है कि नाम गुलाब है। जैसे ही तुमने कहा, यह गुलाब है, द्वार बंद हो गए। अब क्या जरूरत रही। तुम जानते ही हो, नाम तक तुम्हें पता है। अब और जानने को क्या बचा? नाम गुलाब में न तो गुल है और न आब है; कुछ भी नहीं है। नाम गुलाब में न
तो फूल है और न आभा है फूल की। गुलाब तो सिर्फ एक प्रतीक है, इशारा है। गुलाब गुलाब शब्द पर समाप्त नहीं होता, शुरू होता है। अगर तुमने उसी को समाप्ति समझ ली तो तुम वंचित रह जाओगे। तुम जीवन में जीओगे, लेकिन तुम्हारे चारों तरफ एक पर्दा होगा शब्दों का। शब्दों के माध्यम से तुम गुलाब के पास जाओगे, नीलकंठ के पास जाओगे, सूरज के पास जाओगे, सभी से तुम वंचित रह जाओगे। और इन्हीं शब्दों के माध्यम से तुम अपने करीब आओगे।
तो अगर उन सज्जन से मैं कहता कि कभी ध्यान करें! उन्होंने कहा, क्या ध्यान करना है? और वेद-उपनिषद पहले ही कह गए कि भीतर आत्मा है, सिद्ध ही हो गई बात।
वेद-उपनिषद ने सिद्ध कर दी, इससे तुम्हारे लिए सिद्ध नहीं हो गई। वेद-उपनिषद के ऋषियों ने जल पी लिया था इसलिए तुम्हारी प्यास बुझ गई, ऐसा नहीं है। जब तुम्हें प्यास लगती है तो तुम्हीं को पानी पीना पड़ता है। तुम यह नहीं कहते कि वेद-उपनिषद के ऋषि पी चुके खूब पानी और तृप्ति हो गई, हम क्यों पीएं? वेद-उपनिषद के ऋषियों ने प्रेम किया, इससे तुम प्रेम करने से नहीं रुकते। लेकिन वेद-उपनिषद ने कह दिया कि भीतर आत्मा है, अब खोजने को क्या बचा? वे कहते कि शास्त्र को ठीक से पढ़ लो, पता चल जाएगा कि भीतर आत्मा है। यही पंडित करते रहे हैं। उन्हें लगता है कि जैसे जीवन का सारा समाधान किताब में है। किताब में इशारे हो सकते हैं, लेकिन समाधान तो जीवन का जीवन में ही है।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था। अभी-अभी बेटा बाहर पड़ोस के लड़के से कुश्ती लड़ कर लौटा था। काफी घूंसामारी हुई थी, कपड़े फट गए थे, चेहरे से खून निकल रहा था। फिर मुल्ला ने यही मौका ठीक समझा कि जब गरम हो स्थिति तभी समझा देना चाहिए। तो उसने कहा कि देखो, अब तुम बड़े होने लगे, और अब तुम्हें सभ्यता-संस्कृति सीखनी चाहिए। और संस्कृति का पहला सूत्र यह है कि झगड़ों को शांति से निपटाना चाहिए। यह घूंसेबाजी जिंदगी में चलाओगे तो मुश्किल में पड़ोगे। और ऐसी कौन सी समस्या है जिसको शांति से बैठ कर तर्क और विचार और बुद्धि से न निपटाया जा सके! मुल्ला ने कहा कि मैंने कुरान-वेद सब पढ़ डाले। हर समस्या, बड़ी से बड़ी समस्या भी आदमी शांति से बैठ कर, विचार से समझ कर, एक-दूसरे की स्थिति, एक-दूसरे का दृष्टिकोण ख्याल में लेकर हल कर सकता है।
उस लड़के ने कहा, लेकिन यह समस्या ही ऐसी है कि इसका और कोई हल ही न था। नसरुद्दीन ने कहा, मैं यह मान ही नहीं सकता। मैंने ऐसी कोई समस्या देखी नहीं आज तक। तू समस्या बोल क्या थी? उसने कहा कि आप मानो, यह समस्या ही ऐसी थी। समस्या यह थी कि वह लड़का कह रहा था कि वह मुझ को चित्त कर सकता है चारों खाने। और मैं कह रहा था मैं उसको कर सकता हूं चित्त चारों खाने। अब इसको शांति से कैसे तय करो? इसका एक ही उपाय है कि करके देख लो कौन किसको कर सकता है।
जीवन जीकर ही हल हो सकता है। कोई दूसरा उपाय जीवन के समाधान का नहीं है। जो दूसरे तरह का ज्ञान है वह बिना जीवन में उतरे तुम्हें समाधान दे देता है। वे समाधान झूठे हैं, सस्ते हैं बहुत। तुमने उन समाधानों के लिए कुछ चुकाया नहीं। तुमने उन समाधानों के लिए कुछ खोया नहीं। तुमने उन समाधानों के लिए अपने को दांव पर नहीं लगाया। तुम मुफ्त, भीख में, उन

समाधानों को घर में ले आए हो। काश! जिंदगी इतनी सस्ती होती। जिंदगी इतनी सस्ती नहीं है। और अच्छा ही है कि जिंदगी इतनी सस्ती नहीं है; अन्यथा तुम्हारी समाधि भी कितनी सस्ती होती! और तुम्हारा परमात्मा को पा लेना भी कितना सस्ता होता! दो कौड़ी का होता।
नहीं, यहां तो स्वयं ही चलना पड़ेगा अपने ही पैरों से। भटकन भी होगी, भूल भी होगी, गिरोगे भी। अनेक बार उठोगे, गिरोगे, उठोगे, खोजोगे। यहां मार्ग बना-बनाया तैयार नहीं है कि किसी और ने बना दिया है। कोई हाईवे नहीं है, जो तैयार है सरकार की तरफ से कि तुम उस पर चल जाओ। यहां तो चल-चल कर ही एक-एक कदम अपना मार्ग खुद ही बनाना पड़ता है। यहां तो तुम जितना चलते हो उतना ही मार्ग बनता है।
और इसलिए केवल दुस्साहसियों के लिए ही सत्य है। कायर पंडित हो जाते हैं; साहसी प्रज्ञा को उपलब्ध होते हैं। पांडित्य महानतम कायरता है। वह अपने को धोखा देना है।
लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।
"जो ताओ का अनुगमन करना जानते थे, उन पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा नहीं किया; बल्कि वे उन्हें अज्ञानी ही रखना चाहते थे।"
बात बड़ी बेबूझ मालूम पड़ेगी कि ज्ञानी पुरुष लोगों को अज्ञानी रखना चाहते थे?
निश्चित ही। ज्ञानी पुरुष पहले भी लोगों को अज्ञानी रखना चाहते थे,
और ज्ञानी पुरुष अब भी, अगर तुम ज्ञानी भी हो गए हो, तो तुम्हारा ज्ञान छीन लेना चाहते हैं। सदगुरु वही है जो तुम्हारा ज्ञान छीन ले। जिस गुरु के पास से तुम थोड़े ज्यादा जानकार होकर लौटो, समझ लेना वह गुरु नहीं है, शिक्षक है। शिक्षक सिखाता है जानकारी, गुरु छीन लेता है। गुरु मिटाता है जानकारी। गुरु अगर कुछ भी सिखाता है तो एक ही बात सिखाता है। वह सिखाता है कलाः जो सीखा है उसको अनसीखा करने की। वह तुम्हारी स्लेट को साफ करता है। तुमने काफी गूद डाला है अपना मन; न मालूम क्या-क्या लिख लिया है--काम का, बेकाम का, कारण-अकारण, संगत-असंगत। तुम्हारा मन एक गुदी हुई स्लेट है, जिसमें अब कुछ भी समझ में नहीं आता कि क्या तुमने लिखा था, क्या तुम लिख रहे थे। तुम खुद भी नहीं पढ़ सकते अपने लिखे हुए को जो तुमने अपने मन पर लिख लिया है। वहां भीतर आंख डालोगे तो बड़ी घबड़ाहट होगी। जैसे ही लोग ध्यान शुरू करते हैं, मेरे पास आने लगते हैं कि बड़ा कनफ्यूजन पैदा हो रहा है, बड़ी विभ्रांति आ रही है। कोई ध्यान से कहीं विभ्रांति आती है? लेकिन ध्यान से यह घटना घटती है कि तुम जरा भीतर देखने में समर्थ हो जाते हो। और भीतर तो विभ्रांति भरी पड़ी है। तुमने अपने मन की स्लेट पर क्या-क्या लिख दिया है, अब उसको पढ़ना भी मुश्किल है।
मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में दो घटनाएं हैं। एक घटना है कि गांव के
एक आदमी ने आकर कहा कि पत्र लिख दो। क्योंकि वही पढ़ा-लिखा आदमी है गांव में। तो नसरुद्दीन ने कहा, न लिख सकूंगा, क्योंकि मेरे पैर में बहुत दर्द है। उस आदमी ने कहा, लेकिन पैर में दर्द से और पत्र लिखने का क्या संबंध? तुम भलीभांति चंगे बैठे हो। हाथ से लिखना है पत्र कि पैर से? नसरुद्दीन ने कहा, तू समझता नहीं, यह जरा मामला जटिल है। क्योंकि लिख तो दूं, लेकिन पढ़ने के लिए मुझे दूसरे गांव भी जाना पड़ता है। पढ़ेगा कौन? और मेरे पैर में दर्द है।
और दूसरी घटना है कि एक आदमी ने पत्र लिखवाया; नसरुद्दीन ने पूरा पत्र लिख दिया। फिर उस आदमी ने कहा कि भई कहीं कुछ भूल-चूक न हो गई हो, आप जरा पढ़ कर सुना दो। तो मेरे प्यारे भाई, बस उतना ही वह पढ़ पाया। फिर बार-बार उसी को पढ़े। उस आदमी ने कहा, आगे क्यों नहीं पढ़ते? क्या इतना ही लिखा है? नसरुद्दीन ने कहा कि देख, लिखना हमारा काम है, कोई पढ़ना तो नहीं। लिख दिया, अपनी झंझट खतम हुई। अब यह झंझट उनकी है जिनको पढ़ना हो। देहाती बोला, बात तो ठीक है। और फिर पता दूसरे का है तो यह गैर-कानूनी भी है, नसरुद्दीन ने कहा, किसी दूसरे के नाम लिखा गया पत्र पढ़ना गैर-कानूनी है; तू मुझको उलझा मत।

तुम्हारा मन है। तुमने लिखा है। तुम स्वयं भी पढ़ न सकोगे कि क्या लिख लिया है। जो तुमने लिखा है उसमें से नब्बे प्रतिशत तो अचेतन में लिखा है, मूर्च्छा में लिखा है, बेहोशी में लिखा है। थोड़ा सा ही होश में लिखा है। वह भी सब गड्ड-मड्ड हो गया है। तुम्हारे सपने भी लिखे हैं तुम्हारे मन पर; तुम्हारी जागृति भी लिखी है; तुम्हारी निद्रा भी लिखी है। तुमने शराब पीकर भी लिखा है कभी; कभी ध्यान करके भी लिखा है। वह सब मिश्रित हो गया है। सदगुरु का पहला काम है कि वह इस सब कचरे को हटा दे। इसके पहले कि नये बीज बोए जाएं, माली पुरानी जड़ों को निकाल कर बाहर फेंक देता है; घास-पात को उखाड़ देता है; जमीन को साफ कर लेता है। फिर ही नये बीज बोए जाते हैं। इसके पहले कि वास्तविक ज्ञान तुम में जग सके, तुमने जो झूठा ज्ञान सीख लिया है, जो घास-पात उगा लिया है, वह हटा देना जरूरी है। क्योंकि घास-पात का एक गुण है कि अगर वह मौजूद रहे तो असली के भी बीजों को छिपा लेगा। अगर तुम पंडित होकर मेरे पास आओ और तुम अपने पांडित्य को बचाना चाहो, तो जो भी मैं दूंगा, तुम्हारे पांडित्य के कचरे में वह भी खो जाएगा।
कबीर के पास एक पंडित आया। ज्ञानी था; काशी में बड़ा उसका नाम था। और कबीर सभी को शिक्षा देते थे जो भी आता। लेकिन उस पंडित को कहा कि नहीं भाई, तू हमको मुसीबत में मत डाल। उसने कहा, लेकिन आप किसी को मना नहीं करते। और मैं तो पात्र हूं। मैंने कुपात्रों को भी आपके घर आते देखा है। और मुझे मना करते हो? कबीर ने कहा कि तू इतना जानता है, और तेरे मन की भूमि पर इतने घास-पात उगे हैं कि जो बीज हम डालेंगे वह खो जाएगा। नहीं, तू इस झंझट में हमको मत डाल।
कबीर बार-बार कहे हैंः हीरा हिरायल कीचड़ में। तो हम इस कीचड़ में हीरा
न डालेंगे। कीचड़ तो रहेगी और हीरा और खो जाएगा।
सदगुरु साफ करता है। एक बार तुम्हारे मन की स्लेट बिल्कुल पोंछ कर साफ कर दी जाए। न तुम हिंदू रह जाओ, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई, न पारसी; तुम्हारी मन की स्लेट साफ हो जाए। तो ज्ञान कहीं बाहर से थोड़े ही लाना है। तुम्हारे घास-पात में ही दबे पड़े हैं वे बीज जिनसे गुलाब के फूल उठ आएंगे।
लेकिन घास-पात दबाए हुए है बुरी तरह। और गुलाबों को सम्हालना पड़ता है। घास-पात को सम्हालना नहीं पड़ता; वह अपने आप ही बढ़ता है। उसके लिए पानी देने की भी जरूरत नहीं है। वह अपना इंतजाम खुद ही कर लेता है। और तुम एक बार काट दो घास-पात को, वह हजार बार बढ़ेगा। उसकी जड़ें उखाड़ देनी पड़ेंगी।
जड़ें उखाड़ने के लिए लाओत्से कह रहा है कि पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा ही नहीं किया। क्योंकि पहले घास-पात बोओ, फिर उसे उखाड़ो, इससे बेहतर है कि स्लेट को साफ ही रहने दो। बल्कि वे उन्हें अज्ञानी रखना चाहते थे।
अज्ञानी का अर्थ है सरल; अज्ञानी का अर्थ है निर्दोष; अज्ञानी का अर्थ
है छोटे बच्चों की भांति। अज्ञानी का अर्थ है कुंआरे; अज्ञानी का अर्थ है जिसके मन में कुछ व्यर्थ नहीं प्रविष्ट किया; जो कुछ जानता नहीं। जो कुछ भी नहीं जानता उसके जीने का मजा ही और है। उसे हर चीज अनपेक्षित है। छोटे बच्चों को गौर से देखें। एक तितली उड़ जाती है और बच्चा ऐसा नाच उठता है कि तुम्हें अगर कुबेर का खजाना भी मिल जाए तो भी तुम इस भांति न नाच सकोगे। क्या मामला है? बच्चे की चेतना में क्या घटता है? दौड़ पड़ा तितली के पीछे। एक घास में उगा हुआ फूल तोड़ आता है और ऐसा प्रसन्न लौटता है नाचता हुआ घर कि कोई बड़ी संपदा लेकर आ रहा है। घास पर जमी ओस को अपने मुंह पर लगा लेता है, और उसकी प्रसन्नता देखो। क्या है बच्चे की चेतना में? जिसको लाओत्से अज्ञान कह रहा है वही। बच्चा जानता नहीं। जो जानता नहीं, उसे हर चीज नयी है। जो जानता नहीं उसके पास अतीत से तौलने का तो कोई उपाय नहीं। वह यह तो नहीं कह सकता कि यह ओस है, यह गुलाब है, यह तितली है। बच्चे को कुछ पता ही नहीं; अतीत का कोई अनुभव नहीं है। अनुभव न होने के कारण हर घड़ी बच्चा जीवन को नया अनुभव करता है।
तुम्हारा पुराना अनुभव बीच में आ जाता है; ज्ञान बीच में खड़ा हो जाता है। तुम सोच ही नहीं सकते, कितना फासला है। तुम एक छोटे बच्चे को दौड़ते तितली के पीछे शायद कहोगे कि मत दौड़, कुछ भी नहीं है, बस एक तितली है। लेकिन

तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या कह रहे हो। और बच्चे तुम्हें बिल्कुल नहीं समझ पाते। तितली उनके लिए एक इतना अज्ञात अनंत का द्वार है! यह उनके भरोसे के बाहर है कि इतना सौंदर्य भी है जगत में! बच्चा दौड़ रहा है। तुम्हें लगता है तितली के पीछे दौड़ रहा है। बच्चा तो अनंत और अज्ञात के पीछे दौड़ रहा है। छोटे बच्चे तितलियों को पकड़ लेंगे तो तोड़ कर उनके भीतर देखना चाहते हैं। शायद तुम सोचते हो बच्चे हिंसक हैं, तो तुम गलती में हो। बच्चे तो सिर्फ अज्ञात के भीतर झांकना चाहते हैं कि क्या छिपा है? कोई हिंसा से उनका लेना-देना नहीं है। वे तो भीतर देखना चाहते हैंः क्या है? रहस्य क्या है? क्यों यह तितली इतनी सुंदर है? और कैसे उड़ती थी? इसके प्राणों का स्रोत कहां है?
अज्ञानी बच्चे जैसा होगा। अज्ञान का अर्थ है तुम्हें वे बातें न सिखाई जाएं जिनके सीख लेने से तुम्हारे हाथों पर और जीवन पर दस्ताने पैदा हो जाते हैं। जब फिर से कभी कोई व्यक्ति संतत्व को उपलब्ध होता है तो फिर बच्चों जैसा हो जाता है।
रामकृष्ण के संबंध में कथा है कि वे छोटी-छोटी चीज में बड़े उत्सुक हो जाते थे। और लोग दुखी होते थे इससे, शिष्यों को बेचैनी होती थी। क्योंकि शिष्य चाहते लोग समझें कि वे सब चीजों के पार हो गए हैं। और वे छोटी-छोटी चीजों में उत्सुक हो जाते। पत्नी भोजन भी बना कर लाती तो ब्रह्मचर्चा छोड़ देते थे वे। ब्रह्मचर्चा चल रही थी; शिष्यों को समझा रहे थे; पत्नी भोजन की खबर लेकर आ जाती तो वे एकदम उठ कर खड़े हो जाते, वे भूल ही जाते ब्रह्मचर्चा। वे झांक कर पहले थाली में देखते--क्या भोजन बना है! बीच-बीच में ब्रह्मचर्चा छोड़ कर, कथा है, कि वे चौके में पहुंच जाते थे, जरा झांक आते थे--क्या बन रहा है! पत्नी भी उनकी कहती थी कि परमहंसदेव, यह शोभा नहीं देता। लोग क्या कहेंगे? अगर उनको यह पता चल जाए कि तुम बीच चर्चा में, ब्रह्म की बातें समझाते-समझाते बीच-बीच में, चौके में आकर देख भी जाते हो कि आज क्या बन रहा है, तो लोग क्या कहेंगे!
वे कोई भी परमहंस रामकृष्ण को न समझ पाते थे। वे सब ज्ञान से जी रहे थे
कि रामकृष्ण को कैसा होना चाहिए, सिद्धांत, कि ऐसे महापुरुष कहीं भोजन की फिकर करते हैं! ऐसे महापुरुष तो स्वाद ही नहीं लेते! लेकिन रामकृष्ण छोटे बच्चे की भांति हो गए हैं।
यह जो बालपन है, इस बालपन का जो सौंदर्य है, उसी को लाओत्से अज्ञान कह रहा है। कभी इस पृथ्वी पर अधिक लोग ऐसे ही थे। फिर ज्ञान ने भ्रष्ट किया; वेदों-कुरानों ने मिटाया; आदमी की खोपड़ी को भर दिया शब्दों से। और उसके जीवन का सारा सौंदर्य नष्ट हो गया। सारी पुलक चली गई। नाच खो गया। गीत कंठ में ही दब गए। हृदय की धड़कन धीमे-धीमे धीमी होती हुई बिल्कुल खो गई। बस खोपड़ी का शोरगुल रह गया।
लाओत्से यह कह रहा है कि हृदय से है रास्ता सत्य का, मस्तिष्क से नहीं। कितना तुम सोचते हो, इससे तुम करीब न पहुंच जाओगे सत्य के। कैसे तुम जीते हो, एक निर्दोषता में, बच्चे जैसे, उससे ही पहुंचोगे।
रामकृष्ण को बड़ी अड़चन थी। क्योंकि पूजा-पाठ करने के लिए रखा गया था उनको दक्षिणेश्वर में। पुजारी थे। तो पुजारी का तो काम पंडित का है। और ये तो बिल्कुल गैर-पंडित जैसे आदमी थे। इनका तो कभी-कभी झगड़ा भी हो जाता था काली से। अब यह कहीं संभव है पुजारी कि झगड़ा कर ले? लेकिन प्रेमी कर सकता है। और प्रेम न हो तो पूजा क्या? कभी-कभी बड़ा झगड़ा हो जाता।
एक बार तो इतने गुस्से में आ गए कि तलवार उठा ली, कहा कि अब होता हो ज्ञान तो इसी वक्त हो जाए नहीं तो गर्दन काट कर रख देता हूं, बहुत हो गया! और कहते हैं, उसी दिन रामकृष्ण को ज्ञान हुआ। एक काली के मंदिर में तलवार रखी थी, काली की सजावट का हिस्सा थी, उसको उठा लिया, निकाल लिया म्यान से। कोई भी नहीं था। क्योंकि उनकी पूजा कितनी देर चले उसका कोई हिसाब न था। लोग आते थे दस-पांच मिनट शुरू में, जब घंटा बजता। और यह सब होता तो लोग तभी चले जाते। क्योंकि उनका तो घंटों चलता था; कभी-कभी छह-छह घंटा। अब उतनी देर कौन लोग वहां बैठे रहें? और कौन यह बकवास सुने कि वे बातचीत कर रहे हैं, चर्चा हो रही है, जवाब-सवाल हो रहे हैं। कोई नहीं था मंदिर में। खींच ली

तलवार और कहा कि अब बहुत हो गया, कर चुके काफी पूजा, और अब आज दांव पर पूरा लगा देते हैं। खींची तलवार अपनी गर्दन तक--और सब बदल गया एक क्षण में। तलवार हाथ से नीचे गिर गई; मंदिर खो गया; काली खो गई; रामकृष्ण खो गए। अठारह घंटे कोई होश नहीं आया। अठारह घंटे बाद होश आया तो आंख से आंसू बह रहे थे और वे चिल्ला रहे थे कि अब वापस मत भेज! अब जब दिखा ही दिया है तो अब वापस क्यों भेजती है! अब मुझे भीतर ही रहने दे। उस दिन घटना घट गई।
अब पंडितों ने कहीं भी नहीं लिखा है कि तलवार उठा कर और पूजा करना। और पंडितों ने लिखा होता और तुम तलवार उठाते भी तो वह औपचारिक होती, वह हार्दिक न होती। तुम जानते थे कि कौन मार रहा है, कौन मारने जा रहा है। रामकृष्ण भोग लगाते तो पहले खुद को लगा लेते, फिर काली को। मंदिर की कमेटी थी ट्रस्टियों की। एतराज उठाया और बुलाया और कहा कि यह नहीं चलेगा। रामकृष्ण ने कहा, तो नहीं चलेगा तो अपनी नौकरी सम्हालो। क्योंकि मेरी मां जब मुझे खाना बना कर खिलाती थी तो पहले खुद चख लेती थी। जब मां तक बेटे के लिए खाना देने के पहले चख लेती है और देखती है कि देने योग्य है भी या नहीं, तो मैं बिना चखे भगवान को भोग नहीं लगा सकता। पता नहीं, देने योग्य है भी या नहीं। तो तुम सम्हाल लो।
अब किसी शास्त्र में नहीं लिखा है कि भगवान को भोग लगाने के पहले खुद
चख लेना। लेकिन हृदय के शास्त्र में तो यही बात लिखी है। प्रेम नियम नहीं जानता, क्योंकि प्रेम आत्यंतिक नियम है। पूजा कोई औपचारिक क्रिया-कांड नहीं है, पूजा तो हृदय का उन्मेष है। लेकिन उसके लिए बड़ी सरलता चाहिए। और रामकृष्ण बड़े सरल आदमी थे। बेपढ़े-लिखे थे; दूसरी क्लास; वह भी पास नहीं थे। उतना थोड़ा सा ज्ञान था। ग्रामीण थे; कुछ जानते नहीं थे। और इस सदी में सब जानने वालों को पीछे छोड़ दिया। इस सदी में उनका आविर्भाव ऐसा हुआ कि एक बेपढ़ा-लिखा, एक गंवार गांव का, बड़े से बड़े पंडितों को फीका कर गया।
हृदय का एक कण भी तुम्हारी बुद्धि की समस्तता से ज्यादा मूल्यवान है। भाव की एक छोटी सी ऊर्मि भी तुम्हारी खोपड़ी के बड़े से बड़े सागर से बड़ी है-- एक छोटी सी लहर। क्योंकि वह जीवंत है।
लाओत्से कहता है कि ताओ का अनुगमन करना जो जानते थे, उन पूर्व-पुरुषों
ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा नहीं किया; बल्कि वे उन्हें अज्ञानी ही रखना चाहते थे। क्योंकि उनके अज्ञान में एक गरिमा थी, एक सरलता थी, एक सौम्यता थी। उस अज्ञान में एक हृदय का भाव था। उस अज्ञान में एक खूबी थी जो शिक्षा ने नष्ट कर दी।
आज दुनिया की बड़ी से बड़ी जो तकलीफ है वह यही है कि लोग बहुत शिक्षित हो गए। और सभी समझदार लोग कह रहे हैं कि युनिवर्सल एजुकेशन, सार्वभौम शिक्षा चाहिए। एक आदमी न बचे जो अशिक्षित हो; सब को शिक्षित करना है। चाहे उनकी मर्जी हो चाहे न हो, सबको अनिवार्य रूप से शिक्षित करना है। अज्ञानी किसी को छोड़ना ही नहीं है। और बिना सोचे-समझे हम मनुष्य को शिक्षित किए जा रहे हैं। और शिक्षा का कुल परिणाम इतना हुआ है कि आदमी जंग खा गया है; उसकी सब सरलता खो गई। शिक्षा का कुल परिणाम इतना हुआ, आदमी कठोर हो गया है, उसकी सारी सौम्यता खो गई। शिक्षा का कुल परिणाम इतना हुआ कि आदमी ज्ञानी नहीं हुआ, चालाक हो गया है। शिक्षा चालाक बनाती है। शिक्षित आदमी शोषण करने में कुशल हो जाता है। वह इस तरह की तरकीबें बिठाता है कि खुद काम न करना पड़े और दूसरों से काम ले ले। शिक्षित आदमी के पूरे जीवन की योजना ही यह होती है कि उसे कुछ न करना पड़े और वह दूसरों का शोषण कर ले।
और शिक्षित आदमी चालाक हो जाता है कि जो चीज बिना काम किए मिलती हो, कैसे बिना कुछ किए चीजें मिल जाएं, यही उसकी पूरी कुशलता हो जाती है। और यही तो चोरी है। चोरी और क्या है? चोरी का एक ही अर्थ है कि जिसके लिए हमने श्रम न किया हो उसे पा लेने की कोई तरकीब। दूसरे की जेब से कैसे पैसा निकल आए, बिना हाथ डाले, उसकी कुशलता शिक्षित आदमी में आ जाती है।
और शिक्षित आदमी महत्वाकांक्षी हो जाता है; वह सबसे ऊपर पहुंचना चाहता है। और शिक्षित आदमी के जीवन से प्रेम तिरोहित हो जाता है; क्योंकि प्रेम गणित में बैठता नहीं, बल्कि गणित को गड़बड़ करता है। शिक्षित आदमी के जीवन से सौंदर्य, काव्य, धर्म, सब खो जाता है। उसके पास तो सिर्फ हिसाब रह

जाता है--गणित और तर्क, और शोषण की कला, और महत्वाकांक्षा का ज्वर। शिक्षित आदमी ज्वरग्रस्त है।
डी.एच.लारेंस ने, जो कि इस सदी में लाओत्से को प्रेम करने वाले थोड़े से लोगों में एक था, एक सुझाव दिया था। वह सुझाव मुझे बहुत प्रीतिकर लगता है। वह सुझाव था कि सौ वर्ष के लिए सब युनिवर्सिटीज, सब कालेज, सब स्कूल, सब बंद कर देने चाहिए। सौ वर्ष के लिए आदमी को बिल्कुल बिना शिक्षा के छोड़ देना चाहिए। तो जो भी हमने कोई दस हजार वर्षों में आदमी के मन में कचरा भर दिया है, वह स्लेट साफ हो जाए। जैसे किसान दो-चार साल मेहनत करने के बाद खेत को खाली छोड़ देता है, बिना फसल के, ताकि खेत अपनी ऊर्जा को पुनः उपलब्ध कर ले। ऐसा मुझे भी लगता है कि सौ साल के लिए अगर आदमी को शिक्षा से स्वतंत्र कर दिया जाए तो लोग वापस उस अवस्था में पहुंच जाएंगे जिनकी लाओत्से चर्चा कर रहा है। लोग सरल हो जाएंगे; शोषण खो जाएगा। न पूंजीवाद की जरूरत होगी; न समाजवाद की जरूरत होगी। लोग थोड़े से तृप्त हो जाएंगे। और इतना काफी है कि हरेक को तृप्त कर सके। जल की कमी नहीं; भोजन की कमी नहीं; छाया मिल सकती है शरीर को।
लेकिन महत्वाकांक्षा के लिए तो कभी भी कुछ पूरा नहीं है। महत्वाकांक्षा दौड़ाती है, और दौड़ाती है; थकाती है, और मार डालती है। जीवन को जानने से वंचित ही रह जाते हैं।
"कारण है कि लोगों के लिए शांति में रहना कठिन है, अतिशय ज्ञान के चलते।"
जैसे ही ज्यादा ज्ञान हो जाता है, वैसे ही खुद की शांति भी खो जाती है। क्योंकि मन में विचार ही विचार भर जाते हैं। रात सोते भी हैं तो भी विचार चलते ही रहते हैं। उठते हैं तो चलते ही रहते हैं। विचारों का इतना झंझावात कि शांति खो जाती है; भीतर उतरना ही मुश्किल हो जाता है; नाव को ले जाना ही मुश्किल हो जाता है यात्रा पर।
और हमारी पूरी शक्ति इसमें लग रही है कि कैसे हम लोगों को ज्यादा ज्ञानी बना दें। और लोग जितने ज्ञानी होते जाते हैं उतने ही मुर्दा होते जाते हैं।
कभी ठेठ गांव में जाकर देखना चाहिए। ठेठ गांव से मेरा मतलब जहां अभी सरकार बिजली न पहुंचा पाई हो; जहां स्कूल न खोल पाई हो; जहां समाज-सुधारक अभी तक न पहुंचे हों और लोगों को शिक्षित न कर पाए हों; जहां नेतागणों की गति न हो पाई हो; और जहां क्रांतिकारियों की कोई खबर न पहुंची हो; कोई आदि- आदिमवासियों का गांव। तब एक दूसरे ही तरह के मनुष्य का दर्शन होता है। उसके शरीर का सौष्ठव अलग, उसके प्राणों का ढंग अलग, उसके जीने के नियम अलग। बर्मा के जंगलों में अभी-अभी एक जाति के संबंध में कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। तो वे कहते हैं, उस जाति को याद ही नहीं है कि वहां किसी ने कभी सपना देखा हो। सपना नहीं देखा किसी ने! लोग इतने शांत हैं कि सपना क्यों देखें? सपना तो अशांति का हिस्सा है। उस छोटे से कबीले में कभी कोई युद्ध नहीं हुआ, कोई झगड़ा नहीं हुआ। कोई और ढंग होगा उनके होने का; क्योंकि हम तो दो घड़ी पास नहीं बैठ सकते और झगड़ा शुरू हो जाता है। और झगड़े हमारे इतने बारीक हैं कि कहना मुश्किल है।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसके गांव के धर्मगुरु में झंझट थी, और एक-दूसरे में कलह हो जाती थी। अंततः बात अदालत में पहुंच गई। और मजिस्ट्रेट ने कहा कि तुम दोनों ही समझदार आदमी हो; क्यों व्यर्थ के उत्पात खड़े कर लेते हो? इसको निपटा लो। और मैं नहीं चाहता कि तुम दोनों भले आदमियों को अदालत में आना पड़े और अदालत तक बात खींची जाए। तुम आपस में ही निपटा लो। धर्मगुरु ने कहा, ठीक। जब धर्मगुरु ने कहा ठीक तो नसरुद्दीन ने भी कहा, चलो ठीक। निकलने को हुए अदालत से बाहर कि नसरुद्दीन ने पूछा कि कहो, अब मेरे संबंध में क्या विचार हैं? ठीक से सुनना। नसरुद्दीन ने कहा कि कहो, अब मेरे संबंध में क्या विचार हैं? उस आदमी ने कहा, वही विचार हैं जो तुम्हारे मेरे संबंध में हैं। नसरुद्दीन लौटा और उसने कहा कि देखिए, फिर शुरू कर दिया इसने! नसरुद्दीन ने न्यायाधीश से कहा कि देखिए महानुभाव, फिर शुरू कर दिया इसने!

क्योंकि मेरे ख्याल तो इसके संबंध में बहुत बुरे हैं। और यह कह रहा है यही ख्याल इसके मेरे संबंध में हैं। झगड़ा शुरू हो गया।
सभ्य आदमी जैसे बिना झगड़े के रह नहीं सकता। उसकी सब सभ्यता के भीतर, संस्कार के भीतर झगड़ा छिपा है। क्योंकि अशांत आदमी बिना झगड़े के रह कैसे सकता है? वह मैत्री भी करता है तो उसमें शत्रुता का दंश होता है। वह प्रेम भी करता है तो उसमें घृणा का जहर होता है। वह पास भी आता है तो दूर खिंचा रहता है।
उस कबीले ने इतिहास में कभी कोई झगड़ा नहीं किया; कोई झगड़ा नहीं हुआ। अगर एक कबीले में ऐसा हो सकता है तो सारी दुनिया में भी ऐसा हो सकता है।
अगर थोड़े से लोगों में ऐसा हो सकता है तो सब में क्यों नहीं हो सकता? हमारे रहने के ढंग में कहीं कोई कठिनाई है, कहीं कोई गड़बड़ है, कहीं कोई मूल भूल है।
और लाओत्से कहता है कि अतिशय ज्ञान के चलते शांति असंभव है।
और जब व्यक्ति शांत नहीं होता तो वह अपनी अशांति दूसरों पर निकालता है। तब वह अपनी अशांति दूसरों पर फेंकता है; दूसरों को उत्तरदायी ठहराता है। तब संघर्ष शुरू होते हैं। और यही संघर्ष बढ़ते-बढ़ते बड़ी कलह का रूप लेते हैं। धर्म लड़ते हैं, राष्ट्र लड़ते हैं; जातियां लड़ती हैं।
अगर हम मनुष्य का इतिहास गौर से देखें तो सिवाय लड़ाई के आदमी ने अब तक कुछ किया ही नहीं है। तीन हजार सालों में कोई पंद्रह हजार युद्ध हुए। हिसाब लगाया है इतिहासज्ञों ने तो वे कहते हैं कि तीन हजार सालों में ऐसे कुछ ही दिन हैं जब कहीं न कहीं युद्ध न हो रहा हो, कुछ ही दिन हैं जब कहीं भी युद्ध नहीं हो रहा। नहीं तो कहीं न कहीं युद्ध हो रहा है; कभी वियतनाम है, कभी कंबोदिया है, कभी कश्मीर है, कभी इजरायल है। कहीं न कहीं युद्ध हो रहा है। पृथ्वी कहीं न कहीं बड़े गहरे घाव से भरी रहती है, और मनुष्यता का प्राण कहीं न कहीं तड़पता रहता है, छुरा कहीं न कहीं छाती में भुंका ही रहता है। क्या कारण होगा? क्या आदमी शांति से नहीं रह सकता? क्या आकाश के तारे
और सूरज और वृक्ष और पक्षियों के गीत और पृथ्वी की हरियाली तृप्त होने के लिए काफी नहीं है? क्या परमात्मा ने जो दिया है वह कम है, इतना कम है कि हमें लड़ना ही पड़ेगा? हम उसे भोग नहीं सकते? क्या यह नहीं हो सकता कि जितनी ऊर्जा हमारी युद्धों में लगती है उतनी ऊर्जा जीवन के उत्सव में लग जाए? कि जिस शक्ति को हम नष्ट करते हैं युद्धों में... । क्योंकि करीब-करीब हर राष्ट्र की सत्तर प्रतिशत शक्ति युद्ध में लगती है। और बाकी तीस प्रतिशत जो है उसको भी अगर हम बहुत गौर से देखें तो घरेलू युद्ध न हो जाएं उनमें लगी रहती है। कहीं कोई आंदोलन है; कहीं कोई घेराव है; कहीं कोई उपद्रव है। आदमी बिना उपद्रव के एक क्षण नहीं है। और अपने उपद्रवों को बड़े अच्छे- अच्छे नाम देता है; कभी धर्मयुद्ध, जेहाद, कभी क्रांति, कभी इंकलाब, कभी स्वतंत्रता। बड़े अच्छे-अच्छे नाम देता है। और अच्छे नामों के पीछे छिपी रहती है सिर्फ अशांति, लड़ने की आकांक्षा। कोई बहाना मिल जाए और हम लड़ लें। कोई भी बहाना मिल जाए हम लड़ लें।
बहाना न हो तो हम ईजाद करते हैं। हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है
कि अगर कोई दुश्मन न हो तुम्हारा, तो ईजाद कर लेना चाहिए, क्योंकि बिना दुश्मन के किसी भी राष्ट्र में शांति रखना असंभव है। क्योंकि लोग अगर बाहर न लड़ेंगे, तो भीतर लड़ेंगे। अगर हिंदुस्तान-पाकिस्तान न लड़ेंगे, तो इंदिरा और जयप्रकाश उपद्रव खड़ा करेंगे। इसलिए हर राजनीतिज्ञ कोशिश करता है कि बाहर कहीं न कहीं उपद्रव चलता रहे। जैसे ही बाहर उपद्रव जोर से चलता है, भीतर उपद्रव की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
इसे देखें गौर से। हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमान थे; पाकिस्तान नहीं बंटा था, हिंदू-मुसलमान लड़ते थे। तब तुमने कभी न सुना था कि हिंदी भाषी और गैर-हिंदी भाषी लड़ते हैं। तब तुमने कभी न सुना था कि मराठी और गुजराती लड़ सकते हैं। तब तुमने कभी न सुना था कि कन्नड़ और मराठी लड़ सकते हैं। दोनों हिंदू थे; लड़ने का कोई सवाल ही न था। लड़ाई बाहर चल रही थी; हिंदू-मुसलमान के बीच थी। अशांति वहां निकल जाती थी। फिर पाकिस्तान बंट गया। अब अशांति वहां निकलने का कोई कारण न रहा। अब हमें नये उपाय खोजने पड़ेंगे। अशांति तो

है। तो अब कन्नड़ और मराठी लड़ेंगे। तो अब हिंदी और गैर-हिंदी भाषी लड़ेगा। और तुम यह मत सोचना कि यह झगड़ा मिट जाए तो कुछ हल होता है। सोच लो कि गुजरात को बिल्कुल सबसे अलग काट कर कर दिया जाए, तो कच्छी और गुजराती लड़ेगा; सौराष्ट्र का रहने वाला गुजराती से लड़ेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम बांटते जाओ। जब तक दो आदमी हैं, लड़ाई जारी रहेगी। और अगर एक ही बचा तो वह आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि कहां जाएगी अशांति? अशांति को कहीं तो निकालना पड़ेगा। और लाओत्से उसका मूल कारण कह रहा है कि लोगों को तुमने इतने विचार दे दिए हैं कि अब उनके मन शांत नहीं हो पाते।
"जो ज्ञान से किसी देश पर शासन करना चाहते हैं वे राष्ट्र के अभिशाप हैं। जो ज्ञान से देश पर शासन नहीं करना चाहते, वे राष्ट्र के वरदान हैं।" ये बड़ी उलटी बातें मालूम पड़ती हैं, पर बड़ी महत्वपूर्ण और बड़ी सत्य हैं।
"जो इन दोनों सिद्धांतों को जानते हैं वे प्राचीन मानदंड को भी जानते हैं। और प्राचीन मानदंड को सदा जानना ही रहस्यमय सदगुण कहाता है। जब रहस्यमय सदगुण स्पष्ट, दूरगामी बनता है और चीजें अपने उदगम को लौट जाती हैं, तब, और तभी, उदय होता है भव्य लयबद्धता का।"
तो लाओत्से कहता है, जो इन दो सिद्धांतों को समझ लेते हैं कि अज्ञान में लोग शांत होते हैं और ज्ञान में अशांत हो जाते हैं; अज्ञान में लोग सरल होते हैं और ज्ञान में जटिल और कुटिल हो जाते हैं; अज्ञान में निर्दोष होते हैं, ज्ञान में चालाक, जो इन दोनों सिद्धांतों को जानता है उसे उस प्राचीन मानदंड का भी अनुभव हो जाएगा। वह प्राचीन मानदंड, रहस्यमय सदगुण उसको कहता है लाओत्से, वह प्राचीन मानदंड क्या है? वह प्राचीन मानदंड यह है कि तुम्हारा जीवन का अंतिम लक्ष्य जीवन के मूल स्रोत को पा लेना है; वहीं पहुंच जाना है जहां से तुमने शुरू किया था। वह प्राचीन मानदंड है। लक्ष्य, अंत, प्रारंभ से भिन्न नहीं है। जीवन वर्तुलाकार है। जैसे वर्तुल जहां से शुरू होता है वापस वहीं पूरा हो जाता है। और जीवन में सारी गति वर्तुलाकार है। तारे वर्तुलाकार घूमते हैं; सूरज वर्तुलाकार घूमता है; पृथ्वी वर्तुलाकार घूमती है। मौसम आते हैं एक वर्तुल में। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म-मृत्यु एक वर्तुल में घूमते हैं। सारी जीवन की गति सर्कुलर है, वर्तुलाकार है। और वर्तुल का लक्षण यह है कि चीजें वहीं आकर पूर्ण होती हैं जहां से शुरू हुई थीं। इसका अर्थ हुआः प्रथम कदम ही अंतिम कदम सिद्ध होता है। सारी यात्रा के बाद तुम अपने घर ही वापस लौट आते हो। यह है प्राचीन मानदंड।
लेकिन साधारणतः शिक्षा, ज्ञान, पांडित्य तुम्हें सिखाता है कि कोई लक्ष्य पाना है जो तुम्हारे पास नहीं है; कोई महत्वाकांक्षा पूरी करनी है; एक रेखा में चलना है। जैसे समझो। एक बच्चा पैदा हुआ। क्या लेकर पैदा होता है? खाली हाथ पैदा होता है। मरता है तब भी खाली हाथ मरता है। वही अवस्था वापस लौट आती है। जो इन दोनों को जोड़ लेता है और समझ लेता है कि इसके बीच सारा खेल है। धन आता है, जाता है; जीत होती है, हार होती है; असफलता, सफलता; पाना, खोना; लेकिन सब बीच में है। अंत में तो वहीं लौट आते हैं जहां से चले थे। खाली हाथ फिर खाली हो जाते हैं। जिसने इस बात को समझ लिया, उसने जीवन के सदगुणों का सार समझ लिया, उसने जीवन का रहस्यमय सदगुण समझ लिया, उसने वह अनूठा मानदंड पहचान लिया। क्योंकि तब वह ध्यान रखेगा कि आज नहीं कल हाथ खाली हो जाने हैं। और जिसको यह पता है कि अंत में हाथ खाली हो जाने हैं, जैसा आया था वैसा ही जाना है, वह सफलता में बहुत पागल भी न होगा, विफलता में बहुत दुखी भी न होगा; न तो सफलता में नाचेगा, और न विफलता में मुर्दा की तरह बैठ जाएगा; क्योंकि वह जानता है अंततः सब चला जाएगा। हाथ ही पास रह जाएंगे, खाली हाथ। तो आना-जाना खेल रह जाएगा। उसमें ज्यादा मूल्य नहीं है।
लेकिन सारी शिक्षा क्या सिखाती है? सारी शिक्षा वर्तुलाकार नहीं सिखाती जीवन को, रेखाबद्ध, लीनियर बताती है। शिक्षा कहती है, आज तुम्हारे पास एक रुपया है, कल दो होने चाहिए, परसों तीन होने चाहिए। आज दस हजार हैं, कल पचास हजार होने चाहिए। रेखाबद्ध तुम्हें बढ़ते जाना चाहिए। मरते वक्त करोड़ों रुपये तुम्हारे पास होने चाहिए; तभी तुम सफल हुए। अन्यथा तुम असफल

हो गए। महत्वाकांक्षा चलती है एक रेखा में और जीवन चलता है वर्तुल में। महत्वाकांक्षा कहती है, जन्म हो गया, अब मृत्यु होनी ही नहीं चाहिए। अब तो जीओ, और जीने का हर उपाय करो। मरते दम तक भी मरने को टालो।
और पश्चिम में बहुत से उपाय खोज लिए गए हैं। तो बहुत से लोग मुर्दों
की भांति टंगे हैं, अस्पतालों में टंगे हैं। इंजेक्शन दिए जाते हैं, वे जिंदा हैं। लेकिन उनकी स्थिति साग-सब्जी से ज्यादा नहीं है। मरना नहीं चाहते, और जीना तो जा चुका है। क्योंकि जीवन वर्तुलाकार है। तो अब वे टंगे हैं--बड़ी पीड़ा में, बड़े कष्ट में। छोड़ नहीं सकते हैं, जीवन को छोड़ने की हिम्मत नहीं है। सब उपाय किए जा रहे हैं कि वे किसी तरह बचे रहें। उनका कोई बचने का अर्थ भी नहीं है, कोई उपयोग भी नहीं है; उनके खुद के लिए भी नहीं है, दूसरे के लिए भी नहीं है। वे एक बोझ हैं। लेकिन अस्पतालों में किसी की टांगें बंधी हैं, किसी के हाथ बंधे हैं, और उनको इंजेक्शन दिए जा रहे हैं और आक्सीजन दी जा रही है। और उनको जिलाया जा रहा है। यह जबरदस्ती है।
यह रेखाबद्ध तर्क का परिणाम है। मरो मत! एक दफे पैदा हो गए, अब मरना नहीं है। एक दफे पद पर पहुंच गए, अब हटना नहीं है पद से। अब और ऊपर जाना है। और कहीं ऊपर जाने को न हो तो जिस पद पर पहुंच गए हैं आखिर में उसको पकड़े रखना है। उसको छोड़ना नहीं है आखिरी दम तक। धन जो मिल गया उसको बढ़ाते जाना है। उसी रेखा में बढ़ते चले जाना है--बिना सोचे कि जब दस हजार से सुख न मिला तो दस लाख से कैसे मिल जाएगा! और जब दस हजार में इतना विषाद है तो दस लाख में तो और बढ़ जाएगा! और जब दस हजार में इतने हारे-थके मालूम पड़ रहे हैं तो दस लाख में क्या गति होगी!
लाओत्से कह रहा है कि जीवन का मापदंड है कि तुम स्मरण रखना कि वर्तुलाकार है सब। आज जवान हो, सदा नहीं रहोगे। और जब जवानी जाने लगे तो पकड़ना मत। विदा दे देना, शांति से विदा दे देना। क्योंकि वर्तुल अब लौटने लगा। पक्षी अपने घर आने लगा। आना ही पड़ेगा घर। यह बात अगर गहरी समझ में आ जाए तो तुम्हारे जीवन में एक सदगुण आ जाएगा, जो साधारण नीति नहीं दे सकती; जो केवल प्रज्ञा से ही पैदा होता है। तब तुम चीजों को आएंगी तो स्वागत करोगे, जाएंगी तो स्वागत करोगे। तुम जानोगे, जो आया है वह जाएगा। तुम जवान हो जाओगे तो प्रसन्न रहोगे; जवानी जाने लगेगी तो प्रसन्न रहोगे। क्योंकि ज्वार आता है तो फिर भाटा भी होगा; चांदनी रातें आएंगी, फिर अंधेरी रातें भी आएंगी। और तुम यह याद रखोगे, आखिर में वही रह जाना है जो तुम प्रथम में थे। और वह कभी खोने वाला नहीं। इसलिए भय क्या है?
खाली हाथ तो सदा तुम्हारे पास होंगे ही। नग्न तुम पैदा हुए थे, नग्न
ही तुम विदा हो जाओगे। न कुछ लेकर आए थे, न कुछ लेकर जाना है। अगर यह बोध गहन हो जाए तो जीवन में एक अनासक्ति आती है। वह अनासक्ति अनासक्ति का व्रत लेने से नहीं आती। वह अनासक्ति तो इस समझ का सहज परिणाम है।
"जो इन दोनों सिद्धांतों को जानते हैं, वे प्राचीन मानदंड को भी जानते हैं। और प्राचीन मानदंड को सदा जानना ही रहस्यमय सदगुण कहलाता है।"
तो दो तरह के सदगुण हैं। एक तो साधारण सदगुण है जिसको हम आरोपित कर लेते हैं। सच बोलना चाहिए। क्योंकि सिखाया गया है, भय दिया गया है कि नहीं सच बोले तो नरक में पड़ोगे, नहीं सच बोले तो स्वर्ग न मिलेगा। भय है, लोभ है, शिक्षा है, संस्कार है। लेकिन यह वास्तविक सदगुण नहीं है। भय के कारण सच बोल रहे हो तो सच तुम्हारा भय से छोटा है। लोभ के कारण सच बोल रहे हो तो सच भी तुम्हारा लोभ का ही हिस्सा है। और सत्य कैसे लोभ का हिस्सा हो सकता है? और सत्य कैसे भय का हिस्सा हो सकता है? सत्य तो अभय है। सत्य तो निर्लोभ है। सिखाया गया है। और सब शिक्षाएं लोभ और भय पर ही खड़ी हैं।
रहस्यमय सदगुण लोभ और भय पर नहीं खड़ा है; बोध पर खड़ा है। तुमने जीवन को समझने की कोशिश की और पाया कि यहां न कुछ बचता है, न बचाने योग्य है; झूठ किसलिए बोलना है? झूठ बोल इसीलिए रहे थे कि कुछ बच जाए। चार पैसे ज्यादा बच सकते थे अगर झूठ बोल देते। सच बोलते तो चार पैसे ज्यादा लग जाते। मुल्ला नसरुद्दीन के लड़के से मैंने पूछा कि तेरी उम्र क्या है? तो उसने कहा कि पहले यह जगह बताइए, किस जगह--बस में, ट्रेन में, घर में?

क्योंकि बस में मैं सुनता हूं चार साल, घर में सुनता हूं छह साल। तो कुछ पक्का नहीं है कितनी उमर है। निर्भर करता है, कौन सी स्थिति है।
चार पैसे बच जाएं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर ट्रेन में बैठा है। और टिकट कलेक्टर ने पूछा, कितनी उमर? तो उसने कहा कि चार साल। उसने कहा कि मालूम तो सात साल का होता है। नसरुद्दीन ने लड़के की तरफ देखा और कहा कि मैं क्या करूं! अब यह चिंता-फिकर करता है अभी से इसीलिए इतना बूढ़ा दिखाई पड़ता है। बाकी है तो चार ही साल का। चिंता-फिकर के कारण सात साल का मालूम पड़ रहा है। दो पैसे के लिए आदमी झूठ बोल रहा है। दो पैसे के लिए आदमी बेईमानी कर रहा है। दो पैसे के लिए आदमी हिंसक हो जाता है। लेकिन जिसको बोध आ गया इस बात का कि लौट जाना है वर्तुल को उसी जगह जहां से हम आए थे, वहां मुट्ठी खुल जाएगी। जिन पैसों के लिए बेईमानी की थी, झूठ बोले थे, हिंसा की थी, वैमनस्य किया था, मुट्ठी खुल जाएगी, पैसे पड़े रह जाएंगे। पैसे तो पड़े रह जाएंगे, लेकिन पैसों के लिए हमने जो किया था वह हमारे चित्त का हिस्सा हो जाएगा; वह हमें भटकाएगा जन्मों-जन्मों में। वह बार-बार हमें बेईमानी के मार्ग पर ले आएगा और बार-बार झूठ का, प्रलोभन का बीज हम बोते रहेंगे।
लाओत्से कहता है कि जीवन के रहस्य को समझना हो तो इस बात को पहले समझ लेना कि सब चीजें अपनी मूल अवस्था में लौट जाती हैं। जहां से तुम आए थे वहीं तुम चले जाते हो। तो यहां अगर तुम हो तो इस मकान को, इस संसार को, सराय से ज्यादा मत समझना। रुके हैं रात, ठीक; सुबह विदा हो जाना है। और अगर तुमने वर्तुलाकार जीवन का अनुशासन निर्मित किया तो तुम धार्मिक हो।
इसे तुम समझ लो, यह गणित की बात है। अगर तुमने जीवन को एक रेखा में सीधा निर्मित किया तो तुम संसारी हो; अगर तुमने जीवन को वर्तुलाकार निर्मित किया तो तुम संन्यासी हो, तुम धार्मिक हो। और इन दोनों गणितों का अलग-अलग फैलाव है। जो रेखाबद्ध बढ़ता है वह कहता है, दस रुपये हैं तो ग्यारह होने चाहिए, ग्यारह हैं तो बारह होने चाहिए। वह निन्यानबे का चक्कर जिसको हम कहते हैं वह रेखाबद्ध गणित है।
तुमने वह कहानी जरूर सुनी होगी कि एक नाई है जो सम्राट के हाथ-पैर दाबता है, मालिश करता है। और सम्राट से सदा ज्यादा प्रसन्न रहता है। उसकी खुशी का कोई अंत नहीं है। और सम्राट को हमेशा हारा-थका पाता है। आखिर सम्राट ने भी एक दिन हिम्मत जुटा कर कहा कि सुन भाई, तेरा राज क्या है? तू इतना प्रसन्न क्यों रहता है? उसने कहा, राज तो मुझे पता नहीं, लेकिन मैं कोई कारण नहीं पाता दुखी होने का। और मैं कोई बहुत समझदार नहीं हूं इसलिए मैं कुछ ज्यादा बता नहीं सकता। लेकिन मैं बड़ा खुश हूं। सम्राट ने अपने वजीर से पूछा। वजीर ने कहा कि राज मैं बता सकता हूं; यह अभी निन्यानबे के चक्कर में नहीं है। राजा ने कहा, क्या मतलब? यह चक्कर क्या है? वजीर ने कहा, आप निन्यानबे रुपये रख कर एक थैली में, इसके घर में फिंकवा दो।
उसी रात निन्यानबे सोने के सिक्के उसके घर में फेंक दिए गए। उसको एक रुपया, एक सिक्का रोज मिलता था सम्राट के घर से--मालिश करने का, सेवा करने का। वह रोज के लिए पर्याप्त था। वह खूब मजे से खाता-पीता, रात चादर ओढ़ कर सोता। कल की कोई फिकर न थी। कल फिर मालिश करेगा, फिर एक रुपया मिल जाएगा। उसकी मस्ती का कोई अंत न था। गणित ही पैदा न हुआ था। लेकिन निन्यानबे ने दिक्कत डाल दी। उसने निन्यानबे गिने तो उसने सोचा कि कल तो उपवास कर लेना उचित है; एक रुपया बच जाए तो सौ हो जाएं। अब निन्यानबे में कुछ ऐसा है कि आदमी का मन सौ करना चाहता है एकदम से। तुमको भी मिल जाएं निन्यानबे तो जो पहला ख्याल उठेगा वह यह कि सौ कैसे हो जाएं। कुछ अधूरा लगता है निन्यानबे में, कुछ कमी लगती है। और एक रुपये की कुल कमी है; कोई ज्यादा भी कमी हो तो आदमी सोचे कि मुश्किल है। एक ही रुपये का मामला है। नाई ने सोचा कि आज उपवास ही कर लो। एक दिन खाना न खाएंगे तो एक रुपया बच जाएगा, सौ हो जाएंगे। नाई उस दिन आया तो, लेकिन अब भूखा आदमी तो उदास। पैर तो दाबे उसने, लेकिन बेमन से। और पैर भी दाब रहा था तो उसके भीतर तो गणित वही चल रहा था कि एक बच जाएगा, सौ हो जाएंगे। गजब हो गया। पता नहीं कौन निन्यानबे डाल गया! सम्राट ने पूछा कि आज कुछ उदास-उदास मालूम पड़ते हो? उसने कहा, नहीं, ऐसी

कुछ बात नहीं। जरा ऐसे ही, धार्मिक त्यौहार है, उपवास किया है। और उपवास की तो शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा है।
सौ पूरे हो गए, लेकिन अब दौड़ शुरू हो गई। नाई ने सोचा, जब निन्यानबे से
सौ हो सकते हैं, तो एक सौ एक भी हो सकते हैं। अब रुकने का कोई उपाय न रहा। महीने भर में तो वह दीन-हीन हो गया, जर्जर हो गया। कई उपवास कर लिए। सस्ती चीजें खरीद कर खाने लगा। दूध लेना बंद कर दिया, चाय ही पीने लगा। अब बचाना था।
वैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ मनुष्य के मन में जहां भी अधूरापन हो उसे पूरा करने की एक बड़ी गहरी पकड़ है। आदमी में ही नहीं, वे जानवरों में भी यह अनुभव करते हैं। तो उन्होंने बंदरों के पास भी प्रयोग करके देखे हैं। बंदर के पास चॉक से एक वर्तुल खींच दो अधूरा, और चॉक वहीं छोड़ दो; बंदर फौरन आकर वर्तुल को पूरा कर देगा। उसको भी अड़चन मालूम होती है कि यह अधूरा जान खाएगा, इसको पहले पूरा करो तो निश्चिंत हो जाओ।
मगर सीधी रेखा की खराबी यह है कि वह कहीं पूरी होती नहीं। वर्तुल तो पूरा हो सकता है, सीधी रेखा कैसे पूरी होगी? वह तो चलती ही जाती है। तो निन्यानबे से सौ पर जाती है, सौ से एक सौ एक पर जाती है। अब अनंत है; अब इसका कहीं कोई अंत नहीं।
महीने भर बाद राजा ने कहा कि तू समझ नहीं रहा है। तेरी हालत खराब हुई
जा रही है। तू तो मुझसे भी बदतर हुआ जा रहा है। तो उसने कहा, आप पुराने अनुभवी हैं, मैं नया ही नया सिक्खड़ ही हूं, बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मगर मेरी जान ले ली किसी आदमी ने जिसने निन्यानबे रुपये मेरे घर में फेंक दिए। अब मैं आपको बताए देता हूं, कोई धार्मिक उपवास वगैरह नहीं कर रहा हूं। मेरा छुटकारा करा दो किसी तरह वह निन्यानबे रुपये से।
पुरानी कहानी है कि एक गांव में एक जवान आदमी था। और वह इतना जवान था,
और इतना मस्त था--एक फकीर का लड़का था, मांग लेता था और सोया रहता था--कि राजा की सवारी निकलती तो वह हाथी की पूंछ पकड़ कर खड़ा हो जाता तो हाथी रुक जाता। राजा को बड़ा अपमान मालूम पड़ता। यह तो हद हो गई! बीच बाजार में खड़ा कर देता वह हाथी को। राजा ने कहा, यह तो बरदाश्त के बाहर है कि एक आदमी ऐसा भी है कि हमारे हाथी को रोक ले और हाथी न हिले! और हम कुछ भी न कर पाएं, अवश टंगे रह जाते हैं। इसको ठीक करना पड़ेगा। पूछा अपने वजीरों को कि क्या उपाय है? उन्होंने कहा, आप ऐसा करें इसे कुछ काम लगा दें। यह आदमी बिल्कुल खाली है; यह बिल्कुल मस्त है। यह मांग लेता है, खा लेता है, सो जाता है। इसकी शक्ति का कहीं कोई ह्नास नहीं हो रहा। उसने कहा, इसको काम में लगाएंगे कैसे? यह मानेगा नहीं। उन्होंने कहा, मान जाएगा; एक छोटा काम हम जाकर लगा देते हैं। कहा, एक रुपया रोज तुझे मिलेगा; जिस मंदिर के सामने तू सोया रहता है यहां दीया जला दिया कर शाम को ठीक छह बजे। पर ध्यान रहे, ठीक छह बजे। जिस दिन भी देर-अबेर हुई, रुपया नहीं मिलेगा। उसने कहा, यह भी कोई बात है।
मगर अब यह छह बजे उसके पीछे पड़ गए। कभी घड़ी सोची न थी; कभी समय का कोई हिसाब न रखा था। कोई जरूरत ही न थी। अब तक तो ऐसे जी रहा था जैसे समय है ही नहीं। अब पहली दफा समय उसकी चेतना में प्रविष्ट हुआ। अनंत तो वर्तुलाकार है; समय रेखाबद्ध है। अब उसको फिकर लगी रहती। वह कई दफे जाकर बाजार में घंटाघर में देख कर आता कि कहीं छह तो नहीं बज गए। रात सोता तो भी फिकर लगी रहती कि कहीं छह तो नहीं बज गए। तुम कहोगे, नासमझ था, क्योंकि रात क्या सोचना? तुम भी दफ्तर की बात रात सोचते हो, दुकान की बात रात सोचते हो। वह भी अपनी दुकान की बात सोचता है। दुकान छोटी हुई तो इससे क्या फर्क पड़ता है? अब उसने भिक्षा मांगनी भी बंद कर दी। अब रुपया ही मिल जाता था तो मजे से खाने-पीने लगा। लेकिन वह छह बजे एक कांटे की तरह चेतना में चुभ गया। महीने भर बाद राजा की सवारी निकली। हाथी की पूंछ पकड़ी, घिसट गया। हाथी रुक न सका।
जीवन बड़ी विराट ऊर्जा है। तुम अगर घिसट गए हो तो सिर्फ इसलिए घिसट गए
हो कि उस विराट ऊर्जा को तुमने वर्तुलाकार न बना कर रेखाबद्ध बनाने की चेष्टा की है। धन से, राजनीति से, पद से तुम सीधे चलने की कोशिश कर रहे हो कि कहीं अंत ही न हो।

बुद्ध ने कहा है, जो चीज भी प्रारंभ होती है उसका अंत होता है। इस सत्य
को जिसने जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। तब यह संसार एक माया हो जाता है, एक सपना, जो आज है और कल नहीं हो जाएगा। बचेगा तो वही जो तुम जन्म के साथ लेकर आए थे। उतना ही। और उतनी तुम्हारी संपदा है। और उतना काफी है। क्योंकि वहीं परमात्मा छिपा है। उससे ज्यादा की किसी को भी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें जो चाहिए वह तुम्हें मिला ही हुआ है। और तुम्हें जो नहीं चाहिए उसकी दौड़ में तुम उसे खो रहे हो जो तुम्हें मिला हुआ है। यह है मूल मापदंड।
"और प्राचीन मानदंड को जानना ही रहस्यमय सदगुण है।"
तब तुम्हारे जीवन में एक नीति की सुवास उठेगी। उस सुवास में न तो गंध होगी लोभ की, न दुर्गंध होगी भय की। वह सुवास अपार्थिव है।
तो दो तरह के नैतिक व्यक्ति हैं। एक तो वे नैतिक व्यक्ति हैं जो गणित
के हिसाब से नैतिक हो गए हैं। डर है पुलिसवाले का, अदालत का, मुकदमे का, नरक का, स्वर्ग का; वे भयभीत हैं। अगर भय उठा लो, वे अभी बेईमान हो जाएंगे, अभी चोर हो जाएंगे। उनकी नैतिकता वास्तविक नहीं है, जबरदस्ती आरोपित है।
और एक धार्मिक व्यक्ति की नैतिकता है, जो इसलिए नैतिक है कि वह जानता
है यहां कुछ पकड़ने को ही नहीं है, कुछ बचाने को ही नहीं है। और बचाओ, कितना ही बचाओ, छूट ही जाएगा। तो पकड़ने का सार क्या है? जो छूट ही जाना है, उसे छोड़ देना ही उचित है। जो मिट ही जाना है, वह मिट ही गया, ऐसा जान लेना उचित है। जो तुमसे छीन लिया जाएगा, अगर तुम खुद दे दो तो संन्यास है। मौत जो छीनेगी, वह अगर तुम खुद दे दो तो संन्यास है। मौत को जो संन्यास बना लेता है वह परम ज्ञानी है। मौत तो करेगी वही; उसमें कुछ बदलाहट होने वाली नहीं है। तुम्हें वह अपवाद नहीं देगी; मौत छीन लेगी सब। अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ जाए तो तुम अपनी मौज से ही छोड़ देते हो सब। तुम कहते हो, तब ठीक है। पानी पर खिंची रेखा है; खिंच भी नहीं पाती, मिट जाती है। कौन इसके लिए पागल हो? रेत का बनाया घर है; हवा का जरा सा झोंका गिरा देता है। कौन इसके लिए दीवानगी करे?
जैसे ही तुम्हें यह मापदंड ख्याल में आने लगा, तो लाओत्से कहता है, "जब रहस्यमय सदगुण स्पष्ट, दूरगामी बनता है... ।"
कि दूर तक तुम्हें दिखाई पड़ने लगता है जीवन का अर्थ वर्तुलाकार है, कि तुम देखते हो कि दूर जाकर रेखा मुड़ गई है, और वहीं आ गई है जहां से शुरू हुई थी।
"और चीजें उदगम की ओर लौट जाती हैं।"
जब तुम्हें दिखाई पड़ता है कि हर गंगा गंगोत्री चली आती है वापस।
"तब, और तभी, उदय होता है भव्य लयबद्धता का।"
तब तुम्हारे जीवन में एक संगीत का जन्म होता है, एक ऐसी लयबद्धता का जिसे तुमने कभी जाना नहीं। तब सब अशांति खो जाती है, सब तनाव झर जाते हैं सूखे पत्तों की भांति। तुम्हारे जीवन में एक भीतरी हरियाली आ जाती है, एक अनूठा स्रोत आ जाता है। तुम्हारा सब रेगिस्तान खो जाता है। तुम एक मरूद्यान हो जाते हो। अंधकार मिट जाता है। भीतर का दीया अपनी पूरी शक्ति में प्रकट हो जाता है, दीप्तमान हो जाता है।
इस आत्यंतिक लयबद्धता का नाम ही परमात्मा है। लाओत्से परमात्मा का नाम उपयोग नहीं करता, क्योंकि पंडितों ने उसका नाम इतना उपयोग किया है कि वह नाम गंदा हो गया, वह जूठा हो गया। पंडितों ने उस नाम को बिगाड़ डाला। उन पंडितों की बास शब्द में भर गई। इसलिए लाओत्से परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं करता। लेकिन वह उस परमात्मा की ही बात कर रहा है जब वह कहता है परम लयबद्धता।
"दि एनशिएंट्स हू न्यू हाऊ टु फालो दि ताओ एंड नाट टु एनलाइटेन दि पीपुल, बट टु कीप देम इग्नोरेंट। दि रीजन इट इ.ज डिफीकल्ट फॉर दि पीपुल टु लिव इन पीस इ.ज बिकाज ऑफ टू मच नालेज। दोज हू सीक टु रूल ए कंट्री बाइ नालेज आर दि नेशंस कर्स। दोज हू सीक नाट टु रूल ए कंट्री बाइ नालेज आर दि नेशंस ब्लेसिंग। दोज हू नो दीज टू (प्रिंसिपल्स) आल्सो नो दि एनशिएंट स्टैंडर्ड। एंड टु नो आलवेज दि एनशिएंट स्टैंडर्ड इ.ज काल्ड दि मिस्टिक

वर्चू। व्हेन दि मिस्टिक वर्चू बिकम्स क्लियर, फार-रीचिंग, एंड थिंग्स रिवर्ट बैक (टु देयर सोर्स), देन एंड देन ओनली इमर्जेज दि ग्रैंड हार्मनी।"
भव्य लयबद्धता का तभी जन्म होता है। वह लयबद्धता तुम्हारे भीतर छिपी है। तुम रेखाबद्ध चलना बंद कर दो, तुम वर्तुलाकार बना लो जीवन को, तत्क्षण तुम्हें अपने भीतर छिपे हुए संगीत के स्वर सुनाई पड़ने लगेंगे। वे स्वर परमात्मा के स्वर हैं। वे स्वर शून्यता के, मोक्ष के स्वर हैं। और तुम्हारे भीतर ऐसी अनंत फूलों की वर्षा हो जाएगी। उस आनंद की, जिसकी तुम खोज कर रहे हो और दर-दर भीख मांग रहे हो, तुम्हारे भीतर अहर्निश वर्षा होने लगेगी। उसे तुम लेकर ही आए हो। तुम उसे खो रहे हो, क्योंकि तुम एक गलत ढंग से जी रहे हो। तुम्हारे जीने का ढंग रेखाबद्ध है, लीनियर है। और जीने का वास्तविक ढंग सर्कुलर, वर्तुलाकार ही हो सकता है।
जिसने इस प्राचीन मानदंड को पहचान लिया, वह सब पा लेता है जो भी पाने योग्य है। वह मिला ही हुआ है। तुमने उसे कैसे खोया, यह बड़े रहस्य की बात है। तुम कैसे उससे चूकते चले जाते हो, यह बड़ा अदभुत है। ज्ञान से वह न मिलेगा; ज्ञान को पोंछ कर मिटा डालने से। जीने से मिलेगा; जानने से नहीं। प्रेम से मिलेगा; तर्क से नहीं। हृदय से जुड़ेगा संबंध उससे। सारी चेष्टा यही है कि कैसे तुम खोपड़ी से थोड़े नीचे उतर आओ; कैसे तुम हृदय में धड़कने लगो; कैसे तुम विचारो कम, अनुभव ज्यादा करो। इतना ही करना है। फासला बहुत बड़ा नहीं है। सिर से हृदय के बीच जरा सा ही फासला है। चाहो तो एक कदम में भी पूरा कर सकते हो। और चाहो तो अनंत जन्मों तक प्रतीक्षा कर सकते हो। तुम्हारी मर्जी। दरवाजा इस वक्त भी खुला है। लेकिन तुम अगर स्थगित करना चाहो तो तुम्हारी मर्जी। इस क्षण ही पा सकते हो। न तो तुम्हारे कर्म बाधा बनेंगे, न तुम्हारा अतीत का अज्ञान बाधा बनेगा। कोई बाधा नहीं है।
क्योंकि अगर हमें कुछ और पाना होता जो हमें मिला ही न था तो बाधा बन सकती थी। पाना हमें अपना स्वभाव है। पाना वही है जो हम पाए ही हुए हैं।
आज इतना ही।

एक सौ दसवां प्रवचन

# श्रेष्ठता वह जो अकेली रह सके

Chapter 66

The Lords Of The Ravines

How did the great rivers and seas become the Lords of the Ravines?
By being good at keeping low.
That was how they become the Lords of the Ravines.
Therefore in order to be the chief among the people,
One must speak like their inferiors.
In order to be foremost among the people,
One must walk behind them.
Thus it is that the Sage stays above,
And the people do not feel his weight;
Walk in front,
And the people do not wish him harm.
Then the people of the world are glad
To uphold him forever.
Because he does not contend,
No one in the world can contend against him.

अध्याय 66

घाटियों के स्वामी

यह कैसे हुआ कि महान नदी और समुद्र खड्डों के, घाटियों के स्वामी बन गए?
झुकने और नीचे रहने में कुशल होने के कारण।
इस तरह वे खड्डों-घाटियों के स्वामी बन गए।
इसलिए लोगों के बीच प्रधान होने के लिए
किसी को उनके अनुगत की तरह बोलना चाहिए।
लोगों के बीच उनका अगुआ होने के लिए
किसी को उनके पीछे-पीछे चलना चाहिए।
इस तरह संत ऊपर होते हैं, और लोग उनका बोझ अनुभव नहीं करते;
वे आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते।
और तब संसार के लोग खुशी-खुशी और सदा के लिए उन्हें सिर-आंखों पर रखते हैं।
क्योंकि वे कलह नहीं करते, इसलिए संसार में कोई उनके विरुद्ध संघर्ष नहीं कर पाता।

इस सदी के एक बहुत बड़े मनसविद अल्फ्रेड एडलर ने मनुष्य के जीवन की सारी उलझनों का मूल स्रोत हीनता की ग्रंथि में पाया है। हीनता की ग्रंथि का अर्थ है कि जीवन में तुम कहीं भी रहो, कैसे भी रहो, सदा ही मन में यह पीड़ा बनी रहती है कि कोई तुमसे आगे है, कोई तुमसे ज्यादा है, कोई तुमसे ऊपर है। और इसकी चोट पड़ती रहती है। इसकी चोट भीतर के प्राणों को घाव बना देती है। फिर तुम जीवन के आस्वाद को भोग नहीं सकते; फिर तुम सिर्फ जीवन से पीड़ित, दुखी और संत्रस्त होते हो।

हीनता की ग्रंथि, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स, अगर एक ही होती तो भी ठीक था। तो शायद कोई हम रास्ता भी बना लेते। अल्फ्रेड एडलर ने तो हीनता की

ग्रंथि शब्द का प्रयोग किया है; मैं तो बहुवचन का प्रयोग करना पसंद करता हूंः हीनताओं की ग्रंथियां। क्योंकि कोई तुमसे ज्यादा सुंदर है। और किसी की वाणी में कोयल है, और तुम्हारी वाणी में नहीं। और कोई तुमसे ज्यादा लंबा है; कोई तुमसे ज्यादा स्वस्थ है। किसी के पास ज्यादा धन है; किसी के पास ज्यादा ज्ञान है; किसी के पास ज्यादा त्याग है। कोई गीत गा सकता है; कोई संगीतज्ञ है; कोई प्रतिमा गढ़ता है; कोई चित्रकार है; कोई मूर्तिकार है। करोड़-करोड़ लोग हैं तुम्हारे चारों तरफ, और हर आदमी में कुछ न कुछ खूबी है। बिना खूबी के तो परमात्मा किसी को पैदा करता ही नहीं। और जिसके भीतर हीनता की ग्रंथि है उसकी नजर सीधी खूबी पर जाती है कि दूसरे आदमी में कौन सी खूबी है। क्योंकि जाने-अनजाने वह हमेशा तौल रहा है कि मैं कहीं किसी से पीछे तो नहीं हूं! तो उसकी नजर झट से पकड़ लेती है कि कौन सी चीज है जिसमें मैं पीछे हूं। तो जितने लोग हैं उतनी ही हीनताओं का बोझ तुम्हारे ऊपर पड़ जाता है। तुम करीब-करीब हीनताओं की कतार से घिर जाते हो। एक भीड़ तुम्हें चारों तरफ से दबा लेती है। तुम उसी के भीतर तड़फड़ाते हो। और बाहर निकलने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि क्या करोगे तुम?
एक आदमी ने मुझे कहा, कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। दो साल पहले अपनी प्रेयसी के साथ समुद्र के तट पर बैठा था। एक आदमी आया, उसने पैर से रेत मेरे चेहरे में उछाल दी और मेरी प्रेयसी से हंसी-मजाक करने लगा। तो मैंने पूछा कि तुमने कुछ किया? उसने कहा, क्या कर सकता था? मेरा वजन सौ पौंड, उसका डेढ़ सौ पौंड। फिर भी तुमने कुछ तो किया होगा? उसने कहा, मैंने किया यह कि स्त्रियों की तो फिक्र ही छोड़ दी उस दिन से। हनुमान अखाड़े में भर्ती हो गया। हनुमान चालीसा पढ़ता हूं और दंड-बैठक लगाता हूं। फिर डेढ़ सौ पौंड मेरा भी वजन हो गया दो साल में। फिर मैंने एक स्त्री खोजी, गया समुद्र-तट पर। वहां बैठा भी नहीं था कि एक आदमी आया, उसने फिर लात मारी रेत में, मेरी आंखों में धूल भर दी, फिर मेरी प्रेयसी से हंसी-मजाक करने लगा। मैंने कहा, अब तो तुम कुछ कर सकते थे।
उसने कहा, क्या कर सकते थे? मैं डेढ़ सौ पौंड का, वह दो सौ पौंड का।
तो अब क्या करते हो?
उसने कहा, फिर अब हनुमान चालीसा पढ़ता हूं; फिर हनुमान अखाड़े में व्यायाम करता हूं। लेकिन अब आशा छूट गई। क्योंकि दो सौ पौंड का हो जाऊंगा, क्या भरोसा कि ढाई सौ पौंड का आदमी नहीं आ जाएगा।
तुम कभी भी हीनता के बाहर नहीं हो सकते उस रास्ते से। कितने लोग हैं! कितने विभिन्न रूप हैं! कितनी विभिन्न कुशलताएं हैं, योग्यताएं हैं! तुम उसमें दब मरोगे। अल्फ्रेड एडलर ने मनुष्य की सारी पीड़ाओं और चिंताओं का आधार दूसरे के साथ अपने को तौलने में पाया है।
गहरे जैसे-जैसे एलडर गया उसको समझ में आया कि आदमी क्यों आखिर अपने को दूसरे से तौलता है? क्या जरूरत है? तुम तुम जैसे हो; दूसरा दूसरा जैसा है। यह अड़चन तुम उठाते क्यों हो? पौधे नहीं उठाते। छोटी सी झाड़ी बड़े से बड़े वृक्ष के नीचे निश्चिंत बनी रहती है; कभी यह नहीं सोचती कि यह वृक्ष इतना बड़ा है। छोटा सा पक्षी गीत गाता रहता है; बड़े से बड़ा पक्षी बैठा रहे, इससे गीत में बाधा नहीं आती कि मैं इतना छोटा हूं, क्या खाक गीत गाऊं! पहले बड़ा होना पड़ेगा। छोटे से घास में भी फूल लग जाते हैं; वह फिक्र नहीं करता कि इतने-इतने बड़े वृक्षों के नीचे तुम फूल उगाने की कोशिश कर रहे हो, पागल हुए हो! पहले बड़े हो जाओ; फिर फूल लाना। नहीं, प्रकृति में तुलना है ही नहीं; सिर्फ आदमी के मन में तुलना है।
तुलना क्यों है? तो एडलर ने कहा कि तुलना इसलिए है कि तुम--और सारी मनुष्यता--एक गहन दौड़ से भरी है। उस दौड़ को एडलर कहता हैः दि विल टु पावर, शक्ति की आकांक्षा। कैसे मैं ज्यादा शक्तिवान हो जाऊं! फिर चाहे वह धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, यश हो, कुशलता हो, कुछ भी हो। कैसे मैं शक्तिशाली हो जाऊं, यही मनुष्य की सारी दौड़ का आधार है। और जब तुम शक्तिशाली होना चाहोगे तो तुम पाओगे कि तुम शक्तिहीन हो। जितना ही तुम शक्तिशाली होना चाहोगे उतनी ही तुम्हारी अशक्ति का तुम्हें पता चलेगा। क्योंकि जगह-जगह तुम्हारी शक्ति की सीमा आ जाएगी। सिकंदर और नेपोलियन और हिटलर भी चुक

जाते हैं। उनकी भी शक्ति की सीमा आ जाती है। आज तक कोई भी व्यक्ति ऐसी जगह नहीं पहुंच पाया जहां वह कह सके कि शक्ति की मेरी आकांक्षा तृप्त हो गई। जो कभी नहीं हुआ वह कभी होगा भी नहीं। और तुम अपने को अपवाद मानने की कोशिश मत करना।
लाओत्से है मार्ग। एडलर ने प्रश्न तो खड़ा कर दिया, उलझन भी साफ कर दी, लेकिन मार्ग एडलर को भी नहीं सूझता कि बाहर इसके कैसे हुआ जाए। पश्चिम के मनोविज्ञान के पास मार्ग है ही नहीं। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान समस्या को समझने में ही उलझा है। अभी समस्या ही समझ में नहीं आई है पूरी तरह तो उसके बाहर जाने की तो बात ही बहुत दूर है। कैसे कोई बाहर जाए? तो एडलर का तो सुझाव इतना ही है कि तुम्हें अतिशय की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए; सामान्य रूप से जो उपलब्ध हो सकता है उसका प्रयास करना चाहिए।
लेकिन इससे कुछ हल न होगा। क्योंकि कहां अतिशय की सीमा शुरू होती है? कौन सी चीज सामान्य है? जो तुम्हारे लिए सामान्य है वह मेरे लिए सामान्य नहीं। जो मेरे लिए सामान्य है, तुम्हारे लिए अतिशय हो सकती है। एक आदमी एक घंटे में पंद्रह मील दौड़ सकता है; वह उसके लिए सामान्य है। तुम एक घंटे में पांच मील भी दौड़ गए तो मुसीबत में पड़ोगे। वह तुम्हारे लिए सामान्य नहीं है। कौन तय करेगा? कहां तय होगी यह बात कि क्या सामान्य है? औसत क्या है? एडलर कहता है, औसत में जीना चाहिए; तो तुम इतने ज्यादा पीड़ित न होओगे। लेकिन औसत कहां है? कैसे तय करोगे? और तुम ही तो तय करने वाले हो और तुम ही रुग्ण हो। तुम्हारे रोग से ही तय होगा कि औसत क्या है। अगर तुमसे कोई पूछे कि एक आंकड़ा बता दो, कितने रुपये से तुम राजी हो जाओगे; कैसे बता पाओगे? और अगर कोई कहता हो कि जितना तुम बताओगे उतना हम देने को तैयार हैं; तब तुम और मुसीबत में पड़ जाओगे। दस हजार? मन कहेगा, क्यों दस हजार की बात कर रहे हो जब बीस मांगे जा सकते हैं?
एक बड़ी पुरानी कहानी है। एक युवक सत्य की खोज में था। वह सभी परीक्षाएं उत्तीर्ण हो गया। उसको भरोसा था कि अब गुरु कह देगा कि अब तुम जा सकते हो संसार में, अब तुम योग्य हो गए। लेकिन गुरु ने कहा, तू सब परीक्षाएं उत्तीर्ण हो गया; आखिरी बाकी रह गई है। और आखिरी परीक्षा मैं नहीं ले सकता हूं; उस परीक्षा का स्वभाव ही ऐसा है--वह तू पीछे समझ पाएगा-- कि उस परीक्षा के लिए मुझे तुझे कहीं भेजना होगा। तो युवक ने कहा, भेजें। उसने सम्राट के पास भेजा।
गांव में जो सम्राट था, उसका नियम था कि जो व्यक्ति भी पहले उसके द्वार पर आ जाए सुबह, वह जो भी मांगे, वह सम्राट दे देता था। लेकिन लोग सुखी थे, सरल थे, और महत्वाकांक्षा का ज्वर पकड़ा न था। इसलिए कोई आता ही न था। कई दिन तो ऐसे ही निकल जाते थे कि सम्राट उठता और दरवाजे पर कोई होता ही नहीं। लोग उस अवस्था में रहे होंगे जिसकी लाओत्से बात करता है कि जब ज्ञान की बीमारी उन्हें पकड़ी न थी।
लेकिन यह युवक तो ज्ञान की बीमारी में पड़ गया था। यह तो सब परीक्षाएं उत्तीर्ण कर आया था। यह तो सुशिक्षित हो गया था। तो उसने सोचा कि सुबह ही वहां पहुंच जाना चाहिए, जब सम्राट के पास ही जा रहे हैं। तो वह तीन बजे रात से ही वहां जाकर खड़ा हो गया कि कहीं ऐसा न हो कि कोई और पहले पहुंच जाए। कोई आया भी नहीं, कोई क्यू भी न लगा। सुबह जब भोर हुई, सम्राट बाहर आया, तो वह अकेला ही था। पता था उसे कि सम्राट पूछेगा, क्या चाहते हो? तो वह सोचता रहा; सोच-सोच कर उसका सिर घूमने लगा। जितना उसने सोचा उतने ही आंकड़े बड़े होते गए। आंकड़ों की कोई कमी है!
सम्राट आया। उसने कहा, क्या चाहते हो? उस युवक ने कहा कि तय नहीं कर पा रहा हूं। क्या आप इतनी कृपा करेंगे कि आप बगीचे का एक चक्कर लगा लें, तब तक मैं और सोच लूं।
सम्राट एक चक्कर लगा कर लौट आया। उस युवक ने कहा कि नहीं, मैं न सोच पाऊंगा, क्योंकि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मैं जितना ही सोचता हूं, पाता हूं वह कम है। अरबों-खरबों पर पहुंच गया है हिसाब भीतर, लेकिन फिर भी मैं सोचता हूं, यह भी हो सकता है कि सम्राट के पास इससे ज्यादा हो। और जो शेष रह जाएगा वह जिंदगी भर खलेगा। तो अब तो मैं एक ही प्रार्थना करता हूं

कि जो भी आपके पास है सब मुझे दे दें। आप जो कपड़े पहने हैं इन्हीं को पहने हुए बाहर निकल जाएं।
सोचा था कि सम्राट घबरा जाएगा, बचने की तरकीब करेगा। लेकिन सम्राट प्रफुल्लित हो गया। उसने आकाश की तरफ हाथ उठाया और कहा, परमात्मा, धन्यवाद! जिस आदमी की मुझे प्रतीक्षा थी वह आ गया।
वह लड़का थोड़ा घबराया। उसने कहा, बात क्या है? आप बड़े प्रसन्न मालूम होते हैं! उसने कहा, मैं बहुत थक गया इस महल, इस साम्राज्य, इस उपद्रव से। कोई मांगने ही नहीं आता। अब किसी को जबरदस्ती तो दिया नहीं जाता। अब तुम आ ही गए अपनी तरफ से, तुम्हारी बड़ी कृपा है। तुम भीतर जाओ; मैं बाहर जाता हूं। उसने कहा कि एक कृपा और करें, आप एक चक्कर और लगा आएं, मुझे एक बार और सोच लेने दें। इतना समय दिया, थोड़ा समय और! सम्राट ने कहा कि नहीं, अब तुम कह ही चुके हो। पर युवक ने पैर पकड़ लिए। तो सम्राट ने कहा, तुम्हारी मर्जी। सम्राट एक चक्कर लगा कर आया, वहां युवक को उसने पाया नहीं। दरबान को वह कह गया था कि जब सम्राट ही भागने को उत्सुक है तो हम क्यों फंसें! वह भाग गया था।
कहां तय करोगे? सब पर ही जाकर तय होगा। और सब पाकर भी तृप्ति नहीं होती। सम्राट प्रसन्न है देने को। सब भी मिल जाए तो तुम्हारी हीनता का कुआं भरेगा नहीं; वह दुष्पूर है। वह खड्ड ऐसा है कि उसमें कोई तलहटी नहीं है। तुम जितना डालते जाओगे उतना ही वह पीता जाएगा। और जितना ज्यादा तुम पीते जाओगे उतना ही पता चलेगा कैसे हीन हो।
नहीं, एडलर के पास सुझाव नहीं है। एडलर कहता है, समझाने-बुझाने से, एक बौद्धिक प्रौढ़ता से सब ठीक हो जाएगा। लेकिन सब ठीक हुआ नहीं है, खुद एडलर के जीवन में ही ठीक न हुआ। एडलर था शिष्य फ्रायड का। लेकिन फिर महत्वाकांक्षा पकड़ गई कि यह तो शिष्य ही रहूंगा; कितना ही बड़ा हो जाऊं; गुरु फ्रायड ही रहेगा। तो गुरु से झगड़ कर अलग हो गया। और फिर पूरी जिंदगी कोशिश की कि एक अलग ही मनोविज्ञान को निर्मित कर ले। वही महत्वाकांक्षा जिसको वह दूसरों में हल करने जा रहा है, वही महत्वाकांक्षा खुद पकड़ ली। और फ्रायड और एडलर के बीच बड़ी वैमनस्य की स्थिति बनी रही।
जो अपना नहीं हल कर पाता वह दूसरे का कैसे हल कर पाएगा?
एक बड़ा प्रसिद्ध मजाक है एडलर के संबंध में कि वह एक सभा में बोलता था
तो उसने अपना सिद्धांत समझाया। और जब भी वह सिद्धांत समझाता था तो वह यह कहता था कि जिन-जिन लोगों में किसी तरह की कमी होती है, वे ही लोग उस कमी को पूरी करने के लिए महत्वाकांक्षा से भर जाते हैं।
अक्सर देखा गया है कि काना आदमी चालाक हो जाता है। पुरानी कहावतें हैं कि काने से जरा सावधान रहना। काना सुबह मिल जाए तो अपशगुन रहा है--सारी दुनिया में। क्या कारण है? क्योंकि काने के पास एक आंख कम है, उस आंख की कमी वह कैसे पूरी करेगा? उसे पूरा करना ही पड़ेगा। वह चालाकी से पूरी करता है; वह ज्यादा चालाक हो जाता है। वह एक ही आंख से दो आंख का काम लेने की कोशिश करने लगता है। इससे चालाकी पैदा होती है। वह कनिंग हो जाता है। इसलिए काने आदमी को तुम सीधा-सरल न पाओगे; उसमें कुछ न कुछ तिरछापन होगा। और काने सब तरह की कोशिश करेंगे कि आंख वालों को कैसे हरा दें। क्योंकि इसके सिवा वे अपनी श्रेष्ठता कैसे सिद्ध कर पाएंगे?
एडलर कहता था कि बचपन में जो लोग ठीक से नहीं चल पाते या जो बच्चे देर
से चलते हैं, वे बड़े दौड़ाक हो जाते हैं बाद में। वे दुनिया में जो ओलंपिक प्रतियोगिताएं जीतते हैं वे वही बच्चे हैं जो बचपन में देर से चले। क्योंकि उनको कमी पूरी करनी है; उनको दुनिया को दिखला देना है कि तुम यह मत समझना कि हम कोई धीमे-धीमे चलने वाले हैं। हमारा कोई मुकाबला ही नहीं है। यह समझा रहा था एडलर एक सभा में। एक आदमी ने उठ कर कहा, और क्या हम यह समझें कि जिनके मन में कुछ खराबी होती है वे मनोवैज्ञानिक हो जाते हैं?
इस मजाक में थोड़ी सचाई मालूम पड़ती है। क्योंकि न तो फ्रायड स्वस्थ है
मन से जिसने इस सदी के मनोविज्ञान को जन्म दिया। न उसका प्रतिस्पर्धी एडलर, जुंग, वे स्वस्थ हैं। मानसिक रूप से वे सभी रुग्ण मालूम होते हैं। पूरब के पास हल है। लाओत्से के पास हल है।

लाओत्से कहता है कि शक्ति की आकांक्षा में ही रोग है। दि विल टु पावर, वहीं सारी बीमारी है। और जब तक वह आकांक्षा ही न छूट जाए तब तक तुम कोई हल न खोज पाओगे। इतना कर सकते हो कि कुछ लोग थोड़े कम बीमार, कुछ लोग थोड़े ज्यादा बीमार। लेकिन फासला मात्रा का रहेगा, गुण का अंतर नहीं होगा। कुछ लोग सामान्य रूप से अस्वस्थ, कुछ लोग असामान्य रूप से अस्वस्थ। लेकिन फासला मात्रा का होगा, गुण का न होगा।
लाओत्से कहता है, एक और ही रास्ता है। और वह रास्ता हैः घाटी के राज को जान लेना। वर्षा होती है; पहाड़ खाली रह जाते हैं, घाटियां भर जाती हैं, लबालब भर जाती हैं। राज क्या है? राज यह है कि घाटी पहले से ही खाली है। जो खाली है वह भर जाता है। पहाड़ पहले से ही भरे हैं, वे खाली रह जाते हैं। अहंकार रोग है, तो निरहंकारिता में राज है, कुंजी है।
तुम जब तक दूसरे से अपने को तौलोगे और दूसरे से आगे होना चाहोगे तब तक तुम पाओगे कि तुम सदा पीछे हो। जिसने आगे होना चाहा, वह सदा पाएगा कि वह पीछे है। जिसने प्रतिस्पर्धा की, वह सदा पाएगा कि हार गया। लेकिन जो पीछे होने को राजी हो गया, जीवन की इस व्यर्थ दौड़ को देख कर, समझ कर, ध्यान से जो पीछे खड़ा हो गया, और जिसने कहा हम दौड़ते नहीं आगे होने को, लाओत्से कहता है, एक अनूठा चमत्कार घटित होता है कि जो आगे होने की दौड़ में होते हैं वे हीन हो जाते हैं और जो पीछे खड़े हो जाते हैं उनकी श्रेष्ठता की कोई सीमा नहीं है।
सच तो यह है कि पीछे तुम खड़े ही जैसे होते हो वैसे ही श्रेष्ठ हो जाते हो, हीनता मिट जाती है। क्योंकि तुलना ही न रही तो हीन कैसे हो सकते हो? किसी से तौलोगे तो पीछे हो सकते हो। तौलते ही नहीं किसी से, पीछे, सबसे पीछे ही खड़े हो गए, अपने तईं खड़े हो गए, अपने हाथ से ही संघर्ष छोड़ दिया और पीछे आ गए, अब तो तुम्हें हीनता का कैसे बोध होगा? हीनता का घाव भर जाएगा; और श्रेष्ठता के फूल उस घाव की जगह प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। श्रेष्ठ केवल वे ही हो पाते हैं जो श्रेष्ठ होने की दौड़ में नहीं पड़ते। और हीन से हीनतर होता जाता है मनुष्य, जितनी ही दौड़ में पड़ता है।
अब लाओत्से के वचन हम समझने की कोशिश करें।
"यह कैसे हुआ कि महान नदी और समुद्र खड्डों के, घाटियों के स्वामी बन गए? झुकने और नीचे रहने में कुशल होने के कारण।"
उनकी कला एक ही है कि वे झुकना जानते हैं। झुकना बड़ी से बड़ी कला है। वस्तुतः जहां जितनी झुकने की क्षमता होगी उतना जीवन होगा। जीवन का लक्षण ही झुकना है।
छोटा बच्चा, देखो, कितना लोचपूर्ण है। जैसा चाहो वैसा झुक जाए, हाथ-पैर के पीछे जैसे हड्डियां नहीं हैं। लेकिन बूढ़ा आदमी हड्डी ही हड्डी हो जाता है। लोच खो जाती है; झुकना बंद हो जाता है; सख्त हो जाता है। पक्षाघात की अवस्था आ गई। बूढ़ा आदमी झुक नहीं सकता शरीर से। यही तो मौत का लक्षण है कि अब मौत करीब आ रही है। क्योंकि जीवन तो वहीं बहता है जहां झुकना है। और न केवल शरीर के संबंध में यह सच है, मन के संबंध में भी यही सच है। छोटा बच्चा मन से झुकने को हमेशा राजी है। इसीलिए तो छोटे बच्चे सीखने में समर्थ हैं। बूढ़ा आदमी सीखने में असमर्थ हो जाता है। मन भी नहीं झुकता। बगीचे में जाकर माली से पूछो! तो वह कहता है कि वृक्ष को अगर झुकाना हो, कोई ढंग देना हो, तो वह तभी दिया जा सकता है जब पौधा छोटा हो और लोचपूर्ण हो। जब पौधा सख्त हो जाएगा, फिर झुकाओगे तो शाखाएं टूट जाएंगी। कभी तेज तूफान आता है तो बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, छोटे-छोटे घास के पौधे बच जाते हैं। होना तो उलटा चाहिए था कि निर्बल घास के छोटे-छोटे पौधे, जिनमें कोई प्राण नहीं, जिनमें कोई बल नहीं दिखाई पड़ता, तूफान इनको मिटा जाता, ये नष्ट हो जाते। बड़े वृक्ष जो आकाश को छूते हैं, जिनकी शाखाओं ने बड़ा जाल फैलाया है, जिनके अहंकार की कोई सीमा नहीं, जो उठे हैं उत्तुंग, चांद-सूरज को छूने की जिनकी दौड़ है, वे गिर जाते हैं। तूफान उन्हें मिटा जाता है। कोई तरकीब घास का पौधा जानता है जो बड़े वृक्ष को भूल गई। बड़ा वृक्ष सख्त हो गया है; टूट सकता है, झुक नहीं सकता।

अकड़ वाले आदमी के लिए हम यही तो कहते हैं कि वह आदमी ऐसी अकड़ वाला है
कि टूट सकता है, झुक नहीं सकता। और समस्त अहंकारियों की शिक्षा यही है कि टूट जाना, मगर झुकना मत।
लाओत्से की शिक्षा बिल्कुल भिन्न है। लाओत्से कहता है, ऐसा टूटने की जल्दी क्या! ऐसा टूटने का आग्रह क्या! आत्मघात के लिए इतनी उत्सुकता क्यों है? झुक जाना, क्योंकि झुकने में ही तुम तूफान को जीत सकोगे। तुम टूटो कि न टूटो; तूफान तुम्हारी फिक्र करता है? तूफान को पता भी न चलेगा कि तुम टूट गए। तूफान अपनी राह से चला जाएगा। तुम नाहक मिट जाओगे।
छोटे घास के पौधे की भांति हो जाना। तूफान आता है, घास का पौधा जमीन पर लेट जाता है। अकड़ रखता ही नहीं; जरा भी ना-नुच नहीं करता। यह भी नहीं कहता कि कैसे करूं, यह ठीक नहीं है। क्यों मुझे झुका रहे हो? बात ही नहीं उठाता। तूफान आता है, तूफान के साथ ही झुक जाता है। तूफान बाएं बह रहा हो तो बाएं, तूफान दाएं तो दाएं; दक्षिण तो दक्षिण, उत्तर तो उत्तर। तूफान जहां जा रहा हो, घास का छोटा पौधा तूफान के साथ मैत्री कर लेता है, सहयोग कर लेता है। तूफान के विरोध में खड़ा नहीं होता, तूफान की धारा में बह जाता है। और जिस घास के पौधे ने तूफान में बहने की कला जान ली, वह तूफान पर सवार हो गया; उसे तूफान मिटा न सकेगा। अब आ जाएं और बड़े तूफान भी, अब महा तूफान और आंधियां उठें, तो भी इस पौधे को कुछ भी न कर सकेंगे। वह सो जाएगा जमीन पर, तूफान गुजर जाएगा।
तूफान सदा नहीं रहते; आते हैं, चले जाते हैं। तूफान के जाने के बाद तुम देखोगे, बड़े-बड़े वृक्ष उखड़े पड़े हैं, उनकी जड़ें टूट गईं, उनके प्राण-पखेरू उड़ गए; छोटे-छोटे घास के पौधे वापस लहलहा रहे हैं--पहले से भी ज्यादा ताजे। तूफान सिर्फ उनकी धूल झड़ा गया; इससे ज्यादा कुछ भी तूफान न कर पाया। लाओत्से को बहुत प्रिय है झुकने की कला। वह कहता है, जब तुम्हें कोई झुकाने आए तुम पहले से ही झुक जाना। तुम उसे इतना भी मौका मत देना कि झुकाने की कोशिश उसे करनी पड़े।
जैसे कभी-कभी छोटा बच्चा अपने बाप से कुश्ती लड़ता है तो बाप क्या करता है? कुश्ती लड़ता है; बाप जरा खेल-खाल करके लेट जाता है; छोटा बच्चा छाती पर सवार हो जाता है। और वह कहता है, जीत गए! बाप का गौरव इसमें है कि वह छोटे बच्चे के साथ झुक जाता है। यही उसकी श्रेष्ठता है। जो बाप छोटे बच्चे से लड़ने लगे उसको तुम मूढ़ कहोगे। लड़ने में मूढ़ता है; झुक जाने में बोध है, समझ है। और बेटा अगर यह भी अनुभव कर ले कि हम जीत गए तो हर्ज क्या है? जितनी तुम्हारी समझ गहरी होगी उतना ही तुम दूसरे को जीतने का मौका दोगे। अभी नासमझ है, बच्चा है। अभी जीतने में रस है। जीत लेने दो। उतना ही तुम्हारे जीवन से संघर्ष और प्रतिरोध कम हो जाएगा। तुम सभी को जीतने का मजा लेने दोगे।
और लाओत्से कहता है, आखिर में वह उन्होंने जो जीतना समझा था, वे पाएंगे कि जीते तुम और हारे वे। बच्चा कभी तो बड़ा होगा। तब जानेगा कि बाप का कितना गहन प्रेम था कि वह हार गया था। बच्चा कभी तो जागेगा और समझेगा। बच्चे को हराने की कोशिश मत करना, क्योंकि उसमें तुम बच्चे के विकास की संभावना को तोड़ दोगे। लड़ते वे ही हैं जो बचकाने हैं। और लड़ने वाला कभी जीतता नहीं, क्योंकि एक बार तुम्हें लड़ने की लत पड़ गई तो तुम मुश्किल में पड़ोगे।
प्रसिद्ध कहानी है मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में कि वह जिस चाय-घर में चाय पीने आता था उसके सामने बैठा रहता अक्सर एक लड़का था शैतान, वह आता और उसकी पगड़ी को हाथ मार देता। पगड़ी नीचे गिर जाती; वह उठा कर अपनी पगड़ी फिर बांध लेता। न तो उसने कभी उस लड़के को कुछ कहा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। चाय-घर के दूसरे लोगों ने भी कई दफे कहा कि नसरुद्दीन, यह जरा जरूरत से ज्यादा बात हुई जा रही है। और तुम इस लड़के को बिगाड़ रहे हो। और अब यह इसने नियम बना लिया; यह रोज आता है। तुम आए नहीं कि वह आया नहीं। और यह क्या बात है! एक दफा एक चांटा उसको रसीद कर दो। नसरुद्दीन ने कहा, ठहरो, जिंदगी खुद ही उसको चांटा रसीद कर देगी।

कई दिन बीत गए। लोग पूछते भी, कब जिंदगी चांटा रसीद करेगी? कहां है जिंदगी? पर एक दिन वह घड़ी आ गई। एक अफगान सैनिक, जहां नसरुद्दीन बैठा करता था, एक दिन सुबह आकर वहीं चाय-घर में बैठा। उसने उसी रंग की पगड़ी बांध रखी थी जैसी नसरुद्दीन की थी। पीठ के पीछे से लड़के को कुछ दिखाई न पड़ा। उसने पगड़ी को एक हाथ मारा। उस अफगान सैनिक ने तलवार निकाली और लड़के की गर्दन काट दी। नसरुद्दीन ने कहा, देखते हो! बुरी लत आखिर बुरा परिणाम ले आती है। हमारा तो कुछ भी न बिगड़ा, लड़का जान खो बैठा।
नासमझ अगर जीत भी जाए तो अंततः बुरी तरह हारेगा। क्योंकि जीतने की लत पकड़ गई, स्वाद लग गया। समझदार हारता चला जाता है, समझदार अपने को अस्तित्व के विपरीत खड़ा नहीं करता। वह धारा के विपरीत नहीं बहता; जिस तरफ नदी बहती है उसी तरफ बहता है। और जिसने धारा के साथ बहना सीख लिया उसकी शक्ति नष्ट नहीं होती। तैरने में शक्ति नष्ट होती है। और धारा के विपरीत बहने में तो बहुत शक्ति नष्ट होती है। क्योंकि धारा से लड़ना पड़ता है। और आज नहीं कल तुम हार जाओगे, थक जाओगे, और तब धारा तुम्हें अवश बहा कर ले जाएगी। तब तुम दुखी, पीड़ित, संतप्त, विषाद में, हारे हुए, सर्वहारा, पराजित विदा होओगे। लेकिन जो धारा के साथ बहता रहा उसे धारा कभी भी पराजित न कर पाएगी। जो हार ही गया उसको तुम हराओगे कैसे? जो पहले से ही अंतिम बैठ गया उसे तुम अब और कहां पीछे हटाओगे? जिसने दावा न किया उसके दावे का खंडन नहीं किया जा सकता। और जिसने कभी घोषणा न की अपने अहंकार की उसके अहंकार को तुम चोट कैसे पहुंचाओगे?
लाओत्से कहता है कि खड्ड और घाटियां समुद्रों और महानदियों से भर गए हैं। कैसे हुआ यह? झुकने और नीचे होने में कुशल होने के कारण। सागर की सारी कुशलता यही है कि वह नीचे है। छोटे-छोटे झरने भी उससे ऊपर हैं। इतना विराट सागर है, और नीचे है। और जितना नीचे है उतनी ही उसकी विराटता बढ़ती जाती है। क्योंकि उसके नीचे होने के कारण सभी झरनों को उसी में आकर गिर जाना पड़ता है। जो ऊंचा रहेगा वह सूख जाएगा। जो नीचा रहेगा उसकी तरफ सारे झरने बहते रहते हैं।
जीवन में, पूरब ने, झुकने का राज बहुत-बहुत रूपों में समझा। और बहुत-बहुत रूपों ने पूरब की आत्मा को सागरों और नदियों से भर दिया।
पश्चिम से युवक मेरे पास आते हैं तो वे पूछते हैं कि गुरु के चरणों में झुकने में क्या फायदा?
गुरु के चरणों का सवाल नहीं है। वह प्रासंगिक ही नहीं है। प्रासंगिक
तो इतना है कि झुकने में क्या फायदा? और झुकने के फायदे का कोई अंत नहीं है। क्योंकि जब तुम झुकते हो तभी कुछ तुम में बहना शुरू होता है। सागर में ही नदियां नहीं बहतीं जब वह नीचे झुका होता है, तुम भी जब झुके होते हो तो अनंत-अनंत चेतना की नदियां तुम्हारी तरफ बहनी शुरू हो जाती हैं। और गुरु के चरणों में जो सचमुच झुका है... ।
क्योंकि सिर झुकाने का नाम सचमुच झुकना नहीं है। क्योंकि हो सकता है तुम औपचारिक रूप से झुका रहे हो। क्योंकि घर में परंपरा रही, बड़े-बूढ़ों ने सिखाया है; सदा से चला आया है इसलिए झुक रहे हो। झुकना चाहिए, कर्तव्य है, इसलिए झुक रहे हो। और लोग क्या कहेंगे, इसलिए झुक रहे हो। और लोग झुक रहे हैं, इसलिए झुक रहे हो, क्योंकि अनुकरण नहीं तो अच्छा न मालूम पड़ेगा। जैसा देश वैसा वेश। अब इतने लोग झुक रहे हैं तो हम भी झुक जाओ। लेकिन यह झुकना नहीं है। सिर का झुकना अहंकार का झुकना नहीं है।
अगर तुम भीतर से भी झुक जाओ, किसी औपचारिकता से नहीं, बल्कि इस कुंजी
को समझ कर कि झुकने में मिलता है, झुकने में तुम गड्ढे बन जाते हो। और चेतना भी ऐसे ही बहती है जैसा जल बहता है। और जब तुम्हारी चेतना गड्ढे की तरह किसी के सामने झुक जाती है तो तत्क्षण चेतना का प्रवाह शुरू हो जाता है।
मेरे पास इतने लोग आते हैं; इतने लोग झुकते हैं। मैं अलग-अलग उनको बता सकता हूं कि किसकी चेतना भीतर झुकी और किसने सिर्फ सिर झुकाया। क्योंकि उनके वास्तविक झुकने में तत्क्षण मेरे भीतर कुछ होना शुरू हो जाता है। अगर वे यूं ही झुके हैं तो मेरे भीतर कुछ भी नहीं होता। जैसे ही कोई

व्यक्ति सच में ही झुकता है, तत्क्षण मेरी ऊर्जा उसकी तरफ बहनी शुरू हो जाती है।
जीवन ऊर्जा का प्रवाह है। ऊर्जा भी तलहटी खोजती है--नदियों की भांति। शिष्यत्व का अर्थ है इस रहस्य को समझ लेना। और जब तुम झुकोगे वस्तुतः, जैसा मुझे अनुभव होता है, तुम्हें भी अनुभव होगा। तुम भी तत्क्षण पाओगेः कोई चीज बही जाती है तुम में; भरे देती है तुम्हें; लबालब हुए जाते हो तुम। तुम्हारे पात्र के ऊपर से बहने लगेगी, इसे तुम पाओगे। और एक दफा इसका स्वाद तुम्हें आ गया तब तुम जिंदगी में सब तरफ झुकना सीख लोगे।
एक और बड़े रहस्य की बात है। अगर तुम किसी संत के चरणों में झुको तो लाभ होता है। और लाभ यह होता है कि उसकी ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहती है। अगर तुम किसी असंत के चरणों में झुको तो भी लाभ होता है। उसकी जो दुर्गंध से भरी ऊर्जा है तुम्हारी तरफ नहीं बह सकती। क्योंकि दुर्गंध हमेशा ऊपर उठना चाहती है, नीचे नहीं जाना चाहती। असंत का व्यक्तित्व तो अहंकार का व्यक्तित्व है। असंत से कुछ सीखना हो तो अकड़ कर जाना। तो तुम्हारी दोस्ती बनेगी। तब तुम एक ही जैसे रहोगे। तब तालमेल बैठेगा। अगर बुरे के पास जाना हो तो अहंकारी होकर जाना। तभी बुरे से संबंध बनेगा। क्योंकि बुरे का अर्थ है दो अहंकार। अगर बुरे के चरणों में तुम झुके तो बुरा तुम्हें बिगाड़ न पाएगा। यह बड़े रहस्य की बात है।
इसलिए हमने पूरब में एक हिसाब बना रखा था; चरणों में झुकना सहज कर दिया था। किसी के भी चरणों में झुक जाना है। कोई अड़चन की बात नहीं है। अगर भला होगा आदमी तो लाभ होगा; अगर बुरा होगा तो तुम उसकी बुराई से सुरक्षित रहोगे। बुरा आदमी अहंकार से ही संबंध बना सकता है, निरहंकार से नहीं। वे आयाम मिलते नहीं। अगर तुम विनम्र होकर शैतान के चरणों में भी झुक जाओ तो शैतान तुम्हारा कुछ बिगाड़ न सकेगा।
फकीर हुई है एक औरत, राबिया। कुरान में वचन है कि शैतान को घृणा करो। उसने काट दिया था। एक दूसरा फकीर, हसन, घर में मेहमान था। उसने कुरान देखी और उसने कहा कि यह तो कुफ्र है। यह किस काफिर ने वचन काटा? कुरान में कोई सुधार नहीं किया जा सकता।
राबिया ने कहा, यह मुझे ही करना पड़ा। पहले तो सब ठीक था। लेकिन जब परमात्मा के चरणों में झुकने का राज जाना, जब परमात्मा के प्रेम का राज जाना, तो एक बात और भी समझ में आ गईः परमात्मा प्रेम करने से मिलता है और शैतान घृणा करने से। अगर शैतान को घृणा की तो वह मिलता रहेगा; अगर शैतान के साथ अहंकार का कोई भी संबंध बना कर रखा तो वह जगह-जगह मिलता रहेगा। तो राबिया ने कहा, अब तो शैतान भी सामने खड़ा हो तो मैं ऐसे ही उसके चरणों में झुकती हूं जैसे परमात्मा के चरणों में। अब मुझे कुछ फर्क न रहा। और जब से ऐसा हुआ तब से मैं शैतान से सुरक्षित हूं और परमात्मा मेरी तरफ बहा चला जा रहा है।
तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम गुरु के ही चरणों में झुकना। वह एक हिस्सा है, पहलू। तुम बुरे से बुरे आदमी के चरणों में भी झुकना, वह दूसरा पहलू है। और तुम ऐसी अदभुत अनुभूतियों से गुजरोगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। बुरे आदमी के चरणों में झुक कर देखना, और तुम अचानक पाओगे उसकी बुराई तुम्हारे लिए निरस्त्र हो गई। बुरे आदमी के चरणों में तुम झुके नहीं कि बुरा आदमी भी तुम्हारे लिए भला हो गया; वह दुनिया भर के लिए बुरा हो। इसलिए तुम शर्त मत रखना कि किसके चरणों में झुकना है। झुकना ऐसी कीमिया है, इतनी बड़ी कीमिया है, कि तुम जहां भी झुकोगे लाभ ही होगा।
और एक बार पूरब ने झुकने का राज समझ लिया तो फिर पूरब कहीं भी झुकने लगा--नदी, पहाड़, पत्थर, वृक्ष--कहीं भी झुकने लगा। क्योंकि तब उसने पाया कि झुकने में तो पाना ही पाना है; जितना झुका उतना पाया। यह थोड़ा कठिन है। क्योंकि वैज्ञानिक कोई उपाय नहीं है इसे सिद्ध करने का। अगर तुम जाकर एक वृक्ष के पास भी विनम्रता से, अहोभाव से झुक जाते हो, तो वृक्ष की ऊर्जा तुम्हारी तरफ प्रवाहित होने लगती है। और वृक्ष के पास बड़ी शुद्ध ऊर्जा है। अभी वृक्ष मनुष्य नहीं हुआ है; अभी वृक्ष विकृत नहीं हुआ है। एक भी वृक्ष ऐसा नहीं है जो पागल हो। सभी वृक्ष स्वस्थ हैं। आदमियों में पागल

होते हैं। जानवरों में भी थोड़े होते हैं जो अजायबघरों में रहते हैं। लेकिन वृक्षों में तो कोई पागल होता ही नहीं। वहां ऊर्जा बड़ी शुद्ध और हरी है, ताजी है। वृक्ष की पत्तियां ही हरी नहीं हैं, वृक्ष के भीतर बहता हुआ हरित-प्रवाह है ऊर्जा का। अगर तुम झुके, तुम वृक्ष के पास से ताजे होकर लौटोगे, तुम नये होकर लौटोगे। वृक्ष भी व्यक्ति है। और बड़ा आदिम है; इसलिए बड़ा शुद्ध है। स्रोत के ज्यादा करीब है; अभी यात्रा पर नहीं निकला है। तुम तो काफी यात्रा कर चुके हो, बहुत दूर जा चुके हो। पहाड़ और भी करीब हैं। नदियां... सभी कुछ। एक दफा पूरब को पता चल गई कुंजी, तो कुंजी कोई साधारण न थी, "मास्टर की" थी। उससे सभी ताले खुल सकते थे। उससे बुरे से सुरक्षा थी, भले का प्रवाह था; जीवन की ऊर्जा को ताजा करने के उपाय थे।
तुम जरा कोशिश करके देखो। पहले तो तुमको लगेगा कि बड़ा पागलपन है कि एक वृक्ष के पास झुके बैठे हैं। लेकिन जल्दी ही तुम्हें अनुभव होगा कि कुछ बहा आ रहा है जो तुम्हारे मस्तिष्क को तरोताजा कर जाता है, जो भीतर की धूल को झड़ा देता है। और एक दफा तुम समझ गए झुकने का मजा और झुकने का आनंद, फिर तुम्हें कोई राजी न कर पाएगा कि तुम अकड़ कर खड़े हो जाओ। क्योंकि तब तुम जानोगेः अकड़ मौत है; झुकना जीवन है। लोच आत्मा है; बे-लोच हो जाना जड़ता है। लाओत्से कहता है, "झुकने और नीचे रहने में कुशल होने के कारण।"
झुकना सीखो। लेकिन झुकना तो कभी-कभी होगा। चौबीस घंटे झुके रहो। तब तुमने दूसरी बात सीख लीः नीचे रहना। गुरु मिला, तुम झुके। वृक्ष पास आया, तुम झुके। नदी के पास गए, तुम झुके। झुकोगे; फिर खड़े हो जाओगे। तो झुकना शुरुआत है। और जब कभी-कभी झुकने में इतना मिलता है तो फिर दूसरा कदम है नीचे हो जाना। फिर झुकने की जरूरत ही नहीं; तुमने होना ही अपना नीचे बना लिया। तुम एक गड्ढे की भांति हो रहे। अब तुम्हें रोज-रोज झुकना नहीं पड़ता, घड़ी-घड़ी झुकना नहीं पड़ता। तुम गड्ढे की भांति हो रहे।
ऐसा हुआ कि जुन्नून, इजिप्त का एक बहुत बड़ा फकीर, अपने गुरु के पास था।
वह रोज आता, रोज झुकता। जितने बार मौके मिलते उतने बार झुकता। गुरु कुछ काम के लिए भेजते, फिर लौट कर आता तो फिर झुकता। गुरु कहते, पानी ले आओ! पानी लेने जाता तो जाते वक्त झुकता, लौट कर आता तो फिर झुकता। लोगों में, और शिष्यों में तो मजाक हो गई थी कि जुन्नून पागल है। एक दफा आए, झुक गए। अब दिन भर गुरु के पास रहना हो और दिन भर झुकना हो, तो यह तो पागलपन है। फिर एक दिन लोगों ने देखा बीस साल के बाद--बीस साल ऐसे ही जुन्नून झुकता रहा--एक दिन लोगों ने देखा कि वह आकर चुपचाप गुरु के पास बैठ गया और झुका नहीं। लोग समझे कि अब यह बिल्कुल ही पागल हो गया। अब तक एक अति की, अब दूसरी अति कर रहा है। शिष्यों ने गुरु से पूछा कि जुन्नून क्या बिल्कुल पागल हो गया है? गुरु ने कहा, नहीं, झुकने का अभ्यास पूरा हो गया। अब वह झुका ही हुआ है। अब झुकने की जरूरत नहीं; अब उसने दूसरी अवस्था पा ली जहां वह नीचा ही है। झुकना तो पड़ता है, क्योंकि तुम बार-बार खड़े हो जाते हो, बार-बार ऊंचे हो जाते हो। इसलिए झुकना पड़ता है।
तिब्बत में एक पूरा ध्यान का प्रयोग है जिस प्रयोग में शिष्य को एक हजार बार गुरु के सामने झुकना पड़ता है। दो हजार बार, तीन हजार बार, पांच हजार बार। गुरु बैठा है अपने कमरे में, शिष्य बाहर है, काम कर रहा है। लेकिन उसको दिन में पांच हजार बार गुरु की दिशा में साष्टांग दंडवत करनी है। क्या राज है उस पांच हजार बार झुकने का? और इतना ध्यान लग जाता है उस झुकने से, कुछ और करना नहीं पड़ता। बस इतना ही याद रखना है कि पांच हजार बार दिन में झुक जाना है। ऐसा भी नहीं है कि गुरु के चरण वहीं हों; मील, दो मील दूर भी हो सकता है शिष्य; लेकिन जिस दिशा में गुरु है उस तरफ झुकते रहना है। गुरु से कुछ लेना-देना भी नहीं है। गुरु तो बहाना है। असली बात तो झुकना है। गुरु तो खूंटी है। कोई भी खूंटी काम कर देगी। झुकने को टांगना है।
पश्चिम के लोग बड़ी मुश्किल में रहे हैं। क्योंकि वे समझ ही नहीं पाते, हिंदू देखो सूरज के सामने सूर्य-नमस्कार कर रहे हैं! सूर्य को कुछ नमस्कार करने से होने वाला है। वह कोई सवाल ही नहीं है। नमस्कार करने की कला है, उसको सीखना है। सूरज भी काफी ठीक है। सूर्य-नमस्कार ध्यान का एक गहरा

प्रयोग है। सूरज के कारण नहीं, अगर तुमने सूरज के कारण समझा तो तुम भूल गए, झुकने के कारण।
तो पहला कदम है कि झुको। फिर दूसरा कदम है कि नीचे होने में कुशल हो जाओ। तब सारा संसार तुम्हारी तरफ बहता रहेगा; तुम्हारी संपदा का अंत न होगा। तुम कितनी ही उलीचो और बांटो अपने आनंद की संपदा को, वह बढ़ती ही जाएगी। क्योंकि तुमने गड्ढा बना लिया। अमृत चला आ रहा है। तुम दोनों हाथ उलीचते रहो, कुछ भी चुकेगा न। जितना उलीचोगे उतना पाओगे, बढ़ता चला जाता है।
"इस तरह वे खड्डों-घाटियों के स्वामी बन गए। लोगों के बीच प्रधान होने
के लिए किसी को उनके अनुगत की तरह होना चाहिए।"
अगर तुमने लोगों के आगे होने की कोशिश की तो लोग तुम्हें पीछे पहुंचा देंगे। लोग यानी अहंकार से भरी हुई प्रतिमाएं हैं; पागल हैं। तुमने अगर आगे होने की कोशिश की तो वे घसीट कर तुम्हें पीछे कर देंगे। तुमने अगर पीछे होने की कोशिश की तो वे तुम्हें सिर-आंखों पर उठा लेंगे। जब तुम उनके अहंकार पर चोट नहीं करते तब वे तुम्हें स्वीकार कर लेते हैं, जब तुम उनके अहंकार पर चोट करते हो तब उनका अहंकार प्रतिशोध से भर जाता है। और लोग तो पागल हैं।
तो लाओत्से कहता है, अगर तुम चाहते हो कि सच में ही तुम लोगों के आगे
हो जाओ तो कला है पीछे हो जाना। लेकिन यहां एक बात समझ लेना कि अगर तुम आगे होने के लिए ही पीछे हो रहे हो तो तुम चूक जाओगे। क्योंकि वह तो कोई बात न हुई। तुम किसको धोखा दोगे? तो इसको ऐसा मत समझना कि अगर तुम चाहते हो आगे होना तो पीछे हो जाओ। क्योंकि अगर आगे होने की चाह है और पीछे होना केवल एक साधन है, तो तुम पीछे हो ही नहीं रहे।
बायजीद के एक शिष्य ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे वचनों में पढ़ा और तुमसे सुना कि अगर तुम स्त्रियों को छोड़ दोगे तो स्त्रियां तुम्हारे पीछे आएंगी, अगर तुम धन छोड़ दोगे तो धन की देवी तुम्हारा पीछा करेगी। आज बीस साल हो गए, और अभी तक कोई आया नहीं। तो बायजीद ने कहा, वह आएगा भी नहीं, क्योंकि तुम पीछे लौट-लौट कर देख रहे हो। वह धन की देवी आएगी भी नहीं, क्योंकि तुम धोखा नहीं दे सकते धन की देवी को। तुम पीछे लौट कर देख रहे हो। तो तुम धोखा अपने को ही दे रहे हो।
अगर तुम श्रेष्ठ होना चाहो लोगों में इसलिए पीछे खड़े हो जाओ, तो तुम कभी भी लाओत्से को न समझ पाओगे। हां, अगर तुम पीछे खड़े हो जाओ तो तुम श्रेष्ठ हो जाओगे। वह बाइ-प्रोडक्ट है, वह परिणाम है। वह जो पीछे हो जाता है उसको लोग सिर-आंखों पर उठा लेते हैं। इसलिए नहीं कि उसकी चाह थी, बल्कि इसलिए कि जो पीछे हो जाता है वह श्रेष्ठ हो जाता है। उसे श्रेष्ठ होने की चाह नहीं है। पीछे हो जाने में श्रेष्ठ हो जाना छिपा है। श्रेष्ठ होने की चाह तो निकृष्ट मन की चाह है। श्रेष्ठ होने की चाह तो हीनता की चाह है। उसने सब हीनता छोड़ दी; उसने हीनता इस तरह छोड़ दी कि अब वह सब के पीछे खड़ा हो सकता है--अपनी महा गरिमा में। अब वह अपनी गरिमा को अपने भीतर सम्हाले हुए है। अब किसी के आगे होने से आगे होने का सवाल नहीं है। अब वह अपने भीतर है, और परम आनंदित है। और उसका दीया जल गया है। अब वह श्रेष्ठ है। लोग उसे सिर-आंखों पर उठा लेंगे।
लेकिन इस कामना से तुम पीछे मत खड़े होना, नहीं तो तुम्हारा दीया बुझा
ही रहेगा। तुम पीछे खड़े ही नहीं हो। तुम तो प्रतीक्षा करोगे कि कब लोग आएं, कब आंखों पर उठाएं। तुम बार-बार लाओत्से की किताब पढ़ोगे कि कहीं कुछ भूल-चूक तो नहीं हो गई पढ़ने में! अभी तक लोग आए नहीं! अभी तक सिर-आंखों पर उठाया नहीं! कितनी देर हुई जाती है! जीवन खोया जा रहा है!
"किसी को उनके अनुगत की तरह बोलना चाहिए।"
इसलिए संत आदेश नहीं देते, सिर्फ उपदेश देते हैं। आदेश तो सम्राट देते हैं; उनकी मालकियत है। उपदेश का तो अर्थ होता है केवल सलाह। मानो तो ठीक, न मानो तो भी ठीक है। और संत बिना मांगे सलाह भी नहीं देते। बुद्ध का तो नियम था कि जब तक कोई तीन बार न पूछे वे जवाब न देते थे। इसलिए बुद्ध की किताबों को पढ़ना बड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि तीन बार आदमी सवाल

पूछता है, और तब बुद्ध तीन बार जवाब देते हैं। बहुत लंबा हो जाता है, छः गुना हो जाता है काम।
बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप तीन बार के लिए क्यों रुकते हैं?
बुद्ध ने कहा कि जो मांगता है उसी को मिल सकता है। और तीन बार पूछने का केवल इतना ही प्रयोजन है कि वस्तुतः तुम पूछना ही चाहते हो, ऐसे ही जिज्ञासा से नहीं आ गए हो। तुम्हारे प्राण दांव पर लगे हैं, तभी सलाह दी जा सकती है। लेने वाला तैयार हो, तभी दी जा सकती है। लेने वाला आतुर हो, तभी दी जा सकती है। लेने वाला प्यासा हो, तभी।
और पूछा गया कि आप तीन बार फिर उत्तर क्यों देते हैं?
बुद्ध ने कहा, लेने वाला कितना ही तैयार हो, पर सोया हुआ है। एक बार में न सुन पाए शायद, दोबारा सुन ले। दोबारा न सुन पाए तो शायद तीसरी बार सुन ले।
जीसस ने अपने शिष्यों से कहा कि कोई तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार करे तो सात बार क्षमा कर देना। एक शिष्य ने पूछा कि ठीक, फिर आठवीं बार क्या करना? सात बार क्षमा कर दिया, फिर आठवीं बार? तो जीसस ने कहा, सात बार नहीं, सतहत्तर बार। और अगर तुम पूछोगे कि अठहत्तरवीं बार क्या करना तो मैं कहूंगा सात सौ सतहत्तर बार। क्योंकि वह तो बात ही न हुई। तुम समझे ही नहीं; चूक गए। सात बार तो सिर्फ प्रतीक है क्षमा कर देने का। क्षमा कर देना, यह मतलब है। सात बार तो इसलिए कह रहे हैं कि तुम्हारा भरोसा नहीं है।
एक ईसाई फकीर के संबंध में कहानी है कि एक आदमी आया और उसने उसके एक गाल पर चांटा मारा। तो उसने दूसरा गाल सामने कर दिया, जैसा कि जीसस का उपदेश है, कि जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, दायां उसके सामने कर देना। वह आदमी भी दुष्ट था। उसने भी जीसस की किताब पढ़ी थी। उसने कहा कि तुम हमको न धोखा दे सकोगे। उसने दाएं गाल पर भी एक चांटा मार दिया। जैसे ही उसने दाएं गाल पर चांटा मारा, वह फकीर झपटा और उस आदमी की छाती पर सवार हो गया। उसने कहा, अरे यह तुम क्या करते हो? जीसस को मानने वाले होकर और यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा कि जीसस ने कहा है कि जब बाएं पर कोई मारे, दायां कर देना। अब दाएं पर जब कोई मारे, उसके आगे उन्होंने कुछ कहा भी नहीं है। और दाएं के आगे कुछ है भी नहीं। अब हम स्वतंत्र हैं। जीसस का वचन कर दिया, निपटा दिया। अब तुम हमसे मुकाबला करो।
तुम सभी सिद्धांतों को चुका देते हो, और जल्दी ही तुम प्रकट हो जाते हो।
ऐसी भूल मत करना। प्रथम होने के लिए अंतिम खड़े मत हो जाना। नहीं तो बहुत पछताओगे। उससे तो बेहतर तुम कोशिश में ही लगे रहना प्रथम होने की। तो कम से कम लाओत्से को तो दोष न दोगे कि हम इसकी किताब की उलझन में पड़ गए, पीछे खड़े हो गए। न कोई आया, न बैंड-बाजे बजे, न कोई स्वागत-समारंभ हुआ। "लोगों के बीच उनका अगुआ होने के लिए किसी को उनके पीछे-पीछे चलना चाहिए।"
ध्यान रखना, यह लाओत्से परिणाम की बात कर रहा है, चाह की बात नहीं कर रहा है। अगर तुम पीछे-पीछे चलोगे तो तुम अचानक पाओगे कि तुम अगुआ हो गए हो। यह परिणाम है पीछे चलने का। इसके लिए तुम्हारी चाह की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम्हारी चाह आई कि लाओत्से का सिद्धांत काम न करेगा। क्योंकि तुम फिर पीछे चल ही नहीं रहे, तुम चल तो रहे हो आगे ही।
लाओत्से का उपयोग साधन की तरह नहीं किया जा सकता। किसी ज्ञानी का उपयोग साधन की तरह नहीं किया जा सकता। ज्ञानी साध्य है, वह साधन नहीं है। और लोग उनका साधन की तरह उपयोग करते हैं। साधन की तरह उपयोग करते हैं, बस इसलिए चूक जाते हैं। और फिर उनको जीवन में अनुभव होता है कि नहीं, ये बातें तो सही सिद्ध नहीं होतीं। ये होंगी भी नहीं। लाओत्से, कृष्ण, क्राइस्ट साध्य हैं; तुम उनका अपने लोभ, अपनी वासना, अपनी तृष्णा के लिए उपयोग नहीं कर सकते हो। तुम अगर उनकी मान कर चलो तो तुम एक दिन अचानक पाओगे कि जो-जो उन्होंने कहा था वह रत्ती-रत्ती, सौ प्रतिशत सही उतरता है। क्योंकि जो उन्होंने कहा है वह उनके जीवन में सही उतरा है, तभी कहा है।
"इस तरह संत ऊपर होते हैं, और लोग उनका बोझ अनुभव नहीं करते।"

अगर तुम किसी के ऊपर रहोगे तो लोग तुम्हारा बोझ अनुभव करेंगे। और बोझ
को कौन सहना चाहता है? बोझ को फेंक देना चाहता है कोई भी। बोझ तो आत्मघाती हो जाता है। उसमें तो तुम्हारी आत्मा तड़फने लगती है, तुम्हारे पंख कट जाते हैं। पति पत्नी के ऊपर है तो बोझ है। पत्नी पति के ऊपर है तो बोझ है। पिता बेटे के ऊपर है तो बोझ है। और बेटा कोशिश करेगा, कब इस बोझ को उतार कर रख दे। और सारी जिंदगी में हर आदमी की कोशिश है कि कैसे ऊपर हो जाए। और इसलिए तुम सभी पर बोझ बन जाते हो, पत्थर की तरह लटक जाते हो गर्दनों में। और हरेक चाहता है कि तुमसे छुटकारा कैसे हो।
लाओत्से कह रहा है, संत भी ऊपर होते हैं, लेकिन उनके होने की कला बड़ी अनूठी है। वे नीचे हो जाते हैं, और इसलिए लोग उन्हें सिर-आंखों पर ले लेते हैं। वे खुद ऊपर नहीं बैठते, लोग उन्हें ऊपर बिठा देते हैं। और जब कोई अपनी ही मौज से किसी को अपने सिर पर लेता है तब बोझ मालूम नहीं पड़ता। जब कोई जबरदस्ती तुम्हारे सिर पर होता है तब बोझ मालूम पड़ता है। इसलिए प्रेम निर्बोझ कर देता है।
और संत बड़ा प्रेम जगाते हैं। क्योंकि जो आदमी सबसे पीछे बैठा है वह तुम्हारे अहंकार को तो चोट देता ही नहीं; उससे तुम्हारा कोई संघर्ष ही नहीं है। अचानक उसकी विनम्रता तुम्हें छूने लगती है। उसके पास एक विनम्रता का वातावरण होता है; एक अलग ही ऊर्जा का प्रवाह होता है। अहंकारी आदमी को कहने की जरूरत भी नहीं पड़ती कि अहंकारी है, तुम फौरन समझ जाते हो कि अहंकारी है। उसकी चाल में, उसके उठने-बैठने में, हर तरफ अकड़ है। हर तरफ वह दिखला रहा है कि मैं कुछ हूं, समझे? जानते हो मैं कौन हूं? विनम्र आदमी ऐसे है जैसे छिपा है, जैसे नहीं चाहता कि तुम्हारी आंख में पड़े, जैसे नहीं चाहता कि तुम्हारे रास्ते को काटे, जैसे नहीं चाहता कि आवाज हो जाए, पगध्वनि भी तुम्हें सुनाई पड़े और बाधा पड़े।
झेन फकीर कहते हैं कि जब किसी व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है--और वे ठीक कहते हैं--तो शिष्य को बताना नहीं पड़ता गुरु को आकर कि ज्ञान हो गया; शिष्य के आते ही गुरु कह देता है कि तो हो गया, बात पूरी हो गई। ऐसा भी हुआ है कि रिंझाई जब ज्ञानी हुआ और अपने गुरु के झोपड़े की तरफ गया, तो वह बाहर सीढ़ियां चढ़ रहा था और गुरु ने भीतर कोठे से चिल्ला कर कहा, तो रिंझाई पा गया! अभी गुरु ने देखा नहीं, सिर्फ पगध्वनि सुनी थी। रिंझाई चकित हुआ। और शिष्य चकित हुए। उन्होंने गुरु से पूछा कि बात क्या है? तो उन्होंने कहा कि जब अहंकारी चलता है तो उसकी पगध्वनि अलग होती है, उसके पैर में भी चोट होती है। वह पैर की आवाज से भी कहता है, मैं आता हूं, राह करो! और जब विनम्र आदमी आता है तो उसके पैरों में वह चोट नहीं होती, उसके पैरों में माधुर्य आ जाता है। उसके पैर ऐसे आते हैं कि किसी को बाधा न पड़ जाए, किसी के सुर-संगीत में कोई व्यवधान न आ जाए, मेरे चलने से भी किसी को कोई अड़चन न हो जाए। वह ऐसे आता है जैसे छाया आती है।
रिंझाई ने खुद एक गीत लिखा है कि जब कोई ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है तो
वह ऐसे हो जाता है जैसे वृक्ष की छाया सीढ़ियों को बुहारती है, लेकिन धूल उड़ती नहीं। वृक्ष की छाया सीढ़ियों को बुहारती है, लेकिन धूल उड़ती नहीं। एक दूसरे गीत में रिंझाई ने कहा है, जैसे बगुलों की कतार आकाश में उड़ती है। न तो बगुले चाहते हैं कि झील में प्रतिबिंब बने और न झील की कोई आकांक्षा है प्रतिबिंब बनाने की। प्रतिबिंब बनता है और मिट जाता है; न झील को पता चलता, न बगुलों को पता चलता। ऐसा है व्यक्ति जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। किसी को पता न चले; प्रतिबिंब भी बने तो आहट न हो। छाया भी बुहारे तो धूल का एक कण भी कंपे न। इतनी भी हिंसा नहीं चाहता।
निश्चित ही, उसके पैर की गति, उसके पैर की आवाज, सब बदल जाती है। उसकी पगध्वनि में पैसिविटी होती है, एक्टिविटी नहीं। उसकी पगध्वनि में कर्म नहीं होता, अकर्म की दशा होती है। वह चलता नहीं, जैसे कोई उसे चला रहा है। वह भीतर खाली हो गया है, शून्य। और उसके शून्य की प्रतिध्वनि उसके प्रत्येक कृत्य में मिलती है।
"संत ऊपर होते हैं, और लोग उनका बोझ अनुभव नहीं करते।"

क्योंकि लोग स्वयं ही उन्हें ऊपर उठा लेते हैं। तुम किसी के ऊपर बैठने की कोशिश मत करना। तुम जिसके भी ऊपर बैठ जाओगे वही तुम्हारा दुश्मन हो जाएगा। और इसी तरह तो तुमने हजार तरह के दुश्मन अपने आस-पास इकट्ठे कर लिए हैं। और तुम्हारी पूरी चेष्टा यह है कि किसी के भी ऊपर बैठ जाएं। छोटा सा बच्चा भी घर में पैदा होता है तो मां और बाप उसके ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू कर देते हैं। छोटे से बच्चे को भी तुम छोड़ते नहीं, उसकी भी सवारी करते हो। और तब अगर बच्चे मां-बाप के दुश्मन हो जाते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं। अगर पति-पत्नी के बीच तालमेल खो जाता है तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि दोनों एक-दूसरे के ऊपर सवारी की कोशिश में संलग्न हैं--कौन किसको डॉमिनेट करे, कौन किसको चलाए, कौन असली मालिक है?
क्या तुम इतने हीन हो कि तुम्हें छोटे बच्चे से भी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है? क्या तुम इतने हीन हो कि तुम अपनी पत्नी के ऊपर भी निर्बोझ नहीं हो सकते? क्या तुम इतने हीन हो कि तुम अपने पति को भी निर्बोझ नहीं छोड़ पाते?
जितनी श्रेष्ठता होती है उतना ही आदमी दूसरे को निर्बोझ छोड़ देता है।
और जितनी हीनता होती है उतना ही आदमी दूसरे की छाती पर सवार होता है। क्यों? क्योंकि जब तुम श्रेष्ठ होते हो, लोग स्वयं ही तुम्हें सिर पर उठा लेते हैं। जब तुम निकृष्ट होते हो तभी तुम्हें खुद सीढ़ी लगा कर लोगों के सिर पर चढ़ना पड़ता है। क्योंकि निकृष्ट को कौन सिर पर रखेगा!
इसलिए तो तुम्हारी राजनीति निकृष्ट लोगों का धंधा हो जाती है। उसमें
जो निम्नतम हैं समाज में, वे संलग्न हो जाते हैं। क्योंकि राजनीति सीढ़ी है जिससे पूरे मुल्क की छाती पर और सिर पर चढ़ कर बैठा जा सकता है। अगर दुनिया की राजधानियां, परमात्मा कुछ तरकीब करे, और एकदम से विलीन हो जाएं, सिर्फ राजधानियां, तो दुनिया में नब्बे प्रतिशत पाप एकदम विलीन हो जाएंगे। दिल्ली, लंदन, वाशिंगटन, मास्को, पेकिंग एकदम से समाप्त हो जाएं। क्योंकि वहां सब पागल, सब तरह के हीन-ग्रंथि से भरे लोग इकट्ठे हो गए हैं। राजधानियां घेर ली जानी चाहिए, और उनको मानसिक अस्पतालों में बदल दिया जाना चाहिए। वहां सब के इलाज की जरूरत है। और वे निकृष्टतम लोग हैं, क्योंकि निकृष्ट ही सिर पर चढ़ना चाहता है।
श्रेष्ठ को तो तुम सिर पर बिठा लो तो भी वह कहता है कि क्षमा करो, मुझे नीचे उतरने दो, क्यों नाहक कष्ट कर रहे हो! क्या कारण है इसका? कारण यह है कि श्रेष्ठ इतना श्रेष्ठ है अपने भीतर कि अब किसी के सिर पर बैठ कर थोड़े ही श्रेष्ठ होना है। और किसी के सिर पर बैठ कर कभी कोई श्रेष्ठ हुआ है? श्रेष्ठता जब वस्तुतः होती है तो उसकी गरिमा आंतरिक है; किसी दूसरे से उसका कोई संबंध नहीं। दूसरे के मत, दूसरे के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं। श्रेष्ठता अकेली जी सकती है। श्रेष्ठ व्यक्ति हिमालय के एकांत में भी उतना ही श्रेष्ठ होगा।
तुम्हारे प्रधानमंत्री को, तुम्हारे राष्ट्रपति को जंगल के एकांत में ले जाओ। जैसे-जैसे भीड़ छंटने लगेगी वैसे-वैसे राष्ट्रपति छोटा होने लगेगा। जब ठेठ तुम जंगल में ले जाओगे, और वहां कोई भी न रहेगा, अकेला राष्ट्रपति रह जाएगा, तो वृक्षों के कौए भी ज्यादा श्रेष्ठ मालूम पड़ेंगे। वह कुछ भी नहीं है, ना-कुछ है। उसकी सारे होने की ताकत तो लोगों की भीड़ पर थी, जिनके सिर पर वह चढ़ना सीख गया था। जब लोग ही जा चुके, सीढ़ी गिर गई। नेपोलियन जब हार गया तो उसे सेंट हेलेना के द्वीप में बंद कर दिया गया। हारे नेपोलियन की बड़ी दुर्दशा होती है। जीत थी तो वह संसार का मालिक था, हार गया तो दो कौड़ी का हो गया। लेकिन फिर भी, जैसे रस्सी जल जाती है और अकड़ रह जाती है; रस्सी तो जल गई, लेकिन मरते दम तक नेपोलियन ने कपड़े न बदले। सड़ गए, गंदे हो गए; फट गए। बहुत बार कहा गया कि नये कपड़े आपके लिए उपलब्ध हैं, आप पहन लें। उसने कहा कि नहीं। मरते वक्त उसने अपनी डायरी में लिखा है कि ये कपड़ों की बात ही और, ये सम्राट के कपड़े हैं। और तुम कितने ही ताजे और नये कपड़े ले आओ, वे एक कैदी के कपड़े होंगे।
राख हो गई सब, लेकिन अकड़ बाकी है। अभी भी वह चलता है तो उसी अकड़ से। फटे हैं कपड़े, पुराने हैं कपड़े, जराजीर्ण हो गए, लेकिन वह अब भी अपने को सोच रहा

है कि सम्राट है। मरते समय उसने लिखा है कि मान लिया कि मैं अब सम्राट नहीं हूं, लेकिन इसे तो कोई भी इनकार न करेगा कि मैं एक हारा हुआ सम्राट हूं। हारा हुआ हूं माना, मगर हूं तो सम्राट ही। मगर हारे हुए सम्राट का क्या मतलब होता है?
आदमी जितना भीतर अभाव अनुभव करता है हीनता का, हीनता का कीड़ा जितना भीतर काटता है, उतने ही बाहर उपाय करता है कि कैसे उसे ढांक ले। बाहर रोशनियां जलाता है ताकि भीतर का अंधेरा न दिखाई पड़े। भीतर तो हर कोई जानता है कि मैं ना-कुछ हूं, इसलिए दूसरों पर अकड़ जताता है। और ध्यान रखना, जितना ही कोई अकड़ जताए दूसरों पर उतना ही छोटा आदमी भीतर छिपा है। बड़े आदमी की तो अकड़ होती ही नहीं। बड़ा आदमी तो ऐसा होता है जैसे हो ही न। महानता शून्यता है। और जब तुम कहीं भी उस शून्यता को देखते हो तब अचानक तुम्हारा सिर झुक जाता है। तब तुम किसी को सिर पर रख लेना चाहते हो।
संत ऊपर होते हैं, अपने कारण नहीं, लोग उन्हें ऊपर उठा लेते हैं। लोग उन्हें बिना ऊपर उठाए रह नहीं सकते; क्योंकि उनको ऊपर उठाने में ही पंख मिलते हैं, उनको ऊपर उठाने में तुम उनके साथ उड़ना शुरू करते हो। उनको तुम जितना ऊपर उठाते हो उतना ही तुम भी ऊपर उठते हो।
निकृष्ट आदमी को ऊपर बिठाना खतरनाक है। क्योंकि जितना ही तुम निकृष्ट
को ऊपर बिठाते हो, तुम नीचे दबते हो, तुम और छोटे होते जाते हो। गुलाम होना बुरा है, क्योंकि तुम जब भी गुलाम होने को राजी हो जाते हो किसी के, तभी तुम्हारे भीतर सब सिकुड़ने लगता है; तुम और गुलाम होने लगते हो।
लेकिन दास होने का मजा और। गुलामी और दासता में फर्क है। गुलाम तो जबरदस्ती बनाया जाता है, दूसरा तुम्हारी छाती पर सवार हो जाता है। और दास होने का मतलब है, तुम किसी को अपने सिर पर उठा लेते हो। तो गुलामी परतंत्रता है, और दास हो जाने से बड़ी स्वतंत्रता नहीं।
इसलिए कबीर कहते हैं, कहे दास कबीर।
यह जो दास है कबीर का यह गुलाम नहीं है; यह दासता अंगीकार की है, यह छोटा होना अपनी तरफ से स्वीकार किया है, यह पीछे होना अपनी तरफ से साधा है; अपने को ना-कुछ बनाने में स्वेच्छा से चेष्टा की है।
"वे आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते।"
जब तुम लोगों के आगे चलना चाहोगे तो लोग तुम्हारी हानि चाहेंगे। क्योंकि तुम उन्हें आगे होने देने में बाधा हो, तुम उनके दुश्मन हो। इसलिए राजनीति में कोई दोस्त नहीं होता। राजनीति में दो तरह के दुश्मन होते हैंः प्रकट दुश्मन, अप्रकट दुश्मन। प्रकट दुश्मन से भी अप्रकट दुश्मन ज्यादा खतरनाक होता है।
इसलिए मैक्यावेली ने, जिसने कि राजनीति की बाइबिल या वेद लिखा, अपनी किताब दि प्रिंस में कुछ सुझाव दिए हैं। उसने कहा है कि राजनीतिज्ञ को, राजा को, सम्राट को, किसी को भी भूल कर कभी मित्र नहीं मानना चाहिए, अन्यथा वह पछताएगा। क्योंकि जो आज मित्र है वह कल शत्रु हो सकता है। और उसने यह भी कहा कि शत्रु के संबंध में भी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए कि कभी मित्रता बनने का मौका आए तो वह बात बाधा बने। क्योंकि वहां कोई भी शत्रु हो सकता है, कोई भी मित्र हो सकता है।
राजनीतिज्ञ के आस-पास जो लोग होते हैं वे भी शत्रु हैं, क्योंकि वे भी कोशिश कर रहे हैं कि तुम जिस सिंहासन पर हो, वे हो जाएं। तो कुछ शत्रु बाहर चेष्टा करते हैं, वहां से आने की; और कुछ शत्रु घर के भीतर होते हैं और वहां से चेष्टा करते हैं। राजनीतिज्ञ का मित्र कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि जो महत्वाकांक्षा तुम्हें ले आई है वही दूसरों को भी ले आई है।
तो इंदिरा को डर कोई जयप्रकाश से ही नहीं है, यशवंतराव चव्हाण से भी उतना ही है; ज्यादा। और बाहर के दुश्मन से तो सुरक्षा करना आसान है, भीतर के दुश्मन से सुरक्षा करना मुश्किल है; क्योंकि वह भीतर है। इसलिए तो इंदिरा को रोज-रोज पोर्टफोलियो बदलने पड़ते हैं कि किसी को भी यह भ्रांति न हो जाए कि तुम जम गए। उखाड़ते रहना पड़ता है। तुमको पक्का पता रहना चाहिए कि तुम जम नहीं गए हो, कि तुम और आगे जाने की कोशिश करने लगो। तुम जहां हो वहीं रहने में तुम्हें लगाए रखना पड़ता है, कि तुम किसी तरह वहीं बने रहो।

क्योंकि तुम्हें अगर यह पक्का भरोसा हो जाए कि तुम जहां हो वहां से तुम्हें कोई नहीं हटा सकता, तो तुम और ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू कर दोगे। इसलिए हर राजनीतिज्ञ को अपने कैबिनेट को हमेशा उखड़ी हालत में रखना पड़ता है, कंपाए रखना पड़ता है। तो किसी को भी पक्का भरोसा न हो जाए कि यह कुर्सी तय हो गई। अगर यह तय हो गई तो तुम्हारी शक्ति ऊपर वाली कुर्सी की तरफ जाने में संलग्न हो जाएगी। इसलिए इस कुर्सी को हिलाए रखना पड़ता है कि तुम्हारी ताकत इसी पर बैठे रहने में लगी रहे, और तुम्हारी ताकत आगे न जा पाए। राजनीति में मित्रता संभव नहीं है। क्योंकि महत्वाकांक्षी की क्या मित्रता हो सकती है!
हम सब महत्वाकांक्षी हैं अगर, हम सब एक-दूसरे के दुश्मन हैं तब। क्योंकि हम वही पाने की कोशिश कर रहे हैं जो दूसरे भी कर रहे हैं। और वह न्यून है--चाहे धन हो, चाहे पद हो। सारा संसार उसी को पाना चाह रहा है; इसलिए सारा संसार एक-दूसरे का दुश्मन है। और एक कलह सतत चलती रहती है। शिष्टाचार में छिपी, संस्कृति में ढंकी, वस्त्रों में, शब्दों में, बातों में छिपाई हुई, लेकिन भीतर एक संघर्ष चल रहा है।
"संत आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते।"
क्योंकि संत तो पीछे चलता है, लोग ही उसको पकड़ कर आगे ले आते हैं। और जैसे ही लोग उसे छोड़ दें, वह फिर पीछे चला जाता है। ऐसी अनूठी घटना इस देश में घटी है कि सम्राट से भी ऊपर जंगल में बसे ऋषि का स्थान हो गया था। वह हट गया था पीछे। लेकिन सम्राट जाकर उसके चरण छूता। जिसके पास कुछ भी न था उसके चरण वह छूता जिसके पास सब कुछ था। एक बड़ा अनूठा प्रयोग था।
ऐसा हुआ कि एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ। जो सम्राट था उसके वजीर ने कहा कि आप चलें, नगर के बाहर स्वागत करें। सम्राट नया-नया था, अकड़ से भरा था। उसने कहा कि क्यों मैं जाऊं? आखिर बुद्ध एक भिखारी ही हैं। और आना होगा तो खुद महल आ जाएंगे। और मेरी क्या जरूरत है जाने की? उस बूढ़े वजीर ने तुरंत इस्तीफा लिख दिया। उसने कहा कि फिर मेरा इस्तीफा सम्हाल लें। क्योंकि इतने छोटे आदमी के नीचे काम करना फिर मुझे मुश्किल है। तुम में बड़प्पन है ही नहीं। वह सम्राट बोला, बड़प्पन नहीं है? बड़प्पन की वजह से ही तो मैं जा नहीं रहा हूं।
उस बूढ़े वजीर ने कहा, इसे हम बड़प्पन नहीं कहते। बुद्ध कभी सम्राट थे,
और उन्होंने उस सम्राट होने को छोड़ कर भिक्षुक का पात्र लिया। इसलिए भिक्षुक का पात्र साम्राज्य से बड़ा है। साम्राज्य को छोड़ दिया इस पात्र के लिए। अगर तुम्हें दिखाई पड़ता हो तो तुम एक अवस्था पीछे हो अभी बुद्ध से। क्योंकि सम्राट होने के बाद वे भिक्षु हुए हैं। अभी तुम सम्राट ही हो, अभी भिक्षु होने में तुम्हें बहुत देर है। और तुम्हें चलना होगा प्रणाम करने को, और झुकना होगा चरणों में। अन्यथा मेरा इस्तीफा सम्हाल लें।
एक अनूठा प्रयोग पूरब में हुआ है, और वह यह कि जो सबसे पीछे है उसके चरणों में वह झुके जो सबसे आगे है। क्योंकि सबसे आगे, तो अभी भी बचकाना है, महत्वाकांक्षा की दौड़ है, ज्वर है। जो सबसे पीछे खड़ा है वह प्रौढ़ हो गया। अब उसकी कोई प्रतियोगिता किसी से भी न रही। अब प्रतिस्पर्धा बिल्कुल शून्य हो गई। इस शून्य प्रतिस्पर्धा में ही तो पहली दफा आत्म-गौरव का जन्म होता है। अब कोई छीना-झपटी नहीं है। अब धन बाहर नहीं है, धन भीतर है। अब किसी से कुछ पाना नहीं है, अब जो पाना है वह मिला ही हुआ है। अब भीतर का दीया जलता है, अब बाहर की रोशनियों का कोई सवाल न रहा। अब हो जाए गहन अंधकार बाहर, तो भी अंतर न पड़ेगा। कोई भी न हो बाहर, सारी पृथ्वी खाली हो जाए, तो भी इसके एकांत में वही शांति और वही आनंद होगा जो भीड़ के रहते था। अब जंगल और बाजार में कोई फर्क न रहा। अब तुम क्या कहते हो, अच्छा या बुरा, कोई उसकी संगति नहीं है।
इतनी आत्म-गरिमा में प्रतिष्ठित जो है उसी का नाम संत है।
"वे आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते। और तब संसार के लोग खुशी-खुशी और सदा के लिए उन्हें सिर-आंखों पर रखते हैं। क्योंकि वे कलह नहीं करते, इसलिए संसार में कोई उनके विरुद्ध संघर्ष नहीं कर पाता।"

संत से लड़ना मुश्किल है। लड़े कि हारे। संत से अगर लड़े कि हारना सुनिश्चित है। संत को हराया नहीं जा सकता। क्यों? क्योंकि संत की कोई जीतने की आकांक्षा नहीं है। जो जीतना ही नहीं चाहता उसे तुम हराओगे कैसे? रामकृष्ण से विवाद करने आए थे केशवचंद्र। हराने आए थे; हार कर लौटे। क्योंकि रामकृष्ण ने विवाद किया ही नहीं। उलटी ही हो गई बात सब। केशवचंद्र करने लगे तर्क की बात कि ईश्वर नहीं है, सिद्ध करने लगे। और हर तर्क पर रामकृष्ण उठ-उठ कर उनको गले लगाने लगे और कहने लगे, वाह-वाह, बिल्कुल ठीक कहा। थोड़ी देर में केशवचंद्र मुरझा गए कि अब करना क्या? जो भीड़ देखने आई थी रामकृष्ण की पराजय को, वह भी बड़ी बेचैन हो गई कि यह किस तरह का विवाद हो रहा है!
तो केशवचंद्र ने कहा, आप मेरी सब बातों को हां कहते हैं तो आप पराजय स्वीकार करते हैं?
रामकृष्ण ने कहा, मैंने कभी दावा ही कहां किया तुम्हें जीतने का? तुम्हारी जैसी प्रतिभा को और मुझ जैसा गंवार जीत सकेगा? असंभव! मगर एक बात तुमसे कहता हूं कि मैं तो बेपढ़ा-लिखा हूं, परमात्मा की कोई बहुत बड़ी प्रतिभा मुझसे प्रकट नहीं हो रही है; तुम्हें देख कर मुझे पक्का भरोसा आ गया कि परमात्मा है। इतनी प्रतिभा! ऐसा तर्क! कैसे गजब की बातें तुमने कहीं! जहां इतनी प्रतिभा हो सकती है वहां परमात्मा होना ही चाहिए। क्योंकि पदार्थ से ऐसी प्रतिभा कैसे पैदा होगी? और यह मानने को मैं राजी नहीं हूं केशव, कि तुम सिर्फ मिट्टी-पत्थर हो। तुम्हारे भीतर ऐसा संगीत बज रहा है बुद्धिमत्ता का, वह संगीत खबर देता है कि परमात्मा है। इसके पहले मुझे थोड़ा-बहुत शक भी रहा हो, तुम्हारे आने से वह भी मिट गया।
केशवचंद्र हार कर लौटे। क्योंकि संत की कलह क्या है? उसका दावा क्या है? उसे कुछ सिद्ध करना नहीं है। संत का कोई सिद्धांत थोड़े ही है जिसे सिद्ध करना है, कोई शास्त्र थोड़े ही है जिसे सिद्ध करना है। संत का तो एक जीवन है। और उस घड़ी में केशव की आंखें खुल गईं, और देखा संत के जीवन को, और देखी इस महिमा को, जिसे कि विरोध भी हरा नहीं सकता, जिसे विवाद से मिटाया नहीं जा सकता; देखी इस आस्था को कि कितने ही तूफान उठाए जाएं तर्क के, आस्था का दीया डगमगाता भी नहीं, उलटे तूफान से भी जीवन ले लेता है।
तुमने देखा कभी, कि छोटे दीये बुझ जाते हैं हवा के झोंके में, लेकिन बड़ी आग लगी हो तो हवा घी का काम करती है। आग लग गई हो मकान में तो उस वक्त एक ही सुरक्षा है कि हवा न चले। क्योंकि आग लगी हो मकान में और हवा चल जाए तो आग बढ़ जाएगी; बुझना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन गणित तो देखो! छोटा सा दीया, हवा आती है तो बुझ जाता है। बड़ी आग, हवा आती है तो और जलती है।
संत इतनी बड़ी आग है कि बुझाने को तुम अगर तूफान लाओगे तो घी का काम होगा। छोटे-छोटे दीये विवाद से हार जाते हैं। बड़ी आग विवाद से बढ़ती है। छोटे-छोटे दीये, लड़ो तो हरा सकते हो उन्हें। बड़ी आग से लड़ोगे तो जलोगे, हारोगे।
लेकिन सौभाग्य है कि अगर बड़ी आग के करीब पहुंच जाओ और हार जाओ। संत के पास हार जाने से बड़ा और कोई सौभाग्य है भी नहीं। वहां से तुम जीत की अकड़ लेकर लौट जाओ, वही पराजय है। वहां तुम हार आओ, वहां तुम समर्पित हो जाओ, वही जीत है। जैसे प्रेम में हार जीत होती है वैसे ही श्रद्धा में भी हार जीत होती है। क्योंकि श्रद्धा प्रेम की ही बड़ी आग है।
संत के विरुद्ध संघर्ष करना मुश्किल है, क्योंकि संत है नहीं भीतर जिससे तुम टकरा सको। तुम संत के भीतर पाओगे महाशून्य, तुम्हें कहीं अवरोध न मिलेगा, कोई दीवाल नहीं होगी जो तुमसे लड़ने को तैयार है। तुम संत के भीतर जितने जाओगे उतना ही पाओगे कि और भीतर का आकाश खुलता चला जाता है। संत के पास जाकर तुम खो ही जाओगे। वह तो ऐसे ही है जैसे बूंद सागर में गिरती है और खो जाती है। सौभाग्य है कि संत के पास पहुंच जाओ। क्यों कहता हूं सौभाग्य? क्योंकि जो लोग बहुत चालाक हैं, समझते हैं बहुत होशियार हैं, वे संत के पास आते ही नहीं। संत से बचने का वही एक उपाय है, कि पास ही मत आओ, दूर-दूर रहो, सुनी बातों को समझो। संत के संबंध में लोग क्या कह रहे हैं उन बातों को मान लो, संत के सामने सीधे-सीधे मत आओ। तो ही बच सकते हो। अगर सीधे आ गए तो

मिटोगे। और इसलिए जो बहुत चालाक हैं--अपनी मूढ़ता में चालाक हैं--वे सुनी बातों से जीते हैं। वे पास आकर देखने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते। वे आंख में आंख डाल कर देखने के लिए तैयार भी नहीं होते। खतरा है। और एक लिहाज से वे ठीक हैं, क्योंकि पास आएंगे तो उनकी जीत तो मुश्किल है। वह तो असंभव है। संत के पास आकर हारने के सिवाय और कोई संभावना ही नहीं है।
और जैसे-जैसे पास आओगे, और पास आना पड़ेगा। जैसे-जैसे पास आओगे, और प्यास बढ़ेगी, और तड़फ लगेगी। जैसे-जैसे पास आओगे वैसे-वैसे मिटने की बड़ी तीव्र आकांक्षा गहन होगी। एक दिन संत में डूबोगे। और जिस दिन संत में डूब जाओ उस दिन तुम्हारे भीतर भी संतत्व का उदय हो गया। उस दिन तुम वही न रहे जो आए थे। उस दिन आग से तुम गुजर गए और तुम्हारा सोना निखर आया। तुम शुद्ध कुंदन हो गए, सब कचरा जल गया।
संत एक क्रांति है, जिससे तुम गुजर सकते हो। और मिटने की तैयारी हो तो
ही पास आना चाहिए। लोग ऐसे हैं कि पास भी आ जाते हैं, मिटने की तैयारी नहीं है। तब बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। तब उनकी दुविधा मैं देखता हूं, उनकी तकलीफ मैं देखता हूं। एक कदम पास आते हैं मेरे, एक कदम दूर जाते हैं। एक हाथ से पास आते हैं, दूसरे हाथ से अपने को सम्हाले रखते हैं।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन आई और उसने कहा, जल्दी करें! और खतरे की घड़ी है, मुल्ला फांसी लगाने की कोशिश कर रहा है। मैं उसके साथ मुल्ला के घर तक गया। राह में वह बार-बार कहने लगी, जल्दी चलें! यह आपकी चाल ठीक नहीं; यह मामला संकट का है। मैंने कहा, तू घबरा मत। जो आदमी कभी किसी चीज में सफल नहीं हुआ वह आत्महत्या में भी सफल होगा नहीं; तू बिल्कुल बेफिक्र रह। पर उसको पसीना चू रहा है और हाथ-पैर कंप रहे हैं। वह बोली कि आत्महत्या बात और है। और चीज में सफल न हुआ हो, क्योंकि दूसरों का सवाल था। यह तो अकेले, आत्महत्या तो खुद ही करनी है। कोई बाधा भी देने वाला नहीं है। कमरा उसने बंद कर रखा है। मैंने कहा, तू बिल्कुल फिक्र मत कर, मैं उसे भलीभांति जानता हूं, वह सफल किसी चीज में हो ही नहीं सकता।
उसके घर पहुंचे। देखा तो इंतजाम उसने पूरा कर रखा था। रस्सी बांध रखी
थी छप्पर से; एक स्टूल पर खड़ा था और रस्सी अपनी कमर में बांध रहा था। मैंने कहा, नसरुद्दीन, अगर मरना है तो कमर में रस्सी क्यों बांध रहे हो? उसने कहा कि पहले गले में बांधने की कोशिश की, पर बड़ी बेचैनी होती है। और मरना तो है ही, तो मैं कमर में बांध रहा हूं। क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं है कि आदमी आराम से मर सके?
बस ऐसी दुविधा में हैं बहुत लोग। संत के पास पहुंच जाते हैं और फिर अपने को बचाना भी चाहते हैं; कमर में रस्सी बांधते हैं। कहते हैं, गर्दन में बांधते हैं तो बेचैनी होती है। बचाते भी हैं अपने को, और बचा भी नहीं सकते हैं। क्योंकि आमंत्रण सुन लिया गया है; पुकार आ गई है; बुलावा आ गया है। और भीतर लग रहा है कि तैयार हैं, कूद लेना चाहिए, छलांग ले लेनी चाहिए। खड़े हैं गड्ढ के पास, एक क्षण में घटना घट सकती है, सिर्फ साहस चाहिए। लेकिन पकड़े हैं किनारे को। नाव में सवार हो गए हैं, और नाव की खूंटियां किनारे से बंधी हैं, उन्हें खोल नहीं रहे हैं। नाव में बैठे हैं, पतवार चला रहे हैं; और खूंटियां किनारे से बंधी हैं, रस्सियां किनारे से बंधी हैं। नाव कहीं जा नहीं रही।
ऐसी दुविधा में तुम मत पड़ना। या तो भाग खड़े होना, लौट कर पीछे देखना ही मत। और या फिर छलांग ले लेना, और फिर मत भय करना कि क्या होगा। इन दो के बीच रहोगे तो न घर के न घाट के, न संसार के न संन्यास के, न पदार्थ के न परमात्मा के। तब तुम बड़ी उलझन में रहोगे। वह किनारा छूट गया और दूसरा किनारा मिलता नहीं। और मझधार में डूबने जैसी गति हो जाएगी।
संत के पास आना हो तो पूरे, न आना हो तो भी पूरे न आना। मध्य में बड़ा तनाव पैदा हो जाता है, बड़ा संताप पैदा होता है। और कमर में रस्सियां बांध कर कोई फांसी नहीं लगती। और बेचैनी तो होगी, क्योंकि सारे अतीत को मार डालना है। बेचैनी तो होगी, क्योंकि सारी वासनाओं को जला डालना है। बेचैनी तो होगी, क्योंकि अब तक की सारी महत्वाकांक्षाओं और पागलपन को आग में गिरा देना है; राख कर देना है अहंकार को। बेचैनी तो निश्चित है। लेकिन उसी

बेचैनी के बाद, उसी अंधेरी रात के बाद सुबह का जन्म है। और जिन्हें सुबह देखनी है उन्हें अंधेरी रात से गुजरने का साहस चाहिए ही।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ ग्यारहवां प्रवचन

असंघर्षः सारा अस्तित्व सहोदर है

Chapter 68

The Virtue Of Not -Contending

The brave soldier is not violent;
The good fighter does not lose his temper;
The great conqueror does not fight (on small issues); The good user of men places himself below others. -- This is the virtue of not-contending,
Is called the capacity to use men,
Is reaching to the height of being,
Mated to Heaven, to what was of old.

अध्याय 68

असंघर्ष का सदगुण

वीर सैनिक हिंसक नहीं होता है;
अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता है;
बड़ा विजेता छोटी बातों के लिए नहीं लड़ता है;
मनुष्यों का अच्छा प्रयोक्ता अपने को दूसरों के नीचे रखता है।
-- असंघर्ष का यही सदगुण है।
इसे ही मनुष्यों को प्रयोग करने की क्षमता कहते हैं;
यही है अस्तित्व की ऊंचाई को छूना,
जो स्वर्ग का सखा है, पुरातन का भी।

मनुष्य के जीवन की जटिलता एक बुनियादी बात से निर्मित होती है। और वह बुनियादी बात है कि तुम जो नहीं हो वह दिखाने की कोशिश में संलग्न हो जाते हो। फिर तुम सत्य तक कभी भी न पहुंच सकोगे। क्योंकि तुमने शुरुआत ही असत्य की कर दी; यात्रा का पहला कदम ही गलत पड़ गया।

जिसके जीवन में प्रेम नहीं है वह प्रेम को दिखाने की कोशिश करता है। जिसके जीवन में वीरता नहीं है वह वीरता दिखाने की कोशिश करता है। जिसके जीवन में साहस नहीं है वह साहस के मुखौटे ओढ़ लेता है।
जो नहीं है उसे तुमने बताने की कोशिश की कि तुम भटके। पहुंचने का रास्ता तो सीधा और साफ है कि तुम जो हो वही दिखाओ। वही प्रामाणिक जीवन का लक्षण है।
लेकिन क्यों होती है यह बात पैदा? आदमी क्यों दिखाना चाहता है वह जो नहीं है? कुछ गहरे कारण हैं। समझें।
जीवन में प्रेम को पाना तो कठिन बात है, आसान नहीं। दुर्गम है रास्ता; बड़ी पहाड़ों जैसी चढ़ाई है। क्योंकि प्रेम को पाने का अर्थ है अपने को बदलना; प्रेमी होने का अर्थ है अहंकार को तोड़ना, काटना, छांटना। क्योंकि तुम जैसे हो कौन तुम्हें प्रेम कर पाएगा? तुम जैसे हो ऐसी हालत में लोग तुम्हें घृणा कर सकें, यही संभव है; प्रेम न कर पाएंगे। इतना कचरा है तुममें, उसे तो जलाना ही होगा। जब तुम निखर कर कुंदन बनोगे तभी तुम्हें कोई प्रेम कर पाएगा। और वह रास्ता बड़ा लंबा है; बड़ा मुश्किल है।
सस्ती तरकीब है दूसरी। वह यह है कि तुम फिक्र ही छोड़ो अपने को बदलने की; जो तुम सोचते हो कि तुम्हें होना चाहिए उसे तुम दिखाना शुरू कर दो।

झूठा चेहरा ओढ़ लो। जीवन के साथ धोखे का खेल शुरू कर दो। नहीं है प्रेम, फिक्र छोड़ो; तुम सिर्फ प्रेम का अभिनय करो। तुम्हारे जीवन में सुगंध नहीं है, फिक्र छोड़ो; इत्र बाजार में बिकते हैं, उन्हें तुम अपने पर छिड़क लो। मुस्कुराहट नहीं है तुम्हारे भीतर, उठती नहीं है प्राणों से; तो भी ओंठों को तो तुम मुस्कुराता हुआ दिखा सकते हो। ओंठों का मुस्कुराना हृदय की मुस्कुराहट के साथ अनिवार्य तो नहीं है। ओंठ सिर्फ मुस्कुरा सकते हैं बिना हृदय से जुड़े हुए; थोड़े से अभ्यास की बात है। ओंठ का मुस्कुराना आसान है, ऊपर-ऊपर है। इतने से काम चल जाएगा। दूसरे को धोखा हो जाएगा।
और दूसरे को धोखा जैसे ही होता है, एक और बड़ा धोखा पैदा होता है, वह खुद
को धोखा है। जब तुम दूसरे को देखते हो कि तुम्हारे धोखे में आ गया, और जब बार-बार तुम देखते हो कि मुस्कुराहट पर लोग भरोसा कर लेते हैं, अंततः तुम पाओगे कि तुमने भी अपनी मुस्कुराहट पर भरोसा कर लिया। क्योंकि तुम अपने संबंध में दूसरों के द्वारा ही जानते हो। दूसरे लोग कहते हैं कि तुम बड़े प्रसन्नचित्त हो, तो तुम्हें खुद भी भरोसा आ जाता है। तब धोखा मजबूत हो गया। अब तुमने दूसरों को ही नहीं धोखे में डाल दिया, अपने को भी धोखे में डाल दिया। अब आत्मवंचना परिपूर्ण हो गई। अब इसे हिलाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और जो भी हिलाएगा वह तुम्हें शत्रु जैसा मालूम पड़ेगा। क्योंकि वह तुमसे छीने ले रहा है तुम्हारी मुस्कुराहट; वह तुमसे छीने ले रहा है तुम्हारा प्रेम का सदगुण, तुम्हारी अहिंसा, तुम्हारी दया, तुम्हारी करुणा, तुम्हारा दान। जो व्यक्ति भी तुम्हें चेताएगा कि यह सब धोखा है जो तुम कर रहे हो, वह शत्रु मालूम पड़ेगा। और जो तुम्हारी खुशामद करेगा और कहेगा कि बिल्कुल ठीक हो, तुम जैसा सदगुणी आदमी नहीं, वह तुम्हें मित्र मालूम पड़ेगा।
इसलिए तो दुनिया में खुशामद इतनी कारगर होती है। खुशामद से हर आदमी प्रभावित होता है। अगर तुम कोई ऐसा आदमी कहीं पा लो जो खुशामद से प्रभावित न होता हो तो समझना कि वह प्रामाणिक आदमी है। खुशामद का मतलब है कि तुम जो धोखा अपने को दे रहे हो हम भी उसमें साथी-सहयोगी हैं। तुम दो इंच धोखा दे रहे हो, हम चार इंच सहयोगी हैं। तब तुम्हारे धोखे को आस-पास से लोग भरने लगते हैं। और एक पारस्परिक शड्यंत्र चलता है समाज में कि तुम हमारे धोखे भरो, हम तुम्हारे धोखे भरेंगे; तुम हमारी झूठ को सम्हालो, हम तुम्हारी झूठ को सम्हालेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन काफी हाऊस में बैठ कर कह रहा था कि आज गजब हो गया। मछली पकड़ने गया था, एक मछली मैंने पकड़ी जिसका वजन तेरह मन! किसी को भरोसा न आया। एक दूसरे आदमी ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। मैं भी गया था मछली मारने। मछली तो नहीं पकड़ पाया, बंसी में कोई और चीज उलझ गई। खींचा ऊपर तो देखा एक लालटेन है। और लालटेन पर लिखा हुआ है कि महान सिकंदर की लालटेन है यह; बड़ी प्राचीन। और इतना ही नहीं कि सिकंदर की लालटेन मिल गई, भीतर अभी भी ज्योति जल रही थी। नसरुद्दीन ने कहा, ऐसा करो भाई, हम अपनी मछली का वजन थोड़ा कम कर लेते हैं, तुम कम से कम यह लालटेन की बत्ती बुझा दो।
धोखे हैं। एक पारस्परिक हिसाब है कि कितनी दूर तक धोखे में लोग साथ देंगे।
इस धोखे के जाल को हिंदुओं ने माया कहा है। तुम यह न समझना कि जो संसार बाहर है वह माया है। ये वृक्ष और चांद-तारे, ये माया नहीं हैं। माया तो वह संसार है जो तुमने झूठ के आधार पर अपने चारों तरफ खड़ा कर रखा है। और जब माया से तुम मुक्त होओगे तो ऐसा नहीं है कि ये झाड़, चांद-तारे विलीन हो जाएंगे। सिर्फ तुमने जो संसार बना रखा था झूठ का, वह विलीन हो जाएगा। और जब तुम्हारे पास इतने झूठ हैं; पर्त दर पर्त झूठ ही झूठ इकट्ठे हो गए हैं। अगर आदमी को उघाड़ो तो प्याज की पर्तों जैसे झूठ निकलने शुरू हो जाते हैं। खोजना ही मुश्किल है कि तुम्हारी मूल स्वभाव की पर्त कहां है। इतनी पर्तें हैं। इतना जाल तुमने अपने चारों तरफ खड़ा कर रखा है।
लेकिन जिनको भी लोगों के मन की थोड़ी समझ है, तुम उन्हें धोखा न दे पाओगे। क्योंकि वस्तुतः उनका मापदंड यही है कि जो तुम दिखाते हो, निन्यानबे प्रतिशत मौके यही हैं कि वह तुम हो नहीं सकते। अगर तुम ज्यादा

मुस्कुराते हो तो उसका कारण यही होगा कि भीतर बहुत उदासी है। अन्यथा इतने मुस्कुराने की जरूरत न थी। अगर तुम ऊपर से बड़ा प्रेम दिखलाते हो तो उसका निन्यानबे प्रतिशत कारण तो यही होगा कि भीतर तुम घृणा से भरे हो। और उस घृणा को छिपाने का और कोई उपाय नहीं है। अन्यथा तुम्हारा वीभत्स रूप दिखाई पड़ेगा। अन्यथा तुम्हारे भीतर की गंदगी बाहर प्रकट होने लगेगी। तो तुम सब तरह से अपने को साज-संवार लिए हो।
लेकिन तुमने जो-जो बाहर से दिखलाया है, जानने वाले जानते हैं कि भीतर तुम उसके ठीक विपरीत होओगे। निन्यानबे प्रतिशत मैं कहता हूं, क्योंकि सौवां कभी-कभी कोई बुद्ध होता है जो बाहर और भीतर एक जैसा होता है। तुम बाहर कुछ, भीतर कुछ। बाहर कुछ, भीतर कुछ, इतना ही नहीं; तुम जैसे बाहर, ठीक उससे विपरीत भीतर। असल में, तुमने बाहर को बनाया ही है भीतर के विपरीत, ताकि तुम धोखा दे सको।
यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो आदमी साहस की बहुत बातें करता हो, तुम समझ लेना कि भीतर भयातुर है, भय-कातर है। नहीं तो साहस की इतनी चर्चा की कोई जरूरत न थी।
काफी हाऊस में एक सैनिक आया हुआ था। और वह कह रहा था कि आज बड़ी घमासान लड़ाई हुई, और मैंने कम से कम सौ आदमियों के सिर घास-पात की तरह काट डाले। नसरुद्दीन बैठा सुनता रहा। और उसने कहा, ऐसा एक समय मेरे जीवन में भी आया था। मैं भी युद्ध में गया था। सैनिक को पसंद तो न आई यह बीच में बात उठा देनी, लेकिन अब जब बात उठ ही गई थी तो रोकना मुश्किल था। तो उसने कहा कि क्या हुआ उस युद्ध में? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी अनेक लोगों के पैर काट डाला था घास-पात की तरह। सैनिक ने कहा, अच्छा हुआ होता कि तुम सिर काटते, क्योंकि ऐसी हमने कभी कोई बात नहीं सुनी कि युद्ध में गए और पैर काट आए। नसरुद्दीन ने कहा, क्या करूं, सिर तो कोई पहले ही काट चुके थे। सिर थे ही नहीं वहां, मैं तो गया और घास-पात की तरह पैर काट डाले।
जहां भी तुम साहस की चर्चा सुनो वहां समझ लेना कि भीतर भयभीत आदमी छिपा है। वह बहादुरी की बात ही इसीलिए कर रहा है ताकि कोई पहचान न ले कि मेरी अवस्था क्या है।
जिन लोगों को तुम प्रेम की बहुत चर्चा करते सुनो, समझ लेना कि प्रेम
के जीवन में वे असफल हुए हैं। कवि हैं, साहित्यकार हैं; प्रेम की बड़ी चर्चा करते हैं, गीत गाते हैं। लेकिन यह बड़ी हैरानी की बात है कि जिन कवियों ने भी प्रेम के गीत गाए हैं वे प्रेम में असफल लोग थे। नहीं तो कोई प्रेम ही करेगा, गीत किसलिए गाएगा? जब प्रेम ही तुम कर सकते हो तो गीत बनाने की फुरसत किसे है? गीत तो बना कर तुम अपने आस-पास एक धुंध पैदा करते हो, ताकि प्रेम की कमी पूरी हो जाए। भूखा आदमी ही सपने देखता है भोजन के, भरे पेट आदमी नहीं। अगर तुम्हारे सपने में प्रेम आता है तो उसका अर्थ है तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं। सपना तो परिपूरक है। जो जीवन में नहीं हो पा रहा है उसे तुम सपने में पूरा कर रहे हो। जो वस्तुतः नहीं मिल पा रहा है उसे तुम कल्पना में पूरा कर रहे हो।
तो कवि प्रेम के गीत लिखते हैं। उनके गीत बड़े मधुर हो सकते हैं। लेकिन
उन गीतों के पीछे बड़ी पीड़ा छिपी है। तुम एक भी ऐसा कवि न पाओगे जो प्रेम में सफल हुआ हो। क्योंकि जो प्रेम में सफल हो जाता है, प्रेम इतना बड़ा गीत है कि और दूसरे गीत वह गाता नहीं। उसके जीवन में प्रेम का गीत होगा, लेकिन वह प्रेम के सपने नहीं देखेगा।
इसे तुम जीवन का आधारभूत नियम समझ लो।
ऐसा हो जाता है कि गरीब आदमी के घर मेहमान आ जाएं तो वह पास-पड़ोस से कुर्सी, फर्नीचर, सोफा, दरी, बिछौना, मांग लाता है। गरीब आदमी ही यह करता है, धोखा देना चाहता है मेहमान को। मेहमान को दिखाना चाहता हैः सब ठीक है, बड़े मजे से जी रहे हैं। वह सब उधार है, लेकिन दूसरे की आंख में एक प्रतिमा बनानी है।
और यही हम पूरे जीवन करते हैं--सुबह से सांझ तक। रास्ते पर कोई मिल जाता है और तुमसे पूछता है, कैसे हैं? और आप कहते हैं, बिल्कुल ठीक। और ऐसे भावावेश से कहते हैं कि भरोसा आ जाए। और कुछ भी ठीक नहीं है जीवन में।

बिल्कुल ठीक तो दूर, कुछ भी ठीक नहीं है, सब गैर ठीक है। लेकिन जब दूसरे से आप कहते हैं, सब ठीक; तब क्षण भर को खुद भी भरोसा आ जाता है। इसे जरा ख्याल करना। जब कोई आदमी पूछे, कैसे हैं? और जब कहें कि सब ठीक। तब क्षण भर को देखना कि भीतर इस कहने मात्र से कि सब ठीक, क्षण भर को ठीक सब लगने लगता है। आदमी दूसरे को धोखा देते-देते खुद को धोखा दे लेता है। और जिस दिन तुम खुद को धोखा देने में सफल हो गए उस दिन तुम्हें फिर इस धोखे के बाहर आने का कोई उपाय न रहा। यही तो पागल का लक्षण है। पागल का अर्थ है जिसने अपने को धोखा देने में परिपूर्ण कुशलता पा ली, पूर्ण सफल हो गया। अब तुम लाख समझाओ उसे कि तू नेपोलियन नहीं है, लेकिन वह अपने को नेपोलियन मानता है।
एक आदमी का इलाज हो रहा था। उसको भ्रांति थी कि वह नेपोलियन है। इलाज
जब पूरा हो गया तो चिकित्सक ने कहा, अब तुम ठीक हो गए हो। अब तुम घर जा सकते हो। वह आदमी बड़ी प्रसन्नता से खड़ा हो गया, और उसने कहा कि जरा जोसेफाइन को फोन करके तो बता दो--जोसेफाइन, नेपोलियन की पत्नी--कि अब मैं ठीक हो गया हूं और घर आ रहा हूं।
पागल को उसके घेरे के बाहर लाना मुश्किल हो जाता है। और पागल भी बड़ा तर्कयुक्त ढंग से अपनी व्यवस्था करता है।
मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपने घर के बाहर उठ कर मंत्र फूंक कर कुछ फेंकता। पड़ोस के लोगों ने पूछा कि यह तुम क्या करते हो तंत्र-मंत्र? उसने कहा कि इन मंत्रों के बल से गांव में शेर, जंगली जानवर, सिंह नहीं आ पाते। तो लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, तुम पागल हो। यहां कोई शेर, जंगली जानवर हैं ही कहां? नसरुद्दीन ने कहा कि इससे साफ सिद्ध होता है कि मंत्र कारगर है; सब भाग गए। यही तो मैं कह रहा हूं। इसीलिए तो सिंह और जंगली जानवर यहां नहीं हैं; क्योंकि रोज मैं मंत्र फेंक रहा हूं।
पागल को उसके तर्क के बाहर लाना मुश्किल है। पागल बड़े तर्कनिष्ठ होते हैं। तुम किसी पागल से बात करो। तुम जो सब से बड़ी अड़चन पाओगे वह यह कि उसे उसके तर्क के बाहर लाना मुश्किल है। और वह अपने तर्क को सब तरफ से सिद्ध करता रहता है।
ऐसा हुआ; मुसलमान खलीफा हुआ उमर। उसने एक आदमी को जेलखाने में डलवा दिया, क्योंकि उसने घोषणा की कि मैं ईश्वर का पैगंबर हूं। इसलाम यह मानता नहीं कि मोहम्मद के बाद कोई पैगंबर हो सकता है। उमर बहुत नाराज हुआ। उसने उस आदमी को बंधवा लिया, जेल में डलवा दिया। और कहा, दो दिन बाद मैं आऊंगा। और दो दिन उसकी बड़ी मरम्मत की गई, पीटा गया, मारा गया, सब तरह सताया गया, भूखा रखा गया, रात सोने नहीं दिया गया, कि अपने रास्ते पर आ जाए।
दो दिन बाद उमर जेलखाने गया। वह आदमी खंभे से बंधा था, लहूलुहान था। उमर ने पूछा, अब क्या ख्याल हैं? उसने कहा, ख्याल! जब परमात्मा ने मुझे भेजा पैगंबर की तरह तो उसने कहा था, पैगंबर हमेशा पीटे जाते हैं, मारे जाते हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि मैं पैगंबर हूं, क्योंकि पैगंबरों को सदा इतिहास में सताया गया है।
तभी दूसरे खंभे से बंधे एक आदमी ने चिल्ला कर कहा कि यह आदमी बिल्कुल गलत कह रहा है! उमर ने उससे पूछा कि आप कौन हैं? उसने कहा कि मैं स्वयं परमात्मा हूं! और मैंने इसे कभी भेजा नहीं। यह सरासर झूठ है। मोहम्मद के बाद मैंने किसी को भेजा ही नहीं।
किसी भी पागल को उसके तर्क के बाहर लाना एकदम असंभव है। क्योंकि तुम
जो भी उपाय करोगे, पागल उस उपाय को ही अपना तर्क बना लेगा।
तुम्हें भी तुम्हारे पागलपन से बाहर लाना बहुत कठिन है। लेकिन अभी तुम बिल्कुल पागल नहीं हो गए हो, इसीलिए आशा है। थोड़ा सा किनारा बाकी है जहां तुम संदिग्ध हो। जब तुम बिल्कुल असंदिग्ध हो जाओगे अपने झूठ में तब तुम्हें खींच कर बाहर लाना मुश्किल हो जाएगा। अभी तुम्हें थोड़ा संदेह है खुद भी कि तुम हंसते हो वह वास्तविक है या नहीं! तुम रोते हो, वह वास्तविक है या नहीं! यह संदेह ही तुम्हारा सबसे बड़ा सहारा है। इसी संदेह के सहारे तुम बाहर आ सकोगे। इस संदेह को प्रगाढ़ करो। और अपनी एक-एक जीवन-विधि को, शैली को जांचो-परखो, कसो--कि तुमने प्रेम सच में किया है या तुम शब्दों की

ही बात करते रहे हो? क्योंकि अगर तुम एक भी चीज सच में कर सको तो तुम्हारे झूठ का पूरा भवन गिर जाएगा। सत्य की बड़ी शक्ति है।
मैं कहता हूं, एक भी चीज अगर तुम सत्य कर सको तो झूठ का पूरा भवन गिर जाएगा। इसलिए यह सवाल नहीं है कि तुम बहुत सत्य करो, तब कहीं यह भवन गिरेगा; एक सत्य गिरा देगा पूरे भवन को। असत्य कितने ही हों, कमजोर और नपुंसक हैं; उनमें कोई बल नहीं है। तुम एक तरफ से भी अगर सत्य होने शुरू हो जाओ, तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे पूरे जीवन में असत्य की जड़ें उखड़नी शुरू हो गईं। तुम एक कदम सत्य की तरफ उठा लो, तुम एक झूठ का चेहरा गिरा दो; बाकी चेहरे भी उखड़े-उखड़े हो जाएंगे। जहां से तुम्हें शुरू करना हो वहां से शुरू करो। लेकिन इसे जरा समझ लेना कि तुम जो-जो दिखा रहे हो उससे विपरीत तुम्हारी दशा होगी।
पंडित दिखलाता फिरता है कि कितना ज्ञानी है, और भीतर गहन अज्ञान है। उसी को छिपाने के लिए तो शास्त्रों का सहारा लिया है, शब्द और सिद्धांतों से ओढ़ लिया है अपने को, रामनाम की चदरिया ओढ़ ली है। भीतर गहन अंधकार है। उस अंधकार को छिपाना है; कोई जान न ले, किसी को पता न चल जाए।
लेकिन किसी को पता चले न पता चले, यह सवाल नहीं है। वह अंधकार तुम्हारे भीतर है तो तुम उसी अंधकार में जीओगे, उसी में डूबोगे। उस अंधकार को मिटाना जरूरी है। अगर बीमारी है भीतर तो तुम ऊपर-ऊपर स्वस्थ होने की धारणा को मत बना लेना। नहीं तो वही धारणा तुम्हारी बीमारी को बढ़ाने का कारण बनेगी। और जो अभी छोटा सा फोड़ा था, कल नासूर हो जाएगा। और जो कल नासूर है, वह परसों कैंसर हो जाएगा।
बीमारी भी बढ़ती है, रुकती नहीं। बीमारी का भी अपना जीवन है। तुम जितना उसे छिपाते हो घाव को, छिपा सकते हो, सुंदर फूल बांध सकते हो घाव के ऊपर; इससे कुछ होगा न। इससे भीतर की बदबू दूसरों तक भले न पहुंचे, लेकिन तुम्हारे भीतर बढ़ती जाएगी। घाव ही रह जाएगा आखिर में। और यही होता है कि लोग मरते समय तक पहुंचते-पहुंचते पाते हैंः सारा जीवन एक पीड़ा, एक घाव हो गया, जिसमें कभी कोई आनंद न जाना, और जहां कभी कोई जीवन की पुलक न उठी, जीए जैसे जीए ही नहीं; घसिटते रहे। जीवन नृत्य न था, उत्सव न था।
लाओत्से कहता है, "वीर सैनिक हिंसक नहीं होता।"
हिंसक आदमी को होना पड़ता है इसलिए ताकि वह दिखला दे दुनिया को कि मैं बहादुर हूं। इसलिए जो बहादुर है वह हिंसक नहीं हो सकता।
इसलिए तो हमने वर्धमान को महावीर कहा। वीर ही नहीं कहा, महावीर कहा। क्योंकि वर्धमान ने जैसी अहिंसा प्रकट की वह केवल महावीर ही कर सकता है। महावीर उनका नाम नहीं है, नाम तो उनका वर्धमान है। लेकिन महावीर कहने के पीछे कारण है। क्योंकि सिर्फ वीर ही हिंसा से मुक्त हो सकता है। और महावीर ही केवल समस्त हिंसा से मुक्त हो सकता है। वीरता इतनी स्पष्ट है स्वयं के समक्ष कि सिद्ध कहां करनी है! सिद्ध तो तुम वही करते हो जो तुम्हें पता है कि है नहीं। जिस दिन तुम्हें पता है कि है, उस दिन तुम सिद्ध करना छोड़ देते हो।
हिटलर कायर है और वर्धमान वीर है। हिटलर को तुम्हें पढ़ना और समझना चाहिए; लाओत्से को समझने के लिए बड़ा सहयोगी होगा। हिटलर से बड़ा कायर आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है। वह रात अंधेरे में सो नहीं सकता था; प्रकाश जला कर ही सोता था। और भयभीत इतना था कि किसी पर कभी भरोसा नहीं कर सकता था। इसलिए उसने शादी नहीं की। क्योंकि शादी हो जाएगी तो कम से कम पत्नी पर तो भरोसा करना ही पड़ेगा, इतना भरोसा कि कमरे में उसके साथ सोए। और रात को उठ कर गर्दन दबा दे! क्या पता दुश्मनों से मिली हो! मरते दम तक उसने शादी न की। मरने के ठीक घड़ी भर पहले शादी की। जब सब पक्का हो गया कि अब आत्महत्या ही करनी है, अब कुछ करने को नहीं बचा। जब जहां हिटलर ठहरा था उस जगह पर भी बम गिरने लगे बर्लिन में, और हार बिल्कुल सुनिश्चित हो गई, अब कोई उपाय न रहा, एक घड़ी भर की बात है और जर्मनी का पतन हो जाएगा, तब उसने जो पहला काम किया वह यह कि जिसको वह जिंदगी भर से स्थगित कर रहा था, शादी करने को, उसने एक पुरोहित को बुलवाया जो पहला काम किया और कहा कि पहले मेरी शादी कर दो। पुरोहित भी चकित हुआ कि इस घड़ी में शादी!

लेकिन कारण यह था कि हिटलर सदा डरा रहा--क्या भरोसा एक अनजान-अपरिचित स्त्री? और सभी अनजान-अपरिचित हैं। किससे परिचय है किसका? अपने से ही परिचय नहीं, तो दूसरे से क्या परिचय? पता नहीं स्त्री किसी की जासूस हो, किसी से मिली हो; रात एक साथ सोना खतरनाक, असुरक्षित। अब कोई डर न रहा। उसने शादी करवाई। और शादी होने के बाद जो दूसरा काम किया वह आत्मघात। दोनों ने आत्मघात कर लिया।
इतना भयभीत आदमी! जरा-जरा सी बात से वह मूर्च्छित हो जाता था। अगर कोई उसके विपरीत कुछ कह दे, तो ऐसा कई बार हिटलर के जीवन में घटा कि उसको मिरगी आ जाती थी, विपरीत बात भी नहीं सुन सकता था। क्योंकि विपरीत का मतलब कि उसे शक आ जाता अपने पर कि मैं भी कहीं गलत हो सकता हूं। उसके निकट के लोग भी बड़े परेशान रहते थे कि उससे कहीं ऐसी कोई बात न हो जाए कि वह गिर पड़े, मिरगी आ जाए, चक्कर आ जाए, बेहोश हो जाए। उसकी हर बात माननी चाहिए। वह एक छोटे बच्चे की भांति था, जो हर छोटी बात में पैर पटकने लगेगा और सिर फोड़ने लगेगा। उसकी हर बात माननी ही चाहिए। वह हर बात का ज्ञाता है। और ज्ञान उसे कुछ भी न था। इस कमजोर आदमी ने सारी दुनिया को हिंसा में डुबा दिया। दूसरा महायुद्ध, दुनिया का बड़े से बड़ा युद्ध था। करोड़ों लोग मारे गए। भयंकर हिंसा हुई, जैसी कभी न हुई थी। और जिस आदमी के कारण हुई वह महा कायर था। कायर हमेशा हिंसक होगा। कायर को हिंसक होना ही पड़ेगा। नहीं तो अपनी कायरता को छिपाएगा कहां? हिंसा के धुएं में ही छिपाएगा।
मैंने सुना है कि ईसप एक कहानी लिखना चाहता था, लिख नहीं पाया। किन्हीं सूत्रों से वह कहानी मुझ तक पहुंच गई, मैं तुमसे कह देता हूं। कहानी है कि एक गधे की बड़ी आकांक्षा थी कि जंगल के सम्राट सिंह से दोस्ती कर ले। गधों की सदा यही आकांक्षा होती है। और किसी तरह गधे ने सिंह को राजी कर लिया। क्योंकि गधे तरकीब जानते हैं स्तुति की, खुशामद की। असल में, गधों ने ही तो सिंह को समझा दिया है कि तुम सम्राट हो। अन्यथा इसका कोई प्रमाण है? और गधे ने बड़ी स्तुति की। सिंह प्रसन्न हो गया। उसने कहा, तुम तो वजीर बनाने योग्य हो। गधे ने कहा, आप जैसा बुद्धिमान ही केवल पहचान सकता है; बाकी लोग तो मुझे गधा समझते हैं। क्योंकि लोग समझ ही नहीं सकते; इतनी बुद्धि कहां!
सिंह ने उसे साथ ले लिया। और पहले ही दिन दोनों गए शिकार के लिए। तो गधा अपनी बहादुरी दिखाना चाहता था। दोनों रुके एक मांद के बाहर जहां कुछ जंगली भेड़ें रहती थीं गुफा में। गधा भीतर गया। उसने कहा, तुम बाहर बैठो; मैं अभी ऐसा उत्पात मचाऊंगा भीतर जाकर कि भेड़ें अपने आप बाहर आ जाएंगी। तुम मार लेना और भोजन कर लेना, और मेरे लिए भी बचा लेना।
सिंह बाहर बैठा रहा। और गधे ने निश्चित ही ऐसा भयंकर उत्पात मचाया, इतनी धूल उड़ाई, इतनी दुलत्तियां झाड़ीं कि घबड़ा गईं भेड़ें और बाहर निकलने लगीं। सिंह ने खूब भोजन किया, गधे के लिए भी बचाया। और जब गधा आया तो उसने पूछा कि कहो कैसा रहा मेरा कृत्य? सिंह ने कहा कि अगर मुझे पता न होता कि तू एक गधा मात्र है तो मैं खुद भाग खड़ा होता, इतना उत्पात तूने मचा दिया था। कई बार मैंने अपने को रोका, सम्हाला, कि अरे गधा ही है! नहीं तो कई बार भागने की हालत आ गई थी।
गधा जब उत्पात मचाएगा तो अतिशय मचाएगा। जब भी कायर आदमी बहादुरी दिखाएगा तो अतिशय दिखाएगा। और दिखाने का उपाय क्या है? एक ही उपाय है कि मिटाओ, हिंसा करो, तोड़ो-फोड़ो, ताकि दुनिया जान ले कि तुम कितने शक्तिशाली हो। अशक्त शक्ति का दिखावा करना चाहता है। लेकिन जिसके पास शक्ति है वह दिखावे की बात ही भूल जाता है। दिखाने का कोई सवाल ही नहीं है; जो है वह है। और वह इतना आश्वस्त है उसके होने से कि अब किसी का प्रमाणपत्र तो चाहिए नहीं।
एक दूसरी कहानी है ईसप की कि सिंह गया है जंगली जानवरों से पूछने। पूछा उसने भेड़िए से कि कौन है सम्राट वन का? उसने कहा कि महाराज, आप! यह भी कोई पूछने की बात है? पूछा उसने हिरनों से। उन्होंने सामूहिक स्वर से कहा कि आप! इसमें कोई संदेह है क्या? ऐसा पूछता हुआ अकड़ से भरता हुआ वह हाथी के पास पहुंचा। और हाथी से उसने पूछा कि कौन है सम्राट वन का? हाथी ने उसे

सूंड में लपेटा और फेंका कोई पचास फीट दूर। हड्डी-पसली चकनाचूर हो गई। लंगड़ाता हुआ हाथी के पास आया और कहा कि अगर उत्तर मालूम न हो तो इतना परेशान होने की क्या जरूरत! अगर उत्तर पता नहीं तो कह देते कि पता नहीं। जिसको उत्तर पता है उसे उत्तर देना भी नहीं पड़ता। प्रमाण लेने ही वही जाता है जो संदिग्ध है। जो असंदिग्ध है उसे किसका प्रमाण चाहिए? कौन प्रमाण देगा उसे? और जिनसे तुम प्रमाण मांग रहे हो वे कौन हैं? उनके प्रमाण का कितना मूल्य है? और हम चौबीस घंटे प्रमाण मांग रहे हैं। हमारे प्राणों की बड़ी अकुलाहट है, कोई कह दे कि तुम बड़े सुंदर हो। किससे प्रमाण मांग रहे हो? कोई कह दे कि तुम बड़े बुद्धिमान हो; कोई कह दे कि तुम जैसा बहादुर कोई भी नहीं। पर तुम प्रमाण किससे मांग रहे हो? और जो तुम्हें प्रमाण दे रहा है वह कौन है? जो तुम्हारी खुशामद कर रहा है वह तुमसे भी गया-बीता होगा। उस गए-बीते के प्रमाण पर तुम्हारी बुद्धिमानी, तुम्हारा सौंदर्य, तुम्हारी बहादुरी निर्भर है।
लाओत्से कहता है कि जो वीर है, वीर सैनिक हिंसक नहीं होता।
एक बड़ी अनूठी इतिहास में घटना घटी है भारत के। और वह घटना यह है कि भारत में जितने बड़े अहिंसक पैदा हुए, सब क्षत्रिय घरों में पैदा हुए; एक भी ब्राह्मण घर में अहिंसक पैदा नहीं हुआ। ब्राह्मण घर में तो परशुराम पैदा हुए, जिन जैसा हिंसक खोजना कठिन है। कहते हैं उन्होंने अनेक बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। तो अगर ब्राह्मणों में तुम्हें खोजना हो कोई बड़े से बड़ा नाम तो वह परशुराम का है। उस नाम से ऊपर कोई नाम नहीं जाता; क्योंकि ब्राह्मणों में वही एक आदमी है जिसको अवतार होने की प्रतिष्ठा हमने दी है। और परशुराम फरसा लिए खड़े हैं। वह फरसा उनका प्रतीक हो गया। नाम तो उनका राम ही रहा होगा। परशुराम का मतलब हैः फरसा वाले राम। हिंसक बड़े से बड़ा भारत ने पैदा किया परशुराम, वह ब्राह्मण घर से आया। और अहिंसक भारत ने पैदा किए--सारे अहिंसक--चौबीस जैनों के तीर्थंकर, वे क्षत्रिय; चौबीस बुद्ध, सब क्षत्रिय।
क्षत्रिय घरों से आए अहिंसक और ब्राह्मण घर से आया हिंसक; यह जरा सोचने जैसा है, मामला क्या है?
परशुराम आश्वस्त नहीं हैं। सारी पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दें तभी उनको आश्वासन मिलेगा कि वे कुछ हैं। लेकिन महावीर, बुद्ध आश्वस्त हैं। उन्हें अपने होने में कोई संदेह नहीं है। वे चींटी को भी बचा कर चलते हैं; चींटी को भी मारना उन्हें कठिन है। परशुराम को सारी पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर देना आसान है।
असल में, ब्राह्मण के मन में हमेशा एक कुंठा रही है। और वह कुंठा यह है
कि वह दुर्बल है, दीन है। और माना कि क्षत्रिय उसकी पूजा भी करते हैं, तो भी ताकत तो क्षत्रिय के हाथ में ही है। और माना कि पुरोहित क्षत्रिय उसे ही बनाते हैं, चरण भी उसके छूते हैं, लेकिन वास्तविक ताकत--डी फेक्टो ताकत--वह तो क्षत्रिय के हाथ में है। वह चाहे तो क्षण भर में ब्राह्मण की गर्दन उतार दे। अगर ब्राह्मण पूज्य है तो वह भी क्षत्रिय की स्वीकृति के कारण। वह जिस दिन अस्वीकार कर दे उस दिन मिट्टी में मिल जाएगा। तो ब्राह्मणों के मन में सदियों से एक पीड़ा रही है, वह है क्षत्रिय को किसी तरह नीचा दिखाने की। परशुराम तो उसी की कथा हैं। वह सारी पीड़ा ब्राह्मणों के भीतर इकट्ठी हो गई, कि वे दीन हैं, हीन हैं, ना-कुछ हैं, भिखारी हैं। और क्षत्रिय आदर भी देता है तो भी वह उसकी मरजी है; न दे तो कुछ कर न सकोगे। और शायद आदर देना भी उसकी कुशलता है और राजनीति है; क्योंकि आदर देकर वह तुमको सांत्वना देता है। और दुनिया में सभी राजनीतिज्ञ जानते हैं कि ब्राह्मण को आदर देना ठीक है; नहीं तो ब्राह्मण उपद्रवी सिद्ध हो सकता है, भयंकर उपद्रव उससे हो सकता है। दुनिया में जितने उपद्रव आते हैं वे ब्राह्मण से आते हैं। ब्राह्मण यानी इंटेलिजेंसिया; ब्राह्मण यानी वह जो बुद्धिमान है, सोच-विचार सकता है।
भारत बहुत प्राचीन देश है, इसने समझ लिए हैं रहस्य, तो इसने ब्राह्मण
को आदर दे दिया। इसलिए भारत में कभी क्रांति नहीं हो सकती; क्योंकि बिना ब्राह्मण के क्रांति करेगा कौन? क्षत्रिय शांति में उत्सुक हो सकता है,

क्रांति में नहीं। ब्राह्मण क्रांति में उत्सुक होता है। क्योंकि ब्राह्मण को लगता है, हूं तो मैं इतना बड़ा जानकार, लेकिन ताकत मेरे हाथ में बिल्कुल नहीं है। वह बगावत सुलगाता है, विद्रोह जगाता है। और जो हिंदुस्तान ने किया था--पांच हजार साल में कोई क्रांति भारत में नहीं हुई-- उसका राज यह है कि ब्राह्मण को इतना आदर दे दिया, उसकी इतनी स्तुति कर दी। वह था कुछ नहीं; उसके भीतर कुछ भी नहीं थी ताकत। लेकिन एक ताकत थी, वह बगावत सुलगा सकता है। वह लड़ेगा नहीं; लेकिन दूसरों को लड़वा सकता है, वह दूसरों को भड़का सकता है। उसके पास वाणी की कुशलता है, तर्क का आधार है। वह शोषित जनों को उपद्रव में उतार सकता है।
जो भारत ने किया था वही सोवियत रूस में किया जा रहा है आज। आज सोवियत रूस में लेखकों का, प्रोफेसरों का, कवियों का, वैज्ञानिकों का--ब्राह्मणों का--जितना आदर है उतना किसी का भी नहीं। क्योंकि सोवियत रूस भी अब क्रांति नहीं चाहता। और सोवियत रूस में तब तक क्रांति न हो सकेगी। और जो थोड़ी-बहुत चिनगारियां आती हैं, किसी पास्तरनेक सोल्झेनिस्तीन से, वे सब ब्राह्मणों की चिनगारियां हैं। कोई ब्राह्मण नाराज हो जाता है तो वह गड़बड़ शुरू करता है।
खुद ब्राह्मण उपद्रव नहीं करेगा; लेकिन उपद्रव करवा सकता है। ऐसी किताबें लिख सकता है; बगावती स्वर जगा सकता है। और कभी अगर हजारों साल का क्रोध इकट्ठा हो जाए ब्राह्मण का तो फिर परशुराम पैदा होते हैं। परशुराम हजारों साल की पीड़ा का संगृहीत रूप है। वह अवतरण है सारी हिंसा का जो ब्राह्मण में इकट्ठी हो गई। थोड़ा सोचो! किसी ने कभी सोचा नहीं ठीक से कि आखिर परशुराम को ब्राह्मणों की किस पीड़ा ने पैदा किया होगा कि परशुराम ने सात बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया! काट डाले क्षत्रिय। क्या कारण रहा होगा? क्षत्रियों से ऐसी क्या नाराजगी रही होगी?
नाराजगी गहरी है। क्षत्रिय पैर तो छूता है, लेकिन वह सिर्फ दिखावा है। तलवार उसी के हाथ में है। और ब्राह्मण को वह कितने ही ऊंचे बिठा दे, वह उसी के इशारे पर ऊंचा बैठा है। जिस दिन इशारा करेगा, नीचे उतर आना पड़ेगा। तो ब्राह्मणों ने तो बड़े से बड़ा हिंसक पैदा किया और क्षत्रियों ने बड़े से बड़े अहिंसक पैदा किए। दो धर्म दुनिया में अहिंसक धर्म हैंः बौद्ध और जैन; दोनों क्षत्रियों से पैदा हुए।
असल में, जितना आश्वस्त हो व्यक्ति अपने साहस का उतना ही दिखाने का मोह चला जाता है। दिखाना किसको है? और बात इतनी प्रगाढ़ है कि दिख ही जाएगी। दिखाने के लिए प्रयास क्या करना है? तुम्हारे भीतर जो भी होता है वस्तुतः, तुम उसे दिखाना नहीं चाहते। जो नहीं होता वही तुम दिखाना चाहते हो। क्योंकि तुम्हें पता है, अगर तुमने न दिखाया तो किसी को दिखाई पड़ेगा कैसे? है तो है ही नहीं।
सुंदर स्त्री आभूषणों से मुक्त हो जाती है; कुरूप स्त्री कभी भी आभूषणों से मुक्त नहीं हो सकती। सुंदर स्त्री सरल हो जाती है; कुरूप स्त्री कभी भी नहीं हो सकती। क्योंकि उसे पता है, आभूषण हट जाएं, बहुमूल्य वस्त्र हट जाएं, सोना-चांदी हट जाए, तो उसकी कुरूपता ही प्रकट होगी। वही शेष रह जाएगी, और तो वहां कुछ बचेगा न। सुंदर स्त्री को आभूषण शोभा देते ही नहीं, वे थोड़ी सी खटक पैदा करते हैं उसके सौंदर्य में। क्योंकि कोई सोना कैसे जीवंत सौंदर्य से महत्वपूर्ण हो सकता है? हीरे-जवाहरातों में होगी चमक, लेकिन जीवंत सुंदर आंखों से उनकी क्या, क्या तुलना की जा सकती है? जैसे ही कोई स्त्री सुंदर होती है, आभूषण-वस्त्र का दिखावा कम हो जाता है। तब एक्झिबीशन की वृत्ति कम हो जाती है। असल में, सुंदर स्त्री का लक्षण ही यही है कि जिसमें प्रदर्शन की कामना न हो। जब तक प्रदर्शन की कामना है तब तक उसे खुद ही पता है कि कहीं कुछ असुंदर है, जिसे ढांकना है, छिपाना है, प्रकट नहीं करना है। स्त्रियां घंटों व्यतीत करती हैं दर्पण के सामने। क्या करती हैं दर्पण के सामने घंटों? कुरूपता को छिपाने की चेष्टा चलती है; सुंदर को दिखाने की चेष्टा चलती है।
ठीक यही जीवन के सभी संबंधों में सही है। अज्ञानी अपने ज्ञान को दिखाना चाहता है। वह मौके की तलाश में रहता है; कि जहां कहीं मौका मिले,

जल्दी अपना ज्ञान बता दे। ज्ञानी को कुछ अवसर की तलाश नहीं होती; न बताने की कोई आकांक्षा होती। जब स्थिति हो कि उसके ज्ञान की कोई जरूरत पड़ जाए, जब कोई प्यास से मर रहा हो और उसको जल की जरूरत हो तब वह दे देगा। लेकिन प्रदर्शन का मोह चला जाएगा।
अज्ञानी इकट्ठी करता है उपाधियां कि वह एम.ए. है, कि पीएचड़ी. है, कि डी.लिट. है, कि कितनी ऑननेरी डिग्रियां उसने ले रखी हैं। अगर तुम अज्ञानी के घर में जाओ तो वह सर्टिफिकेट दीवाल पर लगा रखता है। वह प्रदर्शन कर रहा है कि मैं जानता हूं।
लेकिन यह प्रदर्शन ही बताता है कि भीतर उसे भी पता है कि कुछ जानता नहीं है। परीक्षाएं उत्तीर्ण कर ली हैं, प्रमाणपत्र इकट्ठे कर लिए हैं। लेकिन जानने का न तो परीक्षाओं से संबंध है, न प्रमाणपत्रों से। जानना तो जीवन के अनुभव से संबंधित है। जानना तो जी-जीकर घटित होता है, परीक्षाओं से उपलब्ध नहीं होता। परीक्षाओं से तो इतना ही पता चलता है कि तुम्हारे पास अच्छी यांत्रिक स्मृति है। तुम वही काम कर सकते हो जो कंप्यूटर कर सकता है। लेकिन इससे बुद्धिमत्ता का कोई पता नहीं चलता। बुद्धिमत्ता बड़ी और बात है; कालेजों, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में नहीं मिलती। उसका तो एक ही विश्वविद्यालय है, यह पूरा अस्तित्व। यहीं जीकर, उठ कर, गिर कर, तकलीफ से, पीड़ा से, निखार से, जल कर आदमी धीरे-धीरे निखरता है, परिष्कृत होता है।
"वीर सैनिक हिंसक नहीं होता।"
हो नहीं सकता।
"अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता।"
क्योंकि क्रोध कमजोरी का लक्षण है। जितने जल्दी क्रोध आ जाता है उतने
ही जल्दी समझ लेना कि तुम्हारी क्षमता चुक गई।
मैंने सुना है, एक गांव में एक यहूदी फकीर था। वह गांव में नया-नया आया था। उस गांव की भाषा नहीं जानता था। लेकिन गांव का जो सभागृह था--पुराने दिनों की बात है जब शास्त्रार्थ रोज ही चलते थे--वह वहां रोज नियमित उपस्थित होता था। पंडितों में विवाद होते। वह भाषा तो जानता ही नहीं था। एक दिन लोगों ने पूछा कि तुम किसलिए परेशान होते हो? तुम किसलिए जाते
हो वहां? तुम भाषा तो समझते नहीं। और विवाद संस्कृत में चलता है; तुम्हें तो उसका कोई पता ही नहीं। एक शब्द तुम्हारी समझ में न आएंगे। पर तुम इतनी तत्परता से सुनते हो; क्या सुनते हो?
उसने कहा कि मैं सुनता नहीं वे क्या बोल रहे हैं। मैं तो सिर्फ यह देखता हूं कि दोनों विवादी में किसको पहले क्रोध आ गया। मैं समझ जाता हूं कि वह हार गया। वह मैं उतनी भाषा मैं समझता हूं। जिसको क्रोध आ गया उसने स्वीकार कर लिया कि वह हार गया। अब कितनी ही देर लगाए आखिरी निर्णय के होने में, लेकिन वह हार चुका। और उस फकीर ने कहा कि यह मैं देख रहा हूं कि जिसको मैं पहले तय कर देता हूं कि यह हार गया, वही आखिर में घोषणा होती है कि वह हार गया। मगर मैं घड़ी भर पहले जान लेता हूं। जैसे ही क्रोध आंखों में आना शुरू हुआ, उसका मतलब है आदमी की क्षमता चुक गई। उसकी सीमा आ गई।
उथला है आदमी तो जल्दी क्रोध हो जाता है। जितना गहरा होता है उतना क्रोध मुश्किल हो जाता है। और जब कोई बिल्कुल असीम होता है, तब तो क्रोध असंभव हो जाता है। तुम्हारा क्रोध तुम्हारे व्यक्तित्व की गहराई का पता देता है। किसी ने जरा सा कुछ कह दिया, तुम क्रोधित हो गए; उसका मतलब है कि तुम्हारे व्यक्तित्व की गहराई चमड़ी से ज्यादा गहरी नहीं है। तुम्हारा जानवर जल्दी प्रकट हो जाता है; बस जरा ही पीछे छिपा है। यह जो ऊपर तुमने मनुष्यता का आवरण ओढ़ रखा है, यह बहुत गहरा नहीं है; जरा सा कोई आदमी हंस दे, गाली दे दे, और यह आवरण टूट जाता है। क्रोध परीक्षा है।
लाओत्से कहता है, अच्छा लड़ाका जो योद्धा है वह क्रोध नहीं करता। ताओवादियों की बड़ी प्रसिद्ध कथा है कि एक सम्राट, वर्ष की अंतिम प्रतियोगिता होने वाली थी मुर्गों की लड़ाई की, वह अपने मुर्गे को भी युद्ध में भेजना चाहता था। तो उसने एक बहुत बड़े झेन फकीर को बुलाया। क्योंकि उस झेन फकीर की बड़ी प्रसिद्धि थी कि उसे युद्ध में कोई हरा नहीं सकता। हराना

तो दूर, उसके पास आकर लोग हारने को उत्सुक हो जाते थे। उसके पास हार कर प्रसन्न होकर लौटते थे। उसके साथ हार जाना बड़ी महिमा की बात थी। तो सम्राट ने सोचा कि यह फकीर अगर मुर्गे को तैयार कर दे।
फकीर को बुलाया। मुर्गा फकीर ले गया। तीन सप्ताह बाद सम्राट ने खबर भेजी, मुर्गा तैयार है? फकीर ने कहा, अभी नहीं। अभी तो दूसरे मुर्गे को देख कर वह सिर खड़ा करके आवाज देता है। सम्राट थोड़ा हैरान हुआ कि यह तो ठीक ही लक्षण है। क्योंकि लड़ना है तो सिर खड़ा करके आवाज न दोगे तो दूसरे मुर्गे को डराओगे कैसे?
खैर, कुछ देर और प्रतीक्षा की। फिर तीन सप्ताह बाद पुछवाया। फकीर ने कहा, अभी भी नहीं। अब पुरानी आदत तो जा चुकी है, लेकिन दूसरा मुर्गा आता है तो तन जाता है, तनाव भर जाता है। और तीन सप्ताह बीत गए। फिर पुछवाया। फकीर ने कहा कि अब थोड़ा-थोड़ा तैयार हो रहा है, लेकिन अभी थोड़ी देर है। अब दूसरा मुर्गा कमरे के भीतर आए तो खड़ा तो रहता है, लेकिन भीतर व्यथित हो जाता है, भीतर एक तनाव की रेखा खिंच जाती है। और तीन सप्ताह बाद फकीर ने कहा, अब मुर्गा बिल्कुल तैयार है। अब वह ऐसे खड़ा रहता है जैसे न कोई आया, न कोई गया। और अब कोई फिक्र नहीं है। पर सम्राट ने कहा कि यह मुर्गा जीतेगा कैसे? उस फकीर ने कहा, तुम फिक्र ही मत करो; अब हारने की कोई संभावना ही न रही। दूसरे मुर्गे इसे देखते ही भाग खड़े होंगे। इसको लड़ना नहीं पड़ेगा। इसकी मौजूदगी काफी है।
और यही हुआ। जब प्रतियोगिता में मुर्गा खड़ा किया गया। तो दूसरे मुर्गों ने सिर्फ झांक कर उस मुर्गे को देखा; न तो उसने आवाज दी, क्योंकि वह कमजोरी का लक्षण है, वह भय का लक्षण है। भय को छिपाने के लिए वह जोर से कुकडूं कूं बोलता है। वह डरवाना चाहता है आवाज से, लेकिन खुद डरा हुआ है। न तो उस मुर्गे ने आवाज दी, न उस मुर्गे ने देखा। जैसे कुत्ते भौंकते रहते हैं और हाथी गुजर जाता है। ऐसे वह मुर्गा खड़ा ही रहा, जैसे पत्थर की मूर्ति हो। दूसरे मुर्गों ने देखा, उनको कंपकंपी छूट गई। क्योंकि यह तो बड़ा, यह तो मुर्गे जैसा मुर्गा ही नहीं है! इसके पास जाना तो खतरे से खाली नहीं है। वे भाग खड़े हुए। प्रतियोगिता में दूसरे मुर्गे उतर ही न सके।
लाओत्से कहता है, "अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता।"
यह कथा मुर्गे की ताओवादियों की कथा है। यह लक्षण है योद्धा का कि वह क्रोध न करे, कि वह उत्तप्त न हो जाए, कि उसका मन ज्वरग्रस्त न हो, कि वह ऐसा शांत बना रहे जैसे बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया हो।
इसलिए जापान और चीन में योद्धा का शिक्षण ध्यान का शिक्षण है। ऐसा दुनिया में कहीं भी नहीं हुआ। और इसलिए जैसी कुशलता जापानियों ने पाई है युद्ध की कला में वैसी कोई जाति नहीं पा सकी। छोटी कौम है जापानियों की, लेकिन उन्होंने पहली दफा उन्नीस सौ पांच में रूस को चारों खाने चित्त कर दिया। पहली दफा पूरब के किसी देश ने पश्चिम के देश को युद्ध में हराया। और दूसरे महायुद्ध में भी उन्होंने बड़ी अदभुत स्थिति प्रकट की। और एटम और हाइड्रोजन बम अगर न गिराया जाता तो जापानियों को मिटाना मुश्किल था। असल में, एटम और हाइड्रोजन बम गिरा कर अमरीका ने कोई बहादुरी का लक्षण नहीं दिखाया। यह तो कमजोरी की ही बात हुई। यह तो ऐसा ही हुआ कि दूसरे के पास तलवार न हो और तुम तलवार भोंक दो। यह तो केवल शस्त्र की ही खूबी रही, बहादुरी की न। और जापान ने प्राण कंपा दिए सारे यूरोप और पूरे अमरीका के। क्योंकि जापानी जिस निर्भय से युद्ध में जाता है, कोई दूसरी कौम नहीं जाती; जिस शांति से युद्ध में जाता है, कोई दूसरी कौम नहीं जा सकती। क्योंकि जापान में एक शिक्षण है समुराई का, वह ध्यान का शिक्षण है। युद्ध के मैदान पर तलवार से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है ध्यान का शिक्षण। इतना शांत, उस मुर्गे जैसा। उस शांति से उसका बल आता है। उस शांति से मृत्यु का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
इसलिए तुम चकित होगे कि जापान में ऐसे बहुत से मंदिर हैं जिनमें सिर्फ तलवार चलाना सिखाया जाता है। वे हैं मंदिर, लेकिन ध्यान की प्रक्रिया तलवार चलाना है। वे कहते हैं, तलवार चलाते वक्त तुम तलवार ही हो जाओ, और तुम इतने शांत हो जाओ कि तलवार चले और तुम न रहो। फिर तुम्हें कोई

हरा नहीं सकता। और ऐसी घटनाएं घटी हैं कि जब कभी दो ऐसे व्यक्तियों में युद्ध हो गया, संघर्ष हो गया, जो दोनों ही ध्यान में निष्णात थे, तो निर्णय नहीं हो पाता। महीनों संघर्ष चलता है, निर्णय नहीं हो पाता। क्योंकि जब कोई व्यक्ति बिल्कुल शांत होता है तो दूसरे व्यक्ति के हमला करने के पहले वह सुरक्षा कर लेता है। वह इंट्यूटिव है; वह प्रज्ञात्मक है। जब ध्यान गहरा हो जाता है तो दूसरा व्यक्ति तलवार से कहां हमला करने वाला है--अभी उसने किया नहीं है, अभी सिर्फ सोचा है--पर उसके विचार की प्रतिछवि आ जाती है। और इसके पहले कि वह हमला करे, ढाल जगह पर तैयार होती है; हमले के पहले बचाव हो जाता है। और तब बड़ा मुश्किल हो जाता है। अगर दोनों ही व्यक्ति एक-दूसरे के विचार पढ़ने में कुशल हों तो हार असंभव है।
एक झेन फकीर के पास, जो तलवार चलाना सिखाता था, एक युवक आया। और उस युवक ने कहा कि मुझे भी स्वीकार कर लें शिष्य की भांति। उस फकीर ने कहा, लेकिन तुम, तुम तो पूर्ण निष्णात मालूम होते हो! तुम्हें शिक्षण की कोई जरूरत नहीं। तुम क्या मुझसे मजाक करने आए हो या मेरी परीक्षा लेने? क्योंकि मैं देख पा रहा हूं कि तुम तो पूरे कुशल हो। तुम उतने ही कुशल हो जितना मैं। उस युवक ने कहा, आप यह क्या कह रहे हैं? मैंने कभी तलवार हाथ में नहीं उठाई, कोई शिक्षण नहीं लिया। नहीं, आपको कुछ भ्रांति हो गई। पर उस गुरु ने कहा, अगर मुझे भ्रांति हो जाए तो मैं गुरु नहीं। तुम मुझे धोखा देने की कोशिश मत करो। तुम मुझे सच-सच कहो। उस युवक ने कहा, लेकिन मैं सच ही कह रहा हूं। तो गुरु ने कहा, तुमने फिर कुछ और तो नहीं सीखा है?
उसने कहा कि मैं सिर्फ... । जापान में टी सेरेमनी होती है, चाय को पीने
को उन्होंने एक धार्मिक उत्सव बना रखा है। तो उसने कहा कि मैं तो सिर्फ चाय पिलाने की कला में निष्णात हूं।
तो उस फकीर ने कहा, बात साफ हो गई। कला कोई भी हो, बात तो एक ही है। चाहे तलवार चलाओ, चाहे प्याली में चाय ढालो, लेकिन अगर ध्यान से किया जाए तो दोनों एक ही तरह की बातें हैं; कोई फर्क नहीं है।
अगर ध्यानपूर्वक चाय ढाली जाए प्याली में, या ध्यानपूर्वक कोई तलवार उठाए, या ध्यानपूर्वक कोई तीर चलाए, या ध्यानपूर्वक कोई रास्ते पर चले-- असली सवाल ध्यानपूर्वक होना है। और जब कोई ध्यानपूर्वक जीता है तो उसके जीवन से क्रोध विलीन हो जाता है।
क्रोध इसीलिए है कि तुम्हें ध्यान का कोई पता नहीं। क्रोध इसीलिए है
कि तुम्हें अपनी गहराई का कोई पता नहीं। तुम अपने घर के बाहर-बाहर जी रहे हो, इसलिए उथले हो। उथलेपन में क्रोध है। जैसे नदी गहरी हो जाती है और शोरगुल बंद हो जाता है, जैसे घड़ा भर जाता है फिर आवाज नहीं आती, ऐसे ही जब कोई व्यक्ति गहरा होता है तब उसके जीवन से क्रोध विलीन हो जाता है। और योद्धा को तो गहरा होना ही चाहिए। ऐसे तो सभी योद्धा हैं, क्योंकि जीवन एक संघर्ष है।
"बड़ा विजेता छोटी बातों के लिए नहीं लड़ता है।"
असल में, छोटी बातों के लिए जो लड़ता है उसके जीवन में बड़ा छोटापन है, बड़ा ओछापन है। तुमने कभी गौर किया कि तुम किन बातों के लिए लड़ते हो? अगर तुम गौर से खोजोगे तो तुम पाओगे बातें बड़ी छोटी हैं, और लड़ाई बड़ी मचाते हो। राह से जाते थे, किसी ने मुस्कुरा दिया; दुश्मनी हो गई। किसी ने एक शब्द कह दिया, और जिंदगी भर तुम उसको बोझ की तरह ढोते हो। तुम लड़ते किन बातों पर हो? बहुत छोटी बातें हैं। विचार करोगे तो हंसोगे अपने ऊपर कि यह भी कुछ लड़ने योग्य था! और एक बात स्मरण रखना। अगर छोटी बातों के लिए लड़े तो छोटे रह जाओगे। एक बड़ी प्रसिद्ध कहावत है अरब में कि आदमी अपने दुश्मन से पहचाना जाता है। अगर तुमने छोटे दुश्मन चुने तो तुम आदमी छोटे हो। अगर तुमने बड़े दुश्मन चुने तो तुम आदमी बड़े हो। तुम किन चीजों से लड़ते हो? उनसे ही तो तुम्हारा व्यक्तित्व निर्मित होगा।
अगर तुम बड़ी चीजों के लिए लड़ते हो, तुम अचानक बड़े हो जाओगे। और जब यह बात तुम्हें समझ में आ जाएगी तो तुम लड़ोगे ही नहीं; क्योंकि इतनी कोई भी बड़ी चीज नहीं है कि जिससे लड़ कर तुम विराट हो सको। सभी चीजें छोटी हैं। कोई छोटी, कोई बड़ी, लेकिन अंततः सभी चीजें छोटी हैं। इसलिए जिसको विराट के साथ

एक होना है वह असंघर्ष का सदगुण सीख लेता है। वह लड़ता ही नहीं; वह लड़ने योग्य ही नहीं पाता।
जीसस के वचन हैं, कोई मारे एक गाल पर चांटा, दूसरा कर देना।
इनका राज क्या है? इनका राज यह है कि यह बात लड़ने योग्य है ही नहीं।
चांटा ही मार रहा है; गाल पर ही मार रहा है; बिगाड़ क्या लेगा? लेकिन इससे अगर तुम लड़ने लगे तो लड़ाई के द्वारा तुम इसी की स्थिति में आ जाओगे जहां यह खड़ा है। आखिर तुम भी क्या करोगे? दुश्मन जिसको तुमने चुना वह तुम्हें बदल देगा अपने ही ढंग में। मित्र इतना नहीं बदलते जितना दुश्मन बदल देते हैं। अगर लड़ना ही हो तो किसी बड़ी बात के लिए लड़ना।
लेकिन कौन सी बड़ी बात है जिसके लिए तुम लड़ोगे? खोजने निकलोगे तो पाओगे
ही नहीं कि कोई भी बड़ी बात है। किसी आदमी ने गाल पर एक चांटा मार दिया; हवा का एक झोंका समझ लेना। लड़ने की क्या बात है? और तुम पाओगे, अगर तुम न लड़े तो तुम बड़े हो गए, उसी क्षण बड़े हो गए; तुम ऊपर उठे, साधारण मनुष्यता से पार गए। साधारण क्षुद्र जीवन की बातों से ऊपर उठे।
तो जीसस सूली पर चढ़ते वक्त भी प्रार्थना करते हैं, क्षमा कर देना परमात्मा इनको; क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।
अगर जीसस ने कहा होता कि नष्ट कर देना इन सबको; ये तेरे बेटे का जीवन छीने ले रहे हैं। तो जीसस एकदम छोटे हो गए होते, वहीं सिकुड़ गए होते। सारी बात ही खत्म हो जाती। आखिरी कसौटी सूली पर थी। उस कसौटी पर वे पूरे उतर गए। वही बड़े से बड़ा चमत्कार है। उन्होंने अंधों की आंखें खोलीं या नहीं खोलीं, सब व्यर्थ की बातचीत है। लंगड़ों को चलाया या नहीं चलाया, कोई हिसाब रखने की जरूरत नहीं है। लेकिन सूली पर उन्होंने प्रमाण दे दिया आखिरी कि वे निश्चित ही बेटे परमात्मा के हैं। वे इतने बड़े हैं कि जो सूली पर लटका रहे हैं उनको क्षमा कर सकते हैं।
"अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता। बड़ा विजेता छोटी बातों के लिए नहीं लड़ता। मनुष्यों का अच्छा प्रयोक्ता अपने को दूसरों से नीचे रखता है। असंघर्ष का यही सदगुण है।"
असंघर्ष शब्द को ठीक से समझ लो।
हमारे भीतर एक वृत्ति है जो हमें चौबीस घंटे लड़ाती है। उस वृत्ति के कारण हम हर घड़ी जैसे सचेत हैं कि कोई संघर्ष होने की तैयारी है। पति घर आता है, तैयार हो जाता है कि पत्नी क्या पूछेगी, वह क्या जवाब देगा; पत्नी क्या कहेगी, वह कैसे संघर्ष करेगा। आदमी बाजार जाता है तो संघर्ष की तैयारी है; घर आता है तो संघर्ष की तैयारी है। मित्रों से मिलता है तो भी तैयार होकर मिलता है, जैसे कि वहां भी कलह है। हमारे भीतर कोई सूत्र है--वह सूत्र अहंकार का है--जो हमसे कहता है कि सब तरफ लड़ाई चल रही है, सम्हल कर चलना, तैयार होकर चलना, इंतजाम करके चलना। क्योंकि जिन्होंने इंतजाम नहीं किया वे हार जाते हैं। और इसीलिए तो तुम्हारे जीवन में इतना तनाव है; तुम शांत नहीं हो सकते। क्योंकि संघर्ष जिसकी वृत्ति है वह शांत कैसे होगा? असंघर्ष को जो अपनी वृत्ति बना ले, जीवन की शैली बना ले, कि कोई लड़ाई नहीं हो रही है, कोई दुश्मन नहीं है, सारा संसार मित्र है, यह सारा अस्तित्व परिवार है, यहां कोई तुम्हें मिटाने को उत्सुक नहीं है; जिसके मन में ऐसा भाव आ जाए, और अद्वैत की जो खोज में लगा हो, उसके लिए तो यह भाव धारा की तरह है जो सागर में ले जाएगा। कोई दुश्मन नहीं है; फूल-पत्ते, वृक्ष, आकाश, चांद, तारे, सब तुम्हारे लिए हैं। इन सबने तुम्हें सम्हाला हुआ है। और अगर कभी कहीं जीवन में कहीं कुछ कलह जैसी मालूम पड़ती है तो भी तुम उसे सर्जिकल जानना कि जैसे डाक्टर कभी तुम्हारे हाथ-पैर से फोड़े को काटता है, पीड़ा देता है, लेकिन पीड़ा देने के लिए नहीं, पीड़ा से छुटकारे के लिए। अगर जीवन में कहीं तुम्हें चोट पड़ती है, वह चोट भी तुम्हारे हित के लिए है, कल्याण के लिए है।
बायजीद एक रास्ते से गुजर रहा था। पत्थर से चोट लग गई; पैर लहूलुहान
हो गया। वहीं बैठ कर उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि धन्यवाद।
साथियों ने कहा, क्या पागलपन है! पैर से खून बह रहा है; धन्यवाद किस बात का दे रहे हो? इस परमात्मा का तुम पर कौन सा अनुग्रह है? अगर परमात्मा

इतना ही प्रेम करता था तो पत्थर राह से हटा देना था, या पत्थर को फूल कर देता, या तुम्हें ख्याल दे देता कि नीचे पत्थर है और तुम बच कर निकल जाते। बायजीद ने कहा, तुम समझते नहीं; सूली भी हो सकती थी; सिर्फ इसी चोट से उसने बचा दिया। उसके अनुग्रह का कोई अंत नहीं है।
यह देखने का ढंग है। सूली भी हो सकती थी; और केवल पत्थर की चोट से बचा दिया। धन्यवाद देना जरूरी है। यह उस आदमी की दृष्टि है जिसने जीवन को एक परिवार की तरह देख लिया, जिसने जान लिया कि परमात्मा साथ दे रहा है। कभी अगर तोड़ता भी है तो इसीलिए कि उस तोड़ने से तुम्हें निखार सके। कभी अगर कष्ट भी देता है तो इसीलिए ताकि तुम्हें कष्ट के बीच भी शांत रहने की क्षमता की सुविधा दे सके। कभी अगर तुम्हें मारता भी है तो इसीलिए ताकि तुम मृत्यु में भी जीवन के उठते हुए रूप का दर्शन कर सको। असंघर्ष बड़े से बड़ा गुण है। लड़ने का भाव रोग है। असंघर्ष, किसी से कोई वैमनस्य नहीं।
महावीर का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः वैरं मज्झ न केणई। किसी से मेरी कोई शत्रुता नहीं, सभी से मेरी मित्रता है।
किसी ने महावीर के कान में खीलें ठोंक दिए थे। और महावीर बिल्कुल निर्दोष थे। महावीर खड़े थे मौन। वे बारह वर्ष मौन रहे ताकि मन बिल्कुल शांत हो जाए; शब्द का उपयोग न किया। नग्न खड़े थे एक जंगल में। एक चरवाहा अपनी गायों को चरा रहा था। उसने महावीर से कहा कि अरे सुन--उसने सोचा खड़ा है कोई नंगा आदमी--जरा मेरी गाय देखते रहना; मैं जरा काम से गांव जा रहा हूं।
अब महावीर बोलते तो थे नहीं, इसलिए कह न सके कि नहीं भई, मैं न देख सकूंगा; मैं अपने काम में लगा हूं। आंखें बंद हैं; बोलते नहीं थे। चुप ही खड़े रहे। बोलते नहीं थे, इशारा भी नहीं करते थे। क्योंकि इशारा भी बोलना है। उसमें कोई सार नहीं, फिर मौन रहने का कोई अर्थ नहीं। वे वैसे ही खड़े रहे। वह आदमी मौन को सम्मति मान कर कि महावीर देख लेंगे; या हो सकता है, गूंगा हो आदमी; गांव चला गया। वह गांव चला गया; गाएं उठीं और जंगल में अंदर चली गईं।
जब वह आदमी लौटा, वहां गाएं नदारद थीं। महावीर वहीं खड़े थे। उसने कहा,
तो अच्छा तो बने तुम साधु खड़े हो! गाएं नदारद कर दीं! गाएं कहां हैं? और महावीर मौन हैं, इसलिए बोल सकते नहीं। वे वैसे ही खड़े रहे। वह इतना क्रोध में आ गया कि सुनता नहीं है? बहरा है? तो अब मैं तुझे बहरा ही बनाए देता हूं। उसने दोनों कान में दो लकड़ियां ठोंक कर पत्थर से अंदर कर दीं; दोनों कान फोड़ दिए। लहूलुहान महावीर खड़े हैं।
कथा कहती है कि इंद्र को, देवताओं को पीड़ा हुई कि इस निर्दोष आदमी को इतना कष्ट! अकारण!
ये कथाएं भी बड़ी अर्थपूर्ण हैं। ये इतना ही कह रही हैं कि अस्तित्व भी पीड़ा अनुभव करता है जब तुम निर्दोष होते हो। कोई देवता वहां बैठे हैं ऐसा नहीं, कि कोई इंद्र वहां सोच रहा है ऊपर आकाश में बैठा। लेकिन कथा तो सांकेतिक है; अस्तित्व तुम्हारे लिए पीड़ा अनुभव करता है जब तुम निर्दोष होते हो। जब पूरा अस्तित्व अनुभव करता है तुम्हारी सरलता को तब अस्तित्व भी पीड़ित होता है।
इंद्र ने आकर महावीर को कहा कि आप इतनी आज्ञा दें कि मैं आपकी रक्षा
के लिए साथ-साथ रहूं। क्योंकि आप हैं मौन, और इस तरह की दुर्घटनाएं बड़ी पीड़ादायी हैं। महावीर ने--यह तो कोई बाहर की वाणी की बात नहीं थी, क्योंकि वे तो मौन थे, बाहर तो बोल नहीं सकते थे, लेकिन भीतर उनके भाव ने उत्तर दे दिया, इंद्र तो भाव को समझेगा--उत्तर दे दिया कि नहीं, इसके द्वारा भी बहुत कुछ मिला है, इस पीड़ा से भी बहुत कुछ पाया है, क्योंकि पीड़ा बाहर-बाहर रही और भीतर का आनंद अखंडित रहा। यह बड़ी अच्छी परीक्षा रही; धन्यवाद है उस चरवाहे का! उसने एक अवसर दिया पीड़ा के ऊपर उठने का। तो यह अकारण नहीं है; इसलिए रक्षा की कोई जरूरत नहीं है।
असंघर्ष का अर्थ है कि शत्रुता नहीं है। यह अस्तित्व घर है; हम यहां कोई अजनबी नहीं हैं। और अस्तित्व हमारी सार-सम्हाल रख रहा है, इसलिए लड़ना

किसी से भी नहीं है। और जो आ भी जाए लड़ने वह भी छिपा हुआ मित्र ही है, शत्रु के भीतर छिपा हुआ मित्र है।
जीसस ने कहा है, रेसिस्ट नाट ईविल। बुराई से भी संघर्ष मत करो।
क्योंकि जिससे तुम संघर्ष करोगे उसी जैसे हो जाओगे। संघर्ष ही मत करो।
असंघर्ष सूत्र हो जाए।
"इसे ही मनुष्यों को प्रयोग करने की क्षमता कहते हैं।"
और लाओत्से कहता है, जो असंघर्ष को उपलब्ध हो जाता है वह मनुष्यों का उपयोग करने लगता है। अनजाने सारा अस्तित्व उसके लिए सहयोगी हो जाता है; सारे मनुष्य उसके लिए सहयोगी हो जाते हैं; वे उसके चाकर हो जाते हैं; बिना जीते वे उससे हार जाते हैं; बिना उन्हें हराने की कोशिश किए वह अचानक पाता है कि सभी उसके चाकर हो गए हैं।
"इसे ही मनुष्यों को प्रयोग करने की क्षमता कहते हैं। यही है अस्तित्व की ऊंचाई को छूना।"
जब तुम्हारे जीवन में कोई संघर्ष न रहा, एक मैत्री का विराट भाव व्याप्त हो गया, तो तुमने अस्तित्व के ऊंचे से ऊंचे शिखर को छू लिया। क्योंकि इसी दशा का नाम प्रेम है।
"अस्तित्व का यह ऊंचे से ऊंचा शिखर, यही है स्वर्ग का सखा।"
और इसी के आस-पास स्वर्ग बसा है। प्रेम के आस-पास बसा है स्वर्ग। और असंघर्ष से उपलब्ध होता है प्रेम।
"पुरातन का भी।"
और प्राचीन में, प्रारंभ में जहां तुम थे, जिस परम आनंद में, वह भी इसी
के आस-पास है। प्रारंभ भी इसी के आस-पास; अंत भी इसी के आस-पास। प्रेम के आस-पास सारी यात्रा है। प्रेम उपलब्धि है और प्रेम ही प्रस्थान। प्रेम ही पहला कदम है और प्रेम ही अंतिम मंजिल। लेकिन प्रेम को पाना हो तो असंघर्ष का जीवन चाहिए। महावीर इस जीवन को अहिंसा का जीवन कहते हैं; बुद्ध करुणा का जीवन कहते हैं; जीसस प्रेम का जीवन कहते हैं; मोहम्मद प्रार्थना का जीवन कहते हैं। पर बात वही है, सार प्रेम है। और प्रेम तभी उदय होगा, तभी फूटेगा बीज प्रेम का, जब तुम असंघर्ष की भूमि को निर्मित कर पाओगे। अन्यथा प्रेम का बीज न फूटेगा। लड़ने की वृत्ति से भरे तुम कैसे प्रेम
कर पाओगे? लड़ने को आतुर, तो प्रेम भी घृणा हो जाएगा, और प्रेम भी विषाक्त हो जाएगा। लड़ने को आतुर तुम्हारा ध्यान भी क्रोध हो जाएगा। तभी तो दुर्वासा ऋषि जैसे लोग पैदा होते हैं। लड़ने को आतुर, तो ध्यान भी क्रोध हो जाता है। और जहां वरदान बरसते, वहां से अभिशाप का जहर बहने लगता है। संक्षिप्त मेंः प्रेम है प्रारंभ, प्रेम है अंत। असंघर्ष की चाहिए भूमि; उसमें प्रेम के बीज को पल्लवित होने दो। उसी में प्रार्थना के फूल लगेंगे और उसी में परमात्मा के फल। और फलों से ही वृक्ष पहचाने जाते हैं। जब तक तुम परमात्मा को न पा लो तब तक तुम पहचाने न जा सकोगे कि तुम कौन हो। लोग मुझसे पूछते हैं कि हम जानना चाहते हैं हम कौन हैं।
तुम तब तक न जान सकोगे जब तक तुम पूर्ण न हो जाओ, जब तक तुम अपनी नियति
को न पा लो। कैसे कोई वृक्ष जानेगा वह कौन है, जब तक बीज वृक्ष न बन जाए, फूल न लग जाएं, फल न लग जाएं। गंगोत्री में गंगा अपने को नहीं पहचान पाएगी। वह पहचान तो होगी अंत में, जहां विराट हो जाएगा रूप, मिलन होगा सागर से।
"दि ब्रेव सोल्जर इ.ज नाट वायलेंट। दि गुड फाइटर डज नाट लूज हिज टेम्पर। दि ग्रेट कांकरर डज नाट फाइट ऑन स्माल इसूज। दि गुड यूजर ऑफ मेन प्लेसेज हिमसेल्फ बिलो अदर्स। दिस इ.ज दि वर्चू ऑफ नान-कंटेंडिंग; इ.ज कॉल्ड दि कैपेसिटी टु यूज मेन; इ.ज रीचिंग टु दि हाइट ऑफ बीइंग; मेटेड टु हेवन, टु व्हाट वा.ज ऑफ ओल्ड।"
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ बारहवां प्रवचन

आक्रामक नहीं, आक्रांत होना श्रेयस्कर है

Chapter 69

Camouflage

There is the maxim of military strategists:
I dare not be the first to invade, but rather be the invaded.
Dare not press forward an inch, but rather retreat a foot.
That is, to march without formations,
To roll not up the sleeves,
To charge not in frontal attacks,
To arm without weapons.
There is no greater catastrophe than to underestimate the enemy. To underestimate the enemy might entail the loss of my treasures. Therefore when two equally matched armies meet,
It is the man of sorrow who wins.

अध्याय 69

छद्मावरण

सैन्य रणनीतिज्ञों का यह सूत्र हैः
मैं आक्रमण में आगे होने का साहस नहीं करता,
बल्कि आक्रांत होना पसंद करता हूं।
एक इंच आगे बढ़ने के बजाय
एक फुट पीछे हटना श्रेयस्कर है।
उसका अर्थ हैः सैन्यदल के बिना कूच करना, आस्तीन नहीं समेटना,
सीधे हमलों से चोट नहीं करना, बिना हथियारों के हथियार-बंद रहना।
शत्रु की शक्ति को कम कर आंकने से बड़ा अनर्थ नहीं है;
शत्रु की शक्ति का अवमूल्यन मेरे खजाने नष्ट कर सकता है;
इसलिए जब दो समान बल की सेनाएं आमने-सामने होती हैं,
तब जो सदाशयी है, झुकता है, वह जयी होता है।

मनुष्य ने दो तरह के जीवन-दर्शन जाने हैं। एक जीवन-दर्शन है अहंकार का, और एक जीवन-दर्शन है निरहंकारिता का।
अहंकार का जीवन-दर्शन अपने आप में परिपूर्ण शास्त्र है। और वैसे ही निरहंकार का जीवन-दर्शन भी अपने आप में परिपूर्ण है। अहंकार के जीवन-दर्शन की अंतिम उपलब्धि नरक है--अपने आस-पास दुख और पीड़ा का एक साम्राज्य। और निरहंकार जीवन-दर्शन की अंतिम उपलब्धि मोक्ष है--मुक्ति, सच्चिदानंद। लेकिन अहंकार का जीवन-दर्शन आश्वासन देता है मोक्ष तक पहुंचाने का,
और अहंकार का जीवन-दर्शन सब तरह के प्रलोभन देता है। अहंकार के द्वार पर भी लिखा है स्वर्ग, और अहंकार के आमंत्रण बड़े ही भुलावेपूर्ण हैं। वे ऐसे ही हैं जैसे कोई मछलियां पकड़ने जाता है तो कांटे पर आटा लगा देता है। कोई मछलियों को आटा खिलाने के लिए नहीं; खिलाना तो कांटा है। लेकिन आटे के बिना कांटा मछलियों तक पहुंचेगा नहीं। अहंकार बड़े प्रलोभन देता है; दुख के कांटे पर बड़ा आटा लगा देता है। आटे के लोभ में ही हम उसे निगल जाते हैं। और फिर बहुत देर हो गई होती है; फिर उसे थूक देना संभव नहीं। कांटा छिद गया होता है; घाव बन गए होते हैं। और फिर अहंकार के कारण ही यह कहना भी बहुत मुश्किल होता है कि हमने भूल की।

यह जिंदगी की बड़ी गहरी बातों में नहीं, छोटी-छोटी बातों में भी ऐसा है। तुम कभी भोजन करते समय गरम आलू मुंह में रख लेते हो, तो भी उसे थूकते नहीं। जलता है मुंह, तो भी अहंकार कहता है अब सब के सामने इसे बाहर थूकना कैसे संभव है। मुंह जल जाए, लेकिन तुम गरम आलू को भी किसी तरह गटक जाते हो। और ऐसा कोई गरम आलू के साथ ही नहीं है। यह तो तुम्हारे जीवन का दृष्टिकोण है। तुमने जो चुन लिया वह गलत कैसे हो सकता है? तुम उसे थूक कर कैसे स्वीकार करोगे कि तुमसे भूल हो गई। तुमसे और कहीं भूल होती है? तो जलता होता है मुंह, तो भी तुम चेहरे पर प्रसन्नता बनाए रखते हो।
कहानी है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी नाराज थी पति पर। और जब पत्नियां नाराज होती हैं तो किसी न किसी रूप में प्रतिशोध लेती हैं। उसने सूप बनाया, और इतना गरम कि मुल्ला पीएगा तो जलेगा। लेकिन बातचीत में भूल गई, और भूल ही गई कि सूप दुश्मन की तरह बनाया है, और मुल्ला को जलाने को बनाया है। तो खुद बातचीत में भूल कर सूप को पीना शुरू कर दिया। जल गया कंठ। आंख से आंसू बहने लगे। लेकिन अब यह कहना कि इतना गरम सूप पी गई है, और यह कहना कि यह बनाया था मुल्ला के लिए, मुश्किल। और यह स्वीकार कर लेने पर तो फिर मुल्ला पीएगा ही नहीं। तो आंख से आंसू बहते रहे, लेकिन वह सूप पीए गई। मुल्ला ने पूछा, क्या बात है, आंख से आंसू बह रहे हैं? तो उसने कहा कि मुझे मेरी मां की याद आ गई; ऐसा ही सूप मेरी मां भी बनाया करती थी। और इसलिए आंख से आंसू बह रहे हैं। और कोई बात नहीं।
मुल्ला ने भी सूप चखा। वह तो जलती आग था। उसकी भी आंख से आंसू बहने लगे, लेकिन वह भी पीए चला गया। पत्नी ने पूछा, क्या बात है मुल्ला, तुम्हारी आंख से आंसू क्यों बह रहे हैं? तो उसने कहा, मेरी आंख से इसलिए आंसू बह रहे हैं कि तुम्हारी मां मर गई, और तुम्हें क्यों छोड़ गई! तुम्हें भी ले जाती तो अच्छा होता।
जीवन में रोज छोटे-छोटे कामों में भी तुम्हारा मूल जीवन-दर्शन प्रकट होता है। तुम भूल स्वीकार नहीं कर सकते। अहंकार कभी भूल स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि अगर भूल स्वीकार की तो ज्यादा देर न लगेगी जब कि तुम्हें यह भी पता चल जाएगा कि अहंकार तो महा भूल है। इसलिए अहंकार कोई भूल स्वीकार नहीं करता। क्योंकि कहीं से भी भूल स्वीकार की गई तो ज्यादा देर न लगेगी कि तुम पाओगे कि अहंकार तो महा भूल है। इसलिए अहंकार भूलों का निषेध करता है, इनकार करता है; वह उनको स्वीकार नहीं करता।
और अहंकार की बड़ी से बड़ी भूल यह है कि जो अंत में दुख देता है, उसमें प्रारंभ में वह सुख देखता है। जहां-जहां प्रारंभ में सुख दिखाई पड़े वहां- वहां अंत में तुम पाओगे कि दुख मिलेगा। क्योंकि सुख इतना सस्ता नहीं हो सकता कि प्रारंभ में मिल जाए। सुख तो यात्रा की मंजिल की सुवास है। वह यात्रा का पहला पड़ाव नहीं है, न द्वार है। वह तो यात्रा का अंत है। सुख तो उपलब्धि है। इसलिए जहां-जहां पहले सुख मिलता है वहां-वहां पीछे दुख मिलेगा। और जहां-जहां पहले दुख दिखाई पड़ता है, अगर तुमने साहस रखा तो तुम पाओगे कि पीछे वहीं से महा सुख के द्वार खुलते हैं।
दुख को झेलने की जिसकी क्षमता है वही सुख को पा सकेगा। दुख को सुखपूर्वक झेल लेने की जिसकी सामर्थ्य है महा सुख उस पर बरसेगा। लेकिन जिसने कहा कि दुख को मैं झेलना ही नहीं चाहता, मैं तो पहले ही कदम पर सुख चाहता हूं, वह आटे के लोभ में बड़े कांटों में उलझ जाएगा।
तो अहंकार का एक जीवन-दर्शन है जो शुरू में सुख का आभास खड़ा करता है,
सब तरफ फंदा है वहां। वहां एक दफा भीतर उतर गए तो लौटना कठिन होता जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था कि अब मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ रहा हूं, ऐसा मालूम पड़ता है। क्या आप उचित समझते हैं कि अब मैं विवाह कर लूं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अभी तुम प्रौढ़ नहीं हुए, विवाह के योग्य नहीं हुए। जब प्रौढ़ हो जाओ तब मुझसे कहना। उस लड़के ने पूछा, और मैं यह भी जान लूं कि प्रौढ़ होने का लक्षण क्या है? यानि कब मेरा प्रौढ़ होना सिद्ध होगा? नसरुद्दीन ने कहा, जब तुम विवाह का ख्याल ही भूल जाओगे तभी तुम प्रौढ़ हुए। जब तक तुम्हारे मन में ख्याल उठता रहे कि विवाह करना है तब तक समझना अभी बचकाने हो, विवाह के योग्य नहीं। और जब तुम्हें समझ में आ जाए

कि विवाह बेकार है तब तुम प्रौढ़ हो गए। तब अगर तुम्हें विवाह करना हो तो मुझसे कहना।
यह कठिन शर्त मालूम पड़ती है, लेकिन जीवन की भी यही शर्त है। तुम जब तक सुख के लिए बहुत आतुर हो तब तक तुम प्रौढ़ नहीं हुए, और तुम दुख में फंसोगे। क्योंकि हर जगह दुख ने छद्म-आवरण बना रखा है सुख का। नहीं तो दुख को कौन चुनेगा, सोचो! कांटे को कौन मछली चुनेगी? कांटे को चुनने को तो कोई भी राजी नहीं है। दुख को तो कोई भी न चुनेगा इस संसार में, अगर दुख पर दुख ही लिखा हो। लेकिन सब जगह दुख पर सुख लिखा है, स्वागतम बने हैं; द्वार पर ही बैंड-बाजे बज रहे हैं कि आओ, स्वागत है!
और तुम्हारा अहंकार ऐसा है कि तुम एक बार द्वार में प्रविष्ट हो जाओ
तो लौटना तुम्हें अपने ही कारण मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि दुनिया में भद्द होगी; लोग हंसेंगे कि तुम गए और वापस लौट आए! फिर तो आगे ही आगे तुम चलते जाते हो। पीछे लौटना अहंकार को बहुत मुश्किल है। इसी तरह तो तुम संसार में गहरे उतर गए हो। एक दुख को छोड़ते हो, दूसरा चुन लेते हो। और भी गहन दुख में पड़ते जाते हो। और अगर कोई आदमी तुम्हारे बीच से इस सबको छोड़ कर जाता है तो तुम कहते होः एस्केपिस्ट है, पलायनवादी; देखो भाग खड़ा हुआ। तो तुम दूसरों को भी नहीं भागने देते। घर में आग लगी हो और अगर कोई घर के बाहर जाता है तो तुम कहते होः एस्केपिस्ट है, पलायनवादी है, भगोड़ा है; देखो भाग रहा है।
तो न केवल तुम अपने को रोकते हो, अहंकारियों की भीड़ दूसरों को भी निकलने नहीं देती। समझ में भी किसी को आ जाए तो भी तुम सब तरह की बाधा खड़ी करते हो कि वह निकल न जाए। क्योंकि न केवल उसके भागने से यह सिद्ध होगा कि उसने जान लिया जहां दुख था वहां सुख की भ्रांति हुई थी, उसके भागने से तुम्हें अपने पैरों पर भी अविश्वास आ जाएगा। और एक के भागने से अनेक को यह हिम्मत आनी शुरू हो जाएगी कि हम भी भाग जाएं। इसलिए तुम एक को भी भागने नहीं देते।
लेकिन इस सूत्र को ख्याल में रख लेनाः जहां-जहां तुम सुख पहले चरण में पाओ, समझ लेना कि धोखा है। क्योंकि पहले चरण में अगर सुख मिलता होता तो सारा संसार कभी का सुखी हो गया होता। सुख तो अंतिम चरण की उपलब्धि है। सुख तो पुरस्कार है। सुख तो पूरी जीवन-यात्रा का निचोड़ है। सुख तो सार है सारे अनुभवों का। सुख खुद कोई अनुभव नहीं है; सुख तो सारे अनुभवों के बीच से गुजर कर तुम्हें जो प्रौढ़ता उपलब्ध होती है, जो जागृति आती है, उस जागृति की छाया है। सुख अपने आप में कोई अनुभव नहीं है; सुख जागे हुए आदमी की प्रतीति है। और जागना तो मंजिल पर होगा, अंत में होगा। प्रथम तो तुम कैसे जाग सकोगे?
इसलिए जहां-जहां सुख हो वहां-वहां सावधान हो जाना। और अहंकार की यह तरकीब अगर तुम्हारी समझ में आ जाए तो बहुत कुछ साफ हो जाएगा। अहंकार की यह रणनीति है। इसी तरह उसने तुम्हें फंसाया है--व्यक्ति को भी, समाज को भी, राष्ट्रों को भी, सभ्यताओं को भी। इस अहंकार की रणनीति के कुछ सूत्र समझ लेने चाहिए तो लाओत्से आसान हो जाएगा। लाओत्से अहंकार की रणनीति के बिल्कुल विपरीत है।
लेकिन दुनिया में दो आदमी हुए हैं जो अहंकार की रणनीति के बड़े से बड़े प्रस्तोता हैं। एक आदमी हुआ पश्चिम में, मैक्यावेली; और एक आदमी हुआ भारत में, चाणक्य। उनके नाम ही अलग हैं, उनकी बुद्धि बिल्कुल समान है। मैक्यावेली कहता है कि सुरक्षा का सबसे बड़ा उपाय आक्रमण है। दि ग्रेटेस्ट डिफेंस इ.ज टु अटैक। और कभी दुश्मन को मौका मत दो कि वह हमला तुम पर करे। क्योंकि वह तो हार की शुरुआत हो गई। हमेशा आक्रमण तुम करो; आक्रांत दूसरे को होने दो। एक बार दूसरे ने हमला कर दिया तो तुम्हारी हार तो शुरू हो गई।
आधे तो तुम हार ही गए। कभी मौका मत दो दूसरे को आक्रमण करने का। इसके पहले कि कोई आक्रमण करे तुम आक्रमण कर दो। तो तुम्हारी जीत सुनिश्चित होती है।
क्यों ऐसा होता होगा? क्योंकि अहंकार के भीतर बड़ा भय भरा हुआ है।
अहंकार बिल्कुल रेत का भवन है। या तो तुम दूसरे को डरा दो, अन्यथा दूसरा तुम्हें डरा देगा। और एक बार तुम डर गए तो सम्हलना मुश्किल हो जाएगा।

क्योंकि अहंकार का भवन आश्वस्त नहीं है। भीतर कोई आश्वासन नहीं है; भीतर तो तुम कंप ही रहे हो। और एक बार अगर दूसरे ने हमला कर दिया और कंपकंपी तुम्हारी बाहर आ गई, तो न केवल तुम कंपोगे, दूसरे भी जान लेंगे कि तुम कंप रहे हो। और दूसरों की आंखों में देख कर अपना कंपन तुम इतने कंप जाओगे कि तुम गिर जाओगे। तो अच्छा यह है कि तुम दूसरे पर पहले हमला कर दो, ताकि उसकी कंपकंपी बाहर आ जाए, उसका भय बाहर आ जाए, वह घबड़ा जाए। वह अगर घबड़ा गया तो हार हो गई।
अहंकार के भीतर भय छिपा है। सभी अहंकारों के भीतर भय छिपा है। और भय
के छिपने का कारण है। क्योंकि अहंकार की मृत्यु होने वाली है। अहंकार वास्तविक नहीं है; इंद्रधनुष जैसा है; क्षण भर का खेल है। क्षण भर का संयोग है कि आकाश में बदलियों में पानी के कण लटके हैं और सूरज की किरणें उन पानी के कणों से गुजर रही हैं। यह क्षण भर का संयोग है। थोड़ी ही देर में सूरज नीचे उतर जाएगा, किरणों और पानी की बूंदों का कोण टूट जाएगा। इंद्रधनुष विदा हो जाएगा। या थोड़ी ही देर में बूंदें बरस जाएंगी, बादल खाली हो जाएगा। किरणें गुजरती रहेंगी, लेकिन इंद्रधनुष न बनेगा। इंद्रधनुष जैसा है अहंकार। संयोग है, सत्य नहीं है। कुछ चीजों के जोड़ से निर्मित है; जोड़ के टूटते ही खो जाएगा। इसलिए अहंकार सदा डरा हुआ है।
अगर कहीं इंद्रधनुष में भी कोई चेतना होती तो तुम सोच सकते हो, इंद्रधनुष कंपता ही रहता--अब गया, तब गया। पल का भरोसा नहीं है। ऐसी ही दशा अहंकार की है। शरीर, मन और आत्मा के एक खास कोण पर मिलने से अहंकार निर्मित होता है। वह कोण टूट जाए, अहंकार विलीन हो जाता है। ध्यान की प्रक्रिया में हम उस कोण को तोड़ने का ही प्रयोग करते हैं कि वह कोण टूट जाए। एक दफा कोण टूटा कि तुम अचानक जाग कर देखते हो, तुम हो ही नहीं। तुम्हारे भीतर कुछ और है जिसको तुमने पहचाना भी न था कभी। परमात्मा है, तुम नहीं हो।
पर कोण टूटे तो अहंकार का इंद्रधनुष विसर्जित हो जाता है, कोण बना रहे
तो चलता रहता है। और तुम्हारी पूरी चेष्टा कोण को सम्हालने की रहती है कि जितना बैंक बैलेंस है वह कम न हो जाए, जितनी बाजार में प्रतिष्ठा है वह नीचे न गिर जाए। येन केन, कैसे भी तुम अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखते हो। घर सब खोखला हो जाता है तो भी बाहर तुम अपनी अकड़ को कायम रखते हो। भीतर दिवाला निकल जाता है तो भी बाहर तुम रईस की तरह ही चलते हो। सम्हालना है किसी तरह कोण को; जरा भी हिल जाए कोण, टूट जाएगा। सब तरह से तुम सम्हालते हो। सब तरह से धोखा देते हो। दूसरों को देते हो वह तो ठीक है, लेकिन वह गौण है। मूलतः अपने को देते हो।
अहंकार एक संयोग है और आत्मा एक सत्य है। संयोग के कारण तुम आत्मा को भूल जाते हो। इंद्रधनुष में रंग बहुत सुंदर हैं; आकाश तो खाली है। कहना चाहिए आकाश में कोई रंग नहीं है। आकाश तो रंगहीन है, निर्गुण है। आकाश को कौन देखता है? इंद्रधनुष होता है तो तुम आकाश की तरफ आंख उठाते हो। और इंद्रधनुष में बड़ा रस मालूम पड़ता है। सपने जैसा है, लेकिन बड़ा रंगीन है। और अहंकार भी सपने जैसा है, बड़ा रंगीन है। आत्मा निर्जन है, शून्य है, निराकार है; वहां कोई रंग नहीं है, कोई आकृति नहीं है, कोई परिभाषा नहीं है। सूने आकाश की भांति है। तो इंद्रधनुष को तुम सम्हालते हो। जो नहीं है उसे सम्हालते हो, और जो है उसे भूल जाते हो। आंखें गड़ जाती हैं क्षणभंगुर पर, और शाश्वत का विसर्जन हो जाता है, विस्मरण हो जाता है।
इसलिए जितने भी अहंकार के समर्थक हैं, चाणक्य, मैक्यावेली, वे कहते हैं, दूसरे पर हमला कर देना पहले, नहीं तो तुम्हारी हार शुरू हो गई। दूसरे को पहले भयभीत कर देना, नहीं तो वह तुम्हें भयभीत कर देगा। इसके पहले कि कोई तुम्हें कंपाए, तुम दूसरे को कंपा देना। तुम इतना कंपा देना कि वह खुद को सम्हालने में लग जाए और तुम्हें कंपाने की क्षमता न रह जाए।
लाओत्से इनसे बिल्कुल विपरीत है। लाओत्से की रणनीति का पहला सूत्र है
कि "मैं आक्रमण में आगे होने का साहस नहीं करता, बल्कि आक्रांत होना पसंद करता हूं। एक इंच आगे बढ़ने की बजाय एक फुट पीछे हटना श्रेयस्कर है।" दुनिया का कौन राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, रणनीतिज्ञ लाओत्से से राजी होगा? लेकिन बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट राजी होंगे। क्योंकि लाओत्से यह कह

रहा है कि आक्रमण करने में तो तुम्हारा अहंकार मजबूत ही होगा, आक्रांत होने में शायद टूट जाए। आक्रमण में तो तुम दूसरे का शायद तोड़ दो, लेकिन उससे तुम्हें क्या लाभ है? आक्रांत होने में तुम्हारा टूट जाएगा। और इससे बड़ी क्या विजय हो सकती है कि अहंकार टूट जाए! तुम कंप जाओ तुम्हारी जड़ों से, इससे ज्यादा श्रेयस्कर कुछ भी नहीं है। क्योंकि उस कंपने में ही शायद तुम्हें इंद्रधनुष की तरफ से ध्यान हट जाए, और आत्मा की तरफ, आकाश की तरफ ध्यान उठ जाए।
एक बात तो निश्चित है कि जैसे तुम हो अगर तुम ऐसे ही सम्हले रहे तो तुम परमात्मा को कभी न पा सकोगे। तुम्हें हिल जाना तो जरूरी है। आए एक तूफान और गिरा दे तुम्हारे भवन को; आए आंधी और हिला दे तुम्हें जड़ों से; आए भयंकर झंझावात, टुकड़े-टुकड़े हो जाए तुम्हारा इंद्रधनुष, तो ही शायद तुम जाग सको। और लाओत्से कहता है कि तुम आक्रमण मत करना, तुम आक्रांत होना। दूसरा आक्रमण करे, ठीक; तुम आक्रमण मत करना। क्योंकि आक्रांत होने की दशा में ही तुम जाग सकते हो। गहन दुख में ही तुम जागोगे। सुख में तो तुम नींद से भर जाते हो। सुख में तो तुम सम्मोहित हो जाते हो। विजय जब हो रही हो तब कभी कोई जागा है? जब तुम जीत रहे हो संसार में तब कभी संन्यास का ख्याल उठा है? जब तुम्हारा भवन बड़ा होता जाता है और धन का अंबार लगता जाता है तब तुमने कभी बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट के संबंध में सोचा है? जब सब तरफ सुख है--लगता है कि सुख है--जब सब तरफ जीत है, जब सब तरफ सफलता मिलती है, तब तुम्हें कभी परमात्मा का स्मरण आता है?
नहीं आता। कोई कारण नहीं है। तुम खुद ही काफी मालूम पड़ते हो। परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है। और सब चीजें इतनी ठीक जा रही हैं कि यह ख्याल ही नहीं आता कि जिस नाव में हम यात्रा कर रहे हैं वह कागज की है। यात्रा सब ठीक चल रही है तो कागज की नाव कैसे हो सकती है!
डूबते हो, तभी पता चलता है कि नाव कागज की थी। मिटते हो, गिरते हो, तभी पता चलता है कि जिसका सहारा लिया था वह कोई सहारा न था। जब आक्रांत होते हो सब तरफ से, सब तरफ से तुम्हारे संसार का दिवाला निकल जाता है, बैंक्रप्ट हो जाते हो, तभी तुम्हें याद आती है कि जिन चीजों पर भरोसा किया था वे भरोसे योग्य ही न थीं; जिन-जिन का सहारा लिया था वे सहारे न थे, सहारे की भ्रांतियां थे; और जिसको अपना जाना था वह अपना न था। वे सब किसी और बात के कारण संगी-साथी थे; दुख में सब छोड़ जाते हैं। सब प्रेम खोखला मालूम होने लगता है। सब आसक्ति के पीछे कुछ और दिखाई पड़ता है। लोभ होगा, धन होगा--और हजार बातें होंगी--लेकिन प्रेम नहीं। जब तुम सब भांति आक्रांत और टूट कर गिर गए होते हो तब तुम्हारे पास कोई होता है तो ही पता चलता है कि कोई प्रेम था, कोई संगी-साथी था; अन्यथा कुछ पता नहीं चलता।
बौद्ध कथा है, एक बौद्ध भिक्षु गांव से गुजरता है। एक वेश्या ने देखा; मोहित हो गई। संन्यासी और वेश्या दो छोर हैं विपरीत, और विपरीत छोरों में बड़ा आकर्षण होता है। वेश्या को साधारण सांसारिक व्यक्ति बहुत आकर्षित नहीं करता; क्योंकि वह तो उसके पैर दबाता रहता है, वह तो सदा दरवाजे पर खड़ा रहता है कि कब बुला लो। वेश्या को अगर आकर्षण मालूम होता है तो संन्यासी में, जो कि ऐसे चलता है रास्ते पर जैसे उसने उसे देखा ही नहीं। जहां उसका सौंदर्य ठुकरा दिया जाता है, जहां उसके सौंदर्य की उपेक्षा होती है, वहीं प्रबल आकर्षण होता है, वहीं पुकार उठती है--चुनौती! वेश्या बड़ी सुंदरी थी। उन दिनों भारत में एक रिवाज था कि गांव की या नगर की जो सबसे सुंदर युवती होती उसका विवाह नहीं करते थे, क्योंकि वह ज्यादती होगी गांव के साथ। कोई एक उसका मालिक हो जाए--बड़े समाजवादी लोग थे--इतनी सुंदर स्त्री का एक मालिक हो जाए तो सारा गांव जलेगा। इस झगड़े को खड़ा करना ठीक नहीं। इसलिए सबसे सुंदर लड़की को नगरवधू की तरह घोषित कर देते थे कि वह सारे गांव की पत्नी है। वेश्या का वही मतलब। और उसका बड़ा सम्मान था, बड़ा आदर था। क्योंकि सम्राट भी उसके द्वार पर आते थे। वह नगरवधू थी। आम्रपाली का तुमने नाम सुना, वैसी ही नगरवधू वह भी थी।
भिक्षु वहां से गुजर गया। वह द्वार पर खड़ी थी। भिक्षु की आंख भी न उठी;
वह कहीं और लीन था, किसी और आयाम में था, किसी और जगत में था। वह भागी,

भिक्षु को रोका। रोक लिया तो भिक्षु रुक गया, लेकिन उसके चेहरे पर कोई हवा का झोंका भी न आया, आंख में कोई वासना की दीप्ति न आई। वह वैसे ही खड़ा रहा। उस वेश्या ने कहा, क्या मेरा निमंत्रण स्वीकार करोगे कि एक रात मेरे घर रुक जाओ? उस भिक्षु ने कहा, आऊंगा जरूर, लेकिन तब जब जरूरत होगी। वेश्या तो कुछ समझी नहीं, वह समझी कि शायद भिक्षु को अभी जरूरत नहीं है। भिक्षु कुछ और ही बात कह रहा था। और ठीक ही है, भिक्षु और वेश्या की भाषा इतनी अलग कि समझ मुश्किल। दुखी, पराजित, क्योंकि यह पहला पुरुष था जिसने निमंत्रण ठुकराया था, वह लौट गई। लेकिन जीवन भर यह याद कसकती रही, घाव की तरह पीड़ा बनी रही।
उम्र ढल गई। कितनी देर लगती है उम्र के ढलने में? सूरज जब उग आता है तो डूबने में देर कितनी? जवानी आ जाती है तो कितनी देर रुकेगी? वह बुढ़ापे का पहला चरण है। बुढ़ापे ने द्वार पर दस्तक दे दी जवानी के साथ ही। जल्दी ही शरीर चुक गया; वह स्त्री कोढ़ग्रस्त हो गई। उसका सारा शरीर भयानक रोग से भर गया। उसके शरीर से बदबू आने लगी। जिन्होंने उसके द्वार पर नाक रगड़ी थी, जो उसके द्वार पर खड़े प्रतीक्षा करते थे क्यू लगा कर, उन्होंने ही उसे निकाल गांव के बाहर फेंक दिया। दुर्गंध से भरी स्त्री की कौन फिकर करता है? सौंदर्य भयानक कुरूपता में बदल गया। जिस शरीर में स्वर्ण काया मालूम होती थी, वह काया देखने योग्य न रही, वीभत्स हो गई। आंख पड़ जाए तो दो-चार दिन ग्लानि होती रहे, वमन की इच्छा हो। गांव के बाहर फेंकने के सिवाय कोई उपाय न रहा। अमावस की रात; वह प्यासी गांव के बाहर मर रही है। वह पानी के लिए पुकारती है। किसी का हाथ बढ़ता है अंधेरे में और उसे पानी पिलाता है। और वह पूछती है, तुम कौन हो?
बीस साल पहले की बात, उस भिक्षु ने कहा, मैं वही भिक्षु हूं। मैंने कहा था, जब जरूरत होगी तब मैं आ जाऊंगा। और मुझे पता था कि यह जरूरत जल्दी ही आएगी। क्योंकि कितने दिन तक शरीर को भोगा जा सकता है? और कितने दिन तक शरीर को बेचा जा सकता है? आज तुझे जरूरत है, मैं हाजिर हूं।
आज वेश्या को समझ में आया कि जरूरत का मतलब भिक्षु की जरूरत न थी। भिक्षु तो वही है जिसकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इस क्षण में ही, उस भिक्षु ने कहा, अब तू पहचान सकेगी कि तुझे कौन प्रेम करता है। वे जो तेरे द्वार पर इकट्ठे होते रहे थे उनका तुझसे कोई भी प्रयोजन न था; वे अपने को ही प्रेम करते थे। तुझे भोगते थे पदार्थ की तरह, वस्तु की तरह। उन्होंने तेरी आत्मा को कभी कोई सम्मान न दिया था। और प्रेम तो तभी पैदा होता है जब तुम किसी की आत्मा को सम्मान देते हो।
लेकिन वैसा प्रेम तो पैदा कैसे होगा? तुमने अभी अपनी ही आत्मा को सम्मान नहीं दिया तो तुम दूसरे की आत्मा को तो पहचानोगे कैसे? सम्मान कैसे दोगे? तो प्रेम तो इस जगत में कभी-कभी घटता है जब दो आत्माएं एक-दूसरे को पहचानती हैं। यहां तो अपनी ही आत्मा को पहचानना इतना दूभर है, इतना मुश्किल है, कि कठिन है यह संयोग कि दो आत्माएं एक-दूसरे को पहचान लें। मनुष्य जान ही नहीं पाता सफलता में कि कभी जरूरत भी पड़ेगी। जब सब ठीक
चल रहा होता है, सब तार-धुन बंधी होती है, जीवन की सीढ़ियों पर तुम रोज आगे बढ़ते जाते हो, तब तुम्हें ख्याल भी नहीं होता कि ह्नास भी होता है जीवन में। विकास ही नहीं, ह्नास भी। इवोल्यूशन ही नहीं होती दुनिया में, इनवोल्यूशन भी होती है। और तभी तो वर्तुल पूरा होता है। बढ़ते जाते हो, बढ़ते जाते हो। सदा नहीं बढ़ते जाओगे। बढ़ने में से ही घटना शुरू हो जाता है। एक दिन अचानक तुम पाते हो कि घटना हो गया शुरू। वहीं पहुंच जाते हो जहां से शुरू हुए थे। शून्य से शून्य तक पहुंच जाना है। जो व्यक्ति इसको पहचान लेगा वह आक्रांत होना पसंद करेगा, आक्रमण करना नहीं। क्योंकि शून्य होना नियति है।
यह व्यक्ति के संबंध में भी सच है, राष्ट्रों के संबंध में भी सच है। व्यक्ति तो कभी-कभी हुए हैं, कोई बुद्ध, कोई लाओत्से, जिसने आक्रांत होना पसंद किया, लेकिन आक्रमण करना नहीं। राष्ट्र अब तक ऐसे नहीं हुए हैं। इसलिए दुनिया में कोई भी राष्ट्र धार्मिक नहीं है। लोग सोचते हैं कि भारत धार्मिक है, गलती ख्याल है। कोई राष्ट्र अब तक धार्मिक नहीं हुआ। अभी तो

कभी-कभी व्यक्ति ही हो पाए हैं बड़ी मुश्किल से; राष्ट्र का होना तो करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है। करोड़-करोड़ लोग कैसे धार्मिक हो पाएंगे? राष्ट्र तो राजनैतिक ही रहे हैं। और राष्ट्र तो चाणक्य और मैक्यावेली से ही राजी हैं, लाओत्से से राजी नहीं हैं। तो दिल्ली में जहां राजनीतिज्ञ रहते हैं, उसका नाम हमने चाणक्यपुरी रखा हुआ है। जिन्होंने रखा सोच कर ही रखा होगा। उनको कुछ याद न पड़ा और कोई नाम। चाणक्य की स्मृति आई। वे सब चाणक्य हैं छोटे-मोटे, छुटभैया; बहुत बड़े चाणक्य भी नहीं हैं। लेकिन रास्ते पर तो वही हैं; रास्ता वही है--आक्रमण का, दूसरे को मिटा डालने का। दूसरे को मिटाने में एक आभास होता है; और वह आभास कि मैं न मिट सकूंगा।
जब भी तुम दूसरे को मिटाते हो तब तुमको अपने शाश्वत होने की भ्रांति होती है। तुम सोचते हो कि देखो, मैं तो मिटा सकता हूं, मुझे कौन मिटा सकेगा? इसलिए तो आक्रमण में इतना मजा है, इतना रस है।
लेकिन तुम मिटोगे। नेपोलियन, सिकंदर, हिटलर, कोई भी बचता नहीं। और तब तुम्हारी सब विजय की यात्राएं पड़ी रह जाएंगी। तुम मिटोगे। लेकिन जब तुम किसी को मिटाते हो तो क्षण भर को ऐसी भ्रांति होती है कि तुम्हें कौन मिटा सकेगा! तुम अपराजेय हो, तुम्हारी जीत आखिरी है। लेकिन ऐसी भ्रांति तुम्हीं को होती है, ऐसा मत समझना। सदा से होती रही है। और भ्रांति एक न एक दिन टूट जाती है। क्योंकि मौत तुम्हारी भ्रांतियों को नहीं देखती; मौत में तो वही बचता है जो सच्चा है। मौत परीक्षा है। सब झूठ गिर जाता है।
तो मौत सिकंदर को भी गांव के साधारण आदमी के साथ बराबर कर देती है। मौत भिखारी और सम्राट को बराबर कर देती है। दोनों एक से पड़े रह जाते हैं। सम्राट और भिखारी की लाश में रत्ती भर भी तो फर्क नहीं होता; दोनों धूल में पड़ जाते हैं और दोनों धूल में गिर जाते हैं। उमर खय्याम ने कहा है, डस्ट अनटू डस्ट। धूल धूल में गिर जाती है। और धूल अमीर की कि गरीब की, कोई भी तो अंतर नहीं है। क्या तुम किसी मरे हुए आदमी की लाश से पता लगा सकोगे कि यह सम्राट था कि भिखारी था? अमीर था कि गरीब था? सफल था कि असफल था? मौत उस सब को तोड़ देती है जो तुमने सपने की तरह बनाया था।
लाओत्से कहता है, आक्रांत हो जाना बेहतर, आक्रमण करना बेहतर नहीं।
और अगर तुम आक्रांत होने की कला सीख जाओ तो शत्रु भी तुम्हें मित्र ही मालूम पड़ेगा। क्योंकि जिसने तुम्हें मिटाया उसने ही तो तुम्हें बोध दिया उसका जो मिट नहीं सकता है। तब तुम शत्रु को भी धन्यवाद दोगे। अभी तो हालत ऐसी है कि मरते वक्त तुम मित्र की भी शिकायत ही करोगे। क्योंकि जब सब छूटने लगेगा तब तुम्हें लगेगा, जो संगी-साथी थे सब व्यर्थ, जिन्होंने सहारा दिया सब व्यर्थ, जो हमने किया वह सब व्यर्थ, समय यों ही गंवाया, कमाई कोई भी न हो सकी। लेकिन जो आक्रांत होने को राजी है, जो हार जाने को राजी है--बहुत कठिन है हार जाने को राजी होना, इसलिए तो धर्म कठिन है--लेकिन जो हार जाने को राजी है वह उसे पा लेता है जिसकी फिर कोई हार नहीं। आक्रांत ही किसी दिन विजेता हो पाता है। ऐसे विजेताओं को हमने जिन कहा है--बुद्ध को, महावीर को--कि उन्होंने जीत लिया। और जीता उन्होंने हार कर।
"सैन्य रणनीतिज्ञों का यह सूत्र हैः मैं आक्रमण में आगे होने का साहस नहीं करता, बल्कि आक्रांत होना पसंद करता हूं।"
मिट जाना बेहतर है मिटाने की बजाय। क्योंकि जितना तुम मिटाते जाओगे उतनी ही तुम्हारी भ्रांति मजबूत होती चली जाती है। मिटा देने दो सारी दुनिया को तुम्हें; तुम राजी हो जाओ मिटने से। और तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर कुछ बच रहा है जो कोई भी नहीं मिटा सकता। उसकी पहली दफा तुम्हें स्मृति आएगी। जब जो भी मिट सकता है मिट गया, जो भी हार सकता है हार गया, जो भी खोया जा सकता है खो गया, तब तुम्हें पहली दफा उस परम धन का स्मरण आएगा जिसे न कोई छीन सकता, न कोई मिटा सकता। तुम पहली दफा इंद्रधनुष से हटे और आकाश की तरफ तुम्हारी दृष्टि मुड़ी।
ऐसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ लोग, जो मरने की आखिरी घड़ी में पहुंच गए थे और किसी कारण बचा लिए गए, उनके जो अनुभव हैं वे बड़े अनूठे हैं। कभी कोई आदमी पहाड़ से गिर गया; आल्प्स की चढ़ाई कर रहा था, पैर फिसल गया और गिर गया। भयंकर खड्ड! निश्चित है कि वह मर रहा है, अब कोई बचने का उपाय

नहीं। मौत घट गई। लेकिन संयोगवशात नहीं टकराया चट्टानों से उसका सिर, गिर गया नीचे हरी दूब पर, और बच गया। इस तरह के आदमी का अनुभव यह है कि मरने के क्षण में उसने परम आनंद का अनुभव किया। वह जो थोड़ी सी देर क्षण भर को बीती पहाड़ से गिरने में और घास पर आने में, उस बीच उसने जीवन का परम आनंद जाना। और ऐसी एकाध घटना नहीं है; ऐसी हजारों घटनाएं हैं। कि कोई आदमी नदी में डूब रहा था--और बिल्कुल डूब चुका था, अपनी तरफ से तो मर चुका था--फिर लोगों ने खींच लिया, पानी निकाल डाला, और वह बच गया। ऐसे लोगों का भी यह अनुभव है कि उन्होंने उस डूबने के पहले क्षण में तो बड़ी पीड़ा जानी, क्योंकि वे मर रहे हैं, सब तरफ से वे घबरा गए; लेकिन थोड़ी ही देर में यह तय हो गया कि मरना है और वे राजी हो गए। करेंगे भी क्या? कोई सुनने वाला नहीं। दूर-दूर तक आवाज गूंजती है, कोई उत्तर नहीं। राजी हो गए। और जैसे ही राजी हुए, एक अपरिसीम आनंद उतरने लगा। जैसे पर्दा हट गया, सब दुख खो गया।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु का यह जो अनुभव कुछ लोगों को हुआ है, लाओत्से उसी अनुभव की चर्चा कर रहा है कि तुम मिट जाओ, आक्रांत हो जाओ। और यही तो समर्पण का सार सूत्र है कि तुम मिट जाओ। अगर तुम अपने हाथ से मिटने को राजी हो जाओ, लड़ो न, तो इसी क्षण समाधि घटित हो सकती है। समाधि पाने की चेष्टा से नहीं, क्योंकि वह भी संघर्ष है। आनंद को पाने की कोई कोशिश से नहीं, क्योंकि वह भी लड़ाई है। तुम राजी हो जाओ, जीवन जहां ले जाए। तत्क्षण तुम पाओगे, तुम्हारे राजी होते ही मृत्यु जैसी घटना घट गई; अहंकार मर गया। और जो बच गया वह सच्चिदानंद है।
तो जो कभी-कभी आकस्मिक रूप से किसी दुर्घटना में घटा है, उसी को ही व्यवस्था दे दी है योग ने, तंत्र ने, धर्म ने; उसका विज्ञान बना दिया है। इसलिए जीसस कहते हैं, जब तक तुम मरोगे नहीं तब तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं है। और जब तक तुम मिटोगे नहीं तब तक तुम उसे न पा सकोगे जो कभी नहीं मिटता है। इसलिए कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, मामेकं शरणं व्रज, सर्वधर्मान परित्यज्य। सब छोड़-छाड़ कर तू मेरी शरण आ जा। अर्जुन को भी वह मौत जैसी लगती है। इसलिए तो इतना संघर्ष करता है, इतनी लंबी गीता चलती है। वह लड़ता है सब तरफ से, तर्क खड़े करता है; वह शरण जाना नहीं चाहता। क्योंकि शरण जाने का मतलब हैः मिट गए। शरण जाने का मतलब हैः अब हम न रहे; किसी और की मरजी को हमने अपनी मरजी बना लिया। शरण जाने का अर्थ हैः अब अहंकार को खड़े होने की कोई जगह न बची।
शिष्यत्व तभी उपलब्ध होता है जब कोई इतनी हिम्मत जुटाता है और किसी
के चरणों में आकर मर जाता है। और कह देता है, जो था वह मर गया। अब मेरी कोई मरजी नहीं। अब जहां ले जाओ, जैसे ले जाओ, जो करवाओ, मैं चलूंगा। अब मैं छाया की तरह हो गया। अब मैं न सोचूंगा; अब सब सोचना-विचारना छोड़ दिया।
यह तो मृत्यु है। और इसी मृत्यु में तुम्हें पहली दफे अमृत का पता चलेगा। जैसे कि काले ब्लैकबोर्ड पर कोई सफेद चाक से लिख देता है तो दिखाई पड़ता है; सफेद दीवाल पर लिखे तो दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे ही जब तुम्हारा अहंकार बिल्कुल मर रहा होता है, उसकी मृत्यु की कालिमा चारों तरफ घिर जाती है, और उसी कालिमा में पहली दफे तुम्हारे अमृत की शुभ्र रेखा दिखाई पड़ती है, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ती। मर कर ही जानता है कोई अमृत क्या है; मिट कर ही जानता है कोई सनातन क्या है, शाश्वत क्या है। क्षणभंगुर टूटता है सपना तो शाश्वत का सूर्योदय होता है।
लाओत्से कहता है, आक्रांत होना उचित है। अहंकार को दौड़ाओ मत, गिरा दो।
"एक इंच आगे बढ़ने की बजाय एक फुट पीछे हटना श्रेयस्कर है।"
अगर लाओत्से की सुनी जाए बात तो यह सारी पृथ्वी शांति से भर सकती है। लेकिन जिनकी बात चलती है, जिनका सिक्का चलता है, वे चाणक्य और मैक्यावेली हैं। लाओत्से का सिक्का चलता नहीं। और जिस पर चल गया, उसने परम आनंद को जान लिया। हट जाओ पीछे। लाओत्से ने एक पूरा का पूरा निरहंकार-रणनीति का शास्त्र निर्मित किया है। वह कहता है, जो हट जाए वही सम्मान योग्य है। उलटी ही उसकी धारणा है। वह कहता है, जो हट जाए वही सम्मान योग्य है। हम हटने वाले को कायर कहते हैं। हम कहते हैं, जो हट जाए वह कायर है। और हमारी इन्हीं धारणाओं ने मनुष्य को युद्धों से भर दिया है। जो हट जाए वह विनम्र

है, हमने ऐसा क्यों न कहा? और धारणाओं पर बहुत कुछ निर्भर करता है। दो आदमी लड़ते हैं। तो जो छाती पर चढ़ जाता है उसको हम फूलमालाएं पहनाते हैं। जो हार गया, जो जमीन पर चारों खाने चित्त पड़ा है, उसको कोई उठाने भी नहीं जाता। तुम हिंसा का इतना सम्मान क्यों करते हो? यह जो आदमी छाती पर चढ़ गया है यह हिंसक है, यह जंगली जानवर जैसा है।
इसलिए तुम अपने पहलवानों को देखो। तुम्हारे जो बड़े पहलवान हैं वे जंगली जानवरों जैसे दिखाई पड़ेंगे। यह कोई शरीर का सौष्ठव नहीं है। और न ही तुम्हारे पहलवानों के शरीर स्वस्थ होते हैं। सभी घातक बीमारियों से मरते हैं। गामा टी बी से मरता है। और चालीस साल के बाद सभी पहलवान अड़चन में पड़ना शुरू हो जाते हैं। क्योंकि शरीर के साथ उन्होंने जबरदस्ती की है। ये जो उनकी फूली हुई मसलें दिखाई पड़ती हैं ये जबरदस्ती और अपने शरीर के साथ की गई हिंसा के सबूत हैं। यह जंगलीपन है। यह कोई शरीर का सौष्ठव नहीं है, न कोई शरीर का सौंदर्य है। यह पशुता है। और एक आदमी दूसरे को चारों खाने चित्त कर देता है इसको हम विजेता मानते हैं, हिंद-केसरी! यह पागलों की दुनिया मालूम पड़ती है। तुम सम्मान हिंसा को क्यों देते हो? दुष्ट को क्यों देते हो? तुम कायर क्यों कहते हो जो हार गया?
मूल्य बदल जाएं, अगर जो हार गया उसको तुम विनम्र कहने लगो, जीवन की पूरी व्यवस्था बदल जाए। जो हट गया उसको तुम शिष्ट कहो, जो आगे बढ़ गया उसको तुम अशिष्ट कहो, तो जीवन और नयी यात्रा पर निकल जाए। कभी न कभी लाओत्से सुना जाएगा। क्योंकि मैक्यावेली और चाणक्य दुनिया को जहां ले आए हैं, वह कोई अच्छी दशा नहीं है। युद्ध और युद्ध, कलह और कलह, और हर जगह गलाघोंट प्रतिस्पर्धा है। और जो आदमी जितने लोगों के गले घोंट दे उतना महान हो जाता है। और जो आदमी जितने लोगों के सिरों की सीढ़ियां बना ले और बैठ जाए सिंहासन पर, वह विजेता हो जाता है।
तुम्हारे मूल्यांकन पागलपन के मूल्यांकन हैं। यह नीति नीति नहीं मालूम पड़ती। तुम्हारी राजनीति, राजनीति नहीं मालूम पड़ती, अनीति मालूम पड़ती है। कोमल को, विनम्र को तुम्हारे जीवन-शास्त्र में कोई भी जगह नहीं है। तूफान आता है, बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, लड़ते हैं, घास का पौधा बच जाता है। लेकिन घास के पौधे का तुम्हारे मन में कोई सम्मान नहीं है। तुमने विनम्रता की शक्ति बिल्कुल नहीं पहचानी। तुम यही कहे चले जाते हो कि टूट जाना भला, लेकिन झुकना मत। और झुकना लोच है। और झुकना जीवंतता है। जो नहीं झुक सकता वह बूढ़ा है, उसकी हड्डियां अकड़ गई हैं, पक्षाघात से भरा है।
किसी न किसी दिन लाओत्से समझ में आएगा तो तुम जिनका सम्मान करते थे उनको तुम पैरालाइज्ड कहोगे, और जिनको तुमने फूलमालाएं पहनाई थीं, हिंद-केसरी कहा था, उनको तुम जंगली जानवर मानोगे। वैसे तुम्हारे हिंद-केसरी में भी छिपा तो है ही रहस्य, केसरी जंगली जानवर ही है। जिनको तुमने पद्मभूषण और महावीर चक्र बांटे थे उनका तुम मानसिक इलाज करवाओगे, और जिनको तुम भारत-रत्न कहते थे उनको तुम भारत की मिट्टी कहना भी पसंद न करोगे। लेकिन मूल्यांकन की पूरी क्रांति घटित हो जाती है।
लाओत्से विनम्रता की राह से चल रहा है। वह कह रहा है, हट जाओ, यह सौष्ठव है। राह दे दो।
"एक इंच आगे बढ़ने की बजाय एक फीट पीछे हटना श्रेयस्कर है।"
क्यों? क्योंकि आगे जाने की यात्रा अहंकार की यात्रा है। उसमें बहुत लोग गए, किसी ने कुछ पाया नहीं। तुम हटते जाओ। तुम्हारा मन कहेगा, ऐसे हटने लगे तो सारी दुनिया हमें हटा ही डालेगी। कोई हर्जा नहीं है। कहां पहुंच जाओगे? सबसे आखिर में खड़ा कर देगी।
लेकिन सबसे आखिर में होने में हर्ज क्या है? और जिन्होंने भी जाना है उन्होंने सबसे आखिर में खड़े होकर जाना है। क्योंकि वहां न संघर्ष है, न प्रतियोगिता है, न प्रतिस्पर्धा है। बुद्ध और महावीर अगर भिखारी हो जाते हैं राह के तो उसका कारण क्या है? क्या कुछ भिखारी होने में कोई सत्य के मिलने की ज्यादा सुविधा है?
नहीं, वे असल में प्रतिस्पर्धा से हट रहे हैं। बड़ी कलह थी, बड़ी प्रतिस्पर्धा थी। वे प्रतिस्पर्धा से हट रहे हैं, वे ना-कुछ होने को राजी

हैं; लेकिन लड़ कर कुछ होने को राजी नहीं हैं। क्योंकि लड़ कर भी हुए तो क्या हुए! जबरदस्ती हुए तो क्या हुए! वे चुपचाप हट गए हैं। वे भगोड़े नहीं हैं, पलायनवादी नहीं हैं। उनके पास बड़ी गहरी दृष्टि है। उन्होंने देख लिया कि लड़ कर भी पाओगे क्या? बढ़ कर भी जाओगे कहां? क्योंकि जो बिल्कुल आगे पहुंच गए हैं वे बड़े दुख में खड़े हैं। वे पीछे हट गए हैं; उन्होंने प्रतिस्पर्धा छोड़ दी है। वे गांव के भिखारी हो गए। जहां सम्राट थे वहां भिक्षा का पात्र ले लिया हाथ में। वे सिर्फ यह कह रहे हैं कि हम दौड़, उपद्रव, झगड़ा, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता से बाहर हैं। हम पर कृपा करो। हमने सब मैदान छोड़ दिया।
कृष्ण का एक नाम मुझे बहुत प्रीतिकर है, वह है रणछोड़दास। उसका मतलब होता है, जो युद्ध से भाग खड़ा हुआ, जिसने रण छोड़ दिया। ऐसा कोई नाम दुनिया में किसी ने भी किसी अवतार को नहीं दिया है। रणछोड़दास जी की प्रतिमाएं हैं, मंदिर हैं।
और सारी रणनीति लाओत्से की रणछोड़दास जी की है। छोड़ दो झगड़ा; बाहर हट जाओ। जहां कलह पाओ वहां से चुपचाप हट जाओ। क्योंकि कलह तुम्हें मिटा देगी; चाहे तुम जीतो, चाहे तुम हारो। कलह तुम्हें हरा देगी; चाहे तुम जीतो, चाहे तुम हारो। जीते तो भी आखिर में पाओगे हार गए, हारे तब तो पाओगे ही कि हार गए। कलह जहां हो वहां से हट जाओ। क्योंकि कलह में होना जीवन की ऊर्जा का क्षरण है। कलह में होना जीवन की ऊर्जा पर जंग लगवाना है। तुम चुपचाप हट जाओ। जैसे धूप में खड़ा आदमी हट जाता है वृक्ष की छाया में, ऐसे ही प्रतियोगिता की धूप में खड़े हुए समझदार हट जाता है अप्रतियोगिता की छाया में। तब वहां परम विश्राम है। और उस परम विश्राम में ही तुम स्वयं को जान सकोगे। क्योंकि वहां अहंकार तो बच ही नहीं सकता।
अहंकार तो जीता है प्रतियोगिता से, महत्वाकांक्षा से। कलह भोजन है अहंकार के लिए, अकेले में नहीं जी सकता। अकेले में तो गिर जाता है। उसके पास पैर ही नहीं हैं अकेले में। वह तो दूसरे से लड़ने के सहारे चलता है। अहंकार तो ऐसा ही है जैसे कोई साइकिल चलाता है तो पैडल चलाता है। पैडल चलाता रहे तो साइकिल चलती है। पैडल चलाना रोक दे, थोड़ी-बहुत देर चल जाए, घाट हो तो थोड़ी और ज्यादा चल जाए, बाकी फिर अपने आप रुक जाती है। सम्हल नहीं सकती। अहंकार साइकिल जैसा है, तुम चलाते रहो।
छोटे बच्चे से चलना शुरू हो जाता है, कि क्लास में प्रथम आना है, कि नंबर एक खड़े होना है। शुरू हो गई यात्रा। छोटे-छोटे बच्चे विक्षिप्त होने लगते हैं। परीक्षा में प्रथम खड़े होना है। रुग्ण मां-बाप हैं। अगर प्रथम न आया बच्चा तो इज्जत का सवाल है। अगर प्रथम न आया तो घर में कोई सम्मान न मिलेगा। मां-बाप पीछे लगेंगे कि प्रथम आओ। क्योंकि यह शिक्षण है प्रथम होने का। आज नहीं कल बाजार में फिर इसका उपयोग करना है। अगर अभी से तुम ढीले पड़े और पीछे खड़े होने को राजी हो गए, तो जिंदगी में क्या करोगे? जिंदगी में बड़ी लड़ाई है। छोटे से बच्चे में जहर डालना शुरू हो जाता है। फिर जिंदगी भर यह जहर चलता है--धन, मकान, पद, प्रतिष्ठा--सब जगह प्रतिस्पर्धा है। किसी को हराना है, किसी को चारों खाने चित्त करना है। लाओत्से कहता है, अगर कोई तुम्हें चारों खाने चित्त करने आए, उसे कष्ट
भी मत देना, तुम खुद ही लेट जाना, चारों खाने चित्त हो जाना। और उससे कहना, तू बैठने का छाती पर थोड़ा मजा ले ले जितना तुझे लेना हो, फिर जब तुझे जाना हो चले जाना।
वह आदमी का तुमने मजा ही छीन लिया उस आदमी का। क्योंकि मजा तो तुम्हारे लड़ने में और तुम्हारे हराए जाने में था। अगर तुम लड़े ही न, मजा ही गया। वह आदमी कहेगा, लेटे रहो, हम कहीं किसी और को खोजते हैं। तुमसे क्या सार है! तुम पड़े रहो चारों खाने चित्त; तुम्हारे ऊपर कोई आकर नहीं बैठेगा। क्योंकि उसमें मजा ही क्या है तुम्हारे ऊपर बैठने में? तुम लड़ते ही नहीं। तुम हारे ही हुए हो। मजा तो है कि तुम्हें हराया जाए। मजा तो यह है कि तुम लड़ो। और जितना बड़ा दुश्मन हो उतना ज्यादा मजा है। जितना शक्तिशाली दुश्मन हो उतना ज्यादा मजा है। ऐसे दुश्मन से क्या सार! क्योंकि इससे अहंकार को कोई भोजन न मिलेगा।

लाओत्से इसलिए कह रहा है कि तुम न तो खुद अपने अहंकार को बढ़ाओ और न अपने कारण दूसरे के अहंकार को भोजन दो। क्योंकि वह भी पाप है। तुम उसको भी गलत इंद्रधनुषों में उलझा रहे हो। तुम खुद उलझ रहे हो और दूसरे को उलझा रहे हो। तुम हार ही जाओ। तुम सर्वहारा हो जाओ।
और जो सर्वहारा हो गया वही संन्यासी है। अब उसकी किसी से कोई वैमनस्य
की दशा न रही। महावीर कहते हैं, मित्ति मे सब्ब भुए सू; वैरं मज्झ न केणई। सबसे मेरी दोस्ती है, और किसी से मेरा वैर नहीं। यह तभी घट सकता है जब तुम सर्वहारा होने की कला सीख लो। और यह बड़ी से बड़ी कला है। और पृथ्वी उसी दिन स्वर्ग बन सकेगी जिस दिन इस कला के व्यापक विस्तार की संभावना हो जाएगी कि सब शिक्षणशालाएं विनम्रता सिखाएंगी, प्रथम होने का अहंकार नहीं; कि मां- बाप हारना सिखाएंगे, जीतना नहीं; कि सम्मान उसका होगा जो पीछे हट जाता है, उसका नहीं जो आगे बढ़ जाता है।
बड़ी पुरानी कथा है चीन में कि एक अजनबी विदेश से आया। वह जैसे ही उतरा नाव से, घाट पर बड़ी भीड़ लगी देखी। दो आदमी लड़ रहे थे; दोनों लाओत्से के अनुयायी मालूम पड़ते। बड़ा झगड़ा चल रहा था। बड़ी गालियां दे रहे थे, घूंसे उठाते थे, दौड़ते थे। लेकिन हमला नहीं हो रहा था। बस यह सब बातचीत चल रही थी। और चेहरे पर क्रोध भी नहीं था उनके। गालियां भी दे रहे थे, लेकिन क्रोध भी नहीं था। वह अजनबी बड़ा हैरान हुआ। थोड़ी देर खड़ा देखता रहा, फिर उसने कहा, यह मामला क्या है! इतने जोश में दिखाई पड़ते हैं, लेकिन टूट क्यों नहीं पड़ते? और यह भीड़ खड़ी क्या देख रही है?
तो लोगों ने कहा कि भीड़ यह देख रही है कि जो पहले टूट पड़े वह हार गया।
बस भीड़ विदा हो जाएगी। बात खतम हो गई। ये एक-दूसरे को उकसा रहे हैं कि पहले तुम आक्रमण कर दो, क्योंकि जिसने आक्रमण कर दिया वह हार गया। इनकी पूरी कोशिश यह है कि दूसरा इतना प्रोवोकेशन में आ जाए, इतना उत्तेजित हो जाए कि हमला कर बैठे। बस हमला किया कि भीड़ विसर्जित हो जाएगी। बात खतम हो गई। जिसने हमला किया वह हार गया।
कभी ऐसी दुनिया बनेगी जब हमला करने वाला हारा हुआ समझा जाएगा; तब जीवन
एक नयी यात्रा पर निकलेगा।
लाओत्से कहता है, "सैन्यदल के बिना कूच करना, आस्तीन नहीं समेटना, सीधे हमलों से चोट नहीं करना, बिना हथियारों के हथियारबंद रहना।"
यह न केवल व्यक्तियों के लिए, बल्कि राष्ट्रों के लिए भी सुझाव है। कमजोर आदमी जल्दी से आस्तीन समेट लेता है। असल में, कमजोर आदमी जल्दी से क्रोध में आ जाता है। क्रोध कमजोरी का लक्षण है। क्रोध का अर्थ ही है कि तुम्हारी बुद्धि की सीमा आ गई; इसके पार अब तुम बुद्धू होने को राजी हो। तुम्हारी समझ खो गई; अब तुम पागल होने को राजी हो। क्योंकि क्रोध क्षण भर के लिए आ गया पागलपन है। क्रोध की और पागल की अवस्था में भेद समय का है, गुण का नहीं है। क्रोध का अर्थ है टेंपरेरी, अस्थायी पागलपन। और पागलपन का अर्थ है स्थायी क्रोध। पागल चौबीस घंटे उत्तेजित है। उसने समझ को बिल्कुल ही ताक पर रख दिया। तुम कभी-कभी ताक पर रखते हो। फिर थोड़ी देर बाद फिर उठा कर सम्हाल लेते हो, कि गलती हो गई, पछतावा कर लेते हो। लेकिन क्रोध में तुम जो करते हो वह पागल ही कर सकता है।
तुम अगर क्रोध में अपनी अवस्था देखना चाहो तो कभी आईने के सामने खड़े होकर क्रोध की सब भाव-भंगिमा करना। तब तुम्हें पता लगेगा, कैसे सुंदर तुम दिखाई पड़ते हो जब तुम क्रोध में आ जाते हो! उचकना, कूदना, गाली देना, चीजें तोड़ना-फोड़ना; आईने के सामने जरा देखते रहना अपने को। यही तुम्हारी क्रोध की स्थिति है। क्रोध में तुम बताते हो कि तुम विकसित नहीं हो पाए, तुम्हारे पास चैतन्य की क्षमता नहीं है। क्रोध का अर्थ है कि तुम अपने भीतर नहीं हो, बाहर हो। तो कोई भी तुम्हें हिला देता है बाहर से; कोई भी डांवाडोल कर देता है। जरा सी बात, और तुम्हारा संतुलन खो जाता है। यह संतुलन है ही नहीं; किसी तरह तुम अपने को सम्हाले हो।
"आस्तीन नहीं समेटना, सैन्यदल के बिना कूच करना, सीधे हमलों से चोट नहीं करना, बिना हथियारों के हथियारबंद रहना।"

इस लाओत्से के वचन पर एक पूरा शास्त्र जूडो का निर्मित हुआ है। और वह शास्त्र यह है कि सीधा हमला न करना। जूडो का प्रशिक्षार्थी जब किसी से लड़ता है तो हमला नहीं करता, हमला झेलता है। जूडो की पूरी कला है हमले को झेलना। और हमले को इस तरह झेलना कि शरीर में कोई प्रतिशोध और प्रतिरोध न हो।
समझो कि आप एक घूंसा मुझे मारें। तो जो सहज सामान्य वृत्ति होगी वह यह होगी कि घूंसे के विपरीत मैं अपने हाथ को खड़ा कर दूं, ताकि हाथ पर घूंसा पड़ जाए और मेरे चेहरे को नुकसान न पहुंचे। लेकिन हाथ अकड़ा होगा, हड्डी सख्त होगी। क्योंकि जब कोई हमला कर रहा है तो जितना हाथ अकड़ा होगा--यह हमारा ख्याल है--उतनी ही चोट आसानी से बचाई जा सकेगी, क्योंकि हाथ अकड़ा होगा तो शक्तिशाली होगा।
जूडो कहता है, बिल्कुल गलत है बात। दूसरे की चोट से तुम्हारा हाथ नहीं टूटता, तुम्हारी अकड़ से टूटता है। क्योंकि दूसरा एक ऊर्जा फेंक रहा है घूंसे के द्वारा, और तुम्हारा हाथ अकड़ा है। उस ऊर्जा और तुम्हारे हाथ में संघर्ष हो जाता है। अकड़ की वजह से हड्डी टूट जाती है। तुम कहोगे लोगों से जाकर कि इसने मेरी हड्डी तोड़ दी। जूडो कहता है, तुम गलती बात कर रहे हो; हड्डी तुमने खुद तोड़ ली। काश तुम हड्डी को लोचपूर्ण रखते! भीतरी, बारीक फासला है। तुम हड्डी को ऐसे रखते जैसे यह आदमी चोट करने नहीं आ रहा, आलिंगन करने आ रहा है, प्रेम करने आ रहा है।
और तुम्हारी तो दशा इतनी विकृत हो गई है कि कोई आलिंगन भी करे तो भी तुम हड्डी को मजबूत रखते हो कि पता नहीं क्या इरादा हो। कभी तुमने गौर किया कि कोई तुम्हें आलिंगन में भर ले तो भी तुम सम्हले रहते हो। चारों तरफ देखते हो, कोई... इसका इरादा क्या? मुस्कुराते हो, लेकिन छूटना चाहते हो। हड्डी अकड़ी रहती है आलिंगन में भी। इसलिए प्रेम तक भी तुम में प्रवेश नहीं कर पाता।
जूडो कहता है कि जब तुम्हारे हाथ पर कोई चोट मारे, तुम्हारा हाथ कोमल हो। अगर हाथ कोमल है तो एक बहुत बड़ी ऊर्जा की घटना घटती है। वह घटना यह है कि घूंसा एक खास मात्रा की ऊर्जा और विद्युत लेकर आ रहा है। वह आदमी नासमझ है। वह अपनी ऊर्जा गंवाने को तैयार है। क्योंकि जब तुम किसी को घूंसा मारते हो तो तुम्हारी खास मात्रा में ऊर्जा व्यय हो रही है। घूंसा ऐसे ही नहीं मारा जाता। इसीलिए तो दो-चार-दस घूंसों के बाद तुम थक जाओगे; क्योंकि ऊर्जा चुक गई।
जूडो कहता है, जब कोई तुम्हें ऊर्जापूर्ण हाथ से चोट कर रहा है तब तुम पीने को तत्पर रहो, लड़ने को नहीं। वह जो ऊर्जा आ रही है तुम्हारे हाथ पर, उसको तुम पी जाओ, विरोध मत करो, तुम खाली जगह दे दो। इसको लाओत्से ने कहा है स्त्रैण होने की कला। जैसे स्त्री पी जाती है पुरुष की ऊर्जा को ऐसे तुम इस ऊर्जा को पी जाओ। जगह दे दो; कोमल रहो। और तुम पाओगे कि जो ऊर्जा उसने फेंकी वह तुम्हारे शरीर का हिस्सा हो गई। और अब तो इसको जांचने के वैज्ञानिक उपाय भी हैं। बराबर निश्चित ही उसकी शरीर की ऊर्जा तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर जाती है। इसको लाओत्से कहता है बिना चोट किए, बिना हराए हराना। तुम उसको चोट करने दो।
मगर जूडो सीखने में लोगों को दस से लेकर बीस साल तक लग जाते हैं। क्योंकि हमारी आदतें लड़ने की इतनी पुरानी हैं कि उनको छोड़ना मुश्किल। बार-बार लौट आती हैं। जब कोई जूडो सीख लेता है, तुम उसे हरा नहीं सकते। और वह तुम्हें हराएगा नहीं, और तुम हार जाओगे। क्योंकि वह तुम्हें थका डालेगा। तुम चोट करोगे, और वह तुम्हारी ऊर्जा को पीता रहेगा। पांच-सात मिनट के भीतर तुम पाओगे तुम थक गए। तब तुम्हें सिर्फ हाथ का धक्का दे देना काफी है और तुम चारों खाने चित्त पड़े होगे। उतना भी जरूरी नहीं है। अगर जूडो का आदमी पूरा कुशल हो तो तुम्हें एक ऐसी हालत में ला देगा थका-थका कर कि तुम खुद ही गिर कर चारों खाने चित्त हो जाओगे। तुम उससे हाथ जोड़ लोगे कि तू भैया, जा!

बड़ा महत्वपूर्ण शास्त्र है दुनिया में। बहुत कम शास्त्र इतने महत्वपूर्ण हैं जितना जूडो या जुजुत्सु या अकीदो। ये तीन शास्त्र जापान और चाइना में विकसित हुए। बड़ी अदभुत कलाएं हैं।
तुमने देखा, शराबी रास्ते पर गिर पड़ता है तो चोट नहीं आती। शराबी कोमलता से गिरता है। उसे पता ही नहीं कि वे गिर रहे हैं, तो अकड़ेंगे कैसे? तुम गिरो, पच्चीस जगह हड्डियां टूट जाएंगी। शराबी रात भर पड़ा रहता है सड़क पर, अनेक जगह गिरता है, फिर उठता है। सुबह तुम देखो, वे नहा-धोकर फिर दफ्तर की तरफ जा रहे हैं। बिल्कुल ठीक-ठाक हैं। रात तुम सोचते हो कि इनको तो अस्पताल में न मालूम कितने दिन रहना पड़ेगा।
शराबी जूडो जानता है; पता नहीं है उसे। लेकिन वह होश में ही नहीं है,
तो गिरता है तो वह समझता ही नहीं कि गिर रहे हैं। वह गिर जाता है। बस गिर जाता है; कोई लड़ाई नहीं है। और जब लड़ाई नहीं होती तो पृथ्वी और उसके बीच कलह नहीं है। और जब कोई लड़ाई नहीं है तो वह बिल्कुल गिर जाता है, जैसे कि मां की गोद में गिर रहा हो। इसलिए हड्डियां नहीं टूटतीं।
छोटे बच्चे भी दिन भर गिरते हैं, और कुछ नहीं बिगड़ता। अभी उन्होंने हार्वर्ड में एक प्रयोग किया। एक पहलवान को रखा एक बच्चे के पीछे कि आठ घंटे जो बच्चा करे वही तुम्हें करना है। तो देखें कि बच्चे के पास ऊर्जा कितनी है! छह घंटे बाद पहलवान पस्त हो गए। और उसने कहा कि हाथ जोड़े! बहुत पैसा उसको दिया जाने वाला था। उसने कहा, लेकिन यह आठ घंटा हम पूरा नहीं कर सकते। यह हमें मार ही डालेगा। और बच्चा और मजे में आ गया। जब उसने देखा कि कोई उसका अनुकरण करता है--वह उचकता है तो पहलवान उचकता है, वह गिरता है तो पहलवान गिरता है--तो बच्चे ने तो पूरा आनंद लिया। और बच्चा बिल्कुल नहीं थका था। वह आठ घंटे के बाद बिल्कुल ताजा था। रोज तो थोड़ा सो भी जाता था, आज सोया भी नहीं। इस पहलवान को उसने बिल्कुल मिट्टी में मिला दिया। लेकिन बच्चे की कला क्या है? वह सिर्फ गिरता है, चोट नहीं खाता। जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है वैसे-वैसे चोट लगनी शुरू होने लगती है। जैसे-जैसे अहंकार निर्मित होता है वैसे-वैसे बचाव शुरू हो जाता है।
तुमने बचाया कि तुम मुश्किल में पड़ोगे। लाओत्से कहता है, बचाओ मत। और इसको वह कहता है बिना हथियार के हथियारबंद रहना। सारे संसार को तुम स्वीकार कर लो।
और अब गहरी बात! यह तो बाहर की बात है। इसका एक गहरा पहलू है। और वह पहलू हैः भीतर के शत्रुओं के साथ भी यही व्यवहार करना। कि लोभ है, क्रोध है, काम है; इनसे भी तुम लड़ना मत। अन्यथा तुम हार जाओगे। इनसे भी तुम द्वंद्व में मत पड़ जाना; अन्यथा तुम मिट जाओगे। क्रोध के साथ भी तुम पीछे हट जाना। क्रोध को कहना कि ठीक है आ जा। क्रोध तुम्हारी छाती पर बैठे, बैठ जाने देना, तुम चारों खाने लेट जाना, कि बैठ! क्रोध से लड़ना मत। अगर तुम क्रोध से लड़े तो क्रोध जीतेगा, तुम हारोगे। तुम लाख कसमें खाओ, पश्चात्ताप करो; कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि क्रोध तुम्हारी ही ऊर्जा है, उससे लड़ने का मतलब है तुम अपने को दो खंडों में बांट रहे हो। तुम्हीं लड़ोगे क्रोध की तरफ से; और तुम्हीं लड़ोगे क्रोध के विरोध की तरफ से।
यह तो पागलपन है। यह तो ऐसा हुआ कि वृक्ष को पानी भी सींच रहे हैं, शाखाओं को भी काटे जा रहे हैं। पानी भी दिए जाते हैं; शाखाएं भी काटते हैं। तुम ही हो दोनों तरफ। जैसे बाएं-दाएं हाथ को तुम लड़ाओगे तो कौन जीतेगा? हां, तुम चाहो धोखा अपने को देना तो दाएं को बाएं के ऊपर कर लो और सोच लो कि जीत गए। लेकिन तुम किसी और को धोखा नहीं दे रहे, अपने को धोखा दे रहे हो। एक क्षण में चाहो तो बाएं को फिर दाएं के ऊपर कर लो। वही तुम कर रहे हो। जिंदगी-जिंदगियों से क्रोध से लड़ते हो। कौन है वहां लड़ने को जिससे तुम लड़ रहे हो? तुम्हारी ही ऊर्जा।
तुम लड़ो मत। तुम ऊर्जा को वापस पी जाओ। क्रोध का अर्थ हैः ऊर्जा दूसरे
की तरफ जानी शुरू हुई है--विनाश के लिए। तुम शांत हो जाओ। तुम क्रोध को कहो कि हमारी कोई लड़ाई ही नहीं है। तू हो, तू रह। उठने दो धुआं क्रोध का तुम्हारे चारों तरफ; घिरने दो धुएं को। तुम कुछ मत करो। तुम शांत भीतर बैठे रहो। तुम लड़ो ही मत। तुम अचानक पाओगे, क्रोध धीरे-धीरे आत्मसात हो

गया, खुद में फिर वापस डूब गया। वह तुम्हारी ही लहर थी; जैसे सागर में लहर उठती ऐसे फिर वापस सो गई। और जब तुम एक दिन इस कला को सीख लोगे कि क्रोध तुममें ही वापस सो जाता है तो तुम पाओगे कि कितनी ऊर्जा तुम्हारे पास है! अनंत ऊर्जा के तुम धनी हो जाते हो।
कामवासना उठती है; देखते रहो। लड़ो मत। न भोगने जाओ, न लड़ने जाओ। क्योंकि भोगोगे तो भी खोओगे। लड़ोगे तो भी खोओगे। अगर लड़ने और भोगने में ही चुनना हो तो भोगना बेहतर; क्योंकि ऊर्जा तो दोनों कारण खो जाएगी। अगर लड़ने और भोगने में चुनना हो तो भोगना बेहतर। कम से कम कुछ उपयोग तो हो जाएगा। इसलिए मुझसे अगर तुम पूछो तो हिमालय में रहते संन्यासी से बाजार में रहते गृहस्थ का मेरा चुनाव है। वह बेहतर। क्योंकि कम से कम ऊर्जा का कुछ उपयोग तो हो रहा है। संन्यासी तो सिर्फ ऊर्जा से लड़ रहा है। और लड़ने वाला ज्यादा कठिनाई में पड़ेगा अंततः। क्योंकि लड़ने से कभी कोई समझ नहीं आती। भोग से तो ज्ञान आ भी जाए, त्याग से कभी ज्ञान नहीं आता।
इसलिए तो परमात्मा भोगी पैदा करता है, त्यागी पैदा नहीं करता। त्यागी खुद बन जाते हैं। परमात्मा की समझ साफ है कि परमात्मा भोगी पैदा करता है, क्योंकि पता है कि भोग की ही समझ से एक दिन योग का जन्म होगा। भोग में से गुजर कर ही एक दिन समझ परिपक्व होगी, योग का फल पकेगा। इसलिए परमात्मा संसार बनाता है; संसार से गुजरना अपरिहार्य है। अगर तुमने लड़ना शुरू कर दिया, काम की ऊर्जा से लड़े तो तुम अपने से ही लड़ रहे हो, तुम धीरे-धीरे विक्षिप्त हो जाओगे।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में गांव का काजी बना दिया गया, गांव का न्यायाधीश हो गया। पहला ही मुकदमा आया। और मुकदमा बड़ा उलझन से भरा था। एक पति और पत्नी में झगड़ा हुआ था। और वे अदालत में काजी के पास आ गए थे। पति के कान से खून बह रहा था और वह कह रहा था कि पत्नी ने उसका कान काट लिया। और पत्नी इनकार कर रही थी। तो नसरुद्दीन ने कहा कि इस पर फिर विचार करना पड़ेगा, यह तो बड़ी जटिल बात है। पत्नी इनकार करती है। और कोई गवाह नहीं है। क्योंकि घर में वे दोनों अकेले थे, रात में झगड़ा हुआ। पत्नी कहती है, मैंने काटा नहीं। इन्होंने खुद ही अपना कान काट लिया, पत्नी कह रही थी। सारी अदालत राजी हो गई कि कोई अपना कान कभी काट सकता है! लेकिन नसरुद्दीन इतनी आसानी से राजी नहीं हो सकता। उसने कहा कि एक घंटे का मुझे समय चाहिए।
दरवाजा बंद करके बगल के कमरे में गया। सब तरह उछला-कूदा अपने कान को काटने के लिए। कई दफे सिर टकरा गया दीवार से, कभी जमीन पर गिरा, सब छिल गया, लहूलुहान हो गया, लेकिन कान न काट पाया। थका-मांदा चारों खाने चित्त पड़ा सोचने लगा कि क्या मामला क्या है! तो उसे याद आया कि यह काम बड़ी कुशलता का मालूम पड़ता है, इसके लिए अभ्यास की जरूरत है। कई दफे कान के बिल्कुल करीब भी पहुंच गया था, मगर चूक गया। यह मालूम होता है कि कोई योग का अभ्यास है; यह इतनी जल्दी हल नहीं हो सकता। लेकिन एक बात हाथ आ गई; सूत्र पकड़ में आ गया।
वह बाहर आया। उसे देख कर उसकी अदालत भी हैरान हुई--कि सब कपड़े फट गए, लहूलुहान! पूछा कि क्या हुआ? उसने कहा कि मैंने पहले कोशिश की कि यह आदमी झूठ बोल रहा है या सच? या पत्नी झूठ बोल रही है या सच? अब एक काम किया जाए कि इस आदमी के शरीर को जांचा जाए। अगर इसको जगह-जगह चोट लगी हो तो इसी ने काटा है। क्योंकि मेरी हालत देख रहे हो! काटने की कोशिश में यह हालत हो गई। तो पत्नी ने नहीं काटा है। लेकिन देखा गया आदमी, उसको कहीं चोट नहीं थी। तो नसरुद्दीन ने कहा, इससे जाहिर होता है कि यह आदमी बड़ा कुशल है। यह बड़ा अभ्यासी, हठयोगी मालूम होता है। यह सालों के अभ्यास से ऐसी कला और सिद्धि आती है आदमी को। अपना ही कान काटना कोई आसान मामला नहीं है।
और सब हठयोगी यही कर रहे हैं--अपना ही कान काटने की कोशिश कर रहे हैं। तुम उछलो-कूदो कितने ही, उलटे-सीधे कितने ही खड़े होओ, अपना कान न काट पाओगे। अपने को तुम काट ही न पाओगे। क्योंकि वहां तुम ही हो, दूसरा नहीं है। लड़ो काम से, क्रोध से, तुम कभी जीत न पाओगे। और तुम सदा पाओगे कि काम और क्रोध तुम्हारे मन पर सवार हैं। जिससे तुम लड़े वह तुम्हारा पीछा करेगा।

लाओत्से कहता है, आत्मसात कर लो।
तो अगर भोग और त्याग में चुनना हो तो मैं भोग के पक्ष में। लेकिन अगर भोग और योग में चुनना हो तो मैं योग के पक्ष में। क्योंकि योग अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है। वह भोग के अनुभव से ऊपर जाना है।
अब तुम एक प्रयास करके देखोः जब क्रोध उठे, द्वार बंद कर लो, शांत बैठ जाओ, उठने दो क्रोध को। तुम न तो क्रोध किसी पर प्रकट करो, और न तुम क्रोध के विपरीत लड़ो और उसे दबाओ। तुम उठने दो क्रोध को, उसे पूरी छूट दे दो कि तुझे जो होना है हो। मन में बड़े विचार उठेंगे, बड़ी तरंगें आएंगी, किसी की हत्या कर देनी है। उठने दो तरंगें, कोई चिंता नहीं, तुम दूर खड़े देखते रहो, जैसे सिर्फ एक दर्शक हो। कितनी देर यह टिकेगा? थोड़ी ही देर में तुम पाओगे लहरें जा चुकीं, सब शांत हो गया। ऊर्जा वापस अपने स्रोत में गिर गई।
ऐसे ही कामवासना की ऊर्जा भी वापस अपने स्रोत में गिर जाती है। और जो
इस कला में निष्णात हो जाता है उसके पास इतनी ऊर्जा होती है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
महावीर ने तो कहा है, अनंत वीर्य! ऐसा व्यक्ति अनंत ऊर्जा से भर जाता है।
इतनी ऊर्जा हो तुम्हारे पंखों में तो ही परमात्मा की तरफ उड़ पाओगे।
तो न तो तुम्हारा त्यागी उड़ पाता है, क्योंकि वह लड़ने से ही मरा जा रहा है; न तुम्हारा भोगी उड़ पाता है, क्योंकि वह भोग में टूटा जा रहा है; दोनों से अलग है यात्रा। भोग में योग को साध लो। मेरी संन्यास की वही परिभाषा है कि तुम जहां हो वहीं अपनी ऊर्जा को आत्मसात करने लगो, व्यर्थ मत गंवाओ। न लड़ने की कोई जरूरत है, न फेंकने की कोई जरूरत है। लीन कर लेना है।
तो जब क्रोध आए तब तुम लड़ने आगे मत बढ़ो, तुम पीछे हट जाओ। जब क्रोध की बिजली चमके तब तुम कोई संघर्ष खड़ा मत करो, तुम शांत बैठ जाओ। चमकने दो बिजली, वह तुम्हारी ही ऊर्जा है। और जल्दी ही तुम पाओगे--जैसा मैंने कहा, कमजोर क्रोध करता है; शक्तिशाली करुणा करता है, वह भी तुमसे कह देना चाहिए--जब शक्ति बहुत होती है तब क्रोध तो होता ही नहीं, करुणा ही होती है। वह बहुत शक्ति का लक्षण है। क्रोध तो कम शक्ति का लक्षण है। क्रोध तो दिवालिया शक्ति का लक्षण है। करुणा महान शक्ति का लक्षण है। गहन होती है शक्ति, तब तुमसे करुणा ही पैदा हो सकती है।
और क्रोध और करुणा की शक्ति एक ही है, मात्रा का ही भेद है। कामवासना छोटी शक्ति का लक्षण है; प्रेम महान शक्ति का लक्षण है। जब शक्ति विराट होती है तो प्रेम बन जाती है; जब शक्ति क्षुद्र होती है, बूंद-बूंद चूती है, तब कामवासना बन जाती है। शक्तियां वही हैं। जब शक्ति कम होती है तब अहंकार बन जाती है; जब विराट होती है तो परमात्मा बन जाती है। जब तुम छोटे-छोटे होते हो, थोड़े-थोड़े होते हो, तो तुम्हारी सीमा होती है; जब तुम ओवरफ्लो होते हो, बहने लगते हो चारों तरफ कूल-किनारे तोड़ कर, तब तुम विराट हो जाते हो।
आत्मसात करो शक्ति को; छिद्रों से बाहर मत जाने दो। और लड़ो भी मत। कितनी देर टिकेगा क्रोध, यह कभी तुमने ख्याल किया? कितनी देर टिकेगा दुख? कितनी देर टिकेगा तुम्हारा सुख? सभी क्षणभंगुर हैं। तुम जरा रुको तो। वे अपने आप आते हैं और चले जाते हैं। तुम नाहक बीच में खड़े हो जाते हो। तुम अपने को हटा लो। सुबह होती है, सांझ होती है; ऐसे ही दुख आते हैं, सुख आते हैं। वर्षा होती है, ग्रीष्म होता है; ऐसे ही क्रोध आता है, दया आती है। वसंत है और पतझड़ है; ऐसे ही तुम्हारे मन के मौसम हैं। तुम जल्दी मत करो। सब अपने से आता है, चला जाता है। तुम्हारी कोई जरूरत ही नहीं है बीच में आने की। तुम थोड़े दूर खड़े होना सीख लो। जरा सा फासला, और बड़ी क्रांति हो जाती है।
तो भीतर के लिए भी यही रणनीति है।
"शत्रु की शक्ति को कम कर आंकने से बड़ा अनर्थ नहीं है। शत्रु की शक्ति
का अवमूल्यन मेरे खजाने को नष्ट कर सकता है। इसलिए जब दो समान बल की सेनाएं आमने-सामने होती हैं तब जो सदाशयी है, झुकता है, वही जीतता है, वही जयी होता है।"

बाहर के युद्ध के लिए भी शत्रु की शक्ति को कभी कम मत मानना। अन्यथा वही तुम्हारी हार बनेगी। शत्रु की शक्ति को अपने से ज्यादा ही मानना, तो ही तुम तत्पर रह सकोगे, तो ही तुम सजग रहोगे। जिसने शत्रु की शक्ति को कम मान लिया, वह हारने के रास्ते पर जा चुका।
लेकिन अहंकार हमेशा उलटा करता है। अहंकार अपनी शक्ति को बहुत मानता है; दूसरे की शक्ति को हमेशा कम करके मानता है। अहंकार खुद को तो फुला कर रखता है; दूसरे को सिकुड़ा कर देखता है। इसलिए अहंकार जगह-जगह पराजित होता है और दुख पाता है। विनम्रता सदा दूसरे को बड़ा मानती है। अपने को सदा छोटा मानती है। इसलिए अगर विनम्र आदमी से कभी कोई अहंकारी आदमी जूझ जाए तो अहंकारी हारेगा ही। उसके हारने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। इसलिए नहीं कि विनम्र उसे हराता है, बल्कि उसका अहंकार ही उसे हरा देता है।
मैंने सुना है कि एक राजनीतिज्ञ को एक जंगल में एक आदिवासी कौम ने पकड़ लिया। वह आदिवासी कौम नरभक्षी है। आदिवासी कौम का जो प्रधान था वह कभी-कभी राजधानी भी गया था उत्सवों में। गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, उसको निमंत्रण मिलते थे। वह अकेला आदमी था जो राजधानी होकर आया था। सारा कबीला तो उत्सुक था कि जल्दी से जल्दी इस राजनीतिज्ञ का भुरता बनाया जाए और खा लिया जाए। वे भूखे थे। बहुत दिन से आदमी नहीं मिला था। लेकिन वह कबीले का जो प्रमुख था वह उसकी बड़ी प्रशंसा और स्तुति कर रहा था कि तुम महान से महान नेता हो, तुम जैसा बुद्धिमान नेता संसार में कहीं भी नहीं है। असली में तुम्हीं को प्रधानमंत्री होना चाहिए। लेकिन लोग नासमझ हैं और तुमको अभी तक नहीं पहचान पाए।
आखिर लोग परेशान हो गए। एक ने आकर कान में कहा कि क्या बकवास लगा रखी है! हम भूखे हैं, इसका भुरता बनाएं। उसने कहा, तुम ठहरो। यह राजनीतिज्ञ है। पहले इसे फुला देने दो तो जरा यह ज्यादा बड़ा हो जाएगा, तो सब का पेट भर सकेगा। जरा बड़ा इसे कर लेने दो।
अहंकार को फुलाए जाओ, वह बड़ा होता जाता है। वह रबड़ के फुग्गों जैसा है। और उसे पता नहीं कि जितना बड़ा होगा उतना ही फूटने के करीब आ रहा है।
अहंकार अपने से ही टूटता है, किसी को तोड़ने की जरूरत नहीं। वह खुद आत्मघाती है।
लाओत्से कहता है, शत्रु की शक्ति को कम आंकने से बड़ा अनर्थ नहीं है। उससे तुम्हारा जीवन का खजाना नष्ट हो सकता है। इसलिए जब दो समान बल की सेनाएं आमने-सामने होती हैं, तब वही जीतता है जो सदाशयी है, झुकता है, विनम्र है।
विनम्रता में बड़ी सुरक्षा है; अहंकार में बड़ी असुरक्षा है। क्योंकि विनम्रता को तोड़ा नहीं जा सकता; अहंकार तो अपने आप ही टूट रहा है। तुम्हारे सहारे के बिना भी टूट जाएगा। तुम्हें तोड़ने की जरूरत भी नहीं है। अहंकार तो अपने आप ही जहर है। विनम्रता अमृत है।
यह बाहर के शत्रुओं के संबंध में तो सच है ही, भीतर के शत्रुओं के संबंध में भी सच है। तुम क्रोध को छोटा करके मत मानना, नहीं तो मुश्किल में पड़ोगे। बहुत लोगों ने माना और मुश्किल में पड़े हैं। तुम कामवासना को छोटा करके मत मानना। जिन्होंने माना वे झंझट में पड़ गए हैं। कामवासना बड़ी ऊर्जा है। सारी प्रकृति का खेल उसमें छिपा है। सारी प्रकृति की जीवन-धारा है काम-ऊर्जा, छोटा करके मत मानना। छोटा करके मानने वाले सब तरफ हैं। वे तुम्हें जगह-जगह मिल जाएंगे।
एक संन्यासी मेरे पास आए। वे कुछ दिन मेरे पास रुके। मैंने उनको कहा
कि तुम और सब तो ठीक है, मगर ये लकड़ी की खड़ाऊं घर में मत पहनो। दिन भर खटर-पटर! तुम जहां जाते हो यह तो बड़ा उपद्रव है। उन्होंने कहा, यह तो पहननी ही पड़ेगी; क्योंकि नहीं तो ब्रह्मचर्य खंडित हो जाएगा। मैंने कहा, क्या पागलपन की बात है! लकड़ी की खड़ाऊं से ब्रह्मचर्य का क्या लेना-देना? उन्होंने कहा, आपको पता होना चाहिए, मेरे गुरु ने बताया है, और ऐसी पुरानी धारणा है भारत में कि दोनों अंगुलियों के बीच में, अंगूठे और अंगुली के बीच में जब लकड़ी की खड़ाऊं पकड़ी जाती है, तो वहां कोई नस है, उस नस पर दबाव पड़ने से आदमी ब्रह्मचारी रहता है। कितना छोटा करके मान रहे हो तुम

ब्रह्मचर्य को और कामवासना को! तो मैंने उनसे कहा, तुझे ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ? उसने कहा, अभी हुआ तो नहीं इसीलिए तो खड़ाऊं छोड़ भी नहीं सकता। यह तर्क होता है भीतर। अभी हुआ नहीं। कितने दिन से खड़ाऊं पहनते हो? उसने कहा, कोई आठ साल हो गए। तो आठ साल में भी ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं हुआ। थक गया तेरा अंगूठा भी, नस भी अब तक जड़ हो चुकी होगी। और अगर नसबंदी ही करवानी है तो अस्पताल में जाकर करवा लो। खड़ाऊं का झंझट काहे के लिए लेकर चलना? छोटा करके मत मान लेना, नहीं तो तुम जो उपाय करोगे वे बहुत छोटे होंगे। और उन उपायों से तुम जो पाना चाहते हो वह बहुत बड़ा है। बहुत से लोग इसी तरह के उपाय कर रहे हैं। एक योगी को मैं जानता हूं, जो आएंगे तो वे पहले पूछते हैं कि इस जगह पर कोई स्त्री तो नहीं बैठी थी? मैं पूछा कि यह मामला क्या है? उन्होंने कहा, दस मिनट तक उस स्थान पर स्त्री की शक्ति, स्त्रैण-शक्ति की तरंगें रहती हैं, और उनसे ब्रह्मचर्य में खंडन हो जाता है।
अब यह पागल है। स्त्री बैठी थी, उस जगह बैठने में इनको घबराहट और डर है। और यह पूरी पृथ्वी स्त्री है। जहां बैठोगे वहीं स्त्री है। इसीलिए तो हम पृथ्वी को माता कहते हैं। और कैसे बचोगे तुम स्त्री से? स्त्री से पैदा हुए हो। तुम्हारे रोएं-रोएं में स्त्री है। जब एक बच्चे का जन्म होता है तो आधा तो दान बाप का होता है, आधा मां का होता है। तो तुम्हारा आधा शरीर स्त्री है, आधा पुरुष है। एक-एक कण में स्त्री और पुरुष छिपे हैं। और तुम कुर्सी पर बैठने में डर रहे हो और आधी स्त्री भीतर लिए चल रहे हो। जिसको तुम हिमालय चले जाओ, कैलाश, तो भी कोई उपाय नहीं है। वह तुम्हारे साथ ही रहेगी। तुम्हारे शरीर का कण-कण स्त्री-पुरुष के मेल से बना है। और इतने अगर डरे हुए हो कि दस मिनट पहले बैठी हुई स्त्री की तरंगें तुम्हें दिक्कत देंगी, तब तुम बच न पाओगे। सब तरफ स्त्रियां घूम रही हैं, तरंगें ही तरंगें हैं। जहां जाओगे वहीं स्त्रियां हैं, पुरुषों से थोड़ी ज्यादा ही हैं। कहां जाओगे? बचोगे कहां?
लेकिन तुमने शत्रु को छोटा करके मान लिया है। इसलिए तुम छोटे-छोटे उपाय कर रहे हो। तुम चम्मचों से सागर को खाली करने की कोशिश में लगे हो। यह कभी खाली न होगा।
भीतर की शक्तियों को भी छोटा करके मत मानना। क्रोध भी बड़ी विराट शक्ति है। इसीलिए तो जिंदगी भर कोशिश करके भी मिटता नहीं। रोज तय करते हो कि अब न करेंगे, और जब आता है तब बिल्कुल भूल जाते हो। जब आता है तब याद ही नहीं रहती। सब निर्णय, सब संकल्प मिट्टी हो जाते हैं। जब आता है तो झंझावात की तरह पकड़ लेता है। हां, जब चला जाता है तब तुम फिर बुद्धिमान हो जाते हो। फिर पछताने लगते हो कि यह गलती हो गई आज। अब दोबारा न करूंगा। और तुम यह भी नहीं सोचते कि यह बात तुम कितनी बार कह चुके हो कि दुबारा न करूंगा। कामवासना पकड़ती है तब तुम बिल्कुल पागल हो जाते हो। हां, जब कामवासना जा चुकी तब तुम्हें सब ब्रह्मचर्य की बातें याद आने लगती हैं। तब तुम सोचने लगते हो कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। उठा लेते हो किताबें और ब्रह्मचर्य के शास्त्र पढ़ने लगते हो और निर्णय करते होः बस अब यह आखिरी हो गया। और तुम कभी यह पूछते भी नहीं कि कितनी बार तुमने कहा कि यह आखिरी हो गया। और इतने बार हार कर भी, तुम्हारी बेशर्मी की हद है, कि तुम फिर-फिर वही कहे चले जाते हो कि अब की बार आखिरी हो गया। शरम भी नहीं आती। यह भी नहीं देख पाते कि कितनी बार पराजित हो चुके। फिर अब किस मुंह से यह निर्णय कर रहे हो। कम से कम यह मुंह ही बंद कर दो, यह निर्णय ही छोड़ दो।
एक बूढ़े आदमी ने कलकत्ते में मुझे कहा। वे एक बहुत अनूठे आदमी थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने चार बार ब्रह्मचर्य का निर्णय जीवन में लिया। एक मूरख सज्जन भी मेरे पास बैठे थे, वे बड़े प्रभावित हुए। मैंने कहा, तुम प्रभावित न होओ, पहले पूछो तो कि ब्रह्मचर्य का संकल्प भी चार बार लेना पड़ता है? तो पहली बार लिया उसका क्या हुआ? फिर दूसरी बार लिया उसका क्या हुआ? फिर तीसरी बार लिया उसका क्या हुआ? तुम इतने प्रभावित! वे चार बार से बहुत प्रभावित हुए, कि चार बार! मैंने कहा, यह चार बार का मतलब क्या होता है? और मैंने कहा कि तुम जल्दी मत करो, क्योंकि मेरा हिसाब कुछ और है।

मैं यह पूछता हूं कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? तो उन्होंने कहा, मैं इतना हार गया कि फिर मेरी हिम्मत ही न रही।
वह आदमी ईमानदार है। फिर मेरी हिम्मत न रही। चार बार बहुत हो गया। जब बार-बार हारना है और पराजय बार-बार होनी है, तो अब निर्णय भी किस मुंह से लेना? क्या सार है लेने का?
शक्ति को छोटी करके मत मानना। सब शक्तियां विराट हैं; क्योंकि सभी शक्तियां परमात्मा से ही आती हैं। सभी शक्तियां विराट हैं। चाहे ऊपर से तुम्हें लहर छोटी दिखाई पड़ती हो, नीचे तो सागर ही छिपा है। क्रोध भी उसका है, काम भी उसका है। तुम छोटा करके मत मानना। खड़ाऊंओं से हल न होगा।
जिस दिन तुम यह समझोगे कि यह सभी विराट का है, और सभी विराट है, उस दिन तुम लड़ाई तो उठाओगे ही नहीं। विराट से क्या लड़ना है? तब तुम दर्शक हो जाओगे, द्रष्टा हो जाओगे। और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर साक्षी हो जाता है, हट जाता है, लड़ाई नहीं करता, चुपचाप देखता है। जो भी विराट की लीला चल रही है उसका निरीक्षण करता है, बिना किसी निर्णय के। न तो कहता है यह बुरा है, न कहता है वह भला है। न तो ब्रह्मचर्य के पक्ष में है, न काम के पक्ष में है। देखता है कि क्या हो रहा है, कैसा यह खेल है! कि काम उठता है, अगर तुम उस बीच उसके साथ जुड़ जाओ, साक्षी-भाव खो जाए तो भोग लोगे; अगर उस बीच तुम उससे लड़ने लगो तो ब्रह्मचर्य का संकल्प कर लोगे। लेकिन अगर तुम सिर्फ देखते रहो, कर्ता बनो ही न, इधर न उधर, इस तरफ न उस तरफ, न पक्ष में न विपक्ष में, तो तुम एक बड़े अनूठे रहस्य पर पहुंचते हो; वही काम-ऊर्जा वापस तुम में समा जाती है। तुमसे ही उठी थी; वर्तुल पूरा हो जाता है। तुम उसका कोई उपयोग नहीं करते--न लड़ने में, न भोगने में। उपयोग ही नहीं होता। कामवासना फिर वापस अपने में समा जाती है। और जब कामवासना वापस तुम में समाती है तब तुम इतनी मधुरिमा से भर जाओगे, ऐसी मिठास उठने लगेगी पूरे व्यक्तित्व में, ऐसी गहन शांति का तुम्हें अनुभव होगा जो बिल्कुल अपरिचित है। कोई सुर बजने लगेगा तुम्हारे भीतर जब शक्ति तुम्हारी तुम में वापस लौट आती है।
वह मिलन है। उसी का नाम योग है। जहां से उठी शक्ति वहीं वापस मिल जाए, उसका नाम योग है। वह परम संभोग है। वहां तुमने अपने को ही अपने में भोग लिया। वहां एक ने एक को ही भोग लिया। वहां दूसरे की जरूरत न रही; वहां तुम्हें अपना ही स्वाद आ गया। और वह स्वाद इतना महान है कि सब स्वाद फीके पड़ जाते हैं। और वह नृत्य इतना अनूठा है। जब शक्ति तुममें नाचती हुई वापस लौट आती है, बिना संसार में खोए, बिना भोगी बने, बिना त्यागी बने, जब ऊर्जा तुममें वापस लौट आती है नाचती हुई, तब तुम मंदिर बन जाते हो।
उस घड़ी में जो घटता है उसका नाम समाधि है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ तेरहवां प्रवचन

मुझसे भी सावधान रहना

पहला प्रश्नः आपको देख कर मेरे मन में भाव उठता है कि मैं भी आप जैसी ऊंचाई को कभी छुऊं। क्या यह भी तुलना है? हीनता की ग्रंथि का परिणाम है?

दूसरे जैसे होने की आकांक्षा हीनता से ही जन्म पाती है; अपने जैसे होने की आकांक्षा आत्म-गरिमा से पैदा होती है। दूसरे जैसे तुम होना भी चाहो तो हो न सकोगे। कोई उपाय नहीं है। उस चेष्टा में तुम नष्ट ही होओगे। और जितने ही तुम नष्ट होओगे उतनी ही हीनता भरती जाएगी। जितनी हीनता होगी उतना तुम और दूसरे जैसे होना चाहोगे। एक दुष्टचक्र में फंस जाओगे।
दूसरे को प्रेम करो, श्रद्धा करो, सम्मान करो; लेकिन होना तो सदा अपने
ही जैसे चाहो। क्योंकि अन्यथा कोई गति नहीं है। तुम जैसा न कभी कोई हुआ है, न कभी कोई होगा। तुम बेजोड़ हो। और जब तक तुम अपने भीतर छिपे बीज को ही वृक्ष न बना लोगे तब तक कोई संतृप्ति नहीं होगी। तुम्हारी नियति पूरी होनी चाहिए। तुम मेरे जैसे होने को पैदा नहीं हुए हो। तुम किसी दूसरे जैसे होने को पैदा नहीं हुए हो। तुम तो बस तुम ही होने को पैदा हुए हो। बहुत से आकर्षण आएंगे जीवन में, लेकिन उन आकर्षणों को समझना, सीखना, लेकिन उन जैसे होने की कोशिश मत करना। उन सब आकर्षणों को, श्रद्धाओं को, प्रेमों को आत्मसात कर लेना, लेकिन बनना तो तुम तुम जैसे ही।
रिंझाई का गुरु मर गया था तो लोगों में बड़ी चर्चा थी। और रिंझाई को उत्तराधिकारी बना गया था गुरु। और रिंझाई गुरु जैसा बिल्कुल नहीं था। एक दिन लोग इकट्ठे हुए, और उन्होंने कहा कि तुम तो अपने गुरु जैसे बिल्कुल ही नहीं हो। न तुम्हारा व्यवहार वैसा है, न तुम्हारा आचार वैसा है, तो तुम कैसे उत्तराधिकारी हो? और किस आधार पर तुम्हें गुरु ने उत्तराधिकार दिया, यह हमारी समझ के बाहर है।
तो रिंझाई ने कहा, मेरे गुरु भी उनके गुरु जैसे नहीं थे, और मैं भी उन जैसा नहीं हूं। यही मेरे शिष्यत्व का अधिकार है। न मेरे गुरु किसी जैसे थे और न मैं अपने गुरु जैसा हूं। यही मेरे और मेरे गुरु में समानता है। यहीं से हम जुड़े हैं। इसलिए अपने जैसे शिष्यों को तो उन्होंने चुना नहीं; मुझे चुना है। क्योंकि उनके जैसे जो शिष्य हो गए थे वे तो नकली हो गए, वे कार्बन कापी हो गए। उनकी प्रामाणिकता खो गई। उनकी अपनी कोई आत्मा न रही। वे थोड़े उधार हो गए। उनका जीवन बाहर से नियंत्रित हो गया। किसी दूसरे की प्रतिमा के अनुसार उन्होंने अपना आयोजन कर लिया। उनका जीवन भीतर से नहीं फूटा; उन्होंने जीवन को बाहर से सीख लिया। वह अभिनय है; वह जीवन की वास्तविक खिलावट नहीं है।
आत्मा भीतर से बाहर की तरफ खुलती है; अनुकरण बाहर से भीतर की तरफ जाता है। अनुकरण तुम्हें नकली बना देगा। इसलिए बड़ी नाजुक बात है। और सब सीखना, नकल मत सीखना। हालांकि नकल सरल है, और सब कठिन है। नकल बिल्कुल आसान है; छोटे बच्चे कर लेते हैं; बंदर कर लेते हैं। आदमी की कोई गरिमा नहीं है नकलची होने में कोई बड़ा गौरव नहीं है। और सरल है इसलिए प्रलोभन है।
तुम ठीक मेरे जैसे उठ-बैठ सकते हो। मेरे जैसा भोजन कर सकते हो। मेरी जैसी बात कर सकते हो। उससे क्या होगा? उससे तुम किसी ऊंचाई को न पहुंच जाओगे। बल्कि जिस ऊंचाई पर तुम पहुंचने को पैदा हुए थे उससे वंचित हो जाओगे। नाजुक है बात, क्योंकि जो भी हमें प्रीतिकर लगते हैं, मन कहता है उन्हीं जैसे हो जाएं। इस प्रलोभन से बच जाना सबसे बड़ा काम है साधक के लिए। गुरु से भी सावधान होना जरूरी है। कहीं ऐसा न हो कि तुम उसके प्रभाव में इतने प्रभावित हो जाओ कि तुम अपनी नियति की जो गति थी उसे छोड़ दो और रास्ते से उतर जाओ। न तो मैं किसी जैसा हूं, न तुम्हें मेरे जैसे होने की कोई जरूरत है।
दूसरी बात, दूसरे जैसा होना हो तो चेष्टा करनी पड़ती है। स्वयं जैसे होने के लिए क्या चेष्टा करनी पड़ेगी? स्वयं जैसे तो तुम हो ही। लेकिन

तुमने कभी अपने को प्रेम नहीं किया। तुमने कभी अपनी आत्मा को कोई सम्मान भी नहीं दिया। तुमने कभी अपनी गरिमा को स्वीकार ही नहीं किया।
और सब धर्म, सब संस्कृतियां, सभ्यताएं, तुम्हें आत्म-निंदा सिखाते हैं। वे कहते हैं, तुम जैसा बुरा और कौन! साधु-संतों को सुनने जाओ, उनकी सारी चर्चा तुम्हारी निंदा से भरी है। तुम कीड़े-मकोड़े हो, तुम नारकीय हो। और तुम में जो कुछ है सब निंदा योग्य है। तुम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो स्वीकार के योग्य हो। काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, मत्सर है, तुम चारों तरफ नरक से घिरे हो। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी सिर्फ तुम्हारी निंदा ही कर रहे हैं। और सब तरफ से तुम्हें निंदा मिलती है। धीरे-धीरे तुम आत्मनिंदा से भर जाते हो। फिर तुम किसी और जैसे होना चाहते हो।
यह एक गहरा शड्यंत्र है। जब तक तुम्हें तुम्हारी निंदा से न भरा जाए
तब तक कोई भी व्यक्ति तुम्हारा अगुआ, नेता, गुरु न बन पाएगा। तो जिनको अगुआ बनना है, नेता बनना है, गुरु बनना है, वे पहले तुम्हारी निंदा करेंगे। वे पहले तुम्हें डगमगा देंगे; वे पहले तुम्हें हिला देंगे; तुम्हारे पैरों के नीचे की जमीन खींच लेंगे। जब तुम बिल्कुल कंप जाओगे, डरने लगोगे, घबरा जाओगे, अपने चारों तरफ नरक ही नरक दिखाई पड़ने लगेगा, तब तुम किसी के पैर पकड़ लोगे। इसी तरह तो इतने गुरु पलते-पुसते हैं। हजारों गुरुओं में कभी कोई एक गुरु होता है, नौ सौ निन्यानबे तो केवल तुम्हारी आत्मनिंदा से जीते हैं। तुमको भयभीत कर देते हैं, तुम्हें अपराध-भाव से भर दिया, अब तुम्हें पूछना ही पड़ेगा--मार्ग क्या है? अब तुम्हें नकल करनी ही पड़ेगी। क्योंकि तुम गलत हो और वह सही है।
मेरे पास तुम हो। तो मैं तुमसे यह कहने को नहीं हूं यहां कि मैं सही हूं और तुम गलत हो। मैं तुम्हें जरा भी तुम्हारे होने से नहीं डिगाना चाहता। मैं तो चाहता हूं कि तुम अपने होने में पूरी तरह से थिर हो जाओ। तुम्हारे भीतर का दीया जरा भी न कंपे; कितने ही बड़े झंझावात उठें, तुम अकंप रह सको। मैं तुम्हें तुम्हारे होने में मजबूत करना चाहता हूं। मैं तुम्हें और कोई अनुशासन नहीं देता, एक ही अनुशासन देता हूं कि तुम सदा सचेत रहना और अपने जैसे होने में लगे रहना। जो तुम्हारी निंदा करे, उसे तुम शत्रु समझना। वह शत्रु है, क्योंकि वह हीनता पैदा करेगा। और हीनता एक दफा पैदा हो गई कि तुम किसी का अनुसरण करोगे--कोई आदर्श, कोई प्रतिमा--किसी के पीछे चलने लगोगे। यह सीधा सा गणित है। पहले आदमी को डरा दो। डर जाए तो वह मार्ग पूछता है। पहले उसे घबड़ा दो। पहले तुम उसे इतना बुरा बता दो कि वह अपने से अतृप्त हो जाए। तब वह तुमसे पूछने लगेगा।
जो भी तुम्हारी निंदा करे, और जो भी तुम्हें चाहे कि तुम किसी और जैसे
हो जाओ, वहां से हट जाना। वह तुम्हारी हत्या करने को तत्पर है। हत्या बड़ी बारीक है, सूक्ष्म है। खून भी न बहेगा, और तुम कट जाओगे। कहीं आवाज भी न होगी, और तुम जन्मों-जन्मों के लिए भटक जाओगे।
तुम स्वयं परमात्मा की कृति हो। तुम्हें सुधारने का कोई भी उपाय नहीं है। कोई जरूरत भी नहीं है। तुम्हें सुधारने वालों ने ही तुम्हें इस दुर्दशा में पहुंचा दिया है। तुम सिर्फ अपने प्रति जागो। तुम अपने भीतर उसे खोज लो जो परमात्मा का दान है, प्रसाद है। तुम अपने खजाने से थोड़े परिचित हो जाओ।
तो मैं यहां तुम्हें कोई अनुकरण करने के लिए नहीं कह रहा हूं। अगर अनुकरण करना है तो अपने भीतर का; अगर कहीं जाना है तो अपने भीतर; अगर कहीं पहुंचना है तो अपने भीतर। तुम मुझसे सदा सावधान रहना। क्योंकि खतरा हो सकता है। मेरे बिना चाहे भी खतरा हो सकता है। क्योंकि तुम मुझे भी दूसरे गुरुओं जैसा ही सोचोगे। तुमने बहुत गुरुओं के पास बहुत कुछ सीखा है। वह कचरा तुम यहां भी ले आए हो। तो जब मैं तुमसे कुछ कहूंगा तो तुम उसी कचरे से उसकी व्याख्या करोगे। मैं यहां हूं कि तुम्हें तुम जैसा बनने में सहायता दे सकूं। और अगर जरा भी तुम्हें ऐसा लगे कि तुम मेरी नकल पर उतारू हो गए हो तो भाग खड़े होना, लौट कर पीछे मत देखना। क्योंकि नकल खतरनाक है। नकल से सावधान रहना। सब नकल हीनता की ग्रंथि से पैदा होती है। और तुम हीन नहीं हो। तुम्हारे पास सब है जो होना चाहिए। बस तुम्हें पता नहीं है। खजाने पर

बैठे हो, चाबी खो गई है। चाबी भी कहीं दूर नहीं खो गई है, कहीं तुम्हारे ही भीतर खो गई है। उसे खोज लेना है। तुम्हारा मार्ग परमात्मा से सीधा जुड़ा है। एक बार तुम भीतर उतरे कि तुम सीधे ही जुड़ जाते हो। तब तुम गुरु को धन्यवाद इसलिए नहीं देते कि उसने तुम्हें परमात्मा से मिला दिया, बल्कि इसलिए देते हो कि वह तुम्हारे और परमात्मा के बीच में खड़ा न हुआ, जब वक्त आया तो चुपचाप हट गया।
साधारण जिनको तुम गुरु कहते हो वे तुम्हें परमात्मा से मिलने न देंगे। बात वे परमात्मा के मिलाने की करेंगे, लेकिन सदा वे बीच में खड़े रहेंगे। वे दीवाल हैं, द्वार नहीं। जो भी किसी को कह रहा है कि मैं आदर्श हूं, मेरे जैसे हो जाओ, वह आदमी जहर फैला रहा है।
मेरा प्रेम है बुद्ध से, क्राइस्ट से, कृष्ण से, लाओत्से से। लेकिन उस प्रेम के कारण न तो मैं लाओत्से जैसा हो गया हूं, न बुद्ध जैसा, न क्राइस्ट जैसा। मैं हूं तो अपने जैसा। अगर मैं लाओत्से पर भी बोलता हूं तो मैं वही बोल रहा हूं जो मैं बिना लाओत्से के बोलता। लाओत्से तो बहाना है। पुरानी खूंटी है; काम योग्य है; कुछ टांगा जा सकता है। बल्कि कह तो मैं वही रहा हूं जो मैं कहूंगा; लाओत्से पैदा न भी हुआ होता तो भी कहता। मैं लाओत्से के बहाने अपने को ही कह रहा हूं। कृष्ण के बहाने भी अपने को कह रहा हूं। इसलिए यह कुछ पक्का मत समझना कि लाओत्से तुम्हें मिल जाए और तुम पूछो
कि मैंने ऐसा-ऐसा लाओत्से के संबंध में कहा है तो जरूरी नहीं कि वह राजी हो। आवश्यकता भी नहीं है। हो सकता है वह राजी न हो। कृष्ण से तुम पूछो कि मैंने जो गीता की व्याख्या की है उससे वे राजी हैं? जरूरी नहीं कि वे राजी हों। पूरी संभावना तो यह है कि वे राजी नहीं होंगे। क्योंकि वे उन जैसे, मैं मैं जैसा। जो मैं कह रहा हूं वह मैं ही कह रहा हूं। लाओत्से, कृष्ण, बुद्ध तो बहाने हैं। तुम ऐसा समझ ले सकते हो कि वे हुए हों, न हुए हों, कोई फर्क मुझे पड़ता नहीं।
तुम पूछ सकते हो कि मैं क्यों उनके नाम से कुछ कह रहा हूं?
प्रेम मेरा उनसे है। और वास्तविक प्रेम तभी संभव है जब तुम प्रेमी जैसे न हो जाओ। नहीं तो प्रेम खो जाएगा। क्योंकि दो व्यक्ति जब बिल्कुल एक जैसे हो जाते हैं तो दोनों के बीच का आकर्षण खो जाता है। शिष्य जब बिल्कुल गुरु जैसा हो जाएगा तो दोनों के बीच का आकर्षण खो जाएगा। आकर्षण तो होता है विरोध में; विरोधी ध्रुवों में आकर्षण होता है।
खलील जिब्रान ने कहा है कि तुम प्रेम तो करना, लेकिन प्रेमपात्र से एक
मत हो जाना। तुम प्रेम तो करना, लेकिन मंदिर के स्तंभों की भांति, जो दूर खड़े रहते हैं और एक ही छप्पर को सम्हालते हैं। स्तंभ करीब आ जाएं, छप्पर गिर जाएगा। फासला रखना।
गुरु के इतने पास होना, इतने पास होना जितने हो सको, फिर भी एक फासला रखना। अगर तुम अपनी आत्मा में थिर रहे तब तो फासला रहेगा। एक मंदिर तो बनेगा; तुम गुरु के साथ उस मंदिर को उठाने में एक स्तंभ हो जाओगे। लेकिन स्तंभ दूर-दूर होते हैं। एक ही छप्पर को सम्हालते हैं, लेकिन उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है।
जो गुरु शिष्य के व्यक्तित्व को मार दे, वह गुरु नहीं है। जो गुरु शिष्य के व्यक्तित्व को निखार दे, इतना निखार दे कि अब शिष्य अपने होने से तृप्त हो जाए, संतुष्ट हो जाए, वही गुरु है।
मुझे देख कर तुम्हारे मन में अभीप्सा उठे ऊंचाइयां छूने की, ठीक है।
लेकिन मेरी जैसी ऊंचाइयां नहीं; तुम्हारी जैसी ही ऊंचाइयां। मुझे देख कर तुम्हें अभीप्सा उठे परमात्मा को पाने की, लेकिन वह प्यास तुम्हारी हो। वह प्यास को तुम मेरे शब्दों में मत बांधना। तुम्हारा संगीत तुमसे उठेगा।
मेरे संगीत को देख कर तुम्हें अपने संगीत की याद आ जाए, बस काफी है। तुम भी खिलोगे, लेकिन तुमसे जो सुवास निकलेगी वह तुम्हारे ही फूल की होगी, वह मेरी नहीं होगी। मेरी सुवास से तुम्हें अपनी सुवास का भूला हुआ स्मरण आ जाए, विस्मृति हो गई है जिसकी उसकी स्मृति आ जाए, बस इतना काफी है।
जिस दिन तुम खिलोगे तो मेरे जैसी तुम्हारी सुवास नहीं होगी, तुम्हारी सुवास तुम्हारे जैसी होगी। होना भी यही चाहिए। पता नहीं तुम चंपा के फूल

हो; पता नहीं तुम चमेली के फूल हो; पता नहीं तुम कमल हो। पता नहीं तुम कौन हो। क्योंकि जब तक तुम्हारा बीज नहीं टूटा है, पता भी कैसे हो सकता है। बीज से तो पहचानना मुश्किल है। अनंत बीज हैं, और हर बीज का अपना ही फूल है। और वह एक ही बार खिलता है। फिर दोबारा इस पृथ्वी पर वह नहीं खिलेगा। इसलिए इस पृथ्वी को तुम उसकी सुगंध से वंचित मत करना। नकलची मत बन जाना।
दो शब्द हैं हमारे पासः अनुकरण और अनुसरण। अनुसरण तो करना गुरु का, अनुकरण मत करना। अनुसरण का मतलब हैः गुरु की प्रज्ञा, गुरु का बोध, गुरु की समझ को आत्मसात करना। अनुकरण का अर्थ हैः जैसा गुरु है, वैसा होने की कोशिश करना। शिष्य सीखता है; सीखता है अपनी ही नियति को पाने के लिए। सदगुरु तुम्हें अपने ढंग में नहीं ढालना चाहता, और सदशिष्य कभी किसी के ढंग में ढलना नहीं चाहता। ढंग तो तुम्हारा हो।
ऐसा हुआ, एक मुसलमान फकीर था, जुन्नून। इजिप्त में हुआ। वह कहा करता
था कि परमात्मा ने सभी चीजें पूर्ण बनाई हैं, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण ही पैदा हो सकता है। जैसा ईशावास्य उपनिषद में कहा है कि उस पूर्ण से पूर्ण ही पैदा होता है और फिर भी पीछे पूर्ण छूट जाता है, ऐसा जुन्नून भी कहा करता था कि परमात्मा ने हर चीज पूरी बनाई है। गांव में एक तार्किक था। तार्किक भी था, बड़ा पंडित भी था। वह एक दिन जुन्नून को सुनने आया। जुन्नून ने कहा कि परमात्मा ने हर चीज परिपूर्ण बनाई है। उस तार्किक ने कहा, रुको! वह एक आदमी को साथ ले आया था, एक कुबड़े को। जो बिल्कुल झुका जा रहा था, जिससे खड़े होते नहीं बनता था, जिसके हाथ-पैर तिरछे थे, जिसकी कमर बिल्कुल झुक गई थी। उसने कहा कि देखो इस आदमी को! यह भी पूर्ण है? और यह भी परमात्मा ने बनाया? जुन्नून हंसा और उसने कहा कि इससे पूर्ण कुबड़ा हमने कभी देखा ही नहीं। बहुत कुबड़े देखे; यह परिपूर्ण है।
परमात्मा ने परिपूर्ण से कुछ कम बनाया ही नहीं। तुम भी परिपूर्ण हो।
बस जरा याद दिलानी है, सुरति जगानी है। जरा सा होश सम्हालना है।
मेरे जैसे होने की भूल कर भी चेष्टा मत करना। वह तो तुम हो न पाओगे। और
उस होने में तुम जो हो सकते थे वह भटक जाएगा। तब तुम मुझे कभी क्षमा न कर पाओगे। मैंने कभी चाहा न था कि तुम मेरे जैसे होओ, लेकिन अगर तुम उसमें लग गए तो तुम मुझसे सदा नाराज रहोगे। तुम मुझे फिर कभी क्षमा न कर पाओगे। क्योंकि मैंने तुम्हारी एक जिंदगी खराब कर दी। ध्यान रहे, मैं अपने हाथ बिल्कुल खींचे लेता हूं; मेरी जिम्मेवारी बिल्कुल नहीं है। अगर कभी तुम पछताओ तो दोष मुझे मत देना। वह मैंने कभी चाहा ही नहीं था।
लेकिन नकल आसान है, मुफ्त मिल जाती है। क्या लगता है नकल में? बड़ी आसान है। और सस्ते को पकड़ने का मन होता है। मंहगे में तो मूल्य चुकाना पड़ेगा।
अगर तुम्हें मेरे जैसा होना है, तुम थोड़े दिन में ही कुशल हो जाओगे।
तुम्हें अगर अपने जैसा होना है तो तुम्हें अज्ञात की यात्रा करनी पड़ेगी।
मैं तो यहां मौजूद हूं। तो तुम मुझे देख सकते हो; उठना, बैठना, बोलना, सब सीख सकते हो। लेकिन तुम तो अभी मौजूद नहीं हो। तुम तो कभी मौजूद होओगे। अभी तुम बीज में छिपे पड़े हो। तो अभी तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम कौन हो, क्या हो, क्या होने की संभावना है। तो अज्ञात की यात्रा है। नक्शा साफ नहीं है। नक्शा है ही नहीं। रास्ते कहां हैं, कुछ पता नहीं है। एक-एक कदम चलना होगा और रास्ता बनाना होगा। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे बनेगी मंजिल; प्रकट होओगे तुम। और तब तुम मुझे धन्यवाद दे सकोगे। अगर तुम तुम ही हुए तो तुम मुझे धन्यवाद दे पाओगे, अगर तुमने नकल की तो तुम मुझे कभी क्षमा न कर सकोगे।

दूसरा प्रश्नः जीवन की गति वर्तुलाकार है, इस नियम से दिन और रात तथा माह और ऋतु की तरह क्या हम भी अपने को बार-बार मात्र दोहराते रहते हैं?

साधारणतः हां। जब तक तुम मूर्च्छित हो तब तक तुम प्रकृति के हिस्से हो, तब तक तुम ऋतु, वर्ष, माह, दिन और रात की तरह ही वर्तुलाकार भटकते रहते हो, वही-वही दोहरता रहता है बार-बार। इसीलिए तो हिंदुओं ने इसे जीवन का वर्तुल कहा है--संसार। संसार का अर्थ है चाक। बैलगाड़ी के चाक की तरह घूमते

रहते हो। कुछ नया नहीं होता। बहुत बार जन्मे, बहुत बार वही वासना, वही लोभ, वही तृष्णा, वही क्रोध। बहुत बार बूढ़े हुए, बहुत बार मरे। वही भय। फिर जन्मे। यह बिल्कुल चाक की तरह घूम रहा है--बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म, मृत्यु, फिर जन्म, फिर मृत्यु--इसमें कुछ भी नया नहीं हो रहा है।
लेकिन नया हो सकता है, अगर तुम जाग जाओ। क्योंकि जागते ही तुम प्रकृति
के हिस्से नहीं रह जाते, परमात्मा के हिस्से हो जाते हो। प्रकृति यानी सोया हुआ परमात्मा। परमात्मा यानी जागी हुई प्रकृति। बस इतना ही फर्क है। जैसे एक सोया हुआ आदमी और एक जागा हुआ आदमी। सोया हुआ आदमी भी जाग सकता है; जागा हुआ आदमी भी सो सकता है। कोई बुनियादी फर्क नहीं है।
लेकिन फर्क बड़ा है। घर में आग लगी हो तो सोया आदमी पड़ा रहेगा, जागा हुआ आदमी बाहर निकल जाएगा। घर में संगीत बज रहा हो तो सोया आदमी सोया रहेगा, उसे पता ही न चलेगा कि अमृत की वर्षा हो रही थी; जागा हुआ आदमी सरोबोर हो जाएगा। सूरज निकले, सोया हुआ आदमी सोया ही रहेगा, जैसे अभी रात ही है; जागा हुआ आदमी पक्षियों के कलरव को सुनेगा, सूरज की उठती प्रतिमा को देखेगा। वह सुबह का मनमोहक रूप सोए को पता ही न चलेगा; जागा ही पी सकेगा उस सौंदर्य को।
प्रकृति है अभी तुम्हारे भीतर। उसका अर्थ है, तुम अभी सोए हुए हो। तो अभी पुनरुक्ति होगी। प्रकृति पुनरुक्ति करती है। प्रकृति रिपीटीशन है। पत्ते गिर जाते हैं, फिर लौट आते हैं। सब वही का वही होता रहता है। प्रकृति में तुम कोई फर्क देखते हो? सब वही का वही होता रहता है। फिर सूरज निकलता है; फिर सांझ होती है।
लेकिन तुम्हारे भीतर संभावना है कि तुम जाग जाओ, तो तत्क्षण तुम इस चके के बाहर हो जाते हो। उसी को हम आवागमन के बाहर होना कहते हैं। तुम होश से भर जाओ, तत्क्षण चीजें बदल जाती हैं। फिर कल तक तुमने जो क्रोध किया था, तुम दोबारा आज न कर सकोगे। जागा हुआ आदमी कैसे क्रोध करेगा? यह तो ऐसे ही है जैसे जागा हुआ आदमी अपना हाथ आग में डाले। जागा हुआ आदमी क्यों अपना हाथ आग में डालेगा?
क्रोध आग से भी बदतर है। क्योंकि आग तो केवल हाथ को जलाती है, चमड़ी को जलाती है, क्रोध तुम्हारी अंतरात्मा तक को झुलसाता है और जलाता है। आग की पहुंच तो ऊपर ही ऊपर है, क्रोध का जहर तो तुम्हारे प्राणों के गहनतम में प्रवेश कर जाता है। जागा हुआ आदमी कैसे घृणा करेगा? क्योंकि घृणा करके तुम दूसरे को थोड़े ही नुकसान पहुंचाते हो, घृणा करके तुम अपने को ही नष्ट करते हो। घृणा आत्मघात है। घृणा का अर्थ है अपने को जहर देते रहना। दूसरे को नुकसान होगा कि नहीं होगा, यह गौण है। लेकिन जो आदमी घृणा में जीता है, वह धीरे-धीरे अपने भीतर मरता जाता है। घृणा धीमे-धीमे मौत की तरफ ले जाती है। जो आदमी जागा हुआ है वह कैसे तृष्णा करेगा? क्योंकि तृष्णा सिवाय दुख के और कहीं नहीं ले जाती।
पर यह जागे को दिखाई पड़ता है। उसके पास आंख है। वह देखता है कि यह रास्ता तो सिर्फ दुख में ले जाता है। तो क्यों अपने पैर उस पर उठाएगा? सोया हुआ आदमी, जैसे नशे में चल रहा हो, जैसे उसे पता न हो, कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है, बार-बार उन्हीं रास्तों पर चला जाता है। उन्हीं रास्तों पर जाना सुगम है सोए आदमी को। क्योंकि नये रास्ते पर जागरण की जरूरत पड़ेगी। पुराने रास्ते की आदत हो जाती है।
तुमने कभी ख्याल किया? तुम साइकिल से या कार से घर लौटते हो, तुम्हें याद नहीं रखना पड़ता कि अब बाएं घूमें कि दाएं घूमें। सोया हुआ शरीर सब करता रहता है। अचानक तुम पाते हो कि दफ्तर से दरवाजे के सामने खड़े हो। बीच का रास्ता यंत्रवत पूरा हो गया। तुम वहीं पहुंच जाते हो। इतनी बार आए-गए हो कि अब होश की कोई जरूरत नहीं। हां, घर बदल लो तो तुम्हें कुछ दिन होश से आना पड़ेगा। अगर होश से न आओ तो तुम पुराने घर पर पहुंच जाओगे।
दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी को चोट लग गई और उसकी स्मृति
खो गई, स्मृति बिल्कुल खो गई। उसे यह भी याद न रहा कि मेरा नाम क्या है। उसे यह भी याद न रहा कि मैं किस फौज का हिस्सा हूं। युद्ध के मैदान पर कहीं

उसका नंबर भी गिर गया जब उसे चोट लगी। तो बहुत मुश्किल हो गई कि वह कौन है। यही पता लगाना मुश्किल हो गया।
उसे पूरे इंग्लैंड में घुमाया गया--शायद कहीं याद आ जाए! बड़े-बड़े नगरों में ले जाया गया। वह जाकर खड़ा हो जाए, उसे कुछ याद न पड़े। लेकिन एक छोटे गांव पर--ट्रेन यूं ही रुकी थी, वहां तो उतारने का ख्याल भी न था--जैसे ही उसने गांव की तख्ती पढ़ी, कुछ हुआ। वह नीचे उतर गया। जो साथी थे उन्होंने रोकना भी चाहा कि तू क्या कर रहा है! लेकिन वह उतरा और भागा गांव के भीतर। जो उसे लेकर चल रहे थे वे उसके पीछे भागे। वह भागता हुआ एक दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया। उसने कहा, यह मेरा घर है। और सब याददाश्त वापस लौट आई। इतनी बार इस घर आया-गया था, इतनी बार इस स्टेशन के नाम को पढ़ा था, छिपी पड़ी थी कहीं मूर्च्छा में बात। जरूरत न पड़ी याद करने की। घर के द्वार पर खड़ा हो गया। पिता ने पहचान लिया कि मेरा लड़का है। सूत्र मिल गया। याददाश्त धीरे- धीरे वापस लौट आई।
तुम भी बिल्कुल भूल गए हो कि तुम कौन हो। और जन्मों-जन्मों में तुम बहुत जगह गए हो, बहुत यात्राएं की हैं। और उन यात्राओं में तुम अभी भी भटक रहे हो। कोई चाहिए जो सूत्र पकड़ा दे; तुम्हें थोड़ी सी याद आ जाए; तुम अपने घर के सामने खड़े हो जाओ। एक बार याद आ जाए तुम्हें भीतर के परमात्मा की, फिर सब धीरे-धीरे याद आ जाएगा।
समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं इसी बात की कोशिश हैं कि तुम्हें अपनी थोड़ी सी स्मृति आ जाए। किसी तरह शरीर से एक क्षण को भी तुम छूट जाओ, तो तुम प्रकृति से छूट गए। किसी तरह क्षण भर को मन बंद हो जाए तो तुमने इस भटकाव में जो शब्द और सिद्धांत और शास्त्र इकट्ठे कर लिए हैं, उनको तुम भूल गए। जिस क्षण शरीर और मन से तुम जरा सी देर को भी टूट गए उसी क्षण तुम अपने घर के सामने खड़े हो जाओगे। इतना तुम्हें पहचान में आ गया--यह घर है! फिर सब याददाश्त वापस लौटने लगेगी।
और जैसे ही तुम जागना शुरू हो जाते हो, घर को पहचान लेते हो, अपने को पहचान लेते हो, थोड़ा ही सही, एक किरण भी हाथ में आ जाए, तो सूरज तक पहुंचने का रास्ता खुल गया। फिर तुम्हारे जीवन में पुनरुक्ति बंद हो जाएगी। फिर तुम्हारे जीवन में हर घड़ी नयी होगी। प्रकृति तो पुरानी है; वर्तुलाकार घूमती रहती है। परमात्मा सदा नया है। तुम भी सदा नये होने की क्षमता रखते हो। और तब प्रतिपल नया होगा। सुबह वही होगी, लेकिन तुम्हारे लिए वही नहीं होगी। सांझ वही होगी, लेकिन तुम्हारे लिए वही नहीं होगी। क्योंकि तुम नये होओगे। और जब तुम नये होते हो तो तुम्हारी दृष्टि बदल जाती है। दृष्टि बदलती है तो सारी सृष्टि बदल जाती है। नये होने की कला तुम्हें सीखनी पड़ेगी। अन्यथा तुम पुनरुक्त हो रहे हो; मशीन की तरह ही चल रहे हो। मशीन नया कर भी नहीं सकती।
पश्चिम में बड़े महत्वपूर्ण कंप्यूटर निर्मित हुए हैं। एक आदमी को जो गणित हल करने में सौ साल लगें, वे एक सेकेंड में कर सकते हैं। ऐसे सवाल जिनको कि तीन हजार वैज्ञानिक हजार साल में पूरा कर पाएं, वे एक सेकेंड में हल कर देते हैं। लेकिन कंप्यूटर नया कुछ भी नहीं कर सकता। तुमने जो उसे पहले सिखा दिया है वही कर सकता है। उससे रत्ती भर नया नहीं कर सकता। कंप्यूटर की खोज से ऐसा लगा था कि हमने आदमी से भी बड़ा मस्तिष्क खोज लिया। क्योंकि आदमी के मस्तिष्क की सीमा है, कंप्यूटर की कोई सीमा नहीं है। सारी दुनिया की पुस्तकें एक कंप्यूटर में भरी जा सकती हैं। और तुम कहीं से भी सवाल पूछ लो, कंप्यूटर जवाब दे देगा। वेद हो, कि कुरान, कि बाइबिल, कि लाओत्से, कि महावीर, कि बुद्ध, कि कृष्ण, सारे ग्रंथ एक कंप्यूटर में रखे जा सकते हैं। और कंप्यूटर इतना छोटा कि तुम अपनी जेब में रख ले सकते हो। और तुम जब चाहो, जो पूछना चाहो, तत्क्षण--एक सेकेंड की भी झिझक नहीं होती-- कंप्यूटर जवाब दे देगा। लेकिन फिर भी कंप्यूटर एक काम नहीं कर सकता और वह यह कि नया--नया एक शब्द कंप्यूटर नहीं ला सकता। जो उसे दिया गया है, उसको दोहरा देगा।
तो वैज्ञानिक पहले बड़े प्रसन्न हुए थे, फिर बड़े उदास हो गए। क्योंकि मनुष्य के मस्तिष्क की गरिमा उसका संग्रह नहीं है; उसके नये को--एकदम नये

को--पहचान लेने की क्षमता, एकदम नये को जन्म देने की क्षमता, एकदम मौलिक को प्रारंभ करने की क्षमता है। वह कोई यंत्र कभी भी न कर पाएगा। यंत्र कर कैसे सकता है? जो हमने उसे सिखा दिया वही कर सकता है।
अगर तुम भी वही कर रहे हो जो तुम्हें समाज ने सिखा दिया, अगर तुम भी वही कर रहे हो जो प्रकृति ने तुम्हारे भीतर, तुम्हारे क्रोमोसोम में, तुम्हारे मूल कोष्ठों में जिसका ब्लू-प्रिंट रख दिया, अगर तुम भी वही कर रहे हो तो तुम भी यंत्र हो। मनुष्य अभी पैदा नहीं हुआ।
गुरजिएफ कहा करता था कि मैं इस सिद्धांत को नहीं मानता कि हर आदमी के भीतर आत्मा है। उसकी बात में थोड़ी सचाई है। वह कहता था, अधिक लोग तो यंत्र हैं, कभी किसी आदमी में आत्मा होती है। अधिक लोग तो मशीन हैं, मनुष्य नहीं हैं।
और वह ठीक कह रहा है। क्योंकि जहां तक सौ में निन्यानबे आदमियों का संबंध है, वे यंत्रवत जी रहे हैं, उनको आत्मवान कहना व्यर्थ ही है। कहते हैं आत्मवान उनको हम उनकी संभावना के कारण, उनकी वास्तविकता के कारण नहीं। वास्तविकता तो यंत्रवत है।
लड़का जवान हुआ; उसकी काम-ऊर्जा पक गई; अब उसके मन में स्त्री का ख्याल उठने लगा। यह तुम नहीं कर रहे हो। यह तो तुम्हारे शरीर के कोष्ठों में छिपा हुआ है; वे कोष्ठ ही तुमसे करवा रहे हैं। यह तो तुम्हारे शरीर के भीतर दौड़ते हुए हारमोन तुमसे करवा रहे हैं। तो बूढ़े आदमी को भी अगर हारमोन के इंजेक्शन दे दिए जाएं तो वह फिर से काम-ऊर्जा से भर जाता है पागल की तरह। अगर जवान आदमी से भी उसके सारे सेक्स के हारमोन निकाल लिए जाएं तो वह नपुंसक हो जाता है, उसके मन से वासना उठ जाती है; दौड़ नहीं रह जाती, शिथिल हो जाता है।
यही तरकीब तो उपवास करने वालों ने खोज ली थी। ज्यादा देर उपवास करो तो ऊर्जा काम-कोष्ठों को नहीं मिलती; नहीं मिलती तो वासना नहीं मालूम पड़ती। तो शरीर को ऐसा रखो कि बस काम के लायक शक्ति मिले, उससे ज्यादा नहीं, तो काम-ऊर्जा अपने आप क्षीण हो जाती है। लेकिन जिस दिन भोजन करोगे ठीक से उस दिन वापस लौट आएगी। तो धोखा तुम किसी को दे नहीं पाओगे; अपने को ही दे रहे हो।
अभी तो तुम्हारा जीवन बिल्कुल यंत्रवत है। काम पकड़ लेता है तो तुम पकड़े गए। तुम जानते भी नहीं, कहां से काम पकड़ लेता है। तुम्हारे ही कोष्ठों में, रोएं-रोएं में छिपा है काम। क्रोध पकड़ लेता है, वह भी तुम्हारे रोएं-रोएं में छिपा है। हिंसा पकड़ लेती है तो तुम्हें लगता है कि जैसे तुम पजेस्ड हो, किसी ने तुम्हारे ऊपर हावी हो गया और तुमसे कुछ करवा रहा है। और तुम्हें करना पड़ता है। तुम न करो तो बेचैनी; करके तुम पछताते हो। तुम यंत्रवत हो, मूर्च्छित हो। इसलिए तुम दोहरते रहोगे। यह दोहराव बिल्कुल ही व्यर्थ है। यह पुनरुक्ति कहीं भी नहीं ले जाती, चाक घूमता रहता है अपनी ही जगह पर।
तुम थोड़ा जागो। और मजे की बात यह है कि जागना तुम्हारे शरीर में कहीं
भी छिपा हुआ नहीं है; जागना कहीं और से आता है। जागने की क्षमता तुम्हारे मन की भी क्षमता नहीं है, तुम्हारे शरीर की भी क्षमता नहीं है। वही जागने की क्षमता तुम्हारी आत्मा की क्षमता है। जागते ही तुम आत्मवान हो जाते हो।
तो जब क्रोध आए तो तुम क्रोध की कम फिक्र लो, जागने की ज्यादा फिक्र लो। क्रोध को जाग कर देखो। कामवासना आए तो कामवासना की चिंता मत लो, जाग कर कामवासना को देखो। जाग कर तुम दूर हो रहे हो; एक फासला पैदा हो रहा है। जब भी तुम्हारे भीतर कोई वासना तुम्हें पकड़ ले तब तुम जागने की कोशिश करो। कठिन होगा। मुझसे लोग कहते हैं कि आप कहते हैं क्रोध में जागो; क्रोध में तो हमें याद ही नहीं रह जाती। धीरे-धीरे रहेगी। कोशिश करोगे तो आएगी। क्योंकि बुद्ध को आई, कृष्ण को आई, क्राइस्ट को आई। कोई कारण नहीं तुम्हें क्यों न आए? क्योंकि तुम भी उसी बीज से बने हो। जब दूसरे वृक्ष बड़े हो गए, बीज टूट गए और फूल खिल गए, तो तुम्हारा बीज भी फूट सकता है। सतत श्रम की जरूरत है। सतत पहरेदारी रखनी पड़ेगी। आज नहीं होगा, कल होगा। कल नहीं होगा,

परसों होगा। एक काम तुम करते ही रहोः कुछ भी स्थिति हो, जागने की कोशिश करते रहो। एक दिन अचानक तुम पाओगे, बात घट गई। अचानक सौ डिग्री तक जागना आ गया, एक विस्फोट हो गया। और जिस दिन जागरण का विस्फोट होता है, उससे अनूठी कोई घटना इस संसार में नहीं है। जैसे हजार-हजार सूर्य एक साथ निकल आए हों! श्री अरविंद ने कहा है कि जब जागा तब पाया कि जिसे अब तक प्रकाश समझा
था वह तो महा अंधकार है, और जिसे अब तक जीवन समझा था वह तो मृत्यु की पुनरुक्ति है। जब जाना जीवन तब यह पहचान आई। जब जाना असली प्रकाश को तब पहचान आई कि जिसको हम अब तक प्रकाश समझते थे वह तो कुछ भी नहीं है।
और जब यह जागरण आता है तब तुम्हें अपने स्वरूप की पहली दफा प्रतीति होती है। उस प्रतीति को शब्दों में कहने का कोई उपाय नहीं।
चेष्टा करो! बुद्ध के आखिरी क्षण, विदा होते समय के शब्द हैं कि आनंद, चेष्टा में सतत संलग्न रहना! एक क्षण को प्रमाद न करना! जरा भी सुस्ती को मत भीतर बैठने देना! क्योंकि जरा सी सुस्ती, और बहुत कुछ खो जाता है। तू श्रम करते ही रहना जब तक कि जाग ही न जाए, तब तक मानना अपने लिए कोई चैन नहीं है। अथक श्रम करना!
बहुत चोट करनी पड़ेगी तभी यह अंधेरा टूटेगा; क्योंकि अंधेरा कितने दिनों से तुमने सम्हाल रखा है। पत्थर की तरह जड़ हो गई है तुम्हारी अवस्था। पर्त बहुत मजबूत हो गई है। आत्मा भीतर छिपी है, झरना भीतर है, लेकिन द्वार बंद हो गए हैं। चोट करने से द्वार टूटेंगे। सतत चोट करने से द्वार टूटेंगे। धीमी ही चोट क्यों न हो, सतत चाहिए। पानी गिरता है, धीमी-धीमी चोट करता है, चट्टानें टूट जाती हैं। तो तुम्हारी स्मृति की जलधार गिरती रहे तुम्हारे यंत्रवत चट्टानों पर, आज नहीं कल चट्टानें टूट जाएंगी। आज लगेगा कि जलधार इतनी कोमल है, इतनी सख्त चट्टानों को कैसे तोड़ेगी? लेकिन सतत जलधार भी अगर सतत बनी रहे तो बड़े से बड़े पहाड़ टूट जाते हैं। पत्थर कमजोर है, सातत्य के सामने कमजोर है।
लेकिन तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। एक दिन प्रयास करते हो, दस दिन आराम करते हो। फिर एकाध दिन जोश चढ़ जाता है, फिर एकाध दिन प्रयास कर लेते हो, फिर दस दिन आराम कर लेते हो। ऐसे बनाते हो, मिटा देते हो। स्थिति वही की वही बनी रहती है। हर बार बनाते हो, हर बार मिटा देते हो। पानी सींच देते हो एक दिन, दस दिन फिक्र नहीं करते। तब तक वृक्ष कुम्हला जाता है, सूख जाता है। फिर बीज बोते हो, फिर थोड़ी साज-सम्हाल करते हो, फिर भूल जाते हो।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि बड़ा आनंद आ रहा था ध्यान में, लेकिन फिर टूट गया।
मैं समझ ही नहीं पाता कि जब आनंद आ रहा था तो फिर क्यों टूट गया? और वे ठीक कह रहे हैं कि आनंद आ रहा था। लेकिन आनंद के लिए भी तुम्हारी चेष्टा सतत नहीं रह पाती। मन हजार बातें सुझा देता है। मन कहता है, आज सुबह सो जाओ, कल कर लेना।
मन बहुत कुशल है कल का आश्वासन देने में। और कल कभी आता नहीं। जो आता
है वह आज है। करना हो तो आज कर लेना। न करना हो तो कल पर टाल देना। और क्या पा लोगे? अगर एक घड़ी बिस्तर में आज और पड़े रहे तो कितना मिल जाएगा? बिस्तर में कितने दिन तो पड़े रहे हो। जिंदगी ऐसे ही तो बिताई हैं बहुत सी। साठ साल जीओगे तो बीस साल तो बिस्तर में ही पड़े रहोगे। और एक घड़ी ज्यादा पड़े रहने से क्या मिल जाएगा? उठ आओ! मत सुनो मन की!
और मन तभी तुमसे कहना शुरू करता है जब देखता है, अब खतरा है। एक सीमा
तक मन बिल्कुल फिक्र नहीं लेता। तुम करते रहो ध्यान; मन को कोई चिंता नहीं है। लेकिन जहां मन देखता है कि अब चोट इतनी पड़ रही है कि टूटने की संभावना है, वहीं मन पच्चीस उपाय खोज देता है। तुम पच्चीस तरकीबें निकाल लेते हो कि आज तबीयत ठीक नहीं है, कि शरीर स्वस्थ नहीं है।
यह शरीर जाएगा; स्वस्थ रहे, अस्वस्थ रहे; चिता पर चढ़ेगा। इसे तुम हमेशा चिता पर चढ़ा हुआ समझो। ध्यान ही बचेगा। तो शरीर न हो ठीक तो भी ध्यान को मत छोड़ो; क्योंकि हो सकता है मन सिर्फ तरकीब निकाल रहा हो कि शरीर ठीक नहीं है।

और मन की तरकीबों का अंत नहीं है। ऐसे तुम दिन भर रहे आते हो, न चींटी काटती है, न हाथ-पैर में खुजलाहट उठती है, न खांसी आती है; ध्यान करने बैठे, सब शुरू।
यह बहुत हैरानी की बात है कि चौबीस घंटे यह आदमी ठीक था; ध्यान करने बैठता है, लगता है चींटियां चढ़ रही हैं, पैर में खुजलाहट आ रही है, अब यह गर्दन दुखने लगी, अब यहां यह होने लगा, वहां वह होने लगा। और तुम्हें पता है कि तुमने कई बार आंख खोल कर भी देखा है, वहां चींटी नहीं है। पैर पर कोई चढ़ ही नहीं रहा है। मन धोखे दे रहा है। मन कह रहा है कि हिलो, क्योंकि तुम्हारे हिलने में मन का जीवन है, और तुम्हारे थिर हो जाने में मन की मृत्यु है। तो मन अपने को बचा रहा है।
और क्या हर्जा है? चींटी अगर चढ़ भी गई तो क्या हर्जा है? काट ही लेगी
तो क्या बिगड़ जाएगा? तुम कभी सोचते ही नहीं कि दांव पर क्या लगा है? पैर पर काट ही लेगी चींटी तो काट लेगी। क्या बिगड़ जाएगा?
लेकिन तुम ध्यान खोने को राजी हो, चींटी के काटने को सहने को राजी नहीं हो। इतनी सी भी कीमत न चुकाओगे जागने के लिए! अगर कमर में थोड़ा दर्द हो रहा है तो होने दो। कमर का ही दर्द है; कोई बहुमूल्य खजाना दांव पर नहीं लग गया है। ध्यान के बाद विश्राम कर लेना थोड़ा। नहीं लेकिन, कमर में दर्द है तो तुम ध्यान, परमात्मा सब भूल जाते हो। तत्क्षण कमर का दर्द सब कुछ हो जाता है। यह मन तुम्हें अटका रहा है। मन तुम्हें कह रहा है कि शरीर से लगे रहो। शरीर में हजार उत्पात पैदा कर रहा है।
मत सुनो। उपेक्षा करो। कह दो कि ठीक है, यह शरीर जाएगा, यह तो चिता पर चढ़ेगा। चींटी ने काटा तो चढ़ेगा, न काटा तो चढ़ेगा। कमर में दर्द रहा तो चढ़ेगा, न रहा दर्द तो चढ़ेगा। इसकी अब हम बहुत चिंता नहीं ले रहे हैं। मन से कह दो कि तू बकवास बंद कर। अपने मन से बात करना शुरू करो। उसे कहना शुरू करो कि जो हमने निर्णय किया है वह हम करेंगे, तू बीच-बीच में मत आ।
और अगर तुमने उससे ठीक से बात की तो तुम चकित हो जाओगे, अगर तुमने बलपूर्वक बात की तो वह बीच में आना बंद हो जाता है। गुलाम गुलाम है। मुंह लगा गुलाम है, बस इतनी ही बात है। बहुत उसकी सुनी है तो वह सुनाता है, वह रास्ते बताता है। तुम एक दफा कह दो कि चुप हो जाओ! तो मन चुप हो जाता है। कह कर देखो। बलपूर्वक कह कर देखो। ऐसे डरे-डरे मत कहना, ऐसा मत कहना कि हमें मालूम तो है कि वह चुप होगा नहीं। तो तुम कह ही नहीं रहे हो। कह दो कि चुप हो जाओ! अगर तुमने ठीक से कहा, तुम पाओगे, तत्क्षण मन चुप हो जाता है। मन तुम्हारा गुलाम है, तुम्हारा यंत्र है; तुम मालिक हो। अपनी मालकियत की घोषणा करो। यह कोई दमन नहीं है मन का, यह सिर्फ मालकियत की घोषणा है। यह सिर्फ यह कहना है कि मैं मालिक हूं, निर्णायक मैं हूं; तेरा काम मेरे निर्णय में साथ पहुंचाना है। जल्दी ही तुम पाओगे, मन हट जाता है।
मन के हटते ही शरीर के उत्पात बंद हो जाते हैं, और जागरण की धीमी-धीमी ज्योति उठनी शुरू हो जाती है। गहन अंधकार के बाद जैसे सुबह, मरुस्थलों में भटकने के बाद जैसे अचानक मिल गया मरूद्यान, ऐसा ही वह जागरण है। हजारों- हजारों जन्मों तक धूप में चलने के बाद जैसे मिल गई वृक्ष की छाया, ऐसा ही शीतल वह जागरण है। प्यासे को जैसे पानी, भूखे को जैसे भोजन, ऐसी ही आत्मा की प्यास के लिए वह जलस्रोत है।
और एक बार तुम्हें उस जलस्रोत की थोड़ी सी भी समझ आ जाए कहां है, तब तुम पाओगे कि तुम चाहे बाहर से कितने ही भिखारी हो, भीतर से तुम सम्राट हो। और बाहर से प्रकृति ने तुम्हें घेरा है, लेकिन भीतर से तुम परमात्मा हो। जैसे हर मिट्टी के दीये में ज्योति है ऐसे हर मिट्टी की तुम्हारी देह में परमात्मा की ज्योति है। लेकिन तुम मिट्टी के दीये से इतने उलझे हो कि तुम्हें याद ही नहीं आती कि ज्योति भी है। मिट्टी का दीया ज्योति को सम्हालने को है, लेकिन मिट्टी के दीये को सम्हालने में तुम ज्योति को भूल गए हो।
स्मरण करो ज्योति का! और ज्योति के स्मरण का अर्थ है, चौबीस घंटे कुछ
भी करो, एक काम भीतर जारी रखो कि जाग कर करेंगे। साइकिल चला रहे हो रास्ते पर, जाग कर चलाओ। और तुम फर्क अनुभव करोगे फौरन। अगर तुम जाग कर चलाओगे,

तुम पाओगे तत्क्षण पूरे शरीर की दशा बदल गई। भोजन कर रहे हो, जाग कर करो। तत्क्षण तुम पाओगे, गुण बदल गया, भीतर की चेतना का गुण और हो गया। एक हलकी शांति, एक सौम्यता, एक मधुरिमा तुम्हें घेर लेगी।
अन्यथा तुम यंत्र हो। अभी तो तुम यंत्र हो। अभी मनुष्य होना नाममात्र
को है। मनुष्य होने का अर्थ तो है जागना, पुनरुक्ति को तोड़ देना, मौलिक में प्रवेश, नये में--शाश्वत नये में--पदार्पण।

तीसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि जो तुम हो उस यथार्थ स्थिति को अनाक्रामक ढंग से, बिना निंदा-स्तुति के देखो। लेकिन मेरी वह स्थिति इतनी भयावह है कि उस ओर आंख उठाना कठिन हो जाता है। क्या बताने की कृपा करेंगे कि इस भय से पहले कैसे निपटा जाए?

कोई स्थिति इतनी भयावह नहीं है कि तुम आंख उठा कर न देख सको। और आंख उठा कर देखो या न देखो, इससे स्थिति तो बदलती नहीं है। वह भयावह है तो है। वस्तुतः उसे भयावह कहना भी व्याख्या है। क्यों कहते हो उसे भयावह? मन में कामवासना है; क्यों कहते हो भयावह? क्या भय है? देखने में क्या डर है? भीतर नरक ही क्यों न उबल रहा हो, देखने की क्षमता तो जुटानी ही पड़ेगी। क्योंकि वही उसके ऊपर उठने का मार्ग है।
अब तुम पूछते हो कि भय से पहले कैसे निपटा जाए?
बिना देखे तो किसी चीज से निपटा नहीं जा सकता। तुम ऐसी बातें पूछ रहे
हो कि बिना पानी में उतरे तैरना कैसे सीखा जाए? पानी में तो उतरना ही पड़ेगा। तैरना सीखना तभी संभव हो पाएगा। मत उतरो बहुत गहरे में, लेकिन पानी में किनारे तो उतरो। गले-गले तक जाओ, लेकिन थोड़ा जाओ तो, हाथ-पैर तड़फड़ाओ। थोड़ा सीखो, उथले में ही सीखो; जब सीख आ जाएगी तो फिर तुम गहरे में भी जा सकोगे। लेकिन अगर तुमने यह तय कर लिया कि हम तो पहले तैरना सीखेंगे फिर पानी में उतरेंगे, तब फिर बड़ी मुश्किल है। फिर कोई उपाय नहीं है।
भय से पहले निपटोगे तुम कैसे? कौन निपटेगा? तुम ही तो भय हो, तुम ही कंप रहे हो, अब निपटेगा कौन? जागो और भय को देखो, ताकि तुम भय से अलग हो जाओ। न जागोगे, न भय को देखोगे, तो अलग न हो सकोगे। जो अलग हो जाता है वही तो निपट सकेगा। और मजा यह है कि जो अलग हो जाता है उसे निपटने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। अलग होना ही सूत्र है। तुम जिस मनोदशा से अलग हो गए वही मिट जाती है। क्योंकि तुम्हारे सहारे के बिना कोई मनोदशा जी नहीं सकती। कामवासना है। तुम अलग हो गए, तुमने अपने को दूर खड़ा कर लिया और कहा कि मैं साक्षी हूं, देखूंगा। बस, प्राण निकल गए कामवासना के। क्योंकि तुम्हारा ही सहारा था। तुमसे ही तो ऊर्जा मिलती थी। तुम्हीं दूर खड़े हो गए। कितनी देर कामवासना चलेगी? कुछ पुरानी ऊर्जा थोड़ी बहुत पास होगी, थोड़ी बहुत देर में समाप्त हो जाएगी। तुम पाओगे, काम-ऊर्जा पड़ी है; जैसे सांप निकल गया और उसकी पुरानी चमड़ी पड़ी रह जाती है, वैसी पड़ी है, उसमें कोई प्राण नहीं है। जैसे कारतूस चला हुआ पड़ा है, उसमें अब कुछ प्राण नहीं है। प्राण कौन देता है? तुम्हारे भय के भी तुम्हीं तो जन्मदाता हो। बस, दूर होना कला है।
देखना ही पड़ेगा। कितनी ही भयावह स्थिति हो, आंख खोलनी ही पड़ेगी। तुम कहो कि आंख बिना खोले भय मिट जाए; मुश्किल है। क्योंकि आंख बंद करने के कारण ही तो भय है। तुम आंख खोलो, देखो चारों तरफ; भय नहीं है।
और भयभीत तुम्हें कर दिया है धर्मगुरुओं ने। क्योंकि हर चीज की निंदा
कर दी है; हर चीज को निंदित कर दिया है। इसलिए भय स्वाभाविक है। तुम जो भी करो वही पाप मालूम पड़ता है। और जब सब तरफ पाप मालूम पड़ता है तो तुम कंपते हो, डरते हो, घबराते हो। नरक निश्चित है। तुम सोच भी नहीं सकते कि तुम स्वर्ग कैसे जाओगे! धर्मगुरुओं ने जो व्यवस्था दी है उसमें तुम्हारा नरक निश्चित है। अगर वह व्यवस्था सच है तो स्वर्ग कोई कभी पहुंचा होगा, यह भी संदिग्ध है। सब निंदित है। तो तुम घबरा ही जाओगे।

मैं तुमसे कहता हूं, कुछ निंदित नहीं है; सभी स्वीकृत है। और जिन्हें तुम निंदा करके पा रहे हो कि राह के पत्थर हैं, वे पत्थर नहीं हैं, वे राह की सीढ़ियां हैं।
कामवासना के दो रूप हैं। राह पर पत्थर पड़ा हो। एक तो यह रूप है कि तुम वहां जाकर अटक जाते हो। अब वहां से आगे कैसे जाएं? दूसरा कामवासना का यह रूप है कि तुम पत्थर पर चढ़ जाते हो, पत्थर को सीढ़ी बना लेते हो। तो अब तक तुम चल रहे थे जिस तल पर, अब तुम्हारा तल ऊपर हो जाता है।
नासमझ सीढ़ियों को पत्थर समझ लेते हैं; समझदार पत्थरों को सीढ़ियां बना लेते हैं। इतना ही फर्क है समझदारी और नासमझी में। तुम्हें पता ही नहीं कि अगर तुम कामवासना को सीढ़ी बना लो तो वही ब्रह्मचर्य बन जाएगी। क्रोध को सीढ़ी बना लो, वही करुणा हो जाएगा। तो क्रोध में करुणा छिपी है। क्रोध तो ऊपर की खोल है, भीतर तो करुणा ही छिपी है। कामवासना तो ऊपर की खोल है, भीतर तो ब्रह्मचर्य ही छिपा है।
थोड़ा सोचो, अगर कामवासना न होती तो तुम ब्रह्मचर्य को कैसे उपलब्ध होते? और ब्रह्मचर्य के आनंद को कैसे उपलब्ध होते अगर कामवासना न होती? तो तुम कामवासना को कामवासना की तरह मत देखो। तुम उसे ब्रह्मचर्य का ही एक कदम समझो।
अगर क्रोध न होता तो तुम करुणा को कैसे उपलब्ध होते? कहो, कोई उपाय है? कोई उपाय नहीं है। क्रोध ही तो करुणा बनेगा। तो तुम क्रोध को क्रोध की तरह क्यों देखते हो? तुम उसके, क्रोध के पूरे विस्तार को क्यों नहीं देखते कि वही अंत में करुणा बन जाता है।
तुम्हारी हालत वैसी है जैसे कोई आदमी खाद को भर कर बगीचे में लाए तो उसमें से बदबू आती है। खाद है सड़ा हुआ, सड़ी गंध उससे उठती है। तुम अगर उतना ही देख लो और समझ लो कि ये बगीचे तो ठीक नहीं। लेकिन तुम्हें ख्याल रखना चाहिए कि वही खाद पड़ेगी वृक्षों की जड़ों में, उसी खाद से फूल उठेंगे; उनकी बड़ी सुगंध है। सब दुर्गंधें सुगंधों में बदल जाती हैं। तुम जल्दी कर लेते हो; निर्णय ले लेते हो। उससे मुश्किल में पड़ जाते हो।
थोड़ी देर समझो कि अगर भय तुम्हारे भीतर हो ही न तो तुम्हारे जीवन में अभय की घड़ी कैसे आएगी? तुम अगर भटको न तो तुम पहुंचोगे कैसे? तुमसे अगर भूल न हो तो तुमसे ठीक कैसे होगा? इसलिए मैं तुम्हारे सब पापों को स्वीकार करता हूं। क्योंकि हर पाप में मुझे पुण्य की झलक दिखाई पड़ती है। वहीं पुण्य छिपा है। तुम्हारे वेश्याघरों में ही तुम्हारे मंदिर भी छिपे हैं। तुम जल्दी मत करो, अन्यथा तुम लौट जाओगे वेश्याघर को वेश्याघर समझ कर, मंदिर से वंचित हो जाओगे। मैं जानता हूं, भीतर मंदिर है। तुमसे कहता हूं, डरो मत, आओ।
कुछ मिटाना नहीं है जीवन में; कुछ नष्ट नहीं करना है। प्रत्येक चीज को उसकी पूर्णता तक पहुंचाना है। और हर चीज अपनी पूर्णता पर पहुंच कर अपने से विपरीत में बदल जाती है। यही तो लाओत्से की सारी गहरी से गहरी समझ है कि हर चीज अपनी पूर्णता पर पहुंच कर अपने से विपरीत में बदल जाती है। दुर्गंध सुगंध हो जाती है, क्रोध करुणा हो जाता है, काम ब्रह्मचर्य बन जाता है, संसार मुक्ति हो जाता है।
इसलिए तो मैं कहता हूं कि मेरे संन्यासियों को संसार नहीं छोड़ना है। क्योंकि वहीं मोक्ष का राज भी छिपा है। भाग गए वहां से तो हिमालय में भटकोगे; मोक्ष न पा सकोगे। उस बाजार के शोरगुल में ही एक अनंत शांति छिपी है। जिस दिन तुम जागोगे उस दिन तुम पाओगे कि ठेठ बाजार में शांत होने की कला है। कहीं जाना नहीं है, सिर्फ जो तुम हो उसे उसकी पूर्णता की तरफ ले जाना है। रुको मत, बढ़ते जाओ। कहीं मत रुको, जब तक कि ऐसी घड़ी न आ जाए जिसके पार जाने को कोई जगह ही न बचे। जहां तक जगह बचे, चलते जाओ।
झेन फकीर लिंची से किसी ने पूछा कि धर्म क्या है?
उसने कहा, बढ़ते जाओ।
उसने कहा कि यह भी कोई बात हुई? बढ़ते जाओ से हम क्या समझें?
लिंची ने कहा, सब कह दिया; ज्यादा कहने से बिगड़ जाएगा।

कहीं रुको मत। रुकना पाप है। बढ़ते जाना पुण्य है। पाप से भी गुजरो, लेकिन बढ़ते जाओ। और तुम अचानक पाओगे कि बढ़ते ही बढ़ते पाप पुण्य हो जाते हैं, पत्थर सीढ़ियां बन जाते हैं, बंधन मुक्ति हो जाती है। इसलिए ज्ञानियों ने, जैसा तिलोपा ने कहा, कि संसार और मोक्ष एक ही हैं। जिसने दो समझे वह भूल में पड़ गया; जिसने दो समझे वह चुनाव में पड़ गया। संसार में ही जो बढ़ता जाए, बढ़ता जाए, एक दिन अचानक पाता है कि मोक्ष आ गया।
तो मैं तुम्हें न तो निंदा करने को कहता हूं, न किसी चीज को पाप कहता हूं। कोई चीज पाप है नहीं। हो कैसे सकती है? इस विराट की लीला में पाप आएगा कहां से? तुम्हारी भूल होगी, बस इतना ही हो सकता है। तुमने कुछ गलत समझ कर ली होगी, तुमने कोई व्याख्या कर ली होगी। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त करता हूं। बस इतना ही तुमसे कहता हूं कि कहीं रुकना मत। वेश्यागृह से भी गुजरना पड़े तो गुजरना; रुक मत जाना वहां। रुकने में भूल है, क्योंकि फिर मंदिर तक न पहुंच पाओगे।
और दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं जो पाप में रुक जाते हैं; उनको हम भोगी कहते हैं। और एक वे हैं जो पाप से डर कर भाग जाते हैं; उनको हम त्यागी कहते हैं। दोनों नहीं पहुंच पाते।
योगी मैं उसको कहता हूं जो न तो भागता और न रुकता; जो बढ़ता ही चला जाता है। हर अनुभव को जीता है, और हर अनुभव से सार निचोड़ लेता है। योगी तो मधुमक्खियों की भांति है, हर फूल से गुजरता है, चुन लेता है सार, उड़ जाता है।
जीवन के सभी पहलुओं को जानो। भय भी बुरा नहीं है, क्रोध भी बुरा नहीं है। बुरा है तुम्हारा रुक जाना। जानो और बढ़ जाओ। जानो और पार कर जाओ। अतिक्रमण तुम्हारा सूत्र हो, ट्रांसेंडेंस। हर चीज को जानना है और पार हो जाना है। जानते ही पार हो जाते हो। जानना अतिक्रमण है।
लेकिन तुम अगर कहो कि बिना आंख खोले कैसे निपटा जाए? तुम कभी न निपट सकोगे। क्योंकि आंख ही खोलना तो निपटने का उपाय है। कितना ही डर हो, खोलो आंख। आंख बंद करने से डर मिटता कहां है? लेकिन शुतुरमुर्ग का तर्क हमारे मन में है। देखता है दुश्मन को शुतुरमुर्ग, रेत में सिर गड़ा कर खड़ा हो जाता है। सोचता है, न दिखाई पड़ेगा दुश्मन, न रहेगा दुश्मन। पर यह तर्क कहीं काम आता है? दुश्मन को तो तुम दिखाई पड़ ही रहे हो। असली सवाल तो वह है। दुश्मन तुम्हें खा जाएगा। शुतुरमुर्ग अगर सिर ऊपर रखता तो शायद कोई रास्ता भी खोल लेता।
शुतुरमुर्ग मत बनो। आंख खोलो और देखो। कुछ भयावह नहीं है, क्योंकि कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि कुछ बुरा हो नहीं सकता है। एक-एक पत्ते पर परमात्मा का हस्ताक्षर है। बुरा कुछ हो नहीं सकता है। पाप में भी वही छिपा है। बड़ा अनूठा खिलाड़ी है कि पाप में भी छिपा है! वह छिपने की जगह है उसकी, आड़ है। जैसे बच्चे आंख-मिचौनी खेलते हैं तो वहीं छिपते हैं जहां कम से कम संभावना हो पकड़ने की। परमात्मा भी वहीं छिपा है जहां कम से कम संभावना है तुम्हारे जाने की। मंदिर तुम जाओगे उसे खोजने, तुम उसे न पाओगे। मंदिर में वह छिपा नहीं है। तुम जहां से बच रहे हो वहीं वह छिपा है। वहीं थोड़े खोदने की जरूरत है। जिन्होंने भी उसे पाया है उन्होंने उसे संसार की गहनता में पाया है, सब अनुभवों से गुजर कर पाया है।
भगोड़े मत बनो। भागना कहीं नहीं है। जहां-जहां तुम्हें लगता हो कि यहां कैसे हो सकता है, मैं तुमसे कहता हूं, वहीं है। तुम कैसे सोच सकते हो कि क्रोध में और करुणा हो सकती है? लेकिन वहीं है। तुम कैसे सोच सकते हो कि कामवासना में ब्रह्मचर्य हो सकता है? वहीं है। और तुम कैसे सोच सकते हो कि संसार में संबोधि छिपी होगी? वहीं है।

चौथा प्रश्नः जगत द्वंद्व है; जगत के सभी नियम विपरीत पर खड़े हैं। फिर हमें द्वंद्व के बाहर होने का उपदेश क्यों दिया जाता है? क्या हम जगत के बाहर हैं?

हो तो नहीं, लेकिन हो सकते हो। और कोई तुम्हें उपदेश नहीं दे रहा है जगत के बाहर होने का। तुम ही पूछते हुए आए हो कि द्वंद्व में घिरे हैं, बड़ी अशांति है, क्या करें? द्वंद्व में रहोगे तो अशांति रहेगी। क्योंकि जहां दो हैं वहां कलह होगी। पुरानी कहावत है, जहां बरतन होते हैं वहां थोड़े बजते हैं। जब तक एक न रह जाए तब तक शांति हो नहीं सकती। तुम्हें कोई उपदेश नहीं दे रहा है कि तुम निर्द्वंद्व हो जाओ। तुम ही पूछते हुए आए हो कि मन अशांत है, संतप्त है, दुखी है, क्या करें? तुम पूछते हो, इसलिए मैं कहता हूं कि दुखी तुम इसलिए हो कि तुम अभी दो के साथ हो। और किसी तरह एक को पाना है। एक को पा लो, अशांति मिट जाएगी।
इसलिए महावीर ने तो मोक्ष को जो नाम दिया वह नाम ही कैवल्य है। महावीर
ने बड़ा प्यारा शब्द चुना। कैवल्य का अर्थ है बिल्कुल अकेले बचे, केवल तुम, कोई न बचा। अकेली चेतना रह गई। तो संघर्ष किससे होगा? द्वंद्व किससे होगा? वही परम शांति का क्षण है।
संसार द्वंद्व है। संसार अशांति है। संसार दुख है। अगर तुम राजी हो दुख से, मजे से राजी रहो। मैं कौन जो तुम्हें खींच कर दुख के बाहर करूं? अगर तुम्हें मजा आ रहा है दुख में; पूरा मजा लो। लेकिन फिर पूछते मत फिरो कि दुख से बाहर कैसे होना? तुम अगर अपनी राजी से, अपनी खुशी से दुखी हो, फिर बिल्कुल ठीक है। फिर मैं तुम्हें बाधा न दूंगा। लेकिन तुम्हारी बड़ी अजीब गति है। द्वंद्व से दुखी हो, दुख के बाहर होना चाहते हो, और फिर पूछते हो कि द्वंद्व के बाहर होने का उपदेश क्यों दिया जा रहा है जब सारा संसार ही द्वंद्व है?
सारा संसार द्वंद्व है, लेकिन जिसको यह द्वंद्व पता चलता है वह चेतना अलग है। जो इस द्वंद्व को देखता है, साक्षी है, वह अलग है, वह संसार के बाहर है। द्वंद्व को तो पता भी कैसे चलता कि द्वंद्व है, अगर निर्द्वंद्व मौजूद न हो?
इसे थोड़ा समझो। अगर तुम्हारे भीतर कोई शांत केंद्र न हो तो तुम्हें अशांति का पता कैसे चलेगा? किसको पता चलेगा कि अशांति है? अशांति को पता चलेगा कि अशांति है? अशांति को तो पता ही कैसे चल सकता है अशांति का? कोई शांत केंद्र तुम्हारे भीतर छिपा होना चाहिए जिसको पता चलता है अशांति का। दुख का किसे पता चलता है? अगर दुख ही दुख हो तो दुख का पता ही नहीं चल सकता। तुम्हारे भीतर आनंद का कोई स्वर बज ही रहा होगा। उसी से तो तुम तौलते हो कि दुख है। नहीं तो तुम तौलते कैसे हो? तुम कैसे मुझसे आकर कहते हो कि मैं दुखी हूं? कैसे कहते अशांत हूं? कैसे कहते हो कि अज्ञान में भटक रहा हूं, अंधकार में जी रहा हूं? तुम्हें कुछ न कुछ अनजानी पहचान है प्रकाश की। तौलोगे कैसे अन्यथा?
वह जहां से यह धीमी-धीमी, अनजानी पहचान आ रही है, वह जगह द्वंद्व के बाहर है। और तुम चाहो तो वहां थिर हो सकते हो। लेकिन तुम्हारी मौज। संसार में ही रहना हो, द्वंद्व में ही रहना हो, मजे से रहो।
लेकिन वहां तुम रहना नहीं चाहते। तुम्हारी तकलीफ मुझे पता है। तुम्हारी तकलीफ यह है कि जो नहीं हो सकता, वह तुम करना चाहते हो। तुम रहना तो चाहते हो द्वंद्व में, और आनंदित रहना चाहते हो। मनुष्य की सारी प्रार्थनाएं एक वाक्य में संगृहीत हैं--कि हे परमात्मा! कोई ऐसी तरकीब बताओ कि दो और दो चार न हों। बस, असंभव किसी तरह हो। क्योंकि तुम्हें लगता है द्वंद्व में रागरंग भी है; तुम्हें लगता है द्वंद्व में सुख भी है; सारी वासनाएं उस तरफ ले जाती हैं। चहल-पहल वहां है। मगर उस चहल-पहल में अशांति है। तो तुम मेरे पास चले आते हो--या किसी के पास जाते हो--कि शांति कैसे हो जाए? वहीं अड़चन शुरू होती है। तुम चाहते हो कि द्वंद्व को भोगते हुए शांत कैसे हो जाएं।
यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें बताता हूं कि शांति की यह राह है, कि तुम शांत हो जाओ। लेकिन तब द्वंद्व खो जाएगा। द्वंद्व को भी तुम पकड़े रखना चाहते हो। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, महत्वाकांक्षा तो नहीं छूटती, लेकिन शांति की बड़ी आकांक्षा है। अब यह हो कैसे सकता है? लोग मुझसे पूछते हैं कि जो हम कर रहे हैं, जैसा हम कर रहे हैं, क्या वैसे ही करते-करते

कुछ घटना नहीं घट सकती? तो फिर घटना घटानी ही क्यों है? अगर तुम राजी हो तो फिकर छोड़ो। राजी भी नहीं हैं, क्योंकि दुख मिल रहा है। और सुख की आशा बनी है वहीं।
एक मित्र हैं बंबई में, और वे बंबई में हमेशा अशांत रहते हैं। तो मैं कश्मीर गया तो वे मेरे साथ कश्मीर गए। पहलगांव में बड़ी शांति थी। दूसरे दिन वे कहने लगे कि यहां तो मन ऊबता है।
बंबई में अशांत थे कि यह बंबई जो है पागलपन है; पहलगांव में भी अशांत
हो गए, क्योंकि शांति उबाने लगी। अब वे चाहते हैं पहलगांव की शांति बंबई में, या पहलगांव में बंबई का उपद्रव। उस उपद्रव के बिना भी नहीं जी सकते; उस उपद्रव के साथ भी नहीं जी सकते।
यह नहीं हो सकता। तुम्हें बदलना पड़ेगा। अगर द्वंद्व दुख दे रहा है तो तुम्हें निर्द्वंद्व होना पड़ेगा; तुम्हें तीसरा सूत्र खोजना पड़ेगा जो दोनों के बाहर है। अगर तीसरा सूत्र तुम खोज लो और तीसरे सूत्र में तुम पूरी तरह लीन हो जाओ, तो जरूर असंभव भी घट सकता है। तब एक दिन तुम बाजार में वापस आ सकते हो, और तुम्हारे भीतर पहलगांव की शांति होगी। तुम बीच बंबई में खड़े हो सकते हो, शेयर मार्केट में, लेकिन पहलगांव की शांति तुम्हारे भीतर होगी। तब तुम वहां होओगे भी और नहीं भी होओगे। तब बाहर से तुम वहां होओगे, भीतर से तुम वहां नहीं होओगे। लेकिन यह तो आखिरी घटना है; यह पहले नहीं घट सकती।
पहले तो तुम्हें यह तय करना ही होगा कि दुख के ऊपर उठना है तो द्वंद्व
को छोड़ना है। दुख के ऊपर उठ कर, द्वंद्व को छोड़ कर एक दिन तुम्हारे भीतर ऐसी गरिमा का उदय होगा, ऐसी गहन शांति जन्मेगी कि फिर तुम लौट आ सकते हो बाजार में। तब तुम्हें कोई बंधन न होगा; तब तुम्हें कोई द्वंद्व न छुएगा, कोई द्वैत न छुएगा।
आखिर परमात्मा भी तो द्वंद्व में ही रह रहा है; उसे नहीं छूता। क्योंकि वह द्वंद्व में है और नहीं है। द्वंद्व में ऐसे है जैसे कोई अभिनेता होता है। तुम द्वंद्व में कर्ता की तरह हो, तुम वहां बंट जाते हो। तुम अभिनेता नहीं हो। तुम्हारा धन खो जाता है तो तुम्हारी आंख से अभिनेता के आंसू नहीं बहते, असली आंसू बहते हैं। तुम सच में ही रोते हो। तुम्हारी पत्नी खो जाए तो तुम सच में ही चिल्लाते हो, छाती पीटते हो; वैसा नहीं जैसा रामलीला में राम की सीता खो जाती है तो वे पूछते हैं वृक्षों से, कहां मेरी सीता!
लेकिन तुम जानते हो कि वे बिल्कुल नहीं पूछ रहे, केवल अभिनेता हैं। भीतर कुछ नहीं हो रहा, सब बाहर-बाहर हो रहा है। आंसू भी लाते हैं तो नाटक कंपनियां मिर्च का मसाला रखती हैं। वे जल्दी से, हाथ में मिर्च लगाए रखते हैं, आंख पर मीड़ लेते हैं; आंसू बहने लगते हैं। रामचंद्रजी को भी रामलीला में थोड़ी सी मिर्च आंख में लगानी पड़ती है, तब आंसू आते हैं।
अब आंसू कोई तुम्हारी आज्ञा से तो चलते नहीं। और असली आंसू एक बात है; नकली लाना बड़ी मुश्किल बात है। कभी नकली आंसू लाकर देखो, तब पता चलेगा। आज अभ्यास करना बैठ कर कि नकली आंसू किसी तरह आ जाएं। वे बिल्कुल न आएंगे। बिल्कुल सूख जाएंगी आंखें; पता ही न चलेगा कि आंखों में कोई आंसू भी हैं कहीं।
जिस दिन व्यक्ति अपने भीतर की गहन शांति में थिर हो जाता है उस दिन जगत एक अभिनय है। इसलिए हमने इसे लीला कहा है। उस दिन वह सब करता है--वह बाजार जाता, वह दुकान चलाता, वह पत्नी को सम्हालता, बच्चों को सम्हालता--वह सब करता है, और फिर भी अकर्ता बना रहता है। वही सिद्ध की दशा है। लेकिन उसके पहले तुम्हें साधक होने से गुजरना पड़ेगा। तुम्हें द्वंद्व से हटना पड़ेगा।
हटने की कला को ही मैं जागरण कहता हूं। जाग कर देखते रहो। जागते- जागते, जागते-जागते, तुम्हारे भीतर तीसरी स्थिति खड़ी हो जाएगी। दो बाहर रह जाएंगे, तीसरा भीतर हो जाएगा। वह तीसरा दो के पार है। उस पार का अनुभव होने लगे, फिर कोई कठिनाई नहीं है। फिर कोई गाली दे, निंदा करे, स्तुति करे, सब बराबर है। फिर कोई अंतर नहीं पड़ता है। फिर एक विराट अभिनय है, बड़ा मंच है,

चल रहा है। तुम्हें दिया गया पात्र तुम्हें पूरा कर देना है, तुम्हारा अभिनय तुम्हें पूरा कर देना है। तब तुम बदलना भी नहीं चाहते।
ऐसी कथा है कि जापान में एक फकीर हुआ, जो कि हत्यारा था। पहले सैनिक था, तब भी लोगों को लगता था कि वह मारता जरूर है, लेकिन मारता नहीं। उसकी झलक उसके निकट के लोगों को पता चलती थी। फिर वह एक ही काम सीखा था। मुक्त हो गया सेना से, तो उसने बधिक का धंधा कर लिया, बूचर बन गया। कहते हैं, वह जिंदगी भर पशुओं को ही काटता रहा। सम्राट भी उसके पास शिक्षा लेने आते थे। अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा कि यह बात शोभा नहीं देती कि तुम और पशुओं को काटो। वह हंसता और कहता, जो परमात्मा ने काम पकड़ा दिया वह कर रहे हैं, न हमने चुना, न हमारी कोई जिम्मेवारी। उसकी मर्जी है कि हम बधिक रहें, हम बधिक हैं। न कोई वैमनस्य है इन पशुओं से, न कोई शत्रुता है। न इन्हें बचाने का कोई अपना आग्रह है, न मिटाने का कोई अपना आग्रह है। जो मिल गया है अभिनय वह पूरा किए दे रहे हैं।
कहते हैं, वह परम मुक्ति को उपलब्ध हुआ। तुम अहिंसा साध-साध कर भी न हो पाओगे, और कभी-कभी हत्यारे भी मुक्त हो गए हैं। असली राज न तो अहिंसा में है और न हिंसा में है; असली राज तो जीवन को अभिनय बना लेने में है। तुम कर्ता न रह जाओ। अब तुमने अगर एक मक्खी को नहीं मारा या एक चींटी को नहीं मारा तो तुम हिसाब लिख लेते हो कि आज एक चींटी बचाई। मगर तुम कर्ता हो, तुम कुछ कर रहे हो।
कर्तृत्व बंधन है; साक्षित्व मुक्ति है। तुम कर्ता न रहो; धीरे-धीरे साक्षी हो जाओ। कर्ता में द्वंद्व है, साक्षी अद्वैत अवस्था है। जिस दिन यह घट जाएगा उस दिन सब ठीक है, उस दिन कोई फर्क नहीं पड़ता। क्या करते हो, क्या नहीं करते हो, सब बराबर है। यह जगत स्वप्न से ज्यादा नहीं। यह तुम्हें सत्य मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम सोए हो। तुम जागोगे तो पाओगे, सब सपना खो गया। साधु भी सपने में साधु है और असाधु भी सपने में असाधु है। जागा हुआ न तो साधु है न असाधु। जागे हुए को हम संत कहते हैं, सिद्ध कहते हैं। वह न अच्छा है न बुरा; वह सिर्फ जाग गया। सपना खो गया। न उसे कुछ अच्छा बचा, न कुछ बुरा; न शुभ, न अशुभ; न पाप, न पुण्य। इसलिए संतत्व आखिरी शिखर है।
लेकिन उस तक बड़ी यात्रा करनी है। और एक-एक कदम चलोगे तो पहुंच जाओगे।
क्योंकि हजारों मील की यात्रा भी एक कदम से शुरू होती है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ चोदहवां प्रवचन

संत को पहचानना महा कठिन है

Chapter 70

They Know Me Not

My teachings are very easy to understand and very easy to practise, But no one can understand them and no one can practise them.
In my words there is a principle.
In the affairs of men there is a system.
Because they know not these,
They also know me not.
Since there are few that know me,
Therefore I am distinguished.
Therefore the Sage wears a coarse cloth on top
And carries jade within his bosom.

अध्याय 70

वे मुझे नहीं जानते

मेरे उपदेश समझने में आसान हैं, और साधने में भी आसान हैं।
लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है, और न कोई उन्हें साध सकता है।
मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है।
मनुष्य के कारबार में एक व्यवस्था है।
क्योंकि इन्हें वे नहीं जानते हैं, वे मुझे भी नहीं जानते हैं।
चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, इसलिए मैं विशिष्ट हूं।
इसलिए संत बाहर से तो मोटा कपड़ा पहनते हैं,
लेकिन भीतर हृदय में मणि-माणिक्य लिए रहते हैं।

जीवन सरल है, लेकिन तुम जटिल हो। इसलिए चलते हो साथ-साथ, जीवन के समानांतर; लेकिन जीवन से कभी मिलन नहीं हो पाता। जब तक कि तुम भी जीवन जैसे सरल न हो जाओ तब तक मिलन हो भी न सकेगा। क्योंकि समान से समान का मिलन हो सकता है, सरल से सरल का, जटिल से जटिल का।
जटिलता मन की है। और मन की जटिलता को समझ लो तो शेष सब समझ में आ जाता है। मन की जटिलता यह हैः अगर फूल को देखो तुम, तो फूल को नहीं देखते, फूल के संबंध में सोचने लगते हो। संबंध में सोचा कि दूर निकल गए। फूल को ही देखते, सोचते न; फूल के सौंदर्य को जीते, सोचते न; फूल को पीते, सोचते न; फूल को घेर लेने देते तुम्हें सब ओर से, सोचते न; फूल को जाने देते हृदय तक, हृदय को जाने देते फूल तक, विचार की बाधा खड़ी न करते, तो सब सरल था। लेकिन देखा भी नहीं कि सोचना शुरू हो जाता है।
सोचने से ही तुम जीवन से दूर हो जाते हो। प्रेम नहीं करते, प्रेम के संबंध में सोचते हो। उत्सव नहीं मनाते, उत्सव के संबंध में सोचते हो। जीते नहीं, जीने के संबंध में विचार करते हो। और जितना तुम विचार से घिरते जाओगे उतना ही जीवन दूर होता जाएगा। विचार का अर्थ है दूर जाने की यात्रा। फिर एक विचार दूसरे विचार में ले जाता है; दूसरा तीसरे विचार में ले जाता है। फिर अनंतशृंखला हो जाती है। पहला कदम चूके कि फिर तुम चूकते ही चले जाते हो। पहले कदम पर ही जीने और विचार के फासले को ठीक से समझ लेना। जीना हो तो जीना निर्विचार में है; सोचना हो तो सोचना निर्जीवन है। इस जटिलता के कारण जीवन सरल होते हुए भी उपलब्ध नहीं हो पाता।

जीसस ने कहा है, देखो लिली के फूलों को! वे सोचते नहीं। लेकिन उनके सौंदर्य के सामने सम्राट सोलोमन का सौंदर्य भी फीका है।
फूल कल के संबंध में विचार नहीं करते; आज काफी है। आज इतना काफी है कि
कल के संबंध में सोचने की जगह कहां? आज बहुत है। आज को उत्सव मना लेना है। तुम्हारे पास भी आज बहुत है। लेकिन तुम कल के संबंध में सोच रहे हो--जो अभी आया नहीं, और जो कभी आएगा भी नहीं। और तुम्हारी आदत निर्मित हो रही है। जब कल आएगा तो वह आज की तरह आएगा। और आज से टूटने की तुम्हारी आदत मजबूत होती चली जा रही है। कल भी तुम आगे आने वाले कल के लिए सोचोगे। ऐसे तुम जीओगे, और कभी न जी पाओगे। मरते क्षण भी तुम परलोक के संबंध में सोचोगे।
चूक जाने की यह कला है, जीवन से चूक जाने की कला है कि तुम सदा वहां मत रहो जहां जीवन है, कहीं और रहो। या तो अतीत में, जो जा चुका, मन बड़ा रस लेता है; या भविष्य में, जो आया नहीं, मन बड़ी कल्पना करता है। बस यह क्षण, जो आ गया है, जो अभी है, जो मौजूद है, जो वर्तमान है, जहां जीवन का द्वार है, बस इस क्षण में मन की कोई अभीप्सा नहीं, कोई प्यास नहीं। और यह क्षण बहुत छोटा है। यह क्षण इतना छोटा है कि तुम जरा सा हिले कि चूक जाओगे। और मन तो कंप रहा है; अतीत और भविष्य के बीच झूले मार रहा है। बस यहां नहीं रुकता, घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता है बाएं से दाएं; मध्य में नहीं ठहरता।
इसलिए जितना बड़ा विचारक उतना ही जीवन से दूर। पहले वह प्रेम के संबंध में सोचता है; फिर प्रेम के संबंध में जो सोचा उसके संबंध में सोचता है। ऐसे चलता जाता है। फिर कोई अंत नहीं है।
यह तो पहली बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि जटिल तुम हो; जीवन सरल है। जीवन अभी उपलब्ध है; तुम अभी मौजूद नहीं। लौट आओ वर्तमान में, समेट लो अपने को पीछे से और आगे से, ठहर जाओ यहीं और अभी, और कुछ भी तुमने कभी खोया नहीं है। और कुछ भी पाने को नहीं रह जाता। सब तुम पा लोगे।
पर वर्तमान के क्षण में रुकना ही तो अड़चन है। तुम इस बात को भी सुन कर यही सोचते होः अच्छा, तो कल अभ्यास करेंगे, तो कल कोशिश करेंगे वर्तमान में आने की। आज तो उलझनें और हैं। फिर इतने जल्दी किया भी नहीं जा सकता। तो तुम इसे भी स्थगित करते हो। तुम ध्यान को भी स्थगित करते हो। और ध्यान का अर्थ कुल इतना ही हैः वर्तमान में होना।
मेरे पास लोग आते हैं। उनको मैं कहता हूं, ध्यान करो। तो वे कहते हैं, करेंगे। पर अभी बहुत उलझनें हैं; अभी लड़की की शादी निपटानी है। जैसे लड़की की शादी निपटाना ध्यान में कोई बाधा बनती हो। कि अभी बहुत काम-धाम है, उलझनें हैं सिर पर; और फिर अभी जीवन पड़ा है; फिर ध्यान तो वृद्धावस्था की बात है। वह तो चौथा चरण है, चौथा आश्रम है। आखिर में कर लेंगे।
ध्यान का अर्थ ही होता है वर्तमान में होना। तुम उसे भी टालते हो। और
जब भी तुमसे कहा जाए ध्यान, तुम तत्क्षण पूछते हो, विधि क्या है? विधि का मतलब है, तुम अभ्यास करोगे। अभ्यास का मतलब है, कल पर टालोगे। अभ्यास का अर्थ ही होता है, तुमने टाल दिया कल पर। ध्यान अभ्यास नहीं है। ध्यान तो जागरण है। अभी हो सकता है। अभ्यास किया तो कभी न होगा, क्योंकि अभ्यास की बात में ही तुम भूल गए, चूक गए।
कृष्णमूर्ति निरंतर अपना सिर ठोंक लेते हैं। क्योंकि वे जीवन भर से समझा रहे हैं कि ध्यान की कोई विधि नहीं। और उनको वर्षों से सुनने वाले बार-बार फिर पूछते हैं, तो कैसे करें?
अब जब विधि नहीं है, तो कैसे करें पूछना बिल्कुल असंगत है। कैसे का तो मतलब होता है अभ्यास; कैसे का तो अर्थ होता है करेंगे तब मिलेगा। और ध्यान का अर्थ है कि वह मिला ही हुआ है इस क्षण। तुम कुछ मत करो; तुम सिर्फ रुक जाओ; तुम न करने में हो जाओ और ध्यान बरस जाएगा। तुम्हारे करने में ही चूका है; तुम्हारे न करने में मिलन है।
जीवन तो सरल है, लेकिन मन जटिल है। लाओत्से के इन वचनों को समझने की कोशिश करो।
"मेरे उपदेश समझने में आसान हैं, और साधने में भी।"
क्योंकि लाओत्से का उपदेश ही क्या है! सच कहो तो यह कोई उपदेश है! लाओत्से का उपदेश तो जीवन ही है। जीवन को उपलब्ध हो जाओ। जो मिला ही है,

उसे पुनः पा लो। जो तुम्हारे भीतर जगा ही है, उसे पहचान लो। जो तुम हो, उसके रस, उसके स्वाद को पा लो। लाओत्से का उपदेश यानी जीवन। लाओत्से कोई परमात्मा की बात करता नहीं। परमात्मा की बात भी वस्तुतः जीवन से बचने की तरकीब है मन की। जीवन है; परमात्मा कहां है? और जीवन को ही जिन्होंने उसकी गहनता में जान लिया उन्होंने परमात्मा को जान लिया।
लेकिन मैंने अब तक एक आदमी नहीं देखा जो मुझसे पूछने आया हो कि जीवन कैसे जीएं। मुझसे लोग पूछने आते हैं, परमात्मा को कैसे खोजें? एक आदमी नहीं आया जो पूछता हो जीवन कैसे जीएं। और जीवन है; और परमात्मा तो सिर्फ शब्द है। लेकिन परमात्मा के खोजी हैं; क्योंकि परमात्मा को खोजने में तो जन्म-जन्म लगेंगे। अगर तुम जीवन की बात मुझसे पूछोगे तो अड़चन में पड़ोगे। क्योंकि जीवन तो अभी यहां द्वार पर खड़ा है; अभी जी सकते हो। अगर परमात्मा को मिल कर नाचना है तो जन्मों-जन्मों की यात्रा है; पता नहीं कभी पूरी होगी कि नहीं होगी। लेकिन अगर जीवन को पाकर नाचना है तो तुम्हें कोई भी तो नहीं रोक रहा है। तुम नाच उठो अभी। द्वार पर जीवन बरस रहा है, सूरज उगा है, पक्षी गीत गा रहे हैं, सब तरफ उत्सव है। तुम किसकी खोज कर रहे हो? तुम क्यों नहीं उस उत्सव में सम्मिलित हो जाते अभी?
अगर तुम जीवन की पूछोगे तो अभी मिल सकता है। इसलिए तुम जीवन की पूछते
ही नहीं। तुम पूछते हो, परमात्मा कहां है? परमात्मा का रूप क्या है? परमात्मा है या नहीं? तुम परमात्मा को तर्क से सिद्ध करते हो, असिद्ध करते हो, सिद्धांत बनाते हो। और जो है वह तो सिर्फ जीवन है। उसका कोई सिद्धांत है? उसका कोई शास्त्र है? बिना वेद के पक्षी जी रहे हैं, बिना बाइबिल के वृक्ष जी रहे हैं, बिना कुरान के आकाश जी रहा है। तुम क्यों नहीं जी सकते? तुम क्यों शास्त्र को बीच में लाते हो? कहीं कोई गहरी चालाकी है जो तुम अपने साथ खेल रहे हो; कोई खेल है जिसमें तुम अपने को धोखा दे रहे हो।
एक दिन मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर गया, वह पेशेंस खेल रहा था, ताश खेल रहा था अकेला ही। मैं बैठा उसका खेल देखता रहा। मैंने देखा कि वह कई बार अपने को ही धोखा दे रहा है। अकेले ही खेल रहा है, दोनों तरफ से चालें खुद ही चल रहा है, लेकिन उसमें भी धोखाधड़ी कर रहा है।
मैंने पूछा कि नसरुद्दीन, धोखा दे रहे हो? उसने कहा, कहां दिया! धोखा वगैरह कुछ नहीं दे रहा हूं; नियम से खेल रहा हूं। मैंने कहा, तुम्हारे अतिरिक्त यहां कोई भी नहीं है। तुम्हीं दोनों तरफ से चालें चल रहे हो। धोखा भी देने का क्या सार है? उसने कहा, मैंने कभी धोखा दिया ही नहीं। अभी भी वह धोखा दे रहा है। मैंने पूछा, यह तो असंभव मालूम पड़ता है कि तुम अकेले हो, धोखा दो और पता न चले! उसने कहा कि मैं काफी होशियार हूं धोखा देने में; देता हूं और पता भी नहीं चलने देता।
किसको धोखा दे रहे हो तुम शास्त्रों को बीच में लाकर? शास्त्रों की दीवाल खड़ी करके तुम किसे रोक रहे हो? तुम जीवन के ही प्रवाह को रोक रहे हो। तुम सूर्य की किरणों को रोक रहे हो। तुम पक्षियों के गीत को रोक रहे हो। तुम अपने को ही रोक रहे हो। लेकिन एक बार तुम शास्त्र में उलझ गए कि फिर तुम गहन जंगल में खो गए। शब्दों के जंगल से बाहर आना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि बाहर आने का उपाय नहीं मिलता। एक शब्द दूसरे शब्द में ले जाता है; दूसरा तीसरे शब्द में ले जाता है। और इतना जाल खड़ा हो जाता है कि जितना तुम सुलझाते हो, लगता है और उलझने लगा।
जीवन के संबंध में पूछो। जीवन ही परमात्मा है। और जीवन के अतिरिक्त
और कोई परमात्मा नहीं है।
लेकिन तुम्हारे धर्मगुरु तो जीवन की निंदा कर रहे हैं। उन्होंने तो परमात्मा को जीवन के विपरीत खड़ा कर रखा है। वे तो कहते हैं, जिसे परमात्मा की तरफ जाना हो उसे जीवन को काट डालना पड़ेगा। उनकी तो सारी सिखावन यही है कि तुम जीवन को काटो, पत्तों को, शाखाओं को, जड़ों को। जिस दिन तुम जीवन को बिल्कुल काट डालोगे उस दिन तुम्हें परमात्मा मिलेगा। उनकी बात तुम्हें जंचती है। जंचती है, क्योंकि जीवन को काटने में तुम्हारे मन की हिंसा पूरी होती है। और जीवन को काटने में कल पर टालने की सुविधा मिलती है।

और जीवन को काटते रहोगे तो तुम कभी भी न पा सकोगे परमात्मा को। क्योंकि अगर परमात्मा कहीं था तो जीवन की धड़कन में था; जहां हृदय धड़कता है, जहां श्वास चलती है, वहीं परमात्मा छिपा था। परमात्मा जीवन की ऊर्जा का नाम है।
लेकिन अगर जीवन ही परमात्मा है तो फिर मंदिरों की और मस्जिदों की जरूरत क्या रहेगी? जीवन तो बिना मंदिर-मस्जिद के मौजूद है। अगर जीवन ही परमात्मा है तो कुरान, बाइबिल और वेद की क्या जरूरत है? जीवन का तो अपना ही वेद है; जीवन तो खुद ही वेद है। तो पुरोहित जी न सकेगा; धर्मगुरु बच न सकेगा। उसका धंधा ही मिट जाएगा। वह तुम्हें जीवन के विपरीत खड़ा करता है। क्योंकि जीवन के विपरीत खड़े होने में ही उसका धर्म और उसका धंधा खड़ा होता है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे फैलते चले जाते हैं। सारी पृथ्वी भर गई उनसे, और आदमी के जीवन में कहीं कोई आनंद की पुलक नहीं है; आदमी के जीवन में कहीं कोई रस की धार नहीं बहती।
इसे ठीक से समझ लो। क्योंकि यह मैं किसी और के संबंध में नहीं कह रहा हूं, यह तुम्हारे साथ भी यही हो रहा है। जीवन को करो प्रेम; जीवन को मानो अहोभाग्य; जीवन है परम आशीर्वाद। और अगर जीवन में कहीं बुराई दिखती हो तो जानना कि तुम्हारी ही कोई भूल है। जीवन को काटने में मत लग जाना। जहां तुम्हें बुराई दिखती है वहां भी कुछ भला छिपा होगा। जरा और गहरे खोजना, जल्दी निर्णय मत लेना। क्योंकि तुमने जल्दी निर्णय लिया तो पुरोहित और पंडित तुम्हें शोषण करने को तैयार खड़े हैं। तुमने जरा भी कहा कि यह गलत है कि उन्होंने कहा कि हम तो पहले से ही कहते हैं कि जीवन गलत है, और नर्क है, और पाप है। सुनो हमारी! खोजो परमात्मा को! हम तुम्हें परलोक का मार्ग दिखाते हैं।
बस यही लोक है। इसी लोक में गहरे जाने के उपाय हैं। परलोक कहीं भी नहीं है। यही क्षण है। यद्यपि इस क्षण के बड़े गहरे आयाम हैं। तुम चाहो तो नदी को ऊपर से देख कर लौट आ सकते हो। तुम चाहो तो नदी की सतह पर तैर सकते हो। तुम चाहो तो नदी में गहरी डुबकी लगा सकते हो। नदी में गहरे होने के बहुत उपाय हैं। अथाह है जल जीवन का। अगर कहीं भूल दिखाई पड़े तो जल्दी मत करना। क्योंकि उसी भूल के नीचे गहराई में कुछ छिपा होगा। अगर कहीं कठोरता भी मालूम पड़े तो भी जल्दी निंदा मत करना। वहीं कठोरता के भीतर कहीं कोमलता छिपी होगी। और अगर कहीं तुम्हें ऐसा लगे कि अन्याय हो रहा है तो भी निर्णायक मत बनना। क्योंकि जब तक तुम पूर्ण को न जान लो तब तक तुम निर्णय कैसे करोगे? तुम्हें अन्याय दिख सकता है कहीं। क्योंकि तुम खंड को ही जानते हो। तुम्हें पूरे का कुछ भी पता नहीं है।
छोटा सा बच्चा पैदा होता है; पहला ही काम तो करता है कि चीख कर रोता है, चिल्लाता है। धर्मगुरुओं ने इसका भी शोषण कर लिया। उन्होंने कहा, रोते हुए ही तुम पैदा होते हो। जन्म ही रुदन है, दुख है। जन्म की शुरुआत दुख से होती है।
वे बिल्कुल ही गलत बात कह रहे हैं। बच्चा दुख के कारण नहीं रोता। और बच्चे के रोने और चिल्लाने के पीछे जीवन की अभीप्सा छिपी है, दुख नहीं। बच्चा चिल्लाता है; उसके माध्यम से उसका फेफड़ा, गला साफ होता है, और श्वास की धारा शुरू होती है। चिकित्सक जानते हैं कि अगर बच्चा तीन मिनट तक न रोए-चिल्लाए तो बचाना मुश्किल है; मर जाएगा। क्योंकि अब तक तो मां की श्वास से जीता था; अब अपनी श्वास लेनी है। तो वह जो चीखना है, रोना है, चिल्लाना है, वह सिर्फ गले का साफ करना है। उसमें न तो कोई पीड़ा है; अगर हम बच्चे को जान सकें तो उसके भीतर छिपा अहोभाव है। उसने पहली स्वतंत्रता की श्वास ली। वह पहली दफा अपने तईं चिल्लाया है, आवाज दी है, पुकार दी है। वहां दुख जरा भी नहीं है। वहां पीड़ा जरा भी नहीं है। हां, तुम व्याख्या कर ले सकते हो। और धर्मगुरु उसको पकड़ लेता है कि देखो रोने से... ।
तुम्हें पता होना चाहिए कि रोने का अनिवार्य संबंध दुख से नहीं है। कभी आदमी सुख में भी रोता है। कभी तो महासुख में ऐसे आंसू बहते हैं जैसे दुख में कभी भी नहीं बहे। रोने का कोई संबंध दुख से नहीं है अनिवार्य। दुख में भी आदमी रोता है; सुख में भी आदमी रोता है। महासुख और आनंद में भी

लोगों को रोते हुए पाया गया है। आंसू तो केवल, जब भी तुम्हारे भीतर कोई चीज लबालब हो जाती है, इतनी हो जाती है कि तुम सम्हाल नहीं पाते, तभी बहते हैं। वह बच्चे की पहली पुकार है, जीवन की पुकार है। वह जीवन का पहला कदम है। लेकिन धर्मगुरु ने उसकी भी निंदा कर दी। धर्मगुरु ने कुछ छोड़ा ही नहीं, उसने हर चीज की निंदा कर दी। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसने हर चीज को बुरा बता दिया है। और तुम्हें इस बुराई से इतना आक्रांत कर दिया है, यह व्याख्या तुम्हारे मन में भी इतनी गहरी बैठ गई है। और व्याख्या के परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।
फ्रांस में एक बहुत बड़ा चिकित्सक है जिसने एक अनूठी बात खोजी है। वह पूरी मनुष्यता को जैसे भूल ही गई व्याख्या के कारण। बच्चे पैदा होते हैं; तो हम सोचते हैं कि मां को बड़ी पीड़ा होती है, प्रसव-पीड़ा होती है। क्योंकि सारी दुनिया में करीब-करीब, कम से कम सभ्य लोगों में तो पीड़ा होती ही है। और असभ्यों की तो हम फिक्र ही नहीं करते। आदिम जातियों में पीड़ा नहीं होती। बच्चा पैदा होता है; मां काम करती रहती है खेत में, बच्चा पैदा हो जाता है, टोकरी में बच्चे को रख कर वह फिर काम में लग जाती है। कोई प्रसव-पीड़ा नहीं होती। लेकिन सारी सभ्य जातियों में होती है। सभ्यता से प्रसव-पीड़ा का क्या संबंध होगा?
यह व्याख्या है, जो गहरे बैठ गई। प्रसव पीड़ा है, यह ख्याल, यह विचार गहरे बैठ गया।
फ्रांस में एक चिकित्सक ने स्त्रियों को सम्मोहित किया प्रसव के पहले
और उन्हें यह धारणा दी कि प्रसव बड़ा आनंदपूर्ण है। होश में आ गईं, पर यह धारणा उसने सम्मोहन के द्वारा उनमें गहरे बिठा दी कि प्रसव बड़ा समाधिपूर्ण है; समाधिस्थ आनंद, आखिरी आनंद प्रसव में होगा।

होना भी यही चाहिए, क्योंकि बड़ी से बड़ी घटना घट रही है; एक नये जीवन का पदार्पण हो रहा है। यह दुख में कैसे होगा? और मां बड़े से बड़ा कृत्य कर रही है इस जगत में। कोई चित्रकार कितना ही बड़ा चित्र बना ले, कोई मूर्तिकार कितनी ही बड़ी मूर्ति गढ़ ले, कोई संगीतज्ञ कितने ही बड़े संगीत को जन्म दे दे; फिर भी एक साधारण स्त्री के सृजन का मुकाबला नहीं कर सकता। क्योंकि सब सृजन--संगीत का, कि मूर्ति का, कि चित्र का, कि काव्य का--मुर्दा है। एक साधारण सी स्त्री की भी सृजन की क्षमता, बड़े से बड़े चित्रकार, मूर्तिकार, स्रष्टा में नहीं है। एक जीवंत व्यक्ति को जन्म दे रही है। यह तो अहोभाव का क्षण होना चाहिए; यह तो बड़े उत्सव का क्षण होना चाहिए। यह दुख का कैसे हो गया? धर्मगुरु ने इतनी निंदा की है कि यह गहरे बैठ गया।
तो इस चिकित्सक ने सम्मोहित किया स्त्रियों को और फिर उनको बच्चे हुए। और वे इतनी आनंदित हुईं। दुख की तो बात ही अलग रही, प्रसव देना एक आनंद की घटना हो गई; ऐसे आनंद की घटना कि उन स्त्रियों ने कहा कि फिर दुबारा ऐसा आनंद नहीं जाना।
उसने कोई लाखों प्रयोग करवाए। और अब तो वह सम्मोहित भी नहीं करता। अब
तो वह कहता है, देख लो, इतनी स्त्रियों को आनंदपूर्ण प्रसव हो रहा है! उसने चित्र प्रकाशित किए हैं, फिल्में बनाई हैं। उन स्त्रियों के चेहरे पर वही भाव है जो कभी बुद्ध के चेहरे पर दिखाई पड़ता है, या कभी मीरा के चेहरे पर दिखाई पड़ता है। वही नृत्य, वही आनंद। और कुछ भी खास घटना नहीं घट रही है, बच्चे का जन्म हो रहा है। न चीख है, न पुकार है; न रोना है, न आंसू हैं। बिल्कुल उलटी स्थिति है। और उसकी बात सारी दुनिया में प्रचारित हो रही है। रूस में तो उन्होंने हर अस्पताल में प्रयोग शुरू कर दिए। क्योंकि स्त्री के लिए अकारण कष्ट दे रहे हो। जो घटना महासुख बन सकती थी उसको हमने दुख बना दिया।
जल्दी मत करना। जहां भी तुम दुख पाओ, समझना कि कहीं कुछ भूल हो रही है। क्योंकि गहरे में तो सुख ही होगा; क्योंकि गहरे में परमात्मा है। हर घटना के पीछे छिपा है वही। तो ऊपर-ऊपर से निर्णय मत ले लेना; भीतर जाना। जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। और जीवन की निंदा जिसने की, उसके मंदिर के द्वार सदा के लिए बंद हो गए। फिर वह भटके काशी, काबा, कैलाश, उसके मंदिर

के द्वार बंद हो गए। फिर वह करे सत्संग, सुने रामायण, गीता, वेद, करे पाठ, कुछ भी न होगा। जीवन पास था; वह शब्दों में खो गया। जीवन यहां था; वह वहां दूर भटकने लगा।
लाओत्से कहता है, "मेरे उपदेश समझने में आसान हैं।"
और आसान क्या हो सकती है बात? सीधे-सीधे हैं।
"और साधने में भी आसान हैं।"
क्योंकि जब बात ही सीधी-सादी है। तुम्हें कोई जीवन सिखाना पड़ेगा?
यह तो ऐसा ही हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन पकड़ लिया गया मछली मारते एक ऐसे तालाब पर जहां मछली मारना वर्जित था। जब पुलिस ने उसे पकड़ लिया और पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो? तख्ती दिखाई नहीं पड़ती कि यहां मछली मारना वर्जित है? यह सम्राट का अपना तालाब है, इसमें कोई मछली नहीं मार सकता। नसरुद्दीन ने कहा, मछली मार कौन रहा है? लेकिन उसकी बंसी में फंसी एक मछली तड़प रही थी। तो उन्होंने कहा, फिर यह क्या हो रहा है? उसने कहा कि मछली को तैरना सिखा रहा हूं।
तुम्हें जीवन सिखाना ऐसा ही है जैसे मछली को कोई तैरना सिखाए। सिखाना क्या है? जीवन तो है ही। तुम क्या सीखने के लिए भटकते फिर रहे हो? और तुम सीखने के लिए भटकते हो तो कोई न कोई चालबाज मिल जाता है जो सिखाने लगता है। तुम मानते ही नहीं, तुम कहते हो, सीखेंगे ही। मछली तैरने के सीखने की आकांक्षा करती है; कोई न कोई नसरुद्दीन मिल जाएगा जो तैरना सिखा देगा। जीवित तुम हो। सब तुम्हारे पास है। और लाओत्से का कोई और उपदेश तो नहीं है, जीवन ही उपदेश है। इसलिए वह कहता है कि मेरे उपदेश समझने में आसान और मेरे उपदेश साधने में आसान हैं। साधना क्या है?
लेकिन तब दूसरे दो वचन तुम्हें बड़े हैरानी के लगेंगे, और बड़े सच।
"लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है, और न कोई उन्हें साध सकता है।"
पहली बात समझ में आती है कि जीवन ही अगर उपदेश है तो सरल है। न कोई योग करना है; न कोई शीर्षासन करने हैं; न कोई नौली-धोती करनी है; न कोई उलटा- सीधा जीवन को करना है। न कुछ त्यागना है, न कुछ छोड़ना है; जीना है। जहां हो, जैसे हो, उसे ही परमात्मा का आशीर्वाद मान कर चुपचाप जी लेना है। उसी आशीर्वाद के भाव से प्रार्थना का जन्म होगा। उसी आशीर्वाद के भाव में गहराई उतरेगी, अथाह का प्रारंभ होगा।
"लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है... ।"
क्योंकि तुम जिस बुद्धि से समझने की कोशिश करते हो वही तो नासमझी है। इसलिए लाओत्से कहता है, समझने में आसान, लेकिन कोई उन्हें समझ नहीं सकता। क्योंकि समझने की कोशिश बुद्धि की है। और जीवन बुद्धि से ज्यादा गहरा है। जीवन को जी सकते हो, समझोगे कैसे? प्रेम में उतर सकते हो; प्रेम को समझोगे कैसे? सौंदर्य को पी सकते हो; समझोगे कैसे? क्या है सौंदर्य? सौंदर्य पर हजारों शास्त्र लिखे गए हैं; अब तक कोई सौंदर्य की व्याख्या नहीं कर पाया कि क्या है सौंदर्य। जिन्होंने भी व्याख्याएं की हैं, वे सब हार गए, थक गए। और यह भी नहीं कह सकते कि सौंदर्य नहीं है, इसलिए व्याख्या किसकी करें! सौंदर्य तो है, सब तरफ है। सौंदर्य से भरा है अस्तित्व। तो यह तो कह ही नहीं सकते कि सौंदर्य नहीं है। लेकिन क्या है सौंदर्य? कैसे कहो? कैसे परिभाषा बनाओ? शब्द में कैसे समझाओ? सौंदर्य का शास्त्र नहीं बन पाता। सौंदर्य है भरपूर, और शास्त्र नहीं बन पाता।
तो लाओत्से कहता है, समझने में आसान, लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है
और न कोई उन्हें साध सकता है। समझने की बात ही नहीं है। यही तो समझना है। बात जीने की है।
कबीर ने कहा हैः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
कोई लिखा-लिखी की होती, समझ लेते, पढ़ लेते। यह देखा-देखी बात! देखने की है। सौंदर्य देख सकते हो, समझ नहीं सकते। सौंदर्य को अनुभव कर सकते हो, समझ नहीं सकते। अनुभव संपूर्ण का होता है; समझ बुद्धि की होती है। समझ तो सिर्फ विचार की होती है, अनुभव तन-प्राण सबका होता है, इकट्ठे का होता है। रोआं-रोआं उसमें सम्मिलित होता है। जब फूल को तुम खिलते देखते हो और सौंदर्य की प्रतीति होती है, तो क्या प्रतीति खोपड़ी में ही होती है? रोएं-

रोएं पर छा जाता है फूल। उसके खिलने में तुम भी कहीं भीतर खिल जाते हो।
उसके साथ एक रास बन जाता है, एक रंग बन जाता है। आंख, कान, सब तरफ से प्रवेश कर जाता है। बुद्धि को भी उसका अंश मिलता है, पर अंश ही मिलता है। समग्र शरीर पर व्याप्त हो जाता है; समग्र आत्मा पर फैल जाता है।
समझ तो केवल बुद्धि की है, शब्दों की है; अनुभव जीवन का है।
इसलिए लाओत्से कहता है, समझने में आसान, लेकिन कोई समझ न पाएगा। और साधने में आसान, लेकिन कोई साध न सकेगा।
जीवन को कोई साध सकता है? जो मिला ही हुआ है उसे साधोगे कैसे? साधना तो उसे पड़ता है जिसे हम लेकर नहीं आते। सीखना तो उसे पड़ता है जो हमारा स्वभाव नहीं है। सीखने का अर्थ ही होता है पर-भाव।
एक बच्चा पैदा होता है। उसे हम जो-जो बातें सिखाते हैं वे उसके स्वभाव में नहीं हैं। अगर हम न सिखाते तो वे कभी अपने आप पैदा न होतीं। लेकिन कुछ बातें अपने आप पैदा हो जाती हैं। वह उसका स्वभाव है। बच्चा जवान होता है और प्रेम की आकांक्षा उठती है। बच्चा जवान होता है और प्रेम की पुकार उठती है। क्या तुम सोचते हो अगर एक बच्चे को ऐसा बड़ा किया जाए कि उसे पता ही न चले कि प्रेम जैसी कोई घटना होती है, कोई प्रेम का शास्त्र उसके पास न आने दिया जाए, वात्स्यायन की कोई खबर उसे न मिले, खजुराहो, कोणार्क के मंदिर देखने को न मिलें, किसी पुरुष को कभी किसी स्त्री के प्रेम में पड़े होने की खबर उसे न मिले--हम उसे ठेठ जंगल में पाल सकते हैं, छिपा कर रख सकते हैं-- लेकिन एक घड़ी आएगी जब उसके भीतर प्रेम का उदय होगा। तब न वात्स्यायन की जरूरत होगी, न खजुराहो की जरूरत होगी। उसने शायद अपने जीवन में कोई स्त्री न भी देखी हो, तो भी उसके सपनों में स्त्री की छाया पड़ने लगेगी; उसे रूप भी स्त्री का पता न हो, पर रूप की प्यास उठने लगेगी। उसे कुछ भी कभी न समझाया गया हो कि क्या है प्रेम, क्या है काम, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह स्वभाव है। वह जागेगा।
पशुओं को, पक्षियों को, पौधों को कौन सिखा रहा है? कहां है विश्वविद्यालय जहां पशु-पक्षियों और पौधों को प्रेम सिखाया जा रहा है? स्वभाव से उठती है बात। और जीवन तुम्हारा स्वभाव है। साधना क्या है? साधना उन चीजों को पड़ता है जो स्वभाव नहीं हैं। हां, इस बच्चे को भाषा नहीं आएगी, अगर न सिखाई गई। तो यह गणित नहीं सीख लेगा; यह तर्कशास्त्र नहीं सीख पाएगा, अगर न सिखाया गया। यह बच्चा सभ्य नहीं हो सकेगा, अगर न सिखाया गया। इसे सभ्यता का कोई पता न होगा।
ऐसा बहुत बार हुआ है कि कुछ बच्चों को भेड़ियों ने पाल लिया है। छोटे बच्चों को उठा ले गए। ऐसी तीन घटनाएं हैं; इस सदी में ही घटी हैं। अभी कुछ वर्ष पहले एक बच्चे को लखनऊ के पास पकड़ा गया जो भेड़ियों ने पाला था। वह भेड़ियों जैसा चलता था, आदमियों जैसा चलता भी नहीं था। दो पैर पर भी खड़ा नहीं होता था। शायद वह भी हम सिखाते हैं। बच्चा अपने आप अगर छोड़ दिया जाए तो शायद चारों हाथ-पैर से चलेगा, क्योंकि वही सुगम है। दो पैर पर खड़ा होना तो बड़ा हठयोग है बच्चे के लिए। धीरे-धीरे अभ्यास होने से खड़ा हो जाता है। कोई भाषा नहीं बोलता था, क्योंकि भाषा कैसे सीखता? लेकिन एक बात अनुभव की गई उस बच्चे में कि अगर वह अशांत होता और कोई प्रेमपूर्ण स्त्री उसके ऊपर हाथ फेर देती तो वह शांत हो जाता। वह जो स्त्री का स्पर्श, वह उसे शांत करता। उसे मां का स्पर्श बन जाता होगा। उसे कभी मां का स्पर्श याद भी नहीं। प्रेम की आकांक्षा उसमें भी थी। लेकिन और उसके पास कुछ भी न था। वह बिल्कुल जंगली जानवर था। मांस कच्चा खाता था। छह महीने लग गए उसे भोजन खिलाने में सिखाने में। छह महीने लग गए उसको किसी तरह खड़ा करने में। छह महीने में वह मर भी गया।
और मेरा अपना ख्याल है कि उसको सिखाने की यह जो चेष्टा की गई, इसमें वह
मर गया। अन्यथा वह बड़ा स्वस्थ था जब आया था। क्योंकि उसके ऊपर यह भारी हो गया। बारह साल का बच्चा था, उसको यह सिखाना बहुत भारी हो गया। यह इतना ज्यादा तकलीफदेह हो गया कि वह मर गया। जैसे-जैसे सिखाया वैसे दुर्बल होता गया।

जीवन को सिखाने की जरूरत ही नहीं है। जीवन कोई सभ्यता थोड़े ही है। जीवन कोई शिक्षण थोड़े ही है। जीवन तो तुम हो। तो जीवन को जानने के लिए तो तुमने जो सीख लिया है उसको थोड़ा अनसीखा करना ही हितकर होता है, ताकि तुम थोड़े मुक्त हो सको बंधनों से, ताकि तुम थोड़े अपने चारों तरफ की दीवाल को तोड़ कर बाहर आ सको।
तो लाओत्से अगर कुछ भी कह रहा है तो वह यह कह रहा है कि तुमने जितना सीख लिया है वह जरूरत से ज्यादा है। कामचलाऊ को बचा लो, बाकी को छोड़ दो। या जो तुम बचाओ उसको भी बाहर-बाहर रखो, भीतर मत ले जाओ। उसे तुम्हारे प्राणों को आक्रांत मत करने दो। जीवन को सिखाना नहीं है। जीवन तुम हो।
इसलिए लाओत्से कहता है, न कोई उसे साध सकता है; समझने में आसान, और कोई समझ नहीं सकता।
और जब तक तुम समझने की कोशिश करोगे, तुम वंचित रहोगे समझने से। साधने में आसान; और कोई साध नहीं सकता। जीवन को साधने की कोशिश मत करना। जीवन को तुम्हारे साधने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन लंगड़ा नहीं है कि उसे शिक्षा की बैसाखियां चाहिए हों। जीवन के पास अपने पंख हैं, अपने पैर हैं। तुम सिर्फ जीवन को खुला, मुक्त छोड़ देना। और तुम पाओगे कि जीवन चलने लगा अपने आप। जीवन के पास परमात्मा की ऊर्जा है। यह पूरा अस्तित्व उसे साथ दे रहा है। जीवन पंगु नहीं है। और न जीवन कमजोर है। जीवन के पास बड़ी ऊर्जा है। तुम सिर्फ एक मौका देना कि तुम बाधा मत डालना, और जीवन चलने लगेगा, दौड़ने लगेगा। और जीवन उड़ने भी लगेगा। कोई आकाश इतना बड़ा नहीं है जहां जीवन उड़ न सके। बड़े से बड़े आकाश को छोटा सा आंगन बना लेगा।
लेकिन साधने की कोशिश तुमने की कि चूक जाओगे; समझने की कोशिश की कि नासमझी पैदा होगी। इसलिए तो पंडितों से ज्यादा अज्ञानी और नासमझ खोजना मुश्किल है। साधने की कोशिश की कि तुम भटक जाओगे। क्योंकि तुम जो भी करोगे वह तुम करोगे, तुम्हारी बुद्धि करेगी, जो कि बहुत छोटी है, और उस पर करेगी जो बहुत बड़ा है। अंश अंशी को साधने लगे, खंड अखंड को साधने लगे। तो मुश्किल में पड़ जाएगा। एक ही साधना है कि तुम खंड का आग्रह छोड़ दो, तुम खंड को अखंड में डुबा दो, तुम बूंद को सागर में गिरा दो। फिर सागर ही सम्हाल लेगा। तुम यह मत पूछो कि फिर बूंद का क्या होगा, फिर बूंद कहां जाएगी, भटक तो न जाएगी। तुम बूंद को बचाओ मत। और सागर को सिखाने की कोशिश मत करो। और सागर को बांधने की चेष्टा मत करो; सागर को साधने की चेष्टा मत करो।
अगर लाओत्से को ठीक से समझो तो कोई साधना नहीं है। इसलिए लाओत्से ने किसी योग की विधियों की कोई बात नहीं की। न कोई पद्धतियां, न कोई मार्ग। साधना ही नहीं है। लाओत्से यह कह रहा है कि तुम्हें मिला है, उसे भोगो; तुम्हें मिला है, उसे जीओ।
तुम जीने में कृपणता कर रहे हो। तुम जीने तक में कंजूस हो। तुम श्वास
तक डरे-डरे लेते हो। कोई आदमी पूरी श्वास नहीं लेता। फेफड़ों में, वैज्ञानिक कहते हैं, छह हजार छिद्र हैं। और स्वस्थ से स्वस्थ आदमी भी जो श्वास लेता है वह केवल दो हजार छिद्रों तक जाती है। चार हजार छिद्र तो बिना उपयोग के पड़े रहते हैं। तुम श्वास तक पूरी नहीं ले रहे, कैसे घबड़ाए हुए हो? और श्वास लेने में क्या तुम्हारा खो रहा है? लेकिन श्वास के साथ आता है जीवन; श्वास के साथ आती है ऊर्जा। और ऊर्जा का भय है।
छोटे बच्चे पूरी श्वास लेते हैं। कभी छोटे बच्चे को लेटा हुआ देखो जब
वह सो रहा हो। तो उसकी छाती नहीं उठती, उसका पेट ऊपर उठता है। वह श्वास का पूरा ढंग है। क्योंकि तब श्वास पेट तक जा रही है, नाभि तक जा रही है, गहरे से गहरे छिद्रों तक फेफड़े में श्वास जा रही है। इसलिए छोटे बच्चे के जीवन में जो तरलता होती है वह तुम्हारे जीवन में खो जाती है। उसके जीवन में जो कोमलता होती है वह तुम्हारे जीवन में खो जाती है। छोटे बच्चे में जो ताजगी होती है वह तुम्हारे जीवन में खो जाती है।
फिर छोटा बच्चा क्यों ऐसी गहरी श्वास लेना बंद कर देता है?
तुम जरा बच्चों को ध्यान करो। अगर तुमने बच्चे को कभी डांटा, तत्क्षण तुम पाओगे, उसकी श्वास धीमी हो जाती है और गहरी नहीं जाती। वह घबरा गया। क्योंकि जब भी तुम डांटते हो तभी तुम यह कह रहे हो कि तुम गलत हो। और जीवन

में जब भी कोई गलत चीज मालूम पड़ती है तो जीवन सिकुड़ता है। तुमने कहा, ऐसा मत करना! तो तुमने एक द्वार बंद कर दिया जीवन का। तुमने कहा, बाहर मत जाना! तुमने दूसरा द्वार बंद कर दिया। तुमने कहा, अंधेरे में निकलना मत! तुमने तीसरा द्वार बंद कर दिया। तुमने कहा, इतना शोरगुल मत करो! तुम द्वार बंद करते जा रहे हो। बच्चा श्वास कैसे ले? क्योंकि श्वास तो ऊर्जा पैदा करेगी। ऊर्जा पैदा होगी तो बच्चा दौड़ेगा, अंधेरे को भी जानना चाहेगा, समुद्र में भी उतरना चाहेगा, वृक्ष पर भी चढ़ना चाहेगा। इसलिए अब एक ही उपाय है कि बच्चा ऊर्जा पैदा न होने दे। कमजोर हो जाए, खुद ही पेड़ पर चढ़ने में डरने लगे, तो तुम्हें डराने की जरूरत न रहे। तुम्हारे नियमों के कारण बच्चा अपने को कमजोर कर लेता है।
अगर तुम्हारे नियम न हों तो हर बच्चा वृक्षों पर चढ़ेगा, हर बच्चा नदियों में तैरेगा, हर बच्चा पहाड़ की यात्रा पर जाएगा, और जीवन के सभी अभियान करेगा। अगर तुम्हारे निषेध-नियम न हों तो बच्चा वह सब जानना चाहेगा जो जीवन जानना चाहता है। जो उसका भीतर का जीवन कहेगा जानो, वह जानेगा। बुरे को भी जानेगा, क्योंकि वह भी जीवन का आयाम है; भले को भी जानेगा, क्योंकि वह भी जीवन का आयाम है। क्रोध भी करेगा, करुणा भी करेगा, हंसेगा भी, रोएगा भी। वह जीवन के सब आयाम को अनुभव करेगा। और तब तुम पाओगे, उसकी श्वास पूरे छह हजार छिद्रों तक जाती है। तब उसके पास एक जीवन होगा जो ऊपर से बह रहा है; भरा-पूरा जीवन होगा।
लेकिन सभ्यता ने बहुत विषाक्त कर दिया है। इधर जो लोग भी गहन ध्यान में उतरना शुरू होते हैं, और विशेषकर सक्रिय ध्यान में, जिसमें श्वास का बड़ा प्रयोग है, वे मेरे पास आना शुरू हो जाते हैं। वे कहते हैं कि बड़ी अजीब-अजीब बातें श्वास की चोट से उठनी शुरू हो रही हैं! कि कभी इतना क्रोध अनुभव नहीं किया था; क्रोध अनुभव हो रहा है! और कोई कारण नहीं है। और कभी इतनी उदासी नहीं थी; उदासी अनुभव हो रही है! और कोई कारण नहीं है। वे दबी हुई, जो श्वास कम लेकर जिनको दबा दिया था, वे सब वृत्तियां वापस उठनी शुरू हो जाती हैं। डायाफ्राम के पास तुम्हारे सब दबे हुए मनोवेग पड़े हैं। उन पर जैसे ही चोट लगती है वे सब जगने शुरू हो जाते हैं। घबराहट होती है कि कहीं पागल तो न हो जाएंगे!
हद्द आश्चर्य है कि जीवन को सिकोड़ कर तुम स्वस्थ बने हो, और जीवन को फैलाते ही पागल होने का डर पैदा होता है। तुम्हें इतना डरा दिया गया है। तुम्हें समझाया ही यह गया है कि तुम मरे-मरे जीना। क्योंकि तुम अगर प्रगाढ़ता से जीओगे तो बुराई भी आएगी। और तुम्हें संस्कृत होना है, सभ्य होना है, सज्जन होना है, साधु बनना है। असाधु को काट कर तुम्हारा आधा जीवन काट दिया गया है। अगर परमात्मा भी असाधुता को काट दे संसार से तो परमात्मा भी तुम जैसा ही रुग्ण, खोजता फिरेगा किसी गुरु को कि जीवन को कैसे सीखें? कि जीवन को कैसे साधें?
जीवन में बुराई भलाई का अनिवार्य अंग है, अंधेरा प्रकाश के साथ-साथ है, मृत्यु जीवन का अंग है।
लाओत्से कहता है, न तो तुम साध सकोगे, न तुम समझ सकोगे, यद्यपि बात समझने में आसान है और साधने में भी।
"क्योंकि मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है।"
वह क्या है सिद्धांत लाओत्से का? उसका मूल आधार क्या है?
उसका मूल आधार हैः जीवन को तुम बेशर्त स्वीकार करो। बेशर्त शब्द स्मरण रखो। जीवन पर कोई शर्त मत लगाओ। क्योंकि तुम्हारी सब शर्तें जीवन को काटेंगी। जीवन को निषेध मत दो। जीवन को विधेय बनाओ। द्वार बंद मत करो; सब बंद द्वार खोल दो। जीवन अपने आप में परिपूर्ण है, तुम्हें कुछ और करने की जरूरत नहीं है। तुम उसमें सुधार करना बंद करो। सुधार करने से ही तुमने उसमें बिगाड़ कर दिया है। सुधार-सुधार कर ही तुमने जहर डाल दिया है। लाओत्से का मूल सिद्धांत हैः जीवन को बेशर्त स्वीकार करो। डरो मत; कुछ भी खोने को नहीं है। डरोगे तो भी मरोगे; तो भी सब खो जाएगा जो तुम्हारे पास है। जी लो अभय से, परिपूर्ण अभय से।

लेकिन तुम्हारे भीतर, जब मैं यह कह रहा हूं तब भी मैं जानता हूं, बेचैनी आ गई होगी--अभय से जी लो! फिर पाप का क्या होगा? अभय से जी लो! फिर बुराई का क्या होगा? अभय से जी लो! फिर नियम, शास्त्र, समाज, सभ्यता, संस्कृति, इसका क्या होगा? और बड़े आश्चर्य की तो बात यह है कि अगर तुम अभय से जीओ तो पाप धीरे-धीरे परमात्मा में लीन हो जाता है। निषेध तुम करो ही मत तो निषेध करने को कुछ बचता ही नहीं; सभी विधेय हो जाता है। तुम अचानक पाते हो कि जगत एक संगीतपूर्ण लयबद्धता है जिसमें बुराई का भी अपना स्थान है, जिसमें बुराई वर्जित नहीं है; वरन भलाई में स्वाद डालती है। बुराई नमक है जिसके बिना भलाई बेस्वाद हो जाती है।
तुम थोड़ा सोचो। एक आदमी जो क्रोध कर ही न सकता हो उसकी करुणा में कितनी गहराई होगी? छिछली होगी, उथली होगी; उसकी करुणा नपुंसक होगी, उसमें बल न होगा। जो आदमी क्रोध कर सकता हो, जिसने क्रोध पर कोई निषेध न लगाया हो, बल्कि जिसने क्रोध को जीया हो--और जीकर ही क्रोध करुणा बन गया हो, जितना क्रोध को जाना हो उतनी करुणा उपजने लगी हो, जितना अपने भीतर की हिंसा को पहचाना हो उतनी ही भीतर की अहिंसा जगने लगी हो--उसकी करुणा में एक गहराई होगी, अतल गहराई होगी। वह गहराई क्रोध के कारण आ रही है। जिस आदमी ने कामवासना जानी ही नहीं, उसके ब्रह्मचर्य में क्या होगा? उसके ब्रह्मचर्य को तुम नपुंसकता से ज्यादा और क्या नाम दे सकोगे? और नपुंसक ब्रह्मचर्य कोई ब्रह्मचर्य है! लेकिन जिसने वासना का उभार जाना, जिसने वासना का ज्वार जाना, जिसने वासना को जीया, उसके अनंत-अनंत रूपों में पहचाना; उस पहचान, उस स्वाद, उस अनुभव से ब्रह्मचर्य का जन्म होगा। तो ब्रह्मचर्य एक शिखर होगा--जो घाटियों को पार कर गया, जिसने अंधेरी घाटियां छोड़ दीं, जो अंधेरी घाटियों के ऊपर उठ गया। उस ब्रह्मचर्य का रस और, रहस्य और, ऊर्जा और।
जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। क्योंकि सभी बुराइयां अंततः भली हो जाती हैं। जो बेशर्त जीता है उसे शुरू में तो कठिनाई होगी। क्योंकि चारों तरफ समाज है; चारों तरफ निषेध लिए हुए लोग हैं। चारों तरफ अदालतें, नरक, स्वर्ग, सब खड़े हैं; पंडित, पुजारी, पुरोहित--सब मुर्दा--लेकिन तुम्हें भी मुर्दा बनाने को उत्सुक। स्वाभाविक है यह, क्योंकि जो खुद भी नहीं जी रहा है वह दूसरे को जीने न देगा। जो खुद जीने से वंचित रह गया है उसकी ईर्ष्या भयंकर होती है। तुम्हारे साधु-संन्यासी तुम्हें जीने न देंगे। क्योंकि वे मर रहे हैं। उन्होंने अपने को काट डाला है। उन्होंने अपनी जड़ें तोड़ ली हैं। वे चाहेंगे कि तुम भी अपनी जड़ें तोड़ लो। उनकी ईर्ष्या भयंकर है। और उनकी ईर्ष्या धर्म के आवरण में छिपी है, इसलिए तुम पहचान भी न सकोगे। उनकी ईर्ष्या निंदा बन गई है। उनकी ईर्ष्या ने तुम्हारे लिए नरकों का इंतजाम किया है।
जो व्यक्ति भी जी नहीं पा रहा है ठीक से वह दूसरे को भी जीने नहीं देगा। तुम मुस्कुराओगे तो उसे पीड़ा होगी। वह तुम्हारी मुस्कुराहट पर भी जहर डाल देगा और कहेगा कि यह पाप है। तुम नाचोगे तो उसे पीड़ा होगी, क्योंकि वह लंगड़ा है। उसके हाथ-पैर उसने खुद ही काट डाले हैं। वह तुम्हारे उत्सव को मिटा डालना चाहेगा। वह सारे जगत को उदासी और मरघट से भर देना चाहेगा। लेकिन जिस व्यक्ति ने जीवन को बेशर्त जीया है वह दूसरों को भी मुक्त करेगा। और उसे ही मैं सदगुरु कहता हूं जिसने जीवन को जीया है; और जो तुम्हारे प्रति ईर्ष्या से नहीं भरा है, क्योंकि भरने का कोई कारण ही नहीं है। जो तुम्हारे प्रति करुणा से भरा है। जिसने जीवन को जीया है वह तुम्हें भी जीवन को जीने में सहारा देगा। वह तुम्हें काटेगा नहीं, जोड़ेगा। वह तुम्हारी पंगुता को मिटाएगा, तुम्हारे पक्षाघात को पिघलाएगा। वह तुम्हें फिर से जीवन देना चाहेगा। जिसने महाजीवन को जाना है वही केवल तुम्हें जीवन देने को उत्सुक हो सकता है।
लेकिन जो खुद अपने को मार रहे हैं, आत्मघाती हैं, वे तुम्हें भी मार डालना चाहेंगे। और उनका जाल बड़ा है, और उनका जाल बड़ा पुराना है। और उनके जाल के बाहर आना बड़ा ही मुश्किल है।
इसलिए लाओत्से कहता है, उपदेश सुनने में मेरे आसान, साधने में भी।
लेकिन तुम सुन न सकोगे; समझ भी न सकोगे; साध भी न सकोगे। क्योंकि चारों तरफ

जो जाल है वह उसके विपरीत है; जीवन के विरोध में खड़ा है सारा जाल। इसलिए तुम्हें अपने जीवन की हिम्मत खुद ही जुटानी पड़ेगी। साहस, पहले कदम पर बड़े साहस की जरूरत है--कि जो होगा होगा। और जो जीवन जाना ही है वह ठीक है। निंदा होगी, होगी। तुम निंदा को सह लेना, लेकिन जीवन को मत काटना। सारी दुनिया तुम्हें पापी कहे तो तुम सुन लेना, लेकिन तुम जीवन को काटने का पाप मत करना। तुम एक दिन परमात्मा तक पहुंच जाओगे। जीवन को जिसने काटा वह परमात्मा तक कभी भी नहीं पहुंच सकता है।
"मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है।"
वह सिद्धांत है बेशर्त जीवन का स्वीकार। कोई छोटी-छोटी बात मत लगाना
कि लोग क्या कहेंगे। तुम लोगों के कहने के लिए यहां नहीं हो। और तुम कुछ भी करो, लोग कभी तुम्हारे संबंध में भला कहते हैं क्या?
बड़ी पुरानी कथा है कि शिव पार्वती को लेकर एक पूर्णिमा की रात घूमने निकले हैं। और शिव तो जीवन के प्रतीक हैं; जीवन का महाभोग, बेशर्त भोग, उसके ही प्रतीक हैं। दोनों चल रहे हैं। साथ में नंदी चल रहा है। कुछ लोग मिले राह पर। उन्होंने कहा, ये मूर्ख देखो दोनों! जब नंदी साथ है तो पैदल क्यों चल रहे हैं?
अब उनका कुछ लेना-देना नहीं, न नंदी से, न शिव से, न पार्वती से। लेकिन लोग कुछ तो कहेंगे। लोग बिना निर्णय लिए नहीं रह सकते।
तो शिव ने कहा, ठीक। तो शिव नंदी पर बैठ गए। पार्वती चलने लगी। फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा, यह देखो मूरख आदमी! खुद चढ़ा है नंदी पर और पत्नी को पैदल चला रहा है। हद हो गई असभ्यता की। तो शिव नीचे उतर आए; पार्वती को नंदी पर चढ़ा दिया। फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा, यह देखो औरत निर्लज्ज! पति पैदल चल रहा है, पत्नी नंदी पर चढ़ी है। ऐसा न कभी सुना न देखा। तो शिव ने कहा, अब क्या करें? दोनों नंदी पर चढ़ गए। फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा, हद हो गई। नंदी की जान ले लोगे? दो-दो चढ़े हैं। नंदी का भी तो कुछ सोचो। तो शिव ने कहा, अब क्या करें? अब तो एक ही उपाय है। और वे लोग जो यह कह रहे थे कि कुछ तो सोचो, इससे तो अच्छा हो कि तुम दोनों नंदी को अपने सिर पर रख लो बजाय दो-दो उसके ऊपर चढ़ो। तो शिव ने कहा, चलो अब यही करें। तो उन्होंने नंदी को बांधा। बामुश्किल तो नंदी को बांध पाए। दोनों ने कंधे पर रखा। नंदी तड़फ रहा है। फिर वे एक नदी के पुल पर आए। वहां बड़ी भीड़ थी और लोग कहने लगे, हद हो गई मूर्खता की! बहुत मूर्ख देखे भई, ये महामूर्ख हैं। नंदी पर चढ़ने के लिए है कि उसको कंधे पर ढोने के लिए? अब बड़ी मुश्किल थी। अब कोई विकल्प ही न छूटा था। और तभी नंदी तड़फड़ाया जोर से और पुल से नीचे गिरा। शिव ने पार्वती को कहा कि देख ले, कुछ भी करो, लोग तो निंदा करेंगे ही।
क्योंकि यह सवाल नहीं है कि तुम कुछ करते हो, इसलिए वे निंदा करते हैं। वे निंदा करना चाहते हैं, इसलिए कोई भी बहाना खोज लेते हैं। निंदा करेंगे ही। क्योंकि निंदा में ही उनके अहंकार की तृप्ति है। तुम्हारा करना तो सिर्फ बहाना है उनके लिए। तुम कुछ भी करो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हर हालत में निंदा पाओगे।
लोगों की फिक्र छोड़ दो। समझदार उनकी फिक्र नहीं करता। वे क्या कहते हैं, वह उनकी वे जानें। वे कहते हैं, खुद सुनें। समझदार उनकी चिंता नहीं करता। समझदार तो अपने जीवन को ऐसे जीता है जैसे वह अकेला है, यहां कोई दूसरा है ही नहीं। तुम ऐसे ही जीयो कि तुम जैसे अकेले हो; तभी तुम्हारे जीवन में वह सूत्र आ जाएगा जिसको लाओत्से कहता है मेरा सिद्धांत। बेशर्त जीओ। कुछ खोने को नहीं है, और पाने को सब कुछ है, अगर बेशर्त जीए।
लाओत्से कहता है, "मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है, और मनुष्यों के कारबार में एक व्यवस्था है।"
क्या है व्यवस्था मनुष्य के कारबार में जो मनुष्य को दिखाई नहीं पड़ती? वह व्यवस्था यह है कि जीवन का सारा कारबार विरोधियों के मिलन से निर्मित है। और मन विरोधियों के मिलन को बरदाश्त नहीं कर पाता। यहां जीवन और मृत्यु दोनों साथ-साथ हैं, और मन दोनों को साथ-साथ समझ भी नहीं पाता, सोच भी नहीं पाता, विपरीत कैसे साथ हो सकते हैं? मन कहता है, विपरीत साथ नहीं

हो सकते; विपरीत विपरीत हैं। और लाओत्से कहता है कि सारे कारबार में एक व्यवस्था है। विपरीत विपरीत हैं ही नहीं, सहयोगी हैं, कांप्लीमेंटरी हैं। ये दो बातें अगर ख्याल में रह जाएं कि जीवन को बेशर्त जीओ, और विपरीत
को विपरीत मत मानो, सहयोगी मानो, तो तुम मुक्त हो जाओगे। अगर तुमने विपरीत को विपरीत माना तो तुम चुनाव करोगे। तब तुम असाधु के खिलाफ साधु बनोगे। तब तुम आधे रहोगे। और आधा जीवन कोई जीवन है? असाधु कहां जाएगा तुम्हारा फिर? वह बोझ की तरह तुम्हारे ऊपर लटका रहेगा। काट थोड़े ही सकते हो! क्योंकि जीवन की व्यवस्था यह है कि तुम साधु असाधु दोनों हो; जैसे बाएं और दाएं पैर की जरूरत है चलने के लिए।
अब कहीं कोई अगर धर्म पैदा हो जाए जो कहे कि बायां पैर बुरा और दायां पैर अच्छा--और ऐसे लोग हैं, बाएं हाथ को बुरा मानते हैं; दायां अच्छा और बायां बुरा--तो तुम बाएं पैर का करोगे क्या? बाएं के बिना चलोगे कैसे? अगर बाएं को काट डाला तो चल न पाओगे। और अगर बाएं को बांध दिया तो घिसटोगे। तुमने बच्चों का खेल देखा है, लंगड़ी दौड़। वही तुम्हारा पूरा जीवन। उसमें दो बच्चे एक-एक टांग बांध लेते हैं। तो तीन टांगें हो जाती हैं चार की जगह। और फिर वे दौड़ते हैं। तुम्हारा जीवन एक लंगड़ी दौड़ है जिसमें तुमने एक टांग को समाज की टांग से बांध लिया है, और फिर दौड़ने की कोशिश कर रहे हो। सभ्यता की टांग से बांध लिया है, फिर दौड़ने की कोशिश कर रहे हो। कहीं नहीं पहुंचते। जहां थे वहीं मरते हो। जहां पाया था अपने को जन्म के क्षण, वहीं तुम पाओगे मरते वक्त। रत्ती भर यात्रा नहीं हुई। पैर तुम्हारे मुक्त ही नहीं हैं।
विपरीत सहयोगी हैं। इसलिए लाओत्से साधु का पक्षपाती नहीं है। मैं भी नहीं हूं। और संत हम उस आदमी को कहते हैं जिसने अपनी साधुता और असाधुता में संगीत खोज लिया, जिसने असाधुता का भी उपयोग कर लिया, जिसने बुराई को काट कर न फेंका। वह कोई बहुत कुशल कारीगर नहीं है जो चीजों को फेंक दे। कुशल कारीगर तो वही है कि हर चीज का उपयोग कर ले। और चीजों का मूल्य चीजों पर नहीं होता, उनके उपयोग पर होता है। कैसे तुम उन्हें जमाते हो, इस पर निर्भर करता है। पूर्ण के भीतर कोई खंड किस भांति जमाया गया है, इस पर निर्भर करता है।
संगीत शोरगुल है, लेकिन कुशल कलाकार उस शोरगुल को ऐसा जमाता है कि तुम्हारा हृदय नाच उठता है। संगीत है तो शोरगुल। एक बंदर को पकड़ा दो सितार; वह भी बजाएगा, लेकिन तुम्हें पागल कर देगा--अगर बजाता रहा। सितार वही है, लेकिन उसी को कोई कुशल संगीतज्ञ छूता है, स्वरों के बीच जो वैपरीत्य है, विरोध है, वह खो जाता है, स्वर एक संगीत में बंध जाते हैं, और सभी स्वरों के मेल से एक चीज पैदा होती है जो स्वरों के पार है। संगीत स्वरों का जोड़ नहीं है, स्वरों के जोड़ से कुछ ज्यादा है। वह जो कुछ ज्यादा है वही तो कुशल संगीतज्ञ की कला है।
सौंदर्य फूल के अंगों का जोड़ नहीं है, उससे कुछ ज्यादा है। इसीलिए तो उसकी व्याख्या नहीं हो पाती। प्रेम दो प्रेमियों का मिलन नहीं है; किसी तीसरे का अवतरण है। दो तो केवल मौजूदगी हैं; उन दो के बीच में तीसरा उतर आता है। इसीलिए तो प्रेम अव्याख्य है। और इसीलिए तो प्रेम परमात्मा जैसा है, और प्रेम प्रार्थना बन जाता है। इसलिए प्रेम को कोई समझा न सकेगा। तुम प्रेमियों को समझा सकते हो, प्रेमी की व्याख्या हो सकती है, उसका सब पता- ठिकाना बता सकते हो। लेकिन प्रेम का कोई पता-ठिकाना है? जब दो व्यक्ति विरोध की तरह पास नहीं आते, सहयोग की तरह पास आते हैं, जब दो व्यक्ति एक-दूसरे के साथ बिल्कुल लीन होने को पास आते हैं, तब प्रेम का अवतरण हो जाता है। वे भूमि बन जाते हैं, प्रेम अवतरित हो जाता है।
जीवन में बुराई और भलाई है, पाप और पुण्य है, अंधेरा और प्रकाश है, मृत्यु और जीवन है। इन दोनों के बीच जब कोई संबंध खोज लेता है, संगीत, तब संतत्व का जन्म होता है। संतत्व की व्याख्या नहीं हो सकती। साधु की व्याख्या हो सकती है, असाधु की व्याख्या हो सकती है। साधु का तुम सम्मान करोगे, असाधु की निंदा करोगे। संत को तुम पहचान भी न पाओगे। वह अव्याख्य है। और संत के विपरीत तुम्हारे असाधु भी होंगे और तुम्हारे साधु भी

होंगे। क्योंकि न तो असाधु उसे आत्मसात कर पाएंगे, क्योंकि साधु उसके भीतर छिपा है; न साधु उसे आत्मसात कर पाएंगे, क्योंकि असाधु को भी उसने आत्मलीन कर लिया है।
इसलिए जब बुद्ध पैदा होते हैं, या क्राइस्ट पैदा होते हैं, तो तुम हैरान होओगे कि बुरे आदमी तो उनके विपरीत थे ही, भले आदमी भी उनके विपरीत थे। वह बड़ा चमत्कार मालूम पड़ता है। लेकिन कुछ चमत्कार नहीं, बात सीधी-साफ है। गणित साफ-सुथरा है। जीसस को बुरे आदमियों ने सूली नहीं दी; भले आदमियों ने सूली दी। बुरे आदमी तो विपरीत थे ही। उन्होंने फिक्र ही न की, कि यह आदमी का कुछ खास मतलब ही नहीं है। लेकिन भले आदमियों ने सूली दी। वे बरदाश्त न कर सके। क्योंकि जीसस एक संगीत हैं, जो भले और बुरे के पार उठ गया; जहां बुराई ने अपनी बुराई खो दी, भलाई ने अपनी भलाई खो दी; जहां दोनों एक हो गए, और एक अनूठी घटना, जिसकी व्याख्या करनी मुश्किल है।
"क्योंकि वे इन्हें नहीं जानते--मेरे एक सिद्धांत को और मनुष्यों के जीवन की विपरीत के बीच संगीत की व्यवस्था को--वे मुझे भी नहीं जानते हैं।" क्योंकि जो जीवन को ही नहीं जानते, वे लाओत्से को कैसे जान पाएंगे? लाओत्से यानी जीवन का शुद्धतम रूप, लाओत्से यानी जिंदगी का सारभूत रूप, जरा भी जिसे गढ़ा नहीं गया, अनगढ़ पत्थर; जिस पर जरा भी सामाजिक शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति की छाप नहीं डाली गई; अनगढ़ पत्थर, किसी पहाड़ी नदी में लुड़कता राज हो, किसी आदमी के हाथ ने जिसे छुआ नहीं; जिस पर मनुष्य की कोई छाप नहीं है। हां, प्रकृति की काई कितनी ही जमी हो, और बहते हुए नदियों और पहाड़ों में कितने ही रूप और रंग जिसने लिए हों, लेकिन मनुष्य की जिस पर कोई छाप नहीं, ऐसा अनगढ़ पत्थर। उसे तुम कैसे पहचान सकोगे?
"वे मुझे भी नहीं जानते हैं। चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं... ।"
यह वचन बड़ा अनूठा है।
"... इसलिए मैं विशिष्ट हूं।"
साधारणतः हम उस आदमी को विशिष्ट कहते हैं जिसे बहुत लोग जानते हैं। जिसे सारी दुनिया जानती है वह विशिष्ट। लाओत्से बड़े मजे की बात कह रहा है। वह कह रहा है, "चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, इसलिए मैं विशिष्ट हूं।"
कनफ्यूशियस को बहुत लोग जानते थे लाओत्से के समय में; लाओत्से को कोई नहीं जानता था। कनफ्यूशियस आदर्श पुरुष था--पुरुषोत्तम, नीति-निष्ठ, आचारवान। उसकी साधुता में जरा भी कमी न थी। तुम कनफ्यूशियस में इंच भर भूल न खोज सकते थे। वह पूर्ण महात्मा था। उसे लोग जानते थे। साधु उसे श्रेष्ठ साधु मानते थे, आदर्श, जैसा उन्हें होना है। असाधु भी उससे ईर्ष्या करते थे, जैसे घाटियां ईर्ष्या करती हों पहाड़ों से, अंधेरी रात ईर्ष्या करती हो दिन से। असाधु भी सपने में सोचते थे कि कभी कनफ्यूशियस जैसे हो जाएं। और साधु भी सोचते थे कि कभी यह आदर्श पूरा होगा चलते-चलते। शिखर था कनफ्यूशियस चीन में। लाओत्से को कोई भी नहीं जानता था। क्योंकि लाओत्से को पहचानना मुश्किल। कनफ्यूशियस था किसी के आंगन में लगे हुए साफ-सुथरे बगीचे की भांति, जहां हर चीज कटी है, साफ-सुथरी है, जहां माली के हाथ के स्पष्ट चिह्न हैं, जहां तुम भूल नहीं खोज सकते, जहां उद्यान के सब नियमों का पालन किया गया है। और लाओत्से था किसी पहाड़ी जंगल की भांति, जहां कोई नियम नहीं है, जहां कोई व्यवस्था नहीं मालूम होती। या कोई ऐसी व्यवस्था है जो अदृश्य है और दिखाई नहीं पड़ती।
है तो जंगल की भी व्यवस्था, क्योंकि जंगल भी जीता है। और क्या तुम्हारे बगीचे जीएंगे जंगल के सामने--कमजोर, दीन-हीन! लेकिन जंगल में सब समाविष्ट है। सूखे पत्ते भी गिरे हैं, वे भी समाविष्ट हैं। सूखी डालें भी पड़ी हैं, वे भी समाविष्ट हैं, इरछे-तिरछे वृक्ष हैं, वे भी समाविष्ट हैं। जंगल के भीतर प्राण तो महान है, लेकिन रूप पर कोई काट-छांट नहीं की गई है। जंगल वैसा ही है जैसा परमात्मा ने चाहा है। जंगल में भय लगेगा; बगीचे में तुम विश्राम कर सकते हो निश्चिंत होकर।
और जंगल में सौंदर्य देखना हो तो तुम्हारे भीतर भी जंगली आत्मा चाहिए। नहीं तो तुम्हें सौंदर्य दिखाई न पड़ेगा। बगीचे का सौंदर्य तो कोई

भी देख लेगा; उसके लिए किसी विराट जंगल जैसी आत्मा की जरूरत नहीं है। वह तो दुकान और बाजार में बैठा आदमी भी बगीचे के सौंदर्य को पहचान लेता है। क्योंकि वह आदमी का ही बनाया हुआ है और आदमी की समझ में आता है। जंगल परमात्मा का बनाया हुआ है और परमात्मा जैसे तुम न हो जाओ तो समझ में नहीं आता। अराजकता दिखाई पड़ती है ऊपर से और भीतर बड़ा संगीत छिपा है। ऊपर सब अस्तव्यस्त मालूम होता है और सारी अस्तव्यस्तता में एक व्यवस्था छिपी है।
तो लाओत्से को तो लोग नहीं समझ पाए। कोई जानता भी न था। अभी भी शक है
कि लाओत्से कभी हुआ कि नहीं। अभी भी इतिहासज्ञ मानने को राजी नहीं हैं कि यह आदमी कभी हुआ। यह तो मालूम होता है कि एक मिथ, एक पुराण है। कहीं ऐसे आदमी होते हैं? कहीं कोई जीवित आदमी इस तरह की बातें कहता है? उनको भरोसा नहीं आता। कब पैदा हुआ? किस घर में पैदा हुआ? कोई हिसाब-किताब भी नहीं है उसका। आदमी ही हिसाब-किताब का न था। कनफ्यूशियस के संबंध में सब साफ-सुथरा है।
या ज्यादा उचित होगा कोई निकट का उदाहरण जो तुम्हें समझ में आ जाए। महात्मा गांधी ठीक कनफ्यूशियस जैसे आदमी हैं--साफ-सुथरे, गणित बिल्कुल चौकस, रत्ती भर भूल तुम न खोज सकोगे। महात्मा हैं, आदर्श व्यक्ति हैं; चौबीस घंटे हिसाब रखते हैं नियम से जीने का। और एक आदमी था इस मुल्क में उसी समय, अरुणाचल के पहाड़ पर बैठा हुआ, रमण। कोई हिसाब-किताब नहीं है, न कोई नियम-व्यवस्था है। दुनिया में बहुत कम लोग रमण को जान पाए। गांधी को न जानने वाला आदमी खोजना मुश्किल है; रमण को जानने वाला आदमी खोजना मुश्किल है। गांधी इतिहास-पुरुष होंगे, रमण भूल जाएंगे। संदेह उठना शुरू होगा किसी न किसी दिन कि यह आदमी हुआ कि नहीं हुआ। क्योंकि इस आदमी ने ऐसा कुछ भी तो नहीं किया है जिसका चिह्न घटनाओं पर छूट जाए। गांधी को तो मानना ही पड़ेगा। भारत की आजादी है; अछूतों का उद्धार है। हजार कृत्य हैं एक आदमी के पास; हजार कृत्यों पर इसके हस्ताक्षर हैं। घटनाओं की दुनिया में इसकी बड़ी पकड़ थी। अखबार पर इसकी छाप थी। जहां भी कुछ घट रहा था वहां यह आदमी मौजूद था। यह आदमी जहां मौजूद था वहां चीजें घटना शुरू हो जाती थीं। घटनाक्रम में इस आदमी की गति थी। वहां रमण थे, वे लाओत्से जैसे; कुछ भी कर नहीं रहे थे। कुछ किया ही नहीं तो इतिहास क्या बनेगा? अब न करने का कोई इतिहास तो होता नहीं। दुनिया में कोई ऐसी बड़ी क्रांति नहीं करी कि जिसको लिखा जाए। करोड़ों-करोड़ों लोगों का जीवन नहीं बदल डाला; उनके जीवन की व्यवस्था नहीं बदल डाली। कौन फिक्र करेगा?
एक इटालियन विचारक लेंजा देलवास्तो रमण के आश्रम गया। तीन दिन रहा,
और उसने कहा कि यह आदमी अपने काम का नहीं। फिर गांधी के आश्रम आया, और उसने कहा कि यह आदमी है। यह रमण भी कोई आदमी है? खाली बैठा है। कुछ सेवा करो! दुनिया में इतना कष्ट है, कष्ट को मिटाओ! इतने बीमार हैं! इतनी पीड़ा है! यह किस तरह का अध्यात्म कि तुम खाली बैठे हो। इस अध्यात्म को पहचानना बहुत मुश्किल है। और यही एक मात्र अध्यात्म है। लेंजा देलवास्तो गांधी से जाकर दीक्षित हुआ; रमण को छोड़ आया और गांधी से दीक्षित हुआ। लोगों के दुर्भाग्य का कोई हिसाब नहीं है। गांधी ने नाम दिया शांतिदास। लेंजा देलवास्तो शांतिदास हो गए, लेकिन जहां शांति थी वहां से चूक गया। गांधी के पास तो भयंकर अशांति थी।
लेकिन गांधी को करोड़ों लोग जानेंगे। रमण को कौन जानेगा? रमण को वे थोड़े से लोग जानेंगे जो गहन शांति में प्रवेश करेंगे, जो अस्तित्व को अनुभव करेंगे। वे रमण को जानेंगे। और तभी वे जान पाएंगे कि अक्रिया की भी एक क्रिया है। और अक्रिया की विराट ऊर्जा है। वह ऊपर से चोट नहीं करती, कहीं भीतर से काम करती है; प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं करती, परोक्ष से प्रवेश करती है। लेकिन वह अदृश्य का खेल है। दृश्य के जगत में तो गांधी का मूल्य होगा। अदृश्य! लेकिन अदृश्य को कितने लोग जानते हैं? सूक्ष्म को कितने लोग जानते हैं? गांधी सतह पर हैं, जहां सारी दुनिया खड़ी है। रमण गहराई में हैं, जहां कोई गोताखोर ही पहुंच पाएगा।

इसलिए लाओत्से कहता है, "चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, मैं विशिष्ट हूं।"
विशिष्ट को बहुत लोग जान ही कैसे सकते हैं? क्योंकि लोग तो उसी को जान सकते हैं जो उन जैसा हो, जो उनकी भाषा में आता हो। लोग तो उसी को जान सकते हैं जिनसे उनका कोई संबंध बनता हो।
गांधी से संबंध बनता है। पीड़ा है, और गांधी कोढ़ी का पैर दाब रहे हैं। संबंध बनता है। गुलामी है, और गांधी गुलामी को तोड़ रहे हैं; जीवन को दांव पर लगा रहे हैं। संबंध बनता है। गांधी में ऐसा कुछ भी तो नहीं है जो तुम्हारे लिए बेबूझ हो। सब तो साफ-साफ है; गणित सीधा है। तुम्हारी भाषा में और गांधी की भाषा में कहीं रत्ती भर भी तो फर्क नहीं है। भला तुम गांधी न होओ, लेकिन होना तो तुम भी गांधी ही चाहते हो। आदर्श तो वही है। वे हो गए हैं; तुम कल हो जाओगे। तुम कोशिश करोगे; वे मंजिल पर पहुंच गए हैं, तुम रास्ते पर हो। लेकिन रास्ता एक ही है। वे दस कदम आगे होंगे; तुम दस कदम पीछे हो। या दस मील आगे होंगे; तुम दस मील पीछे हो। लेकिन तुम में और गांधी में एक तारतम्य है; भेद नहीं है। गांधी बिल्कुल समझ में आते हैं; रमण बिल्कुल समझ में नहीं आते। क्योंकि वे उस रास्ते पर ही नहीं मालूम पड़ते जिस पर तुम हो। वे चलते ही नहीं मालूम पड़ते, रास्ते की तो बात दूर। वे बैठे मालूम पड़ते हैं।
लाओत्से और तुममें बड़ा फर्क है। भाषा ही नहीं मिलती; दोनों के बीच कोई कम्युनिकेशन का, संवाद का साधन नहीं जुड़ता। दोनों जैसे बिल्कुल अपरिचित, अजनबी हैं; दो अलग-अलग लोकों के वासी हैं। कैसे तुम जान पाओगे? कैसे तुम पहचानोगे? तुम लाओत्से के पास से गुजर जाओगे, लेकिन तुम्हें महात्मा दिखाई न पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारे महात्मा सतह पर हैं। तुम्हारे महात्मा तुम्हारी भाषा में आते हैं। तुम्हारे साग-सब्जी तौलने के बटखरों से तुम्हारे महात्मा भी तुल जाते हैं। तुम्हारे फुट-इंचों से तुम्हारे महात्मा भी नप जाते हैं। फुट-इंच तुम्हारे हैं; नाप तुम्हारा है। और तुम्हारे महात्मा भी बहुत बड़े नहीं हो सकते जो तुम्हारे फुट-इंच से नप जाते हैं। लेकिन तुम कैसे नापोगे लाओत्से को? थाह नहीं है। फुट-इंचों का काम नहीं है। तुम कैसे नापोगे लाओत्से को? तुम्हारे बटखरे बड़े छोटे हैं। उनसे कोई तालमेल ही नहीं उठता; उनसे कोई संबंध ही नहीं जुड़ता।
और इसलिए तुम चूक जाओगे। लाओत्से के पास से गुजरोगे, लाओत्से दिखाई न पड़ेगा। और ऐसा नहीं है कि तुम न गुजरे होओ। इतने लंबे समय से तुम पृथ्वी पर हो। न मालूम कितनी बार लाओत्से जैसे व्यक्तियों के पास से गुजरने का मौका मिला होगा। लेकिन वे तुम्हें दिखाई नहीं पड़े; क्योंकि उनमें ऐसा कुछ भी न दिखाई पड़ा जिसे तुम तौल लेते। तुमने उन्हें अस्पताल में सेवा करते न पाया। तुमने उन्हें जाकर गरीब को भूदान करते न देखा। तुमने उन्हें समाज की सामान्य क्षुद्र व्यवस्थाओं में कोई क्रांति करते न देखा। उन्होंने दहेज-प्रथा के खिलाफ कोई आंदोलन न चलाया। और न हरिजनों का उद्धार करने की कोई चेष्टा की। इनको तुम पहचानोगे कैसे?
ये तो ऐसे थे जैसे वृक्ष हों। ये तो ऐसे थे जैसे पहाड़ी चट्टानें हों।
ये तो ऐसे थे जैसे पहाड़ी झरने हों। ठीक है, थोड़ी देर तुम इनके पास बैठ लिए-- एक जंगली सौंदर्य था इनके पास--फिर तुम अपनी राह पर हो लिए। ये तुम्हारे काम के न थे। तुम इनका उपयोग न कर सके, इसलिए तुम इनसे वंचित हो गए। और तुम इनका उपयोग कर भी नहीं सकते। विराट का उपयोग नहीं हो सकता। विराट आकाश का क्या उपयोग करोगे? छोटे-छोटे आंगन चाहिए तुम्हें। तुम्हारे महात्मा छोटे-छोटे आंगन हैं, फुलवारियां हैं।
इसलिए लाओत्से कहता है, चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, मैं विशिष्ट हूं। लोग पास से गुजर जाते हैं, और पहचानते नहीं; मैं विशिष्ट हूं।
विशिष्ट की यह परिभाषा बड़ी अनूठी है।
"इसलिए संत बाहर से तो मोटा कपड़ा पहनते हैं, लेकिन भीतर हृदय में मणि- माणिक्य लिए रहते हैं।"

संत के मणि-माणिक्य उसके कपड़ों पर नहीं जड़े हैं; साधु के मणि-माणिक्य उसके कपड़ों पर जड़े हैं। साधु को तुम ऊपर से ही पहचान लेते हो। वह नग्न खड़ा है। कैसे बचोगे पहचानने से? वह धूप में खड़ा है। कैसे बचोगे पहचानने से? वह भूखा खड़ा है; उपवास कर रहा है। कैसे बचोगे पहचानने से? वह शीर्षासन कर रहा है; कांटों पर लेटा है। तुम भागोगे कहां? तुम बचोगे कैसे? उसके सब मणि- माणिक्य ऊपर जड़े हैं।
साधु एक्झिबीशनिस्ट हैं, प्रदर्शनवादी हैं। असाधु और साधु में बहुत फर्क नहीं है। वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। असाधु भी चर्चा करते हैं अपनी असाधुता की। अगर तुम चोरों-डाकुओं के पास जाओ तो वे सब दावा करते हैं कि कितनों को लूटा, कितनों को मारा। झूठे दावे! मारे होंगे दो तो बताते हैं बीस। कारागार में चले जाओ, पागलखाने में चले जाओ। पूछो। तो तुम पाओगे, वहां अपराधी बता रहे हैं, एक-दूसरे पर रोब गांठ रहे हैं। काटी होगी जेब, बताते हैं खजाना लूट लिया। असाधु भी प्रदर्शनवादी है। वह भी कोई छोटा असाधु नहीं होना चाहता। वह भी कहता है, मुझसे बड़ा कोई असाधु नहीं। तुम्हारे साधु भी प्रदर्शनवादी हैं। वे कहते हैं, हमने इतने उपवास किए, इतनी तपश्चर्या की, इतने हजार दफे माला फेरी, लाख राम के नाम लिख डाले। वे भी हिसाब रखे हुए हैं। उनसे बड़ा कोई साधु नहीं है।
संत का कोई दावा नहीं है; क्योंकि न तो वह साधु है कि दावा कर सके और न असाधु है कि दावा कर सके। उसमें रात और दिन मिल गए हैं। रात भी प्रकट दिखाई पड़ती है--गहन अंधकार! भरी दोपहरी भी साफ है--सूरज जलता है! साधु तो संध्या जैसा है, जहां दिन और रात मिलते हैं; सब धुंधला-धुंधला है। वास्तविक संत संध्या जैसा है, जहां सब धुंधला है, जहां कुछ साफ नहीं है। रहस्यपूर्ण है; न रात है, न दिन है; दोनों मिल गए हैं। न जीवन है, न मृत्यु है; दोनों मिल गए हैं। न शुभ है, न अशुभ है; दोनों मिल गए हैं। संत का जीवन तो संध्या का जीवन है, जहां सब मिल गया है। जान सकेंगे वे ही जो मधुर के संगीत को सुन सकते हैं। जिनको दोपहरी की आदत है उनको संध्या न जंचेगी। उसमें त्वरा नहीं है, तेजी नहीं है; सब धीमा-धीमा, फीका-फीका है। जिनको गहन अंधेरी रात की आदत है, उनको भी संध्या जंचेगी नहीं। अंधकार की तीव्रता, अंधकार का घनापन वहां नहीं है, सब विरल है। रात भी साफ है; दिन भी साफ है। संध्या धुंधली है। संत धुंधला है। उसे वे ही पहचान सकते हैं जिनको धुंधले में देखने की आंखें हों जिनके पास, जो रहस्य में झांक सकते हों। जहां सीमाएं खो जाती हैं, वहां जिनको देखने की क्षमता हो। जहां परिभाषाएं मिट जाती हैं, जहां द्वंद्व लीन हो जाता है, वहां जिनके पास पहचान हो, वहां गति करने की जिनके पास क्षमता हो, वे थोड़े से लोग ही पहचान सकेंगे।
और तब संत के भीतर बड़े मणि-माणिक्य हैं। काश तुम संध्या में झांक सको!
तो संध्या में सारा दिन भी छिपा है और सारी रात भी। काश तुम अपरिभाष्य में झांक सको! तो सब सत्य भी वहीं छिपे हैं, सब असत्य भी। काश तुम एक संत में झांक सको! तो तुम्हें जीवन के सभी राज वहां मिलते हुए मिलेंगे। शुभ और अशुभ वहां आलिंगन किए खड़े हैं। वहां प्रथम और अंत एक साथ मौजूद हैं।
"संत बाहर से तो मोटा कपड़ा पहनते हैं, लेकिन भीतर हृदय में मणि- माणिक्य लिए रहते हैं।"
बाहर उनका कोई भी दावा नहीं है। इसलिए अगर तुम्हें दावेदारों को ही पहचानने की आदत है तो तुम संत को कैसे पहचान पाओगे? उसका कोई भी दावा नहीं है। संत बिना दावे के जीता है--बिना शर्त, बिना दावे के। संत सिर्फ जीता है। अगर तुम्हें जीवन की सुगंध पहचानने की कला आ गई तो तुम पहचान सकोगे। और तब संत से एक द्वार खुलता है, जो द्वार तुम्हें ठीक परमात्मा के मंदिर में पहुंचा दे।
लेकिन संत को पहचानना मुश्किल है। संत बिल्कुल सरल है, इसीलिए पहचानना मुश्किल है। संत जीवन जैसा सरल है, इसीलिए पहचानना मुश्किल है।
संत को साधना भी मुश्किल है। साधु को साध सकते हो; असाधु को साध सकते हो।
साधु हम कहते ही हैं उसको क्योंकि उसने बहुत साध लिया। असाधु भी इसीलिए कहते हैं कि उसने विपरीत साध लिया। संत को तुम न साध सकोगे, न समझ सकोगे।

संत को तो तुम सिर्फ अगर मौका दे दो तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होने का, संत के पास तो तुम अगर बैठ जाओ दो घड़ी, विश्राम कर लो, साधना की बात छोड़ दो, विधि-विधान छोड़ दो, संत के संग-साथ हो लो थोड़ी देर, दो कदम चल लो, दो कदम बैठ लो, तो संत संक्रामक है, तो उसका हृदय तुममें डोल जाएगा, उसकी धड़कन तुम्हारी धड़कन का भाग बन जाएगी। और तभी पहचान संभव है। तुम अगर संत को थोड़ी देर जी लो। इसलिए एकमात्र रास्ता है लाओत्से, रमण जैसे व्यक्तियों को जानने काः उनके पास होने की कला। वही शिष्यत्व है। सीखने को वहां कुछ है नहीं। तुम मछली हो; तैरना तुम जानते हो।
एक छोटी सी कहानी; विवेकानंद को बहुत प्रिय थी यह कहानी।
बड़ी पुरानी कहानी है कि एक सिंहनी एक पहाड़ी से छलांग लगाई दूसरी पहाड़ी पर। गर्भिणी थी; छलांग की चोट में बच्चा नीचे गिर गया। नीचे भेड़ों का एक झुंड गुजरता था। भेड़ों ने बच्चे को बड़ा कर लिया। भेड़ों के साथ बड़ा हुआ सिंह, लेकिन उसको याद तो यही रही कि मैं भेड़ हूं। वह भेड़ों जैसा ही मिमियाता। बड़ा हो गया, भेड़ों से बड़ा ऊंचा हो गया। न तो भेड़ें उससे डरतीं, न वह भेड़ों को खाता। उसे याद ही नहीं थी कि वह सिंह है।
एक दिन एक सिंह ने हमला किया भेड़ों के इस झुंड पर। देख कर सिंह चकित हुआ कि एक सिंह भी भेड़ों में घसर-पसर करता हुआ भाग रहा है! न तो भेड़ें उससे डरी हैं; न वह भेड़ों पर हमला कर रहा है। यह चमत्कार था! उसे भरोसा ही न आया। वह भागा; बामुश्किल इस सिंह को पकड़ पाया। पकड़ा तो वह मिमियाता था, रोता था, जैसे भेड़ें रोती हैं। और उस सिंह ने उसको बहुत डांटा-डपटा कि तू यह क्या कर रहा है? तुझे पता है तू कौन है? लेकिन वह मिमियाता ही रहा। वह भागना चाहता था। किसी तरह पकड़ कर सिंह उसे नदी के किनारे लाया। शांत जल में उसने कहा, झांक! दोनों ने सिर जल में किए।
क्षण भर में क्रांति हो गई। वह जो सिंह अपने को भेड़ समझता था, अचानक सिंहनाद निकल गया उसके मुंह से। सब बदल गया। बात ही बदल गई। उसकी आंखें और हो गईं। उसकी चाल और हो गई। कुछ करना न पड़ा। एक दूसरे सिंह के साथ पानी के दर्पण में अपनी छवि को पहचान लिया।
बस संत के पास होने से इतना ही हो सकता है। संत कुछ सिखाता नहीं; तुम
जो हो, वही तुम्हें बता देता है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ पंदरहवां प्रवचन

मूर्च्छा रोग है और जागरण स्वास्थ्य

Chapter 71

Sick-Mindedness

Who knows that he does not know is the highest;
Who (pretends to) know what he does not know is sick-minded. And who recognizes sick-mindedness as sick-mindedness
is not sick-minded.
The Sage is not sick-minded.
Because he recognizes sick-mindedness as sick-mindedness, Therefore he is not sick-minded.

अध्याय 71

रुग्ण मानसिकता

जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह सर्वश्रेष्ठ है;
जो उसे भी जानने का ढोंग करता है जो वह नहीं जानता,
वह मन से रुग्ण है।
और जो रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानता है,
वह मन से रुग्ण नहीं है।
संत मन से रुग्ण नहीं हैं।
क्योंकि वे रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानते हैं,
इसलिए वे मन से रुग्ण नहीं हैं।

अस्तित्व का ज्ञान असंभव है। उसे जानने का कोई उपाय नहीं है।
उपाय नहीं है, क्योंकि अस्तित्व मनुष्य के पूर्व है; मनुष्य के पश्चात भी है। मनुष्य तो एक छोटी सी तरंग है उठी सागर में। तरंग कैसे सागर को जान सकेगी? तरंग न थी तब भी सागर था, तरंग न हो जाएगी तब भी सागर होगा। क्षण भर को तरंग है। सागर शाश्वत है। तरंग की सीमा है, ओर-छोर है। सागर का कोई ओर-छोर नहीं, कोई सीमा नहीं। छोटी सी तरंग कैसे समा पाएगी पूरे सागर को अपने ज्ञान में? इठला सकती है; थोड़ी देर बेहोशी में यह भान भी बना सकती है कि जान लिया। लेकिन वह भ्रांति ही सिद्ध होगी।
माना कि पक्षी आकाश में उड़ सकते हैं। लेकिन कितने दूर? आकाश का कोई ओर-छोर है? पक्षियों के पंख आकाश की विराटता को कैसे नाप पाएंगे? जहां तक पक्षी उड़ लेंगे, समझेंगे वहीं आकाश का अंत आ गया। पंखों की सामर्थ्य जहां चुक जाती है वहां आकाश का अंत नहीं है, सिर्फ पंखों की सामर्थ्य चुक गई है। पक्षी भी इठला सकते हैं कि जान लिया, माप लिया, यात्रा कर आए। लेकिन क्या है उस यात्रा का मूल्य? और विराट की तुलना में क्या उसका अर्थ है?
मनुष्य भी विचार के पंख से थोड़ा सा जानने की कोशिश करता है; उड़ता है थोड़ा, तड़फड़ाता है। उस तड़फड़ाहट को तुम आकाश का माप लेना मत समझ लेना। उस तड़फड़ाहट की थोड़ी-बहुत उपयोगिता हो सकती है, लेकिन अंतिम अर्थों में कोई सार्थकता नहीं है। अंश पूर्ण को कभी भी जान नहीं सकता। यह तो ऐसे ही होगा कि जैसे मेरे हाथ मेरे पूरे शरीर को जानने का दावा करें। हाथ कैसे पूरे शरीर को जान सकेंगे? हाथ उतना ही जान सकते हैं जितने में वे हैं। शरीर उनसे बड़ा है। हम इस विराट की तुलना में अणु-मात्र भी तो नहीं हैं। यह अणु कैसे परम को जान सकेगा?

इसलिए जानने के दावे सिर्फ अज्ञानी करते हैं। ज्ञानी तो एक बात जान पाता है कि ज्ञान संभव नहीं है। ऐसा जानते ही सारी अकड़ खो जाती है। ऐसा जानते ही सारा अहंकार गिर जाता है। और उस निरहंकार अवस्था में कुछ घटता है, जिसे ज्ञान तो नहीं कह सकते, लेकिन जिसे अज्ञान कहना भी गलत होगा। मेस्टर इकहार्ट ने, जर्मनी के एक बहुत बड़े ईसाई फकीर ने, इस घड़ी के संबंध में एक वचन कहा है जो बड़ा स्मरणीय है। उसने कहा है, जब मैंने जान लिया कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, तत्क्षण एक पर्दा उठ गया; परमात्मा सामने खड़ा था। लेकिन तब मैं मौजूद न था। और इकहार्ट ने कहा, अगर क्षमा करें मुझे और भाषा की भूल-चूक न निकालें तो मैं कहना चाहूंगा, परमात्मा ने मेरे द्वारा स्वयं को जाना उस क्षण में। जैसे परमात्मा की ऊर्जा बही मुझसे और लौट गई अपने को स्रोत में। परमात्मा ने ही परमात्मा को जाना, मेरे माध्यम से। तब वे आंखें मेरी न थीं; तब उन आंखों में परमात्मा ही देख रहा था। परमात्मा ही देखने वाला था और परमात्मा ही देखा जाने वाला था। मैं तो खो गया था। पूर्ण ही पूर्ण को जान सकेगा। जब तुम मिट जाओगे तब तुम पूर्ण हो जाते हो। जब लहर मिट जाती है तो सागर हो जाती है। उस घड़ी में जानना हो सकता है। अब यह बड़ी उलझन की बात है। जब तक तुम चाहो कि जानना हो जाए तब तक हो न सकेगा; क्योंकि तुम मौजूद रहोगे। जब तुम राजी हो जाओगे अज्ञान के लिए भी, तभी तुम मिट जाओगे।
ज्ञान अहंकार का सबसे बड़ा सहारा है। इसलिए धन छोड़ दो, कुछ भी न होगा।
धन छोड़ कर यह मत सोचना कि अहंकार छूट गया। त्यागियों का अहंकार तो और भी गहन हो जाता है। क्योंकि त्यागियों को ख्याल होता है, उनके पास त्याग है। तुम्हारे पास तो धन है, ठीकरे हैं, जो आज नहीं कल मौत छीन लेगी। त्यागी को ख्याल होता है, उसने ऐसे सिक्के कमा लिए जो मौत के बाद भी उसके साथ जाएंगे। तुम्हारा बैंक बैलेंस यहीं है; उसका बैंक बैलेंस परलोक में है। उसने खाते आगे खोल दिए। और तुम्हारा धन तो चोरी जा सकता है; त्याग की कैसे चोरी करिएगा? तुम्हारे धन का तो दिवाला निकल सकता है; त्यागी का दिवाला कभी नहीं निकलता। उसका धन ज्यादा सूक्ष्म है। न छीना जा सकता, न चुराया जा सकता; न बाजार में कोई परिवर्तन हो जाए, इससे उसके त्याग के मूल्य में कोई परिवर्तन होता है। उसका अर्थशास्त्र ज्यादा गहरा है। तुम्हारे अर्थशास्त्र की नींव रेत पर रखी होगी; उसके अर्थशास्त्र की नींव चट्टानों पर रखी है।
इसलिए त्यागी तो धनी से भी ज्यादा अहंकारी हो जाता है। परिवार छोड़ सकते हो, धन छोड़ सकते हो, पद-प्रतिष्ठा छोड़ सकते हो; कुछ भी न होगा, जब तक ज्ञान न छोड़ो। क्योंकि ज्ञान गहरी से गहरी संपदा है। और ज्ञान की अकड़ गहरी से गहरी है। इसलिए तुम अक्सर देखोगे कि पंडित चाहे फकीर हो, कपड़े-लत्ते फटे-पुराने हों, लेकिन उसकी अकड़ और है। ब्राह्मण की अकड़ पांडित्य की अकड़ से पैदा हुई है। क्षत्रियों की तलवार में भी वह धार नहीं है जो ब्राह्मण के चेहरे पर होती है। बड़े से बड़े धनी के भी भीतर वैसा अहंकार नहीं है जो ब्राह्मण जब चलता है तो उसकी चाल में होता है। उसके पास कुछ भी नहीं है, लेकिन ज्ञान की संपदा है। इसलिए मैं देखता हूं कि कभी यह तो हो भी जाए कि पापी पहुंच जाए परमात्मा के पास, लेकिन पंडित कभी नहीं पहुंचता है। पंडित के पहुंचने का उपाय ही नहीं है। क्योंकि उसकी दीवाल बड़ी सूक्ष्म है, बड़ी मजबूत है। और उसके अहंकार की बड़ी गहनता में छिपी है, जिसको पहचानने के लिए बड़ी प्रगाढ़ और तीव्र आंखें चाहिए।
जिसने ज्ञान को छोड़ दिया उसके पास कुछ भी नहीं बचता; वह भीतर खाली हो जाता है। तिजोरी में रखा हुआ धन तो तिजोरी में रखा है; ज्ञान का धन भीतर भरा है। और जब तक तुम ज्ञान से भरे हो तब तक तुम अज्ञानी ही रहोगे। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर न उतर सकेगा। लहर मिटेगी न तो सागर उतरेगा कैसे? बूंद खोने को राजी न होगी तो विराट कैसे होगी? तब तुमने क्षुद्र को ही सब कुछ मान लिया। और तुम क्षुद्र में ही कैद हो जाओगे। अज्ञान को अनुभव कर लेना ज्ञान का पहला चरण है। अज्ञान को भर लेना ज्ञान से, और महा अज्ञान में गिर जाना है।

उपनिषदों में बड़ा प्यारा वचन है। ऐसा वचन दुनिया के किसी भी शास्त्र में नहीं। उपनिषद कहते हैं, अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। अज्ञानी का भटकना तो समझ में आ जाता है। हम सभी जानते हैं कि अज्ञानी भटकता है। जो जानता ही नहीं वह भटकेगा ही। लेकिन उपनिषद कहते हैं, जिसको भ्रांति है कि जानता हूं, वह महा अंधकार में भटक जाता है। तो अज्ञानी तो छोटे-मोटे अंधकार में होते हैं, पुकार लिए जा सकते हैं; प्रकाश से बहुत दूर नहीं हैं; पास ही उनका डेरा है। ज्ञानी बड़ी दूर की यात्रा पर निकल जाता है। सूरज की तरफ पीठ कर लेता है ज्ञानी। ज्ञानी यानी पंडित; ज्ञानी यानी प्रज्ञावान नहीं, कोई बुद्ध नहीं, कोई कृष्ण नहीं, पंडित! जिसने शब्दों को सीख लिया है; जिसने शास्त्रों को कंठस्थ कर लिया है; जिसने उधार विचारों से अपने को भर लिया है; और अब इस उधार और जूठन पर जिसकी सारी अकड़ है।
पहली बात ख्याल में ले लेंः अंश अंशी को नहीं जान सकता है, खंड अखंड को नहीं पहचान सकता है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। उपाय है तो यह कि खंड खुद भी अखंड हो जाए। ईश्वर को जाना नहीं जा सकता, लेकिन ईश्वर हुआ जा सकता है। जानने में तो फासला है, दूरी है; होने में कोई फासला नहीं है, कोई दूरी नहीं है। तुम ईश्वर होकर ही ईश्वर को जान पाओगे। तुम तुम रहते ईश्वर को न जान सकोगे।
इसलिए तो ज्ञानियों ने अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा की है। उस घोषणा में तुम अहं शब्द पर जोर मत देना। उस घोषणा में ब्रह्मास्मि पर जोर है। मैं ब्रह्म हूं, इसका अर्थ ही होता है कि मैं नहीं हूं और ब्रह्म है। अगर तुम इसका ऐसा अर्थ करो कि मैं ब्रह्म हूं तो तुम भूल में पड़ जाओगे। मैं ब्रह्म हूं, इसका अर्थ ही होता है कि अब मैं नहीं हूं, ब्रह्म ही है; इसलिए मैं ब्रह्म हूं। यह मैं के मिटने पर घटती है घटना। यह कोई मैं की उदघोषणा नहीं है।
ईश्वर हुआ जा सकता है; ईश्वर को जाना नहीं जा सकता। तुम अस्तित्व में डूब सकते हो, खो जा सकते हो; तुम अस्तित्व के साथ एक हो जा सकते हो, एकरस। उस एकरसता में ही ज्ञान है। लेकिन तब तुम जानने वाले न रहोगे, और न कोई होगा जिसे तुमने जाना। एक ही बचेगा, जो स्वयं को ही जानता है। तुम जा चुके होओगे।
इसलिए लाओत्से बहुत जोर देता हैः अज्ञान से तो छूटना ही है, ज्ञान से
भी छूटना है। अज्ञान से छूटे, यह काफी नहीं है। जरूरी है, पर्याप्त नहीं है। अभी ज्ञान से भी छूटना है। बीमारी से तो छूटना ही है, औषधि से भी छूटना है। कुछ बीमार होते हैं कि बीमारी से तो छूट जाते हैं, फिर औषधि से उलझ जाते हैं, फिर औषधि नहीं छूटती। क्योंकि डर लगता है, अगर औषधि छोड़ी तो कहीं बीमारी न लौट आए। तब फिर औषधि भी बीमारी हो गई।
बीमारी से भी छूटना है और सजगता रखनी है कि औषधि से जकड़ न हो जाए। कांटा पैर में लग जाए उसे तो निकालना ही है, लेकिन जिस कांटे से उसे निकालना है उसे घाव में नहीं रख लेना है। दोनों कांटों को एक साथ ही फेंक देना है। कांटे तो कांटे ही हैं। गड़ा हुआ कांटा भी कांटा है, और जिस कांटे से तुमने उसे निकाला वह भी कांटा है। दोनों को साथ ही फेंक देना है। अज्ञान तो मिटाना ही है; ज्ञान भी मिटाना है। ज्ञान से अज्ञान निकल जाए, तब तुम ज्ञान से अगर जकड़ जाओ, तो तुमने बंधन बदल लिए, बंधन मिटे नहीं। पहले तुम्हारे पास जंजीरें थीं लोहे की थीं, अब तुम्हारे पास जंजीरें सोने की हैं, या हो सकता है प्लैटिनम की हों। जंजीरें बदल गईं; सुंदर जंजीरें आ गईं; बड़ी प्यारी जंजीरें आ गईं, कीमती और बहुमूल्य। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारा कारागृह कायम रहा।
और लोहे की जंजीरों को तो तोड़ने का मन भी होता है, सोने की जंजीरों को तोड़ने का मन भी न होगा। कारागृह और भी गहन हो गया, मजबूत हो गया। अब तो जंजीरें आभूषण जैसी मालूम पड़ेंगी। अब तुम इसे कारागृह मानोगे ही न; तुमने बहुत सजा लिया।
अज्ञानी अंधकार में रहता है, बे-सजे अंधकार में; उसका घर खंडहर जैसा है। और जिनको तुम ज्ञानी कहते हो, उन्होंने घर को ठीक सजा लिया। उनका घर

महलों जैसा है जो बड़ा बहुमूल्य है। लेकिन वह घर वही है जिसमें अज्ञानी रहता था। क्योंकि अहंकार में कोई अंतर नहीं पड़ा है, घर बदला नहीं गया है। अज्ञान से तो छूटना ही है, ज्ञान से भी छूटना है। और तब एक अनूठे अज्ञान का जन्म होता है, जहां न ज्ञान है, न जहां अज्ञान; जहां जानने का दावा ही खो गया होता है। तो न जहां कोई न जानने वाला होता है, न जानने वाला होता है; जहां एक विराट शून्य छा जाता है; जहां भीतर कोई विचार की तरंग नहीं उठती; जहां परम मौन हो जाता है; उस मौन के क्षण में ही कोई प्रवेश करता है परमात्मा के मंदिर में। अस्तित्व तभी खोलता है द्वार जब तुम मिट जाते हो।
जलालुद्दीन रूमी की बड़ी प्यारी कविता है कि प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी। भीतर से पूछा गयाः कौन है? प्रेमी ने कहा, मैं तेरा प्रेमी। और भीतर सन्नाटा हो गया, उदास सन्नाटा। उसने बार-बार दरवाजा खटखटाया, भीतर से आवाज आई कि अभी तू तैयार नहीं। और द्वार तभी खुल सकते हैं जब तू तैयार हो। लौट जा! तैयार होकर वापस लौट।
प्रेमी वर्षों तक पहाड़ों में, जंगलों में, मौन में, शांति में, ध्यान में डूबा रहा। चांद उगे, गए; दिन, रातें, महीने, वर्ष बीते। और तब एक दिन प्रेमी वापस लौटा, द्वार पर दस्तक दी। फिर वही सवालः कौन है? इस बार उसने कहा, तू ही है; मैं नहीं। द्वार खुल गए।
जिस दिन भी तुम कह सकोगे अस्तित्व के द्वार पर जाकरः तू ही है, मैं नहीं; उस दिन द्वार खुले ही हैं। अगर ठीक से समझो तो द्वार कभी बंद ही न थे, तुम्हारे मैं ने ही द्वार बंद किए थे। पर्दा परमात्मा पर नहीं पड़ा है; पर्दा तुम्हारी आंख पर पड़ा है। परमात्मा पर से पर्दा नहीं उठाना है; नहीं तो एक आदमी उठा देता और सब दर्शन कर लेते। बुद्ध उठा देते, महावीर उठा देते, कृष्ण उठा देते, और बाकी अपनी जगह खड़े-खड़े दर्शन कर लेते। पर्दा अगर परमात्मा पर पड़ा होता तो एक बार उठ जाता, बात खतम हो गई। पर्दा हर आदमी की आंख पर पड़ा है। इसलिए बुद्ध कितना ही पर्दा उठाएं, तुम्हारी आंख से न उठेगा। महावीर कितना ही उठाएं, तुमसे न उठेगा। महावीर उठाएंगे तो उनका ही पर्दा उठेगा; तुम उठाओगे तो तुम्हारा उठेगा।
द्वार बंद नहीं हैं। तुम्हारे मैं की ही एक दीवाल है, जिसमें तुम ही घिरे हो। और ज्ञान तुम्हारे मैं को बड़ी गहरी शक्ति देता है। अज्ञान में तो तुम कंपते हो; ज्ञान में तुम अकड़ जाते हो। जैसे ही तुम्हें लगता है मैं जानता हूं, वैसे ही तुम्हारा भय खो जाता है। जैसे ही तुम्हें लगता है मैं जानता हूं, वैसे ही तुम कुछ और हो गए। इसे भी छोड़ देना है। अन्यथा तुम ज्ञान से जकड़े रहोगे। ज्ञान तुम्हारा बंधन हो जाएगा। और ज्ञान तो वही है जो मुक्त करे। तो जो ज्ञान बंधन बना ले वह अज्ञान से बदतर है। यह पहली बात। दूसरी बात ख्याल में रख लेनी जरूरी है कि जिसे हम ज्ञान कहते हैं वह
है क्या? वस्तुतः वह ज्ञान है? या कि ज्ञान का धोखा है?
ऐसा समझो कि अंतरिक्ष की यात्रा पर तुम्हें मंगल ग्रह का एक यात्री मिल जाए, और तुमसे पूछे, कहां रहते हो? और तुम कहो, कोरेगांव पार्क। और वह पूछे, कभी सुना नहीं, कहां है यह कोरेगांव पार्क? और तुम कहो, पूना। और वह कहे कि यह तो एक उलझन को तुम दूसरी उलझन से सुलझाते हो, कहां है पूना? और तुम कहो, महाराष्ट्र। वह पूछे, कहां है महाराष्ट्र? तो तुम कहो, भारत। और वह कहे, कहां है भारत? तो तुम कहो, पृथ्वी पर। वह पूछे, कहां है पृथ्वी? और तुम कहो कि सौर परिवार में। पर वह कहे कि तुम बात का हल नहीं कर रहे हो। तुम उत्तर नहीं दे रहे हो। मैं पूछता हूं अ, तुम बताते हो ब। जब मैं पूछता हूं ब, तो पता चलता है वह भी तुम्हें पता नहीं है, तब तुम बताते हो स।
तुम एक अनजान को दूसरे अनजान से हल कर रहे हो। तुम्हें किसी का भी पता नहीं है। क्योंकि जैसे ही उसका सवाल उठता है, तुम फिर पीछे कहीं और हट जाते हो; तुम कहते हो महाराष्ट्र, भारत, सौर परिवार। कहां है सौर परिवार? अगर पूछने वाला पूछता ही जाए तो एक घड़ी ऐसी आ जाएगी जब तुम्हें कहना पड़ेगा पता नहीं। और जब आखिरी बात पता नहीं है तो पहली बात, जिसको तुम आखिरी से हल करना चाहते थे, वह कैसे पता हो सकती है?

वैज्ञानिकों में एक मजाक चलता रहा है। एडिंग्टन ने अपनी किताबों में
उस मजाक की चर्चा की है। और वह यह है कि वैज्ञानिक से अगर पूछो कि व्हाट इ.ज मैटर? पदार्थ क्या है? तो वह कहता है, नाट माइंड। पदार्थ की परिभाषा? तो वह कहता है, जो मन नहीं। और पूछो, मन क्या है? तो वह कहता है, जो पदार्थ नहीं। पर ज्ञान कहां है? हम पूछते हैं एक बात, तुम दूसरे अज्ञान पर हट जाते हो। हम पूछते हैं, मन क्या है? तुम कहते हो, पदार्थ नहीं। स्वभावतः सवाल उठता है कि पदार्थ क्या है जिसको तुम मन को समझाने के लिए उपयोग में ला रहे हो? तुम तत्क्षण कहते हो, जो मन नहीं। जानते तुम दोनों को नहीं हो। एक अज्ञान से तुम दूसरे अज्ञान को छिपाने की कोशिश कर रहे हो।
हमारा सारा ज्ञान ऐसा है, कामचलाऊ है, यूटिलिटेरियन है; उसकी उपयोगिता है। लेकिन उसकी सार्थकता क्या है? हम जानते क्या हैं? छोटी-छोटी बातें भी तो हमें पता नहीं हैं।
डी.एच.लारेंस से एक छोटे से बच्चे ने पूछा कि वृक्ष हरे क्यों हैं? और लारेंस ने लिखा है कि मेरा सारा ज्ञान मिट्टी में गिर गया। वृक्ष हरे क्यों हैं? कुछ उत्तर न सूझा।
लारेंस बहुत ईमानदार आदमी है। बच्चे तो तुमसे भी ऐसे सवाल पूछते हैं जिनको बड़े-बड़े दार्शनिक जवाब नहीं दे सकते। लेकिन तुम उनका मुंह बंद करने की कोशिश करते हो। क्योंकि तुम यह मानने में डरोगे कि बच्चे के सामने तुम कहो कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे पता नहीं। हर बाप बच्चे का मुंह बंद करता है। वह कहता है, जब बड़े हो जाओगे तब जान लोगे। और खुद को भी पता नहीं है; बड़ा वह हो गया है। और जब तक बच्चा बड़ा होगा, जान नहीं पाएगा, लेकिन उसके बच्चे पैदा हो जाएंगे जो जान लेने लगेंगे। वह उनसे कहेगा, जब बड़े हो जाओगे तब जान लोगे। डी.एच.लारेंस ईमानदार आदमी है। उसने कहा कि वृक्ष हरे क्यों हैं, मुझे पता नहीं। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। मुझे पता नहीं।
तुम्हें पता है, वृक्ष हरे क्यों हैं? तुम कहोगे कि नहीं, वैज्ञानिक
को पता है। वह बता देगा कि क्लोरोफिल के कारण वृक्ष हरे हैं। लेकिन क्लोरोफिल वृक्षों में क्यों है? बात तो वहीं की वहीं रही, कोई हल नहीं होता इससे। हम पूछते हैं, वृक्ष हरे क्यों हैं? तुम सवाल को एक कदम पीछे हटा देते हो, तुम कहते हो, क्लोरोफिल के कारण। लेकिन क्लोरोफिल क्यों है वृक्षों में? जरा ही तुम ज्ञान को पूछते चले जाओ दो-चार कदम, और पाओगे अज्ञान आ गया। जहां-जहां ज्ञान पाओ, जरा पूछने की हिम्मत करना, दो-चार कदम भी न चल पाओगे कि अज्ञान आ जाएगा। और जैसे ही अज्ञान खुलेगा वैसे ही पता चलेगा कि ज्ञान सिर्फ ढांकना था।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बाजार गया था पत्नी के लिए साड़ी खरीदने। पत्नी भी चकित थी, क्योंकि पैसे उसके पास न थे। पर ईद करीब आ गई थी और कुछ भेंट वह देना चाहता था। खाली जेब चलने लगा तो पत्नी ने पूछा, खाली जेब? उसने कहा, घबरा मत, हर चीज में से रास्ता है। पत्नी ने कहा, होगा। साथ गई।
मुल्ला नसरुद्दीन ने दो साड़ियां चुनीं डेढ़-डेढ़ सौ रुपये की। पत्नी भी चकित हुई, इतनी कीमती साड़ियां खरीद रहा है और जेब खाली है! दुकानदार ने पैकेट भी बांध दिया, बिल भी तैयार करने लगा। तब उसने अचानक मन बदल लिया और उसने कहा कि ठहरो। बजाय दो साड़ियों के डेढ़-डेढ़ सौ की मैं यह तीन सौ की एक ही साड़ी ले लेता हूं। तीन सौ की साड़ी बांध दी गई। दबा कर साड़ी वह बाहर निकलने लगा। दुकानदार ने कहा, सुनिए, आप पैसा चुकाना भूल गए। उसने कहा, पैसा किस बात का? उन दो साड़ियों के बदले में ली है। दुकानदार ने कहा, वह तो आप ठीक कहते हैं, लेकिन उन दो का पैसा कहां चुकाया? उसने कहा, जो खरीदी नहीं उनका पैसा क्यों चुकाएं? वे तो आपके पास ही हैं।
आदमी का सारा ज्ञान ऐसा गोल-गोल है, किसी चीज का कुछ भी पता नहीं है। लेकिन सब चीजों पर हमने लेबल लगा दिए हैं कि पता है। जरूरी है। छोटा बच्चा जैसे पैदा होता है तो हम एक नाम रख देते हैं कि राम। पता हमें कुछ भी नहीं है कि इनका नाम क्या है। लेकिन बिना नाम के काम न चलेगा। एक लेबल लगा दिया कि इनका नाम राम, और हम उन्हें राम कहने लगे। उन्होंने भी सुना, वे भी अपने को राम मानने लगे। अब रास्ते पर कोई गाली दे देता है राम को और वे झगड़ा

करने को खड़े हो जाते हैं। जो बिना नाम के आया था; जिसका कोई नाम नहीं था; न किसी को पता है। कामचलाऊ एक नाम चिपका दिया है ऊपर से, नहीं तो मुश्किल पड़ेगी। घर में दस बच्चे हैं, किसको बुलाइएगा? और फिर इतनी बड़ी दुनिया है, अगर सब लोग बिना नाम के घूम रहे हों तो बड़ी अड़चन आ जाएगी। तो झूठा नाम भी बड़ा काम का है। लेकिन फिर कोई गाली दे दे राम को तो वे लकड़ी लेकर खड़े हैं, जान देने-लेने को राजी हैं--उस नाम के लिए जिसको वे लेकर कभी आए न थे; उस नाम के लिए जिसको लेकर वे कभी जाएंगे न; जो कि बीच की दुनिया की उपयोगिता थी; जिसकी कोई सार्थकता नहीं थी।
न तो नाम तुम्हारा है, न तुम्हारा कोई पता-ठिकाना है कि तुम कहां से आए हो, कि तुम कहां जा रहे हो, कि तुम क्यों आए हो, कि तुम क्यों जी रहे हो, कि तुम क्यों मर रहे हो। गहन अज्ञान है। लेकिन अज्ञान से घबराहट होती है, डर लगता है। तो हम अज्ञान के ऊपर ज्ञान को चिपका कर बैठ गए हैं। उससे थोड़ी सांत्वना मिलती है; सब चीजें मालूम होता है कि जानी-पहचानी हैं।
अजनबी आदमी तुम्हें ट्रेन में मिल जाता है, तुम अगर अकेले डब्बे में
हो तो पहला काम तुम करना चाहते हो कि जान लो इस आदमी का नाम क्या है? कहां का रहने वाला है? हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है? थोड़ा पता-ठिकाना कर लो। क्योंकि अकेले इसके साथ बैठे हो; सो जाओ, बिस्तर उठा कर ले जाए, पेटी खोल ले, क्या करे, गर्दन पर सवार हो जाए। थोड़ी जानकारी जरूरी है। लेकिन जानकारी तुम किससे लोगे? उसी आदमी से! और जानकारी वह क्या दे सकता है? वह कहेगा, हां, मेरा नाम राम है, मैं हिंदू हूं। अगर तुम भी हिंदू हो तो आश्वस्त हुए। अगर तुम मुसलमान हो तो दुश्मन कमरे में है। इसे कुछ पता नहीं इसके नाम का, इसे कुछ पता नहीं इसके धर्म का। धर्म भी दिया हुआ है। वह भी मां-बाप दे रहे हैं। नाम भी मां-बाप दे रहे हैं। तुम्हारी सारी आइडेंटिटी, तुम्हारा सारा पता किसी के द्वारा दिया गया है। और पूछोगे किससे तुम? इसी आदमी से। बातचीत कर लोगे; थोड़ी जान-पहचान कर लोगे। अब यह आदमी अजनबी न रहा। लेकिन तुमने कभी सोचा कि जिस पत्नी के साथ तुम तीस साल से रह रहे हो वह अभी भी अजनबी है, स्ट्रेंजर है। जान क्या पाए हो? तीस साल रह कर भी तो जानना संभव नहीं है। छोड़ो पत्नी को, अपने साथ तो तुम पचास साल से रह रहे हो; अपने को जान पाए हो? वह भी कुछ पता नहीं है। पूछो किससे? तुम्हें खुद ही अपना पता नहीं है। तुम पूछोगे किससे? और जब तुम्हें पता नहीं तो किसको पता होगा?
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पोस्ट आफिस गया एक पार्सल छुड़ाने। क्लर्क ने गौर से देखा, आदमी थोड़ा संदिग्ध मालूम पड़ा। उसने कहा कि लेकिन पक्का क्या कि यह नाम तुम्हारा ही है? और नाम तुम्हारे ही पार्सल है। उसने कहा कि प्रमाण है। जेब से उसने अपना पासपोर्ट निकाला, खोल कर बताया कि देख लो यह फोटो। उस क्लर्क ने गौर से फोटो देखा, नसरुद्दीन की तरफ देखा। कहा कि बिल्कुल तुम ही हो। पार्सल दे दी।
अब मजा यह है कि तुम पूछोगे किससे? नसरुद्दीन से ही पूछ रहे हो। उसी का पासपोर्ट है, उसी का फोटो है, मान लिया। लेकिन यह आदमी नसरुद्दीन है जिसके नाम पार्सल है, इसका क्या प्रमाण है?
कोई भी प्रमाण नहीं है। लेकिन जिंदगी चल रही है। जिंदगी बिना प्रमाण
के चल जाती है। लेकिन सत्य की खोज बिना प्रमाण के न चलेगी। तुम जो भी जानते हो, उससे तुमने किसी तरह जिंदगी में काम चला लिया है। लेकिन क्या वह ज्ञान है? क्या जानते हो तुम?
अब तक दुनिया में हजारों तरह की ज्ञान की धाराएं बनीं और सब एक समय के बाद अंधविश्वास हो जाती हैं। कभी वे ज्ञान की धाराएं थीं; अब वे अंधविश्वास हैं। दुनिया ने जितनी चीजों को अब तक ज्ञान समझा था, सब कचरे की टोकरी में जा चुका है। और तुम यह मत सोचना कि जिसे तुम ज्ञान समझ रहे हो वह कचरे की टोकरी में नहीं चला जाएगा। वह भी रोज जा रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अब तो विज्ञान पर भी भरोसा करना मुश्किल है। क्योंकि हर दिन सब बदल जाता है। विज्ञान पर बड़ी किताबें लिखना मुश्किल हो गया। क्योंकि जब तक किताब पूरी होगी तब तक विज्ञान बदल जाता है। तो छोटी-छोटी किताबें लिखी जाती हैं, पीरियाडिकल्स में लेख लिखे जाते हैं बिल्कुल छोटे।

क्योंकि इसके पहले कि लेख छपे, कहीं ऐसा न हो कि बात बदल जाए। इतनी जल्दी सब करना पड़ता है। तीन सौ साल में विज्ञान तीस हजार बार बदल चुका है। कुछ भी तय नहीं है। सब बदल रहा है। और जो कल सही था वह आज गलत हो जाता है। जो आज गलत है वह कल सही हो सकता है। जो आज सही है वह कल गलत हो सकता है।
आदमी का ज्ञान कामचलाऊ है। उसके ज्ञान में कभी भी जड़ें न होंगी। हो नहीं सकतीं। परमात्मा ही जान सकता है ठीक-ठीक क्या है। आदमी तो बाहर-बाहर घूमता है; कुछ भी इकट्ठा कर लेता है; भरोसा कर लेता है कि ज्ञान है; काम चला लेता है। काम भी चल जाता है। और यहीं कठिनाई है कि जिन चीजों से काम चल जाता है, हम समझते हैं कि वे ठीक होनी चाहिए, सत्य होनी चाहिए। जरूरी नहीं है। तुम्हारा भरोसा कि वे सत्य हैं काफी है। उनका सत्य होना जरूरी नहीं। देखो, दुनिया में कितनी पैथीज हैं! एलोपैथी है, आयुर्वेद है, यूनानी है, होमियोपैथी है, नेचरोपैथी है, एक्युपंक्चर है, हजार... । कौन ठीक है? अब तो वैज्ञानिक भी संदिग्ध हो गए हैं कि कुछ साफ मामला नहीं है कौन ठीक है। क्योंकि सभी इलाजों से मरीज ठीक होते पाए जाते हैं। और करीब-करीब अनुपात बराबर है। इस बात को देख कर कि होमियोपैथी से भी मरीज ठीक हो जाता है, एलोपैथी से भी ठीक हो जाता है, आयुर्वेद से भी ठीक हो जाता है--मरीज बड़े अनूठे हैं, कोई एक सिद्धांत को मान कर नहीं चलते मालूम होता है, बीमारी भी बड़ी अजीब है--तो पश्चिम में बहुत से प्रयोग किए गए जिसको वे प्लेसबो कहते हैं। एक मरीज को एलोपैथी की दवा दी जाती है। उसी बीमारी के दूसरे मरीज को सिर्फ पानी दिया जाता है। और बताया नहीं जाता कि किसको दवा दी जा रही है, किसको पानी दिया जा रहा है। बड़ी हैरानी है, सत्तर परसेंट दोनों ठीक हो जाते हैं! पानी जिसको मिलता है, वह भी उतना ही ठीक हो जाता है; जिसको दवा मिलती है, वह भी उतना ही ठीक हो जाता है।
तो ऐसा लगता है कि आदमी ठीक होना चाहता है इसलिए ठीक हो जाता है। और जिसका जिस पर भरोसा हो। अगर होमियोपैथी पर तुम्हें भरोसा है तो एलोपैथी तुम्हें ठीक न कर पाएगी। अगर एलोपैथी पर तुम्हें भरोसा है तो होमियोपैथी तुम्हें ठीक न कर पाएगी। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हें ठीक करता है। इसीलिए तो राख भी दे देता है कोई तो कभी काम कर जाती है।
मैं एक साधु को जानता हूं। उन्होंने मुझे कहा। ग्रामीण हिस्से में रहते हैं। बड़े सरल आदमी हैं। बेपढ़ा-लिखा इलाका है। आदिमवासी हैं सब आस-पास बस्तर में जहां उनका निवास है। बेपढ़े-लिखे लोग, जंगली लोग हैं। उन्होंने मुझे कहा कि एक दफे एक आदमी आया। लगता था कि वह क्षयरोग से बीमार है। उनको औषधि का थोड़ा ज्ञान है। तो उन्होंने कुछ दवा--अब वहां कुछ था नहीं लिखने को; ईंट का एक टुकड़ा पड़ा था; उस ईंट के टुकड़े पर ही उन्होंने लिख दिया कि तुम जाकर बाजार से और ये दवा ले लेना।
वह आदमी गैर पढ़ा-लिखा। वह कुछ समझा नहीं कि क्या मामला है। वह घर गया, उसने समझा कि यह ईंट दवा है, उसको घोंट-घोंट कर वह पी गया। जब तीन महीने में बिल्कुल ठीक हो गया तब वह आया कि थोड़ी औषधि और दे दें; ऐसे तो मैं बिल्कुल ठीक हो गया। उन्होंने कहा, भई औषधि तो बाजार में मिलेगी। उसने कहा, बाजार जाने की क्या जरूरत? आपने दी थी वह काम कर गई। उन्होंने पूछा, क्या किया तुमने? उसने कहा कि हम तो घोल-घोल कर पी गए उसको और बिल्कुल ठीक हो गए हैं। और बिल्कुल ठीक था, चंगा खड़ा था।
तो वह साधु मुझसे कह रहे थे कि फिर मैंने उचित न समझा कहना कि वह ईंट
थी और उसको पीने से टी.बी. ठीक नहीं होती। लेकिन जब ठीक हो ही गई तो अब कुछ कहना ठीक नहीं है, अब चुप ही रह जाना उचित है। और एक ईंट के टुकड़े पर वही मंत्र लिख कर दे दिया जो पहले लिखा था--वही दवाई का नाम। क्योंकि उसने कहा कि मंत्र लिख देना आप। ईंट तो हमारे गांव में भी है, लेकिन मंत्रसिक्त बात ही और है।
अब तो प्लेसबो पर सारी दुनिया में प्रयोग हुए हैं। और पाया गया है कि कोई भी दवा हो, सत्तर प्रतिशत मरीज तो ठीक होते ही हैं। इसलिए दवा का कोई बड़ा सवाल नहीं मालूम पड़ता।
क्या ज्ञान है? बुद्ध ने ज्ञान की परिभाषा की हैः जिससे काम चल जाए।
यह समझ में आती है परिभाषा। ज्ञान का यह अर्थ नहीं कि यह सत्य है; ज्ञान का

इतना ही अर्थ है कि जिससे काम चल जाए। वही ज्ञान है, कामचलाऊ ज्ञान है। जब काम न चले तो अज्ञान हो जाता है वही। जब काम चला देता है तो ज्ञान हो जाता है वही।
डाक्टरों को पता है कि जब भी कोई नयी दवा निकलती है तो पहले तीन-चार महीने बहुत काम करती है, फिर धीरे-धीरे असर कम होने लगता है। दवा वही; असर क्यों कम होने लगता है? पहले जब दवा निकलती है, नयी दवा, तो तीन-चार महीने तो ऐसा काम करती है जादू का कि लगता है कि अब इससे बेहतर दवा इस बीमारी के लिए नहीं हो सकेगी। क्योंकि डाक्टर भी नये के भरोसे से भरा होता है; मरीज भी नयी दवा के भरोसे से भरा होता है। और जब मरीज शुरू में ठीक होते हैं तो दूसरे मरीजों में भी संक्रामक खबर फैल जाती है कि यह दवा काम करती है। लेकिन फिर धीरे-धीरे उत्साह तो सभी चीजों में क्षीण हो जाता है। चार-
छह महीने में डाक्टर का उत्साह भी क्षीण हो जाता है। एकाध-दो मरीज ऐसे भी निकल आते हैं जिनको तुम ठीक ही नहीं कर सकते। उनके कारण दवा पर भरोसा गिर जाता है। जिद्दी तो सब जगह होते हैं। तीस परसेंट लोग जिद्दी होते हैं हर चीज में। बीमारी में सौ में से सत्तर आदमी जिद्दी नहीं होते, तीस आदमी जिद्दी होते हैं। वे किसी चीज में भरोसा नहीं उनका। वे पक्के नास्तिक हैं हर चीज में। हर चीज को वे इनकार की भाषा में देखते हैं। इस कारण उन पर कोई परिणाम नहीं होता। जैसे ही वे आदमी आ गए, और उन पर परिणाम न हुआ, मरीजों में भी खबर पहुंच जाती है कि अब काम न हो सकेगा। यह दवा भी गई। तब तत्क्षण दूसरी दवा खोजनी पड़ती है।
जो काम करे वह ज्ञान। मगर यह तो बड़ी कमजोर परिभाषा हुई। ज्ञान की परिभाषा तो होनी चाहिएः जो सदा है वही ज्ञान। लेकिन वैसा ज्ञान तो मनुष्य के पास नहीं है। वैसा ज्ञान तो तभी उपलब्ध होता है जब तुम अपनी मनुष्यता को भी छोड़ कर अतिक्रमण कर जाते हो। और तुम्हारी जानकारियां सिर्फ अज्ञान को छिपाने के उपाय हैं। उससे तुम जी लेते हो सुविधा से। लेकिन सुविधा से जी लेने का नाम जीवन के रहस्य को जान लेना नहीं है।
यह दूसरी बात। और तीसरी बात; फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।
जब भी तुम किसी चीज को जानते हो तो जानने का अर्थ ही होता है कि तुममें
और जिसे तुम जान रहे हो एक फासला है। वहां तुम बैठे हो, मैं तुम्हें देख रहा हूं। यहां मैं बैठा हूं, तुम मुझे देख रहे हो। अगर हम बहुत करीब आ जाएं तो देखना कम होने लगेगा। अगर हम अपने चेहरे बिल्कुल करीब कर लें, तो हम देख ही न पाएंगे। अगर हम दोनों की आंखें इतने करीब आ जाएं कि एक-दूसरे को छूने लगें, तो फिर कुछ भी न दिखाई पड़ेगा। ज्ञान के लिए फासला चाहिए, दूरी चाहिए। और यही अड़चन है। क्योंकि जिससे हम दूर हैं उसे हम जान कैसे सकेंगे? इंद्रियां उसे ही जान सकती हैं जो दूर है। और परमात्मा को, सत्य को जानने का एक ही उपाय है कि वह इतने पास आ जाए, इतने पास आ जाए कि हम और उसके बीच कोई भी रत्ती भर का फासला न रहे। तो परमात्मा को इंद्रियों से न जाना जा सकेगा। क्योंकि इंद्रियां तो दूर को ही जान सकती हैं। अतींद्रिय अनुभव से ही परमात्मा को जाना जा सकेगा। लेकिन तुम्हारा तो सारा ज्ञान इंद्रियों का है। कुछ तुमने आंख से जाना है, कुछ हाथ से जाना है, कुछ कान से जाना है। लेकिन सब जाना है इंद्रियों से। इंद्रियां मन के द्वार हैं। जो- जो इंद्रियां जान कर लाती हैं, मन को दे देती हैं। मन ज्ञानी बन जाता है। मन के पीछे छिपी है तुम्हारी चेतना।
और एक और ज्ञान है जो दूरी से नहीं जाना जाता, जो पास होने से जाना जाता है। जो प्रेम जैसा है; ज्ञान जैसा कम। परमात्मा को तो प्रार्थना में जाना जा सकेगा; जब हृदय भरा होगा गहन प्रेम से। परमात्मा को आंखों से तो नहीं देखा जा सकता। आंखों से तो जो देखा जा सकता है वह संसार है। या चाहो तो ऐसा कहो कि आंखों से जब तुम परमात्मा को देखते हो तो जो तुम्हें दिखाई पड़ता है वह परमात्मा का एक अंश है, संसार। जब तुम आंख बंद करके देखोगे तब तुम उसे देख पाओगे जो परमात्मा है। जब तुम सारी इंद्रियों को बंद करके देखोगे तब तुम उसे जान पाओगे जो परमात्मा है। क्योंकि इंद्रियों के बंद होते ही मन का व्यापार बंद हो जाता है।

विज्ञान, ज्ञान, सब इंद्रियों के ही माध्यम से जाने गए हैं। इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञानी का पहला लक्षण है यह जान लेना कि जो हम जानते हैं वह ज्ञान नहीं है। और इस ज्ञान से हमारा छुटकारा हो तो फिर परम ज्ञान की दिशा में पैर बढ़ें। जिसने इसी को ज्ञान समझ लिया वह इसे छाती से लगा कर बैठ जाता है; वह इसे मंजिल समझ लेता है। फिर यात्रा अवरुद्ध हो जाती है।
अब हम लाओत्से के सूत्र को समझें।
"जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह सर्वश्रेष्ठ है।"
इस ज्ञान को लाओत्से सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कहता हैः इस जानने को कि मैं नहीं जानता हूं। अज्ञानी है, ज्ञानी है, और परम ज्ञानी है। अज्ञानी का अर्थ हैः जो जानता भी नहीं, लेकिन यह भी नहीं जानता कि मैं नहीं जानता हूं। ज्ञानी का अर्थ हैः जो जानता नहीं, लेकिन जानता है कि जानता हूं। परम ज्ञानी का अर्थ हैः जो जानता है कि नहीं जानता हूं। तो परम ज्ञानी में एक बात तो अज्ञानी की है, नहीं जानता हूं। और एक बात ज्ञानी की है कि जानता हूं। अज्ञानी और ज्ञानी दोनों के पार हो जाता है परम ज्ञानी। अज्ञानी जानता नहीं, लेकिन यह भी नहीं जानता कि मैं नहीं जानता हूं। परम ज्ञानी भी नहीं जानता, लेकिन जानता है कि नहीं जानता हूं। ज्ञानी जानता नहीं, लेकिन जानता है कि जानता हूं। परम ज्ञानी इतना ही जानता है कि नहीं जानता हूं। इन दोनों के समन्वय में परम ज्ञान की प्रज्ञा का प्रज्वलन होता है। सुकरात ने कहा है कि जब मैं जवान था तब मैं जानता था मैं सब जानता हूं। ऐसा कुछ भी न था जो मेरी जवानी की अकड़ में मैं न जानता होऊं। फिर मैं बूढ़ा हुआ। तब धीरे-धीरे मेरे ज्ञान के भवन की ईंटें गिरने लगीं। प्रौढ़ता आई; हिम्मत आई स्वीकार करने की कि बहुत सी बातें मैं नहीं जानता हूं। और जैसे ही यह हिम्मत आई वैसे ही पता लगा कि जानता तो बहुत कम हूं, न जानना तो बहुत बड़ा है। और आखिरी क्षणों में सुकरात ने कहा है कि अब जब कि जीवन की धारा पूरी जा चुकी, जब मैं अब परिपूर्ण रूप से विनम्र हो गया हूं, वह दंभ और अहंकार खो गया, शरीर और मन की अकड़ जाती रही, और मौत ने द्वार पर दस्तक दे दी है, तो अब मैं कह देना चाहता हूं संसार को कि मैं सिर्फ एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।
ऐसा हुआ, कि यूनान में एक बहुत प्रसिद्ध मंदिर है, डेलफी का मंदिर। उस मंदिर के पुजारी पर देवी का अवतरण होता था। और वह मंदिर का पुजारी, जब देवी का अवतरण होता था, तो कई तरह की घोषणाएं करता था। वे सदा सच होती थीं। कुछ लोग डेलफी के मंदिर गए थे। जो भी लोग पूछते थे देवी की आविष्ट अवस्था में, पुजारी उत्तर देता था। किसी ने यह पूछ लिया कि यूनान में सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है? तो पुजारी ने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है! सुकरात परम ज्ञानी है।
वे लोग डेलफी के मंदिर से वापस आए। उन्होंने सुकरात से कहा कि डेलफी
के पुजारी ने देवी की आविष्ट दशा में घोषणा की है कि तुम सबसे बड़े ज्ञानी हो।
सुकरात ने कहा, कहीं जरूर कुछ भूल हो गई होगी। तुम वापस जाओ और पुजारी
को कहो कि सुकरात तो स्वयं कहता है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी और कोई भी नहीं; मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
लोग वापस गए। लोगों ने पुजारी को कहा कि आप तो कहते हैं, लेकिन खुद सुकरात इनकार करता है। और उसने कहा कि कहीं कोई भूल हो गई; तुम जाओ वापस और जाकर बता दो कि सुकरात ने तो कहा है कि मैं इतना ही भर जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन है! डेलफी के मंदिर की देवी हंसी और उसने कहा, इसीलिए तो हम उसे परम ज्ञानी कहते हैं। इसीलिए कि सुकरात स्वयं कहता है कि मैं अज्ञानी हूं, इसीलिए तो हमने उसे परम ज्ञानी कहा है। भूल कहीं भी नहीं हुई है। और हमारे वक्तव्य में और सुकरात के वक्तव्य में विरोध नहीं है। सुकरात जो कह रहा है उसी के कारण तो हम कहते हैं वह परम ज्ञानी है। अगर उसने स्वीकार कर लिया होता दुर्भाग्य से कि वह परम ज्ञानी है तो हमें अपना वक्तव्य बदलना पड़ता। फिर वह ज्ञानी न रह जाता।
ज्ञान विनम्र है; ज्ञान आत्यंतिक रूप से विनम्र है। ज्ञान का कोई भी दावा नहीं है।

"जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह सर्वश्रेष्ठ है।"
लेकिन ध्यान रखना, सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ऐसी घोषणा मत करना। अन्यथा चूक जाओगे। आदमी का मन बहुत बेईमान है। इस वचन को पढ़ कर तुम्हें भी लग सकता हैः तब तो बात सीधी साफ है; घोषणा कर दो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं और सरलता से सर्वश्रेष्ठ हो जाओ। सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ऐसी घोषणा की, तब तो तुम चूक गए। यह सर्वश्रेष्ठ होने का उपाय नहीं है। ऐसा जिसके जीवन में घट जाता है, सर्वश्रेष्ठता छाया की भांति उसका पीछा करती है। यह परिणाम है; उपाय नहीं। तुम सर्वश्रेष्ठ होने के लिए अगर अज्ञान का दावा करोगे तो वह दावा भी ज्ञान का ही दावा है और अहंकार का ही दावा है। तुम यह मत सोचना कि ज्ञान का ही दावा हो सकता है। आदमी चालाक है; अज्ञान का भी दावा कर सकता है। लेकिन दावे में बात है। और अगर सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ही दावा कर रहे हो तो कठिनाई में पड़ जाओगे।
और बहुत से धार्मिक लोगों को मैं ऐसी कठिनाई में पड़ा देखता हूं। मेरे पास धार्मिक लोग आ जाते हैं; मुझसे आकर कहते हैं कि पापी तो सुख में हैं, और हम पुण्य कर रहे हैं, फिर भी दुख में हैं। और शास्त्रों में कहा है, पुण्यात्मा को सुख मिलता है, स्वर्ग मिलता है।
वे सुख और स्वर्ग पाने के लिए पुण्य कर रहे हैं। वहीं चूक हो गई। पुण्य का पहला लक्षण तो यह है कि वह निर्लोभ होगा। अगर पुण्य भी लोभी हो तो पाप और पुण्य में फर्क क्या है? अब वे देख रहे हैं बैठे, राह लगाए हुए, हिसाब-किताब किए हुए बैठे हैं कि इतना पुण्य कर दिया और अभी तक सुख नहीं मिला। और शास्त्र में लिखा है, सुख मिलेगा। और जब सुख ही नहीं मिल रहा है तो स्वर्ग का क्या भरोसा करें? जब अभी नहीं मिल रहा तो आगे का क्या भरोसा करें? मिले न मिले! कोई लौट कर बताता भी तो नहीं। कहीं ऐसा न हो कि पाप से भी चूक जाएं, पुण्य करके फिजूल समय गंवाएं, और कुछ भी न मिले।
और उनको दिख रहा है कि पापी को सुख मिल रहा है। इसे थोड़ा समझें। जब किसी को दिखाई पड़ता है कि पापी को सुख मिल रहा है तब वह पुण्य के द्वारा ऐसा ही सुख चाहता है जैसा पापी को पाप के द्वारा मिल रहा है। पुण्यात्मा को तो दिखाई पड़ेगा कि पापी दुखी है। पुण्यात्मा को कभी दिखाई ही नहीं पड़ सकता कि पापी और सुखी हो सकता है। यह असंभव है! सिर्फ पापी मन को ही दिखाई पड़ता है कि पापी सुखी है। यही तुम्हारा सुख है। यही तुम्हारी सुख की परिभाषा है। यही तुम चाहते हो।
तुम भी चाहते हो कि धन का अंबार लग जाए। कुछ हिम्मतवर हैं, वे चोरी करके और तस्करी करके कर रहे हैं। तुम जरा कमजोर हिम्मत के हो, तुम दान-दक्षिणा देकर कर रहे हो। लेकिन चाहते तुम वही हो। तुम जरा डरे हुए आदमी हो, कायर हो। कहीं पकड़ा न जाओ, तो तुम सुगम उपाय खोज रहे हो। कुछ लोग पुलिस के अधिकारियों को रिश्वत देकर कर रहे हैं; तुम परमात्मा को रिश्वत देकर कर रहे हो। बाकी तुम करना वही चाहते हो। तुम्हारे मन के तर्क में जरा भी भेद नहीं है। और तुम्हारी आकांक्षा भी वही है। तुम बिना दांव पर अपने को लगाए पापी का सुख पाना चाहते हो। तुम ज्यादा चालाक हो।
पापी तो सीधा-सादा है। उसके गणित में बहुत जटिलता नहीं है। उसे जो चाहिए वह पागल होकर कर रहा है। चाहे किसी भी तरह मिले, येन केन प्रकारेण, कुछ भी हो परिणाम, वह लगा है। चोरी करेगा, डाका डालेगा, सब करेगा। वह कम से कम हिम्मतवर है। और जो चाहता है उसे करने की सीधी कोशिश कर रहा है। तुम बेईमान हो और तुम चालाक हो। तुम जेब भी काटना चाहते हो, और दूसरे की जेब में हाथ भी नहीं डालना चाहते। तुम चाहते हो कि दूसरे की जेब अचानक तुम्हारी जेब में अपने आप उलट जाए। या दूसरा खुद अपनी जेब में हाथ डाले और तुम्हारी जेब में पैसे रख दे। और तुम कर क्या रहे हो इसके लिए?
तुम सुबह रोज बैठ कर आधा घंटा राम-राम, राम-राम कर लेते हो; या थोड़े से चने-फुटाने रख लिए हैं, वे तुम भिखारियों को बांट देते हो; या जो दवाइयां तुम्हारे घर में काम नहीं आईं, तुम अस्पताल में दे आते हो। या जो कपड़े अब तुम्हारे योग्य नहीं रहे, वे तुम दान कर देते हो; बंगला देश भेज देते हो। तुम्हारा पुण्य बड़ा दीन है। और भीतर तुम्हारा वही मन छिपा है जो पापी का है। तब तुम चिंता में पड़ते हो।

अगर तुमने सच में ही पुण्य किया हो तो पुण्य के करने में ही महासुख बरस जाता है। कहीं बाद में थोड़े ही सुख मिलने वाला है! स्वर्ग कल थोड़े ही मिलने वाला है! न तो स्वर्ग कल है और न नरक कल है। तुम जो करते हो उस कृत्य में ही तो तुम पर दुख या सुख बरस जाता है।
कभी चोरी करके देखो। तब तुम पाओगे, कैसी छाती धड़कती है! कैसी चिंता, बेचैनी, परेशानी, घबराहट, भय! सो नहीं सकते, खुद के ही पैरों से डर जाते हो और चौंक जाते हो; खुद की ही आवाज डराती है। वह जो चोरी कर रहा है, तुम उसका भवन ही मत देखो कि उसने बड़ा भवन बना लिया है। तुम उसकी अंतरात्मा भी देखो कि प्रतिपल वह गल रहा है और प्रतिपल घाव बन रहे हैं। और प्रतिपल डरा हुआ है, बेचैन है, परेशान है, कंप रहा है। तुम उसके वस्त्र मत देखो, तुम उसके प्राण देखो। तुम उसके पास धन मत देखो, तुम उसकी भीतर की दशा देखो। तब तुम पाओगे, वह महा दुख में है; नरक उसे मिल रहा है।
लेकिन जिसने सच में ही दान दिया है--और दान का अर्थ है, किसी लोभ के कारण नहीं। क्योंकि लोभ अगर दान में हो तो वह दान कैसे होगा? तब तो सौदा होगा। और जिन्होंने शास्त्रों में तुम्हें वचन दिया है कि यहां एक पैसा दो और एक करोड़ गुना स्वर्ग में पाओगे, वे बेईमान हैं। और वे तुम्हारा मन जानते हैं। तुम्हारे शोषण का उन्होंने उपाय किया था। तुम इससे कम में दोगे भी नहीं। तुम थोड़ा सोचो भी तो! जुआरी भी इतना नहीं पाता कि एक पैसा लगाए, एक करोड़ गुना पाए। तुम्हारी आकांक्षा बड़ी भयंकर है; एक पैसा देकर एक करोड़ गुना तुम वहां पाना चाहते हो। काशी में और प्रयाग के पंडे तुम्हें शोषण कर रहे हैं इसीलिए। तुम्हारे लोभ का शोषण है। तुम चोर हो। क्योंकि एक पैसा देकर एक करोड़ गुना पाना चोरी की आकांक्षा है। इसलिए तुम्हें दूसरे चोर मिल जाएंगे जो तुमसे ज्यादा कुशल हैं और तुम्हारा शोषण करेंगे। अगर तुम बेईमान नहीं हो तो तुम्हें कोई बेईमान नहीं मिल सकता। अगर तुम चोर नहीं हो तो तुम्हारी चोरी नहीं की जा सकती। अगर तुम लोभी नहीं हो तो तुम्हारा शोषण नहीं किया जा सकता।
एक आदमी कुछ दिन पहले मेरे पास आया। और उसने कहा, एक साधु मुझे धोखा दे गया। वह बड़ा नाराज था; साधुओं के बड़े खिलाफ था। क्या धोखा दिया उसने? उसने कहा कि उसने पहले तो पता नहीं क्या किया कि एक नोट के दो नोट बना दिए। और फिर उसने कहा कि तुम्हारे पास जितने नोट हों सब ले आओ; मैं दोहरे कर देता हूं। तो हमने सब, जो भी घर में जेवर-जवाहरात था सब बेच दिया, सबके नोट कर लिए। और वह आदमी सब लेकर नदारद हो गया। वह बड़ा बेईमान था।
मैंने कहा, बेईमान तुम हो; वह नंबर दो था। तुम सौ के नोट के दो नोट बनाना चाहते थे, इस बात को तुम नहीं सोचते, और उसको तुम बेईमान कह रहे हो! अगर तुम न होओ तो उसके होने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम आधार हो, तुम जड़ हो। और सजा अगर मिलनी चाहिए, तो मुझसे अगर सजा मिलती हो तो पहले तुम, फिर हम उसको देखेंगे। लेकिन पहले तुम सजावार हो। तुम सौ रुपये के दो सौ रुपये करना चाहते थे, इसमें तुम्हें बेईमानी न दिखाई पड़ी? और जो ऐसा करने आएगा, वह साधु होगा? तो वह आदमी साधु नहीं था, यह तुम भी जानते हो। तुम भी साधु नहीं हो, तुम भी जानते हो। तुम दोनों गुंडे हो। दोनों का मेल मिल जाता है। पापी को तुम देखते हो कि सुख पा रहा है। इसका मतलब है कि वही सुख तुम्हारी भी आकांक्षा है।
नहीं, कोई पापी कभी सुख नहीं पाता। पुण्य के अतिरिक्त कोई सुख है ही नहीं। लेकिन पुण्य तक उठना बड़ा कठिन है। पुण्य का अर्थ है, निर्लोभ दान। पुण्य का अर्थ है, जो तुम्हारे पास है उसमें दूसरे को सहभागी बनाना। पुण्य का अर्थ है, जो सुख तुम्हें मिला है उसमें दूसरे को साझी बनाना--बेशर्त, कुछ पाने की आकांक्षा से नहीं।
कभी तुमने ख्याल किया हो, कोई रास्ते पर गिर पड़ा और तुमने उसे हाथ का सहारा देकर उठा दिया। उस क्षण अचानक तुम स्वर्ग में पहुंच जाते हो। कुछ भी तुमने किया नहीं है, सिर्फ हाथ बढ़ा दिया है और उसे उठा लिया है। लेकिन तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम्हारे भीतर की उदासी टूट जाती है। जैसे सुबह हो गई अचानक; जैसे बादल घिरे थे आकाश में, और थोड़ा सा बादल फट गए और तुम्हें नीला आकाश दिखाई पड़ा। न तो उस समय तुम्हें पुण्य का ख्याल था, न

शास्त्र का ख्याल था। बस सहज मनुष्यता के कारण घट गया। कोई आदमी गिर रहा था, तुमने उठा लिया। तुमने सोचा भी न कि इस समय फोटोग्राफर आस-पास है या नहीं? कोई अखबार वाला है या नहीं? खाली सड़क पर उठाने का फायदा क्या है? उस वक्त तुमने यह भी न सोचा कि परमात्मा का कोई आदमी लिख रहा है इस समय या नहीं? तुमने यह भी खड़े होकर विचार न किया कि इसको उठाएंगे तो क्या लाभ होगा भविष्य में? तुमने कुछ सोचा ही न। अनसोचे क्षण में तुम झुके, तुमने उठा लिया। तुमने धन्यवाद की भी आकांक्षा न की। तुम अपनी राह चले गए। अगर उस आदमी ने धन्यवाद भी न दिया तो भी तुम्हें मन में ऐसा न लगा कि कैसा आदमी था! मैंने इतना सहारा दिया, इसने धन्यवाद भी न दिया!
अगर तुम्हें इतना भी लग जाए कि इसने धन्यवाद नहीं दिया तो तुम चूक गए।
तब स्वर्ग बिल्कुल पास था और तुम फिर नरक में गिर गए। स्वर्ग होने का एक ढंग है। नरक भी होने का एक ढंग है।
इसलिए ख्याल रखना, लोभ के कारण दान दोगे तो वह लोभ का ही विस्तार है। अगर तुम सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ऐसी धारणा अपने मन में जमा लो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं तो इससे तुम सर्वश्रेष्ठ भी न हो जाओगे और न न जानने का वह अमृत तुम्हें मिलेगा, न न जानने की वह गहन शांति तुम्हें मिलेगी। तुम चूक जाओगे। और सभी शास्त्रों के साथ तुमने ऐसा ही किया है। तुम अपनी ही समझदारी से नासमझ हो; तुम अपनी कुशलता से चूकते हो।
मेरे पास लोग आते हैं। उनसे मैं कहता हूं कि ध्यान तो घटित होगा, लेकिन तुम ध्यान की बहुत अपेक्षा मत करो। क्योंकि अपेक्षा बाधा बन जाएगी। अगर तुम शांत होकर बैठे हो तो तुम बहुत ज्यादा आकांक्षा मत करो कि कब शांत होंगे। शांति की बात ही छोड़ दो। तुम सिर्फ शांत होकर बैठ जाओ। जब होंगे, होंगे। जल्दी मत करो। तो वे कहते हैं, अच्छा ऐसा ही करेंगे। दो-चार दिन बाद आकर वे कहते हैं कि जैसा आपने कहा था वैसा ही किया, लेकिन शांति अभी तक नहीं आई। चूकते ही जाते हैं। वह भी किया, लेकिन पीछे खड़े वे देखते ही रहे कि शांति आ रही कि नहीं। चार दिन हो गए, अभी तक नहीं आई!
शांति आती है उन क्षणों में जब तुम बिल्कुल मौजूद नहीं होते। तुम्हारी मौजूदगी अशांति है। जब तुम इतने गैर-मौजूद हो जाते हो, सारी आकांक्षाएं, वासनाएं, चिंताएं छोड़ कर बैठ रहते हो, जैसे कुछ करने को नहीं है, कुछ होने को नहीं है, कहीं जाने को नहीं है, कुछ पाने को नहीं है, जब तुम ऐसे बैठ रहते हो, अचानक तुम पाते हो, वर्षा होने लगी, मेघ घिर गए; शांति सब तरफ बरस रही है। तुम सराबोर हुए जा रहे हो। तुम मदमस्त हुए जा रहे हो। लेकिन जीवन में जो भी घटता है सर्वश्रेष्ठ, वह तुम्हारे कारण नहीं घटता। तुम्हारे कारण तो निकृष्ट ही घटता है। इसीलिए तो ज्ञानियों ने कहा है कि परम ज्ञान या परम अनुभूति प्रसाद है परमात्मा का, हमारा प्रयास नहीं।
तो तुम सर्वश्रेष्ठ होने के लिए मत अज्ञान की घोषणा कर देना। हां, अज्ञान की घोषणा तुम्हारे जीवन में आ जाए तो तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाओगे। वह परिणाम है।
"जो उसे भी जानने का ढोंग करता है जो वह नहीं जानता, वह मन से रुग्ण है।"
लाओत्से कहता है, वह बीमार है; उसे मनोचिकित्सा की जरूरत है। तुम अगर इसको सोचोगे तो तुम पाओगे, तब तो करीब-करीब हर आदमी मन से बीमार है। क्योंकि ऐसा आदमी मुश्किल ही है पाना जो सीधा-सीधा कह सके मैं नहीं जानता। तुमसे अगर कोई पूछता है, परमात्मा है? तो तुमने कभी यह जवाब दिया कि मैं नहीं जानता। नहीं, या तो तुमने कहा, नहीं है। अगर तुम नास्तिक हो, कम्युनिस्ट हो, तो तुमने कहा, नहीं है। वह भी ज्ञान का दावा है कि मुझे पता है, नहीं है। या तुमने कहा, है। वह भी ज्ञान का दावा है। लेकिन कभी तुम्हारे मन से सीधी-साफ बात उठी कि मुझे पता नहीं है; जो कि असलियत है। तुमसे कोई कुछ भी पूछे, उत्तर देने की बड़ी जल्दी और तैयारी है। ऐसा क्षण नहीं आता जब तुम निरुत्तर खड़े रह जाओ और वास्तविक रूप से कह दो कि नहीं, मुझे पता नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन से एक आदमी ने आकर कहा कि मैं गुरु की तलाश में हूं।
और कई गुरुओं के पास गया, लेकिन कुछ पाया नहीं। कुछ है नहीं उनमें। जल्दी ही उनका ज्ञान चुक जाता है। कोई रहस्य नहीं है ऐसा जो चुके ही न। तो किसी ने तुम्हारी मुझे खबर दी कि तुम्हारे पास बड़ा रहस्यपूर्ण गुप्त ज्ञान है। मैं उसी को जानने आया हूं। नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक, तुम मेरी सेवा में रहो, तैयारी करो। जब तुम तैयार हो जाओगे तब मैं गुप्त ज्ञान तुम्हें दे दूंगा। उस आदमी ने कहा कि ठीक है; सेवा शुरू करने के पहले मैं यह भी पूछ लेना चाहता हूं कि तैयारी की कसौटी, मापदंड क्या होगा कि मैं तैयार हो गया! नसरुद्दीन ने कहा, मापदंड यह होगा जिस दिन तुम यह कहने की हिम्मत जुटा सकोगे कि जो गुप्त ज्ञान मैं तुम्हें दे रहा हूं तुम उसे गुप्त रखने में समर्थ हो गए हो और किसी को बताओगे नहीं। उस आदमी ने कहा कि बात बिल्कुल ठीक है।
तीन वर्ष सेवा की। बार-बार उसने पूछा। नसरुद्दीन ने कहा, रुको, तैयार
हो जाओ। आखिर तीन वर्ष पर उसने कहा, अब मैं बिल्कुल तैयार हो गया हूं। और आप जो भी ज्ञान मुझे देंगे मैं उसे गुप्त रखूंगा।
नसरुद्दीन ने कहा, तब बात खतम हो गई। क्योंकि मेरे गुरु ने भी मुझसे यही कहा था कि जो भी ज्ञान मैं तुम्हें दे रहा हूं, गुप्त रखना। मैं भी गुप्त रखे हूं। और तुम गुप्त रख सकते हो तो मैं भी गुप्त रख सकता हूं। तुमने मुझे समझा क्या है? और अब जब बात उठ ही गई है तो मैं तुम्हें बता दूं कि मेरे गुरु के गुरु ने भी यही कहा था। और मेरे गुरु ने भी मुझे कभी बताया नहीं। ऐसा सदा से चला आया है। और तुमको भी मैंने बताया नहीं, लेकिन इससे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। तुम शिष्य खोज सकते हो, बताने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।
गुप्त ज्ञान चल रहे हैं। न तुम्हें पता है, न तुम्हारे गुरु को पता है,
न तुम्हारे शिष्य को पता है। पता होना बड़ा कठिन है; इतना आसान नहीं है। लेकिन दावेदारी बहुत आसान है। तुम भी बताना चाहोगे। कोई पूछ भर ले। तुम प्यासे तड़प रहे हो, चारों तरफ घूम रहे हो कि कोई मिल भर जाए जो पूछ ले तुमसे कुछ, और तुम बता दो।
एक बड़े मनोवैज्ञानिक के संबंध में मैंने सुना है कि वह एक बड़े अमीर आदमी की चिकित्सा कर रहा था, मनोविश्लेषण कर रहा था। एक दिन अमीर आदमी को आने में देर हो गई; कोई पांच-दस मिनट देर से पहुंचा।
उस मनोचिकित्सक ने बड़ी नाराजगी से कहा कि सुनो, अगर तुम न आए होते पांच मिनट और तो मैंने तुम्हारे बिना ही शुरू कर दिया होता!
आदमी इतना ज्यादा बताने को उत्सुक है कि तुम इसकी फिक्र ही नहीं करते
कि दूसरा आदमी सुनने को मौजूद भी है! जब तुम लोगों से बात करते हो तब दूसरा अक्सर मौजूद नहीं होता, भागने की तैयारी में होता है। लेकिन तुम बताने के लिए पकड़े रखते हो उसको। और जिन चीजों का तुम्हें कोई भी पता नहीं है। क्या पता है? ईश्वर का पता है? मोक्ष का पता है? स्वर्ग-नरक का पता है? पाप-पुण्य का पता है? शुभ-अशुभ का पता है? जीवन-मृत्यु का पता है? क्या पता है? लेकिन सबको तुम ऐसा मान कर चलते हो कि पता है। थोड़ी जांच-परख करो। गुरजिएफ के पास जब रूस का एक बहुत बड़ा विचारक ऑसपेंस्की गया। और ऑसपेंस्की ने बड़ी ऊंची किताबें लिखी थीं। एक किताब तो उसकी अनूठी है मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में। अगर पांच किताबों के नाम मुझे लेने को कहा जाए तो एक उसकी किताब का नाम लूंगा। उसकी किताब हैः टर्शियम आर्गानम। बड़ी अनूठी गणित और दर्शन की किताब है। कभी हजार साल में एकाध वैसी किताब पैदा होती है। तो वह आदमी जग-जाहिर था। और गुरजिएफ को कोई भी नहीं जानता था। गुरजिएफ एक साधारण फकीर था। जब ऑसपेंस्की गया तब यह किताब प्रसिद्ध हो चुकी थी, छप चुकी थी। गुरजिएफ से ऑसपेंस्की ने कहा कि मैं कुछ पूछने आया हूं।
गुरजिएफ ने कहा, बताऊंगा। लेकिन पहले यह कोरा कागज हाथ में ले लो, बगल
के कमरे में चले जाओ, और इस पर एक फेहरिस्त बना दो, एक तरफ लिख दो जो तुम जानते हो, और दूसरी तरफ लिख दो जो तुम नहीं जानते हो। क्योंकि तुम बड़े ज्ञानी हो, तुम्हारी किताब मैंने देखी है, तुम शब्दों के संबंध में बड़े

कुशल हो। तो तुम साफ खुद ही लिख दो कि जो तुम जानते हो। उसकी हम कभी चर्चा न करेंगे। जब तुम जानते ही हो, बात खतम हो गई। और साफ-साफ लिख दो जो तुम नहीं जानते हो। बस उसकी मैं तुमसे चर्चा करूंगा।
ऑसपेंस्की ने लिखा है कि मेरी जिंदगी में इतना कठिन क्षण कभी आया ही न था। उस कागज को लेकर मैं कमरे में चला गया। और सर्दी के दिन थे, बरफ पड़ रही थी, और मेरे माथे से पसीना चूने लगा। कलम उठाऊं, समझ में न आए कि क्या लिखूं? क्या जानता हूं? इस गुरजिएफ ने तो मुसीबत में डाल दिया। बहुत बार कोशिश की कि हां, यह मैं जानता हूं। लेकिन जब लिखने गया तब मुझे साफ हो गया कि जानता तो यह भी मैं नहीं हूं। उधार है सब जानकारी, दूसरों से सीख ली है; अपना तो कोई भी अनुभव नहीं है।
घड़ी भर बाद आकर कोरा कागज गुरजिएफ को दे दिया, और कहा, कुछ भी नहीं जानता हूं; आप शुरू कर सकते हैं। और गुरजिएफ ने ऑसपेंस्की को और ही ढंग का आदमी बना दिया, एक अनूठा ही आदमी बना दिया; उसका सारा जीवन रूपांतरित कर दिया।
लेकिन उस रूपांतरण की बुनियाद रखी है ऑसपेंस्की के स्वीकार में कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। और बड़ा कठिन रहा होगा ऑसपेंस्की जैसे जग-जाहिर व्यक्ति को, जिसको लोग ज्ञानी समझते थे, उसे यह लिखना निश्चित ही मुश्किल पड़ा होगा, यह कहना मुश्किल पड़ा होगा कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
जिस दिन तुम कह सकते हो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, तुम कोरे कागज
की तरह हो जाते हो। और अब इस कोरे कागज पर कुछ लिखा जा सकता है।
"जो उसे भी जानने का ढोंग करता है जो वह नहीं जानता, वह मन से रुग्ण है।"
वह बीमार है। उसके इलाज की जरूरत है। इस अर्थ में सभी लोग बीमार हैं। क्योंकि तुमने सभी ने दावे किए हैं उन बातों को जानने के जिन्हें तुम बिल्कुल नहीं जानते।
"और जो रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानता है, वह मन से रुग्ण नहीं है।"
लेकिन अगर तुम पहचान लो अपनी इस रुग्ण दशा को, तो तुम स्वस्थ होने शुरू हो गए। जिस आदमी को समझ में आ जाए कि मैं जानता तो नहीं हूं, लेकिन दावा करता हूं, उसका सुधार शुरू ही हो गया। वह यात्रा पर चल पड़ा। उसकी बदलाहट निकट है। उसका इलाज प्रारंभ हो गया। उसके जीवन में औषधि आ गई। ऐसा ही जैसे रात सपने में अगर तुम्हें पता चल जाए कि यह सपना है, तो नींद टूट जाती है। जब तक पता चलता है, यह सपना नहीं है, सत्य है, तभी तक नींद रहती है। पता चलना शुरू हुआ कि यह सपना है कि सपना गया। तुम आधे जागे हो ही गए।
ठीक ऐसे ही अगर मन के रोग तुम्हें पहचान में आ जाएं। और यह बड़ा से बड़ा रोग है। मनुष्यता ज्ञान से बिल्कुल विक्षिप्त हो गई है। तुम्हें समझ में आ जाए कि यह रोग है, जानता तो मैं कुछ भी नहीं हूं। तत्क्षण तुम सरल होने लगोगे, तुम्हारी ग्रंथियां खुल जाएंगी।
"संत मन से रुग्ण नहीं हैं।"
और लाओत्से कहता है, वही संत है जो साफ-साफ जानता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता। जितना तुम जागोगे उतना ही तुम्हें पता चलेगा कि तुम क्या जानते हो! एक ऐसी घड़ी आती है कि सब ज्ञान खो जाता है; तुम परम अज्ञान में खड़े रह जाते हो। उस परम अज्ञान के मौन का कोई मुकाबला नहीं है। उस परम अज्ञान की शांति का कोई मुकाबला नहीं है। उस परम अज्ञान में बड़ा प्रकाश है। और तुम्हारे ज्ञान में महा अंधकार था। उस परम ज्ञान--या परम अज्ञान--के क्षण में अचानक तुम खो गए, मिट गए, पिघल गए, और तुम्हारी जगह कुछ और अवतरित होने लगा। वही सत्य है। वही ब्रह्म है।
"संत मन से रुग्ण नहीं हैं। क्योंकि वे रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानते हैं, इसलिए मन से रुग्ण नहीं हैं।"
बड़ी अनूठी क्रांति घटित होती है अगर तुम अपनी स्थिति को ठीक-ठीक पहचान लो। स्थिति को ठीक-ठीक पहचान लेना, क्रांति शुरू हो गई। अगर कोई पागल आदमी मान ले और जान ले कि पागल है, वह आदमी ठीक होना शुरू हो गया। पागल कभी नहीं मानते। पागलखाने में जाकर तुम देखो, कोई पागल मानने को राजी नहीं

हो सकता कि वह पागल है। सारी दुनिया को पागल समझता है, खुद को पागल नहीं समझता।
जो लोग पागलों की चिकित्सा करते हैं, वे कहते हैं कि जब कोई पागल यह समझने लगता है कि वह पागल है, तब हम जानते हैं कि अब वह ठीक होने के करीब आ गया। क्योंकि इतना होश आ जाना कि मैं पागल हूं, काफी ठीक हो जाना है। कौन जानेगा कि मैं पागल हूं! जो जान रहा है वह पागलपन से अलग हो गया, भिन्न हो गया। मन दूर रह गया; चेतना ऊपर उठ गई। तभी तो चेतना जान सकती है कि मैं पागल हूं।
अब यह तो बड़ी अदभुत बात हो गई। यह तो ऐसा उलटा हो गया हिसाब कि जो समझते हैं कि हम पागल नहीं हैं वे पागल हैं। और जो समझते हैं कि हम पागल हैं वे पागल नहीं हैं।
तुम्हें कभी ख्याल आया कि तुम पागल हो? कभी तुम शांत होकर भीतर मन को देखे कि कितना पागलपन चल रहा है? कभी एक कोरे कागज को लेकर बैठ जाओ और मन में जो भी चलता हो लिख डालो। जैसा चलता हो वैसा ही लिख डालो; जरा भी बदलो मत। तुम बड़े हैरान होगे, तुम पाओगे कि यह तो बिल्कुल पागलपन है।
लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो अपने ही मन की तरफ, और तुम्हारा पागलपन बढ़ता जाता है। हर आदमी पागल होने के करीब है। मनसविद कहते हैं कि सौ में से पचहत्तर आदमी बिल्कुल पागलपन के करीब ही खड़े हैं। जरा सा धक्का--दिवाला निकल जाए, पत्नी मर जाए, बच्चा मर जाए, कोई एक्सीडेंट हो जाए, आग लग जाए मकान में--जरा सा धक्का, और वे पागल हो जाएंगे। वे निन्यानबे डिग्री पर हैं। एक डिग्री और, सौ डिग्री पर वे पागल हो जाएंगे।
हर आदमी करीब-करीब पागलपन के करीब है, मगर पता किसी को भी नहीं। मजे से तुम जीए चले जाते हो; अपने पागलपन को भीतर दबाए रखते हो, बाहर एक चेहरा बनाए रखते हो। इस चेहरे के पीछे झांकना जरूरी है। अन्यथा खतरा है कि तुम कभी पागल हो जाओगे। या तो मनुष्य विक्षिप्त हो सकता है या विमुक्त हो सकता है, दो उपाय हैं। जो विमुक्त न होगा वह विक्षिप्त हो जाएगा। और जिसे विक्षिप्त होने से बचना हो उसे विमुक्त होने की चेष्टा करनी चाहिए। और विमुक्त होने का पहला लक्षण कि तुम अपने पागलपन को ठीक-ठीक पहचान लो, सब तरफ से उसका निरीक्षण कर लो। इस निरीक्षण में ही तुम पाओगे कि तुम मालिक होने लगे। मन का ठीक-ठीक निरीक्षण तुम्हें मन का मालिक बना देगा।
और अगर तुम अपने रोग को जान लो, जैसा रोग है, तो एक बड़ी सूत्र की बात है। शरीर की चिकित्सा में निदान के बाद औषधि की जरूरत पड़ती है, डायग्नोसिस पहले। और जो लोग शरीर की चिकित्सा करते हैं उन्हें पता है कि असली चीज डायग्नोसिस है; निदान बड़ी से बड़ी चीज है; औषधि तो कोई भी बता देगा, एक दफा निदान हो जाए बीमारी का। तो ठीक से समझा जाए तो नब्बे प्रतिशत तो निदान और दस प्रतिशत औषधि--शरीर की चिकित्सा में। मन की चिकित्सा में सूत्र और भी गहन है। वहां तो सौ प्रतिशत निदान। क्योंकि निदान ही वहां चिकित्सा है। तुम अगर ठीक से जान लो कि तुम्हारी बीमारी क्या है, बात समाप्त हो गई। तुम सचेतन हो जाओ बीमारी के प्रति, तुम्हारी सचेतना की अग्नि में ही बीमारी राख हो जाती है।
इसलिए ज्ञानियों ने एक ही बात कही है बार-बार, हजार बार, कि तुम जाग जाओ तो मन समाप्त हो जाता है; तुम होश से भर जाओ, बस इतना ही काफी है। बुद्ध ने कहा है, सम्यक स्मृति, राइट माइंडफुलनेस। कृष्णमूर्ति चिल्लाए चले जाते हैं, अवेयरनेस, जागो, होश सम्हाल लो। कबीर कहते हैं, सुरति, होश। महावीर से किसी ने पूछा, साधु कौन? तो महावीर ने कहा, असुत्ता मुनि। जो सोया हुआ नहीं, वह साधु, वह मुनि। और असाधु कौन? तो महावीर ने कहा, सुत्ता अमुनि। जो सोया हुआ है, जो जागा हुआ नहीं, वह असाधु। महावीर ने यह नहीं कहा कि जो बुरा करता है वह असाधु; महावीर ने यह नहीं कहा कि जो भला करता है वह साधु। महावीर ने कहा, जो जागा हुआ है वह साधु, और जो सोया हुआ है वह असाधु। तुम्हारे सोए होने में ही सारा रोग है। तुम्हारे जागने में ही निदान है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ सोलहवां प्रवचन

संत स्वयं को प्रेम करते हैं

Chapter 72

On Punishment (1)

When people have no fear of force,
Then (as is the common practice) great force
descends upon them.
Despise not their dwellings,
Dislike not their progeny.
Because you do not dislike them,
You will not be disliked yourself.
Therefore the Sage knows himself, but does not show himself, Loves himself, but does not exalt himself.
Therefore he rejects the one (force) and accepts
the other (gentility).

अध्याय 72

दंड (1)

जब लोगों को बल का भय नहीं रहता,
तब, जैसा आम चलन है, उन पर महाबल उतरता है। उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो,
उनकी संतति का तिरस्कार मत करो।
क्योंकि तुम उनका तिरस्कार नहीं करते,
इसलिए तुम खुद भी तिरस्कृत नहीं होओगे।
इसलिए संत अपने को जानते हैं, पर दिखाते नहीं,
वे अपने को प्रेम करते हैं, पर उछालते नहीं।
इसलिए एक को, शक्ति को, वे अस्वीकार करते हैं,
और दूसरे को, कुलीनता को, स्वीकार करते हैं।

मनुष्य दो प्रकार के हैं। एक वे जो अंधेरे में जीते हैं और दूसरे वे
जो आलोक में जीते हैं।
अंधेरे में जीने वाले को स्वयं का कोई पता नहीं। और जिसे स्वयं का पता नहीं है उसे दूसरों का क्या पता हो सकता है। उसका सारा जीवन ही एक गहन भ्रांति होता है। उसका जीवन ऐसा है जैसा एक सपना, जो निद्रा में देखा गया है और जागने पर जिसकी धूल भी हाथ में नहीं आती।
जो आलोक में जीता है--आलोक का अर्थ ही है कि वह स्वयं के प्रकाश को उपलब्ध हुआ--वह अपने को भी देखता है, दूसरे को भी देखता है। उसका जीवन आंख वाले का जीवन है, जाग्रत का जीवन है। उसके जीवन में ही सत्य की प्रतीति होती है।
जो अंधेरे में जीता है उसका सारा जीवन भय की एक लंबी कथा होगी। वह भयभीत ही जीएगा। कारण स्पष्ट है। जिसे अपना पता नहीं वह कंपता ही रहेगा। उसके पास खड़े होने की जगह नहीं। और उसे खुद का भरोसा नहीं है। उसे यह भी भरोसा नहीं है कि वह है भी या नहीं। उसे यह भी पक्का पता नहीं है--कहां से आता है, कहां जाता है। कुछ सूझ-बूझ नहीं पड़ता; अंधेरे में टटोलता है। अंधे आदमी की तरह कोशिश करता है कि मार्ग को खोज ले। लेकिन सिवाय भटकन के और कुछ हाथ लगता नहीं।

अंधेरे में जीने वाला आदमी जीवन भर भयाक्रांत जीता है। यह उसका लक्षण है। हर चीज भय से ही उठती है उसके भीतर। अगर वह धन कमाता है तो भय के कारण; शायद धन से सुरक्षा मिल जाए। अगर वह नैतिक आचरण करता है तो भय के कारण कि शायद नीति कवच बन जाए। अगर वह मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है तो भय के कारण कि शायद परमात्मा का सहारा मिल जाए। भयभीत आदमी का परमात्मा भी भय का ही एक रूप होता है। उसका भगवान उसके भय से ही जन्मता है। वह उसका अनुभव नहीं है; वह उसके भय का प्रक्षेपण है। मानता है परमात्मा को, क्योंकि बिना माने और भी भयभीत होगा। विश्वास से थोड़ा सा भय को सहारा मिलता है, थोड़ी सांत्वना मिलती है। रात अंधेरी भला हो, लेकिन कोई ऊपर बैठा है जो देखता है। कितनी ही जीवन में अर्थहीनता हो, लेकिन अंततः किसी परमात्मा ने सृष्टि को बनाया है; जरूर कोई अर्थ होगा। और मुझे पता न हो, लेकिन उसे पता है। मैं भटकूं, लेकिन अगर उसकी शरण गया तो वह मुझे उठा लेगा। ऐसा भयभीत आदमी सोचता है।
मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे ऐसे भयभीत आदमियों से भरे हुए हैं। वस्तुतः भयभीत आदमी ही वहां जाता है। अंधे ही वहां इकट्ठे होते हैं। अमावस की गहरी रात में ही तुम्हारे सारे तीर्थों का जन्म है। तुम्हारी पूजा, तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी स्तुतियों की विधियां, गौर से देखना, तुम्हारे भय से उठी हैं। तुम डर रहे हो। तुम कंप रहे हो। वह कंपन ही तुम प्रार्थना बना लेते हो। उसी कंपन से ओंकार का नाद उठ रहा है। ऐसे ही जैसे अंधेरी रात में कोई आदमी एकांत गली से गुजरता है, जोर से गीत गुनगुनाने लगता है। जिसने कभी गीत न गाया उसको भी अंधेरे में गीत गाने का ख्याल आता है। क्या होगा कारण? अपनी ही आवाज को सुन कर लगता है, अकेला नहीं हूं। जोर से अपनी ही आवाज की गूंज में अंधेरे और स्वयं के बीच एक पर्दा खड़ा हो जाता है। गुनगुनाहट हिम्मत दे देती है। कदमों में बल आ जाता है। पर यह सब गुनगुनाहट, यह सब बल उठ रहा है भय से।
भय से कहीं शक्ति का जन्म हुआ है? इसलिए तो सारा धर्म करीब-करीब व्यर्थ चला जाता है। क्योंकि सारा धर्म मनुष्य के भय से जुड़ जाता है।
यह जो भयभीत आदमी है इसकी मनस-दशा को ठीक से समझ लेना चाहिए, क्योंकि
सौ में निन्यानबे मौके पर तुम्हारी मनस-दशा भी इसी भयभीत आदमी की मनस-दशा होगी। और तुमने अगर इसे ठीक से न समझा तो तुम दूसरी तरह के आदमी कभी भी न बन सकोगे। इस भयभीत आदमी को न तो प्रेम का कोई उपाय है, न प्रार्थना का। क्योंकि प्रेम तो तभी जन्मता है जब भय समाप्त हो जाता है। और प्रार्थना तो अभय में पैदा होती है। अभय की भूमि चाहिए, तभी प्रार्थना का बीज खिलता है। और अभय से उठे स्वर ही परमात्मा तक पहुंचते हैं।
भयभीत आदमी क्यों भयभीत है? उसके भय का मूल कारण क्या है?
मूल कारण हैः अमावस की अंधेरी रात में, आत्म-अज्ञान की अंधेरी रात में मौत ही सत्य मालूम होती है, जीवन सत्य मालूम नहीं होता। मौत प्रतिपल आती मालूम होती है, और जीवन तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। जीवन के नाम पर तो आपाधापी मालूम होती है, व्यर्थ की दौड़ मालूम होती है, जिसका कोई प्रयोजन, जिसका कोई अर्थ कहीं दिखाई नहीं पड़ता। और मृत्यु प्रतिपल आती मालूम पड़ती है, हर क्षण उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ती है। जगह-जगह वही द्वार पर दस्तक देती है। अंधेरी रात में तुम क्यों डर जाते हो? मौत मालूम होने लगती है सब तरफ छिपी हुई; कहीं पत्ता भी हिलता है तो लगता है मौत के चरण पड़ रहे हैं। हवा का झोंका द्वार को खटखटाता है, लगता है, मौत ने दस्तक दी।
जैसी अंधेरी रात में दशा होती है, उससे भी भयंकर दशा आत्म-अज्ञान की है। क्योंकि अंधेरी रात का अंधेरा तो बाहर है, आत्म-अज्ञान का अंधेरा भीतर है। भीतर का अंधेरा बहुत गहन है। भयभीत, अंधेरे में डूबा आदमी मौत को ही सच मानता है, जीवन को नहीं। जीवन तो अभी आया, अभी गया। जीवन तो ऐसा है, अंधेरी रात में जैसे जुगनू की चमक; हुई कि न हुई। और इस जुगनू की चमक का उपयोग भी क्या करोगे? उस जुगनू की चमक में जी तो नहीं सकते। उस जुगनू की चमक से कोई प्रकाश तो नहीं हो सकता, कोई रास्ता तो दिखाई नहीं पड़ सकता। वस्तुतः जुगनू की चमक के बाद रात का अंधेरा और घना हो जाता है। ऐसा ही अंधेरे में जीने वाले आदमी का जीवन है--जुगनू की चमक की भांति। अंधेरा भयंकर है, और जीवन बस

जुगनू जैसा है। मौत व्यापक है, विराट है, और जीवन बस जरा सी चहल-पहल है। फिर मौत आएगी, पर्दा गिरेगा, सब मिट्टी में मिट्टी मिल जाएगी।
घबड़ाहट स्वाभाविक है। अगर तुम मिट्टी से ही बने हो तो अभय हो भी कैसे सकता है? अगर तुम मिट्टी के ही पुतले हो और अभी तभी गिरे। जरा सी वर्षा आएगी और रंग-रोगन बह जाएगा। और जरा सा झोंका आएगा और तुम्हारा भवन गिर जाएगा। जरा सी देर की बात और है, और तुम कब्र पर पहुंच जाओगे; जिन्हें तुमने अपना कहा था वे ही तुम्हें चिता पर जला आएंगे। बस जरा सी देर और है। इस जरा सी देर को कोई कैसे जीवन माने? इस जरा सी देर के कारण ही कोई कैसे आश्वस्त हो? यह थोड़ा सा जो क्षणभंगुर जीवन है बुलबुले जैसा, इससे कैसे कोई भरोसा करे? डर स्वाभाविक है।
आलोक में जीने वाले आदमी का जीवन बिल्कुल भिन्न है। जिसने स्वयं को जाना उसने एक बात जानी कि मौत झूठ है, जीवन सत्य है। जिसने स्वयं को पहचाना, उसे पता चला, मैं तो अमृत हूं। मृत्यु न तो कभी हुई है और न कभी हो सकेगी। मृत्यु सबसे ज्यादा असंभव घटना है जो कभी हुई नहीं, कभी होगी भी नहीं; जिसका होना हो ही नहीं सकता। जो है वह मिट कैसे सकता है? रूप बदलते होंगे, वस्त्र बदलते होंगे, घर बदलते होंगे, यात्रा नये आयाम लेती होगी; लेकिन जो है वह सदा है, शाश्वत है।
पर यह तो दिखता है आलोक में। जैसे ही यह दिखाई पड़ता है कि मृत्यु नहीं
है, भय विसर्जित हो जाता है। और तभी उठती है प्रार्थना। तब उस प्रार्थना में मांग नहीं होती। तब उस प्रार्थना में अनंत धन्यवाद होता है। और तभी जुड़ते हैं हाथ। लेकिन तब किसी तीर्थयात्रा पर जाने की जरूरत नहीं होती। तुम जहां हो, तुम जैसे हो, वहीं चारों तरफ तीर्थ हो जाता है। सारा अस्तित्व तीर्थ हो जाता है; क्योंकि सब तरफ उसी अमृत की धुन बज रही है। जो तुम्हारे भीतर जागा है, आज तुम पाते हो इस जागरण के क्षण में कि सभी जगह वही जागा हुआ है। पत्ते-पत्ते में, पत्थर-पत्थर में वही झांक रहा है। जो अमृत धुन तुम्हारे भीतर बजी है वही धुन सारे लोक-लोकांतर में बज रही है। चांद-तारों में भी उसी की गूंज है। नदी-झरनों में भी उसी का गीत है। पशु-पक्षियों में भी उसी के बोल हैं।
जिस दिन तुम अपने को पहचान लेते हो, अचानक तुम सारे अस्तित्व को पहचान लेते हो। उस पहचान से भय तो विसर्जित हो जाता है और जन्म होता है प्रेम का। अज्ञान के साथ भय है, ज्ञान के साथ प्रेम है। और दुनिया में दो तरह के आदमी हैं। एक जो भय के आधार से जीते हैं। वे जीते क्या हैं, उनका जीना नाम मात्र को है। और दूसरे जो प्रेम के आधार से जीते हैं। उनका ही जीवन है। भय से तो केवल लोग मरते हैं, बार-बार मरते हैं। कहावत है, कायर हजार बार मरता है। हजार भी कम है। कायर प्रतिपल मरता है, क्योंकि मौत हर घड़ी मालूम पड़ती है। सब तरफ मौत ही दिखाई पड़ती है। कायर मरा हुआ ही जीता है। सिर्फ ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति एक बार मरता है; कायर हजार बार मरता है।
ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति एक बार मरता है। वह मरण भी बड़ा अनूठा है। वही मरण तो रूपांतरण है भय से प्रेम में। वही मरण तो रूपांतरण है अंधकार से प्रकाश में। वही मरण क्रांति है। उसी को हम समाधि कहते हैं। पुराना मर जाता है; नये का जन्म होता है। और ऐसे नये का जन्म होता है जो फिर कभी पुराना नहीं पड़ता। क्योंकि जो पुराना पड़ जाए वह नया है ही नहीं; जो आज नया है, कल पुराना पड़ जाएगा। वह आज भी क्या खाक नया था जिसको थोड़ा सा समय पुराना कर देगा? ऐसे नये का जन्म होता है जो सनातन, शाश्वत नया है; जो फिर कभी पुराना नहीं पड़ता। उसी को हम धर्म की भाषा में परमात्मा कहते हैं। मनुष्य मिट जाता है और परमात्मा का जन्म होता है। तुम जैसे हो वैसे खो जाते हो; तुम जैसे होने चाहिए उसका जन्म होता है। तुम तो बिल्कुल विलीन हो जाते हो अंधकार के साथ ही, क्योंकि तुम अंधकार की ही कृति थे। तुम अंधकार में ही बने थे; तुमने अंधकार में ही अपने को सम्हाला था; अंधकार ही तुम्हारी ईंट थी जिससे तुम्हारे जीवन का भवन बना था। मौत के आधार पर तुमने नींव रखी थी। जैसे ही तुम प्रकाश में आते हो वह सब व्यर्थ हो जाता है। तुम्हारी नींव, तुम्हारा भवन, तुम्हारा जीवन, तुम्हारी नीति, तुम्हारा आचरण, सब व्यर्थ हो जाता है। वह अंधकार के साथ ही गिर जाता है। जैसे सुबह

जाग कर सपना गिर जाता है, ऐसे ही प्रकाश में उठ कर अंधकार और अंधकार का जीवन गिर जाता है।
ये दो प्रकार के मनुष्य हैं। और तुम ठीक से अपने को पहचान लेना कि तुम किस प्रकार के हो। तुम्हारा अहंकार तो कहेगा कि तुम दूसरे प्रकार के हो। और तुम्हारी असलियत को अगर तुम देखोगे तो तुम पाओगे कि तुम पहले प्रकार के हो। और अगर तुमने धोखा दे लिया कि तुम दूसरे प्रकार के हो तो तुम दूसरे प्रकार के कभी भी न हो पाओगे। इसी को लाओत्से ने मानसिक रुग्णता कहा है। जो तुम हो वैसा ही अगर अपने को तुमने जाना तो क्रांति शुरू हो गई। अगर तुम यह भी पहचान लो कि तुम भय से भरे हुए व्यक्ति हो, इतना बोध भी भय के बाहर जाने के लिए पहला कदम हो गया। अगर तुम यह पहचान लो कि तुम मंदिर भय के कारण जाते हो तो व्यर्थ ही जाते हो, क्योंकि भय से तो परमात्मा का कोई संबंध नहीं जुड़ता। तुम अगर प्रार्थना भय के कारण करते हो तो जिससे तुम भय के कारण प्रार्थना करते हो उसे तुम प्रेम नहीं कर सकते। भय से कहीं प्रेम उपजा है? भय से घृणा पैदा हो सकती है, प्रेम नहीं। जिससे तुम भयभीत हो वह दुश्मन मालूम होता है, मित्र नहीं। डर के कारण भला तुम उसकी खुशामद करो। तो तुम्हारी स्तुतियां परमात्मा की खुशामद से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन अगर तुम गहरे में झांकोगे तो अपने ही भीतर तुम परमात्मा के प्रति विरोध पाओगे। क्योंकि जो तुम्हें डरा रहा है उसे तुम प्रेम कैसे कर सकते हो!
एक शब्द है, धार्मिक लोगों के लिए उपयोग में आता हैः ईश्वर-भीरु, गॉड-फियरिंग। इससे गलत कोई शब्द नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी को हम कहते हैं ईश्वर-भीरु, ईश्वर से डरा हुआ।
धार्मिक आदमी डरा हुआ होता ही नहीं; ईश्वर से तो बिल्कुल ही नहीं। ईश्वर से और भयभीत? तो फिर तुम अभय कहां पाओगे? फिर तो कोई शरण न रही। अगर ईश्वर भी डराता है तो फिर तो इस जगत में कोई उपाय न रहा कि तुम अभय को उपलब्ध हो जाओ। फिर क्या शैतान की शरण जाकर तुम अभय को उपलब्ध होओगे? अगर ईश्वर से भी भय है, तब तुम बचोगे कहां? तुम कहां छिपाओगे अपना सिर?
नहीं, ईश्वर-भीरु शब्द एकांत रूप से गलत है, पूर्ण रूप से गलत है। धार्मिक व्यक्ति भीरु नहीं होता, अधार्मिक व्यक्ति भीरु होता है। हालांकि अधार्मिक व्यक्ति भी प्रार्थना-पूजा करता मिल जाएगा। अक्सर तो यह होगा कि अधार्मिक ही पूजा-प्रार्थना करता मिलेगा, क्योंकि वह भयभीत है। अपने भय को मिटाने के लिए उसे कुछ उपाय करना जरूरी है। वह कंप रहा है, उसे सहारा लेना जरूरी है। धार्मिक व्यक्ति का पूरा जीवन प्रार्थना होता है। वह प्रार्थना करता नहीं; उसका होने का ढंग प्रार्थना है। वह मंदिरों- मस्जिदों में नहीं जाता; वह जहां भी जीता है वहीं मंदिर-मस्जिद बन जाते हैं। उसके होने में छिपा है उसका राज। उसके उठने-बैठने में, उसकी धड़कन-धड़कन में, उसकी श्वास-श्वास में प्रार्थना छिपी है। शब्दों से वह कहे, न कहे। और शब्दों से कहने को है क्या?
परमात्मा से जब तुम शब्दों में बात करने लगते हो तभी तुम चूक जाते हो। क्योंकि परमात्मा की भाषा शब्द नहीं है। परमात्मा की भाषा मौन है। जब तुम कुछ कहते हो तब तुम यह मान ही लेते हो कि परमात्मा को भी तुम्हारे सलाह की, तुम्हारे कहने की जरूरत है। तुम कहोगे तब उसे पता चलेगा? तुम उसे इतना अज्ञानी मान रहे हो? अस्तित्व को तुम्हारा पता नहीं है? तुम कहोगे तब, निवेदन करोगे तब। और क्या तुम निवेदन करोगे तुम्हारे अज्ञान में? क्या तुम मांगोगे? जो तुम मांगोगे वह जहर होगा। जो भी तुम मांगोगे, मांग कर उलझोगे, मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि मांग उठेगी तुम्हारे अंधकार से; मांग उठेगी तुम्हारे अज्ञान से।
तो प्रार्थना न तो मांग है, प्रार्थना न तो शब्द है, न निवेदन है; प्रार्थना तो हृदय की एक भाव-दशा है। प्रार्थना तो होने की एक शैली है। उसके लिए कोई मंदिर-मस्जिद, कोई तीर्थ आवश्यक नहीं। उसके लिए तो तुम्हें अपने को बदलना होगा। ये तो उन आदमियों की तरकीबें हैं--तीर्थ, मंदिर, मस्जिद--जो अपने को नहीं बदलना चाहते। जो अंतर्यात्रा पर जाने को राजी नहीं हैं वे तीर्थयात्रा पर निकल जाते हैं।

तीर्थयात्रा पलायन है। जाना था भीतर, चल दिए काशी, काबा, कैलाश। इस तरह अपने को भ्रांति हो जाती है कि बड़ा कृत्य कर रहे हैं, धर्मयात्रा हो रही है। जाना था स्वयं में। स्वयं तो यहीं मौजूद था। तीर्थ में पहुंच कर स्वयं का होना ज्यादा नहीं हो जाएगा। इतना ही रहेगा जितना यहां है। और अगर भीतर मुड़ना था तो यहां भी मुड़ सकते थे; कहीं भी मुड़ सकते थे। भीतर के मुड़ने का स्थानों से कोई संबंध, लेन-देन नहीं है। ऐसा नहीं है कि पृथ्वी पर कुछ स्थान हैं जहां भीतर मुड़ना आसान है। मनोदशाएं हैं जहां भीतर मुड़ना आसान है, स्थान नहीं। और मनोदशाएं तुम्हारे हाथ की बात है।
इस बात को ठीक से समझ लो, भय में कोई धार्मिक नहीं हो सकता और भय में कोई आस्तिक नहीं हो सकता। भय में जो आस्तिकता है वह झूठी है, वह खोटा सिक्का है। उसे तुम यहां भला चला लो, यहां भला लोगों को तुम धोखा दे लो, क्योंकि लोग भी तुम जैसे ही अंधकार में हैं, कुछ अड़चन नहीं है उनको धोखा देने में; लेकिन तुम परमात्मा को धोखा न दे पाओगे, तुम समग्र को धोखा न दे पाओगे। तुम्हें भय के बाहर आना होगा।
इस भय के कारण ही तुम्हारा धर्म, तुम्हारा समाज, तुम्हारी सभ्यता, तुम्हारी संस्कृति, सब भय-आधारित हो गए हैं। राज्य भी तुम्हें डराता है; तभी तुम्हें काबू में रख पाता है। धर्मगुरु भी तुम्हें डराते हैं; तभी तुम्हें काबू में रख पाते हैं। तुम जहां जाओ वहीं तुम्हारे लिए दंड का विधान है। तुम इतने भयभीत हो कि तुम एक ही भाषा समझते हो जो दंड की है, या पुरस्कार की है, वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
छोटे बच्चे और बड़े-बूढ़ों में कोई फर्क मालूम नहीं होता, कोई विकास होता नहीं दिखाई पड़ता। छोटे बच्चे को स्कूल में हम डराते हैं कि पिटेगा, मारा जाएगा, दंड दिया जाएगा, अगर ठीक व्यवहार न किया। और अगर ठीक व्यवहार किया तो पुरस्कृत किया जाएगा, मिठाइयां भेंट मिलेंगी। वही खेल जारी है बूढ़े आदमी को भी। अगर ठीक से जीए तो स्वर्ग, अगर जरा गैर-ठीक जीए कि नरक। बच्चों में और बूढ़ों में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता। वही भय और प्रलोभन का जाल है। राज्य भी वही करता है। अगर ठीक-ठीक व्यवहार किया तो भारत-रत्न बन जाओगे; अगर ठीक व्यवहार न किया तो कारागृह में सड़ोगे। नीति भी वहीः ठीक व्यवहार किया तो समाज सिर आंखों पर ले लेगा; अगर जरा समाज की लीक से यहां- वहां हटे कि निंदा के स्वर गूंज उठेंगे, आंखों में सब तरफ तुम्हें अपमान ही दिखाई पड़ेगा, सम्मान खो जाएगा। यह भयभीत आदमी के कारण राज्य भी, धर्म भी, नीति भी, सब भयभीत आदमी को सम्हालने के लिए भय से भर गए हैं।
जो आदमी प्रेम को उपलब्ध होता है--और प्रेम को उपलब्ध आदमी ही संतत्व
को उपलब्ध होता है--वह भय से नहीं जीता; न भय के आधार से उसकी नीति होती है। तुम अगर दान देते हो तो भय के कारण कि नरक जाने से बच जाओ, कि स्वर्ग का पुरस्कार मिले। प्रेम से भरा हुआ आदमी देता है, क्योंकि देने में आनंद है; देने के बाहर और कोई उपलब्धि नहीं है। देता है, क्योंकि देना इतनी अदभुत मनोस्थिति है, देने में ऐसे फूल खिल जाते हैं भीतर आत्मा में जो और किसी तरह नहीं खिलते, देने के क्षण में ऐसी वीणा बजने लगती है हृदय में जो और कभी नहीं बजती। देने के बाहर कोई पुरस्कार नहीं है; देने में ही पुरस्कार है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लो, क्योंकि तुम्हारे भय के कारण सब सिद्धांत विकृत हो गए हैं। तुम्हें समझाया जाता रहा है कि अगर तुम अच्छा कर्म करोगे तो अगले जीवन में अच्छा जीवन पाओगे; अगर बुरा कर्म करोगे तो अगले जीवन में बुरा जीवन पाओगे।
अगले जीवन तक रुकने की जरूरत क्या है? आग में हाथ अभी डालोगे, अभी जलोगे कि अगले जीवन में जलोगे? फूल को नाक के पास ले जाओगे तो नासापुट अभी गंध से भर जाएंगे कि अगले जीवन में भरेंगे? अगले जीवन तक टालने की जरूरत क्या है? यह तुम्हारा परमात्मा बड़ा उधार मालूम पड़ता है। परमात्मा तो बिल्कुल नगद है; अभी है। कल तक टालने की जरूरत क्या है? अस्तित्व कुछ भी टालता नहीं। अभी तुम झाड़ से गिरोगे तो फ्रैक्चर अभी होगा कि अगले जीवन में होगा? ग्रेविटेशन का नियम अभी परिणाम दे देगा, इसी क्षण दे देगा। कौन हिसाब रखेगा इस सब का कि तुम अगले जीवन में चढ़े थे वृक्ष पर और अब इस जीवन

में गिरोगे? इस जीवन में चढ़ोगे और अगले जीवन में गिरोगे, कौन यह हिसाब रखेगा? कहां यह हिसाब रहेगा?
नहीं, प्रकृति बिल्कुल नगद है। तुम अभी क्रोध करो, अभी जलोगे, अभी झुलसोगे, अभी पा लोगे कष्ट। तुम अभी पुण्य करो, अभी हर्षोन्माद से भर जाओगे, अभी तुम्हारे जीवन में एक पुलक और नृत्य आ जाएगा। जीवन नगद है। लेकिन भयभीत आदमी ने उसको भी उधार करवा लिया है। क्योंकि भयभीत आदमी आज को तो मान ही नहीं सकता। भयभीत आदमी सदा यह चेष्टा कर रहा है कि आज तो गया ही उसके लिए, कल को सम्हाल ले। भयभीत आदमी को आज तो जाया हुआ मालूम पड़ता है, जा चुका; अब उस पर हाथ कहां है? कल सम्हल जाए किसी तरह।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, यह जीवन तो गया।
तुम आए कैसे अगर यह जीवन जा चुका? तुम यहां मेरे पास बैठे हो भले-चंगे, श्वास ले रहे हो, मुझे देख रहे हो, बोल रहे हो। तुम कहते हो, यह जीवन जा चुका। तुम किसको धोखा दे रहे हो? तुम कुछ भी करना नहीं चाहते, इसलिए अब तुम कह रहे हो जीवन जा चुका।
अब तो कुछ ऐसा बताएं, वे मुझसे कहते हैं, कि अगली सुधर जाए, आने वाला जीवन सुधर जाए।
भयभीत आदमी हमेशा कल की तरफ देखता है; अभय से भरा आदमी आज को जीता है। भयभीत आदमी के कारण कर्म का पूरा सिद्धांत विकृत हो गया। कर्म का सिद्धांत सीधा-साफ है कि तुम करो, तत्क्षण फल है। मैं कहता हूं, तत्क्षण! एक क्षण का भी फासला नहीं है कर्म में और फल में। हो नहीं सकता। तुम अगर दान दोगे तो अभी आनंद पा लोगे। बात चुक गई। तुम अगर चोरी करोगे तो अभी पीड़ा पा लोगे। बात चुक गई। तुम क्रोध करोगे, अभी जलोगे-झुलसोगे। तुम ईर्ष्या से भरोगे, अभी जहर तुम्हारे भीतर फैल जाएगा। तुम्हारा जीवन एक फफोले, फोड़े की तरह हो जाएगा। तुम मवाद से भर जाओगे अभी।
अस्तित्व नगद है, इसे बहुत ख्याल में रख लेना। लेकिन तुम कहते हो कि
आज क्रोध करेंगे, कल दंड मिलेगा। इससे सुविधा मिल जाती है कि कोई हर्जा नहीं, आज तो अब जो हो रहा है कर लो, कल का कल देखेंगे। और फिर पुरोहितों ने तुम्हें रास्ते भी बता दिए हैं कि अगर क्रोध हो जाए, कोई हर्जा नहीं। गंगा- स्नान कर लेना, पाप धुल जाते हैं। मंदिर में जाकर नारियल चढ़ा आना, पाप से छुटकारा हो जाएगा। इधर चोरी करना, उधर थोड़ा दान दे देना। इधर धोखा देना, उधर जाकर एक मंदिर या धर्मशाला बनवा देना।
दूसरी बात तुम ख्याल ले लोः बुरे कर्म को किसी अच्छे कर्म से काटा नहीं जा सकता, न किसी अच्छे कर्म को किसी बुरे कर्म से काटा जा सकता है। अच्छे और बुरे कर्म का मिलन ही नहीं होता। वे तो रेल की पटरियों की भांति समानांतर चलते हैं; कहीं उनका कोई मिलन नहीं होता। लेकिन भयभीत आदमी ने सोच रखा है कि कर लेंगे कुछ उपाय, कुछ धोखा दे देंगे। और मिलन हो भी जाए तो कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि बुरे को करने में ही बुरे का फल मिल गया। अब करोगे क्या? भले को करने में भले का फल मिल गया। कर्म संचित नहीं होते; प्रतिपल निपट जाते हैं।
इसीलिए तो इस बात की संभावना है कि अगर तुम परिपूर्ण मन से पुकारो तो इसी क्षण मुक्त हो जाओगे। नहीं तो तत्क्षण मुक्ति का कोई अर्थ ही न रह जाएगा। कितने जन्मों से तुम जी रहे हो? कितने कर्म तुमने इकट्ठे कर लिए हैं? अगर सब का हिसाब होना है तो कोई उपाय नहीं है।
मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर बोल रहा था। ईसाइयों की मान्यता है कि एक जजमेंट, आखिरी निर्णय का दिन होगा, कयामत का, जब सब मुर्दे उठाए जाएंगे और परमात्मा निर्णय करेगा। जब वह फकीर बोल रहा था, मुल्ला नसरुद्दीन कंप रहा था, घबड़ा रहा था। सुन रहा था उसको; वह बड़ा ही वीभत्स वर्णन कर रहा था कि कैसे-कैसे कष्ट लोगों को मिलेंगे जिन्होंने पाप किए हैं। तो हाथ-पैर भय से भी कंप रहे थे। और जीभ में लार भी आ रही थी, क्योंकि वह वर्णन कर रहा था स्वर्ग के भी--कैसे-कैसे भोग वहां मिलेंगे, कैसे-कैसे सुखों की वहां वर्षा होगी जिन्होंने पुण्य किए हैं।
फिर आखिर में मुल्ला नसरुद्दीन खड़ा हुआ और उसने कहा, एक सवाल है; क्या
एक ही दिन में सब निर्णय हो जाएगा? सब मुर्दों का जितने अब तक हुए? और उनके

सब कर्मों का? उस आदमी ने कहा, हां। उसने कहा, एक बात और। क्या औरतें भी वहां मौजूद रहेंगी कि सिर्फ आदमी? उसने कहा, औरतें भी रहेंगी। उसने कहा कि फिर कोई फिक्र नहीं; निर्णय हो नहीं सकता। एक दिन में! सारी औरतें! वे इतना कोलाहल मचाएंगी, और इतनी बकवास करेंगी; फिर कोई डर नहीं है।
ये सारे सिद्धांत भयभीत आदमी के कारण निर्मित हो गए हैं। न कहीं कोई कयामत का दिन है। और अगर कहीं है तो वह अभी है, इसी वक्त है। निर्णय आखिर में नहीं होगा। आखिर तो है ही नहीं अस्तित्व में। न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है। यह तो अनंत धारा है। जिसका प्रारंभ नहीं है उसका अंत कैसे होगा? आखिर तो कभी आएगा ही नहीं। तो फिर हिसाब कब होगा?
हिसाब प्रतिपल होता जाता है। हिसाब करना ही नहीं पड़ता, हिसाब तो नियम
से प्रतिपल हो जाता है। तुम उलटे-सीधे चलो, गिरो, पैर टूट जाता है। तुम सम्हल कर चलो, घर बिना पैर तोड़े लौट आते हो।
प्रेम को उपलब्ध व्यक्ति जीवन के इस नगदपन को अनुभव कर लेता है तब फिर
वह किसी भय के कारण बुराई से नहीं रुकता, न किसी लोभ के कारण भलाई करता है। वरन उसका अनुभव ही उसके जीवन की नीति हो जाती है। वह शुभ करता है, क्योंकि आनंद मिलता है शुभ करने में। करने से नहीं, करने में। और दुख मिलता है बुरा करने में; बुरा करने से नहीं। और प्रतिपल जीवन, जैसा तुम चलते हो, जैसा तुम होते हो, वैसा तुम्हें देता चला जाता है। एक अनूठी नीति का जन्म होता है प्रकाश को उपलब्ध आदमी में। वह नीति, दूसरों के साथ अच्छा करना, इस पर आधारित नहीं होती। क्योंकि प्रकाश को उपलब्ध व्यक्ति दूसरों की तरफ उन्मुख ही नहीं होता। वह नीति निर्मित होती है, क्योंकि अच्छा करने में आनंद है।
तुम्हें मैं यह बात कहूं, तुम्हें थोड़ी कठिन लगेगी, लेकिन समझने की कोशिश करना। ज्ञानी से ज्यादा स्वार्थी आदमी संसार में होता ही नहीं। स्वार्थ ही बच रहता है। लेकिन स्वार्थ शब्द बड़ा अच्छा है। उसका अर्थ होता है, स्वयं का अर्थ ही बच रहता है। शेष सब स्वार्थ से ही उठता है। परार्थ भी स्वार्थ की गंध है।
दूसरे के साथ अच्छा करो, यह बात ही गलत है। क्योंकि तुम अपने साथ अच्छा नहीं कर सके हो, दूसरे के साथ क्या खाक करोगे? तुम अभी अपने को प्रेम नहीं कर पाए, दूसरे को कैसे प्रेम करोगे? तुम अपने प्रति करुणावान नहीं हो, दूसरे के प्रति कैसे करुणावान हो जाओगे? तुम्हारे भीतर मरुस्थल है और दूसरे के लिए तुम वर्षा का मेघ बनना चाहते हो! तुम भीतर अंधेरे से भरे हो, दीया बुझा है, और दूसरों के बुझे दीयों को जलाने चले हो! तुम कृपा करना, कहीं तुम किसी का जला हुआ दीया मत बुझा देना। तुम अपने मरुस्थल को जरा दूर ही रखना। तुम भला सोचते हो दूसरे पर मेघ बना रहे हैं, तुम अपने मरुस्थल को मत दूसरे पर बरसा देना।
स्वार्थ को पहले उपलब्ध हो जाओ। पहले स्वयं का अर्थ समझ लो। पहले स्वयं में ठहर जाओ। पहले भूल जाओ सब को, ताकि तुम अपने को जान सको। और दूसरे तुम्हें बाधा न दें। एक बार तुम्हारे जीवन में स्वार्थ पूरा हो जाए, तुम अपने अर्थ को पूरा जान लो, और तुम्हारे जीवन का दीया जल जाए, फिर परार्थ तो अपने आप उठेगा।
जो प्रेम से भरा है वह प्रेम ही दे सकेगा। वह चाह कर भी घृणा नहीं दे सकता, घृणा उसके पास न रही। जो करुणा से भरा है वह करुणा ही दे सकेगा। जो है, तुम वही तो दे सकोगे। जो नहीं है, उसे दोगे कैसे? तब तुम्हारे जीवन में एक परार्थ की गंध होगी जो गहन स्वार्थ से उठती है। स्वार्थ और परार्थ में विरोध नहीं है। परार्थ तो फूल है, स्वार्थ के वृक्ष पर लगता है।
और तुम्हारे नीतिशास्त्री तुम्हें कुछ उलटा समझा रहे हैं। वे समझा रहे हैं, छोड़ो स्वार्थ को। तुम तो जाओ मरीज के पैर दबाओ, अस्पताल में बैठो, सेवा करो, सर्वोदय में भर्ती हो जाओ; यह करो, वह करो। स्कूल चलाओ, अस्पताल खोलो, अनाथालय चलाओ, धर्मशालाएं बनाओ। वे तुम्हें जो भी सिखा रहे हैं, उससे ठीक है, धर्मशालाएं बन जाएंगी, लोग ठहरेंगे; अस्पताल में मरीजों की चिकित्सा होगी। अच्छा है, कुछ बुरा नहीं है। लेकिन तुम इस भूल में मत पड़ना कि धर्म को उपलब्ध हो जाओगे। अच्छा है, लेकिन काफी नहीं है। अच्छा है, चोरी

न करने से धर्मशाला खोल कर बैठ गए; अच्छा है। डाकू न बने और एक आश्रम चलाने लगे; अच्छा है। कम से कम डाकू न बने, इतनी बड़ी कृपा है। लेकिन इसे पर्याप्त मत समझ लेना। इसमें अपने को भटका मत लेना। क्योंकि कुछ लोग हैं जो बुराई में भटक गए हैं, कुछ लोग हैं जो भलाई में भटक गए हैं। कुछ असाधु होकर भटक रहे हैं परमात्मा से, कुछ साधु होकर भटक रहे हैं।
और लाओत्से का भरोसा संत में है; न तो साधु में और न असाधु में। लाओत्से कहता है कि संत ऐसा व्यक्ति है जो अपने में ठहर गया और अब उसके जीवन की सारी गतिविधियां इसी अपने में ठहरे होने से उठती हैं। उससे शुभ ही पैदा होता है, क्योंकि अशुभ पैदा हो नहीं सकता। वह जो भी करेगा वह ठीक होगा। उसे ठीक, सोच-सोच कर करना नहीं पड़ता। वह विचार करके ठीक नहीं करता। वह ऐसा नहीं सोचता कि यह कर्तव्य है इसलिए करूं, यह अकर्तव्य है इसलिए न करूं। ऐसी बात नहीं है। वह तो जैसे पानी ढलान की तरफ बहता है ऐसा संत का स्वभाव शुभ की तरफ बहता है। पानी सोचता थोड़े ही है कि इधर ढाल है इधर चलें, उधर चढ़ाव है उधर जाना ठीक नहीं। चढ़ाव की तरफ जाओगे भी कैसे? संत जिस तरफ बहता है वहीं शुभ है। शुभ के अतिरिक्त वह कहीं बहता ही नहीं। लेकिन पहली घटना है संतत्व की। पहली घटना है भय से प्रेम की तरफ आ जाने की, अंधकार से आलोक की तरफ आ जाने की।
अब हम लाओत्से के वचन को समझने की कोशिश करें।
"जब लोगों को बल का भय नहीं रहता, तब, जैसा आम चलन है, उन पर महाबल उतरता है।"
भयभीत लोगों का समाज, राज्य, नीति, धर्म लोगों को डरा कर ही संयम में बांधे हुए है। इसलिए लाओत्से कहता है कि ऐसे लोग अगर कभी निर्भय हो जाएं तो खतरा पैदा होता है। अंधेरे में जो आदमी है उसका निर्भय हो जाना खतरनाक है। क्योंकि निर्भय होते ही वह ऐसे चलने लगेगा जैसे प्रकाश में आदमी को चलना चाहिए। लेकिन प्रकाश तो है नहीं। टकराएगा, चोट खाएगा; सिर फोड़ लेगा। तीन शब्द हैं हमारे पास, उन तीनों का स्वभाव समझ लेना चाहिए। एक शब्द
है भय, दूसरा शब्द है निर्भय, और तीसरा शब्द है अभय। अभय तो प्रकाशित आदमी का लक्षण है। भय और निर्भय दोनों अंधेरे में होते हैं। अंधेरे में कुछ लोग होते हैं जो भयभीत होते हैं। अंधेरे में कुछ लोग होते हैं जो अपने भय को दबा कर और निर्भय होने की अकड़ बना लेते हैं, जिनको हम बहादुर कहते हैं।
ये बहादुर ज्यादा नुकसान करते हैं, क्योंकि ये ऐसे चलने की कोशिश करते हैं जो कि केवल प्रकाश में ही संभव है। ये अभय की कोशिश करते हैं, और अंधेरे में रहते हुए! उससे निर्भय तो मालूम पड़ते हैं कि बिल्कुल नहीं डरते, लेकिन इन्हीं लोगों ने सारे संसार को कष्ट से भर दिया है। हिटलर, नेपोलियन, सिकंदर, ये अभय नहीं हैं; महावीर, कृष्ण, बुद्ध, इन जैसे अभय नहीं हैं; मगर निर्भय हैं। जहां शैतान भी जाने से डरे वहां भी ये घुस जाएंगे। लेकिन ये अपना ही सिर नहीं तोड़ते, ये अपने पीछे हजारों लोगों को भी चला लेते हैं। क्योंकि भयभीत लोग जब भी पाते हैं कि कोई निर्भय है, उसको नेता मान लेते हैं। जब भी भयभीत लोग देखते हैं कि कोई आदमी बिल्कुल नहीं डरता तो वे सोचते हैं, यह आदमी ठीक है, इसके पीछे चलो। इस तरह अंधे अंधों के पीछे चलते हैं।
कबीर ने कहा है, अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।
अंधे अंधों को चलाते हैं और दोनों कुएं में गिर जाते हैं। इससे तो वे
ही अंधे बेहतर हैं जो डरते हैं। कम से कम डर के कारण वे सीमा के बाहर नहीं जाते।
इसलिए सवाल भय से निर्भय हो जाने का नहीं है। जो भयभीत है वह साधु होगा; जो निर्भय हो गया वह असाधु हो जाएगा। जो भयभीत है वह नीति-आचरण से चलेगा; जो निर्भय हो गया वह नीति-आचरण को ताक पर रख देगा। वह डरता ही नहीं, वह किसी से नहीं डरता। जो निर्भय है वह अपराधी हो जाएगा।
अब यह बड़ी सोचने जैसी बात है। अगर तुम्हें भयभीत आदमी देखने हैं वस्तुतः तो साधुओं में पाओगे। आश्रमों में बैठे हैं, डरे हुए लोग हैं। इतना डर गए हैं कि बाजार में जा नहीं सकते, दुकान पर बैठ नहीं सकते, स्त्री को देख कर आंख बंद कर लेते हैं। रुपया दिखाई पड़ता है तो उनके हाथ-पैर कंपने

लगते हैं। कामिनी-कांचन उनका प्राण लिए ले रहा है। वे डरे हुए लोग हैं। जेलखानों में, कारागृहों में, राजधानियों में, पागलखानों में तुम्हें वह आदमी मिलेगा जो डरा हुआ नहीं है। जो निर्भय है वह असाधु है।
राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, वे सब असाधु हैं। वे डरे हुए नहीं हैं। वे अगर तुम्हारी रामलीला के मैदान पर आ भी जाते हैं, राष्ट्रपति और तुम्हारे प्रधानमंत्री, तो सिर्फ तुम्हें खुश करने को। उन्हें कोई रामलीला से लेना-देना नहीं है। उनको वोट चाहिए। वे तुम्हारे मंदिरों में जाकर सिर भी झुका लेते हैं। वे मंदिरों को सिर नहीं झुका रहे, तुम्हारी नासमझी को सिर झुका रहे हैं। उनको मंदिर में सिर झुकाते देख कर तुम समझते हो कैसे धार्मिक व्यक्ति हैं! जैसे ही उनके हाथ में ताकत आएगी वे खतरनाक सिद्ध होंगे; क्योंकि उनको कोई भय नहीं है।
अंधेरे में दो तरह के लोग हैंः भय और निर्भय। अगर अंधेरे में ही चुनना
हो तो लाओत्से कहता है, भयभीत होना बेहतर। अंधेरे को चुनने की कोई जरूरत नहीं है। प्रकाश को तुम चुन सकते हो। लेकिन अगर अंधेरे में ही जीने का तय कर लिया हो, कसम खा ली हो, तो फिर भय को चुनना बेहतर। कम से कम भय के कारण दूसरों को नुकसान तो न पहुंचाओगे।
हिटलर ने करोड़ों लोग मारे; स्टैलिन ने करोड़ों लोग मारे। जरा भी भय नहीं है। इससे तो वह जैन साधु बेहतर जो चींटी को बचा कर चल रहा है। हालांकि दोनों अज्ञानी हैं। क्योंकि यह ख्याल कि तुम मार सकते हो उतना ही गलत है जितना यह ख्याल कि तुम बचा सकते हो। दोनों अज्ञानी हैं। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, न हन्यते हन्यमाने शरीरे, शरीर को काट डालो तो भी उसे मारा नहीं जा सकता; नैनं छिन्दंति शस्त्राणि, छेद डालो शस्त्रों से तो भी छिदता नहीं। तो बचाना भी भूल है; मारना भी भूल है। ज्ञानी तो जानता है कि मृत्यु होती ही नहीं। लेकिन अज्ञान के जगत में, अंधेरे में, भयभीत! भयभीत होना ही बेहतर है, कम से कम चींटी को बचा कर चल रहे हो। चींटी मरती या न मरती तुम्हारे पैर से, यह सवाल नहीं है; लेकिन भय के कारण तुम अपनी सीमा बांध कर जी रहे हो।
जैन साधु अपनी आसनी भी साथ लिए चलते हैं; बिछा कर उसी पर बैठते हैं। एक पुराना भय है कि पता नहीं किसी की आसनी पर बैठो और उस पर स्त्रियां बैठी हों पहले, कोई पापी बैठा हो। तो स्त्रियों के स्त्रैण-अणु छूट जाते हैं; पापी के पाप के अणु छूट जाते हैं। तो अपनी आसनी साथ ही लेकर चलो, उसी पर बैठो।
एक बार ऐसा हुआ कि एक जैन साधु मेरे साथ यात्रा पर थे। हम दोनों कार में बैठे तो वे बाहर ही खड़े रहे। मैंने कहा, आप अंदर आएं। उन्होंने कहा, रुकिए, मेरी आसनी आ जाने दें। मैंने कहा, आसनी का क्या करना है? गद्दी बिल्कुल ठीक है। पता नहीं गद्दी पर कौन-कौन बैठा हो! तो गद्दी पर उन्होंने आसनी रख ली, फिर वे आसनी पर बैठ गए। फिर वे निश्चिंत हो गए। अब कोई भय नहीं है, सुरक्षा है।
भयभीत आदमी कैसी छोटी-छोटी सुरक्षाएं बना रहा है। आसनी बचा रही है पाप से। काश, पाप इतना सस्ते में बचता होता! और अब उनको कोई भय नहीं है कि वे मखमल की गद्दी पर बैठे हैं। क्योंकि ऊपर उन्होंने आसनी रख ली है। वे तो आसनी पर बैठे हैं, मखमल की गद्दी से उन्हें क्या लेना-देना? मखमल की गद्दी पर तो मैं बैठा था, वे आसनी पर बैठे थे।
राजेंद्र प्रसाद जब पहली दफा राष्ट्रपति हुए तो भवन तो वाइसराय का था, और साधु पुरुष कैसे उस भवन में रहें? साधु पुरुष हमेशा समझौता निकाल लेते हैं। और गांधी का तो आधार ही समन्वय और समझौता था। तो उन्होंने क्या किया? वाइसराय के भवन में जिस कमरे में वे बैठते थे उसकी सुंदर बहुमूल्य दीवारों पर उन्होंने चटाई जड़वा दी। निश्चिंत बैठ गए फिर, कोई डर न रहा। चटाई ने सुरक्षा कर ली। अब यह कोई वाइसराय का भवन थोड़े ही रहा, गांधी की कुटिया हो गई। आदमी के धोखे देने का अंत नहीं है! और इस कारण लोग प्रशंसा करेंगे कि कैसा साधु पुरुष कि वाइसराय के भवन में चटाई लगा कर बैठ गया। भई चटाई ही लगानी थी तो वाइसराय के भवन में बैठने की कोई जरूरत नहीं, चटाई की कुटी में बैठ जाते। रहना तो वाइसराय के भवन में है, लेकिन चटाई लगा

कर। तो ऐसे साधुता भी चल जाती है, असाधुता भी बच जाती है। इसको समझौता, ऐसे एक बीच का रास्ता निकाल लिया। दुकानदार की तरकीब, चालाकी। लेकिन फिर भी ठीक है। भय के कारण ही हो रहा है यह कि कहीं स्वर्ग न खो जाए। चटाई लगा कर स्वर्ग बचाया जा रहा है।
लाओत्से कहता है, अगर अंधेरे में ही जीने की कसम खा ली हो तो भयभीत होना ही बेहतर, भीरु होना बेहतर। क्योंकि अगर तुम निर्भय हुए तो तुम खतरनाक हो जाओगे।
आस्तिक भय में जीते हैं; नास्तिक निर्भय हो जाता है। दोनों अंधेरे में हैं। न आस्तिक को पता है ईश्वर के होने का, न नास्तिक को पता है ईश्वर के न होने का। दोनों को कुछ पता नहीं है। दोनों अंधेरे में हैं। लेकिन आस्तिक भय में जीता है; नास्तिक निर्भय हो जाता है। इसलिए नास्तिक खतरनाक सिद्ध होता है।
अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में नास्तिकों के हाथ में सत्ता न आई थी। इधर इस सदी में रूस और चीन में नास्तिकों के हाथ में सत्ता आ गई। वे बड़े खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। आस्तिकों ने बहुत जघन्य अपराध किए हैं, लेकिन नास्तिक उनको मात कर रहे हैं। क्योंकि नास्तिक बिल्कुल निर्भय है। उसे फिक्र ही नहीं। वह कहता है, कुछ मरता ही नहीं; आदमी काट दो, बात खतम। आदमी तो यंत्र है, मिट्टी की देह है; गिर गई, गिर गई। कोई अड़चन नहीं। माओ ने हजारों लोग काट डाले चीन में रत्ती भर भी बिना बेचैन हुए। तो ऐसी निर्भयता तो खतरनाक है।
लाओत्से कहता है, अगर बदलना हो तो भय से निर्भय में मत बदलना, भय से अभय में बदलना।
अभय बात ही अलग है। अभय का मतलब बहादुरी नहीं है। क्योंकि बहादुरी तो सिर्फ भयभीत आदमी में होती है। बहादुरी तो भयभीत आदमी को अपने को छिपाने का ढंग है। भयभीत आदमी अपने को भयभीत नहीं मानना चाहता तो बहादुरी पकड़ लेता है। अभय आदमी में न तो भय होता है और न निर्भयता होती है। अभय आदमी का भय के जगत से संबंध ही छूट जाता है। तो वह निर्भय भी कैसे हो सकता है? इसलिए शब्दकोश में मत देखना इन शब्दों के अर्थ, क्योंकि वहां तो अभय
का अर्थ भी निर्भय लिखा है। जीवन के शब्दकोश में अभय का निर्भय से कोई संबंध नहीं है और न भय से कोई संबंध है। अभय तो बात ही तीसरी है। अभय का तो प्रकाश से संबंध है; भय और निर्भय का अंधकार से संबंध है।
लाओत्से कहता है, जब लोगों को बल का भय नहीं रहता, जब वे निर्भय हो जाते हैं, तब अनिवार्य हो जाता है कि उनको महान रूप से दंडित किया जाए, महाबल उनके ऊपर उतरे।
कोई उतारता नहीं; यह जीवन का सहज नियम है। जैसे मैंने कहा कि तुम अगर अकड़ कर चढ़े वृक्ष पर तो गिरोगे। वृक्ष पर तो सम्हल कर चलना जरूरी है, सम्हल कर चढ़ना जरूरी है। अकड़ में गिरोगे तो हड्डी-पसली टूट जाएगी। ऐसा नहीं कि कोई तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ रहा है, या पृथ्वी की कोई आकांक्षा थी कि तुम्हारी हड्डी-पसली टूट जाए। या वृक्ष का कोई इरादा था कि तुमको गिरा दे। नहीं, तुम्हारी अकड़ से ही तुम गिर गए। वृक्ष को पता भी नहीं है। पृथ्वी शांत अपने मौन में लीन है। कहीं कोई खबर भी नहीं हुई है। तुम अपने ही हाथ से उलझ गए।
अकड़ोगे तो गिरोगे। अगर अंधेरे में रहते निर्भय होने की कोशिश करोगे
तो सिर टकराएगा दीवालों से, लहूलुहान होओगे।
तो लाओत्से कहता है, जब लोगों को बल का भय नहीं रहता, तब उन पर महाबल उतरता है। वे अपने ही हाथ से दंडित होते हैं।
संत क्या करे? इन लोगों को, जो भय में जीते हैं और कभी-कभी निर्भय होने
की कोशिश करके अपने ही हाथ से दंडित होते हैं, क्या इनकी निंदा करे जैसा कि साधु करते रहे हैं?
लाओत्से कहता है, "नहीं, उनके निवासगृहों की निंदा मत करो, उनकी संतति
का तिरस्कार मत करो। क्योंकि तुम उनका तिरस्कार नहीं करते, इसलिए तुम खुद भी तिरस्कृत नहीं होओगे।"

साधुओं की आम वृत्ति है असाधुओं की निंदा करना। साधुओं को सुनने तुम जाओगे तो तुम असाधुओं के प्रति सिवाय गाली-गलौज के और कुछ भी न पाओगे। हां, गाली-गलौज बड़ी सुसंस्कृत होगी; तुम शायद पहचान भी न पाओ; बड़ी अलंकृत होगी। लेकिन काव्य में भी गाली ही छिपी होगी। उनके बड़े से बड़े उपदेश में भी निंदा छिपी होगी--तुम्हारे भय की, तुम्हारे लोभ की, तुम्हारी कामवासना की, तुम्हारे क्रोध की, तुम्हारे नारकीय जीवन की। उनके कारण तुम्हारे जीवन को वे नारकीय कहते हैं। उनकी व्याख्या निंदा की है। और तुम्हारी निंदा से छिपे-छिपे वे अपनी प्रशंसा करते हैं। तुम्हारी निंदा तो केवल बहाना है, असलियत में वे अपनी प्रशंसा करते हैं।
इसे थोड़ा समझो। यह कहना तो बहुत मुश्किल है कि मैं भला आदमी हूं। क्योंकि जिससे भी कहो वह भी कहेगा, क्या अपने ही मुंह मियां मिट्ठू बनते हो! यह तो कहना मुश्किल है कि मैं भला आदमी हूं। तब एक रास्ता है इसको कहने का कि तुम यह भी न कह सको कि मियां मिट्ठू बनते हो। मैं कहता हूं कि तुम बुरे हो। तुम्हारी बुराई को मैं ऐसा रंगता हूं कि अनजाने तुम्हारी बुराई की पृष्ठभूमि में मेरी भलाई की रेखा उभरनी शुरू हो जाती है।
तुमने सुनी होगी प्रसिद्ध कहानी कि अकबर ने अपने दरबारियों को कहा एक लकीर खींच कर कि इसे छोटा कर दो बिना छुए। दरबारी तो न कर सके, लेकिन बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। उसे छुआ ही नहीं, और लकीर छोटी हो गई। बड़ी लकीर खींच दी।
साधु तुम्हारी निंदा करते हैं; वे तुम्हें छोटा करते जाते हैं; उनकी लकीर बड़ी होती जाती है। वे तुम्हें बिल्कुल क्षुद्र कर देते हैं, वे महान हो जाते हैं।
संत का लक्षण है कि वह तुम्हारी निंदा न करेगा। क्योंकि निंदा तो बताती है कि वह साधु है, संत नहीं। और साधु-असाधु दोनों एक ही जगत के निवासी हैं। वे एक-दूसरे की तरफ पीठ करके चल रहे हैं, लेकिन उनमें गुणात्मक भेद नहीं है। एक चोरी करता है; एक ने अचौर्य की कसम खा ली है। एक कामवासना में लिप्त है; दूसरा कामवासना से लड़ने में लिप्त है। लेकिन लिप्तता में कोई भेद नहीं है। चाहे तुम स्त्रियों में आकर्षित होकर उनके सपने देखो और चाहे तुम स्त्रियों से भयभीत होकर उनके सपनों से लड़ो, तुम्हारी नजर तो स्त्रियों पर ही लगी रहती है।
और अक्सर होता ऐसा है कि भोगी तो चाहे स्त्री को भूल भी जाए, त्यागी नहीं भूल पाता। त्यागी को तो चारों तरफ स्त्री घेरे रखती है--उसके सपने में, उसकी कल्पना में। और जितना उसके सपने में और कल्पना में घेरती है स्त्री, उतना ही वह जोर से निंदा करता है। वह कहता है, स्त्री नरक की खान। जितना वह घबड़ाता है भीतर स्त्री के रूप से, उतना ही बाहर वह निंदा करता है। ऐसा हुआ। एक झेन फकीर औरत हुई। युवा थी, बहुत सुंदर थी। और कथा है कि जिन-जिन आश्रमों में गई उन सबने उसे इनकार कर दिया। कोई आश्रम उसको दीक्षा देने को तैयार नहीं। कारण उन्होंने बताया कि तू इतनी सुंदर है कि हमारे साधुओं को बड़ी मुश्किल खड़ी होगी; तू कहीं और जा। लेकिन कोई लेने को राजी न था; कोई उसे दीक्षा देकर साध्वी बनाने को राजी न था। और उसके प्राणों में बड़ी उत्कंठा थी कि वह साध्वी हो जाए। तो कथा है कि उसने अपने चेहरे को जला लिया। जब वह चेहरे को जला कर गई तो स्वीकृत कर ली गई।
तो तुम्हारे साधुओं की आंख भी लगी तो चमड़ी पर ही है। जला हुआ चेहरा स्वीकृत हो सकता है; सुंदर चेहरा स्वीकृत नहीं होता। क्योंकि सुंदर चेहरा तो वैसे ही सता रहा है; सपनों में सता रहा है। और वास्तविक रूप से मौजूद हो जाए तो और मुसीबत खड़ी हो जाएगी।
ईसाइयों ने इस तरह के आश्रम बना रखे हैं, ऐसे आश्रम हैं, जहां कोई स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती। सैकड़ों साल से किसी स्त्री ने आश्रम में प्रवेश नहीं किया है। और ऐसे आश्रम हैं जहां कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता। मध्य युग में एक बड़ी अनूठी घटना घटी वहां। वह घटना यह थी कि स्त्रियां, जिनके आश्रम में कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता, धीरे-धीरे मिरगी की बीमारी की शिकार होने लगीं। उन्हें फिट आने लगे। और फिट की अवस्था में वे उस तरह की भाव-भंगिमा करने लगीं जैसी स्त्रियां संभोग में

करती हैं। और उन स्त्रियों ने कहा कि शैतान उनके साथ संभोग कर रहा है। यह बीमारी इतने जोर से फैली कि कुछ समझ में न आया कि क्या किया जाए। और अनेक साध्वियां इसकी शिकार हो गईं।
अब मनसविद कहते हैं कि कुछ मामला न था। न कोई शैतान संभोग कर रहा था; न कोई शैतान है। मगर स्त्रियों ने इतनी-इतनी कामना की भीतर पुरुष की कि कल्पना सजीव हो गई। और पुरुष का अभाव इतना ज्यादा भीतर भर गया कि कल्पना को उन्होंने यथार्थ मान लिया।
इसका तुम्हें भी अनुभव हो सकता है। अगर तुम इक्कीस दिन के लिए मौन में चले जाओ, भोजन न करो, उपवास कर लो, तो तुम सातवें-आठवें दिन उपवास के बाद पाओगे कि तुम्हें भोजन यथार्थ रूप से दिखाई पड़ना शुरू हो गया। सपने में लड्डू बरसते हुए मालूम होंगे पहले, फिर धीरे-धीरे लड्डू ज्यादा वास्तविक होने लगेंगे। जैसे-जैसे भूख बढ़ेगी वैसे-वैसे कल्पना प्रगाढ़ होने लगेगी। अगर तुम इक्कीस दिन मौन में उपवास कर जाओ तो इक्कीस दिन करीब आते-आते तुम पाओगे कि तुम काल्पनिक भोजन कर रहे हो।
साधु डरता है, भयभीत है; असाधु डरता नहीं। इतना ही फर्क है। उनके दोनों के जीवन व्यवस्था में कोई अंतर नहीं; उनका तल एक है। और साधु अपना सम्मान करने का एक ही उपाय पाता है कि तुम्हारी निंदा करता रहे। तुम्हारी निंदा से वह अपने को भी समझाता है। वह एक तरकीब है। जब वह तुम्हारे सामने निंदा करता है कामवासना की, तब वह अपने को भी समझा रहा है कि कामवासना नरक है, पाप है। और जब तुम्हारी आंखों में झलक देखता है कि बिल्कुल ठीक कह रहा, तुम जब ताली बजाते हो, तब उसे फिर भरोसा आ जाता है, फिर-फिर भरोसा आ जाता है कि मैं बिल्कुल ठीक हूं।
और तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम्हें पता है कि कामवासना तुम्हें बहुत कष्टों में डाले हुए है। तो जब कोई निंदा करता है, तुम स्वीकार करते हो। करना ही पड़ेगा। तुम पीड़ा में हो। तुम्हें भी पता है कि क्रोध ने कष्ट दिया है। तुम्हें भी पता है कि ईर्ष्या ने जलाया है; फफोले पड़ गए हैं भीतर। तो जब भी कोई इनकी निंदा करता है, तुम्हारा सिर भी हिलता है कि बात तो ठीक है।
जब तुम्हारा सिर हिलते देखता है साधु, तब उसे फिर वापस भरोसा आ गया।
भरोसा बड़ी अजीब चीज है। मुल्ला नसरुद्दीन एक मकान बेचना चाहता था। तंग आ गया था, कोई खरीदार न मिलता था। एक एजेंट को बुलाया। एजेंट ने विज्ञापन दिया अखबारों में। मुल्ला ने विज्ञापन पढ़ा, बड़ा प्रभावित हुआ। एजेंट ने ऐसा वर्णन किया था मकान का कि सुंदर झील के किनारे, बड़े वृक्षों के पास, बड़ा प्राचीन भवन है, जिसका लंबा इतिहास है, बड़े कुलीन लोग जिसमें रह चुके हैं। मुल्ला का अनुभव तो कहता था, सिर्फ खंडहर है, और झील के नाम पर एक गंदी तलैया है जिसमें सिवाय मच्छरों के और कुछ भी पैदा नहीं होता, और प्राचीनता के नाम पर सिर्फ पलस्तर गिरता है। अनुभव तो यह था। लेकिन जब विज्ञापन पढ़ा, और बार-बार पढ़ा, तो गया भागा हुआ एजेंट के पास और कहा, बेचना नहीं है मकान! जैसा मकान मैं चाहता था वैसा ही तो यह मकान है--झील के किनारे, प्राचीन।
तुम्हें खुद भी भरोसा करना हो तो दूसरों की आंखों से देखना शुरू करना पड़ता है। साधु निंदा करता है असाधुता की। वह अपने ही भीतर के हिस्से का खंडन कर रहा है जिसे वह आत्मसात नहीं कर पाया है, जो उसे सता रहा है। तुम्हारे बहाने वह उसकी निंदा करता है। तुम्हारी आंखों में आश्वासन देख कर उसे आश्वासन वापस आ जाता है; लड़ाई उसकी फिर शुरू हो जाती है। साधु और असाधु समझौते में हैं, एक ही शड्यंत्र में हैं। वे एक-दूसरे को सम्हाले हुए हैं। असाधु सम्हाले हुए है साधु को। असाधु के बिना साधु एक क्षण न जी सकेगा। साधु सम्हाले हुए है असाधु को। क्योंकि साधु आशा देता है असाधु को कि कोई हर्जा नहीं, आज असाधु हैं, कल तुम जैसे हम भी हो जाएंगे। थोड़ा सा ही समय और है। लड़की की शादी निपट जाए, दुकान व्यवस्थित हो जाए, हमें भी साधु के जीवन में ही तो जाना है। असाधु को साधु आशा है भविष्य की, और साधु को असाधु का नरक इस बात का निश्चय है कि मैं ठीक हूं। दोनों अंधेरे में हैं। और अंधेरे से उठना है।

जो अंधेरे से बाहर उठ गया उसको लाओत्से संत कहता है। संत का अर्थ है, जिसने अपनी असाधुता को दबाया नहीं और जिसने साधुता को फुलाया नहीं; जो असाधुता-साधुता के द्वंद्व के बाहर हो गया; जो भय और निर्भयता के बाहर हो गया; जो जाग गया; जिसने सब सपने छोड़ दिए साधु-असाधु के, अच्छे-बुरे के; जो गुणातीत हो गया; जिसने चुना नहीं, एक के पक्ष में दूसरे को न चुना; जो च्वाइसलेस, चुनावरहित हो गया।
"उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो।"
क्योंकि उनका कोई कसूर नहीं है। वे अंधेरे में हैं, इसलिए उनके निवास-गृह भी अंधेरे में हैं। और निंदा से तुम उनकी सहायता भी न कर पाओगे। निंदा से तुम उन्हें और भी निंदित कर दोगे, आत्मग्लानि से भर दोगे। यह मेरा अनुभव है कि जहां-जहां धर्मगुरु ज्यादा संख्या में होते हैं वहां-वहां लोग आत्मविश्वास खो देते हैं; वहां लोगों की आत्मग्लानि सघन हो जाती है; वहां लोग अपने ही प्रति इतनी निंदा से भर जाते हैं कि परमात्मा को खोजना तो दूर, खड़े होना उनकी हिम्मत के बाहर हो जाता है; यात्रा पर जाना तो बहुत दूर, पैर उठाने का भी सामर्थ्य खो जाता है।
मेरे पास लोग आते हैं, धर्मगुरुओं के मारे हुए, तब वे मुझसे कहते हैं
कि हम पापी, हम महापापी, हमें उबारो। उनका यह कहना कि हम पापी, हम महापापी, अपने भीतर के परमात्मा का अस्वीकार है। उनका भरोसा डगमगा गया। उनकी आस्था टूट गई। इतनी निंदा की गई है उनकी कि वे अब यह मान ही नहीं सकते कि वे भी उबर सकते हैं। मैं उनसे कहता हूं, उबर जाओगे। वे कहते हैं, जन्मों-जन्म लगेंगे, हम बहुत पापी हैं, आपको पता नहीं। हम बहुत अपराधी हैं, हमने बड़े पाप किए हैं।
बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ईसाई कहते हैं कि पापियों को सदा-सदा के लिए नरक में डाल दिया जाएगा--सदा-सदा के लिए! अनंत काल के लिए! रसेल ने लिखा है, यह तो अन्यायपूर्ण मालूम पड़ता है। उसने कहा कि अगर मैंने जिंदगी में जितने पाप किए हैं सबकी मैं फेहरिस्त बना दूं, जो किए हैं उनकी भी और जो केवल मैंने सोचे हैं, किए नहीं, उनकी भी, तो कठोर से कठोर न्यायाधीश भी मुझे चार साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकता। लेकिन धर्मगुरु कह रहे हैं कि अनंत काल तक सड़ाए जाओगे।
कसूर तो बहुत छोटा मालूम पड़ता है, दंड बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है। जैसे धर्मगुरुओं को मजा आ रहा है। नरक का वर्णन तुमने कभी साधुओं के मुंह से सुना? नरक का वर्णन करने में वे ऐसे कुशल हैं कि तुम्हारा रोआं-रोआं कंपा देंगे। आग, जलते हुए कड़ाहे, जलाए जाओगे लेकिन जलोगे नहीं। क्योंकि जल गए एक दफा तो फिर मजा ही क्या। जलाए जाओगे बार-बार, अनंत बार, और जलोगे नहीं, बचोगे। मर ही गया मरीज तो एक ही दफे में कष्ट खतम हो गया। कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर में से छेद करके घूमेंगे चारों तरफ और तुम मरोगे नहीं। भूखे रहोगे, प्यासे रहोगे; मरोगे नहीं।
कष्ट देने की इतनी इच्छा, सताने की इतनी वृत्ति जिन हृदयों से उठी होगी, उनके भीतर असाधु छिपा है, साधु ऊपर है। नरक की कल्पना ही असाधुओं की है, जिनको मनोवैज्ञानिक सैडिस्ट कहते हैं, जो दूसरों को दुख देने में रस लेते हैं। अब यह इतना दुख! तुमने कभी सोचा, तुमने पाप क्या किया है?
एक आदमी मेरे पास आया। वह कहता है, मैं बहुत पापी हूं। मैंने कहा, तू पहले पाप तो बता। वह कहता है, मैं सिगरेट पीता हूं।
कुछ पाप भी तो ढंग का करो। सिगरेट पी रहे हैं, धुआं बाहर-भीतर निकाल रहे हैं; इसमें पाप क्या है? मूर्खता हो सकती है, पाप तो नहीं है। नासमझी हो सकती है, बुद्धिहीनता हो सकती है कि धुएं को बाहर-भीतर करते रहते हैं और इसमें रस लेते हैं; मगर निर्दोष है। इसमें पाप क्या है? और सजा तो मिल ही जाएगा। अस्थमा हो जाएगी, टी.बी. हो जाएगी, कैंसर हो जाएगा। अब इसके लिए और अलग से नरक का इंतजाम करने की जरूरत क्या है? कैंसर काफी नहीं है? साधुओं को नहीं लगता काफी; वे कहते हैं, कैंसर से क्या हल होगा! सजा बड़ी चाहिए। तुमने पाप भी क्या किया है? मैं कभी-कभी, पापों के संबंध में जब लोग मुझसे आकर कहते हैं, तो मैं हैरान होता हूं कि तुमने पाप भी क्या किया है!

नहीं, वे कहते हैं, आपको पता नहीं एक स्त्री के पीछे मैं दीवाना हो गया।
तो क्या पाप है? तुम्हारा एक देवता नहीं है शास्त्रों में जो दीवाना न हुआ हो। तुम इतने क्यों घबड़ा रहे हो? और परमात्मा भी स्त्री में उत्सुक होना चाहिए, नहीं तो बनाता नहीं। पाप कहां है? सारा अस्तित्व स्त्री- पुरुष के मेल से बना है। वृक्ष भी नर और मादा हैं; पशु-पक्षी भी; पौधे भी। ऐसा लगता है कि जीवन की ऊर्जा इस द्वंद्व के बिना थिर नहीं रह सकती। स्त्री और पुरुष का भेद और आकर्षण सृष्टि का सारा राज है। इसमें पाप कहां है!
जवान आदमी आ जाते हैं और कहते हैं कि मन में बड़ा पाप है, स्त्रियों की तरफ मन में आकांक्षा पैदा होती है।
वह तुमने तो पैदा नहीं की; की हो तो परमात्मा ने ही पैदा की होगी। और आखिरी निर्णय अगर कभी कोई होना है तो वही जिम्मेवार होगा। तुम इतना क्या परेशान हो रहे हो? और स्त्री में ऐसा क्या पाप है? अगर तुम्हारे पिता के मन में पाप न उठा होता तो तुम न होते। उनके पिता के मन में पाप न उठा होता तो तुम्हारे पिता भी न होते। बड़ी कृपा थी उनकी कि उन्होंने ब्रह्मचर्य नहीं रखा।
जीवन की सामान्य स्वाभाविकता को निंदित कर दिया गया है। इतना निंदित
कर दिया गया है कि तुम कैसे मान सकोगे कि तुम मंदिर हो परमात्मा के। तुम तो वेश्यालय मालूम पड़ते हो, मंदिर नहीं; बूचरखाना मालूम पड़ते हो, मंदिर नहीं। और हो तुम मंदिर। इतनी निंदा के बाद तुम कैसे खोज पाओगे उस सूत्र को जो परमात्मा का है, तुम्हारे भीतर छिपा है।
इसलिए लाओत्से कहता है, "उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो।"
अंधेरे में रहते हैं माना, उन पर दया करो, निंदा मत करो। उन्हें बाहर निकालने की कोशिश करो। निंदा करोगे तो वे और भी अंधकार में गिर जाएंगे। उन्हें उठाओ, सहारा दो, बल दो, हिम्मत दो। और उनसे कहो, घबड़ाओ मत, कुछ भी पाप नहीं है। परमात्मा हर पाप से बड़ा है। और तुम्हारे पुण्य की क्षमता तुम्हारे सब पापों के जोड़ से अनंत गुना बड़ी है। और तुमने जो किया है वह ना- कुछ है; तुम जो हो वह विराट है। तुम्हारे कृत्यों से तुम्हारी आत्मा का कोई मूल्यांकन नहीं होता। कृत्य तो क्षुद्र हैं। उठो!
इसलिए उपनिषद--जो संतों के वचन हैं, साधुओं के नहीं--उपनिषद कहते हैं, तुम ब्रह्म हो। और उपनिषद कहते हैं, सब कुछ ब्रह्ममय है; अन्न भी ब्रह्म है। इसलिए भूख लगे और तुम भोजन करो, तो तुम ब्रह्म को ही भोजन कर रहे हो। स्त्री भी ब्रह्म है। आकर्षण जगे, तो तुम यह फिक्र करना कि वह आकर्षण भी परमात्मा का ही आकर्षण बन जाए। स्त्री के माध्यम से भी तुम परमात्मा को ही खोजना। तुम अपने सब आकर्षणों को परमात्मा की ही खोज बना लेना। तब तुम्हारा मार्ग विधायक हुआ।
इसलिए संत निंदा नहीं करता, संत स्वीकार करता है। संत तुम्हारे अंधकार पर जोर नहीं देता, तुम्हारे प्रकाश की संभावना पर जोर देता है। साधु तुम्हारे अंधकार पर जोर देता है।
"उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो। उनकी संतति को तिरस्कार मत करो। क्योंकि तुम उनका तिरस्कार नहीं करते, इसलिए तुम खुद भी तिरस्कृत नहीं होओगे।"
और संत का कोई तिरस्कार नहीं हो सकता, क्योंकि उसने कभी किसी का तिरस्कार नहीं किया है। यह तुम्हारे भी हित में है। लाओत्से कहता है, संत के भी हित में है।
"संत अपने को जानते हैं, पर दिखाते नहीं।"
दिखाने की आकांक्षा अज्ञान से पैदा होती है। जो अपने को नहीं जानता
वह दिखाना चाहता है। क्योंकि दिखाने से ही उसे पता चलता है कि मैं कौन हूं, दूसरों के द्वारा ही पता चलता है कि मैं कौन हूं। जो अपने को जानता है उसे दूसरे के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं। वह दिखाता नहीं फिरता; वह जानता है वह कौन है। जब तुम दिखाने की आकांक्षा से भरो तो समझ लेना कि तुम्हें पता नहीं है कि तुम कौन हो। तुम दूसरों से पूछ रहे हो कि मैं कौन हूं।

कोई कह देता है, आप बड़े सुंदर! तुम सुंदर हो जाते हो। देखो फिर तुम्हारे पैर की गति, तुम्हारी शान, अकड़ वापस लौट आई। रीढ़ सीधी हो गई। लाख दफे कोशिश की थी आसन लगा कर रीढ़ को सीधा करने की, न होती थी। किसी ने कह दिया, बड़े सुंदर हो! रीढ़ एकदम सीधी हो गई। किसी ने कह दिया, तुम जैसा सच्चरित्र कोई भी नहीं! देखो उस क्षण में हजार-हजार फूल खिलने लगे; तुम बड़े प्रसन्न हो। किसी ने निंदा कर दी और किसी ने कह दिया, तुम और सुंदर? जरा आईने में शक्ल तो देखो! तुम उदास हो गए, भीतर सब मुर्दा हो गया, सब फूल मुर्झा गए। और किसी ने कह दिया कि दुश्चरित्र हो, और किसी ने निंदा कर दी, और तुम वही हो गए। तुम लोगों के मतों पर जीते हो। इसलिए तो तुम लोगों से भयभीत रहते हो कि लोग क्या कह रहे हैं। लोग जो कह रहे हैं वही तुम्हारी आत्मा है? वही तुम्हारी आइडेंटिटी है? वही तुम्हारी पहचान है?
संत अपने को जानता है, इसलिए दिखाता नहीं। कोई कारण नहीं दिखाने का, संत अपने को जानता ही है। तुमसे पूछने की कोई जरूरत नहीं कि मैं कौन हूं। तुम्हारे मत से नहीं जीता संत; संत अपने भीतर से जीता है। तुम अगर सब भी चले जाओ पृथ्वी से, अकेला संत रह जाए, तो भी कोई फर्क न पड़ेगा। उसका होना वैसा ही रहेगा। एकांत में या भीड़ में, कोई अंतर नहीं है। बाजार में या हिमालय में, कोई भेद नहीं है। क्योंकि तुम्हारे ऊपर संत निर्भर नहीं है। "वे अपने को प्रेम करते हैं, पर उछालते नहीं।"
यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है। तुम अपने को प्रेम करते ही नहीं, इसीलिए उछालते हो। उछालने का मतलब है, कोई दूसरा तुम्हें प्रेम करे, इसका निमंत्रण। स्त्रियां देखो कितनी मेहनत उठाती रहती हैं आईने के सामने खड़ी- खड़ी! घंटों! हर पति जानता है कि तुम बजाते रहो हार्न बाहर, वह स्त्री कहती है, अभी आई। एक मिनट में आई, स्त्री कहती है। मैंने तो एक स्त्री को यह भी कहते सुना--उनके पति के साथ मैं कार में बैठा हूं, जाने की पति को जल्दी है, वे हार्न बजा रहे हैं--उसने बाहर झांका और कहा, क्यों हार्न बजाए जा रहे हैं? क्यों सिर खा रहे हैं? हजार बार कह चुकी कि अभी एक मिनट में आई।
हजार बार! और अभी एक मिनट पूरा नहीं हुआ। क्या कारण होगा स्त्री को इतना ज्यादा दर्पण के सामने तल्लीन होने में? वह तैयारी कर रही है उछालने की। राह पर, बाजार में, सिनेमागृह में, क्लब-घर में, मंदिर में, वह उछालने की तैयारी कर रही है।
मैं एक जैन घर में रहता था। तो जब भी कभी कोई जैन उत्सव होता, जो घर की गृहिणी थी वह अपने सब सोने के आभूषण निकाल लेती। मैं उसको पूछा कि मंदिर में? तो उसने कहा, और कोई मौका ही नहीं मिलता दिखाने का। धार्मिक स्त्री है, सिनेमा जाती नहीं, क्लब से कोई संबंध नहीं, होटल जा नहीं सकती, सात्विक शाकाहारी है। पति का भी इन चीजों में रस नहीं है। अब एक मंदिर ही बचा। पर स्त्री तो स्त्री है, मंदिर हो कि क्लब, फर्क क्या पड़ता है? वृत्ति तो वही है, उछालना है।
उछालने का अर्थ यह है कि तुम अपने को प्रेम नहीं कर पाए; तुम किसी और
की प्रतीक्षा कर रहे हो जो तुम्हें प्रेम करे। और कोई तुम्हें प्रेम करे, तो ही तुम्हारा भय कम हो। जो व्यक्ति अपने को प्रेम करता है वह उछालता नहीं फिरता। और मजा तो यह है कि तुम जितना मांगोगे कि कोई तुम्हें प्रेम करे, मांगे से प्रेम नहीं मिलता। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। प्रेम ऐसी चीज है जो मांगने से मिलती ही नहीं। तुम्हें प्रेम मांग कर कभी भी न मिलेगा। तुम भिखारी ही रहोगे। और जहां भी मिलेगा, तुम पाओगे कि धोखा हुआ। हर बार तुम पाओगे कि धोखा हुआ; असली न था। प्रेम तो उन्हें मिलता है जो प्रेम पाने के योग्य होते हैं। और प्रेम पाने के योग्य होने की पहली शर्त हैः तुम अपने को प्रेम करो। तभी तो कोई दूसरा तुम्हें प्रेम कर सकेगा। तुमने कभी अपने को प्रेम ही नहीं किया और दूसरे की आकांक्षा कर रहे हो कि वह तुम्हें प्रेम करे। जो गलती तुमने नहीं की वह दूसरा क्यों करेगा? तुम तो अपनी निंदा करते हो और दूसरे से चाहते हो तुम्हें प्रेम करे।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम अकेले में ऊब जाते हैं, हमें कोई संगी-साथी चाहिए। मैं कहता हूं, जब तुम खुद ही से अकेले में ऊब जाते हो तो दूसरा तुमसे ऊबेगा। जब तुम खुद भी अपने साथ रहने को राजी नहीं तो कौन

तुम्हारे साथ रहने को राजी होगा? और वह दूसरा भी अपने से ऊबा हुआ होगा, तभी तो तुम्हारी तलाश में आ रहा है। तो दो ऊबे हुए आदमी जब मिलते हैं तो तुम सोच सकते हो क्या परिणाम होगा। जो हर विवाह में हो जाता है। पति-पत्नी ऐसे ऊब कर बैठे रहते हैं। पति-पत्नियों के चेहरे देखो; उनसे ज्यादा उदास चेहरे तुम कहीं भी न पाओगे। अगर तुम पुरुष को जरा प्रसन्न देखो तो समझना कि पत्नी उसकी नहीं है जो पास बैठी है, किसी और की होगी। अगर पुरुष को तुम रास्ते पर किसी स्त्री के साथ चलते हुए आनंद भाव में देखो, यह उसकी पत्नी नहीं है। क्योंकि उसकी पत्नी के साथ तो वह ऐसा डरा हुआ और कंपा हुआ और उदास और ऊबा हुआ चलता है कि तुम देख ही सकते हो, फौरन पहचान सकते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन मुझसे कहा कि मैं आदमियों को देख कर बता सकता हूं कि यह आदमी विवाहित है कि गैर-विवाहित। मैंने कहा, जरा मुश्किल मामला है। खैर, जो भी लोग आएं मुझसे मिलने, तुम नोट करते जाओ, और पीछे पता लगा लेंगे। उसने नोट किया और उसने बिल्कुल ठीक-ठीक बता दिया। मैं थोड़ा हैरान हुआ कि तरकीब क्या है तेरी? उसने कहा, तरकीब यह हैः जो आदमी शादीशुदा है वह बाहर पड़े हुए बिछावन पर पैर पोंछता है, जो गैर-शादीशुदा है वह सीधा चला आता है। पत्नी का भय! नहीं तो कौन पोंछता है पैर। अभ्यस्त हो गए हैं वे।
जीवन तुम्हारे भीतर से बाहर की तरफ जाएगा; बाहर से भीतर की तरफ नहीं आता। तुमने अगर अपने को प्रेम किया है तो तुम पाओगे बहुत लोग तुम्हें प्रेम करेंगे। तुम अगर अपने को प्रेम करने में समर्थ हो गए तो तुम पाओगे अनंत-अनंत प्राणों से तुम्हारी तरफ प्रेम की धारा बहनी शुरू हो जाती है। तुम अगर अपने को प्रेम न कर पाए, जो कि तुम्हारे साधुओं की शिक्षा के कारण असंभव हो गया है, तो तुम्हें कोई भी प्रेम न कर सकेगा।
मेरे हिसाब में, अगर तुमने अपने को प्रेम किया तो तुम पाओगे अनंत लोग तुम्हें प्रेम करते हैं। और यह प्रेम बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है। एक दिन अचानक तुम पाते हो कि परमात्मा का प्रेम भी तुम पर बरसा। तुम योग्य होते जाते हो। तुम इतने योग्य होते जाते हो, तुम अपने आप में इतने पूरे होते जाते हो कि वही प्रेम की पूर्णता एक दिन तुम्हारे ऊपर परमात्मा की वर्षा बनेगी।
परमात्मा को खोजने तुम जाओगे कहां? उसका कोई पता-ठिकाना नहीं। सच तो
यह है कि परमात्मा तक कोई आदमी कभी नहीं पहुंचता; जब भी घटना घटती है परमात्मा आदमी तक आता है। इसके अतिरिक्त रास्ता भी नहीं है। जिस दिन तुम योग्य हो और तुम अपने प्रेम से इतने परिपूर्ण हो और तुम इतने तृप्त हो अपने प्रेम से कि तुम्हारे जीवन में कोई शिकायत नहीं है, कोई भिक्षा की इच्छा नहीं रही अब, तुम सम्राट हो गए हो; तुम आनंदित हो, जो तुम्हें मिला है बहुत है; ऐसी भाव-दशा में अचानक एक दिन द्वार पर दस्तक पड़ती है--परमात्मा द्वार पर खड़ा है!
अपने को प्रेम करो। और तब बड़ी कठिनाई होगी। जैसे-जैसे तुम अपने को प्रेम करोगे तुम अपने को बदलने भी लगोगे, क्योंकि प्रेम के योग्य भी तो बनाना होगा। एक बार तुम्हें यह ख्याल आ जाए कि अपने को प्रेम करना है तो तुम्हें बहुत सी क्षुद्रताएं दिखाई पड़ने लगेंगी जो कि प्रेम न करने देंगी। उन क्षुद्रताओं को तुम्हें छोड़ देना होगा। वे तुम्हारी समझ से छूट जाएंगी। अगर तुम्हें अपने को प्रेम करना है तो प्रेम-पात्र के योग्य भी तो बनना होगा। तब तुम पाओगे कि बहुत सी क्षुद्रताएं असंभव हो गई हैं। क्योंकि कैसे तुम कर सकते हो वे क्षुद्रताएं? अगर करोगे तो निंदा शुरू हो जाती है।
अगर तुमने जरा सी बात में क्रोध किया तो तुम खुद आत्म-निंदित हो जाओगे
कि यह क्या क्षुद्रता है! यह क्या उथलापन है! जरा सी बात में और गरम हो गया। इतनी भी शीतलता न थी कि इतनी सी बात को सह जाता। तुम अचानक पाओगे कि अगर अपने को प्रेम करना है तो क्रोध धीरे-धीरे छूटेगा। अगर अपने को प्रेम करना है घृणा धीरे-धीरे गिरेगी। नहीं तो तुम प्रेम न कर पाओगे। जब अपने को प्रेम करना है तो अपने को तैयार भी करना होगा। तुम धीरे-धीरे अपने को निखारने में लग जाओगे।

अब तक तुमने दूसरों के लिए अपने को तैयार किया था, तो तुम बाहर से सजाते थे--अच्छे वस्त्र पहनते थे, गंध छिड़कते थे, फूल बालों में खोंस लेते थे, रंग-रोगन कर लेते थे--बाहर से अपने को सजा-संवार कर जाते थे। जब तुम अपने को प्रेम करोगे तो बाहर की सजावट तो काम न आएगी, क्योंकि तुम तो भीतर हो। और तुम कितना ही रंग ऊपर पोत लो चेहरे के, तुम्हें तो अपना असली चेहरा पता ही है।
नहीं, जब तुम अपने को प्रेम करोगे तो तुम्हें भीतर सजाना पड़ेगा; भीतर काशृंगार शुरू होगा। और भीतर काशृंगार ही साधना है।
"संत अपने को जानते हैं, पर दिखाते नहीं। अपने को प्रेम करते हैं, पर उछालते नहीं। इसलिए एक को, शक्ति को वे अस्वीकार करते हैं; और दूसरे को, कुलीनता को स्वीकार करते हैं।"
संत शक्ति को अस्वीकार करते हैं, शांति को स्वीकार करते हैं। शक्ति
को अस्वीकार करते हैं, गहन विनम्रता को स्वीकार करते हैं। क्या है राज इस बात का?
शक्ति को वही आदमी स्वीकार करता है जो भयभीत है। भय के कारण तुम शक्ति
को स्वीकार करते हो। भय के कारण शक्ति ही तो बचाव बन सकती है। तो तुम चाहते हो धन इकट्ठा कर लूं; समय पड़ेगा, काम आएगा। तलवार खरीद लूं; दुश्मन आएगा, हाथ रहेगी, मौके पर काम आ जाएगी। मित्र बना लूं, क्योंकि शत्रुओं का डर है। किसी पद पर पहुंच जाऊं, क्योंकि पद पर जो आदमी है उसके पास ज्यादा ताकत है। प्रधानमंत्री हो जाऊं, तो उसके पास बड़ी ताकत है, बड़ी फौजें हैं, सुरक्षा है। भयभीत आदमी शक्ति की खोज करता है और शक्ति को मानता है।
तुम तो इस बात को क्राइटेरियन समझ लो, मापदंड, कि जो आदमी भी शक्ति की खोज में है वह भीरु है। नहीं तो शक्ति की खोज क्यों करता? जो आदमी भय से मुक्त हो गया, अभय हो गया, उसकी शक्ति की आकांक्षा खो जाती है। वह शक्ति की कोई आकांक्षा नहीं करता--न धन में, न पद में, न प्रतिष्ठा में। शक्ति की आकांक्षा ही खो जाती है। और जहां शक्ति की आकांक्षा खो जाती है वहीं विशिष्टता है।
लाओत्से कहता है, वही कुलीन है।
तुम्हारे किस कुल में तुम पैदा हुए उससे तुम कुलीन नहीं होते। जिस दिन तुम विनम्रता के कुल में पैदा होते हो उसी दिन कुलीन होते हो। जिस दिन तुम्हारी शक्ति की आकांक्षा छूट जाती, अहंकार विलीन हो जाता, भय चला जाता, निंदा खो जाती और तुम अपने भीतर तृप्त-संतुष्ट हो जाते हो, एक गहन परितोष तुम्हारे भीतर उठता है जैसे सुबह का सूरज उगता हो, उस परितोष के प्रकाश में तुम वस्तुतः कुलीन हुए।
बुद्ध ने कहा है बुद्ध के पिता से। क्योंकि बुद्ध के पिता ने जब बुद्ध वापस लौटे तो कहा कि तू हमारे कुल में पैदा हुआ! और हमारे कुल में कभी भिखारी नहीं हुए और तू भीख मांगता है, हमें शर्म आती है! तू सम्राट है; भीख मांगने की कोई जरूरत नहीं। और मैं तेरा पिता हूं, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं; तू वापस लौट आ। बुद्ध ने कहा, आप अपनी तरफ से ठीक ही कहते हैं। लेकिन अब मैं दूसरे कुल में पैदा हो गया हूं। वह कुल आपका था जहां यह शरीर पैदा हुआ। और अब तो मैं बुद्धों के कुल में पैदा हो गया हूं। वहां आपके शरीर का, आपके कुल का, आपके साम्राज्य का, आपके सम्राट होने का कुछ भी लेना- देना नहीं। और जहां तक मैं जानता हूं, जिस कुल में मैं हूं, वैसे व्यक्ति सदा ही रास्ते के भिखारी रहे हैं।
कुलीन तुम तभी होते हो जब तुम जाग आते हो अंधेरे से। तब तुम बुद्धों
के कुल में पैदा हुए। संन्यास उस यात्रा का पहला कदम है जिसके अंत में व्यक्ति बुद्धों के कुल में पैदा होता है।
आज इतना ही।

एक सौ सतरवां प्रवचन

## मुक्त व्यवस्था --संत और स्वर्ग की

Chapter 73

On Punishment (2)

Who is brave in daring (you) kill,
Who is brave in not daring (you) let live.
In these two,
There is some advantage and some disadvantage.
(Even if) Heaven dislikes certain people,
Who would know (who are to be killed and) why?
Therefore even the Sage regards it as a difficult question.
Heaven's Way (Tao) is good at conquest without strife,
Rewarding (vice and virtue) without words,
Making its appearance without call,
Achieving results without obvious design.
The heaven's net is broad and wide.
With big meshes, yet letting nothing slip through.

अध्याय 73

दंड (2)

तुम उसकी हत्या कर देते हो जो आक्रमण करने में साहसी है,
तुम उसे जीने देते हो जो आक्रमण नहीं करने में साहसी है।
इन दोनों में,
कुछ लाभ भी हैं और कुछ हानि भी।
यद्यपि स्वर्ग कुछ लोगों को नापसंद कर सकता है,
तो भी कौन जानता है कि किन्हें मारा जाए, और क्यों?
इसलिए संत भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।
स्वर्ग का मार्ग--ताओ--बिना संघर्ष के विजय में कुशल है;
बिना शब्द के वह पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है;
बिना बुलावे के वह प्रकट होता है,
बिना स्पष्ट योजना के फल प्राप्त करता है।
स्वर्ग का जाल व्यापक और विस्तृत है।
उसमें बड़े-बड़े छिद्र हैं, तो भी उससे कुछ भी निकल नहीं पाता।

समाज निर्भय के विरोध में है, क्योंकि निर्भय के साथ असुरक्षा जुड़ी है। निर्भय खतरे में ले जा सकता है। निर्भय उन रास्तों पर ले जा सकता है जो कहीं न जाते हों। निर्भय लीक से उतर कर चलने की कोशिश करता है। नियम, व्यवस्था, परंपरा, इन्हें तोड़ने में निर्भय को बड़ा रस है। समाज भयभीत को बचाता है, निर्भय को नष्ट करता है। क्योंकि समाज को लगता है कि भयभीत समाज को बचाता है और निर्भय समाज को नष्ट कर देगा।

इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें। निर्भय ही अपराधी बन जाता है। निर्भय ही क्रांतिकारी बन जाता है। निर्भय के बुरे रूप भी हैं; निर्भय के भले रूप भी हैं। अपराधी और क्रांतिकारी में एक समानता है--दोनों तोड़ते हैं। अपराधी उच्छृंखल है; किसी और बड़ी व्यवस्था के लिए नहीं तोड़ता, तोड़ने के रस के कारण ही तोड़ता है, विध्वंसक है। क्रांतिकारी भी विध्वंसक है, लेकिन इस आशा में

तोड़ता है कि शायद तोड़ने से और बेहतर का निर्माण हो सके। हो या न हो, यह निश्चय नहीं।
समाज तो अपराधी और क्रांतिकारी को एक ही दृष्टि से देखता है। समाज के लिए तो दोनों से भय का द्वार खुलता है। समाज जीना चाहता है परिचित के साथ-- जिस रास्ते का जाना-माना रूप है, जिस रास्ते का नक्शा है, जिस समुद्र में बहुत बार यात्रा की जा चुकी है, और अब कोई भय नहीं है; खो जाने का, मिट जाने का, बर्बाद हो जाने का कोई डर नहीं है। तभी समाज कदम उठाता है। इसलिए समाज हमेशा परंपरा, रूढ़ि, लकीर से बंधा होता है।
निर्भय अनजान में जाना चाहता है, अपरिचित सागरों की यात्रा करना चाहता है; जहां कभी कोई नहीं गया है वहां पदचिह्न छोड़ना चाहता है। समाज इसमें खतरा देखता है।
समाज अपराधी के भी विपरीत है, क्योंकि वह नियम तोड़ता है। और नियम टूटने लगें तो समाज का कोई अस्तित्व बच नहीं सकता। समाज अंततः नियमों का एक जाल है। और एक बार लोगों की आस्था नियम से उठनी शुरू हो जाए तो उस आस्था को जमाना मुश्किल है।
इसलिए जो व्यक्ति भी इस तरह का दुस्साहस करता है, समाज उसे भयंकर रूप
से दंडित करता है। और बड़े से बड़ा दंड है जीवन को छीन लेना; बड़े से बड़ा दंड है मृत्यु-दंड; उस आदमी के जीवन की संभावना को ही नष्ट कर देना। इसका अर्थ हुआ कि समाज ने तय कर लिया कि इस आदमी से अब कोई भी आशा नहीं है; इसलिए इसे और जीने की कोई सुविधा नहीं दी जा सकती। इस आदमी को समाज ने मान लिया कि असाध्य है। जब तक साध्य मालूम होता है तब तक समाज छोटे दंड देता है; जब असाध्य मालूम होता है, असंभव मालूम होता है, तब समाज उस आदमी से जीवन छीन लेता है। जीवन छीनने का अर्थ है कि हम तुमसे परिपूर्ण रूप से हताश हो गए और अब तुमसे हमें कोई भी आशा नहीं कि तुम वापस मार्ग पर चल सकोगे। कुमार्ग पर चलना तुम्हारे जीवन की शैली हो गई। अब यह कोई फुटकर कृत्य नहीं है; तुम्हारे होने का ढंग ही हो गया। इसलिए तुम्हारे होने को हम मिटा देंगे। समाज जब यह निर्णय लेता है तो इसके साथ ही दूसरा निर्णय भी जुड़ा है। जैसे वह निर्भीक को मिटाता है, दुस्साहसी को, उसके साथ ही साथ वह भीरु को बचाता है।
लाओत्से तो उसे भी साहसी कहता है। और वह समझने जैसा है।
लाओत्से कहता है, कुछ साहसी हैं आक्रमण करने में, और कुछ साहसी हैं आक्रमण न करने में। भीरु का भी तो एक प्रकार का साहस है। जब निमंत्रण आता है अनजान का, जब बुलाते हैं ऐसे रास्ते अनचीन्हे, अनपहचाने, तब साहस करके वह लीक से ही रुका रहता है। वह भी साहस है। दुस्साहसी उसे कहता है कि तुम में कोई भी साहस नहीं, क्योंकि दुस्साहसी से वह विपरीत है। लेकिन जब चारों तरफ से निमंत्रण मिल रहा हो स्वच्छंदता का, बुलावा आ रहा हो अनचीन्हे रास्तों पर जाने का, अपरिचित सागर का आमंत्रण आ गया हो, तब तट से बंधे रहना, वह भी साहस है; वह भी टेंपटेशन को, उत्तेजना को रोकना है।
लाओत्से कहता है, भीरु भी साहसी है। भय को पकड़े रखता है, चाहे कुछ भी हो; रास्ते को छोड़ता नहीं, नियम को तोड़ता नहीं; आंख बंद रख कर माने चला जाता है कि रूढ़ि ठीक है। समाज इसे बचाता है, क्योंकि समाज इसके द्वारा ही बचता है। समाज भीरु की बड़ी प्रशंसा करता है। वह उसे सज्जन कहता है; दुस्साहसी को दुर्जन कहता है। भीरु को साधु कहता है; दुस्साहसी को असाधु कहता है। क्योंकि भीरु ही कवच है समाज का।
इसलिए समाज की पूरी चेष्टा होती है कि जैसे ही नया बच्चा पैदा हो उसे भयभीत कर दिया जाए, उसे डराया जाए, हजार डर उसके मन में बिठा दिए जाएं। तो ही वह समाज के काम का हो सकेगा। तो ही वह राज्य का, समाज का, संस्कृति का सम्मान करेगा। उसे इतना डरा दिया जाए कि उसमें इतनी सुविधा ही न रह जाए कि वह कभी समाज से विपरीत पैर उठा सके। इसलिए नरकों का भय है, स्वर्गों का प्रलोभन है। इसलिए यहां भी, पृथ्वी पर भी हजार तरह के दंड हैं, हजार तरह के पुरस्कार हैं।
तुम किस आदमी को भला कहते हो? कौन सा आदमी शुभ है?

अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम्हारा सब शुभ भय के आस-पास निर्मित है। तुम कहते हो, यह आदमी चोर नहीं है। लेकिन तुमने कभी यह विचार किया कि जो चोर नहीं है उसने क्या चोरी इसलिए नहीं की है कि वस्तुतः उसकी अंतरात्मा से चोरी का भाव चला गया? या कि इसलिए नहीं की है कि वह चोर जैसा साहस नहीं जुटा पाया? चोर होना साधारण तो नहीं है, असाधारण कृत्य है। चोर होने के लिए एक विशेष तरह की प्रतिभा और क्षमता चाहिए। अपने ही घर रात अंधेरे में चलने में डर लगता है; दूसरे के अपरिचित घर में अंधेरे में दीवाल तोड़ कर घुस जाना और ऐसे चलना जैसे अपने बाप का घर हो और इस तरह सामान उठाना कि आवाज न हो, हृदय न धड़के। तुम्हारी तो छाती इतनी धड़कने लगेगी कि हाथ-पैर हिल न सकेंगे।
चोर भी एक तरह की कुशलता है दुस्साहस की। हत्यारा भी एक तरह की कुशलता
है आत्यंतिक दुस्साहस की। दूसरे को मिटाने की बात ही सोचने के लिए बड़ी तैयारी चाहिए; दूसरे को मिटाने के लिए खुद को मिटाने की तैयारी चाहिए। क्योंकि जब तुम दूसरे को मिटाने जाते हो तो खुद को भी दांव पर लगाते हो। तुम दूसरे को मिटा दो और तुम बिना दांव पर लगे मिटा दो, ऐसा तो नहीं हो सकता। अपराधी के भी गुण हैं।
गैर-अपराधी जिसको तुम कहते हो, साधु जिसे कहते हो, उसके भी गहरे दुर्गुण हैं। भय के कारण अधिक लोग साधु हैं। चोरी नहीं कर सकते; इसलिए नहीं कि अचौर्य को उपलब्ध हो गए हैं, बल्कि इसलिए कि इतने भयभीत हैं कि चोरी की तरफ साहस नहीं होता। अगर उनको भी कोई पक्का भरोसा दिला दे कि न तो रास्ते पर पुलिस है, न अदालत में न्यायाधीश है, न ऊपर कोई परमात्मा है, न पाताल में कोई नरक है; अगर उन्हें कोई बिल्कुल ही भय से मुक्त कर दे, वे भी चोरी पर निकल जाएंगे। यही तो समाज का डर है कि कहीं लोग भय से मुक्त न हो जाएं। इसलिए समाज हजार तरह के भय खड़े करता है। समाज एक ही तरकीब जानता है मनुष्य को नियंत्रण में रखने की, वह भय है। साधु निन्यानबे प्रतिशत भय के कारण होता है। यह भी कोई साधुता हुई?
असाधु निन्यानबे प्रतिशत निर्भय के कारण होता है। अगर निर्भय पर ध्यान रखो तो असाधु में भी गुण दिखाई पड़ेगा। अगर भय पर ध्यान रखो तो साधु में भी दुर्गुण दिखाई पड़ेगा। अगर कृत्य पर ध्यान रखो तो साधु में गुण दिखाई पड़ेगा, असाधु में दुर्गुण दिखाई पड़ेगा।
समाज कृत्य की फिक्र करता है, तुम्हारी अंतरात्मा की नहीं। इसलिए साधु का सम्मान करता है, असाधु का अपमान करता है। क्योंकि समाज का संबंध उससे है जो तुम करते हो। जब तुम कुछ करते हो तभी समाज के जीवन में कोई चीज प्रवेश पाती है। अगर तुम सोचते रहते हो, कोई हर्जा नहीं है। अगर एक आदमी बैठ कर दिन-रात चोरी का चिंतन करता है तो भी अदालतें उस पर मुकदमा नहीं चला सकतीं। क्योंकि चिंतन निजी है, विचार वैयक्तिक हैं। तुम सारी दुनिया की हत्या रोज करो मन में तो भी तुम पर किसी को मारने का मुकदमा नहीं चल सकता। क्योंकि जब तक तुम विचार करते हो तब तक समाज में तुम उतरते ही नहीं। जैसे ही तुम कृत्य करते हो, तुम समाज में आते हो। विचार जब कृत्य बनता है तभी सामाजिक बनता है; जब तक विचार रहता है तब तक निजी है।
इसलिए समाज कहता है, तुम्हें सोचना हो तो मजे से सोचो। समाज मौके भी देता है सोचने के कि तुम सोचने में ही चुक जाओ, ताकि करो न। फिल्में हैं हत्याओं से भरी हुई, डकैतियों से भरी हुई, व्यभिचार से भरी हुई। समाज उन्हें प्रकट रूप से दिखाता है। किताबें हैं अश्लील, गंदी से गंदी, हत्याओं से भरी, सब तरह के व्यभिचारों में लिप्त; वे उपलब्ध हैं। समाज को इसमें कोई ज्यादा चिंता नहीं पैदा होती।
मनसविद तो कहते हैं कि हत्या की फिल्म को देख कर हत्या के भाव का रेचन होता है। जब तुम हत्या की फिल्म देख लेते हो तो तुम्हारे हत्या करने का जो भीतर छिपा हुआ भाव है उसका निष्कासन हो जाता है, तुम थोड़े हलके हो जाते हो। तुम दूसरों को व्यभिचार करते देख लेते हो फिल्म में या उपन्यास में, तुम्हारी व्यभिचार करने की वृत्ति को थोड़ी सी राहत मिल जाती है।

समाज पूरा मौका देता है; सोचो मजे से, भाव करो मजे से। पूरी स्वतंत्रता है। कृत्य में भर मत लाना। क्योंकि जैसे ही कृत्य में आया वैसे ही समाज की नींव डगमगाती है।
धर्म के संबंध में बात बिल्कुल भिन्न है। धर्म को इसकी चिंता नहीं कि तुमने किया या नहीं; धर्म को चिंता है कि तुमने सोचा या नहीं। क्योंकि धर्म निजी है, वैयक्तिक है। तुमने कितने ही साधुता के कृत्य किए हों, और अगर विचार असाधुता के हैं, तो धर्म की नजर में तुम साधु नहीं हो, समाज की नजर में साधु हो। अगर तुम्हारे भीतर भावनाएं पाप की हैं और तुम कृत्य पुण्य के करते हो। और अक्सर ऐसा होता है कि भावनाओं को छिपाने के लिए आदमी विपरीत कृत्य करता है। जिनके मन में पाप की बड़ी भावना है वे अपनी दीवाल पर लिख लेते हैंः ब्रह्मचर्य ही जीवन है। वह दीवाल पर जो उन्होंने लिख रखा है, टेबल पर जो मोटो रख कर बैठे हैं, ठीक उससे उलटी उनकी दशा होगी। सोचो, जिस आदमी को कामवासना की तीव्र विक्षिप्तता न उठती हो वह क्यों दीवाल पर लिख कर बैठेगा कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है? बीमार आदमी औषधि साथ रखता है; स्वस्थ आदमी तो नहीं।
जिसने अपने दरवाजे पर लिख रखा हैः आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी। यह आदमी बेईमान है। इससे तुम जरा सावधान रहना, अपनी जेब बचाना। क्योंकि जो आदमी लिख कर बैठा है कि ईमानदारी ही श्रेष्ठतम नीति है, यह आदमी बेईमान होना ही चाहिए। अन्यथा इसे लिखने का सवाल ही न था। तुम्हें पक्का पता है, जहां-जहां तुम लिखा देखो कि यहां शुद्ध घी बिकता है, वहां तुम थोड़े संदिग्ध हो जाना। क्योंकि घी लिखना काफी है, शुद्ध! घी में शुद्ध आ ही जाता है। घी में अशुद्ध का क्या सवाल है?
शुद्ध लिखने में ही बात छिपी है। अशुद्ध को ढांकने के लिए शुद्ध लिखा जाता है। पाप को ढांकने के लिए पुण्य लिखा जाता है। और लिखने की सबसे सुगम व्यवस्था है कृत्य। तुम जो भीतर हो उसे छिपाने के लिए सुगमतम मार्ग है कि तुम ऐसा कुछ करो जो उसके विपरीत है। तुम सारी दुनिया को धोखा दे दोगे।
तो यहां व्यभिचारी मन वाला व्यक्ति ब्रह्मचारी होकर बैठ जाता है। कृत्य में होता है ब्रह्मचर्य, भाव में होता है व्यभिचार। यहां भाव में सारी दुनिया की संपत्ति पर कब्जा कर लेने की आकांक्षा वाला व्यक्ति सब धन छोड़ कर त्यागी हो जाता है। धोखा बड़ा गहरा है। और ठीक से सावधानीपूर्वक उसमें उतरना जरूरी है और समझना जरूरी है। अन्यथा तुम भी वही कर सकते हो। क्योंकि जिन्होंने किया है वे भी तुम जैसे ही मनुष्य हैं। तुम यह मत सोचना कि यह मैं किसी और के लिए कह रहा हूं। यह मैं तुमसे ही कह रहा हूं। यह बात सीधी-सीधी है। तुम भी अगर अपने जीवन की थोड़ी जांच-परख करोगे, विश्लेषण करोगे, तो जल्दी ही पहचान लोगे कि तुम जो करते हो वह उसे छिपाने का उपाय होता है तुम जो हो।
और संत का अर्थ है, तुम जो हो उसी को प्रकट हो जाने देना। साधु वह है जो भीतर असाधु है और बाहर साधु का कृत्य करता है। असाधु वह है जो भीतर भी असाधु है और बाहर भी असाधु का कृत्य करता है। संत वह है जो भीतर भी साधु है और बाहर भी साधु का कृत्य करता है। इस संसार में असाधु भी सच्चा है, संत भी सच्चा है; साधु सबसे बड़ा धोखा है। असाधु बाहर-भीतर एक जैसा है। भीतर चोरी है, बाहर भी चोरी है। संत भी बाहर-भीतर एक जैसा है। भीतर भी ब्रह्मचर्य है, बाहर भी ब्रह्मचर्य है। साधु प्रवंचना है; साधु धोखा है। साधु इस संसार में सबसे बड़ा झूठ है। वह भीतर असाधु है, बाहर साधु है। भीतर पाप है, बाहर पुण्य है। भीतर तो चाहेगा गर्दन दबा दे और बाहर वह मंत्र जपता रहता हैः अहिंसा परमो धर्मः। अहिंसा परम धर्म है। असाधु सच्चा है, जैसा भीतर वैसा बाहर। संत भी सच्चा है, जैसा भीतर वैसा बाहर। इसलिए संत में और असाधु में एक तरह की समानता है; एक तरह की सच्चाई की समानता है। दोनों बड़े भिन्न हैं, बिल्कुल विपरीत हैं, लेकिन एक सच्चाई की समानता है। दोनों प्रामाणिक हैं। तुम कभी अपराधियों को देखो जाकर। तुमने देखा नहीं, क्यों अपराधी की तुम्हारे मन में इतनी निंदा है कि तुम उसे कभी देखते ही नहीं। जब निंदा इतनी हो तो आंख देखने की फिक्र ही छोड़ देती है; पर्दा पड़ जाता है। कभी कारागृह में जाकर अपराधियों को गौर से देखो। तुम अपराधियों की आंख में

तुम्हारे साधुओं से ज्यादा साधुता पाओगे। एक सरलता मिलेगी; वे जैसे भीतर हैं वैसे बाहर हैं। साधु की आंख में तुम्हें एक जटिलता मिलेगी; दो पर्तें मिलेंगी साधु की आंख में। ऊपर की पर्त पर मुस्कुराहट होगी, भीतर की पर्त पर उदासी होगी। ऊपर की पर्त पर ईमानदारी होगी, भीतर की पर्त पर बेईमानी होगी। साधु दोहरा है। साधु द्वंद्व है।
इसलिए लाओत्से की पूरी चेष्टा है कि तुम असाधु को छोड़ कर कहीं साधु मत
हो जाना। अगर उठना ही हो तो असाधु से संतत्व में उठना। साधु कोई उठना नहीं है। साधु तो फिर असाधु ही बने रहने का और भी ज्यादा समाज-सम्मत उपाय है। समाज राजी हो जाएगा, तुम्हारे कृत्य बदल गए। समाज को कुछ लेना-देना नहीं। तुम किसी की हत्या नहीं करते, किसी की स्त्री की तरफ बुरे भाव से नहीं देखते, किसी की स्त्री को लेकर नहीं भाग जाते, किसी की चोरी नहीं करते; बात खतम हो गई। समाज तुमसे निश्चिंत हो गया। तुम जानो तुम्हारे भीतर का। लेकिन धर्म अभी निश्चिंत नहीं होता। धर्म कहता है, जब तक तुम भीतर से
न बदले तब तक तुम्हारे बाहर से बदलने का क्या अर्थ है? धर्म के लिए कृत्य महत्वपूर्ण नहीं है; धर्म के लिए भाव महत्वपूर्ण है। धर्म तुम्हारी अंतरात्मा को बदलने में उत्सुक है; तुम्हारे आचरण को बदलने में नहीं। हां, अंतरात्मा की बदलाहट से आचरण बदल जाएगा, वह दूसरी बात है। पर वह धर्म की चिंता नहीं है। वह अपने आप होगा। वह ऐसे ही होगा जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चलती है।
तुमने कभी विचार किया या कभी देखा कि जो आदमी चोर है वह जब चोरी नहीं
भी करता तब भी तो उसकी भाव-दशा चोर की ही होती है। चोरी नहीं भी करता--कोई चोर चौबीस घंटे तो चोरी करता नहीं, रोज तो चोरी करता नहीं--जब चोर चोरी नहीं करता तब वह कौन होता है? क्या वह अचोर होता है? कृत्य तो नहीं है। लेकिन कृत्य के न होने से क्या चोर अचोर हो जाता है? दो चोरी के बीच में चोर कैसा होता है? अंतरधारा बहती रहती है चोरी की; मौके की तलाश में होता है। जब मौका मिल जाएगा तब चोर हो जाएगा। चोर तो है ही। मौके के कारण चोर नहीं बनता; मौके के कारण भीतर की अंतरधारा प्रकट हो जाती है। अभी छिपा था, अब प्रकट हो जाता है। अभी ढंका था, अब अनढंका हो जाता है। लेकिन भीतर की धारा तो चोर की ही होगी।
जब कोई करुणावान व्यक्ति, कोई बुद्ध पुरुष, कोई करुणा का कृत्य नहीं
कर रहा होता--न किसी के पैर दबा रहा है; न कोई गिर गया है उसे उठा रहा है; न कोई डूब रहा है पानी में उसे बचा रहा है; न किसी के मकान में आग लगी है और जाकर सेवा कर रहा है--जब दो करुणा के कृत्यों के बीच में बुद्ध पुरुष होते हैं तब कैसे होते हैं? कोई कृत्य तो नहीं होता, लेकिन भीतर बुद्धत्व की धारा होती है; भीतर करुणा बहती रहती है। उसी तरह जैसे चोर में चोरी बहती रहती है, कामी में काम बहता रहता है, लोभी में लोभ बहता रहता है, वैसे ही बुद्ध में ध्यान बहता रहता है, करुणा बहती रहती है, प्रेम बहता रहता है। दो करुणा के कृत्यों के बीच में भी बुद्ध बुद्ध होते हैं। कृत्य के कारण कोई बुद्ध नहीं होता; अंतरधारा के कारण कोई बुद्ध होता है।
अब जरा ऐसा सोचो कि बुद्ध बैठे हैं, कोई करुणा नहीं कर रहे हैं। और एक चोर उनके पास बैठा है, कोई चोरी नहीं कर रहा है। दोनों एक जैसे हैं क्या इस वक्त? बुद्ध कोई बुद्धत्व का काम नहीं कर रहे हैं; चोर कोई चोरी का काम नहीं कर रहा है; दोनों पास बैठे हैं। बाहर से देखने पर तो दोनों एक जैसे हैं। समाज के लिए तो दोनों बराबर हैं। क्योंकि समाज तो केवल कृत्य को पहचानता है, आचरण को पहचानता है। जब तक कोई चीज आचरण न बन जाए, समाज की आंख की पकड़ में ही नहीं आती। तो अभी समाज के लिए तो दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं। लेकिन क्या तुम कह सकोगे कि दोनों एक जैसे हैं? दोनों में उतना ही अंतर है जितना पृथ्वी और आकाश में। कृत्य बिल्कुल नहीं है, पर अंतरधारा मौजूद है। चोर चोर है; बुद्ध बुद्ध हैं।
तुम्हारे करने से तुम नहीं हो; तुम्हारे करने पर तुम्हारा होना निर्भर नहीं है। तुम्हारे होने से तुम्हारा कृत्य आता है। इसलिए मैं कहता हूं, धर्म सामाजिक घटना नहीं है; धर्म समाज से बड़े बाहर की घटना है।
संप्रदाय सामाजिक घटना है। हिंदू होना सामाजिक है; मुसलमान होना सामाजिक

है; जैन होना सामाजिक है। धार्मिक होना सामाजिक नहीं है। क्योंकि हिंदू, मुसलमान, जैन, पारसी, ईसाई, वे सबके सब तुम्हारे कृत्य की ही फिक्र कर रहे हैं। ईसाइयों की दस आज्ञाएं हैं; उनमें एक भी आज्ञा नहीं है होने के संबंध में। चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, दूसरे की स्त्री को बुरे भाव से मत देखो; सब कृत्यों की बातें हैं।
समझ लो कि एक आदमी न चोरी करता, न किसी की स्त्री को लेकर भागता, न किसी
की हत्या करता। क्या इतने न करने से वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएगा? उसकी अंतरधारा का क्या होगा? कृत्य तो रोका जा सकता है। अंतरधारा? उसे बदलना तो बड़ी क्रांति है। उसके लिए तो बड़े आंतरिक जीवन से गुजरना जरूरी है। उसके लिए तो बड़ी अग्नि से गुजरना जरूरी है। उसके लिए तो अपने को आमूल बदल लेना होगा।
सभी संप्रदाय समाज के हिस्से हैं। वे समाज के वैसे ही हिस्से हैं जैसे अदालत। अदालत भी तुम्हें डराती है; संप्रदाय भी तुम्हें डराते हैं। धर्म समाज के बिल्कुल बाहर है। धर्म तो अभय को उपलब्ध करवाता है। धर्म भय के बाहर ले जाता है; निर्भय के भी बाहर ले जाता है। धर्म अंधकार के बाहर प्रकाश की तरफ ले जाता है। धर्म आरोहण है आत्म-अज्ञान से आत्म-ज्ञान में। वह एक आंतरिक क्रांति है।
इसलिए समाज धर्म के भी विपरीत होता है। क्योंकि समाज को डर लगता है कि
ये धार्मिक व्यक्ति भी समाज को ऐसे ही लगते हैं जैसा निर्भय व्यक्ति लगता है; यद्यपि वह निर्भय नहीं है, वह अभय है। पर इतनी बारीक चीजें समाज की बुद्धि के बाहर हैं। समाज की बुद्धि तो बड़ी मोटी, कामचलाऊ बुद्धि है। वहां हिसाब बहुत बाजारू है। वहां बारीक, सूक्ष्म और नाजुक की कोई गति नहीं है। वह तो ऐसे ही है जैसे कि कोई साग-सब्जी तौलने वाले के पास तुम हीरे लेकर पहुंच जाओ और वह साग-सब्जी तौलने के बटखरों से हीरों को तौल दे। वह उसकी पकड़ के बाहर है। हीरे कहीं साग-सब्जी तौलने वाले बटखरों से तौले जाते हैं? समाज की बुद्धि तो बड़ी साधारण, स्थूल है। समाज तो भीड़ है। भीड़ के पास कोई प्रतिभा होती है? भीड़ के पास तो निम्नतम प्रतिभा होती है। मनसविद कहते हैं कि अगर भीड़ के अलग-अलग व्यक्तियों की बुद्धि नापी जाए तो उसका जोड़ भी भीड़ की बुद्धि नहीं होता। यहां तुम अगर सौ मित्र बैठे हो, तो तुम्हारी प्रत्येक व्यक्ति का बुद्धि-माप अलग-अलग ले लिया जाए, तो उतना जोड़ भी तुम्हारी भीड़ का नहीं होता। और एक और अनूठी घटना मनसविद कहते हैं कि भीड़ में व्यक्ति अपनी बुद्धिमत्ता को भी खो देता है, और भीड़ में जो आखिरी आदमी होता है वह निर्णायक होता है, प्रथम आदमी निर्णायक नहीं होता। भीड़ में बुद्धिमान आदमी खो जाता है और मूढ़ प्रधान हो जाते हैं। क्योंकि भीड़ एक तरह का पतन है। तुम अपना दायित्व खो देते हो। एकांत में मनुष्य का निजता का फूल खिलता है; भीड़ में सारी प्रतिभा खो जाती है।
इसलिए तुम्हें कभी अनुभव हुआ होगा, जब भी तुम भीड़ से लौटते हो तो तुम्हें लगता है तुम कुछ खोकर लौटे। और दुनिया में जो बड़े से बड़े पाप होते हैं वे भीड़ के कारण होते हैं। अकेले आदमियों ने बड़े पाप नहीं किए हैं। हिंदुओं की भीड़ जो पाप कर सकती है वह कोई हिंदू अकेले में नहीं कर सकता। मुसलमानों की भीड़ जो कर सकती है भीड़ की तरह, एक मुसलमान अकेले में नहीं कर सकता। लाखों की हत्या की जा सकती है। तुम एक-एक मुसलमान और एक-एक हिंदू से पूछो कि क्या सार हुआ तुम्हें इन मुसलमानों के घरों में आग लगा देने से, या हिंदुओं का मंदिर जला देने से? अगर तुम एक-एक मुसलमान से पूछो तो वह भी डरेगा। वह भी कहेगा कि नहीं, यह उचित नहीं हुआ। और मुझे पता नहीं कैसे हो गया! मैंने कुछ किया भी नहीं, भीड़ में साथ हो गया। भीड़ तुम्हें पोंछ देती है। तुम्हारे दायित्व को, तुम्हारी समझ को, तुम्हारी प्रतिभा को धूल भर देती है। भीड़ एक बड़ा पतन है।
अगर बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट और मोहम्मद जंगल की तरफ भागते हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि समाज बुरा है, उसका कुल कारण इतना है कि वे चाहते हैं कि एकांत मिल जाए। भीड़ की खींचती हुई आकर्षण की धारा नीचे की तरफ लाती है; वे अकेले होना चाहते हैं। क्योंकि दुनिया में जीवन का श्रेष्ठतम फूल अकेले में ही खिला है। कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण भीड़ में नहीं पैदा

हुआ; भीड़ में नहीं हो सकता। एकांत में! हां, फूल खिल जाए, फिर वह भीड़ में वापस लौट आता है। लेकिन खिलने की घटना अकेले में होती है।
इसलिए एकांत का इतना मूल्य है। वह भीड़ की दुर्गति से बचने का उपाय है। कुछ बातें और समझ लें, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।
लाओत्से कहता है कि बुरे को, असाधु को, दुस्साहसी को समाज मिटा देता है; भले को, सज्जन को, साधु को बचा लेता है। संत कहां हैं फिर? संत के साथ समाज बड़ी दुविधा में रहता है। क्योंकि संत में लक्षण तो दोनों के होते हैं--साधु के, असाधु के। क्योंकि वह तो निर्द्वंद्व है, अद्वैत है। उसमें तो साधु-असाधु दोनों मिल कर एक हो गए हैं। वह तो संगीत है जीवन के विरोधों का। संत के साथ समाज क्या करे? बड़ी दुविधा खड़ी होती है।
तो समाज एक रास्ता निकालता है। जब संत जीवित होता है तब उसका विरोध करता है, जैसे असाधु का करना चाहिए। जब संत मर जाता है तब उसका सम्मान करता है, जैसा साधु का करना चाहिए। यह समझौता है समाज का। संत का न तो विरोध किया जा सकता है पूरे मन से, क्योंकि समाज को भी प्रतीत होता है कि आदमी गलत तो नहीं है। जीसस को पूरे मन से विरोध भी तो नहीं किया जा सकता; फांसी लगाते वक्त भी तो मन को चोट लगती है, कचोट होती है। लेकिन फांसी लगानी होगी। क्योंकि यह आदमी समाज के नियम तुड़वाए दे रहा है; प्रकट व्यवहार इसका असाधु का है। यह होगा भीतर साधु, लेकिन बाहर तो यह जो भी कर रहा है उससे समाज की नींव को डगमगा दिया है। समाज का भवन गिराए दे रहा है। जो-जो नियम थे, सब तोड़ दिए हैं। यह आदमी खतरनाक है। यद्यपि इस खतरनाक आदमी के भीतर भी गंध तो मिलती है किसी अपूर्व घटना की। लेकिन उस घटना के लिए इस आदमी की खतरनाक जीवन-व्यवस्था को भी तो बरदाश्त नहीं किया जा सकता। तो जीसस को सूली लगा दी। जिन्होंने सूली लगाई, वही ईसाई हो गए। जिन्होंने सूली लगाई, वे ही जीसस के भक्त हो गए। और ऐसी घटना बनी कि यहूदी धर्म सिकुड़ कर छोटा हो गया और ईसाइयत फैल कर विराट सागर बन गई।
हां, सूली लगा देने के बाद इस आदमी का कृत्य का जीवन तो समाप्त हो गया, आचरण तो समाप्त हो गया। अब बच गई केवल भीतर की बात। तो भीतर की पूजा की जा सकती है। भीतर से तो कोई डर नहीं है। जीसस की हत्या का अर्थ यह है कि तुम्हारे शरीर को समाज बरदाश्त न कर सकेगा; तुम्हारे व्यवहार को, आचरण को बरदाश्त न कर सकेगा। हां, तुम्हारी आत्मा की हम पूजा करेंगे सदा-सदा। इसलिए संत जब मर जाते हैं तभी पूज्य हो पाते हैं। संत को जीते जी पूजना थोड़े से दुस्साहसी लोगों की ही बात है। समाज और भीड़ संत को जीते जी नहीं पूज सकती। संत बड़ी दुविधा में डाल देता है। क्योंकि संत दुविधाओं का जोड़ है, विरोधों का समागम है।
अब हम सूत्र में उतरने की कोशिश करें।
"तुम उसकी हत्या कर देते हो जो आक्रमण करने में साहसी है। तुम उसे जीने देते हो जो आक्रमण नहीं करने में साहसी है। इन दोनों में कुछ लाभ भी हैं और कुछ हानि भी।"
क्या लाभ हैं और क्या हानियां हैं, विचारणीय है। जो भयभीत आदमी है उसके कुछ लाभ भी हैं। बड़े से बड़ा लाभ तो यह है कि जो जान लिया गया है उसे वह बचाता है। नहीं तो वह जो निर्भीक आदमी है, वह उस सबको गंवा देंगे जो हजारों-हजारों साल में जाना गया है। जो ज्ञान की संपदा है उसे भयभीत आदमी बचाता है। वह सांप की तरह कुंडल मार कर बैठ जाता है अतीत पर; वह तुम्हें छूने नहीं देता, परंपरा तोड़ने नहीं देता; लीक से उतरने नहीं देता।
लीक का मतलब ही यह है कि हजारों-हजारों साल के अनुभवों का निचोड़ है वह। किसी एक आदमी के कहने पर लीक छोड़ी नहीं जा सकती। तुम एक हो; वह हजारों- हजारों वर्षों का अनुभव है। तुम भटका सकते हो; तुम निचोड़ को गंवा देने का कारण बन सकते हो। और वह जो लीक है वह भी तो बुद्ध पुरुषों के ही चरणों का चिह्न है।
इसे थोड़ा समझ लें। वह भी तो कभी संतों ने चल कर ही उस रास्ते को निर्मित किया था जिसको आज भयभीत आदमी पकड़े हुए है। वह उसे छोड़ने न देगा। अगर भीरु लोग न होते तो बुद्ध के वचन न बचते। कौन बचाता? अगर भीरु लोग न होते तो मंदिरों में प्रतिमाएं न होतीं महावीर की। कौन बचाता? अगर

निर्भीक लोगों की बातें सुनी गई होतीं तो न मंदिर होते, न मस्जिद होती, न बुद्ध का स्मरण होता, न क्राइस्ट का स्मरण होता। सब खो गया होता। क्योंकि निर्भीक सदा तुम्हें लीक के बाहर ले जाता है।
इसे थोड़ा बारीकी से समझो तो भीरु बचाता है। वह संरक्षक है। वह नये को पैदा नहीं कर सकता, लेकिन एक बार नया पैदा हो जाए तो वह उसे बचाता है। वह नये को पैदा होने में सहायता भी नहीं दे सकता, वह नये का दुश्मन है। लेकिन पुराने का प्रेमी है। एक दफा नये को तुम पैदा कर दो तो नया पुराना हो जाता है। पुराना होते ही से भीरु उसे बचाता है।
इसे तुम ऐसा समझो कि तुम मुझे सुनने आए हो। मैं कुछ नयी बातें कह रहा हूं। बहुत थोड़े से लोग मुझे सुनने आ पाएंगे। वे बहुत अल्प होंगे। क्योंकि नये की सुनने की क्षमता भीरु आदमी में होती ही नहीं। लेकिन ध्यान रखना, जैसे ही मैं विदा हो जाऊंगा, जो मैंने कहा था उसको तुम न बचा सकोगे; उसको भीरु आदमी बचाएगा। तुम तो फिर कोई नयी बात कहने आ जाएगा तो उसको सुनने चले जाओगे। भीरु नहीं जाएगा। वह अभी मुझे सुनने नहीं आया। वह कल जब मेरी बात को पकड़ लेगा तो वह किसी और को सुनने नहीं जाएगा। वही बचाने वाला होगा। भीरु संरक्षक है। निर्भीक जन्मदाता है। तुम ऐसा समझो कि इस जीवन के रहस्य में निर्भीक मां है और भीरु दाई है। और मां जन्म देकर विदा हो जाती है और दाई के ऊपर ही सारा दायित्व है। निर्भीक पैदा करने में समर्थ है; वह नया रास्ता बनाता है। भीरु देखता रहता है। जब तक कि रास्ता पूरा न बन जाए, जब तक कि बहुत लोग रास्ते पर चल न लें, जब तक कि भीरु को खबर न मिल जाए, आश्वासन न हो जाए विश्वस्त सूत्रों से कि हां, वह रास्ता पहुंचाता है, तब तक भीरु कदम नहीं उठाता। जैसे ही रास्ता सुनिश्चित हो जाता है, नक्शे उपलब्ध हो जाते हैं, भीरु सोच-विचार लेता है, सुरक्षा-असुरक्षा की सब बात तय हो जाती है, तब भीरु कदम उठाता है। फिर वह बचाता है उस रास्ते को। इसी तरह वह पुराने रास्तों को बचा रहा है।
और भी एक बात समझ लेने जैसी है कि भीरु कसौटी है। जब भीरु किसी रास्ते
पर जाने लगे, उसका अर्थ यह है कि सब कसौटियों पर वह रास्ता खरा उतर गया। निर्भीक तो नये पर जाने को आतुर होता है, बिना चिंता किए कि कहीं जाएगा यह रास्ता या नहीं जाएगा! तो निर्भीक सौ में से निन्यानबे मौकों पर तो भटकता है। वह तो कोई भी आवाहन मिल जाए उसे नये का तो तत्पर होता है जाने को। लेकिन नया सदा ठीक ही थोड़ी होता है। न तो पुराना सदा गलत होता है, न नया सदा ठीक होता है। नया बहुत बार गलत होता है, पुराना भी बहुत बार ठीक होता है। नये-पुराने से ठीक-गलत का कोई संबंध ही नहीं है। भीरु कसौटी है। जब भीरु भी जाने लगे तब समझना कि मार्ग सारी कसौटियों पर पूरा उतरा। तभी तो भीरु जाएगा, अन्यथा वह जाने वाला नहीं। भीरु बचाता है। भीरु कसौटी है।
लेकिन उसके खतरे भी हैं। क्योंकि वह नये पर जाने नहीं देता, वह पुराने
को पकड़े रहता है। चाहे पुराने से कहीं पहुंच भी न रहा हो तो भी पकड़े रहता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम बीस साल से मंत्र का जाप कर रहे हैं। मैं उनसे पूछता हूं, कुछ हो रहा है? तो कुछ हो तो नहीं रहा। मंत्र छोड़ो, मैं तुम्हें कुछ और बताऊं। वे कहते हैं, यह कैसे हो सकता है? मंत्र तो गुरु ने दिया था। बीस साल करते भी हो गए; अब छोड़ तो नहीं सकते। कुछ हो भी नहीं रहा। कहीं पहुंच भी नहीं रहे। जैसे निर्भीक नये के प्रति आतुर होता है वैसा भीरु पुराने के प्रति आविष्ट होता है। इतने दिन से कर रहे हैं; कैसे छोड़ दें? वे यह भी सोचते ही नहीं कि पहुंच रहे हैं, नहीं पहुंच रहे हैं? औषधि काम कर रही है, नहीं कर रही है? वह सिर्फ पकड़ने का आदी होता है। तो भीरु बचाता तो है, लेकिन वह कचरे को भी बचा लेता है। वह गलत को भी बचा लेता है। वह बचाने में ही उत्सुक है। वह अंधी दाई है। उसे पता भी नहीं रहता कि बच्चा मरा हुआ है। तो भी बचाए रखती है, छाती से लगाए रखती है। तुमने कभी बंदरिया को देखा हो, मरे बच्चे को छाती से लगाए वह कई दिनों तक घूमती रहती है। उसे पता ही नहीं कि बच्चा मर गया है।
भीरु को पता ही नहीं चलता कि चीजें जीवित होती हैं वे भी मर जाती हैं;
जो मार्ग कभी पहुंचाता था, वह सदा नहीं पहुंचाएगा। मार्ग भी जीते हैं और

मर जाते हैं। धर्म भी जन्मते हैं और मर जाते हैं। विचार की पद्धतियां कभी जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं, मरती हैं। इस जगत में हर चीज का मौसम है और हर चीज की अवस्था है। जैसे बच्चे, बूढ़े ऐसे ही धर्म भी बचपन, जवानी, बुढ़ापे से गुजरते हैं। आज से पांच हजार साल पहले कोई चीज जवान थी, वह कभी की मर चुकी। भीरु उसे छाती से लगाए बैठा रहता है। वह यह मान ही नहीं सकता कि जो कभी जिंदा था वह मर कैसे सकता है। वह कहता है, हमारा धर्म सनातन है।
कोई धर्म सनातन नहीं होता। सनातन अस्तित्व है। धर्म तो अस्तित्व की सुनी गई प्रतिध्वनि है किसी प्रज्ञावान पुरुष में। जब प्रज्ञावान पुरुष जीवित होता है तो उसकी सुनी गई प्रतिध्वनि में प्राण होते हैं, बल होते हैं। जैसे-जैसे प्रज्ञावान पुरुष विदा हो जाता है वैसे-वैसे रूढ़ि बन जाती है, जो ज्ञान था वह शास्त्र बन जाता है। जो शब्द निशब्द से आते थे, अब केवल शब्दों की ही भरमार रह जाती है। जो कभी उस प्रज्ञावान पुरुष के शून्य से पैदा होते थे, अब वे केवल शास्त्रों की व्याख्या से पैदा होते हैं। जो कभी ध्यानस्थ समाधि से आए थे, अब वे केवल पंडित के पांडित्य से आते हैं। अब पुरोहित कब्जा कर लेता है।
बुद्ध ने कहा है कि मेरा धर्म पांच सौ साल से ज्यादा नहीं जीएगा। लेकिन अभी भी जी रहा है। कैसे जी रहा है? बंदरिया मरे बच्चे को लेकर घूम रही है। बुद्ध खुद कह गए हैं कि मेरा धर्म पांच सौ साल से ज्यादा नहीं जीएगा। अब बुद्ध की भी सुनने को, जो बुद्ध को मानता है, वह राजी नहीं। वह पकड़े है छाती से। धर्म मर चुका है। उसके प्राण खो गए, उसकी जीवंत गरिमा जा चुकी; अब कुछ सार नहीं है। लेकिन प्राचीन मार्ग है। बुद्ध के द्वारा पैदा हुआ है। अनेक लोग उस पर चल कर प्राचीन समय में बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं। भीरु उसको पकड़े बैठा है। वह छोड़ेगा नहीं।
भीरु बचाता है। लेकिन उसके पास बोध नहीं है। वह गलत को भी बचा लेता है; मुर्दा को भी बचा लेता है; सड़े-गले को भी बचा लेता है। वह सिर्फ बचाता रहता है। वह बचाने में पागल है। उसका रस बचाने में है। वह यह नहीं देखता कि क्या बचा रहा है। वह चुनाव नहीं कर सकता; जैसे निर्भीक चुनाव नहीं कर सकता कि वह कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है; बस नये का बुलावा काफी है।
इसलिए निर्भीक के हाथ में अगर दुनिया हो तो दुनिया में कभी किसी वृक्ष की जड़ें न जम पाएंगी। जमने के पहले कोई दूसरी पुकार आ जाएगी; इस वृक्ष को सम्हालने के पहले दूसरा वृक्ष बुला लेगा। अगर निर्भीक के हाथ में दुनिया हो तो दुनिया में फैशन होंगी, धर्म नहीं हो सकता।
अमरीका में वह हालत है आज। अमरीका आज जवान से जवान मुल्क है; इसलिए बड़ा निर्भय है। आज अमरीकन की चाल में जो निर्भय है, दुनिया की किसी कौम की चाल में नहीं है। हो नहीं सकता। क्योंकि अमरीका का कुल इतिहास तीन सौ साल का है। कोई इतिहास है तीन सौ साल भी? बिल्कुल जवान है। जवान भी कहना ठीक नहीं है; बालपन है। तो अमरीका में हर चीज फैशन की तरह है। दो-चार साल टिक जाए तो बहुत। जब आती है आंधी तो ऐसा लगता है कि पूरा अमरीका आत्मसात कर लेगा। कभी महर्षि महेश योगी, कभी मेहरबाबा, कभी सूफीज्म, कभी झेन। अभी आंधी चल रही है तिब्बेतन धर्म की। क्योंकि तिब्बत से लामा भाग खड़े हुए हैं, तिब्बत को छोड़ना पड़ा है। वे सब अमरीका पहुंच गए हैं। बड़ी जोर की आंधी है। पर दो-चार साल से ज्यादा कुछ भी नहीं चलता। क्योंकि अमरीका में अभी भीरुता नहीं है चीजों को पकड़ने की। सुनी आवाज; नया कुछ भी मिला, गए। वह ऐसे ही जैसे कि नये वस्त्र पहनने का आकर्षण होता है; नयी किताब पढ़ने का आकर्षण होता है; नयी स्त्री में सौंदर्य दिखता है; नये पुरुष में सौंदर्य दिखता है। नये का सेंसेशन है, नये की दौड़ है। पर वह फैशन से ज्यादा नहीं। फैशन कितनी देर टिकती है? उसकी कोई जड़ें नहीं होतीं।
एक दिन राह पर मैंने मुल्ला नसरुद्दीन को देखा भागते, एक बंडल बगल में दबाए। मैंने पूछा, क्या इतनी जल्दी है? कहां भागे जा रहे हो? उसने कहा, पत्नी के लिए साड़ी खरीदी है; बातचीत में मत लगाएं, रोकें मत, मुझे जाने दें। मैंने कहा, इतनी क्या जल्दी है? साड़ी खरीदी है, पहुंच जाएगी। उसने कहा, इसके पहले कहीं फैशन बदल जाए! साड़ियों का कोई भरोसा है? कितनी देर फैशन चलता है?

अमरीका में सब चीजें फैशन हैं। निर्भीक के लिए नये में रस है। नया गलत
हो तो भी रस है; नया सड़ा-गला हो तो भी रस है; नया किसी सार का न हो, दो कौड़ी का हो, तो भी रस है। वह पुराने हीरे को भी नयी कौड़ी के लिए फेंक सकता है। यह उसका खतरा है। यह उसका दुर्गुण है।
पुराने के साथ, भीरु के साथ यह खतरा है कि अगर नया हीरा भी उसे मिल रहा
हो तो भी वह कौड़ी को रखेगा छाती से लगा कर, वह हीरे से भी डरेगा। वह कहेगा, नया है; क्या भरोसा? पुराने का भरोसा है। अगर पुराने भीरु आदमी को समझाना भी हो कुछ नया तो नयी शराब को भी पुरानी बोतल में ढाल कर देना पड़ता है। इसलिए तो मुझे लाओत्से और बुद्ध और कृष्ण पर बोलना पड़ता है; अन्यथा कोई कारण नहीं है। शराब मेरी है। मेरी ही बोतल भी हो सकती है। मगर मैं चाहूंगा कि भीरु भी उत्सुक हो जाए। वह मुझे सुनने न आएगा, लेकिन मैं गीता पर बोलूंगा तो सुनने आ जाता है। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। शराब तो मेरी है। बोतल कृष्ण की सही। बोतल का भी कोई मूल्य है! तो चलो लाओत्से सही, बुद्ध सही; तुम्हारी नासमझी को थोड़ी तृप्ति मिले, यही सही। नासमझी की तृप्ति से भी अगर कहीं तुम्हारे कानों में मेरे शब्द पड़ जाएं, बोतल के बहाने तुम आ जाओ और शराब मेरी पी लो, बात हो गई।
पुराना होना चाहिए, भीरु आदमी को। फिर पुराना कुछ भी हो। प्राचीन उसका आब्सेशन है, उसकी विक्षिप्तता है; वह प्राचीन का दीवाना है। वह बचाता है। कचरे को भी बचा लेता है, मुर्दे को भी बचा लेता है, सड़े-गले को भी बचा लेता है। क्रांति होने ही नहीं देता। खतरा भी साफ है; लाभ भी साफ है। बचा सकता है वह। जीवंत को भी वही बचाता है।
नये का खतरा और गुण भी साफ है। जीवंत को नया ही खोज पाता है। वही जो भूल करने को तैयार है वही तो नये को खोज पाएगा। जो भूल करने से डरता है वह नये को खोज ही नहीं सकता। जो सौ रास्तों पर जाने को तैयार है चाहे वे गलत हों, वही तो एक उस रास्ते पर पहुंच पाएगा जो सही हो सकता है। सही को खोजने का रास्ता ही क्या है और? गलत करने की हिम्मत! गलत में उतरने का दुस्साहस! भटकने के लिए जो राजी है वही तो हीरा खोज लाएगा। तुम अगर भटकने से डरे हो, हीरा नहीं खोज पाओगे। तो लाभ है निर्भीक का कि वह नये को खोजता है, नये को जन्म देता है। खतरा है निर्भीक का कि नये के नाम पर वह कूड़ा-करकट भी बटोर लाता है, कंकड़-पत्थर ले आता है। वह कहता है, ये नये हैं। और क्या पुराने हीरे को लिए बैठे हो? फेंको!
इसलिए लाओत्से कहता है, "कुछ लाभ भी हैं, कुछ हानि भी।"
संत न तो साधु है, न असाधु; न तो भयभीत-भीरु, न निर्भीक-निर्भय। संत को
न नये से संबंध है, न पुराने से; संत को सत्य से संबंध है। सत्य नया भी हो सकता है, पुराना भी। वस्तुतः सत्य न तो नया होता है, न पुराना; सत्य तो शाश्वत है। वह सदा पुराना है और सदा नया है। चिरनूतन! चिरपुरातन! संत की नजर न तो नये से आविष्ट होती है, न पुराने के प्रति पागल होती है। संत नये को जन्म देता है और पुराने को बचाता भी है। वस्तुतः संत नये को जन्म देकर ही पुराने को बचाता है। यह उसकी तरकीब है। यही रास्ता है पुराने को बचाने का कि नये को जन्म दो। वह पुराना हो गया है इसीलिए कि तुम उसे फिर-फिर जन्म नहीं दे पा रहे हो। किसी भी चीज को नया रखने का एक ही रास्ता है और वह यह है कि उसे प्रतिपल जन्म दो। बुद्धत्व कोई नयी चीज को थोड़े ही लाता है; वही जो सदा से थी, उसे फिर से नये रूप में ले आता है। पुराने रूप पुराने पड़ गए। पुराना ढंग-ढांचा जराजीर्ण हो गया। पुराना अब सम्हाल नहीं पाता उस आत्मा को। पुराने घर को आत्मा ने छोड़ दिया, क्योंकि वह घर रहने योग्य न रहा, खंडहर हो गया।
बुद्ध पुरुष नया घर बनाते हैं। आत्मा तो पुरानी ही है सदा। नया रूप देते हैं; नया निमंत्रण भेजते हैं आत्मा को कि अवतरित हो जाओ। बुद्ध पुरुष बार-बार धर्म को अवतरित करते हैं।
धर्म तो एक ही है। धर्म का अर्थ है स्वभाव, जिसको लाओत्से ताओ कहता है;
वह तो एक ही है। वह न नया है, न पुराना है; वह समय के बाहर है। जब भी हम उसे समय में लाते हैं तो रूप देना पड़ता है। रूप पुराने पड़ जाएंगे। जब रूप पुराने पड़ जाएंगे तो रूपों को तोड़ देता है संत पुरुष, नये रूप ले आता है।

लेकिन संत को पहचानना कठिन है। क्योंकि तुम्हारी भाषा में भयभीत भी समझ में आ जाता है, निर्भीक भी समझ में आ जाता है। निर्भीक है क्रांतिकारी, भीरु है परंपरावादी। वे दोनों तुम्हारी समझ में आते हैं, क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संत कठिन होगा समझनाः परंपरावादी धन क्रांतिकारी। वह दोनों है एक साथ; वह सबको समेट लिया है उसने; न तो क्रांति वर्जित है, न परंपरा वर्जित है। और जब क्रांति और परंपरा का मेल होता है, तभी--केवल तभी--जैसे शरीर और आत्मा का मेल होता है तभी जीवन प्रकट होता है, ऐसे ही परंपरा और आत्मा का जब मेल होता है तभी धर्म प्रकट होता है, धर्म का जीवन प्रकट होता है। परंपरा है शरीर; क्रांति है आत्मा।
अगर तुम ऐसी कीमिया बना सको कि तुम परंपरा और क्रांति को, दोनों को एक साथ सम्हाल लो--एक हाथ में क्रांति, एक हाथ में परंपरा--तो ही तुम संतत्व को उपलब्ध हो पाओगे। तब तुम में वे सारे गुण होंगे जो निर्भीक के हैं और वे दुर्गुण न होंगे जो निर्भीक के हैं; वे सारे गुण होंगे जो भीरु के हैं और वे दुर्गुण न होंगे जो भीरु के हैं। तब तुमने सदगुणों का समुच्चय पैदा कर लिया।
"यद्यपि स्वर्ग कुछ लोगों को नापसंद कर सकता है, तो भी कौन जानता है कि किन्हें मारा जाए और क्यों?"
लाओत्से कहता है कि उस परम स्वभाव के कुछ लोग अनुकूल होंगे, कुछ लोग प्रतिकूल होंगे। जो प्रतिकूल होंगे वे अपने आप ही कष्ट पाते रहेंगे। लेकिन कौन निर्णय करे कि किसे मारा जाए? क्यों मारा जाए?
"संत पुरुष भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।"
साधु-असाधु के तो बस के बाहर है यह तय करना। क्योंकि साधु का तो निर्णय पहले से है कि असाधु को मारा जाए और असाधु भी निर्णीत है कि साधुओं को मिटाया जाए। उनका द्वंद्व तो साफ है।
"संत पुरुष भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।"
किसे मारा जाए? किसे बचाया जाए? क्यों? यह जटिल है प्रश्न। और जितना तुम्हारा ज्ञान गहन होगा उतना ही जटिल होता जाता है। क्योंकि एक ऐसी घड़ी आती है तुम्हारे परम ज्ञान की जब तुम देखते हो कि चीजें प्रतिपल अपने से विपरीत में रूपांतरित होती रहती हैं। जिस असाधु को तुमने आज मार दिया, क्या तुम निश्चित हो सकते हो कि वह कल साधु न हो जाता? क्योंकि हमने बाल्मीकि को साधु होते देखा है असाधु से। तो इस असाधु को मारने में तुम्हारा क्या निर्णय है कि यह कल साधु न हो जाता? कौन कह सकता है कि तुमने असाधु मारा और कल होने वाला साधु नहीं मार दिया? बहुत असाधु साधु हुए हैं। वस्तुतः साधु होने का एक ही उपाय है और वह असाधु होने से निकलता है।
एक छोटे चर्च में एक पादरी बच्चों को समझा रहा था कि परमात्मा तक पहुंचने का उपाय क्या है, स्वर्ग को पाने का उपाय क्या है, कैसे कोई व्यक्ति परमात्मा की अनुकंपा पा सकता है। आशा कर रहा था कि बच्चे जवाब देंगे; कोई कहेगा प्रार्थना, कोई कहेगा पूजा-अर्चना, कोई कहेगा ध्यान, पुण्य कृत्य, आचरण, सदाचरण। एक छोटे बच्चे ने हाथ ऊपर उठाया। पादरी ने पूछा कि क्या है मार्ग परमात्मा को पाने का? उसने कहा, पाप। क्योंकि बिना पाप किए प्रायश्चित्त न हो सकेगा। बिना प्रायश्चित्त के कभी कोई उपलब्ध हुआ है।
किसे मिटाया जाए? पापी को तुम मिटा रहे हो तो तुम बीज रूप में पुण्यात्मा को मिटा रहे हो। क्योंकि पापी कभी पुण्यात्मा होगा ही। पापी कब तक पापी रह सकता है? अगर पापी होने में पीड़ा है तो बस थोड़ी प्रतीक्षा की बात है। धैर्य रखो, मिटाओ मत। पापी अपनी पीड़ा से ही पुण्यात्मा होगा। और तुम मिटा कर उसे पुण्यात्मा न बना सकोगे। क्योंकि जिसे तुमने मिटा दिया उसे तुम प्रतिशोध से भर दोगे।
इसे थोड़ा समझ लो। जिसको भी समाज मिटाने को राजी हो जाता है वह भी समाज
के प्रति प्रतिरोध से भर जाता है। और उसके प्रतिरोध का अर्थ होगा कि तुम जो चीज बदलना चाहते हो, वह वह न बदले। अपराधियों को दंड दे-देकर हमने अपराधी बढ़ाए हैं, कम नहीं किए। क्योंकि दंड अहंकार को चोट पहुंचाता है। और जब तुम किसी को दंड देते हो तो उसके मन में यही भाव उठता है कि और करके

दिखाऊंगा, यही करके दिखाऊंगा, यद्यपि अगली बार थोड़ी कुशलता से करूंगा कि पकड़ा न जा सकूं। इसके अतिरिक्त कोई भाव नहीं उठता। दंड देने से तुमने कभी किसी को बदलते देखा है? कभी दुनिया में ऐसा हुआ है कि दंड देकर कोई बदला हो?
लेकिन अंधापन हद्द है! हम दंड दिए जाते हैं। हम जितना दंड देते हैं उतने कारागृह बड़े होते जाते हैं। हर साल नये कारागृह बनते हैं, नयी अदालतें खड़ी होती हैं, नये पुलिस, नये संरक्षक, और यह बढ़ता जाता है सिलसिला। इसका कोई अंत नहीं मालूम होता। ऐसा लगता है, अगर ऐसा ही चलता रहा तो कभी न कभी पूरी पृथ्वी अपराधगृह हो जाएगी। संख्या बढ़ती ही जाती है। दंड से कोई भी तो कभी रूपांतरित नहीं हुआ। दंड से तो आदमी पतित ही हुआ है।
मनसविद कहते हैं कि जो आदमी एक बार दंडित हो जाता है फिर वह बार-बार कारागृह आने लगता है। और हर बार बड़ी सजा पाता है, क्योंकि हर बार बड़ा अपराध करके आता है। तुम भी जानते हो, छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि उनसे तुम कहो कि मत करो यह, तो उनके भीतर एक प्रबल आकांक्षा पैदा होती है करने की। क्योंकि आखिर तुम जब कहते हो मत करो, तो तुम उसके अहंकार को भयंकर आघात पहुंचा रहे हो। करके ही वह अपने अहंकार को बचा सकेगा, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।
तुम्हें पता नहीं कि तुमने कितने अपराध बच्चों में इसीलिए पैदा करवा दिए हैं क्योंकि तुमने सिखाया कि मत करो। असल में, बच्चों को पता ही नहीं होता कि झूठ बोलना पाप है। जब तुम कहते हो कि झूठ बोलना पाप है तब उन्हें पहली दफा पता चलता है कि झूठ बोलने में जरूर कोई रस होगा। क्योंकि पाप में रस होता ही है। जिन चीजों को तुमने पाप कहा है वे सब रसपूर्ण हो गईं; तुम्हारे पाप कहने से और भी रसपूर्ण हो गईं। और तुमने जिन चीजों के लिए दंड दिया है, वर्जना की है, उनमें आकर्षण पैदा हो गया।
यहां दरवाजे पर लिख दो कि भीतर झांकना मना है। फिर यहां से कोई हिम्मतवर निकल न सकेगा बिना झांके। झांकेगा ही। तुमने जहां-जहां लिखा देखा हो कि यहां पेशाब करना मना है, वहां तुम्हें नीचे सौ आदमियों के चिह्न पेशाब करने के वहीं मिलेंगे उसी वक्त। असल में, जिस दीवाल पर लिखा हो यहां पेशाब करना मना है, वहां आते ही अचानक पेशाब लग आती है।
किसी ने कभी ऐसा किया नहीं, लेकिन तुम करके देखना। अगर कोई दीवाल बचानी हो तो उस पर लिख देना कि यहां से बिना पेशाब किए जाना सख्त मना है; अगर गए तो बहुत बुरा होगा। वहां जिस आदमी को पेशाब भी लगी हो वह भी रोक लेगा। आखिर आदमी आदमी है; इज्जत का सवाल है। ऐसे कोई मजबूर कर सकता है? ऐसे कोई जबरदस्ती कर सकता है किसी पर?
अहंकार जबरदस्ती से प्रतिशोध करता है, प्रतिरोध करता है, रेसिस्ट करता है।
इसलिए लाओत्से कहता है, "कौन जानता है किन्हें मारा जाए और क्यों? संत
भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।"
यह निर्णय करना मुश्किल है। यह निर्णय वस्तुतः किया ही नहीं जा सकता। फिर हम कौन हैं निर्णय करने वाले? जीसस ने कहा है, जज यी नाट, तुम निर्णय लो ही मत। क्योंकि तुम्हारे सब निर्णय गलत होंगे।
"स्वर्ग का मार्ग--ताओ--बिना संघर्ष के विजय में कुशल है।"
मारने की जरूरत नहीं है। तुम छोड़ो परमात्मा पर। तुम छोड़ो जीवन के परम रहस्य पर। वह बिना मारे बदलने में समर्थ है। वह बिना मिटाए रूपांतरित करवा देता है। उसकी कला क्या है?
उसकी कला कि जब भी तुम पाप करते हो, तुम स्वयं ही पीड़ा पाते हो। पाप में ही उसका दंड छिपा है। कोई तुम्हें दंड नहीं देता, इसलिए तुम प्रतिशोध भी नहीं कर सकते। तुम अपने ही द्वारा दंड पाते हो। अगर कोई तुम्हें दंड न दे तो पाप करके तुम पाओगे तुमने अपने को ही दंडित किया। जैसे सिर फोड़ लिया दीवाल से जब कि दरवाजा खुला था और तुम बिना सिर फोड़े निकल सकते थे। कितनी देर तुम सिर फोड़ते रहोगे? तुम्हारा ही सिर है। तुम कितनी देर तक अपने को पीड़ा में डुबाए रखोगे? कब तक तुम नरक को निर्मित करोगे?

स्वर्ग का मार्ग, ताओ--धर्म का मार्ग या परमात्मा का मार्ग--तुम्हें दंडित करना नहीं है, और न तुम्हें पुरस्कृत करना है। तुम्हें छोड़ देना है स्वतंत्र, ताकि तुम अपने ही कृत्यों से दंडित हो जाओ, अपने ही कृत्यों से पुरस्कृत। किसी और के विरोध में प्रतिशोध में तुम्हारे अहंकार के खड़े होने का उपाय भी नहीं छोड़ा गया है। तुम अकेले छोड़ दिए गए हो। तुम्हें पूरा दायित्व दे दिया गया है। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। भोग लो पीड़ा भोगनी हो तो, लेकिन जानना कि तुमने ही चुनी थी। पा लो आनंद अगर पाना हो। पुण्य के साथ आ जाता है आनंद, जैसे फूलों के साथ सुवास; पाप के साथ आ जाती है पीड़ा। जुड़े हैं। कोई और तुम्हें देता नहीं, तुम्हीं देते हो। तुम्हीं बोते हो, तुम्हीं फसल काटते हो। कोई दूसरा बीच में आता नहीं।
यही है वह कुशल मार्ग, जिसको लाओत्से कहता है, बिना संघर्ष के विजय में कुशल है।
"बिना शब्द के वह पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है।"
बिना शब्द के! कोई आवाज नहीं होती कि तुम दंडित किए जा रहे हो और दंड घटित हो जाता है। कोई न्यायाधीश नहीं बैठा है जो तुम्हें धन्यवाद देता हो, पुरस्कार देता हो, और तुम पुरस्कृत हो जाते हो।
"बिना शब्द के वह पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है।"
बिना शब्द के घट रहा है, क्योंकि पाप में ही छिपा है उसका दंड और पुण्य में ही छिपा है उसका पुरस्कार। बाहर नहीं है, बाहर से नहीं आता, तुम्हारे ही कृत्य के भीतर से खिलता है। इसलिए बिना शब्द के घटित हो जाता है।
अगर लाओत्से की मानी जा सके बात तो पृथ्वी पर सब दंड और पुरस्कार की व्यवस्थाएं बंद कर दी जानी चाहिए। क्योंकि दंड देकर हम किसी को बदल नहीं पाए; पुरस्कार देकर किसी को बदल नहीं पाए। आदमी गिरता ही गया है। असल में, समाज ने सोचा है कि परमात्मा की व्यवस्था से भी श्रेष्ठ व्यवस्था की जा सकती है। वहीं भूल है। छोड़ दो लोगों को उनके ही कृत्यों पर, ताकि वे खुद ही निर्णय ले सकें, ताकि वे खुद ही जान सकें कि कौन सा कृत्य दुख में ले जाता है। किस रास्ते पर कांटे हैं और किन रास्तों पर फूल हैं, उन्हें चुनने दो। कोई दूसरा बीच में न आए। तो जल्दी ही निर्णय हो जाएगा। देर न लगेगी, वे खुद ही जान लेंगे। उलझाव नहीं होगा; सीधी बात होगी। गणित साफ होगा। पर समाज डरता है कि ऐसा लोगों को छोड़ दें तो कहीं बिगड़ न जाएं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, बुद्धिमान लोग, विचारशील लोग, वे कहते हैं कि
आप जो बातें कहते हैं उससे तो स्वच्छंदता फैल जाएगी। मैं उनसे पूछता हूं, क्या तुम कह सकते हो कि स्वच्छंदता फैली नहीं है? वे कहते हैं, आप जो कहते हैं उससे तो लोग बड़े अपराधी हो जाएंगे। मैं उनसे पूछता हूं, क्या लोग अपराधी नहीं हैं? इससे ज्यादा पाप और क्या हो सकता है दुनिया में? इससे बुरा और क्या हो सकता है जैसा है?
वे अकारण डरे हुए हैं, व्यर्थ ही भयभीत हैं। और मजा यह है कि उनकी व्यवस्था के कारण लोग ज्यादा पापी हैं। उनकी व्यवस्था के कारण लोग यह देख ही नहीं पाते कि पाप में उसकी पीड़ा है। तुम पीड़ा देते हो तो उनको लगता है, न्यायाधीश पीड़ा दे रहा है, समाज पीड़ा दे रहा है। तुम्हारी पीड़ा के कारण उनमें विरोध पैदा होता है। विरोध के कारण वे उन्हीं कृत्यों को बार-बार दोहराते हैं जो तुम रोकना चाहते हो। और कुशलता से दोहराते हैं। और जितने लोग जेलों में बंद हैं उनसे हजार गुने लोग बाहर मौजूद हैं जो वही कृत्य कर रहे हैं, लेकिन ज्यादा कुशलता से कर रहे हैं।
असल में, बड़े पापी सदा बाहर रहते हैं, छोटे पापी फंस जाते हैं। बड़े पापी राजधानियों में बैठे हैं; छोटे पापी जेलों में सड़ रहे हैं। जो बहुत कुशल है उसको कानून पकड़ नहीं पाता। कैसा भी कानून बनाओ, कुशल आदमी कानून से बाहर निकलने का रास्ता खोज लेता है। कितनी भी व्यवस्था करो, आखिर जो व्यवस्था करता है आदमी वह आदमी ही है। तो आदमी की व्यवस्था को दूसरा आदमी तोड़ सकता है, क्योंकि दोनों की बुद्धिमत्ता एक जैसी है। तो दिल्ली में बैठ कर लोग कानून बनाते रहते हैं। जो कानून बनाने वाले हैं, वह भी आदमी की बुद्धि है। और सारे मुल्क में बैठ कर लोग कानून तोड़ते रहते हैं, क्योंकि

वहां भी आदमी की बुद्धि है। आदमी ऐसा कानून कभी भी न बना सकेगा जिसे आदमी न तोड़ सके। सिर्फ परमात्मा ही ऐसा नियम बना सकता है जो आदमी न तोड़ सके। लेकिन तुम्हारे कानून की वजह परमात्मा के कानून अंधेरे में पड़ गए हैं। वे पीछे हो गए हैं। तुम पापी को देखने ही नहीं देते कि पाप के कारण तुझे दुख मिल रहा है। तुम्हारी अदालतें उसे धोखा दे देती हैं। वह सोचता है, अदालतें दुख दे रही हैं। अगर न पकड़ाया गया होता तो क्यों ऐसा दुख मिलता? अगली बार ऐसी कोशिश करूंगा न पकड़ा जाऊं। उसकी नजर ही तुम खराब किए दे रहे हो। पाप का दुख भीतर से आ रहा है; तुम बाहर से दुख देने की कोशिश में उसकी नजर को बाहर अटका रहे हो। वह देख ही नहीं पाता कि सिर मैं खुद ही तोड़ रहा हूं दीवाल से टकरा कर, कोई अदालत नहीं मुझे दंड दे रही। मैं मर रहा हूं खुद ही पाप में डूब-डूब कर; मैं जीवन को खो रहा हूं। और जहां आनंद का नृत्य हो सकता था वहां केवल पीड़ा के आंसू हैं। और कांटे मैंने ही बोए हैं, कोई दूसरा मेरे लिए नहीं बो रहा है। तुम्हारी समाज की व्यवस्था ऐसी भ्रांति पैदा करती है कि दूसरे तुम्हारे लिए कांटे बो रहे हैं। तो प्रतिकार लो, लड़ो, संघर्ष करो।
लाओत्से कहता है, "बिना संघर्ष के ताओ, स्वर्ग का मार्ग, विजय में कुशल है। बिना शब्द के पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है। बिना बुलावे के वह प्रकट हो जाता है।"
तुम्हें बुलाने की भी जरूरत नहीं है। अदालत को तो बुलाना पड़ेगा। पुलिस को आवाज देनी पड़ेगी। कानून को पुकारना पड़ेगा, तब कानून आएगा। परमात्मा का मार्ग तुम्हारे बुलावे के लिए प्रतीक्षा नहीं करता। तुमने कुछ किया, वहीं परमात्मा का नियम मौजूद है। तुमने कुछ सोचा, वहीं परमात्मा का नियम मौजूद है। इधर भाव की तरंग हिली, वहां फल तैयार होने लगा। यहां विचार उठा, वहां परिणाम शुरू हो गया। देर नहीं है क्षण भर की।
"बिना बुलावे के वह प्रकट होता है। बिना स्पष्ट योजना के फल प्राप्त करता है।"
न तो उसने जाल बिछाया है अदालतों का; न हर चौराहे पर पुलिस के आदमी खड़े किए हैं। न कानूनों की कोई किताब है, कोई इंडियन पेनल कोड नहीं है; न कोई धाराएं हैं। तुम बचना भी चाहोगे तो कैसे बचोगे? कानून की धाराएं होतीं तो वकील कर लेते। परमात्मा और तुम्हारे बीच तुम वकील भी तो नहीं कर सकते। हालांकि तुमने करने की कोशिश की है। और कुछ लोगों ने दावे किए हैं कि
वे वकील हैं। तुम्हारे पुरोहित हैं, पंडे हैं, वे दावे करते हैं कि हम वकील हैं। तुम घबड़ाओ मत, हम इंतजाम जमा देंगे। तुम हमें पैसा दो, फीस चुका दो; हम यज्ञ करवा देंगे, हम पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, परमात्मा को राजी करवा देंगे। तुम बेफिक्री से चोरी करो। छोटा मंदिर बना दो घर में, हम आकर घंटी हिला कर पूजा कर जाएंगे तुम्हारी तरफ से।
वकील हैं। लेकिन वहां वकालत चल नहीं सकती। क्योंकि वहां कोई नियम-कानून नहीं हैं, तोड़ोगे कैसे? कानून लिखा हो, तोड़ा जा सकता है। जिस स्त्री से तुमने विवाह किया हो, तलाक लिया जा सकता है। लेकिन जिस स्त्री से विवाह न किया हो, प्रेम किया हो, तलाक कैसे लोगे? विवाह के साथ तलाक है। कानून के साथ तोड़ने का उपाय है। अगर तुमने लिख कर दे दिया है कोई दस्तावेज तो बच सकते हो। लेकिन जब तुमने कुछ लिखा हुआ ही नहीं है, सब अनलिखा है, कहां बचोगे? कहां भागोगे? कहां से तरकीब निकालोगे?
लाओत्से बड़ी महत्वपूर्ण बात कह रहा है। वह कह रहा है, "बिना स्पष्ट योजना के फल प्राप्त करता है।"
परमात्मा ने कोई योजना का जाल नहीं बिछाया हुआ है। नहीं तो कुछ न कुछ कुशल लोग निकल आते जो उसमें से बाहर निकल जाते। जाल ही नहीं है, बचोगे कैसे? भागोगे कहां? जहां जाओगे उसे ही पाओगे। स्पष्ट उसकी योजना नहीं है। सब बड़ा रहस्यपूर्ण है। इसलिए बचने का उपाय नहीं है।
"स्वर्ग का जाल व्यापक और विस्तृत है।"
सब तरफ है। जहां तुम हो वहीं है। तुम भी स्वर्ग के जाल के हिस्से हो।
"उसमें बड़े-बड़े छिद्र हैं, तो भी उसमें से कुछ निकल नहीं पाता।"

बड़े-बड़े छिद्र का अर्थ है, बड़ी स्वतंत्रता है। फिर भी तुम भाग न पाओगे। क्योंकि जहां भी तुम जाओगे उसी को पाओगे। उसी का नियम हमेशा नीचे पैरों के तुम्हारी भूमि बनाता है। उसी का नियम आकाश बनाता है। उसी का नियम तुम्हें बनाता है। स्वतंत्रता पूरी है। तुम जो भी चाहो करो। तुम बुरा करो तो भी वह मौजूद है, और तत्क्षण तुम दुख पाओगे। तुम भला करो तो भी वह मौजूद है, तत्क्षण तुम पाओगे कि अमृत की तुम्हारे आस-पास वर्षा हो गई। स्वतंत्रता तुम्हें पूरी है। तुम नरक बनाना चाहो नरक बनाओ; स्वर्ग बनाना चाहो स्वर्ग बनाओ। लेकिन तुम जाल के बाहर न जा सकोगे। छेद बड़े-बड़े हैं। बड़ी खूबी की बात है कि परमात्मा ने किसी की स्वतंत्रता को जरा भी नहीं रोका है। परमात्मा ने तुम्हें इतनी स्वतंत्रता दी है कि वह कभी तुम्हारे आस-पास सामने खड़ा भी नहीं होता, क्योंकि उसके खड़े होने से परतंत्रता आ सकती है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नहीं पड़ता? मैं उनसे कहता हूं, क्योंकि वह चाहता है तुम स्वतंत्र रहो। वह दिखाई पड़े, तुम्हारी स्वतंत्रता खंडित हो जाएगी। परमात्मा सामने खड़ा हो; तुम कैसे पाप कर पाओगे? परमात्मा मौजूद हो तो अंकुश पैदा हो जाएगा। उसकी मौजूदगी ही अंकुश पैदा कर देगी। जैसे छोटा बच्चा बैठा हो, सिगरेट पी रहा हो, और बाप आ जाए! तो जल्दी से सिगरेट को छिपा लेगा। स्वतंत्रता खो गई। अगर परमात्मा मौजूद हो तो उसकी मौजूदगी, उसकी महिमा, तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट कर देगी। इसलिए मैं कहता हूं, उसकी बड़ी कृपा है कि वह तुम्हें कहीं मिलता नहीं। फिर भी तुम उससे बच न पाओगे। स्वतंत्रता पूरी है, लेकिन स्वतंत्रता के नीचे भी आधार उसी का है। उसने खुला आकाश तुम्हें दिया है कि जहां तक उड़ना चाहो उड़ो; अपने पंख भी तोड़ लेना हो तो भी कोई हर्जा नहीं, उड़ो और तोड़ डालो। आत्महत्या करनी हो तो भी स्वतंत्र हो, कोई रोकेगा न, कोई हाथ बीच में आकर कहेगा न कि यह क्या कर रहे हो? मैंने तुम्हें जीवन दिया और तुम जीवन नष्ट कर रहे हो? कोई तुम्हें रोकेगा न, कोई प्रतिध्वनि सुनाई न पड़ेगी। तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो। और फिर भी तुम उससे बच नहीं सकते।
"बड़े-बड़े छिद्र हैं उसके जाल में, तो भी उसमें से कुछ निकल नहीं पाता।"
यह तो बड़ी जटिल बात हो गई। तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो, फिर भी स्वच्छंद नहीं। तुम्हारी स्वतंत्रता बेशर्त है, फिर भी तुम्हारी स्वतंत्रता अराजकता नहीं है। तुम्हारी स्वतंत्रता के पीछे भी नियम है।
उस नियम को ही लाओत्से ताओ कहता है। उसी नियम को हमने इस मुल्क में धर्म कहा है, बुद्ध ने धम्म कहा है। धर्म और ताओ का एक ही अर्थ होता है। धर्म का अर्थ होता है जिसने तुम्हें धारण किया है। तुम उससे भाग न सकोगे। क्योंकि वही तुम्हें धारण किए है, तुम भागोगे कहां? तुम जाओगे कहां? जहां जाओगे, उसी के हाथ तुम्हें सम्हाले हैं। नरक में भी वही तुम्हें सम्हालेगा; स्वर्ग में भी वही तुम्हें सम्हालेगा। तुम और सब चीजों से भाग सकते हो, तुम अपने जीवन के आंतरिक धर्म से न भाग सकोगे। धर्म वही है जो तुम्हें सम्हाले है, और सदा तुम्हें सम्हालेगा। तुम्हारी बुराई में भी सम्हालेगा; तुम्हारी भलाई में भी सम्हालेगा। तुम्हें अड़चन भी न देगा कि तुम यह मत करो।
परमात्मा तुमसे कभी कहता ही नहीं कि तुम क्या करो और क्या न करो। करने
की पूरी स्वतंत्रता है। लेकिन एक बात ध्यान रखनाः हर कृत्य का परिणाम है; उसको भोगने के लिए भी तुम राजी रहना। कृत्य की स्वतंत्रता है, परिणाम का बंधन है। तुम पाप करने को स्वतंत्र हो, लेकिन पीड़ा भोगने में परतंत्र हो। तुम पुण्य करने को स्वतंत्र हो, लेकिन सुख लेने में परतंत्र हो। वह तुम्हें लेना ही पड़ेगा। अब तक ऐसा हुआ ही नहीं कि कोई आदमी ने पुण्य किया हो और सुख लेने से छुटकारा पा लिया हो। वह नहीं हो सकता। बीज बोने में तुम स्वतंत्र हो, लेकिन फिर फल भी तुम्हें ही काटने पड़ेंगे। वहां तुम्हारी स्वतंत्रता नहीं है। इसलिए बीज बोते वक्त सावधानी बरतना।
हमारी सबकी चेष्टा यही है कि बीज तो हम कड़वे बोएं, और फल हम मीठे काट लें। पाप तो हम करें, और सुख मिल जाए। यही तो हमारी सारी चेष्टा है। यह

चेष्टा सफल न होगी। कृत्य के लिए तुम स्वतंत्र हो; फिर परिणाम हर कृत्य का बंधा हुआ है।
ऐसा हुआ। बड़ी मीठी घटना है कि मोहम्मद के शिष्य अली ने मोहम्मद से पूछा कि आपकी बातें सुन कर ऐसा लगता है कि हम परम स्वतंत्र भी हैं और परम परतंत्र भी; ये दोनों विरोधाभास कैसे फलित हो रहे हैं?
मोहम्मद तो सीधे-सादे आदमी थे। वे कोई बड़े दार्शनिक न थे, कुछ पढ़े- लिखे न थे। इसलिए मोहम्मद की बात में जो सचोट अभिव्यक्ति है, वह तुम्हें मुश्किल से कहीं मिलेगी। कभी किसी कबीर में मिल सकती है; महावीर में न मिलेगी वह चोट, कृष्ण में न मिलेगी, बुद्ध में न मिलेगी। क्योंकि वे बड़े परिष्कृत लोग थे, बड़े सुसंस्कृत लोग थे। मोहम्मद तो बिल्कुल अपढ़ गंवार। लिखना भी पता नहीं कि कैसे लिखें। बड़ी चोट है, क्योंकि उनकी जीवन की अनुभूति सीधी-सीधी है। शब्दों की आड़ नहीं है, शास्त्रों का फैलाव नहीं है। मोहम्मद ने कहा, तू ऐसा कर अली कि खड़ा हो जा और कोई भी एक पैर ऊपर उठा ले। अली ने बायां पैर ऊपर उठा लिया। मोहम्मद ने कहा कि अब तू दायां भी उठा ले। उसने कहा, अब आप जरा ज्यादती कर रहे हैं। बायां जब उठा लिया तो अब दायां नहीं उठा सकता। मोहम्मद ने पूछा कि मैं तुझसे यह पूछता हूं कि जब मैंने पहली दफा तुझसे कहा कि कोई भी पैर उठा ले, तब तू स्वतंत्र था या नहीं?
अली ने कहा, बिल्कुल स्वतंत्र था; चाहता तो दायां उठाता, चाहता तो बायां।
लेकिन अब तू क्या अनुभव कर रहा है? बायां तूने उठा लिया, अब दायां क्यों नहीं उठा सकता? अब तू परतंत्र अनुभव कर रहा है। बिल्कुल स्वतंत्र था शुरू में, तू कोई भी पैर उठा लेता, लेकिन उस पैर के उठाने के कारण अब तू परतंत्र है।
अब उसका परिणाम है कि अब तू दाएं को नहीं उठा सकता; बायां उठा लिया, अब दायां नहीं उठा सकता। मोहम्मद ने कहा, ऐसी ही है परम स्वतंत्रता मनुष्य की, और ऐसी ही है परम परतंत्रता।
कृत्य करने को तुम राजी हो। जो भी कृत्य तुमने किया, बिल्कुल स्वतंत्र थे। कोई तुमसे कह न रहा था कि तुम यह करो। लेकिन जब तुमने कृत्य कर लिया, एक पैर उठ गया, दूसरा पैर बंध गया। वह दूसरा पैर है परिणाम का। कर्म की स्वतंत्रता है, कर्म-फल की स्वतंत्रता नहीं।
इसलिए अगर तुम चाहते हो कि परिपूर्ण स्वतंत्र रहो तो कर्म करने के पहले सोच लेना। कर्म करने के बाद तुम स्वतंत्र न रह जाओगे। छूट बड़ी है, बड़े-बड़े छेद हैं उसके जाल में, लेकिन तुम उससे भाग न पाओगे। कोई उससे बच नहीं सकता है। प्रत्येक कृत्य के पहले स्वतंत्रता तुम्हारे द्वार पर खड़ी होती है। और प्रत्येक कृत्य के बाद परतंत्रता खड़ी हो जाती है।
इसलिए तो हिंदू कहते रहे हैं कि कर्म से जो छूट गया वही वस्तुतः छूटता है। जो कर्म से छूट जाता है वह न तो स्वतंत्र रह जाता, न परतंत्र; उसको हम मुक्त कहते हैं। वह दोनों से मुक्त हो जाता है। उसका फिर कोई आवागमन नहीं है। फिर जैसे अब वह परमात्मा के जाल में फंसी मछली न रहा, बल्कि स्वयं परमात्मा का जाल हो गया, परमात्मा के साथ एक हो गया।
हमारे पास तीन शब्द हैं जो बड़े महत्वपूर्ण हैं। और वैसे शब्द दुनिया
की और भाषाओं में नहीं हैं, वह भी विचारणीय है। एक शब्द है नरक; दुनिया की भाषाओं में उसके लिए शब्द हैं। स्वर्ग; उसके लिए भी शब्द हैं। तीसरा शब्द है मोक्ष; उसके लिए दुनिया की किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है। नरक, बुरा तुमने किया उसका परिणाम है। स्वर्ग, भला तुमने किया उसका परिणाम है। मोक्ष, तुमने कुछ भी न किया, न भला न बुरा; न सोचा, न भला न बुरा; न भाव किया, न भला न बुरा; तुम निर्भाव, निर्विचार, अकर्ता हो गए, अकर्म में डूब गए; उस दशा में जो फलेगा वह मोक्ष है। उस दशा में तुम परमात्मा ही हो गए। वह परम मुक्ति है।
स्वर्ग भी बंधन है, क्योंकि सुख लेने के लिए तुम मजबूर किए जाओगे। उससे तुम बच नहीं सकते। तुमने पुण्य किया, सुख तुम्हें लेना ही पड़ेगा। तुम यह नहीं कह सकते कि पुण्य मैंने किया, अब मैं सुख नहीं लेना चाहता। वह

मजबूरी है। वह लेना ही पड़ेगा। पाप किया, दुख लेना ही पड़ेगा। तुम यह नहीं कह सकते कि मैं नहीं लेना चाहता। एक पैर उठा लिया, दूसरा फंस गया।
एक ऐसी भी दशा है चेतना की जब तुम न पुण्य करते न पाप, जब तुम करते ही नहीं, जब तुम अकर्ता हो जाते हो। वही परम समाधि है। उस परम समाधि को उपलब्ध व्यक्ति परमात्मा हो जाता है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ अठाहरवां प्रवचन

अभय और प्रेम जीवन के आधार हों

Chapter 74

On Punishment (3)

The people are not afraid of death;
Why threaten them with death?
Supposing that the people are afraid of death,
And we can seize and kill the unruly,
Who would dare to do so?
Often if happens that the executioner is killed.
And to take the place of the executioner
Is like handling the hatchet for the master carpenter. He who handles the hatchet for the master carpenter Seldom escapes injury to his hands.

अध्याय 74

दंड (3)

लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं;
तब उन्हें मृत्यु की धमकी क्यों दी जाए?
मान लो कि लोग मृत्यु से भयभीत हैं,
और हम उपद्रवियों को पकड़ कर मार सकते हैं;
कौन ऐसा करने की हिम्मत करेगा?
अक्सर ऐसा होता है कि बधिक मारा जाता है।
और बधिक की जगह लेना ऐसा है,
जैसे कोई महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी लेकर चलाए।
जो महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी हाथ में लेता है,
वह शायद ही अपने हाथों को जख्मी करने से बच पाता है।

मनुष्य आज तक भय को आधार बना कर जीया है। इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं है
कि जीवन नरक हो गया हो। भय नरक का द्वार है। प्रेम अगर स्वर्ग का द्वार है तो भय नरक का।
समाज की, राज्य की सारी व्यवस्था भय-प्रेरित है। हमने डरा कर लोगों को अच्छा बनाने की कोशिश की है। और डर से बड़ी कोई बुराई नहीं है। यह तो ऐसे ही है जैसे कोई जहर से लोगों को जिलाने की कोशिश करे। भय सबसे बड़ा पाप है। और उसको ही हमने आधार बनाया है जीवन के सारे पुण्यों का। तो हमारे पुण्य भी पाप जैसे हो गए हैं। हो ही जाएंगे।
इसे हम थोड़ा समझने की कोशिश करें। सुगम है लोगों को भयभीत कर देना। प्रेम से आपूरित करना तो बहुत कठिन है, क्योंकि प्रेम के लिए चाहिए एक आंतरिक विकास। भय के लिए विकास की कोई भी जरूरत नहीं। एक छोटे से बच्चे को भी भयभीत किया जा सकता है। लेकिन छोटे से बच्चे को तुम प्रेम कैसे सिखाओगे? प्रेम तो लोग नहीं सीख पाते मृत्यु के क्षण तक; अधिक लोग तो बिना प्रेम सीखे ही मर जाते हैं।
छोटे बच्चे को अच्छा काम करवाना हो तो क्या करोगे?
भयभीत करो, मारो, डांटो, डपटो, भूखा रखो, दंड दो। छोटा बच्चा असहाय है। तुम उसे डरा सकते हो। वह तुम पर निर्भर है। मां अगर अपना मुंह भी मोड़ ले उससे और कह दे कि नहीं बोलूंगी, तो भी वह उखड़े हुए वृक्ष की भांति हो जाता

है। उसे डराना बिल्कुल सुगम है, क्योंकि वह तुम पर निर्भर है। तुम्हारे बिना सहारे के तो वह जी भी न सकेगा। एक क्षण भी बच्चा नहीं सोच सकता कि तुम्हारे बिना कैसे बचेगा।
और मनुष्य का बच्चा सारे पशुओं के बच्चों से ज्यादा असहाय है। पशुओं
के बच्चे बिना मां-बाप के सहारे भी बच सकते हैं। मां-बाप का सहारा गौण है; जरूरत भी है तो दो-चार दिन की है; महीने, पंद्रह दिन की है। मनुष्य का बच्चा एकदम असहाय है। इससे ज्यादा असहाय कोई प्राणी नहीं है। अगर मां-बाप न हों तो बच्चा बचेगा ही नहीं। तो मृत्यु हमेशा किनारे खड़ी है। मां-बाप के सहारे ही जीवन खड़ा होगा। मां-बाप के हटते ही, सहयोग के हटते ही, जीवन नष्ट हो जाएगा। इसलिए बच्चे को डराना बहुत ही आसान है। और तुम्हारे लिए भी सुगम है। क्योंकि डराने में कितनी कठिनाई है? आंख से डरा सकते हो; व्यवहार से डरा सकते हो। और डरा कर तुम बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हो।
वहीं भ्रांति हो जाती है। क्योंकि भय तो पहली बुराई है। अगर बच्चा डर गया और डर के कारण शांत बैठने लगा, तो उसकी शांति के भीतर अशांति छिपी होगी। उसने शांति का पाठ नहीं सीखा; उसने भय का पाठ सीखा। अगर डर के कारण उसने बुरे शब्दों का उपयोग बंद कर दिया, गालियां देनी बंद कर दीं, तो भी गालियां उसके भीतर घूमती रहेंगी, उसकी अंतरात्मा की वासिनी हो जाएंगी। वह ओंठों से बाहर न लाएगा। उसने पाठ यह नहीं सीखा कि वह सदव्यवहार करे, सदवचन बोले, भाषा का काव्य सीखे, भाषा की गंदगी नहीं। वह नहीं सीखा, उसने इतना ही सीखा कि कुछ चीजें हैं जो प्रकट नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनसे खतरा है। मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को सिखा रहा था कि गालियां देना बुरा है। बेटा बड़ा होने लगा था, आस-पड़ोस भी जाने लगा था, स्कूल भी; वह गालियां सीख कर आने लगा था। सब तरफ गालियों का बाजार है। तो मुल्ला नसरुद्दीन ने वही किया जो कोई भी पिता करेगा। उसने बच्चे को कहा कि यह देखो, यह दंड की व्यवस्था है। अगर तुमने इस तरह की गाली दी कि तुमने किसी को गधा कहा, उल्लू का पट्ठा कहा, तो तुम्हें चार आने--तुम्हें जो रुपया एक रोज मिलता है--उसमें से चार आने कट जाएंगे, एक बार तुमने गाली दी तो। दो बार दी, आठ आने कट जाएंगे। चार बार तुमने इस तरह की गाली का उपयोग किया, पूरा रुपया कट जाएगा। ज्यादा गाली दी, कल का रुपया भी आज कटेगा। नंबर दो की गाली, पिता ने कहा, कि और अगर तुमने किसी को कहा साला, बदमाश, तो आठ आने कटेंगे। ऐसा उसने फेहरिस्त बना दी, चार तरह की गहरी से गहरी गालियां बता दीं। एक रुपया कटने का इंतजाम कर दिया अगर चौथे ढंग की गाली दी। लड़के ने कहा, यह तो ठीक है, लेकिन मुझे ऐसी भी गालियां मालूम हैं कि पांच रुपया भी काटो तो भी कम पड़ेगा। उनका क्या होगा?
ऊपर से तुम दबा दोगे, भीतर चीजें भरी रह जाएंगी। ऊपर से तुम ढक्कन बंद
कर दोगे, आत्मा में धुआं गूंजता रह जाएगा। यह ढक्कन भी तभी तक बंद रहेगा जब तक भय जारी रहेगा। कल बच्चा जवान हो जाएगा, तुम बूढ़े हो जाओगे, तब भय उलटे रूप ले लेगा। तब तुमने जो-जो दबाया था वही-वही प्रकट होने लगेगा। बहुत कम बच्चे हैं जो बड़े होकर अपने बाप के साथ सदव्यवहार कर सकें। पैर भी छूते हों तो भी उसमें सदभाव नहीं होता। बूढ़े बाप के साथ अच्छा व्यवहार करना बड़ा ही कठिन है। कारण?
कारण है कि जब तुम बच्चे थे तब बाप ने जो व्यवहार किया था वह अच्छा नहीं था। इसे तो कोई भी नहीं देखता कि बाप बेटे के साथ बचपन में कैसा व्यवहार कर रहा है। यह सभी को दिखाई पड़ेगा कि बेटा बाप के साथ बुढ़ापे में कैसा व्यवहार कर रहा है। लेकिन जो तुम बोओगे उसे काटना पड़ेगा। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। आज बच्चा सबल हो गया है, बाप अब बूढ़ा होकर दुर्बल हो गया है, इसलिए नाव उलटी हो गई है। अब बच्चा भयभीत करेगा। अब वह जवान है, अब वह तुम्हें डराएगा। वह तुम्हें दबाएगा।
भय से कुछ भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ दब जाता है। और जब भय की स्थिति बदल जाती है तो बाहर आ जाता है। तो तुम्हें समाज में दिखाई पड़ेंगे लोग जो भय के कारण अच्छे हैं। उनका अच्छा होना नपुंसक ब्रह्मचर्य जैसा है। वे जबरदस्ती अच्छे हैं। अच्छा होना नहीं चाहते; अच्छे का उन्हें स्वाद ही

नहीं मिला। वे सिर्फ बुरे से डरे हैं और घबड़ा रहे हैं, और भीतर कंप रहे हैं। इस कंपन के कारण लोग अच्छे हैं।
इसलिए अच्छे आदमी में भी तो फूल खिलते दिखाई नहीं पड़ते। उलटा ही दिखाई पड़ता है, कभी-कभी बुरा आदमी तो मुस्कुराते और हंसते भी मिल जाए, अच्छा आदमी तुम्हें हंसते भी न मिलेगा। वह इतना डर गया है कि हंसी में भी पाप मालूम पड़ता है। वह इतना भयभीत हो गया है कि जीवन को कहीं से भी अभिव्यक्ति देने में डर लगता है कि कहीं कोई भूल न हो जाए, कहीं कोई गलती न हो जाए। वह कंप-कंप कर पैर रख रहा है; सम्हल-सम्हल कर चल रहा है। साफ-सुथरी जमीन पर भी वह ऐसे चलता है जैसे नट रस्सी पर चल रहा हो।
इस भयभीत आदमी को तुम साधु कहते हो? यह भयभीत आदमी साधु नहीं है; यह केवल भयभीत है। साधुता का भय से क्या संबंध? साधुता कहीं भय से पैदा हो सकती है? साधुता का स्वर तो अभय में होता है। भय तो असाधु को ही पैदा करता है, डरे हुए असाधु को। इतना डरा हुआ असाधु है कि अपराध नहीं कर सकता डर के कारण। डर के कारण जो अपराध नहीं कर रहा है वह भीतर तो अपराध करता ही रहेगा। इसलिए जिनको तुम अपराधी कहते हो वे निर्भीक लोग हैं, और जिनको तुम सज्जन कहते हो, साधु-चरित्र कहते हो, वे भयभीत-भीरु लोग हैं। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि अपराधी तो कभी-कभी छलांग ले लेता है संतत्व की, तुम्हारा जिसको तुम सज्जन आदमी कहते हो वह कभी छलांग नहीं ले पाता। छलांग लेने की हिम्मत ही उसमें नहीं है। भय के कारण ही तो वह अच्छा है। और भय के कारण छलांग कैसे लेगा? वह जिंदगी भर सोचता रहेगा, खड़ा रहेगा, विचार करेगा; छलांग नहीं ले सकेगा। अपराधी कभी-कभी छलांग ले सकता है, एक क्षण में छलांग ले सकता है। क्योंकि कम से कम निर्भीक है। डर के कारण जीवन की व्यवस्था उसने नहीं बनाई है।
दूसरा एक पहलू इस बात का और भी समझ लेना जरूरी है कि जब तुम समाज में
डर को आधार बना लेते हो नीति का, तो जो भीरु हैं वे और भीरु हो जाते हैं और जो निर्भीक हैं वे और निर्भीक हो जाते हैं। घर में अगर पांच बच्चे हैं, तो जो उनमें से ज्यादा उपद्रवी है वह और उपद्रवी हो जाएगा तुम्हारे डराने से, और जो उपद्रवी थे ही नहीं वे डर कर बिल्कुल मुर्दा हो जाएंगे, वे मिट्टी के लोंदे हो जाएंगे।
भय का परिणाम दो प्रकार से फलित होता है। जब तुम किसी को भयभीत करते हो, अगर वह अहंकार में अभी कच्चा है तो डर जाएगा, और डर कर भला हो जाएगा; और अगर अहंकार में पक्का हो गया है तो तुम्हारे डराने के कारण वही काम करके दिखाएगा जो तुम चाहते थे कि वह न करे। तो तुम्हारा भय उसके लिए चुनौती बन जाएगा और उसके जीवन में अपराध की भावना पैदा करेगा। तो भय ने कुछ लोगों को भीरु बना कर गोबर-गणेश कर दिया है। उनके जीवन में कोई ऊर्जा नहीं रही। वे मरे-मरे जी रहे हैं; लाश की तरह उनका जीवन है। और कुछ लोगों को भय ने चुनौती दे दी है; वे दुष्ट-अपराधी हो गए हैं। क्योंकि तुमने जो कहा था मत करो, उनके अहंकार ने उसको चुनौती मान लिया और उसे करके वे दिखा कर रहेंगे। चाहे कुछ भी हो जाए, जीवन दांव पर लगा देंगे।
ये दोनों ही दुष्परिणाम हैं। दोनों से ही समाज बड़ी विकृत दशा में भर गया है। या तो भयभीत लोग हैं जो अच्छे हैं; और या निर्भीक लोग हैं जो बुरे हैं। होना इससे उलटा चाहिए कि अच्छा आदमी निर्भीक हो और बुरा आदमी भीरु हो। लेकिन भय के शास्त्र ने स्थिति उलटी कर दी है। अच्छे आदमी में निर्भीकता होनी चाहिए, बुरे आदमी में भीरुता होनी चाहिए। लेकिन बुरा तो अकड़ कर चलता है; अच्छे की रीढ़ टूट गई है। भय के शास्त्र ने ये दो परिणाम दिए हैं; दोनों ही महा घातक हैं।
प्रेम का शास्त्र इसके बिल्कुल विपरीत है। वह अच्छे को अभय करता है, बुरे को भयभीत करता है। भयभीत करता नहीं, बुरा अपने आप भयभीत होता है। अच्छा अपने आप अभय को उपलब्ध होता है। क्योंकि जितनी ही प्रेम में गति होती है उतना ही अभय उपलब्ध होता है; प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति डरता नहीं; कोई कारण डरने का न रहा। प्रेम मृत्यु से भी बड़ा है। तुम प्रेम को मृत्यु से भी नहीं डरा सकते। तुम कहो, हम मार डालेंगे! तो प्रेम मरने को तैयार हो जाएगा, लेकिन डरेगा नहीं। प्रेमी मर सकता है शांति से; जीवन को भी दांव पर

लगा सकता है। क्योंकि जीवन से भी बड़ी चीज उसे मिल गई। जब बड़ी चीज मिलती हो, छोटी चीज को दांव पर लगाया जा सकता है।
तुम डरते हो जीवन के खोने से, क्योंकि जीवन से बड़ा तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं है। और तुम तब तक डरते ही रहोगे जब तक जीवन से बड़ा कुछ तुम्हारे हाथ में न आ जाए। परमात्मा हाथ में आ जाए, प्रेम हाथ में आ जाए, प्रार्थना आ जाए, ध्यान आ जाए, समाधि आ जाए, तब तुम जीवन को ऐसे दे दोगे जैसे कुछ मूल्य ही न था। तुमने जीवन का सार पा लिया। जीवन के अवसर से जो मिलने वाली थी सुगंध वह तुम्हें मिल गई। अब तुम जीवन को दे सकते हो। अब कोई तुमसे जीवन छीनता हो तो तुम हंसते हुए मर सकते हो। अब तुम्हें कोई डरा न सकेगा।
और जो जीवन छोड़ सकता है उसे तुम कैसे डराओगे? क्योंकि डर तो मूलतः मृत्यु का डर है। सब डर मौलिक रूप से मृत्यु का डर है। अब तुम क्या डराओगे? सिकंदर ने एक भारतीय संन्यासी को कहा कि अगर तुम मेरे साथ चलने को राजी न हुए तो तुम्हारी गर्दन काट दूंगा। उस संन्यासी ने कहा, जिस गर्दन को काटने की तुम धमकी दे रहे हो उसे मैं बहुत पहले काट चुका हूं। अगर तुम्हें मजा आए तो तुम काट डालो। लेकिन एक बात ध्यान रखना, तुम भी गिरते देखोगे गर्दन को जमीन पर और मैं भी गिरते देखूंगा।
सिकंदर तो बेबूझ हालत में हो गया। उसकी कुछ समझ में न पड़ा। वह तो तलवार की भाषा जानता था, केवल भय की भाषा जानता था। कभी प्रेमी से तो उसका मिलना ही न हुआ था। किसी ऐसे व्यक्ति को तो उसने देखा ही न था जो प्रार्थना को उपलब्ध हुआ हो। उसने तलवार तो म्यान में रख ली और उस आदमी को कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि बात क्या है! लेकिन लाखों लोगों को मैंने डरा दिया है। और अगर मैं पहाड़ों को भी कहूं कि चलो मेरे साथ, तो वे भी चलने को राजी हो जाएंगे। एक नंगा फकीर! तेरे पास है क्या जिसके बल पर तू डर नहीं रहा है? उस फकीर ने कहा, जीवन से जो पाना था वह मैंने पा लिया; अब जीवन को छीन
कर तुम कुछ भी न छीन पाओगे। नवनीत तो पा लिया है, अब तो जीवन की छाछ पड़ी रह गई है। तुम उसे ले जाओ। डर तो तब तक था जब तक जीवन दूध था और नवनीत पाया नहीं था। तुम ले जाते तो सब ले जाते। अब तो छाछ पड़ी रह गई है। जो पाना था वह पा लिया। अगर तुम्हें डराना था तो कुछ समय पहले आना था।
स्वभावतः, जब तुम भोजन कर चुके और कोई थाली को छीनने लगे तो तुम भेंट
ही कर दोगे, यह जूठन को ले जाए, हर्ज क्या है! लेकिन तुम भूखे बैठे थे, भोजन शुरू भी न हुआ था, और कोई थाली छीनने लगा, तब कठिनाई होगी। जिसने जीवन के अवसर का उपयोग कर लिया--अवसर के उपयोग का एक ही अर्थ है कि जिसने जीवन के पार कुछ जान लिया, जिसके लिए जीवन सीढ़ी हो गया और जो सीढ़ी से पार हो गया-- जिसने जीवन की सरिता को जीवन के पार के सागर से मिला दिया, अब सरिता बचे या सूख जाए, अब कोई अंतर नहीं पड़ता।
प्रेम का शास्त्र तो सिखाता है अभय; प्रेम में लिप्त व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो जाता है। और प्रेम में लिप्त व्यक्ति के जीवन में शुभ का संचार होता है--चुपचाप, पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती। एक मां अपने बेटे को प्रेम करती हो तो प्रेम के कारण बेटा शांत होता है; मां मौजूद होती है। क्योंकि प्रेम का प्रतिकार असंभव है। प्रेम की तो प्रतिध्वनि ही होती है। भय का प्रतिकार होता है, कोई प्रतिध्वनि नहीं होती। एक मां अगर अपने बेटे को प्रेम करती है तो मां मौजूद है इसलिए बेटा चुप बैठता है। एक बाप अगर अपने बेटे को प्रेम करता है तो प्रतिध्वनि होती है बेटे से भी प्रेम की। बाप काम कर रहा है तो बेटा सम्हल कर चलता है, आवाज न हो।
यह तो शांति और तरह की है। यह प्रेम का प्रतिफल है। यहां भीतर अशांति
को बेटा दबा नहीं रहा है। बाप की मौजूदगी और बाप का प्रेम एक शांति को जन्म दे रहा है। अगर बाप की भाषा में काव्य हो और बाप की भाषा में संस्कार हो और बाप ने बेटे के आस-पास शब्दों के गीत निर्मित किए हों, तो बेटे से गाली निकलना असंभव होता है। इसलिए नहीं कि वह डरता है, बल्कि इसलिए कि बाप के प्रेम ने उसे इतने ऊपर उठाया है कि गाली देकर नीचे गिरना असंभव हो जाता है।

प्रेम से शुभ का संचार होता है सहज। तुम जिसे प्रेम करते हो तुम उसे ऊपर उठा लेते हो, आकाश में उठा देते हो। तुमने अगर किसी भी व्यक्ति को प्रेम किया तो तुमने कीचड़ से कमल को ऊपर उठा लिया। जैसे कीचड़ से कमल पार हो जाता है ऐसे ही जिसे तुम प्रेम करते हो, प्रेम के क्षण में ही तत्क्षण क्रांति घटित होती है--कीचड़ नीचे पड़ी रह जाती है, कमल पार हो जाता है। बड़ा फासला हो जाता है। तुम कभी किसी को प्रेम करके देखो। जिसे तुम प्रेम करते हो, अगर तुम्हारा प्रेम प्रगाढ़ है, तो तुम्हारे प्रेम की प्रगाढ़ता के अनुपात में ही उस व्यक्ति में परमात्मा का जन्म होना शुरू हो जाता है। असंभव है प्रेम से बचना। प्रेम से भागना असंभव है। प्रेम के विरोध में जाना असंभव है। प्रेम इस जगत में सबसे बड़ी शक्ति है। वह एक बाढ़ की भांति आता है और तुम्हें निखार जाता है।
लेकिन प्रेम की कमी हमने भय से पूरी करनी चाही है। और परिवार के बीज
भय में बोए जाते हैं। फिर परिवार से समाज बनता है; समाज से राष्ट्र बनता है; राष्ट्रों से संसार बन जाता है। और बीज बुनियाद में भय का है। इसलिए हर जगह भय का साम्राज्य है। जब भी तुम्हें किसी को सुधारना हो, भयभीत करो। धर्मगुरु भी वही करता है। राजनेता करे, समझ में आता है; क्योंकि राजनेता से हम कोई बड़ी समझ की आशा नहीं कर सकते। समझदार होता तो राजनेता ही न होता। राजनीतिज्ञ से हम कोई मानवीय जीवन की गहराई का बोध नहीं मांग सकते। वही बोध होता तो वह महत्वाकांक्षा की दुनिया में न होता। राजनेता को छोड़ दें। लेकिन धर्मगुरु भी भय की ही बात करता है; नरकों की बात करता है कि सड़ाए जाओगे, गलाए जाओगे, मारे जाओगे। वह भी भय से ही चाहता है लोग धार्मिक हो जाएं।
अब यह बिल्कुल असंभव है। भय से कभी कोई धार्मिक नहीं हुआ। भय ही तो अधर्म का मूल है। प्रेम धर्म का मूल है। भय का अर्थ है, हम तुम्हें काटेंगे, बदलेंगे। प्रेम का अर्थ है, तुम जैसे हो हम तुम्हें वैसा ही स्वीकार करते हैं। और मजा तो यह है कि भय काट-काट कर भी नहीं बदल पाता, और प्रेम बिना काटे बदल देता है। जैसे ही तुम किसी को प्रेम करते हो, बदलाहट शुरू हो गई। प्रेम की आंख पड़ी नहीं कि किरण आ गई अंधेरे में; प्रेम का स्पर्श हुआ नहीं कि दूसरे जगत का बुलावा आ गया। तुम जिसे प्रेम करते हो, तत्क्षण तुम उसे कुलीन कर देते हो। वह साधारण मनुष्य-जाति का हिस्सा नहीं रहा। पंख लग गए। अब तुम्हारे प्रेम को पाने के लिए, अब तुम्हारे प्रेम को बनाए रखने के लिए, अब तुम्हारे प्रेम की वर्षा जारी रहे इसके लिए वह रोज-रोज ऊपर उठता जाएगा।
प्रेम नहीं कहता कि बदलो; और बदलता है। भय कहता है कि बदलो, नहीं बदलोगे कष्ट पाओगे; और कभी नहीं बदल पाता। इसे तुम जीवन की कीमिया का बहुत आधारभूत नियम समझ लेना कि जो किसी को बदलना चाहता है वह कभी नहीं बदल पाता। बदलने वाले ही लोगों को बिगाड़ते हैं। समाज-सुधारक समाज को नष्ट और भ्रष्ट करते हैं। अच्छे मां-बाप बच्चों को नरक की यात्रा पर भेज देते हैं। कहावत है कि नरक का रास्ता शुभाकांक्षाओं से भरा पड़ा है। अच्छी करते हो आकांक्षा, लेकिन अगर आकांक्षा भय पर ही आधार बना रही है तो तुम नरक ही भेजोगे, स्वर्ग न भेज पाओगे। इसलिए तो सारी मनुष्य-जाति ऐसी भय-कातर, ऐसी दुख में पड़ी है, ऐसी सड़ी-गली अवस्था में है। सिवाय दुर्गंध के कुछ उठता हुआ नहीं मालूम पड़ता।
तो भय ने उन लोगों को मिटाया जो भयभीत हो गए। और भय ने उन लोगों को भी मिटा दिया जो भय के विपरीत खड़े हो गए। घर में अगर पांच बच्चे हैं तो शायद चार डर जाएंगे। लेकिन एक उनमें जरूर ऐसा होगा जो तुम्हारे डराने के कारण ही बगावती हो जाए। तुमने जो-जो कहा है, वही तोड़ेगा। तुमने कहा है, मत जाओ अंधेरे में बाहर। तो अंधेरे में बुलावा अनुभव होगा। तुमने कहा, मत तैरो नदी में जाकर। तो नदी में एक अदम्य आकर्षण हो जाएगा, एक अनिवारणीय आमंत्रण मिल जाएगा नदी से। जाना ही पड़ेगा; कोई अब रोक न सकेगा।
तुम्हारा निषेध रस पैदा करेगा अहंकारी में, और जिनके अहंकार कच्चे हैं उनको भयभीत कर देगा, भयातुर कर देगा। जो भयभीत हो जाएगा वह जिंदगी भर डरता रहेगा। दफ्तर में जाएगा तो दफ्तर के मालिक से डरेगा; विवाह करेगा तो

पत्नी से डरेगा; बच्चे पैदा हो जाएंगे तो बच्चों से डरेगा; रास्ते पर चलेगा तो डरेगा; घर में बैठा होगा तो डरेगा। उसके जीवन में एक कंपन समाविष्ट हो जाएगा। भय उसका स्वभाव हो जाएगा। और जो चुनौती ले लिया और अहंकार की यात्रा पर निकल गया, वह जिंदगी भर तोड़ने में संलग्न रहेगा। अगर वह असंस्कृत हुआ तो अपराधी हो जाएगा; अगर संस्कृत हुआ तो क्रांतिकारी हो जाएगा। अगर नासमझ हुआ तो चोरी करेगा, डकैती करेगा।
चंबल की घाटी के डाकू हैं। जब जयप्रकाश ने उन डाकुओं को मुक्त किया तो किसी मित्र ने मुझे आकर कहा। मैंने कहा कि दोनों एक ही तरह के लोग हैं। जरा भी फर्क नहीं है। जयप्रकाश और डाकुओं का मिलन एक जैसा है; दोनों की जीवन-ऊर्जा एक जैसी है। जयप्रकाश सुसंस्कृत आदमी हैं; डाकू असंस्कृत हैं। देवीसिंह और दूसरे असंस्कृत लोग हैं। बाकी उनके भी जीवन का आधार यही है कि समाज ने जो भी कहा है न करो, उसे वे तोड़ रहे हैं, मिटा रहे हैं। निर्भीक लोग हैं; पूरे राज्य के खिलाफ एक छोटी सी बंदूक के सहारे खड़े हैं। और जयप्रकाश, जयप्रकाश की भी वृत्ति वही है। ऐसा समझो कि डाकू शीर्षासन कर रहा हो। तो अराजकता, पूर्ण क्रांति की बातें। अच्छे शब्दों के पीछे भी बगावत है; अच्छे शब्दों के पीछे भी आकर्षण तोड़ने का है, मिटाने का है; बनाने का नहीं है।
और जयप्रकाश ज्यादा लोगों को नुकसान पहुंचा पाएंगे। देवीसिंह कितने लोगों को नुकसान पहुंचा पाएगा? देवीसिंह बहुत से बहुत धन छीन लेगा कुछ लोगों का। लेकिन जयप्रकाश पूरी जीवन की व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं। और फिर भी लोग सम्मान करेंगे।
तो निर्भीक आदमी के दो वर्ग हैं। अगर वह सुसंस्कृत हो तो वह क्रांतिकारी हो जाता है। क्रांति भी अपराध का एक ढंग है। अगर असफल हो जाए तो लोग उसको बगावती गिनते हैं; अगर सफल हो जाए तो वह महा नेता हो जाता है। लेनिन, माओ, कैस्त्रो, स्टैलिन, हो ची मिन्ह, इनके जीवन में और डाकुओं के जीवन में कोई बुनियादी भेद नहीं है। भेद इतना ही है कि डाकू छोटे पैमाने पर उपद्रव करता है, ये बड़े पैमाने पर उपद्रव करते हैं। और इनके उपद्रव के पीछे एक दर्शनशास्त्र है। डाकू के पास कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। इनके उपद्रव के पीछे एक फलसफा है और उस फलसफे की आड़ में सभी चीजें सुंदर हो जाती हैं। इसे थोड़ा समझने की कोशिश करो।
चोर क्या कह रहा है? चोर की चोरी क्या कहती है? चोर इतना ही कह रहा है
कि हम व्यक्तिगत संपत्ति के नियम को नहीं मानते। बिना जाने। डाकू क्या कह रहा है? डाकू यह कह रहा है कि हम तुम्हारी व्यक्तिगत संपत्ति की नियम की व्यवस्था को नहीं मानते। भला उसे पता भी न हो, भला इतने शब्दों में वह कह भी न सके, उसे भी साफ न हो। वह कर क्या रहा है? व्यक्तिगत संपत्ति के नियम को तोड़ रहा है। वह कहता है, हम इसको वर्जना नहीं मानते। कोई चीज किसी की नहीं है, जिसके हाथ में बल है उसकी है। इतना ही कह रहा है
समाजवाद, साम्यवाद क्या कह रहा है? लेनिन, माओ, स्टैलिन, हो ची मिन्ह क्या कह रहे हैं? वे इसको बड़ा विस्तीर्ण शास्त्र बना रहे हैं। वे कह रहे हैं, व्यक्तिगत संपत्ति को न बचने देंगे।
लेकिन मजा यह है कि व्यक्तिगत संपत्ति को मिटा डालो, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिन लोगों के हाथ में सत्ता होती है वे पूरी संपत्ति के उसी तरह मालिक हो जाते हैं जैसा कि राकफेलर, फोर्ड या बिड़ला कभी भी नहीं हो पाते। स्टैलिन तो पूरे मुल्क की संपत्ति का मालिक हो गया। मालकियत जाती नहीं, क्योंकि जो भी राज्यसत्ता में होता है उसके ऊपर फिर कोई भी नहीं। स्टैलिन बड़े से बड़ा डाकू है जिसके हाथ में बीस करोड़ का मुल्क पड़ गया। डाकुओं ने कितने लोग मारे हैं? स्टैलिन ने अपने जीवन में अंदाजन एक करोड़ लोग मारे। जिसने भी ना-नुच की उसी को खत्म किया। जितने साथी थे क्रांति में, धीरे- धीरे सबको मार डाला, क्योंकि उनसे खतरा था। सबको साफ कर दिया और सारे मुल्क की संपत्ति का मालिक बन बैठा।
अगर तुम असंस्कृत हो तो किसी पर डाका डाल दोगे; अगर तुम सुसंस्कृत हो, तुम पूर्ण क्रांति का नारा दोगे। और तुम ज्यादा खतरनाक हो, और तुम्हें कोई

भी पकड़ न पाएगा। क्योंकि तुम बड़ी कुशलता से शब्दों के जाल में सारी व्यवस्था जमाओगे।
मैंने सुना एक दिन कि मुल्ला नसरुद्दीन साम्यवादी हो गया। तो मैं उसके घर गया। उससे पूछा मैंने कि क्या हो गया? उसने कहा कि मैं साम्यवादी हो गया। मैंने कहा, तुम्हें पता है साम्यवाद का मतलब क्या होता है?
उसने कहा, मुझे सब पता है। तो मैंने कहा, अगर तुम्हारे पास दो कारें हों तो क्या तुम एक उस आदमी को देना पसंद करोगे जिसके पास एक भी नहीं है? उसने कहा, निश्चित! पूर्ण रूप से निश्चित। अगर तुम्हारे पास दो मकान हों, मैंने पूछा, क्या तुम एक उसको दे दोगे जिसके पास एक भी नहीं? उसने कहा कि बिल्कुल दे दूंगा, अभी दे दूंगा। फिर मैंने पूछा, और अगर तुम्हारे पास दो गधे हों तो क्या तुम एक उसको दे दोगे जिसके पास एक भी नहीं? उसने कहा, कभी नहीं। तो मैंने कहा, यह कैसा साम्यवाद? उसने कहा, मेरे पास दो गधे हैं! दो कारें तो हैं नहीं, न दो मकान हैं।
जो नहीं है, वह हम दे देंगे। और दूसरे के पास जो है वह हम छीन लेंगे।
दूसरे के पास जो है उसको छीनने का अपराधी भी उपाय करता है। उसका उपाय बड़ा छोटा है, बहुत छोटा है। उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। दूसरे के पास जो है उसे छीनने का साम्यवादी भी उपाय करता है, लेकिन उसका उपाय बड़ा व्यवस्थित है। उसकी स्ट्रैटेजी है, उसका पूरा रणशास्त्र है। वह पहले तो विचार का प्रवाह फैलाता है। और निश्चित ही उसका विचार सभी को अपील होता है, क्योंकि ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसके पास सब कुछ हो। सभी के ऊपर लोग हैं जिनके पास बहुत कुछ है। और तुम उनसे छीनना चाहोगे।
इसलिए साम्यवाद की अपील है। जब भी साम्यवाद तुम्हें समझाता है कि सब संपत्ति बंट जाएगी, तब तुम कभी यह नहीं सोचते कि तुम्हारे दो गधे बंटेंगे। तुम सोचते होः पड़ोसी की दो कार बंटेंगी, दूसरे पड़ोसी के दो मकान बंटेंगे। एक मकान तुम्हें भी मिलेगा; एक कार तुम्हें भी मिलेगी। तुम सदा यह सोचते हो कि दूसरे का बंटेगा, तुम पाने वाले होओगे। तुम कभी यह नहीं सोचते कि तुम्हारे दो गधे बंटेंगे।
यही तो कठिनाई हुई। रूस में क्रांति हुई तो सारा मुल्क प्रसन्न था, क्योंकि लोगों ने सोचा था कि दूसरों का बंटेगा। लेकिन जब उनका बंटना शुरू हुआ तब बड़ी कठिनाई आई। जिसके पास चार मुर्गियां थीं, उसकी भी स्टैलिन ने बांट करने की कोशिश की। जिसके पास थोड़ी सी खेती थी उसको भी बांटने की कोशिश की। एक करोड़ लोग जो मारे गए वे अमीर नहीं थे। अमीर कहीं होते हैं एक करोड़ किसी मुल्क में? वे गरीब लोग थे जिन्होंने अपनी छोटी-छोटी संपत्ति का आग्रह किया कि हम न बंटने देंगे। इन्हीं ने क्रांति की थी।
यह बड़ा मजा है! ये ही क्रांति के जाल में पड़े थे। ये आश्वासन से भर गए।
इन्होंने कभी सोचा ही नहीं था कि मेरे पास की दस एकड़ जमीन बंट जाएगी।
इन्होंने सोचा था, बंटेगा बिड़ला, बंटेगा राकफेलर, बंटेगा कोई और; मिलेगा मुझे।
मिलने की भाषा सिखाता है साम्यवाद। वही तो डाकू और चोर की भाषा है।
उसकी अपील है। लेकिन जब बंटाव हुआ तब पता चला कि मेरा भी बंट रहा है। तब कठिनाई खड़ी हो गई। कितने अमीर हैं? दस, बीस, पचास, सौ। उनको बांटने से तुम्हारे हाथ में रत्ती भर भी नहीं आएगा। क्योंकि तुम हो करोड़ों, अरबों।
लेकिन तुम्हारा बंटेगा। छोटे-छोटे किसानों ने बंटने से इनकार किया कि जब उनकी मुर्गियां जाने लगीं सामूहिक फार्म में तब उन्होंने इनकार कर दिया। जब उनकी खेती होने लगी सामूहिक तब वे लड़ने को खड़े हो गए। एक करोड़ छोटे-छोटे किसान और गरीब कटे। और फिर भी मुल्क में कोई साम्यवाद तो आया नहीं। साम्यवाद कभी आ नहीं सकता, क्योंकि आदमी इतने भिन्न हैं। और वर्ग सदा रहेंगे। नये वर्ग खड़े हो गए। और अब इन नये वर्गों को सम्हाल रखने के लिए इतना इंतजाम करना पड़ा स्टैलिन को, हिंसा का, भय का इतना आयोजन करना पड़ा, जितना कि मनुष्य-जाति में कभी भी नहीं हुआ था। लोग अकेले में भी बात करते रूस में डरने लगे, क्योंकि दीवारों को भी कान हो गए। जरा किसी ने बात की विपरीत, और वह आदमी नदारद हो गया, फिर उसका पता ही नहीं चला कि वह कहां गया। स्टैलिन ने जितनी सुविधा से हत्या की, कभी किसी ने नहीं की।

लेकिन स्टैलिन महा नेता हो गया। साम्यवाद के इतिहास में उसकी कथा स्वर्ण-अक्षरों में लिखी जाएगी। है सिर्फ बड़ा डाकू, लेकिन डाकू एक दर्शनशास्त्र के साथ। दुनिया के सब राजनेता डाकुओं से भिन्न नहीं हैं। करते वही हैं, लेकिन उनके पास कुशलता है।
तो ध्यान रखना, या तो भय तुम्हें इतना भयभीत कर देगा कि तुम जिंदगी भर मुर्दे की तरह जीओगे। या भय तुम्हें इतनी चुनौती से भर देगा कि तुम जिंदगी भर बगावती की तरह जीओगे। लेकिन दोनों हालत में तुम जीवन से वंचित रह जाओगे। क्योंकि जीवन तो उसे मिलता है जो न भीरु है और न बगावती है। तभी तो जीवन-चेतना स्वयं में ठहर पाती है। भयभीत दूसरे से डरता रहता है; निर्भीक दूसरे को डराने की कोशिश करता रहता है। दोनों हालत में जीवन-ऊर्जा व्यर्थ होती है, नष्ट होती है।
तो न तो भयभीत ने कभी परमात्मा को जाना और न निर्भीक ने कभी परमात्मा
को जाना। इन दोनों से अलग एक जीवन-दशा है जिसको मैं अभय कहता हूं। अभय न तो भयभीत होता है और न निर्भीक होता है। अभय का मतलब यह है कि न तो वह किसी को डराना चाहता है और न किसी से डरता है। चेतना अपने में थिर हो जाती है। और जब चेतना अपने में लौटती है, अपने में गिरती है जब चेतना की धारा, तो जीवन का परमानंद, परम-स्वाद उपलब्ध होता है।
अब हम लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।
"लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं; तब उन्हें मृत्यु की धमकी क्यों दी जाए?"
पहली बात, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।"
क्योंकि अगर वे मृत्यु से भयभीत होते तो उनके जीवन में क्रांति घटित
हो जाती। लोग सोचते हैं, मृत्यु सदा दूसरे की होती है। और सोचना ठीक भी है, क्योंकि तुम सदा दूसरे को मरते देखते हो, खुद को तो तुमने मरते कभी देखा नहीं। कभी इस पार का पड़ोसी मरता है, कभी उस पार का पड़ोसी मरता है। हमेशा दूसरा मरता है। लाश तो निकलती है, लेकिन किसी की निकलती है। तुमने अपनी लाश तो निकलती देखी नहीं। उसे तुम कभी देखोगे भी नहीं; दूसरे देखेंगे उसे। तो ऐसा लगता है मृत्यु सदा दूसरे की होती है--एक बात।
जिसको ऐसी याद आ गई कि मृत्यु मेरी होती है, वह तो खुद बदल जाएगा। तुम्हें उसे भयभीत करने की जरूरत न रहेगी। क्योंकि जिसे यह दिखाई पड़ा कि मृत्यु मेरी होने वाली है, वह तो एक अर्थ में इस जीवन के प्रति जो उसकी वासना है, तृष्णा है, उसको छोड़ देगा। क्योंकि जब मरना ही है, जब क्षण भर ही यहां होना है, तो इतना आग्रह होने का क्या मूल्य रखता है? तो उसकी तृष्णा विलीन हो जाएगी।
जिसको मृत्यु दिखाई पड़ने लगी उसकी तृष्णा विलीन हो जाएगी। और जिसकी तृष्णा विलीन हो जाती है वह आदमी बुरा तो हो ही नहीं सकता। बुरे तो हम तृष्णा के कारण होते हैं; वासना के कारण बुरे होते हैं। दूसरे से हम छीनते इसी आशा में हैं कि वह हमारे पास बचेगा--सदा और सदा।
लेकिन जब हम ही खो जाने को हैं, और क्षण भर बाद आ जाएगा मृत्यु का संदेशा और हमें विदा होना होगा, तो क्या छीनना है किसी से? अगर कोई दूसरा भी हमसे छीन ले जाए तो हम ले जाने देंगे। क्योंकि दूसरा शायद भ्रांति में हो कि सदा यहां रहना है; हम इस भ्रांति में नहीं हैं।
जिसको मृत्यु का स्मरण आ गया, जिसे मृत्यु का बोध हो गया, उसे तुम्हें थोड़े ही बदलना पड़ेगा! समाज को थोड़े ही बदलना पड़ेगा! वह बदल जाएगा स्वयं। जिनको तुम्हें बदलना पड़ता है उनको मृत्यु की याद भी नहीं है। वे बिल्कुल भूले हुए हैं। वे ऐसे जी रहे हैं जैसे सदा रहना है। वे इस तरह के मजबूत मकान बना रहे हैं कि जैसे सदा रहना है। वे इस तरह का बैंक बैलेंस इकट्ठा कर रहे हैं कि जैसे अनंत काल तक उन्हें यहां रहना है। इंतजाम वे बड़ा लंबा कर रहे हैं और उन्हें पता नहीं कि घड़ी भर की बात है, रात भर का विश्राम है इस धर्मशाला में, और सुबह विदा हो जाना होगा। बड़ी व्यवस्था कर रहे हैं छोटे से समय के लिए। धर्मशाला में टिके हैं, आयोजन ऐसा कर रहे हैं जैसे कि किसी महल में सदा-सदा के लिए आवास करना हो।

जिनको मृत्यु का जरा सा भी स्मरण आ गया वे तो खुद ही सजग हो गए। उनसे बुराई तो अपने आप गिर जाएगी, तुम्हें उसे गिराना न पड़ेगा।
तो लाओत्से कहता है, लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, अन्यथा वे धार्मिक
हो जाते।
बुद्ध को मृत्यु दिखाई पड़ गई, क्रांति घटित हो गई। एक आदमी को मरते देख लिया, पूछा सारथी को, क्या मुझे भी मरना पड़ेगा? सारथी डरा, कैसे कहे? पर उसने कहा कि झूठ भी तो मैं नहीं बोल सकता हूं। आप पूछते हैं तो मजबूरी में डालते हैं, मुझे कहना ही पड़ेगा। यद्यपि कहना नहीं चाहिए। यह भी कैसे अपशकुन भरे शब्द कि मैं आपसे कहूं कि आप भी मरेंगे! लेकिन झूठ नहीं बोला जा सकता। मरना तो सभी को पड़ेगा। रंक हो कि राजा, भिक्षु हो कि सम्राट, मरना तो पड़ेगा ही। आपको भी मरना पड़ेगा। बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो, बात खत्म हो गई।
वे एक उत्सव में जा रहे थे। राज्य का सबसे बड़ा उत्सव था। उन्होंने कहा, अब कोई उत्सव न रहा। जब मौत होने ही वाली है, सब उत्सव व्यर्थ हो गए। अब तुम रथ वापस घर लौटा लो। अब मुझे कुछ और करना पड़ेगा। अब उत्सवों में समय खोने का समय न रहा। मौत किसी भी घड़ी हो सकती है, तो हो ही गई। अब मुझे मौत को ध्यान में रख कर कुछ करना पड़ेगा। अब तक मैं ऐसे जी रहा था कि मौत पर मैंने ध्यान ही न दिया था। तो अब तो जीवन की पूरी शैली बदलनी पड़ेगी। एक महान तथ्य जीवन में प्रविष्ट हो गया--मृत्यु। अब जीवन को मुझे ऐसे बनाना पड़ेगा जैसे उस आदमी को बनाना चाहिए जो अभी यहां है और कल विदा हो जाएगा। तो मुझे मृत्यु के पार की भी अब चिंता करनी होगी। अब तुम घर लौटा लो। अब यह सब राग-रंग व्यर्थ हो गया। मैं तो ऐसे ही जी रहा था जैसे सदा रहूंगा।
मृत्यु का तथ्य जिसे दिखाई पड़ जाए वह तो खुद ही रथ वापस लौटा लेता है। तुम्हें उसे धमकाना नहीं पड़ता, डराना नहीं पड़ता। वह तो अपनी वासना को खुद ही वापस लौटा लेता है। जब जीवन ही खो जाएगा तो जीवन की तृष्णा का क्या मूल्य है?
इसलिए लाओत्से कहता है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।"
काश भयभीत होते, तो तुम्हें उन्हें बदलना पड़ता? वे खुद ही बदल जाते।
"और जो मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, तब उन्हें मृत्यु की धमकी क्यों दी जाए?"
तब तुम उन्हें क्यों मृत्यु की धमकी दे रहे हो? क्यों डरा रहे हो? कोई अर्थ न होगा उस धमकी का। उस धमकी से वे ही डर जाएंगे जिनके अभी जीवन में पैर भी न पड़े थे, जिन्होंने अभी चलना भी न सीखा था वे घबड़ा कर बैठ जाएंगे। उस भय के कारण उनके जीवन में क्रांति तो न होगी, पक्षाघात हो जाएगा। उस भय के कारण वे पैरालाइज्ड हो जाएंगे।
निश्चित ही, अगर किसी आदमी को पक्षाघात हो जाए तो उसके जीवन में बुराई अपने आप कम हो जाती है। अब आप अस्पताल में पड़े हैं, उठ नहीं सकते। चोरी कैसे करेंगे? दूसरे की स्त्री को लेकर भागेंगे कहां? चल ही नहीं सकते, भागने का उपाय न रहा; दूसरी स्त्री का सवाल ही नहीं उठता। जेब कैसे काटेंगे? चुनाव कैसे लड़ेंगे? पक्षाघात में पड़े हैं तो बुराई अपने आप बंद हो गई। लेकिन क्या पक्षाघात से बुराई का बंद करना उचित है? तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि अगर सभी लोगों को पक्षाघात हो जाए, पैरालाइज्ड हो जाएं, तो दुनिया से बुराई मिट जाएगी।
बुराई तो मिट जाएगी, लेकिन सारे लोग पक्षाघात से घिर जाएं यह तो महा बुराई हो जाएगी। ये तो मुर्दा हो गए। और यही किया गया है अब तक। भय तुम्हें लकवा लगा देता है। भय के कारण तुम्हारे हाथ-पैर जड़ हो जाते हैं; तुम्हारी चेतना गतिमान नहीं रह जाती। गत्यात्मकता खो जाती है; तुम्हारे जीवन की ऊर्जा डायनेमिक नहीं रहती। तुम्हारे जीवन की ऊर्जा बंधी-बंधी हो जाती है। जैसे नदी ने बहना बंद कर दिया और वह छोटी तलैया हो गई--बंद अपने में। सड़ती है, बहती नहीं; कहीं जाती नहीं, वहीं पड़ी रहती है। अब तक का नीति-शास्त्र और समाज-शास्त्र भय के द्वारा लोगों को पक्षाघात पैदा कर रहा है।
पक्षाघात शुभ नहीं है। भला पक्षाघात से तुम कितने ही नैतिक मालूम पड़ो, लेकिन पड़े पक्षाघात में सोचोगे तो अनीति, सोचोगे तो पाप। पक्षाघात

तुम्हारे शरीर को रोक देगा, लेकिन तुम्हारे मन को तो नहीं। तुम्हारा मन तो विक्षिप्त की भांति घूमेगा। और वही मन वस्तुतः निर्णायक है।
तो लाओत्से कहता है, "क्यों उन्हें मृत्यु की धमकी दी जाए?"
उससे कुछ सार न होगा, बल्कि खतरा होगा। कुछ जो अभी जीवन में चलना ही सीख रहे थे वे डर के मारे बैठ जाएंगे। और कुछ जो जीवन से मुक्त होने के करीब आ रहे थे, जीवन ने ही जिन्हें इतना सता दिया था, जीवन की पीड़ा ने ही जिन्हें इतना उबा दिया था कि वे करीब आ रहे थे कि जीवन के पार होने की चेष्टा करें, वे तुम्हारी धमकी से चुनौती समझ लेंगे, वे वापस लड़ने को जीवन में खड़े हो जाएंगे। भयभीत और भयभीत हो जाएंगे, निर्भीक और निर्भीक हो जाएंगे। यह बड़ी उलटी घटना है। तुम चाहते थे कि निर्भीक भयभीत हो जाएं; वे नहीं होंगे।
ऐसा एक गांव में हुआ। एक राजपथ पर छोटा सा गांव था--दोनों तरफ रास्ते
के किनारे बसा। बड़ा राजपथ था और कारें बड़ी तेज गति से गुजरतीं, बसें और ट्रक, और गांव को बड़ा खतरा था। तो गांव की पंचायत ने तय किया था कि गांव के भीतर कोई भी बीस मील से ज्यादा रफ्तार से वाहन न गुजरे।
लेकिन छोटा गांव, कौन फिक्र करे? उनकी तख्ती को कोई पढ़ता ही न था। वह लगा रखी थी तख्ती, लेकिन कोई उसकी चिंता ही न लेता था। तो उन्होंने सोचा कि शायद बीस मील की बात ठीक नहीं है, हम सिर्फ इतना ही लिखें कि कृपया अत्यंत धीमी गति से यहां से गुजरें। और पंचायत का एक आदमी खड़ा किया गया जो जांच करे खड़े होकर कि इसका कोई परिणाम होता है कि नहीं।
उस आदमी ने सात दिन बाद रिपोर्ट दी और कहा, जो लोग "बीस मील की रफ्तार
से चलें" उसको पढ़ कर बीस मील की रफ्तार से चलते थे वे लोग तो पांच मील की रफ्तार से चलने लगे और जो उस बीस मील की तख्ती को देख कर अपनी पचास मील की रफ्तार कायम रखते थे अब वे सत्तर मील से चल रहे हैं।
अक्सर ऐसा ही पूरे जीवन में हो रहा है। निर्भीक डरता नहीं तुम्हारे डराने से, बल्कि और उत्तेजित हो जाता है। भयभीत वैसे ही भयभीत था, वह और भयभीत हो जाता है। एक पक्षाघात से घिर जाता है, दूसरा अहंकार की अकड़ से। दोनों ही समाज के लिए घातक हैं।
लाओत्से कहता है, "मान लो लोग मृत्यु से भयभीत हैं, और हम उपद्रवियों
को पकड़ कर मार सकते हैं, तो भी कौन ऐसा करने की हिम्मत करेगा?"
हिम्मत की गई है। करनी नहीं चाहिए; जो नहीं होना था वह हुआ है। हमने सदा यह कोशिश की है कि उपद्रवियों को मार डालो। हत्यारों की हमने हत्या कर दी है कानून के नाम पर। अदालतें समाज के द्वारा नियुक्त की गई हत्या की संस्थाएं हैं। जिस चीज का हम दंड देते हैं वही हम खुद करते हैं। एक आदमी ने किसी की हत्या की; फिर हम अदालत में उस पर कानून का जाल बिछा कर बड़े ढंग से करते हैं, योजना से करते हैं। उस आदमी को मौका नहीं देते कहने का कि कोई अन्याय किया गया। बड़ी न्याय की व्यवस्था जमाते हैं, लेकिन करते हम वही हैं जो उसने किया था। हम उसकी हत्या कर देते हैं। हमारी हत्या न्याय, और उसकी हत्या अन्याय! और उसने हत्या की तो वह हत्यारा, और हमारा न्यायाधीश हत्या करता है तो वह हाथ भी नहीं धोता; उसकी चेतना पर कोई चोट भी नहीं पड़ती। मनसविद कहते हैं कि हत्यारे और न्यायाधीश एक ही तरह के वर्ग से आते हैं, उनकी चेतना का गुणधर्म एक जैसा है। पुलिसवाले और गुंडे एक ही वर्ग से आते हैं; उनकी चेतना का गुणधर्म एक जैसा है। पुलिसवाले को गुंडा होना ही चाहिए, नहीं तो वह गुंडों से व्यवहार न कर सकेगा। अगर तुम जाकर पुलिसवालों की भाषा सुनो, तो वे जैसी गालियां देंगे वैसी गाली बुरे से बुरा आदमी नहीं देता। और वे जैसा व्यवहार करेंगे, वह तुम्हें पता नहीं चलता, क्योंकि तुम्हें कभी उनके व्यवहार का मौका नहीं आता, लेकिन जिन लोगों को उनके साथ व्यवहार करना पड़ता है वे जानते हैं कि इससे ज्यादा बुरे आदमी खोजने मुश्किल हैं। असल में, फर्क इतना ही है कि वे राज्य के द्वारा नियुक्त गुंडे हैं, दूसरे गुंडे अपनी मर्जी से गुंडे हैं। बस इतना ही फर्क है। न्यायाधीश हत्यारे हैं, लेकिन बड़ी व्यवस्था से। उनका चोगा, उनके सिर
पर लगाए गए विग, व्यवस्था, चारों तरफ गंभीर, काले कोटों से घिरे हुए वकील-- ऐसा लगता है कि कुछ हो रहा है, कोई न्यायपूर्ण बात हो रही है। लेकिन हो

क्या रहा है? इस सारे जाल के भीतर हो इतना ही रहा है कि जो बुरे आदमियों ने किया है, समाज उनके साथ वही बुराई करना चाहता है; समाज प्रतिशोध लेना चाहता है। तुम हत्या को कानून के शब्दों में रख कर बदल नहीं सकते। हत्या तो हत्या है। राज्य ने की या व्यक्ति ने की, कोई फर्क नहीं पड़ता। हत्या तो हत्या ही रहती है।
और एक बड़ी समझ लेने जैसी बात है कि जो लोग हत्या करते हैं वे उस करने
के कारण हत्या के जो परिणाम हैं उनकी चेतना पर, उससे बच नहीं सकते। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर तुमने बुरे आदमी को दंड देकर ठीक करने की कोशिश की तो इस कोशिश में धीरे-धीरे तुम भी बुरे हो जाओगे। क्योंकि तुम दंड दोगे। दंड देना कोई बड़ा शुभ कृत्य नहीं है। तुम मारोगे। मारना कोई शुभ कृत्य नहीं है। तुम कोड़े चलाओगे; तुम सजाएं दोगे। तुम्हारी आत्मा यह सब करने के कारण धीरे-धीरे सख्त, कठोर, पथरीली होती जा रही है।
और न्यायाधीशों से ज्यादा पथरीली आत्मा तुम कहीं भी न पाओगे। क्योंकि हत्यारा तो शायद भावावेश में हत्या करता है, न्यायाधीश बड़ी शीतलता से हत्या करते हैं, कोल्ड मर्डर।
एक आदमी से तुम्हारा झगड़ा हो गया, तुम क्रोध में आ गए, भावाविष्ट हो गए, उत्तप्त हो गए; उस उत्तप्त बेहोशी में तुमने हत्या कर दी। यह हत्या क्षम्य भी हो सकती है, क्योंकि तुम अपने होश में न थे, तुम बेहोश थे। शायद भविष्य में अदालतें इसे क्षमा करेंगी। जैसे अभी अगर सिद्ध हो जाए कि आदमी पागल था तो फिर पागल को सजा नहीं दी जा सकती। लेकिन क्रोध में भी तो आदमी पागल हो जाता है, क्षण भर को सही। स्थायी पागल न हो; पहले पागल न था, बाद में पागल न रहा; लेकिन उस क्षण में तो पागल हो ही जाता है। उस पागलपन में हत्या करता है। यह क्षमा-योग्य हो सकती है। लेकिन न्यायाधीश सोच-विचार कर, गणित से, कैलकुलेशन से हत्या करता है। उसकी हत्या अक्षम्य है। व्यक्ति हत्या करते हैं भावाविष्ट होकर; समाज हत्या करता है गणित के हिसाब से। समाज की हत्या बिल्कुल अक्षम्य है।
लेकिन लाओत्से जैसे व्यक्तियों की बात कोई सुनता नहीं। इसलिए धीरे- धीरे समाज के पास आत्मा तो पत्थर हो जाती है। जो समाज लोगों को आत्मा देना चाहता है उसके पास खुद ही कोई आत्मा नहीं होती। जो न्यायाधीश लोगों को बदलना चाहता है, उसके पास ही बदलने वाली कोई अंतस-चेतना नहीं होती। जो राजनीतिज्ञ समाज के भ्रष्टाचार को दूर करना चाहते हैं, उनका सारा जीवन भ्रष्टाचार से लिप्त होता है। वे वहां तक पहुंच ही नहीं सकते जहां तक पहुंच गए हैं बिना भ्रष्टाचार के।
इसे थोड़ा समझें। क्योंकि जिस यात्रा से तुम गुजरते हो वह तुम्हें बदल देती है। अक्सर ऐसा हुआ है, रोज ऐसा होता है, पूरा इतिहास भरा पड़ा है कि क्रांतिकारियों ने जिनको मिटाना चाहा, अंततः क्रांतिकारी उन्हीं जैसे हो जाते हैं। इस मुल्क में अभी हुआ। उन्नीस सौ सैंतालीस में यह मुल्क आजाद हुआ। जो लोग सत्ता में आए वे अंग्रेजों से बदतर सिद्ध हुए। अंग्रेजों ने इतनी हत्या कभी भी नहीं की थी मुल्क में जितनी इन थोड़े से वर्षों में भारतीयों ने खुद सत्ता में होकर की। इतना भ्रष्टाचार न था जितना भ्रष्टाचार आजादी के इन दिनों में बढ़ा।
क्यों ऐसा होता है? क्योंकि तुम जो करने जाते हो वह तुम्हें भी बदलता है। असल में, सत्ता में पहुंचते-पहुंचते ही जिन सीढ़ियों को पार करना पड़ता है वे तुम्हारी आत्मा का हनन कर देती हैं। जब तक तुम पहुंचते हो तब तक तुम उसी जैसे हो गए होते हो।
एक बहुत पुरानी चीन में कहावत है कि बुरे आदमी से कभी दुश्मनी मत बनाना। क्योंकि बुरे आदमी से तुम दुश्मनी बनाओगे, धीरे-धीरे तुम बुरे हो जाओगे। क्योंकि बुरे आदमी के साथ उसी की भाषा में बोलना पड़ेगा, बुरे आदमी के साथ उसी के ढंग से लड़ना पड़ेगा, बुरे आदमी के साथ वही व्यवहार करना पड़ेगा जो वह समझ सकता है। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम बुरे आदमी हो गए।
अगर लड़ाई भी लेनी हो तो किसी अच्छे आदमी से लेना। अगर लड़ना ही हो तो संतों से लड़ना। तो तुम संतों जैसे हो जाओगे। क्योंकि जिससे हमें लड़ना हो उसी के जैसे होना पड़ता है। और कोई उपाय नहीं है। चोर से लड़ोगे, चोर हो

जाओगे। बेईमान से लड़ोगे, बेईमान हो जाओगे। क्योंकि बेईमानी का पूरा शास्त्र तुम्हें भी सीखना पड़ेगा। नहीं तो जीत न सकोगे।
हिटलर हार गया, लेकिन सारी दुनिया को बदल गया। क्योंकि जो लोग उससे लड़े वे सब धीरे-धीरे हिटलर जैसे हो गए। हिटलर हार कर भी जिंदा है। और हिटलर के बाद दुनिया में करीब-करीब अधिक मुल्क फैसिस्ट हो गए। भाषा, नाम उनका न हो फैसिज्म, लेकिन हिटलर बदल गया लोगों को; जिनको भी उससे लड़ना पड़ा उनको डेमोक्रेसी छोड़ देनी पड़ी। क्योंकि उससे लड़ना हो तो डेमोक्रेसी नहीं चल सकती। हिटलर से लड़ना था तो इंग्लैंड को तत्क्षण चर्चिल को ताकत देनी पड़ी, क्योंकि हिटलर जैसा दुष्ट आदमी चर्चिल के अतिरिक्त इंग्लैंड में दूसरा नहीं मिल सकता था। हिटलर से चर्चिल ही लड़ सकता था। वह भी हिटलर के ही ढंग का आदमी था; उसमें कोई फर्क न था। हिटलर को हराना जिन लोगों ने किया उनकी सबकी जीवन-चेतना वह बदल गया। वह सारी दुनिया में हार कर भी फैसिज्म की ताकतों को बढ़ावा दे गया। दुनिया में करीब-करीब सब जगह लोकतंत्र की जड़ें हिल गईं, और सब जगह अधिनायकशाही प्रविष्ट हो गई।
अभी बंगला देश में यह घटना घटी। आजादी आए देर नहीं हुई, लोकतंत्र की हत्या हो गई। मुजीबुर्रहमान अधिनायक हो गए। कहते वे यही हैं अभी कि बुराई को मिटाना है। लेकिन बुराई को मिटाने में तुम्हें बुरा होना पड़ता है। लेकिन तुम थोड़े दिन में भूल ही जाओगे कि बुराई मिटी या न मिटी। कभी बुराई मिटी नहीं है आज तक। इसलिए अब इस अधिनायकशाही का अंत कब होगा? बुराई कभी मिटेगी नहीं और अधिनायक कहेगा, अभी बुराई मिटी नहीं इसलिए मुझे अधिनायक रहना है। और जैसे-जैसे अधिनायकशाही मजबूत होती जाएगी वैसे-वैसे वह स्वभाव बन जाएगी। सारी दुनिया में स्वागत किया गया, क्योंकि मुजीबुर्रहमान कहते हैं कि यह दूसरी क्रांति है।
यह क्रांति की हत्या है; यह दूसरी क्रांति नहीं है। क्रांति हो भी न पाई थी कि मर गई। बच्चा मरा हुआ ही पैदा हुआ। और सारी दुनिया में ऐसा हुआ है। लेकिन आदमी इतिहास को दोहराए चला जाता है। स्टैलिन चाहता था कि रूस का छुटकारा जार से हो जाए और स्टैलिन जार जैसा हो गया छुटकारे में। तुम जिस तरह की जीवन-व्यवस्था को तोड़ना चाहते हो तुम भी वैसे हो जाओगे।
हमने तो बड़े अच्छे लोग भेजे थे सत्ता में, अच्छे से अच्छे लोग, जिनको
हम समझते थे अच्छे लोग। क्योंकि गांधी ने बड़े सेवक तैयार किए थे, बड़े त्यागी तैयार किए थे। वे सब भोगी सिद्ध हुए। वह सब त्याग दो कौड़ी में मिल गया। जैसे ही सत्ता आई वैसे ही सब रूप बदल गया। क्यों? क्योंकि उनको लड़ना पड़ा, चारों तरफ की बुराई है उससे लड़ना पड़ा। वह बुराई उन्हें बुरा कर गई। जिससे तुम दुश्मनी लोगे, तुम कभी न कभी उसी जैसे हो जाओगे। इसलिए मैं कहता हूं, शैतान से मत लड़ना। परमात्मा से प्रेम करना; शैतान से मत लड़ना। शैतान से लड़ने की तरफ ध्यान ही मत देना। क्रोध से मत लड़ना, करुणा को जगाना; क्रोध पर ध्यान ही मत देना। कामवासना से मत लड़ना, अन्यथा तुम और कामी हो जाओगे। और अगर कामवासना से लड़-लड़ कर तुम्हारा ब्रह्मचर्य भी पैदा हो गया तो वह ब्रह्मचर्य का गुणधर्म भी कामवासना का होगा, वह भिन्न नहीं हो सकता। इसलिए ठीक दिशा में ध्यान देना जरूरी है।
लाओत्से कहता है, "मान लो लोग मृत्यु से भयभीत हैं, और हम उपद्रवियों
को पकड़ कर मार भी सकते हैं, तो भी ऐसा करने की हिम्मत कौन करेगा?"
क्योंकि जो मारेगा वह उपद्रवियों जैसा ही हो जाएगा। जो उनकी हत्या करेगा, जो बुराई को तोड़ेगा, वह तोड़ने में ही बुरा हो जाएगा।
"अक्सर ऐसा होता है कि बधिक मारा जाता है।"
मारने वाला मारने की प्रक्रिया में ही मारा जाता है। भला वस्तुतः न मारा जाए, लेकिन मारा जाता है, खो देता है अपने को।
"और बधिक की जगह लेना ऐसा है जैसे कोई महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी लेकर चलाए।"
जब भी तुम बधिक की जगह लेते हो, जैसे ही तुम तय करते हो कि किसी को डराना है, धमकाना है, मिटाना है, क्योंकि भलाई को जन्म इसी तरह मिलेगा, तभी तुम गलती कर रहे हो। क्योंकि बुराई से भलाई को जन्म नहीं मिल सकता। मिटाना, डराना, धमकाना बुराई है। बुराई से कभी भलाई का जन्म नहीं होता।

अभी मैंने, जब हिंदुस्तान और चीन पर युद्ध के बादल छा गए और दोनों मुल्क संघर्ष के लिए करीब आए तो एक जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। मैंने उनसे कहा कि आपने भी आशीर्वाद दिया सेनाओं को, यह कुछ समझ में नहीं आता, क्योंकि अहिंसा परमो धर्मः। उन्होंने कहा, निश्चित दिया, क्योंकि अहिंसा की रक्षा के लिए युद्ध जरूरी है।
अहिंसा की रक्षा के लिए युद्ध जरूरी है! यह वचन तो बिल्कुल ठीक लगता है, लेकिन तुम इसमें थोड़ा सोचो इसका क्या अर्थ हुआ? अहिंसा की रक्षा भी हिंसा से होगी? तो तुम हिंसा अहिंसा के नाम पर करोगे; बस इतनी ही बात हुई, और तो कोई फर्क न हुआ। और अगर अहिंसा की रक्षा भी हिंसा से होती है तो अहिंसा नपुंसक है। तो फिर अहिंसा की बकवास ही छोड़ो। कम से कम ईमानदारी ग्रहण करो, प्रामाणिक रूप से यह कहो कि हिंसा के बिना कोई उपाय नहीं है, इसलिए हिंसा करेंगे। बात तो अहिंसा की करोगे, और फिर जब रक्षा करनी पड़ेगी तो हिंसा का ही सहारा लेना पड़ेगा। अहिंसा इतनी कमजोर है? और जब तुम हिंसा करोगे अहिंसा के नाम से तो तुम में और हिंसक में फर्क क्या रह जाएगा? हां, तुम जरा ज्यादा चालाक हो, तुम ज्यादा बेईमान हो। इतना ही फर्क। हिंसक कम से कम साफ-सुथरा है। अहिंसा की रक्षा हिंसा से कैसे हो सकती है?
लोग कहते हैं, धर्म खतरे में है। फिर धर्म की रक्षा हिंसा से करते हैं। धर्म अहिंसा है, प्रेम है। और तुम हिंसा करोगे तो धीरे-धीरे तुम अधार्मिक हो जाओगे। और जब तक तुम रक्षा करके निबटोगे, तुम पाओगे तुम्हारी जीवन-चेतना हिंसात्मक हो गई। क्योंकि तुम जो करते हो उसका अभ्यास तुम्हारे जीवन को बदल जाता है। तुम वही हो जाते हो जो तुम करते हो। तुम उसके साथ तादात्म्य बना लेते हो।
इसलिए लाओत्से कहता है, बधिक की जगह लेना खतरनाक है। क्योंकि तुम बधिक हो जाओगे। और तुम बधिक हो गए और बधिक को ही मिटाना चाहते थे! उपद्रवी को मिटाना चाहते थे, लेकिन मिटाने में तुम स्वयं उपद्रवी हो गए। बुरे को कोई बुराई से नहीं मिटा सकता। घृणा घृणा से नहीं मिटाई जा सकती; घृणा घृणा से बढ़ेगी। बुराई बुराई से नहीं मिटाई जा सकती; बुराई बुराई से बढ़ेगी। बुराई को मिटाना हो तो भलाई चाहिए। घृणा को मिटाना हो तो प्रेम चाहिए। पाप को मिटाना हो तो पुण्य चाहिए।
और समाज यही कोशिश करता रहा है कि बुराई को बुराई से मिटा दे। तुम उपद्रव करते हो तो पुलिस का डंडा तुम्हारे सिर पर पड़ जाता है। पुलिस कहती है कि तुम उपद्रव कर रहे थे, इसलिए डंडा मारना जरूरी है। लेकिन पुलिस का डंडा खुद ही उपद्रव है। इस जाल के बाहर कैसे निकला जाए?
जाल के बाहर रास्ता नहीं दिखाई पड़ता। उलझन बड़ी गहरी है। क्योंकि डंडे
के जो मालिक हैं, वे कहते हैं कि अगर डंडा न उठे तो उपद्रव बहुत बढ़ जाएगा। इसलिए डंडा उठाना जरूरी है। और डंडे से कोई उपद्रव दबता नहीं। डंडे से इतना ही होता है कि दूसरी दफे उपद्रवी भी डंडा लेकर आ जाता है। हमारी सारी व्यवस्था ऐसी है।
रवींद्रनाथ ने एक संस्मरण लिखा है। उनका बड़ा घर था, बड़ा परिवार था। उनके दादा को राजा की उपाधि थी। और इतना पैसा था, सुविधा थी, कि ऐसा भी हो जाता था कि जो मेहमान एक दफा मेहमान की तरह आया फिर वह गया ही नहीं, वह वहीं रहने ही लगा। ऐसे परिवार में कोई सौ लोग थे। तो मनों दूध खरीदा जाता था। और बंगाल में तो बहुत दूध की जरूरत है, क्योंकि सारे बंगालियों के मिष्ठान्न छेना से बनते हैं, दूध बहुत चाहिए। हर भोजन के साथ संदेश तो चाहिए ही। बहुत दूध खरीदा जाता था।
तो एक व्यक्ति के हाथ में परिवार के, रवींद्रनाथ के एक भाई के हाथ में जिम्मा था दूध को देखने का। तो दूध में पानी मिल कर आता था। तो भाई बिल्कुल गणित-कुशल था, प्रशासक बुद्धि का था। उसने एक और इंसपेक्टर नियुक्त किया जो लोग दूध लाते थे उन पर। जब से इंसपेक्टर नियुक्त किया तब से दूध में और पानी मिलने लगा; क्योंकि इंसपेक्टर का भी भाग जुड़ गया। वह भी जिद्दी आदमी था। उसने एक और बड़ा इंसपेक्टर, इंसपेक्टर के ऊपर नियुक्त कर दिया। तब तो एक दिन गजब हो गया। एक मछली भी आ गई दूध में। पानी ऐसा मिलाया गया, पोखर से सीधे ही डाल दिया; उसमें एक मछली भी चली आई।

रवींद्रनाथ के पिता ने रवींद्रनाथ के भाई को बुलाया और कहा कि तुम विदा करो इंसपेक्टरों को। क्योंकि यह जाल तो बढ़ जाएगा। अगर तुमने अब और एक इंसपेक्टर नियुक्त किया तो धीरे-धीरे पानी ही आएगा, दूध आएगा ही नहीं। क्योंकि सबका भाग निर्धारित होता जा रहा है। लेकिन वह जिद्दी था, उसने कहा कि इसका मतलब यह हुआ, इसका मतलब केवल इतना ही है कि एक ठीक योग्य आदमी और चाहिए ऊपर। रवींद्रनाथ के पिता ने कहा, तुम देखो, क्या घटना घटी है! दूध पहले आ रहा था, पानी मिला था माना; लेकिन इतना पानी मिला नहीं था।
ज्यादा सुरक्षा की व्यवस्था करोगे, असुरक्षा हो जाएगी। भरोसे से चलता
है जीवन; इतने भय और इतनी व्यवस्था से नहीं चलता। व्यवस्था बिगाड़ देती है, अव्यवस्था ले आती है। उपद्रवी डंडे लेकर आ जाएंगे; पुलिस गैस के गोले लेकर आएगी; उपद्रवी गोले लेकर आएंगे। ऐसे ही तो दुनिया में क्रांतियां खड़ी होती हैं। जितना राज्य दबाना चाहता है उतना ही लोग बगावत करते हैं। जितनी बगावत करते हैं, राज्य और दबाना चाहता है। क्योंकि गणित साफ है कि नहीं दबाओगे तो क्या होगा! ऐसे ही तो बड़े-बड़े साम्राज्य गिरते हैं। ऐसे ही ब्रिटिश साम्राज्य भारत में गिरा। ऐसे ही यह कांग्रेस गिरेगी। ऐसे ही इनके पीछे जो आएंगे वे गिरेंगे। गिरने का सूत्र यह है कि तुम्हारे गणित में भूल है।
मगर कठिनाई यह है कि वे भी क्या करें। उनसे अगर बात करो तो उनके सामने
भी यही सवाल है कि इसको रोकें कैसे?
ऊपर से बदलाहट नहीं की जा सकती। क्रांति, बदलाहट जड़ से लानी होती है। ऊपर से बदलने जाओगे, कुछ भी न बदलेगा। मूल भय पर खड़ा है। वहीं भूल है। मूल प्रेम पर खड़ा होना चाहिए। एक-एक परिवार से प्रेम की व्यवस्था बननी शुरू होनी चाहिए। डराओ मत बच्चों को। वक्त लगेगा, समय लगेगा, दो-चार पीढ़ियां अगर प्रेम में जीने की कोशिश करें तो ऐसी घड़ी आएगी जहां उपद्रव शांत हो जाएंगे। कोई इतना अशांत न होगा कि उपद्रव करने की कोशिश करे।
और तात्कालिक व्यवस्था कुछ भी करने का बड़ा प्रयोजन नहीं है। तात्कालिक व्यवस्था से कुछ भी नहीं होता, सनातन व्यवस्था चाहिए। बीमारी गहरी है, ऊपर से चोट करने से मिटती नहीं। तुम थोड़ी-बहुत देर के लिए दबा दो, फिर बीमारी खड़ी हो जाएगी। मौलिक रूपांतरण चाहिए।
उसी मौलिक रूपांतरण के लिए लाओत्से के वचन हैं।
वह कहता है, "बधिक की जगह लेना ऐसा है जैसे कोई महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी लेकर चलाए। जो महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी हाथ में लेता है, वह शायद ही अपने हाथों को जख्मी होने से बचा पाए।"
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन एक स्कूल में मास्टर था। एक औरत एक दिन
आई अपने बेटे को लेकर और उसने कहा कि कुछ इसे डराओ-धमकाओ, क्योंकि यह बिल्कुल बगावती हुआ जाता है। न किसी की सुनता, न कोई आज्ञा मानता। सब अनुशासन इसने तोड़ डाला है। हम बड़े बेचैन हैं। इसे थोड़ा डराओ-धमकाओ। इसे रास्ते पर लाओ। ऐसा सुनते ही नसरुद्दीन ऐसा उछला-कूदा, ऐसा चीखा-चिल्लाया कि बच्चा तो डरा ही डरा, औरत बेहोश हो गई। उसने इतना न सोचा था कि यह... । वह तो समझी कि यह आदमी पागल हो गया या क्या हुआ। बच्चा भाग खड़ा हुआ। औरत बेहोश हो गई। और नसरुद्दीन खुद इतना घबड़ा गया कि खुद भी बच्चे के पीछे भाग खड़ा हुआ।
घड़ी भर बाद झांक कर उसने देखा कि औरत होश में आई या नहीं। जब औरत होश में आ गई तब वह भीतर आकर, वापस अपने आसन पर बैठा। उस औरत ने कहा कि यह जरा ज्यादा हो गया, मेरा मतलब ऐसा नहीं था। मैंने यह नहीं कहा था कि मुझे डरा दो।
नसरुद्दीन ने कहा कि देख, भय का शास्त्र किसी की चिंता नहीं करता। जब बच्चे को मैंने डराया तो भय थोड़े ही देखता है कि कौन बच्चा है और कौन तू है। जब भय पैदा किया तो वह सभी के लिए पैदा हो गया। बच्चा तो डरा ही डरा, अब सपने में भी मेरी सूरत देख कर कंप जाएगा। लेकिन भय किसी का पक्षपात नहीं करता। तू भी डरी। और तेरी छोड़, मेरी हालत पूछ! मैं तक घबड़ा गया। अब इस बच्चे को मैं भी देख लूंगा तो मेरे हाथ-पैर कंपेंगे। मैं खुद ही आधा मील का चक्कर

लगा कर आ रहा हूं; बामुश्किल रोक पाया अपने को भागने से। ऐसी घबड़ाहट पकड़ गई।
इसे ध्यान में रखो। नसरुद्दीन ठीक कह रहा है। भय से जब तुम किसी को भयभीत करते हो तो तुम दूसरे को ही भयभीत नहीं करते, अपने को भी भयभीत कर लेते हो। जब तुम बुराई से किसी को डराते हो तब तुम खुद भी डर जाते हो। यह दुधारी तलवार है। और इसे सम्हाल कर हाथ में उठाना, क्योंकि तुम्हारे हाथ भी लहूलुहान हो जाएंगे।
लाओत्से कह रहा है कि कोई कलाकार काष्ठकार होता है, निष्णात होता है अपनी कुल्हाड़ी को पकड़ने में। तुम उसकी कुल्हाड़ी पकड़ कर मत चलाना। नहीं तो तुम अपने हाथों को जख्मी होने से न बचा पाओगे।
जीवन का शास्त्र बड़ा बारीक, नाजुक है। और जीवन के शास्त्र को सम्हल कर एक-एक कदम होशपूर्वक कोई चले तो ही अपने को बचा पाएगा जख्मी होने से। अन्यथा तुम दूसरे को सुधारने में अपने को बिगाड़ लोगे, दूसरे को बनाने में खुद मिट जाओगे।
ऐसा मैंने सुना है कि इजिप्त में एक बादशाह पागल हो गया। और पागल हो गया शतरंज खेलते-खेलते। इतना शतरंज के खेल का उसे शौक था कि रात भर चालें चलता रहे नींद में। सुबह होते ही से सब काम छोड़ कर वह शतरंज की चाल पर बैठ जाए; दिन देखे न रात। धीरे-धीरे वह पगला गया; धीरे-धीरे बस शतरंज ही रह गई, और सब भूल गया। चिकित्सक बुलाए गए। चिकित्सकों ने कहा, यह हमारे हाथ की बात नहीं। अगर कोई शतरंज का बड़ा खिलाड़ी इसके साथ शतरंज खेले तो शायद कुछ हल हो जाए।
तो राज्य के सबसे बड़े खिलाड़ी को बुलाया गया। वह राजी हो गया सम्राट को सुधारने को। एक साल तक, कहते हैं, वह उसके साथ खेल खेलता रहा। और वह सही साबित हुआ, सम्राट ठीक हो गया एक साल के बाद, लेकिन खिलाड़ी पागल हो गया। पागल के साथ शतरंज खेलना! एक तो शतरंज वैसे ही पागल करने वाला खेल, फिर पागल के साथ खेलना! तो सम्राट तो कहते हैं ठीक हो गया साल भर में, लेकिन खिलाड़ी पागल हो गया।
चिकित्सकों से खिलाड़ी के घर के लोगों ने पूछा, अब क्या करें? उन्होंने कहा कि और कोई बड़ा खिलाड़ी खोजो जो राजी हो इसको सुधारने को। मगर तब कोई खिलाड़ी राजी न हुआ, क्योंकि बात फैल गई कि जो सुधारेगा वह पागल हो जाएगा। बुरे को सुधारने में सम्हल कर कदम उठाना। पहले अपनी तरफ गौर से देख लेना, कहीं बुरे को सुधारने में तुम बुरे तो न हो जाओगे! गलत को सुधारने में गलत तो न हो जाओगे! वेश्या को सुधारने सोच-समझ कर जाना; शराबी को सुधारने होश से जाना।
एक युवक अभी कुछ दिन पहले मेरे पास आया और उसने कहा कि मैं बड़ी झंझट में पड़ गया हूं। लंदन में कोई संस्था होगी जो शराबियों को सुधारने का काम करती है। पश्चिम में ऐसी बहुत सी संस्थाएं हैं। बड़ी अंतर्राष्ट्रीय एक संस्था हैः अल्कोहलिक अनॉनिमस। वैसी कोई संस्था में वह शराबियों को सुधारने के काम में लगा होगा। शराबी सुधरे कि नहीं, वह शराब पीना सीख गया। अब वह कहता है, मुझे कौन सुधारे?
जरा सम्हल कर सुधारने की बात में उतरना। क्योंकि वह महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी है। बुद्धों ने वह काम किया है; वह तुमसे न हो सकेगा। तुम उस कुल्हाड़ी को हाथ में लेकर चलाओगे, तुम अपने ही हाथ-पैर काट लोगे। बुद्ध वह काम कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें करना नहीं पड़ता, उनकी मौजूदगी सुधारती है। वही तो कला है। उनका होना सुधारता है; उनका अस्तित्व, उनका पूरा समग्र चैतन्य। उनकी मौजूदगी से क्रांति घटित होती है।
बुद्ध पुरुष के पास होने से तुम बदलने शुरू हो जाते हो। वह तुम्हें बदलना नहीं चाहता। उसकी कोई चाह नहीं रही; इसीलिए तो वह बुद्ध पुरुष है। वह तुम्हें बदलने की भी चाह नहीं रखता। वह तुम्हें तुम्हारी समग्रता में स्वीकार करता है; तुम जैसे हो भले हो। इसी स्वीकार से तुम्हारी क्रांति शुरू होती है। वह तुम्हें प्रेम करता है; तुम जैसे हो, बेशर्त, वैसे ही प्रेम करता है। वह यह नहीं कहता कि तुम ऐसे हो जाओ तब मैं तुम्हें प्रेम करूंगा। वह कहता है, तुम जैसे हो परिपूर्ण हो; मैं तुम्हें प्रेम करता

हूं। उसका हृदय तुम्हें अंगीकार कर लेता है। वह तुम्हें आलिंगन कर लेता है; एक गहन तल पर तुम्हें स्वीकार कर लेता है। उसी स्वीकृति से तुम्हारे जीवन में क्रांति घटनी शुरू होती है। उसका प्रेम तुम्हें बदलता है। उसकी करुणा तुम्हें बदलती है। उसकी चेतना तुम्हें बदलती है। वह तुम्हें नहीं बदलता; वह तुम्हें बदलना भी नहीं चाहता।
और जो तुम्हें बदलना चाहते हैं वे तुम्हें तो बदल ही नहीं पाते, तुम्हें बदलने में खुद बदल जाते हैं। तुम भी दूसरे को बदलने की चेष्टा में मत लगना। उससे बड़ी भूल नहीं है। अगर किसी को भी तुम्हें बदलना हो तो खुद को बदलना। तुम जिस दिन बदल जाओगे, तुम एक जले हुए दीये होओगे। तुम्हारी रोशनी तुम्हारे चारों तरफ पड़ेगी। जो भी वहां से निकलेगा उस रोशनी का दान ले लेगा। जो भी वहां से निकलेगा वह रोशनी उसे जीवन का दर्शन करा देगी। बदलाहट निष्क्रिय चेतना से घटती है, सक्रिय चेतना से नहीं।
जो भी किसी को बदलना चाहता है वह अहंकारी है। यह बदलने की तरकीब भी अहंकार का खेल है। बदलने के नाम पर वह दूसरे की गर्दन को पकड़ना चाहता है। बदलने के नाम पर वह दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहता है जैसा कोई वस्तुओं के साथ करता है। वह कहता है, तुम्हारा यह पैर काटेंगे, तुम्हारी यह गर्दन अलग करेंगे; तुमको सुंदर बनाएंगे, तुम्हें शुभ बनाएंगे। वह तुम्हें विध्वंस करना चाहता है। सुधारक की वृत्ति में बड़ी हिंसा छिपी है। और तुम्हारे तथाकथित महात्मा सभी हिंसक हैं। वे तुम्हें बदलना चाहते हैं।
वस्तुतः बुद्ध पुरुष तुम्हें स्वीकार करता है। बदलने को क्या है? तुम भले हो, तुम सर्वांग भले हो जैसे हो। तुम्हारे होने में रत्ती भर भी कुछ बुद्ध पुरुष को शिकायत नहीं है। और तब क्रांति घटित होती है। तब भभक कर क्रांति घटित होती है। उस परिपूर्ण स्वीकार में ही तुम्हारा जीवन एक नयी यात्रा पर निकल जाता है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ उन्नीसवां प्रवचन

राजनीति को उतारो सिंहासन से

Chapter 75

On Punishment (4)

When people are hungry,
It is because their rulers eat too much tax-grain. Therefore the unruliness of hungry people
Is due to the interference of their rulers.
That is why they are unruly.
The people are not afraid of death,
Because they are anxious to make a living. That is why they are not afraid of death.
It is those who interfere not with their living,
That are wise in exalting life.

अध्याय 75

दंड (4)

जब लोग भूखे हैं,
तो उसका कारण है कि शासक बहुत करान्न खा जाते हैं। इसलिए भूखे लोगों का उपद्रव,
उनके शासकों के हस्तक्षेप से पैदा होता है।
इसी कारण वे उपद्रवी हैं।
लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं,
क्योंकि वे जीविका कमाने के लिए चिंतित हैं।
यही कारण है कि वे मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।
जो उनकी जीविका में हस्तक्षेप नहीं करते,
वे ही जीवन को ऊंचा उठाने का विवेक रखते हैं।

शासन का आधिक्य मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ी कठिनाई है। शासन जितना
कम हो उतना श्रेष्ठ। शासन बिल्कुल न हो तो वह श्रेष्ठता की पराकाष्ठा है। शासन जितना ज्यादा हो उतना निकृष्ट, और जब शासन ही शासन रह जाए तो वह शासन का अंतिम पतन है।
शासन के आधिक्य का अर्थ हैः स्वतंत्रता की कमी। और शासन के आधिक्य का
यह भी अर्थ है कि व्यक्ति को व्यक्ति होने की अब कोई सुविधा नहीं है; जैसे व्यक्ति एक कलपुर्जा हो गया। वह इस बड़े समाज के यंत्र में उसका उपयोग है; उपयोग लिया जाएगा; लेकिन व्यक्ति की आत्मा को कोई स्वीकृति नहीं है। शासन का आधिक्य आत्मा का हनन है।
मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। अमरीका में एक कुत्तों की अखिल विश्व प्रदर्शनी थी। उसमें रूस से भी कुत्ते आए थे। एक अमरीकी कुत्ते ने पूछा रूसी कुत्तों से कि सब ठीक तो है? तुम्हारे देश में सब सुख-सुविधा तो है? उसने कहा, सब सुख-सुविधा है। ऐसा भोजन कभी हमें मिलता नहीं था जैसा मिलता है। रहने के लिए जगह जैसी हमें उपलब्ध है, कभी भी रूसी कुत्तों को पहले न थी। अब हम सड़कों पर भटकते नहीं और भोजन के लिए दर-दर ठोकर नहीं खाते। अब हम बड़े प्रसन्न हैं!
लेकिन अमरीकी कुत्ते ने कहा कि तुम इतने प्रसन्न हो, लेकिन चेहरे पर प्रसन्नता मालूम नहीं होती।

उसने कहा, उसका एक कारण है; किसी को न बताओ तो कहूं। और सब तो ठीक है, भौंकने की आजादी नहीं है। और उस कुत्ते ने कहा कि भौंकने की आजादी का वही अर्थ होता है जो मनुष्य की भाषा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का। भौंक नहीं सकते। भोजन पूरा है; लेकिन व्यक्तित्व की कोई सुविधा नहीं है।
शासन जब अधिक हो जाएगा तो व्यक्तित्व को पोंछ देता है; क्योंकि व्यक्तित्व खतरा है शासन में। शासन चाहता है समाज, व्यक्ति नहीं; समूह, व्यक्ति नहीं; क्योंकि व्यक्ति के होने में ही खतरा है। क्योंकि व्यक्ति स्वतंत्रता की मांग है। व्यक्तित्व की आखिरी गरिमा परिपूर्ण मुक्ति है; और शासन का अर्थ ही बंधन है।
दूसरी बात, जैसे ही शासन बढ़ता है वैसे ही शासन अपशोषित करता है समाज को। जैसे-जैसे शासन का बोझ बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे शासन के नीचे दबे लोग दुर्बल होते जाते हैं। शासन का पेट ही नहीं भर पाता; लोगों का पेट कैसे भरे?
इसे हम चिकित्साशास्त्र से आसानी से समझ सकते हैं।
चिकित्सक कहते हैं कि मनुष्य की हड्डियों पर थोड़ी सी चर्बी चाहिए; वह चर्बी हड्डियों की रक्षा करती है। वह चर्बी हड्डियों के आस-पास एक ऊष्मा, एक गरमी बनाए रखती है। वह चर्बी जरूरत-गैर-जरूरत के समय, संकट के समय आत्मरक्षा का उपाय है। अगर बहुत दिन भूखा रहना पड़े तो वह चर्बी तुम्हारा भोजन बन जाएगी।
हर आदमी करीब-करीब तीन महीने भूखा रह सकता है, इतनी चर्बी उसके शरीर में है। इतना होना जरूरी है, अन्यथा आदमी मुश्किल में होगा। लेकिन फिर ऐसी घटना घटती है कि कुछ लोग रुग्ण हो जाते हैं और चर्बी बढ़ती चली जाती है। फिर चर्बी शरीर को बचाती नहीं, मारती है; फिर हड्डियों की सुरक्षा नहीं रहती, हड्डियों को तोड़ने वाला बोझ हो जाती है। फिर हृदय को उतनी चर्बी को खींचना मुश्किल हो जाता है, तो हृदय पर आक्रमण होने शुरू हो जाते हैं। फिर चर्बी इतनी बढ़ जाती है कि मस्तिष्क तक ऊर्जा नहीं पहुंचती, तो भीतर मस्तिष्क जड़ होने लगता है। ऐसी घटना घट सकती है कि चर्बी इतनी हो जाए कि आदमी हिल-डुल न सके; उसकी गति समाप्त हो जाए; उसका जीवन मृत्यु जैसा हो जाए।
शासन थोड़ा सा जरूरी है। अगर शासन बढ़ता जाए तो वह ऐसा ही है जैसे किसी आदमी की चर्बी बढ़ती जाए। चर्बी एक मात्रा में बचाती है; एक मात्रा के पार जाने पर मारती है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि इस पृथ्वी पर मनुष्य के आगमन के पूर्व बड़े विराट जानवर थे। हाथी उनके समक्ष कुछ भी नहीं। हाथी से दस-दस गुने बड़े जानवर थे। उनके अस्थिपंजर उपलब्ध हैं। हाथी से दस गुना बड़ा जानवर, बड़ा शक्तिशाली जानवर था, लेकिन वह बिल्कुल तिरोहित हो गया। उसका एकमात्र वंशज बची है छिपकली। छिपकली इतनी छोटी सी! वे छिपकलियां थीं हाथियों से दस गुनी बड़ी। अचानक वे कैसे विदा हो गईं दुनिया से? वैज्ञानिकों ने बहुत खोज करके पाया कि उनकी चर्बी इतनी बढ़ गई कि उस चर्बी को ढोना मुश्किल हो गया। चर्बी के बोझ के नीचे दब कर ही वे प्राणी मर गए।
शासन सुरक्षा है। शासन जरूरी है। जहां एक से ज्यादा लोग हैं, वहां कुछ नियम चाहिए, व्यवस्था चाहिए; अन्यथा बड़ी अराजकता होगी, जीना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए शासन की जरूरत है। लेकिन बस एक सीमा तक। वहीं तक शासन की जरूरत है जहां तक एक व्यक्ति को दूसरे की जीवन-स्वतंत्रता में बाधा डालने से रोकने की जरूरत है। बस! कोई व्यक्ति किसी के जीवन में बाधा न डाले, इतने दूर तक शासन का काम है।
लेकिन यह तो निषेधात्मक काम हुआ कि तुम लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा करो। लेकिन जब ताकत हाथ में आती है शासन के तो लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा तो अलग रही, लोगों को परतंत्र बनाने की व्यवस्था शुरू हो जाती है। तुम्हारे जीवन को सुखी बनाने का उपाय तो दूर रहा, शासन-तंत्र जिनके हाथ में होता है, वे अदम्य वासना से भर जाते हैं--और शक्ति, और शक्ति! तो जिनकी वे रक्षा करने को नियत किए गए थे उनके अपशोषक हो जाते हैं। शासन छाती पर बैठ जाता है; प्रजा सिकुड़ती चली जाती है। धीरे-धीरे प्रजा का सब मांस खो जाता है, अस्थियां शेष रह जाती हैं--अस्थिपंजर!

ऐसे क्षणों में बगावत होनी स्वाभाविक है। लोग उपद्रवी हो जाएंगे। अगर लोग उपद्रवी हैं तो उसका अर्थ इतना ही है कि शासक लोगों के ऊपर अधिक भार की तरह हो गए हैं। कर बढ़ते जाते हैं, टैक्सेशन बढ़ता जाता है; नियम बढ़ते जाते हैं; स्वतंत्रता कम होती जाती है। तुम्हारे चारों तरफ लोहे की दीवाल बन जाती है नियमों की, हिलना-डुलना मुश्किल हो जाता है। और इस सबको भी लोग बरदाश्त कर लें; पेट भी भूखा होने लगता है। जीवन नीचे गिरने लगता है; जरूरत की चीजें भी उपलब्ध नहीं होतीं। और शासन विराट भवन खड़े किए चला जाता है; और शासन विराट वैभव का दिखावा करने लगता है। लोग मरते हैं, और शासन लोगों की मृत्यु से भी जीने की कोशिश करता है। ऐसी घड़ी में बगावत स्वाभाविक है, लोग उपद्रवी हो जाएंगे। और कोई न कोई उपद्रवी लोगों को भड़काने के लिए तैयार मिल जाएगा।
लोग स्वयं उपद्रवी नहीं हैं; लोग बड़े शांत हैं। लोगों की क्षमता अपार है। लोग कितना बरदाश्त करते हैं, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लोगों ने सदियों तक बरदाश्त किया है; सब तरह की तकलीफ झेल ली है। क्योंकि उपद्रव में उतरने का अर्थ होता है, अपने को भी उपद्रव में डालना। लोग चाहते नहीं कि उपद्रव हो। लेकिन एक ऐसी घड़ी आ जाती है संकट की जब कि जीवन में कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, जीना ही मुश्किल हो जाता है। उस अंतिम घड़ी में, मरता क्या न करता; उस घड़ी में ही लोग उपद्रव के लिए राजी होते हैं। और तब भी लोग राजी होते हैं, ऐसा कहना कठिन है; तब जो लोग शासन में हैं, उनके विरोधी लोग जो शासन में नहीं हैं, वे लोगों को राजी करते हैं।
लोगों ने अब तक कोई क्रांति नहीं की। लोगों का संतोष अपार है। लोग सब तरह की कठिनाइयां बरदाश्त करके चुपचाप जी लेना चाहते हैं। क्योंकि जीने में इतना रस है कि कौन उसे उपद्रव में डाले। लेकिन जब जीना मुश्किल ही हो जाए, रोटी भी उपलब्ध न हो, पानी भी उपलब्ध न हो; तब समझो कि लोग भूख, पीड़ा में सूख गए होते हैं, सूखा ईंधन हो गए होते हैं, तब कोई भी उपद्रवी, जो शासन-सत्ता में होना चाहता है और नहीं हो पाया, वह जरा सी चिनगारी लगा दे, जरा सी चकमक चला दे बगावत की, कि फिर दावानल उठ जाता है। भूख आग बन जाती है। सभी क्रांतियां भूख से पैदा होती हैं। लोग जब मरने की हालत में हो जाते हैं, तभी लड़ने को तैयार होते हैं। अन्यथा लोग तो धरती जैसे हैं--सब सहते हैं। लाओत्से कह रहा है कि जब लोग उपद्रवी हों तब तुम उन्हें दंड देने की बजाय इस बात का विचार करना कि शासन अत्यधिक शोषण कर रहा है। अन्यथा लोग कभी उपद्रवी न होते। लोगों का उपद्रव केवल लक्षण है कि शासन ने ज्यादा चूस लिया है लोगों को। इतना चूस लिया है कि अब वे मरने को भी तैयार हैं, मारने को भी तैयार हैं। उनकी भूख ने उनके जीवन का बोध, जीवन का रस, संतोष की क्षमता, सब छीन लिया है। अब भूख इतनी विकराल है कि अब उन्हें यह भी नहीं लगता कि बचने में कोई सार है। मिटाने का एक रस पैदा हो जाता है भूख के कारण।
ऐसा ही समझो कि जैसे किसी आदमी को बुखार आ गया हो, शरीर ज्वर से भरा है, तापमान बढ़ता जाता है। ज्वर लक्षण है, बीमारी नहीं; सिम्पटम है। बीमारी तो भीतर है कहीं। ज्वर तो मित्र है; वह तो खबर दे रहा है कि अब सब तरफ से ध्यान हटा लो; भीतर कुछ रोग खड़ा हुआ है, उसे ठीक करो; उस रोग को प्रियारिटी देनी जरूरी है, प्राथमिकता देनी जरूरी है। अब तुम हजार काम कर रहे हो, ज्वर कहता है कि उसने लाल झंडी बता दी, अब तुम रुक जाओ! अब कुछ भी करना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना भीतर की बीमारी से जूझना जरूरी है। पहले चिकित्सा करवा लो, विश्राम कर लो। ज्वर का अर्थ यह नहीं है कि शरीर गरम हो गया है तो उसको ठंडा करने से कुछ हल हो जाएगा। ज्वर का इतना ही अर्थ है कि भीतर कोई रोग है। उस रोग के कारण सारा शरीर उत्तप्त है, और जल रहा है और आग में पड़ा है। उस रोग को ठीक कर लो, ज्वर अपने से शमित हो जाएगा।
लाओत्से कहता है कि जब लोग उपद्रव से भरे हैं तो यह लक्षण है ज्वरग्रस्त दशा का, समाज बीमार है। तुम इन बीमारों को दंड देते हो? तुम उपद्रवियों को जेलों में डालते हो?
तो तुम ज्वर का इलाज कर रहे हो, बीमारी का नहीं। इससे तो दावानल और बढ़ेगा। इससे तो आग और फैलेगी। इससे तो जो भूखे अभी उपद्रव में सम्मिलित

नहीं थे, वे भी सम्मिलित हो जाएंगे। जब लोग उपद्रव करें तो शासन को समझना चाहिए कि शासन ने सीमा से बाहर शोषण कर लिया और शासन लोगों के ऊपर छाती पर पत्थर की तरह बैठ गया है। अब वह गर्दन में बंधा हुआ पत्थर है, जिससे लोग घबड़ा रहे हैं, डूब रहे हैं। अब शासन बचाता नहीं है, डुबा रहा है। इसलिए अगर चिकित्सा करनी हो तो शासन को अपने ढंग और व्यवस्था की करनी चाहिए। उपद्रवियों को दंड देना व्यर्थ है।
चोर वहीं पैदा होते हैं जहां कुछ लोग बहुत संपत्ति इकट्ठी कर लेते हैं, अन्यथा चोर पैदा नहीं होते। चोर का केवल इतना ही अर्थ है कि कुछ लोगों के पास जरूरत से ज्यादा हो गया है और कुछ लोगों के पास जरूरतें भी पूरी करने योग्य नहीं बचा है। तब कलह खड़ी हो जाती है।
शासन धीरे-धीरे अपने जाल फैलाता जाता है। वह आक्टोपस की भांति है, जिसके आठ पंजे हैं, चारों तरफ फैलाता जाता है। शुरू में तो रक्षक की तरह जन्म होता है शासन का; जल्दी ही वह भक्षक हो जाता है। क्योंकि जिसके हाथ में तुमने ताकत दे दी, ताकत देते ही उस व्यक्तित्व का गुणधर्म बदल जाता है। शक्ति के मिलते ही व्यक्ति दुरुपयोग शुरू कर देता है।
शक्ति का सदुपयोग करना बहुत कठिन है। शक्ति का सदुपयोग करना तो संत
ही जानते हैं। लेकिन संत तो राजी न होंगे शासक बनने को। शक्ति की आकांक्षा संतों में नहीं होती, लेकिन शक्ति का उपयोग करना वे जानते हैं। और जिनमें शक्ति की आकांक्षा होती है, जो शक्तिवान होना चाहेंगे, वे शक्ति का उपयोग करना नहीं जानते, वे दुरुपयोग करना जानते हैं।
शक्ति की आकांक्षा दुर्बल व्यक्ति में होती है, सबल व्यक्ति में नहीं। तुम्हारे पास जो नहीं है, उसी की तो तुम आकांक्षा करते हो। इसलिए जो व्यक्ति भी राज्य में पहुंच जाता है, सत्ताधारी हो जाता है, सत्ताधारी होते ही विक्षिप्त उसकी दशा हो जाती है। फिर वह भूल ही जाता है--क्यों आया, क्यों भेजा गया, क्या कारण थे? बात तो उसने की थी कि सेवा करने को जा रहा है सत्ता में; सत्ता में पहुंचते ही वह चाहता है, सब उसकी सेवा करें। और सत्ता में पहुंचते ही वह जो व्यक्ति तुमने भेजा था, वही नहीं रह जाता; वह दूसरा ही व्यक्ति है जो पहुंचता है। भेजते तुम किसी को हो, पहुंचता कोई और है। क्योंकि मध्य में क्रांति घटित हो जाती है।
सत्ता को झेलने की क्षमता, और सत्ता मिल जाने पर अपरिवर्तित रहने की क्षमता तो संत में हो सकती है। अब यह एक उलझन है। संत शक्ति चाहता नहीं; मिल जाए तो भी राजी न होगा। क्योंकि वह अपने में काफी पर्याप्त है, वह किसी और का शासक नहीं होना चाहता। वह तो सिर्फ आत्म-शासन चाहता है, अपना शासन अपने ऊपर चाहता है। उसे दूसरों पर शासन करने में कोई रस नहीं है। वह तो रस उन्हीं को होता है जो अपने पर शासन करने में समर्थ नहीं हैं। जिनके जीवन में मालकियत नहीं है, वही किसी और के स्वामी होना चाहते हैं।
तुम संन्यासियों को मैंने स्वामी कहा है, सिर्फ इसी कारण कि तुम अपने स्वामी होना चाहना। तुम दूसरे के स्वामी होना चाहो तो तुम राजनीतिज्ञ हो; तुम अपने स्वामी होना चाहो तो तुम धार्मिक हो।
मालकियत अपनी संत चाहता है, दूसरे पर कोई मालकियत नहीं चाहता। तो संत
को राजी करना मुश्किल कि वह सत्ता में चला जाए; सत्ता दो तो भी लेगा न। और संत ही योग्य था सत्ता में होने के, क्योंकि उससे दुरुपयोग नहीं हो सकता था। और जो पागल लोग सत्ता में पहुंचने के लिए दौड़ कर रहे हैं, वे सत्ता के दीवाने हैं। जब तक सत्ता नहीं मिली है, तब तक तुम उनकी आंखों में विनम्रता पाओगे, वे तुम्हारे पैर दबाएंगे। जब उनके हाथ में सत्ता होगी तब तुम्हारी गर्दन दबाएंगे। तब उनकी आंखों की विनम्रता खो जाएगी। तब तुम उनमें महा अहंकार की अग्नि को प्रज्वलित देखोगे। तब उनके पैर जमीन पर न पड़ेंगे। तभी उनका असली रूप प्रकट होगा। क्या किया जाए?
भारत ने एक इसके लिए उपाय खोजा था। वह उपाय यह था कि संत तो सत्ता में जाने को राजी नहीं है और असंत सत्ता में जाने को अति आतुर है, तो एक ही उपाय है कि जो भी सत्ता में हो वह संतों के चरणों में बैठे। और तो कोई उपाय नहीं है। इसलिए संत तो चले जाते थे जंगलों में, लेकिन सम्राट उनकी तलाश करते

थे--सत्संग के लिए। क्योंकि उनसे शायद झलक, बस उनसे ही केवल झलक की आशा थी कि सत्ता का दुरुपयोग न हो पाए।
संत सत्ता से ऊपर होना चाहिए। जब संत सत्ता से ऊपर हो तो सत्ता तो उसके हाथ में नहीं है, लेकिन सत्ता उसके निर्देश से चलने लगेगी, उसके उपदेश से चलने लगेगी। संत को राजा बनाने के लिए तो राजी नहीं किया जा सकता, लेकिन राजा संत के चरणों में बैठ कर शिष्य तो बन सकता है। उसके लिए राजा को राजी किया जाना चाहिए। तो एक तालमेल बन सकता है। तो ही यह संभव है कि शासन भक्षक न बन पाए। अन्यथा शासन भक्षक हो जाएगा।
लाओत्से बिल्कुल ठीक कह रहा है। लाओत्से कह रहा है, लोग भूखे हैं, इसलिए उपद्रवी हैं; और तुम उन्हें दंड देते हो! जब लोग उपद्रव करें तब तुम्हें दंड तो अपने को देना चाहिए, क्योंकि लोग इसकी खबर दे रहे हैं कि तुमने अब बहुत चूस लिया; अब तुम सीमा से आगे बढ़ गए; लोगों की क्षमता धैर्य की समाप्त हो गई। और लोगों की धैर्य की क्षमता बड़ी गहन है; तुम उसे भी समाप्त कर दिए! क्योंकि लोग सदियों से सहते हैं। अगर हम लोगों की सहिष्णुता का विचार करें तो वह अनंत मालूम पड़ती है। क्रांति, बगावत के लिए तो वे कभी-कभी राजी होते हैं। और वह भी लोग राजी नहीं होते, वह भी दूसरी सत्ता के लोलुप उनको भड़काते हैं, तभी राजी होते हैं।
लाओत्से के वचन हम समझने की कोशिश करें।
"जब लोग भूखे हैं, तो उसका कारण है कि शासक बहुत करान्न खा जाते हैं।" लोगों का कर के माध्यम से इतना ज्यादा शोषण हो जाता है कि उनके पास कुछ बचता ही नहीं जीने के लिए।
"इसलिए भूखे लोगों का उपद्रव उनके शासकों के हस्तक्षेप से पैदा होता है।"
इसलिए मूल कारण कहीं शासन में है, लोगों में नहीं है। लोग तो केवल उस मूल कारण के कारण प्रतिक्रिया करते हैं। अगर तुमने यह समझा कि लोगों में ही कारण है तो तुम उन्हीं को दबाने में लग जाओगे, उन्हीं को मारने में लग जाओगे। तब भूल हो गई। तब तुमने लक्षण को बीमारी समझ लिया। बीमारी कहीं गहरे में थी; तुम लक्षण को मिटाने में लग गए! जो अपराधी न थे, उन्हें तुमने जेलों में डाल दिया। जो अपराधी न थे, उनकी तुमने गर्दनें काट दीं। और जो वस्तुतः अपराधी थे, वे मालूम पड़ते हैं कि जैसे समाज की सुरक्षा कर रहे हैं।
लोगों के जीवन में बहुत हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। राज्य ऐसा होना चाहिए कि लोगों को पता ही न चले कि वह कहां है। राज्य ऐसा होना चाहिए कि उसकी प्रतीति न हो। क्योंकि प्रतीति का मतलब है कि राज्य हर जगह तुम्हारे रास्ते में खड़ा हो जाता है। तुम उठते हो तो राज्य का विचार करना पड़ता है, बैठते हो तो विचार करना पड़ता है, तुम हिलते हो तो विचार करना पड़ता है। राज्य ऐसा होना चाहिए कि तुम्हें तुम्हारी स्वतंत्रता पर छोड़ दे। राज्य तो तभी बीच में आना चाहिए जब तुम किसी और की स्वतंत्रता पर आघात करो; इसके पहले नहीं।
ठीक है, राज्य की व्यवस्था के लिए थोड़े से कर की जरूरत है कि राज्य की व्यवस्था चलती रहे। लेकिन जो काम साधारणतः एक आदमी कर सकता है, वही राज्य के हाथ में जाने पर पचास आदमी भी नहीं कर पाते। राज्य के हाथ में जो काम चला जाता है उसका ही पूरा होना मुश्किल हो जाता है। फाइलें सरकती रहती हैं एक टेबल से दूसरी टेबल पर। उनके अंबार हो जाते हैं। उनका कोई अंत ही नहीं मालूम पड़ता कि कोई चीज कभी पूरी होगी। छोटे-छोटे मुकदमे चलते हैं, वर्षों तक चलते रहते हैं। कोई हिसाब नहीं कि मुकदमे का इतना मूल्य ही न था; और वर्षों जितना उस पर व्यय किया जाता है, उसका कोई हिसाब नहीं है। जो काम क्षण भर में निपट सकता था, वह सालों में भी नहीं निपटता मालूम पड़ता।
मेरे एक परिचित हैं; उन पर एक मुकदमा चला। वह मुकदमा उन पर उन्नीस सौ बीस में चला और अभी खतम नहीं हुआ है। उस मुकदमे में चार लोगों पर मुकदमा चला था; तीन मर चुके। जितने न्यायाधीशों ने उस मुकदमे को किया, वे सब मर चुके। जिस राज्य ने मुकदमा चलाया था, ब्रिटिश राज्य ने, वह मर चुका। जितने वकीलों ने मुकदमे में भाग लिया था, वे सब मर चुके। सिर्फ एक आदमी बच रहा

है। वे मुझसे कहते हैं कि जब तक मैं न मर जाऊं, यह खतम न होगा; अब बस मेरे मरने की और बात है, तभी यह खतम होगा।
पचास साल कोई मुकदमा चल रहा है! लेकिन उसका कोई अंत ही नहीं मालूम पड़ता। उसमें से नये जाल निकलते आते हैं, चीजें आगे बढ़ती चली जाती हैं। सरकार जैसे हर चीज को स्थगित करने की बड़ी गहरी तरकीब है। फिर इस पर व्यय होता है, करोड़ों रुपये का व्यय होता है। वह सारा व्यय उन लोगों के पास से आ रहा है जिनके पेट भूखे हैं। यहां लोगों को रोटी नहीं मिलती, वहां व्यर्थ की बातें वर्षों तक चलती रहती हैं जिनका कोई अंत नहीं आता। और सभी सरकारी नौकर कुशल हो जाते हैं टालने में। किसी को कुछ जरूरत ही नहीं मालूम पड़ती कि कोई चीज कभी अंत होनी चाहिए।
मैंने सुना है कि दिल्ली के एक दफ्तर में--बड़ा दफ्तर, बड़ा कारोबार-- किसी की टेबल कभी खाली नहीं, सब की टेबलों पर फाइलों के अंबार लगे हैं। सिर्फ एक आदमी की टेबल सदा खाली, जैसे कि हर काम वह रोज निपटा रहा है। लोग चिंतित हुए कि ऐसा कहीं हुआ है?
आखिर एक आदमी ने उससे पूछा कि तुम किस तरकीब से काम करते हो? तुम्हारी टेबल पर कभी फाइल नहीं रहती! हर चीज तुम रोज निपटा देते हो जो कि बिल्कुल असंभव है; कभी हुआ ही नहीं राज्यों के इतिहास में! तुम्हारी तरकीब क्या है? और तुम कभी थके-मांदे भी नहीं दिखते। कभी ऐसा भी नहीं कि तुम समय के बाद काम करते दिखते हो। तुम ठीक ग्यारह बजे आते हो, ठीक पांच बजे चले जाते हो। और टेबल सदा खाली!
उस आदमी ने कहा, इसकी एक तरकीब है। तरकीब यह है कि कुछ भी आए, मैं बिना फिक्र उस पर लिख देता हूंः सेंड इट टु दयाराम फार फर्दर एक्सप्लेनेशंस-- इसे भेज दो दयाराम के पास और आगे की जानकारी के लिए। अब मैं सोचता हूं, इतना बड़ा दफ्तर है, कोई न कोई दयाराम होगा ही।
उस आदमी ने, जो पूछ रहा था, सिर ठोंक लिया। उसने कहा, दयाराम मैं हूं!
और मेरी टेबल पर चल कर देखो। तो तुम्हारी कृपा है यह कि सारी दुनिया की फाइलें मेरी टेबल पर चली आ रही हैं! और मैं कोई हल ही नहीं कर पा रहा हूं कि उनका हल कैसे हो।
भेज रहे हैं लोग एक से दूसरे के पास। नीचे की पहली पायदान से शुरू होती है फाइल और वह प्रधानमंत्री तक जाती है। वर्षों लगते हैं। फिर प्रधानमंत्री से वापस लौटती है कोई नयी जानकारी के लिए। फिर वर्षों लगते हैं। ऐसे ही सब डोलता रहता है। राज्य काम तो करता ही नहीं, सिर्फ टालता है। जो काम राज्य के हाथ में चला जाता है, वही होना बंद हो जाता है। और फिर भी, मजे की बात है, राजनेता कहे चले जाते हैं समाजवाद के लिए। जो उनके पास है, कुछ भी उनसे होता नहीं; लेकिन वे चाहते हैं कि सारे मुल्क का सारा काम उनके हाथ में हो जाए। वह फिर कब होगा? फिर उसके होने की कोई संभावना ही नहीं है। और इस सब व्यवस्था को जमाए रखने में--यह सब मुफ्त नहीं जमती--इस व्यवस्था को जमाए रखने में सारा राज्य का शोषण चलता है।
मैं एक सरकारी कालेज में कुछ दिन तक प्रोफेसर था। तो मैं चकित हुआ, किसी प्रोफेसर को कोई पढ़ाने की न इच्छा है, न कोई उत्सुकता है। लोग प्रोफेसर्स के कामन रूम में बैठ कर गपशप करते हैं, बातचीत चलाते हैं। लड़के आते हैं, चले जाते हैं, कोई किसी को उत्सुकता नहीं है। मैंने एक मित्र को पूछा कि यह मामला क्या है? तो उसने कहा, यह कोई प्राइवेट कालेज नहीं है, सरकारी कालेज है। प्राइवेट कालेज में पढ़ाई वगैरह होती है। यह सरकारी कालेज है, यहां कोई किसी को जरूरत नहीं है कुछ करने की। यहां तो जो नासमझ हैं वे ही पढ़ाते हैं; जो समझदार हैं वे राजनीति करते हैं। जो समझदार हैं वे वाइस चांसलर का इलेक्शन लड़ने का उपाय कर रहे हैं; और ऊपर कैसे चढ़ जाएं, प्रिंसिपल कैसे हो जाएं, हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट कैसे हो जाएं, उस काम में लगे हैं। नासमझ कुछ छोटे-मोटे नये जो आ जाते हैं, जिनको अभी पता नहीं कि क्या करना, वे क्लासों में पढ़ाते हैं।
सरकारी होते ही कोई भी काम स्थगित हो जाता है। और यह सब भयंकर भार है। लाओत्से कहता है, लोग भूखे हैं, उपद्रव पैदा होगा। लेकिन शासकों के हस्तक्षेप से यह सब हो रहा है। लोगों को उनके जीवन पर छोड़ दो; वे अपने लायक

कमाने में सदा समर्थ थे; वे अपना पेट भर लेने में सदा समर्थ थे। जानवर, पशु- पक्षी समर्थ हैं; आदमी क्यों समर्थ न होगा!
बहुत मजे की घटना घटती रहती है! राज्य कहता रहता है, गरीबी मिटानी है।
और राज्य की वजह से गरीबी पैदा होती जाती है। जो गरीबी पैदा कर रहे हैं वे उसको मिटाने का नारा देकर लोगों को धोखा देते रहते हैं।
राज्य जितना कम होगा उतने ही लोग संपन्न होंगे। क्योंकि लोग अपने पेट भरने लायक काफी पैदा कर लेते हैं; उसके लिए कोई कमी नहीं है। और लोगों की कोई बहुत महत्वाकांक्षाएं नहीं हैं। भरपेट रोटी मिल जाए, तन भर कपड़ा मिल जाए, विश्राम के लिए छप्पर मिल जाए--इतनी लोगों की आकांक्षा है। लोगों की आकांक्षाएं बहुत नहीं हैं। उपद्रव तो उन लोगों के साथ है जिनकी बहुत आकांक्षाएं हैं। वे बहुत थोड़े लोग हैं। और उन्होंने सारे समाज को उपद्रव में डाल दिया है। उनकी थोड़ी सी वासनाओं की पूर्ति के लिए सारा समाज भूखा मरता है, सड़ता है, बीमार रहता है, दीन-दरिद्र रहता है। समय के पहले मर जाते हैं लोग--हस्तक्षेप राज्य में!
गरीब भी प्रसन्न था; अब अमीर भी प्रसन्न नहीं है। गरीब भी कमा लेता था रोटी अपने लायक; सांझ को बैठ कर ढपली बजाता था, गीत गाता था; वर्षा आती थी तो आल्हा-ऊदल पढ़ता था। रात देर तक अलाव जला कर गपशप करता था; गहरी नींद सोता था। गरीब की कोई बहुत आकांक्षा नहीं है। लोगों की कोई बहुत आकांक्षा नहीं है। थोड़े से विक्षिप्त लोग हैं, उनकी बड़ी भयंकर आकांक्षाएं हैं जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं। उनकी न पूरी होने वाली आकांक्षाओं के लिए लोगों की सहज आकांक्षाएं, जो सदा पूरी हो सकती हैं और पूरी होनी चाहिए, वे पूरी नहीं हो पातीं। समाज थोड़े से पागलों के कारण परेशान है।
जरूरत की चीजें पर्याप्त हैं प्रकृति में। भोजन जमीन बहुत दे सकती है--पेट भरने लायक। लेकिन अगर पेट की जगह पागलपन हो तो पागलपन को भरने लायक जमीन अन्न नहीं दे सकती। पानी बहुत है। आकाश बड़ा है; सबके लिए छाया हो सकती है। लेकिन जैसे ही कुछ पागल लोग, एंबीशस जिनको हम कहते हैं, महत्वाकांक्षी, और महत्वाकांक्षा पागलपन का गहरे से गहरा रूप है, जैसे ही महत्वाकांक्षियों के जाल में समाज पड़ जाता है वैसे ही अड़चन खड़ी हो जाती है। उन पागलों की पूर्ति के लिए सब मिट जाते हैं; और फिर भी पागलों की तो कोई पूर्ति होती नहीं; वह भी हो जाती तो भी कोई बात थी।
लाओत्से कहता है, लोगों का उपद्रव पैदा होता है शासन के अति भार से। शासन लोगों की रोटी छीन लेता है; और प्रतिपल हस्तक्षेप करता है। हस्तक्षेप ऐसा है कि आदमी को लगता है कि वह बिल्कुल स्वतंत्र ही नहीं है, कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं है। सब तरफ परतंत्रता खड़ी है। और परतंत्रता के नियम इतने ज्यादा हैं कि अब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो अपने को अपराधी अनुभव न करे। क्योंकि अगर जीना है तो कोई न कोई नियम तोड़ना पड़े, नहीं तो जी नहीं सकते। या तो मर जाओ, आत्मघात कर लो; और या फिर अपराधी हो जाओ। राज्य ने दो ही विकल्प छोड़े हैं। हर आदमी अपराधी अनुभव करता है, क्योंकि उसे लगता है, कहीं थोड़ा सा टैक्स बचा लिया, कहीं कुछ और नियम तोड़ दिया, जो चीज नहीं ले आनी थी वह ले आए, जो नहीं खरीदना था वह खरीद लिया, जो नहीं बेचना था वह बेच दिया। हर पल ऐसा लगता है कि आदमी कहीं न कहीं जुर्म कर रहा है, अपराध कर रहा है। और वह स्थिति बहुत अच्छी नहीं है जहां पूरे समाज के सभी लोग आत्म-अपराध से भर जाएं और जहां उनको प्रतिपल डर लगता हो कि आज पकड़े कि कल पकड़े, कि कब खुल जाएगा यह भंडा, पता नहीं।
और कोई अपराधी नहीं है। नियम अपराधी हैं, अति नियम अपराधी हैं। अब जैसे कि कोई यही नियम बना दे कि तुम बाहर खड़े होकर खुले आकाश में सांस नहीं ले सकते हो। तो फिर तुम लोगे सांस तो अपराधी अनुभव करोगे। और यह घड़ी कभी न कभी आ जाएगी, क्योंकि हवा विषाक्त होती जा रही है। पश्चिम में तो हो ही गई है। पश्चिम में छोटे-छोटे बच्चे स्कूल नकाब पहन कर जा रहे हैं जिसके साथ एक आक्सीजन की थैली जुड़ी होती है। क्योंकि सड़कों पर जो हवा है, कारों के अत्यधिक चलने से वह विषाक्त हो गई है; उसको पीना खतरनाक है।
इस बात की बहुत संभावना है कि ऐसा वक्त आ जाएगा पचास साल के भीतर, जब केवल शासक ही खुले आकाश में हवा ले सकेंगे, क्योंकि उनके पास ही सुविधा

होगी। बाकी लोग तो अपनी-अपनी थैली लटका कर, जैसे अभी टिफिन लटका कर दफ्तर जाते हैं, ऐसे ही अपनी-अपनी आक्सीजन की थैली लटका कर दफ्तर जाने लगेंगे। हवा भी कम पड़ जाएगी, ऐसा मालूम पड़ता है। भोजन कम पड़ गया है, पानी कम पड़ गया है, हवा भी कम पड़ जाएगी। ऐसा लगता है कि जीवन कम पड़ता जाता है। कौन इस जीवन को चूस लिए जा रहा है? यह कहां जीवन की इतनी ऊर्जा विलीन हो जाती है? कौन इसे हड़प जाता है?

कहीं भी तुम जी रहे हो, राज्य का हाथ तुम्हारे खीसे में है। तुम कुछ भी करो, तुम कुछ भी बनाओ, तुम कुछ भी कमाओ, अधिक हिस्सा राज्य के पास चला जाता है। तुम्हें तो उतना ही छोड़ा जाता है जितने में तुम जिंदा रहो और काम करते रहो, मर न जाओ।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक गधा खरीदा था। जिससे खरीदा था, उसने कहा कि इस गधे से मेरा बड़ा लगाव है; मजबूरी में बेच रहा हूं। बड़ा प्यारा जानवर है। इसको इतना भोजन नियम से देना, इतना पानी, इतनी व्यवस्था, तो सदा तुम्हारी सेवा करेगा।
बेचने वाला बड़ा दुख में था, गधे से बिछुड़ रहा था। नसरुद्दीन ने कहा, तू फिक्र मत कर। घर आकर लेकिन उसने हिसाब लगाया कि जितना खाने का उसने बताया है, यह तो बहुत ज्यादा है। पहले मैं कोशिश करूं कि इससे आधे में काम चल जाएगा कि नहीं। तो उसने गधे को आधा भोजन देना शुरू किया। काम चल गया; गधा यद्यपि थोड़ा दुबला हो गया। पर नसरुद्दीन ने कहा कि अब जरा ठीक ही लगते हो, थोड़े सुडौल हो गए। फिर उसने कहा जब आधे से चल जाता है तो और आधे से क्यों न चल जाएगा! तो और आधा कर दिया। उतने में भी काम चल गया, लेकिन गधा थोड़ा दुबला होता गया। लेकिन दुबलापन तो धीरे-धीरे आया, नसरुद्दीन को दिखाई भी न पड़ा। जब, उसने कहा, इतने से ही काम चलने लगा तो बिल्कुल बिना भोजन के भी चल सकता है; थोड़ा दुबला ही होगा, और क्या होगा! उसने भोजन ही बंद कर दिया। जिस दिन उसने भोजन बंद किया, उसके दूसरे दिन ही गधा मर गया। तो नसरुद्दीन ने कहा, अगर थोड़े दिन और जी जाता तो बिना ही भोजन का अभ्यासी हो जाता। वक्त के पहले मर गया।
वक्त के पहले मर गया! भोजन न देने से मर गया, ऐसा नहीं। इसकी मौत आ गई बेचारे की। थोड़े दिन की बात थी कि अभ्यास पक्का हो जाता, बिना ही भोजन के जी जाता!
जनता मरती चली जाती है; राज्य बहाने खोजता चला जाता है। क्यों ऐसा हो रहा है? कभी कहता है, जनसंख्या बढ़ गई, इसलिए ऐसा हो रहा है। कभी कहता है, युद्ध हो गया, उसमें ज्यादा खर्च हो गया, इसलिए ऐसा हो रहा है। कभी प्रकृति पर थोपता है कि बादल न बरसे; कभी धूप ज्यादा आ गई; कभी बाढ़ आ गई। लेकिन एक बात पर कभी राज्य ध्यान नहीं देता कि तुम भोजन खींचे चले जा रहे हो, और तुम्हारी विराट देह और विराट होती चली जा रही है, और लोग उसके नीचे दबते जा रहे हैं, मरते जा रहे हैं। बादलों पर दोष देते हो, नदियों पर दोष देते हो, संख्या पर दोष देते हो, सब चीजों पर दोष देते हो; सिर्फ एक अपने पर कभी दोष नहीं देते--और जो कि नब्बे प्रतिशत कारण है। राज्य नब्बे प्रतिशत कारण है लोगों की भूख, बीमारी, गरीबी, उपद्रव का। लेकिन राज्य अपने को कैसे दोष दे? कोई अपने को दोष नहीं देता।
लाओत्से कहता है, "... शासकों के हस्तक्षेप से पैदा होता है। इसी कारण
वे उपद्रवी हैं।"
तुम उन्हें दंड मत दो; तुम उनके पेट को भरो। और उनका उपद्रव खो जाएगा। तुम उन्हें जेलखानों में मत भेजो। उन्हें कपड़े और मकान की जरूरत है। उनकी जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो रही हैं, इसलिए वे उपद्रवी हैं।
बड़ी महत्वपूर्ण बात इसके आगे लाओत्से ने कही है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, क्योंकि वे जीविका कमाने के लिए चिंतित हैं।"
इसे समझें। इस पर मैं निरंतर जोर देता रहा हूं।

मनुष्य की सीढ़ी के तीन पायदान हैं। पहला उसका शरीर; दूसरा उसका मन; तीसरी उसकी आत्मा। और इन तीन पायदानों पर जो चढ़ जाता है, वह चौथे को उपलब्ध होता है, जिसे हम परमात्मा कहते हैं।
जिसकी शरीर की जरूरतें पूरी न होंगी, वह दूसरे पायदान पर न चढ़ पाएगा।
जो भूखा है--तो हमने कहा है, भूखे भजन न होईं गोपाला--वह कैसे भजन करेगा? भूखे को भजन चाहिए नहीं, भोजन चाहिए। और जब प्राणों में भूख भरी हो और रोआं-रोआं भूखा हो, तो तुम कैसे भजन करोगे? तब ब्रह्म की याद न आएगी; तब तो भोजन ही तुम्हारे चारों तरफ घूमता रहेगा। और इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। यह स्वाभाविक है। यह बिल्कुल ठीक है। ऐसा होना ही चाहिए। यह प्रकृति का नियम है। इसमें तुम अपने को दोषी मत ठहराना कि मुझे भोजन की याद क्यों आती है जब मैं भजन करने बैठता हूं! साफ है कि तुम भूखे हो। और शरीर पहली जरूरत है। शरीर अगर पूरा न हो तो मन की जरूरतें उठ ही न पाएंगी। भूखे भजन नहीं होता, ऐसा ही नहीं; भूखे चिंतन भी नहीं होता, विचार भी नहीं होता।
अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर बच्चों को ठीक-ठीक भोजन न मिले तो उनका बुद्धि-अंक नीचे रह जाता है, उनका आई.क्यू. नीचे रह जाता है। अगर बच्चों को ठीक-ठीक पौष्टिक आहार न मिले बचपन में तो सदा के लिए उनकी बुद्धि कमजोर रह जाती है; उनकी बुद्धि कभी भी ऊंचाई को उपलब्ध नहीं हो सकती। जीवन-ऊर्जा ही नहीं है इतनी कि उसको इतनी ऊंचाई पर ले जा सके।
शरीर की जरूरतें पूरी जब हो जाती हैं तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं।
वह दूसरा पायदान है। शरीर की जरूरत हैः रोटी, पानी, छप्पर, कपड़ा। बहुत छोटी जरूरतें हैं।
और ध्यान रखना, आवश्यकता और वासना में बड़ा फर्क है। आवश्यकता तो स्वाभाविक है; वासना विक्षिप्त है। भूख लगे तो भोजन करना स्वाभाविक है।
लेकिन भोजन के बाद भी अगर कोई चौबीस घंटे भोजन का चिंतन करता रहे और विचार करता रहे, तो आब्सेशन हो गया, तो वह भोजन के पीछे पागल है। भोजन, पेट भर जाए, तब भी कोई खाता चला जाए, तो वह विक्षिप्त है। उसकी चिकित्सा की जरूरत है। वह भोजन से शरीर को मार डालेगा।
जिस चीज की जरूरत पूरी हो जाए, उस जरूरत के पीछे पागल की तरह लगे रहना रोग है। वासना रोग है, आवश्यकता स्वाभाविक है। आवश्यकता पूरी करना और वासना से बचना! आवश्यकता तो रोटी की है, पानी की है; वासना स्वाद की होती है। आवश्यकता तो कपड़ों की है, शरीर ढंकना चाहिए; सर्दी है, गरमी है, जरूरत है। शरीर तो ढंका जा सकता है, लेकिन वासना का शरीर तुम कभी न ढंक पाओगे। कितने ही बहुमूल्य वस्त्र तुम्हारे पास आ जाएं, वासना कायम रहेगी। वासना दुष्पूर है। आवश्यकता की पूर्ति तो बिल्कुल सरल है।
तो तुम कैसे तय करोगे, क्या है वासना? क्या है आवश्यकता? सोचना। जो चीज पूरी हो सके वह आवश्यकता है; जो कभी पूरी न हो सके वह वासना है। तुम एक मकान में रहते हो, सोचते हो बड़ा महल हो जाए। तो विचारना कि बड़ा महल होने से और बड़े महल की वासना उठेगी या नहीं? अगर उठेगी तो झोपड़े में ही रहना बेहतर है; कुछ अर्थ नहीं है बड़े महल में जाने से भी। क्योंकि और बड़ा महल पकड़ेगा। वासना के पूरे होने का कोई उपाय नहीं है। आवश्यकता तो बड़ी निर्दोष है, बड़ी सरल है। उसमें कोई जटिलता ही नहीं है। आवश्यकता तो भिखारी की भी पूरी हो सकती है; वासना सम्राट की भी पूरी नहीं होती। वासना का पूरा होना स्वभाव ही नहीं है।
शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं। संगीत है, साहित्य है, नृत्य है, काव्य है। जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी होती हैं, मन की जरूरतें आनी शुरू होती हैं।
मन की जरूरतें जब पूरी होने लगती हैं। सुन लिया बहुत संगीत, थोड़ी शांति मिली; लेकिन वह शांति और बड़ी शांति की आकांक्षा जगा गई। थोड़ा सा स्वाद पाया ध्यान का, अब संगीत काफी नहीं मालूम पड़ता। अब तो उस संगीत में जाना है जो शाश्वत है, जो आदमी के द्वारा पैदा नहीं होता, जो परमात्मा से उठता है। अब तो उस संगीत में खो जाना है जिसके स्वर भी शून्य हैं। पढ़ा काव्य को, गीत गाए, गुनगुनाए, पक्षियों के गीत सुने, खिलते फूलों को देखा,

सौंदर्य को पहचाना, स्वर को जाना, लय की समझ आई, छंद का बोध हुआ; लेकिन सब कम पड़ जाएगा!
मन तो केवल झलक देता है, क्योंकि मन तो दर्पण है। उसमें तो प्रतिबिंब बनते हैं। लेकिन प्रतिबिंब अच्छे हैं। अगर तुम प्रतिबिंब में ही उलझ गए तो खतरा है। जिसके प्रतिबिंब बनते हैं मन में, अगर दर्पण में देख कर तुम उसकी यात्रा पर निकल गए, दर्पण की तरफ कर ली पीठ, खोजने लगे उसको जिसकी छाया पड़ती थी दर्पण में। संगीत में सुना था कुछ, वह छाया ध्यान की है। इसलिए संगीत सुनते कभी-कभी एकदम ध्यान लग जाएगा; सुनते-सुनते ही सब शांत हो जाएगा। फूल को देखते-देखते फूल भूल जाएगा; कोई सौंदर्य सब तरफ से घेर लेगा। दर्पण को छोड़ कर तीसरी यात्रा शुरू होती है--तीसरा पायदान--कि मन में जिसकी छाया बनती थी, अब हम उसको खोजने निकलते हैं। मन की आवश्यकताएं जब पूरी हो जाती हैं तो लोग आत्मा की आवश्यकताओं में उठते हैं। तब प्रार्थना, पूजा, अर्चना, ध्यान, उनका रस लगता है। तब संन्यास।
भूखा आदमी गीत भी नहीं समझ सकता। भूखे के कान पर तुम वीणा बजाओ तो उसे सिर्फ स्वरों का उत्पात मालूम पड़ेगा। भूखा आदमी कहेगा, बंद करो! अभी यह क्षण सुनने का नहीं। बंद करो यह वीणा! इससे चोट पड़ती है। इससे हृदय में घाव होता है। भूखा आदमी चांद को भी देखे तो चांद भी उदास मालूम पड़ता है। भूखा आदमी फूल को भी देखे तो फूल को भी खा जाने का मन होता है, फूल के सौंदर्य को अनुभव करने का नहीं।
जैसे शरीर की जरूरत पूरी होती है, मन की जरूरत उठती है। जो लोग शरीर की जरूरत में ही उलझे रह जाते हैं, उसे वासना बना लेते हैं, वे अभागे हैं। उन्होंने पहले पायदान को ही घर बना लिया। वह सीढ़ी थी, उससे आगे जाना था। अभी बहुत रहस्य बाकी थे। वे भवन के बाहर सीढ़ियों पर ही मकान बना कर रह गए। आवश्यक था सीढ़ियों को पार करना, लेकिन सीढ़ियों पर रुक जाना नहीं। जिसने आवश्यकता को वासना बना लिया, वह सीढ़ियों पर रुक जाएगा। वह जिंदगी भर खाने में लगा रहेगा, कपड़े पहनने में लगा रहेगा, मकान बनाने में लगा रहेगा। बहुत लोग उसी तरह सीढ़ियों पर जीवन बिता रहे हैं। उनके दुर्भाग्य की सीमा नहीं है! उन्हें पता ही नहीं कि सीढ़ियां आगे ले जाती हैं; सीढ़ियां कोई घर नहीं हैं।
दूसरी जगह है मन। कुछ लोग मन में खो जाते हैं। फिर उनका यही राग-रंग हो जाता है--संगीत सुनना है, चित्र देखने हैं, फिल्म, उपन्यास। जरूरी था, लेकिन काफी नहीं। उससे भी जागना है; उससे भी ऊपर जाना है। तब कभी ध्यान, संन्यास की महिमा प्रकट होती है। और वह भी सीढ़ी ही है; उसके भी पार जाना है। तब कहीं परमात्मा के जीवन में, परमात्मा के मंदिर में प्रवेश होता है। तब नदी सागर में गिरती है।
लाओत्से कहता है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।"
क्योंकि जो व्यक्ति मृत्यु से भयभीत हो जाएगा, वह तो धार्मिक हो जाएगा। मृत्यु का भय तो तभी पकड़ता है जब जीवन की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं। मृत्यु का भय तो दूसरे चरण पर पकड़ता है। जब शरीर भूखा होता है तब तो जीवन ही तुम्हारे पास नहीं, मृत्यु की तुम क्या चिंता करोगे? अभी पेट भरना है; मृत्यु की कौन फिक्र करता है? अभी तो तुम आजीविका जुटाने में लगे हो, अभी जीवन ही नहीं थिर हो पाया; मरने की बात ही कहां सोचने की सुविधा है? तो लाओत्से कहता है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, क्योंकि वे जीविका कमाने के लिए चिंतित हैं।"
उनका पेट भूखा है; भजन वे नहीं कर सकते। अभी मौत का बोध भी नहीं उठता उन्हें। बुद्ध को उठा मौत का बोध, क्योंकि शरीर की जरूरतें पूरी थीं, मन की जरूरतें पूरी थीं, अब जीवन में ऐसा कुछ भी न था जो जानने को बचा हो। जब जीवन में जानने को कुछ भी नहीं बचता, तभी तो आंख ऊपर उठती है; तभी तो याद आती है कि यह जीवन तो समाप्त हो जाएगा; क्या इसके पार भी कुछ है? क्या मृत्यु के पार भी कोई जीवन है?
बुद्ध के समय में भारत में बड़ी धार्मिक घटना घटी। क्योंकि देश बड़ा संपन्न था; देश बड़ा सुखी था। लोगों के पेट भरे थे। उनके खलिहान खाली न थे। लोग प्रसन्न थे। बुद्ध के पीछे हजारों-लाखों लोग चल पड़े। महावीर के पीछे

हजारों-लाखों लोग चल पड़े। देश निश्चित ही बड़ी अदभुत शांति की अवस्था में रहा होगा। भूख नहीं थी; भजन हो सका। तो बुद्ध के समय में भारत ने शिखर देखा अपनी संपन्नता का।
लाओत्से कहता है, लोग मृत्यु से भयभीत नहीं, क्योंकि जीवन ही उनके पास नहीं। खोने को कुछ पास नहीं, मृत्यु छीनेगी क्या उनसे? वे आजीविका जुटाने में लगे हैं, किसी तरह रोटी-रोजी पूरी हो जाए।
गरीब आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। व्यक्तिगत अपवाद मिल जाएं, वह बात और। लेकिन नियम यही है कि धार्मिक आदमी होने के लिए शरीर की जरूरतें पूरी हो जानी कम से कम जरूरी हैं, अन्यथा आदमी वहीं उलझा रहेगा।
मैं देखता हूं कि अगर मेरे पास धनी व्यक्ति आता है तो उसके सवाल कभी- कभी धार्मिक होते हैं; गरीब आदमी आता है, उसका सवाल धार्मिक होता ही नहीं। मुझसे लोग कहते हैं कि आप गरीबों के लिए क्यों नहीं कुछ करते? यहां आपके आश्रम में गरीब के लिए प्रवेश नहीं मिल पाता।
उसके पीछे कारण हैं। गरीब जब भी मेरे पास पहुंच जाता है तभी मैं अपने
को असहाय पाता हूं; क्योंकि मैं जो कर सकता हूं, वह उसकी मांग नहीं है। जो वह चाहता है, उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। हमारे बीच सेतु निर्मित नहीं हो पाता। एक गरीब आदमी आता है। वह कहता है कि मुझे नौकरी नहीं है। वह ध्यान की बात ही नहीं पूछता। उसको प्रार्थना से कुछ लेना-देना नहीं है। वह मेरा आशीर्वाद चाहता है कि नौकरी मिल जाए।
अब मेरे आशीर्वाद से अगर नौकरी मिलती होती तो मैं एक दफा सभी को आशीर्वाद दे देता। इसको बार-बार करने की क्या जरूरत थी? मेरे आशीर्वाद से कुछ मिल सकता है, लेकिन वह नौकरी नहीं है। वह तुम्हारी मांग नहीं है। तब मैं बड़े पेशोपस में पड़ जाता हूं।
कोई आ जाता है कि बीमार है, आशीर्वाद दे दें!
बीमार को अस्पताल जाना चाहिए। उसको मेरे पास आने का कोई कारण नहीं है; उसको इलाज की जरूरत है। जब भी गरीब आदमी आता है तो मैं पाता हूं कि उसकी कोई चिंतना धार्मिक है ही नहीं। वह मेरे पास आना भी चाहता है तो इसलिए आना चाहता है।
कभी-कभी कोई धनी आदमी आता है तो उसकी चिंतना धार्मिक होती है। वह भी कभी-कभी। तब वह कभी पूछता है कि मन अशांत है, क्या करूं? गरीब आदमी पूछता ही नहीं कि मन अशांत है। मन का अशांत होना एक खास विकास के बाद होता है। अभी पेट अशांत है; अभी मन को अशांत होने का उपाय भी नहीं है। पेट भर जाए तो मन अशांत होगा। मन भर जाए तो आत्मा बेचैन होगी। असल में, जब आत्मा बेचैन हो तभी मेरे पास आने का कोई अर्थ है। आत्मा बेचैन हो तो मेरे आशीर्वाद से कुछ हो सकता है, मेरे निकट होने से कुछ हो सकता है। जो मैं तुम्हें दे सकता हूं, वह धन और है। जो धन तुम मांगते हो, वह मेरे पास नहीं।
तो गरीब आदमी जैसे ही पास आता है, मुझे बड़े पेशोपस में डाल देता है कि करो क्या? उसकी पीड़ा मैं समझता हूं। उसकी कठिनाई मुझे साफ है; उससे भी ज्यादा साफ है जितनी उसे साफ है। क्योंकि मैं जानता हूं कि कितनी दयनीय दशा है कि एक आदमी कह रहा है कि मुझे नौकरी नहीं है! यह कितनी कष्टपूर्ण दशा है कि एक आदमी बीमार है और इलाज का इंतजाम नहीं जुटा पा रहा है! तभी तो वह मेरे पास आया है, नहीं तो वह अस्पताल जाता। उसकी आकांक्षा बड़े क्षुद्र की है। वह सुई मांगने आया है; मैं इधर तलवार देने को तैयार हूं। लेकिन उसका क्या प्रयोजन है? वह कहता है, कपड़े फटे हैं, सुई मिल जाए तो मैं सी लूं। मैं उसे तलवार भी दे दूं तो वह क्या करेगा? कपड़े और फाड़ लेगा। तलवार से तो कोई कपड़े सीए नहीं जाते।
गरीब आदमी के मन में धर्म का विचार ही नहीं उठ पाता। अपवाद छोड़ दें। कभी सौ में एक आदमी गरीब होकर भी धार्मिक हो सकता है; लेकिन उसके लिए बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए। अमीर आदमी बिना बुद्धि के भी धार्मिक हो सकता है; गरीब आदमी को बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए। गरीब आदमी को इतनी बुद्धिमत्ता चाहिए कि जो उसके पास नहीं है, उसकी व्यर्थता को समझने की क्षमता चाहिए। अब बड़ा मुश्किल है! जो तुम्हारे पास है, उसकी व्यर्थता तक नहीं दिखाई पड़ती; तो जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी व्यर्थता तुम्हें कैसे दिखाई

पड़ेगी? जिनके पास महल हैं, उन्हें नहीं दिखाई पड़ता कि महलों में कुछ नहीं है, तो तुम्हारे पास तो महल हैं नहीं, तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा कि महलों में कुछ नहीं है?
इसलिए अपवाद। कभी सौ में एक प्रतिभावान व्यक्ति बिना महलों में गए, सिर्फ विचार से समझ लेता है कि वहां कुछ नहीं है; बिना धन पाए समझ लेता है कि धन में कुछ सार नहीं है; बिना पद पाए समझ लेता है कि पद में कुछ है नहीं। कहते तो बहुत लोग हैं यह। गरीब कहते हैं अक्सर कि क्या रखा धन में! मगर यह संतोष के लिए कहते हैं। यह उनकी समझ नहीं है; यह सांत्वना है। ऐसा वे अपने मन को समझाते हैं कि रखा ही क्या है!
यह वही हालत है जो लोमड़ी ने अंगूर की तरफ छलांग मार कर अनुभव की थी। अंगूर तक नहीं पहुंच सकी, फासला बड़ा था। चारों तरफ उसने देखा कि कोई देख तो नहीं रहा, क्योंकि बेइज्जती का सवाल था। एक खरगोश झांक रहा था। उस खरगोश ने कहा, क्यों मौसी, क्या मामला है? उस लोमड़ी ने कहा, मामला कुछ नहीं; अंगूर खट्टे हैं। छलांग छोटी है, इसे कहने में तो अहंकार को चोट लगती है। अंगूर खट्टे हैं, छलांग की जरूरत ही नहीं; बेकार सोच कर छोड़ दिए हैं।
बहुत से गरीब आदमी कहते मिलेंगेः क्या रखा धन में! क्या रखा महलों में! क्या रखा पदों में! इससे यह मत समझ लेना कि समझ आ गई है। यह तो सिर्फ सांत्वना है। यह तो गरीब को अपने मन को समझाने का उपाय है। जो पाया नहीं जा सकता, उसमें कुछ रखा ही नहीं है, इसलिए तो हम नहीं पा रहे हैं, नहीं तो कभी का पाकर बता देते, यह वह कह रहा है। वह कह रहा है, अंगूर खट्टे हैं!
लेकिन जब कभी गरीब आदमी को वस्तुतः समझ होती है। ऐसा हो जाता है क्योंकि अनंत जन्मों से समझ संगृहीत होती है। किसी जन्म में तुम अमीर भी रहे हो, महलों में भी रहे हो, बड़े सुख जाने हैं। तो उस सबसे संगृहीत समझ के आधार पर कभी कोई गरीब भी धार्मिक हो सकता है। अन्यथा गरीब आदमी की आकांक्षा धार्मिक तक पहुंच नहीं पाती। उसकी छलांग छोटी है। उसकी मांग छोटी चीजों की है।
अब मेरी तकलीफ तुम समझ सकते हो। तकलीफ यह है कि मैं उसे कुछ देना चाहूं, जरूर देना चाहूं; लेकिन जो मैं देना चाहता हूं, वह उसके काम का नहीं है। जो वह मांगने आया है, वह न तो मेरे पास है, न देने योग्य है, न मांगने योग्य है। लेकिन उसकी समझ तो उसे तभी आएगी जब वह गुजर जाए जीवन के अनुभव से।
जब किसी व्यक्ति की आजीविका के सब साधन पूरे हो जाते हैं, जीवन सुस्थिर हो जाता है, तब मृत्यु का ख्याल आता है। आजीविका कमाने की आपाधापी में मृत्यु का ख्याल किसको आता है? आदमी जीता है और मर जाता है--बिना ख्याल किए कि मौत आ रही है। जब तुम शांति से बैठ सकते हो, घड़ी भर दौड़ बंद कर सकते हो, छप्पर के नीचे विश्राम करते हो, तब तुम्हें कभी ख्याल आता है कि मौत करीब आ रही है। मौत के लिए थोड़ी सी सुविधा चाहिए। और जिसको मौत का ख्याल आया, वही व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। इसलिए तो पशु-पक्षी धार्मिक नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हें मौत का कोई पता ही नहीं है। इतना होश ही नहीं है कि मौत का पता आ जाए। जिनको मौत की चोट ख्याल में आ जाती है उनके जीवन में एक नये अध्याय का प्रारंभ होता है।
"क्योंकि वे जीविका के लिए चिंतित हैं, यही कारण है कि वे मृत्यु से भयभीत नहीं हैं। जो उनकी जीविका में हस्तक्षेप नहीं करते, वे ही जीवन को ऊंचा उठाने का विवेक रखते हैं।"
और लाओत्से कह रहा है, राज्य को कुछ ऐसा करना चाहिए कि लोगों की जीविका में हस्तक्षेप न हो। कम से कम उनकी जीविका उन्हें पूरी मिल जाए, क्योंकि तभी उनके जीवन का विवेक ऊंचा उठेगा। उनकी शरीर की जरूरतें पूरी करो, पूरी हो जाने दो, ताकि वे शरीर से ऊपर उठ सकें। उनकी मन की जरूरतें भी पूरी करो, ताकि वे मन से ऊपर उठ सकें; उनके जीवन में भी आत्मबोध आ सके। वह सुबह हो जहां वे आत्मा की जरूरतों का ख्याल, आत्मा की बेचैनी और प्यास, आत्मा की तड़फ और अभीप्सा पैदा हो सके।
वह आदमी अभागा है जिसके जीवन में आत्मा की तड़प न आई। वह मंदिर के बाहर-बाहर भटकता रहा। वह मंदिर के भीतर प्रविष्ट ही न हुआ। धन्यभागी है वह

व्यक्ति जिसके जीवन में आत्मा की तड़पन आ गई; जिसकी आत्मा ने पंख फड़फड़ाए और परमात्मा के आकाश को खोजने की अभीप्सा से भर गई। ऐसे व्यक्ति के जीवन में विवेक अपनी चरम सीमा को छूता है।
और विवेकशील कहीं उपद्रवी हुए हैं? और विवेकशील कभी अपराधी हुए हैं?
और विवेकशीलों ने जीवन को कभी तहस-नहस और नष्ट-भ्रष्ट करने की कोई आकांक्षा की है?
लाओत्से यह कह रहा है कि जब तक लोग शरीर के तल पर ही जीएंगे तब तक उपद्रवी रहेंगे। उनको कभी भी भड़काया जा सकता है। वे सूखा ईंधन हैं, कोई भी उनमें आग लगा सकता है। और आग लग जाए, पकड़ जाए, तो फिर हवाएं ही उसे फैला देती हैं। जब तक लोगों का जीवन-विवेक ऊपर न उठे तो तुम दंड देकर उसे ऊपर न उठा सकोगे; न उनकी हत्याएं करके ऊपर उठा सकोगे। क्योंकि मृत्यु का उन्हें भय ही नहीं है। तुम मारने की धमकी भी दो, कुछ न होगा। तुम छीनने की धमकी दो, कुछ न होगा। तुम उन्हें जेलखानों में डाल दो, कुछ न होगा। क्योंकि असलियत ऐसी है कि जेलखाने उनके घरों से बेहतर हैं और वहां कम से कम भोजन दो बार नियम से मिल जाता है। जेलखाने ज्यादा सुखद हैं। तुम उन्हें जेलखानों में डाल कर उपद्रव से न बचा सकोगे, बल्कि उपद्रव की शिक्षा दोगे। तुम उन्हें मार कर, मिटाने की धमकी देकर कुछ भी रूपांतरण न कर पाओगे। क्योंकि मरने की उन्हें कोई चिंता ही नहीं, उन्हें जीने की चिंता है। मरने की किसको चिंता है? मार डालो; तुम्हारी गोलियां उनकी छातियों को छेद देंगी, लेकिन उन्हें बदल न पाएंगी। तुम्हारे कोड़े उनके शरीरों पर पड़ेंगे, लेकिन वे कोड़े उन्हें जगा न पाएंगे।
उन्हें जगाओ। और उनके जगाने का एक ही उपाय है कि राज्य उनका शोषण न करे; राज्य उन्हें जीने दे अपने ढंग से; बीच-बीच में खड़ा न हो। राज्य धन को इतना न चूस ले कि उनके पास कुछ बचे ही न। जैसे ही उनके पेट भरे होंगे, वे सुविधापूर्ण होंगे, वैसे ही कोई उनसे उपद्रव न करवा सकेगा, वैसे ही कोई उन्हें अपराध की तरफ न ढकेल सकेगा। और उनके जीवन में धीरे-धीरे मृत्यु का दर्शन शुरू होगा। उस दर्शन से वे धार्मिक हो जाएंगे।
धर्मशास्त्रों के अध्ययन से कोई धार्मिक नहीं होता; धार्मिक होने के लिए मृत्यु का शास्त्र पढ़ना जरूरी है। पंडित-पुजारियों की बकवास से कोई धार्मिक नहीं होता; धार्मिक होने के लिए मृत्यु के स्वर सुनने जरूरी हैं। मृत्यु सबसे बड़ा गुरु है। लेकिन आजीविका में उलझे लोग उस स्वर को नहीं सुन पाते, और आजीविका में उलझे लोग सब तरह के अपराध, उपद्रव, बगावतें, विद्रोह, विनाश में संलग्न हो जाते हैं।
लाओत्से का सूत्र स्पष्ट है। लाओत्से कह रहा है, स्वभाव पर छोड़ दो लोगों को। उनको ज्यादा नियोजित मत करो, ज्यादा शासित मत करो। वे शासन के लिए पैदा नहीं हुए हैं, जीने के लिए पैदा हुए हैं। और वे अपने जीवन का मार्ग खोज लेंगे। पशु-पक्षी खोज लेते हैं; आदमी क्यों न खोज लेगा। लेकिन राज्य कहता हैः हम बीच में आएंगे, क्योंकि तुम ठीक से नहीं खोज पाओगे; तुम अपना पेट ठीक से न भर पाओगे, इसलिए हम व्यवस्था देंगे; तुम फैक्ट्री ठीक से न चला पाओगे, इसलिए राष्ट्रीयकरण करेंगे।
और सब राष्ट्रीयकरण राज्यीकरण है; राष्ट्र का नाम व्यर्थ और झूठा है। राष्ट्रीयकरण का अर्थ कुल जमा इतना है कि सब सत्ता राज्य के हाथ में है। व्यापार, व्यवसाय, उद्योग, खेती-बाड़ी, सब राज्य के हाथ में है। और जितना राज्य के हाथ मजबूत होते जाते हैं, उतने लोग सूखते जाते हैं। फिर तुम कहते हो, लोग उपद्रव करते हैं। फिर उनको उपद्रव से रोकने के लिए या तो उन्हें मारो, कारागृहों में डालो। जितना तुम उन्हें मारते, कारागृह में डालते, और लोग दूसरे उपद्रवी होते चले जाते हैं। फिर भी सीधी सी बात नहीं दिखाई पड़ती कि यह बीमारी का लक्षण है। बीमारी राज्य में छिपी है!
राज्य कम से कम हो तो सौभाग्य है, और ज्यादा हो जाए तो दुर्भाग्य है। राज्य की एक मात्रा जरूरी है, बस एक मात्रा। और मात्रा भी होमियोपैथी के डोज जैसी होनी चाहिए, एलोपैथी का डोज नहीं। बस एक जरा सी मात्रा राज्य की जरूरी है।

और उसको मैं फिर से तुम्हें याद दिला दूं। राज्य का काम नकारात्मक है। उसका काम इतना ही है कि वह लोगों को एक-दूसरे के जीवन में बाधा डालने से रोके। बस, इससे ज्यादा नहीं है। जब तक लोग अपना काम कर रहे हैं और अपनी मस्ती में हैं तब तक राज्य को बीच में आने की कोई जरूरत नहीं है। राज्य का काम ऐसा है जैसा चौराहे पर खड़े पुलिसवाले का है। जब तक लोग बाएं चल रहे हैं उसे बीच में आने की जरूरत नहीं है, न कुछ कहने की जरूरत है। हां, जब कोई आदमी रास्ते के बीच में चलने लगे और बाधा बन जाए तब उसे आने की जरूरत है। जब तक लोग अपने मार्ग से चल रहे हैं, अपने ढंग से काम कर रहे हैं, ठीक उन्हें अपना काम करने दो। चौराहे पर खड़े पुलिसवाले से ज्यादा राज्य की कोई जरूरत नहीं है।
और राज्य के अधिकारियों को इतने सम्मान और इतनी पूजा की भी कोई जरूरत नहीं है। वे सेवक हैं, मालिक नहीं। कोई तुम चौराहे पर खड़े पुलिसवाले के चरण नहीं छूते; लेकिन दिल्ली में बैठे बड़े पुलिसवाले, राष्ट्रपति हों, प्रधानमंत्री हों, उनके चरण छूने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, और न ही उनके गुण-गौरव की कोई आवश्यकता है। लेकिन वे छा जाते हैं सारे समाज पर। सारे अखबार भरे हैं उनसे। सारा रेडियो, टेलीविजन भरा है उनसे। सब तरफ उनका गुणगान चल रहा है।
इस गुणगान का बड़ा खतरनाक परिणाम होता है। इसका परिणाम यह होता है कि
जो सत्ता में नहीं हैं, वे भी पागल हो जाते हैं सत्ता में पहुंचने को, सत्ता की दौड़ पैदा होती है। तो सभी महत्वाकांक्षियों को सत्ता चाहिए। तब इतना भयंकर संघर्ष मच जाता है, और वह संघर्ष उपद्रव का कारण होता है। शासकों को बहुत सम्मान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे एक काम कर रहे हैं, उनकी एक उपयोगिता है; बात खतम हो गई। उनकी उपयोगिता कोई ऐसी नहीं है कि उन्हें सिर-आंखों पर लिया जाए। भंगी रास्ता साफ कर रहा है, ठीक है, धन्यवाद! पुलिसवाला चौराहे पर खड़ा अपना काम कर रहा है, धन्यवाद! प्रधानमंत्री दिल्ली में अपना काम कर रहा है, धन्यवाद! बात खतम होनी चाहिए। इससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं।
जिस दिन हम राजनीतिज्ञों को आदर देना कम कर देंगे उस दिन दूसरे लोगों में भी राजनीति में उतरने का पागलपन कम हो जाएगा।
राजनीति से बड़ी घटनाएं घट रही हैं दुनिया में, उनको आदर दो। कोई गीत
गा रहा है, किसी ने एक नया गीत बनाया है, किसी ने बांसुरी पर नयी धुन उठाई है; किसी ने नृत्य में एक नया रंग जोड़ दिया है; किसी ने फूलों के चित्र बनाए हैं, ऐसे कि परमात्मा भी ईर्ष्या करे। इनको प्रसन्नता दो, इनको प्रशंसा दो, इनको आदर दो, क्योंकि ये जीवन में कुछ जोड़ रहे हैं; जीवन को समृद्ध बना रहे हैं; जीवन को ज्यादा उत्सव में परिणत कर रहे हैं।
राजनेता कर क्या रहा है? जीवन को कौन सा दान है उसका?
ज्यादा से ज्यादा उसकी स्थिति इतनी है जैसे द्वार पर बैठा पहरेदार है। ठीक है, काम ठीक करे तो धन्यवाद! काम न ठीक करे तो कान पकड़ कर उसको अलग कर देना है।
कवि हैं, चित्रकार हैं, नृत्यकार हैं, मूर्तिकार हैं, संगीतज्ञ हैं,
जो जीवन पर बड़ी अहर्निश वर्षा कर रहे हैं; जो मन की जरूरतें पूरी कर रहे हैं; उनको धन्यवाद दो। किसान है, मजदूर है; उसको धन्यवाद दो, क्योंकि वह शरीर की जरूरतें पूरी कर रहा है। फिर कोई संत है जो आत्मा की प्यास को वर्षा दे रहा है, जो मेघ बन कर बरस रहा है; उसको धन्यवाद दो।
राजनीतिज्ञ का काम एक कोने में पर्याप्त है। सारे जीवन पर छा जाए आकाश की तरह, यह विक्षिप्त बात है। लेकिन राजनीति छा गई है, इस बुरी तरह छा गई है कि उसने कुछ और छोड़ा ही नहीं है। यह सूचक है इस बात का कि लोग साफ नहीं हैं कि बीमारी कहां है, और इलाज जारी है। तो इलाज और खतरनाक बन जाता है। बीमारी बहुत गहन में राजनीति के समादर में है।
राजनीति को उतारो सिंहासन से! इसलिए नहीं कि किसी और को सिंहासन पर बिठालना है। राजनीतिज्ञ भी चिल्लाते हैं, उतरो सिंहासन से, जनता आती है! मगर वे इसलिए चिल्लाते हैं कि तुम उतरो, हम आ रहे हैं। राजनीतिज्ञों को नहीं उतारना है सिंहासन से, राजनीति को उतार दो सिंहासन से। राजनीति सेवा

से ज्यादा नहीं है। जो अच्छा करे उसे प्रमाणपत्र दे देना धन्यवाद का। लेकिन इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। लेकिन चौबीस घंटे और सब जीवन के आकाश पर उसको छा जाने दिया है। उससे भयानक परिणाम हुए हैं। तो जो रक्षक था वह भक्षक हो गया है। जो सेवक था वह शासक हो गया है। और जनता दबी जाती है और लोग सिकुड़ते जाते हैं। उनकी आत्मा खो गई है, उनका मन खो गया है। उनका शरीर भी पूरी तरह बचा नहीं, वह भी खोता जा रहा है।
लाओत्से का विश्लेषण, लाओत्से का निदान अचूक है। और जब तक यह निदान लागू न होगा, संसार व्यथित रहेगा। अगर कोई क्रांति करने जैसी है तो वह लाओत्से की क्रांति है। वह राजनीति को उसके पद से हटा देने की क्रांति है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ बीसवां प्रवचन

धर्म का सूर्य अब पश्चिम में उगेगा

पहला प्रश्नः आपने कहा कि विकास की तीन क्रमिक सीढ़ियां हैं--शरीर, मन, आत्मा। पश्चिमी सभ्यता ने शरीर और मन के तल पर काफी विकास किया है। लेकिन परिणाम में विषाद, अर्थहीनता और निराशा हाथ आई है। कृपया समझाएं कि सहज परिणाम की तरह पश्चिम की मनीषा ने तीसरे चरण की ओर विकास क्यों नहीं किया है?

पहली बात, प्रकृति का सारा विकास अचेतन है। प्रकृति अस्तित्व को मनुष्य तक ले आई है चुपचाप, बिना किसी साधना के। लेकिन मनुष्य का विकास अब अचेतन नहीं होगा। मनुष्य उस जगह खड़ा है जहां से चेतन विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। अब तो जो साधना करेगा, जो श्रम करेगा, वही ऊपर उठेगा। मनुष्य अचेतन विकास और चेतन विकास के बीच की कड़ी है। प्रकृति तो अचेतन है; वह तुम्हें मनुष्य होने तक ले आई। तुमने खुद क्या किया है मनुष्य होने तक? तुम्हारा अर्जन नहीं है मनुष्यता की उपलब्धि। करोड़ों- करोड़ों वर्षों में प्रकृति की बड़ी धीमी गति से, ट्रायल और इरर--करना, भूलना, सुधारना--ऐसे प्रकृति तुम्हें इस किनारे तक ले आई है जिसका नाम मनुष्यता है। लेकिन इससे आगे प्रकृति तुम्हें न ले जा सकेगी। उसने तुम्हें मनुष्यता के तट पर छोड़ दिया; अब आगे तो तुम्हें सचेतन रूप से विकास करना होगा। अन्यथा तुम मनुष्य होकर ही बार-बार मरते रहोगे। इसी को हिंदुओं ने आवागमन की पुनरुक्ति का सिद्धांत कहा है। तुम बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाओगे जैसे तुम मनुष्यत्व को उपलब्ध हुए हो। बुद्धत्व के लिए तो तुम्हें सचेत रूप से चेष्टा करनी होगी।
तो मनुष्य के बाद की जो सीढ़ियां हैं वे ये तीन सीढ़ियां हैं।
पहली बात है, शरीर के तल पर तुम्हें स्वस्थ होना पड़ेगा; शरीर के तल पर तुम्हें आजीविका अर्जित करनी होगी। प्रकृति पशु-पक्षियों को आजीविका के लिए मजबूर नहीं करती; आजीविका उपलब्ध है। पौधों को पानी चाहिए, पानी उपलब्ध है; भोजन चाहिए, भोजन उपलब्ध है। लेकिन मनुष्य को तो शरीर के तल पर भी श्रम करना होगा तो ही शरीर बचेगा; अन्यथा शरीर भी खो जाएगा। और यह सौभाग्य है; यह दुर्भाग्य नहीं है। क्योंकि जो मुफ्त मिलता है वह मिलता ही कहां? जो चेष्टा से मिलता है वही तुम्हारी संपदा है। जिसे तुम श्रम से अर्जित करते हो केवल वही तुम्हारा है। शेष सब मिला था मुफ्त; मुफ्त ही छीन लिया जाएगा। जिसे तुमने मेहनत से पाया है, जिसके लिए तुम्हारे प्राणों को कष्ट झेलना पड़ा है, जिसके लिए तुमने कुछ ऊर्जा व्यय की है, वह तुमसे न छीना जा सकेगा।
शरीर के तल से ही यात्रा शुरू हो जाती है सचेतन। तुम्हें शरीर को सम्हालने के लिए व्यवस्था करनी पड़ेगी, अन्यथा तुम जी भी न सकोगे। जब शरीर परिपूर्ण स्वस्थ होगा, भरा-पूरा होगा, तब जरूरी नहीं है कि मन की आवश्यकताएं पैदा हो जाएं। यह भी हो सकता है कि तुम शरीर के ही जीवन में परिभ्रमण करने लगो। तब बड़ी उदासी आएगी। क्योंकि शरीर की दौड़ पूरी हो गई और आगे कोई यात्रा का द्वार न खुला। उदासी का एक ही अर्थ है, वह तभी आती है जब एक पड़ाव आ जाता है और आगे का रास्ता नहीं सूझता। उदास सभी नहीं होते, केवल सौभाग्यशाली होते हैं। दुखी होना एक बात है, दुखी तो सभी होते हैं; उदास सिर्फ सौभाग्यशाली होते हैं।
उदासी बड़ा गुण है। उदासी का अर्थ यह है कि यहां तक यात्रा थी, पा लिया; अब? वह जो अब है, जब वह सामने खड़ा हो जाता है और कोई द्वार नहीं दिखता, कोई मार्ग नहीं दिखता, तब उदासी घेरती है। उदासी का अर्थ है, अब वही-वही दोहरा- दोहरा कर करना पड़ रहा है जो कर चुके। अब उस करने में न तो कोई रस मालूम पड़ता है, न उस करने से कोई आनंद की झलक मिलती है। वह रस उबाने वाला हो गया अब। संभोग कर लिया, भोजन कर लिया, विश्राम कर लिया, भवन बना लिए, सब व्यवस्था कर

ली सुविधा की। अब? शरीर का काम पूरा हो गया; अब तुम्हारी प्राण-ऊर्जा नयी यात्रा पर जाना चाहती है और द्वार नहीं मिलता। इसका नाम उदासी है।
अगर तुम इस उदासी को तोड़ने के लिए सतत रूप से जागरूक न हुए, और तुमने कोई प्रयास न किया, तो द्वार अपने आप न खुलेगा। मनुष्य के जीवन में अपने आप अब कुछ भी न होगा; अर्जित करना होगा। मनुष्य की यही गरिमा है कि वह भिखारी नहीं है, वह दान नहीं मांगता; वह केवल अपने श्रम का पुरस्कार चाहता है। उससे ज्यादा का मांगना कोई सार्थक भी नहीं है। और मिल भी जाए तो मिलेगा नहीं; मिल भी जाए तो बोझ होगा, क्योंकि तुम्हारी तैयारी न होगी उसे भोगने की।
अगर तुमने श्रम किया तो तुम मन की यात्रा पर निकलोगे। काव्य है, संगीत है, सौंदर्य है; ये बारीक स्वाद हैं। भोजन है, संभोग है; ये बहुत स्थूल स्वाद हैं। इसका अर्थ है कि तुम्हारी चेतना बहुत परिष्कृत नहीं है। जो आदमी संगीत में रस ले पाता है; जो आदमी काव्य की गहनताओं में उतर पाता है; जो सुबह उगते सूरज के सौंदर्य में वैसा ही रस पाता है जैसा कि संभोग में भी नहीं पाया; उससे भी बड़े रस का अनुभव करता है रात आकाश के तारों में, नदी की कलकल में, गिरते झरने के संगीत में; भोजन से भी जो स्वाद नहीं पाया उससे भी गहन स्वाद अनुभव करता है; इस आदमी की मन की यात्रा शुरू हो गई।
लेकिन मन की यात्रा भी जल्दी ही पड़ाव पर पहुंच जाएगी। फिर उदासी पकड़ लेगी। और पहली उदासी से दूसरी उदासी ज्यादा सघन होगी। क्योंकि शरीर से मन की यात्रा पर जाना बहुत कठिन नहीं है। शरीर और मन बड़े करीब हैं; इतने करीब हैं कि जरा सी समझ हो कि तुम शरीर से और मन की यात्रा पर निकल जाओगे। वे पड़ोसी हैं। दोनों के मकान में बहुत अंतर नहीं है, जरा सा अंतर है। वस्तुतः अंतर नहीं है; जैसे यह कमरा है और पास का कमरा है, बीच में द्वार है। शरीर से तुम मन में जा सकते हो, क्योंकि शरीर की भाषा और मन की भाषा में स्थूल और सूक्ष्म का भेद है, लेकिन कोई मौलिक भेद नहीं है। संगीत में भी वही अनुभव होता है जो संभोग में--बड़े सूक्ष्म तल पर। सौंदर्य में भी वही स्वाद आता है जो भोजन में--बहुत सूक्ष्म तल पर। लेकिन भाषा एक ही है।
जो जानते हैं, वे कहते हैं, शरीर और मन दो नहीं है; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसा समझो कि शरीर है मन का प्रकट रूप और मन है शरीर का अप्रकट रूप। ऐसा समझो कि तुमने बर्फ के एक टुकड़े को पानी में तैरा दिया है। तो नौ हिस्सा पानी में छिप जाता है बर्फ का टुकड़ा और एक हिस्सा ऊपर दिखाई पड़ता रहता है। जो ऊपर दिखाई पड़ता है वह तुम्हारा शरीर है, जो भीतर डूबा हुआ है वह तुम्हारा मन है। इसलिए मन और शरीर दो हैं, ऐसा कहना उचित नहीं। एक ही हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। मन थोड़े गहरे में है, शरीर थोड़े ऊपर है। इसलिए शरीर से मन में जाने में बहुत कठिनाई नहीं है। वहां भी उदासी पकड़ती है। लेकिन वह उदासी बहुत बड़ी नहीं है; थोड़े ही श्रम से टूट जाएगी। लेकिन जब शरीर और आत्मा के बीच तुम खड़े हो जाओगे तब महा उदासी तुम्हें पकड़ लेगी। वह उदासी केवल बुद्धों को पकड़ती है। उसे तुम दुख मत मान लेना, अभिशाप मत समझ लेना। वह तो वरदान है। क्योंकि उसी हताशा से तो तुम जाग सकोगे, खोद सकोगे। उसी प्यास में तो तुम तड़पोगे और आखिरी सरोवर के किनारे आ सकोगे। प्यास ही न हो तो कोई सरोवर तक कैसे जाएगा?
इसलिए प्यास को तुम दुर्भाग्य मत समझो। हां, प्यास अगर धीमी-धीमी लगी
हो कि टाली जा सके तो दुर्भाग्य समझना। प्यास ऐसी अदम्य रूप से पकड़ ले कि रोआं-रोआं जले, एक क्षण चैन न मिले, सागर जब तक न पहुंच जाओगे तब तक विश्राम न कर सकोगे, ऐसे आविष्ट हो जाओ; प्यास न रहे, बल्कि तुम ही प्यास हो जाओ, रोआं-रोआं पुकारे; तभी तुम पार कर पाओगे वह दूरी जो मन और आत्मा के बीच है। वह दूरी बहुत बड़ी है।
शरीर और मन के बीच दूरी है ही नहीं; है तो अत्यल्प है। मन और आत्मा के बीच दूरी अत्यंत है; अत्यंत भी कहना ठीक नहीं, अनंत है। क्योंकि मन क्षणभंगुर, आत्मा शाश्वत; मन पानी का बुलबुला, अभी है, अभी फूट जाए; आत्मा, न जिसका कोई आदि, न कोई अंत, जो सदा है। भाषा ही और। दोनों के बीच कोई भी तालमेल नहीं, कोई भी सेतु नहीं। बहुत थोड़े लोग ही पार कर पाते हैं।

थाईलैंड में एक मंदिर है। और उस मंदिर में एक बड़ी प्राचीन कथा है, और बड़ी मधुर है। उस मंदिर में एक विजय-स्तंभ है जिसमें सौ सीढ़ियां हैं, टावर है। उन सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर जाकर चारों तरफ बड़ा सुंदर दृश्य है। कथा यह है कि उस विजय-स्तंभ की पहली सीढ़ी पर एक अदृश्य पशु का वास है; पहली सीढ़ी पर एक अदृश्य पशु का वास है। वह पशु सांप जैसा है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता, अदृश्य है। और जब भी कोई व्यक्ति चढ़ता है सीढ़ियां तो जितनी व्यक्ति की चेतना की ऊंचाई होती है--समझो दस सीढ़ियों तक--तो वह सांप दस सीढ़ियों तक उसके साथ जाता है। वहीं तक जा सकता है जहां तक व्यक्ति की चेतना की ऊंचाई है। बीस सीढ़ियों तक, तो बीस सीढ़ियों तक जाता है। उस सांप को अभिशाप है कि जब तक वह तीन बार आखिरी सीढ़ी तक नहीं पहुंच जाएगा तब तक मुक्त न हो सकेगा। और अब तक अनंत-अनंत काल में केवल एक बार वह आखिरी सीढ़ी तक पहुंच पाया है।
हजारों यात्री आते हैं रोज। मंदिर बड़ा तीर्थ का स्थान है। हजारों यात्री चढ़ते हैं उन सीढ़ियों पर। कभी एक सीढ़ी, कभी दो सीढ़ी, कभी तीन सीढ़ी; आधे तक भी कभी-कभी पहुंच पाया है। आखिरी सीढ़ी पर, कहते हैं, केवल एक बार जब कोई बुद्ध पुरुष आया होगा। वह प्रतीक्षा उसे करनी है। और अब वह थक गया है, हताश हो गया है। क्योंकि अनंत काल में केवल एक बार बुद्धत्व के साथ आखिरी सीढ़ी तक पहुंचा है। और तीन बार पहुंचना है। अब तो उसने आशा भी खो दी होगी। तीन बुद्धों को पाना मुश्किल है अनंत काल में!
निश्चित ही, मन और आत्मा के बीच फासला बहुत बड़ा होगा। कितने करोड़-करोड़ लोग पैदा होते हैं, लेकिन कभी कोई एक उस परम दशा को उपलब्ध होता है, जिसको उपलब्ध किए बिना कोई भी चैन से न रह सकेगा; जिसको उपलब्ध करना प्रत्येक की नियति है; जिसको तुम कितना ही टालो, तुम टाल न पाओगे; जिसे तुम्हें पाना ही होगा; जिससे बचने की कोई सुविधा नहीं है। फासला बहुत है। और बड़े श्रम की जरूरत है; अभीप्सा की जरूरत है, आकांक्षा की नहीं। अभीप्सा का अर्थ होता है, तुम सब दांव पर लगा दो; तुम कुछ भी न बचाओ। तो ही शायद कदम उठ पाए, और तुम वह छलांग ले सको जो तुम्हें मन से आत्मा में उतार दे।
स्वभावतः, पश्चिम में बड़ी निराशा है, अर्थहीनता है, विषाद है। लेकिन इससे पूरब के लोग समझते हैं कि हम बड़े सौभाग्यशाली! इस भूल में मत पड़ना। इस भूल में कभी भी मत पड़ना, क्योंकि पूरब में धर्मगुरु, साधु-संन्यासी लोगों को यही समझाते हैं कि तुम सौभाग्यशाली हो; पश्चिम में देखो कितना विषाद है!
तुम अभागे हो। तुम्हारी शरीर की जरूरतें पूरी नहीं हुईं। इसलिए तुम में से बहुतों को तो पहला विषाद भी नहीं पकड़ा है जो कि शरीर से मन में जाने में पकड़ता है। तुम्हारी मन की जरूरतें भी पूरी नहीं हुईं। इसलिए तुम्हें दूसरा विषाद भी नहीं पकड़ा है। तुम यह मत सोचना कि तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। अगर तुम सौभाग्यशाली हो तो पशुओं के संबंध में क्या कहोगे? वे तो बहुत सौभाग्यशाली हैं, तुमसे भी ज्यादा। और अगर पशुओं के भी गुरु होंगे, शंकराचार्य होंगे, तो वे उनको समझा रहे होंगे कि तुम आदमियों से बेहतर अवस्था में हो कि देखो, कितने परेशान, चिंता से मरे जाते हैं, शांति नहीं; तुम कम से कम शांत तो हो।
फिर पौधों की क्या कहो? पौधों के शंकराचार्य उनको समझा रहे होंगे कि तुम तो पशुओं से भी बेहतर हो। इनको तो फिर भी थोड़ा रोटी-रोजी के लिए यहां- वहां जाना पड़ता है, थोड़ा श्रम करना पड़ता है; कभी मिलती भी है, कभी नहीं भी मिलती; तुम तो अपनी जड़ जमाए खड़े हो। वर्षा में वर्षा हो जाती है; जमीन से भोजन मिल जाता है; तुम्हारा तो कहना ही क्या!
फिर पत्थर हैं, चट्टानें हैं, पहाड़ हैं। उनके शंकराचार्य उनको समझा रहे होंगे कि तुम्हारा सौभाग्य तो अनंत है। कभी-कभी वर्षा नहीं भी होती तो पौधे तक बेचैन हो जाते हैं। कभी-कभी जमीन अपना सत्व खो देती है तो पौधों को भोजन नहीं मिलता। लेकिन चट्टान! तू तो अहोभागी है! तुझे फिक्र ही नहीं; वर्षा हो तो ठीक, वर्षा न हो तो ठीक; जमीन में सत्व बचे तो ठीक, जमीन का सत्व खो जाए तो ठीक। तू तो परम समाधि में लीन है।
स्मरण रखना, मूर्च्छा समाधि नहीं है। और जो होश से भरता है वही विषाद
से भरता है। मूर्च्छित आदमी में कोई विषाद होता है? इसलिए तुम पाओगे,

मनुष्य-जाति में जो सबसे छिछले लोग हैं, उनको तुम ज्यादा प्रसन्न पाओगे-- सड़कों पर घूमते, होटलों में बैठे, क्लबघरों में, रोटरी, लायंस--जो सबसे छिछले लोग हैं, तुम उन्हें वहां बड़ा प्रसन्न पाओगे। जो आदमी जितना ज्यादा विचार में पड़ेगा, जितनी जिसकी चेतना में सघनता आएगी, उतनी ही उसकी मुस्कुराहट खो जाएगी। क्योंकि तब उसे दिखाई पड़ेगाः जो मैं जी रहा हूं, यह भी कोई जीवन है? रोटरी क्लब का सदस्य हो जाना कोई भाग्य है? नियति है? अच्छे होटल में भोजन कर लेने से क्या मिलेगा? थोड़ी देर का राग-रंग है, सपना है; खो जाएगा।
जिस आदमी में विचार का जन्म होगा वह उदास हो जाएगा, वह बड़े विषाद से भर जाएगा। ये सब खिलौने मालूम पड़ेंगे, जिन्हें तुमने जीवन समझा। और मौत द्वार पर खड़ी है। जो किसी भी क्षण पकड़ लेगी और खिलौने पड़े रह जाएंगे। न तुम्हारे धन की, न तुम्हारी संपत्ति की, न तुम्हारे पद की, न तुम्हारी प्रतिष्ठा की मृत्यु कोई चिंता करेगी; क्षण भर का भी मौका न देगी। तुम कितना ही कहो कि मैं पार्लियामेंट का मेंबर हूं, जरा रुक जाओ; वह न रुकेगी। सब पड़ा रह जाएगा--तुम्हारी पार्लियामेंट, तुम्हारे खिलौने, तुम्हारे पद, प्रतिष्ठाएं, सब कूड़ा-कर्कट में पड़ी रह जाएंगी। जैसे ही मौत द्वार पर दस्तक देगी, तत्क्षण तैयार हो जाना पड़ेगा जाने को। बबूला फूट गया।
जिस आदमी में विचार होगा, जिसमें थोड़ा विमर्श होगा, वह चिंतित तो हो
ही जाएगा। यहां तो सिर्फ मूढ़ ही निश्चिंत मालूम पड़ते हैं। या तो बुद्ध निश्चिंत होते हैं या मूढ़ निश्चिंत होते हैं। और तुम निश्चिंत होओ तो यह मत सोच लेना कि बुद्ध हो गए। क्योंकि बुद्ध तो कभी करोड़ों-करोड़ों वर्षों में कोई एकाध होता है; करोड़ों में से संभावना एक की बुद्ध होने की है, शेष की तो मूढ़ होने की है।
पूरब बहुत मूढ़ है। पूरब शरीर के तल से भी नीचे जी रहा है--बड़े परिमाण में। थोड़े से पूरब के लोग मन के तल पर जी रहे हैं। और बहुत थोड़े से लोग आत्मा में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे हैं।
लेकिन पश्चिम में बड़ा प्रवाह आया है। शरीर की जरूरतें पूरी हो गई हैं, भूख मिट गई है, भोजन पर्याप्त हो गया है। इसलिए शरीर से जो जीवन उलझा था वह मुक्त हो गया है। शरीर में जो ऊर्जा लग जाती थी--भोजन कमाने में, रोटी बनाने में, कपड़ा पाने में--वह समाप्त हो गई है। तो जो ऊर्जा मुक्त हो गई है शरीर के जीवन से, वह मन में काम आ रही है। इसलिए लोग ज्यादा संगीत में डूबे हैं, ज्यादा साहित्य में डूबे हैं। कोई मूर्ति बना रहा है, कोई पेंटिंग कर रहा है। पश्चिम में ऐसा आदमी पाना मुश्किल है जिसकी कोई हॉबी न हो।
पूरब में ऐसा आदमी पाना कभी-कभी होता है जिसकी कोई हॉबी हो। जीवन ही काफी है, हॉबी की फुरसत कहां है? आठ-दस घंटे दफ्तर और दुकान में काम करके कोई लौटता है, बारह घंटे खेत में श्रम करके कोई लौटता है; अब पेंटिंग करने की ऊर्जा कहां है? अब गीत बनाए कौन? प्राण तो पसीने में बह गए, अब गीत गाए कौन? भीतर सब रिक्त हो गया। किसी तरह पड़ जाता है, सो जाता है। सुबह उठ कर फिर वही दौड़ शुरू हो जाती है। कौन सुने आकाश का संगीत? किसको समय है कि आंखें खोले और आकाश के तारों को देखे? इतनी फुरसत किसे है? कौन देखे फूलों को? फूल को देखने के लिए सुविधा चाहिए, थोड़ी चैन चाहिए। फूल को पहचानने को तो काफी विराम की दशा चाहिए।
तो पश्चिम में लोग मन के तल पर हैं, और इसलिए महा विषाद से घिर गए हैं। क्योंकि अब आगे कुछ नहीं दिखाई पड़ता। जान लिया संगीत, गा लिए गीत, बना ली मूर्तियां, चित्र बना लिए, घर सौंदर्य से भर गया। अब? एक चट्टान खड़ी हो गई है सामने। अब जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। अर्थ तो आता है लक्ष्य से; जब लक्ष्य खो जाता है तो अर्थ खो जाता है।
गरीब आदमी का लक्ष्य है रोटी। तो अभी जीवन में अर्थ है, क्योंकि रोटी पानी है। असल में, अर्थ को सोचने की सुविधा नहीं है। फिर अमीर आदमी का लक्ष्य है मन के वैभव, मन का सुख-सौष्ठव, मन का संगीत। लोग सोचते हैं कि जब सब होगा तो सुनेंगे शांति से लेट कर संगीत, सुनेंगे पक्षियों को। लेकिन वह भी चुक जाता है, क्योंकि वह भी सब प्रकृति का ही है, वह भी ऐंद्रिक है। जिस दिन वह भी चुक जाता है उस दिन महा विषाद घेर लेता हैः अब किसलिए जीएं? शरीर

भरा-पूरा, मन भी भरा-पूरा, कुछ पाने को नहीं दिखाई पड़ता; कहीं जाने को नहीं दिखाई पड़ता; जो पाना था, पा लिया; जो मिल सकता था बाजार में, खरीद लिया; जिसकी सुविधा थी समाज में, वह भी पा लिया; संस्कृति जो दे सकती थी श्रेष्ठतम--मोझर्ट और वेजनर और बीथोवन, सब सुन लिए; और कालिदास और भवभूति, सब पढ़ लिए। अब? अब क्या? जब यह अब खड़ा हो जाता है मन के बाद, तब लगता है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं।
इसलिए पश्चिम के बड़े से बड़े विचारक--सार्त्र, जेस्पर्स, हाइडेगर--वे
सब विषाद से भरे हैं। वे उसी दशा में हैं जिस दशा में बुद्ध ने महल छोड़ा था। जिस रात बुद्ध महल को छोड़ कर गए थे, महा विषाद से भरे थे। वह विषाद उनके प्राणों को काट रहा था। एक आरे की तरह उनका जीवन कट रहा था दुख से; सब था और कोई सार न था। सब व्यर्थ था; जिंदगी सिर्फ एक ऊब थी। जिस रात बुद्ध ने छोड़ा था घर वह अमावस की रात थी, और भीतर भी अमावस की निराशा घिरी थी, अमावस जैसा अंधेरा घिरा था। सार्त्र, हाइडेगर, मार्शल उसी अवस्था में हैं पश्चिम में। कठिनाई उनकी यह है कि पश्चिम की पूरी जीवन-व्यवस्था आत्मा को अस्वीकार करती रही है। और जिसे तुम अस्वीकार करते हो वह द्वार बिल्कुल बंद हो जाता है।
पूरब की जीवन-व्यवस्था आत्मा को सदा स्वीकार करती रही है। जिस दिन तुम थक जाओगे मन से, सब नहीं समाप्त हो गया; अभी एक चीज और बाकी है। पूरब की हवा में एक चीज सदा बाकी है। असल में, तुम उसी के लिए अब तक शरीर की तैयारी कर रहे थे, मन की तैयारी कर रहे थे; अब तो मौका आ गया जब अब तुम उसकी खोज में लग सकते हो जो वास्तविक खोज है।
पश्चिम मानता है शरीर और मन को; उसके आगे उसकी मान्यता नहीं है, बस। इसलिए पश्चिम में बड़ा उपद्रव है। जब मन चुक जाता है, मन के भोग चुक जाते हैं, तब पश्चिम में एक उदासी घेर लेती है और सिर्फ आत्महत्या उपाय दिखती है। आत्म-साधना नहीं, आत्महत्या उपाय दिखती है। यहीं पूरब और पश्चिम का फर्क है। पूरब की धारा जब सब चुक जाए तब एक नया लक्ष्य देती है--आत्मा, जो पश्चिम में नहीं है।
इसलिए सार्त्र घूम-घूम कर उदासी पर लौट आता है। बुद्ध जब उदास हुए तो गोल उदास चक्कर में नहीं घूमने लगे; जब उदास हुए पूरे तो आत्मा की खोज पर निकले। क्योंकि हवा पूरब की बड़े अनादि काल से आत्मा का गुणगान कर रही है। और हर आदमी प्रतीक्षा कर रहा है कि कब वह मौका आएगा जब मेरी छोटी जरूरतें पूरी हो जाएंगी, तब मैं उस बड़ी जरूरत की तरफ यात्रा पर निकल जाऊंगा। जाने- अनजाने, गहरे अचेतन में वह आत्मा की खोज छिपी है; तुम्हें पता हो, न पता हो। तुम शरीर में भोग रहे हो, भोगते रहो; लेकिन तुम्हारे भीतर अचेतन कोने में एक आवाज खड़ी है कि कब उठोगे इससे? कब जागोगे इससे? यहां बेहोश से बेहोश आदमी के भीतर भी एक स्वर गूंज रहा है, वह स्वर पूरब की संस्कृति का स्वर है। वही तो पूरब का भाग्य है।
पूरब दरिद्र है, दीन है, वह दुर्भाग्य है। जब भी पूरब में कभी पश्चिम जैसी सुविधा होगी--जब थी, जैसे बुद्ध के समय में थी, तो हजारों-लाखों लोग आत्मा की खोज पर गए, और सैकड़ों लोगों ने आत्मा के दर्शन किए। जैसे वह हमारा नियत कार्यक्रम है, जब सब काम चुक जाएगा तब हम तीर्थ-यात्रा पर निकल जाएंगे, तब वह अनंत की यात्रा शुरू होगी।
तो बुद्ध को उपाय था, संस्कृति में एक द्वार था। पश्चिम की संस्कृति
मन पर पूरी हो जाती है। इसलिए पश्चिम की संस्कृति में मन की वासना पूरे होने पर दीवाल आ जाती है, द्वार नहीं आता। इसलिए वहां इतनी उदासी है। लेकिन यह ज्यादा देर नहीं रहेगी, क्योंकि कोई भी संस्कृति ज्यादा देर कैसे उदासी को बरदाश्त कर सकती है? और आत्महत्या कहीं लक्ष्य बन सकता है? आदमी खोज ही लेगा, दीवाल को तोड़ ही देगा, दरवाजा बना ही लेगा। इसलिए तो हजारों लोग पश्चिम से मेरे पास चले आ रहे हैं; खोज रहे हैं।
कल ही एक युवक मेरे पास आया। बड़ा लेखक है, दस-बारह बड़ी प्रसिद्ध किताबों का लेखक है। पश्चिम में बड़ा नाम है, इज्जत है, प्रतिष्ठा है, पैसा है, सब है। उसके आने के पहले मैंने उसकी किताबें पढ़ी हुई थीं। मुझे कभी ख्याल भी न था कि यह व्यक्ति कभी आ जाएगा। वह मौजूद हो गया। खोज पर है।

सूफियों के पास गया है। तिब्बेतन लामाओं के पास गया है। गुरजिएफ की व्यवस्था में शिक्षा पाई है। खोज रहा है--दूर-दूर तक खोज रहा है।
दीवाल टूटेगी। कितनी देर दीवाल टिक सकती है? पश्चिम जल्दी ही बड़ी धार्मिक क्रांति के निकट पहुंच रहा है। उसके पहले आसार तो आ गए। सूरज की पहली किरण तो फूट गई है। सुबह होने के करीब है। इसलिए पश्चिम अब पूरब की तरफ उन्मुख है।
अब यह बहुत बड़ी मजेदार घटना घट रही है। पूरब का समझदार आदमी पश्चिम की तरफ देख रहा है। पूरब में जो समझदार हैं--वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर--वे पश्चिम की तरफ भाग रहे हैं। क्योंकि वहां है राज शरीर के विज्ञान का, मन के विज्ञान का। सब पश्चिम की तरफ भाग रहे हैं। तुम्हारे गांव में भी डाक्टर हो, उसके पास अगर डिग्री लंदन की है तो बात और। और यहीं पूना की डिग्री है तो ठीक है। सर्जन हो और एफ.आर.सी.एस. है तो बात और! क्योंकि ज्ञान वहां है शरीर और मन का। हम तो उधार हैं उस मामले में। हमारे पास वह कुछ भी नहीं है। हम वहां जा रहे हैं। शरीर और मन की शिक्षा के लिए पूरब पश्चिम के चरणों में बैठ रहा है; और आत्मा की शिक्षा के लिए पश्चिम पूरब के चरणों में झुक रहा है। एक बड़ी अनूठी घटना घट रही है।
पूरब से घूम कर जब कोई आदमी पूरब की यात्रा से पश्चिम लौटता है तो जो खबरें ले जाता है वे अध्यात्म की हैं--ध्यान की हैं, योग की हैं, संन्यास की हैं। पश्चिम से जब कोई आदमी पूरब लौट कर आता है तो वह जो खबरें लाता है, वे विज्ञान की हैं; धर्म की नहीं हैं, अध्यात्म की नहीं हैं।
पूरब को सीखना पड़ेगा पश्चिम से शरीर और मन का शास्त्र। और जितने जल्दी सीख ले उतना बेहतर। काफी हमने उपेक्षा कर ली उसकी; समय है कि हम समझ लें। और ध्यान रहे कि अगर पूरब ने मन और शरीर का शास्त्र ठीक से समझ लिया और व्यवस्था बना ली तो पूरब का कोई मुकाबला न रह जाएगा। अध्यात्म का शास्त्र तो उसके पास है; नीचे की दो सीढ़ियां टूट गई हैं। ऊपर की तीसरी सीढ़ी है। और नीचे की दो सीढ़ियां न बनें तो तुम कैसे तीसरी सीढ़ी पर पहुंचोगे? तुम गुणगान कर सकते हो, स्तुति कर सकते हो तीसरी सीढ़ी की, चढ़ नहीं सकते। इसलिए तुम पूजा कर रहे हो गीता की, उपनिषद की, वेद की। वेद, गीता, उपनिषद सीढ़ियां हैं, जिन पर चढ़ो। पूजा करने से क्या होगा? लेकिन चढ़ोगे तुम कैसे, पहली दो सीढ़ियां टूटी हुई हैं।
अगर ठीक से समझो तो पश्चिम इस समय तुमसे बेहतर हालत में है। उसकी पहली
दो सीढ़ियां तैयार हैं; तीसरी नहीं है। तीसरी बनाई जा सकती है। वह तीसरी की तलाश में लगा है। वह जल्दी ही तीसरी को बना लेगा। इसके पहले कि वह तीसरी को बनाए, तुम पहली दो जो खो गई हैं, मिट गई हैं, उनको सुधार लो; उखड़ गई हैं, उनको जमा लो। अन्यथा अध्यात्म के लिए भी तुम्हें सीखने पश्चिम जाना पड़ेगा। और इससे बड़े दुर्भाग्य की कोई बात न होगी। सदियों-सदियों तक हमने उस पूरे शास्त्र को निर्मित किया है, और तुम्हें उसे भी सीखने पश्चिम जाना पड़े और क्या दुर्भाग्य होगा? लेकिन पहली दो सीढ़ियां न हों तो तीसरी सीढ़ी भी टूट जाएगी, बच नहीं सकती। कैसे तुम सम्हालोगे? क्योंकि वे दो सीढ़ियां ही उसका आधार हैं।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि गरीब धार्मिक नहीं हो सकता; उसकी दो सीढ़ियां खो गई हैं। अमीर जरूरी नहीं है कि धार्मिक हो जाए, लेकिन चाहे तो हो सकता है। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। अमीर होने से कोई धार्मिक हो जाएगा, यह जरूरी नहीं है, लेकिन चाहे तो हो सकता है। अमीर होने से उस जगह तो आ जाता है जहां इस जीवन का सब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है। जब तक तुम्हारे पास धन नहीं है, धन की व्यर्थता न दिखाई पड़ेगी। और जब तक तुम्हारे पास सुंदर स्त्रियां नहीं हैं तब तक सुंदर स्त्रियों की व्यर्थता न दिखाई पड़ेगी। और जब तक तुमने पदों पर बैठ कर नहीं देखा तभी तक पदों की मूर्खता दिखाई न पड़ेगी। जब तुम जीवन का सब राग-रंग देख लेते हो तभी तुम्हें पता चलता है कि यह तो सब नासमझी है।
लेकिन जरूरी नहीं है। जैसा मैंने कल कहा कि अगर गरीब आदमी को धार्मिक होना हो तो बड़ा कल्पनाप्रवण, संवेदनशील, बड़ी गहरी बुद्धिमत्ता चाहिए, ताकि वह उसको भी देख ले जो उसके पास नहीं है, और इतने गहरे में देख ले कि

उसकी व्यर्थता दिखाई पड़ जाए। अमीर आदमी को अगर धार्मिक होना हो तो बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है, न बहुत संवेदनशीलता की जरूरत है। न्यूनतम बुद्धि से भी काम चल जाएगा। इसलिए बुद्धू अमीर भी धार्मिक हो सकता है, चाहे तो। केवल बुद्धिमान गरीब धार्मिक हो सकेगा, वह भी बहुत श्रम करे तो। क्योंकि अमीर उस स्थिति में होता है जहां चीजों की व्यर्थता दिखाई पड़नी ही चाहिए, अगर थोड़ी भी बुद्धि हो। और अगर किसी अमीर को तुम पाओ कि वह धार्मिक नहीं हुआ तो समझना कि वह इतनी गई-बीती बुद्धि का है कि उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; वह अंधा है। अमीर बिल्कुल अंधा हो तो ही धार्मिक होने से बच सकता है, नहीं तो धार्मिक हो ही जाएगा। क्योंकि क्या पाता है? महलों के भीतर रिक्तता है, सूना हृदय है, प्रेम के कोई मेघ नहीं बरसते, न कोई अमृत की धार बहती है, न कहीं कोई आनंद का निनाद सुना जाता है; बड़े महल करीब-करीब कब्रों जैसे हैं जहां सब मुर्दा है। अमीरों के पास बाहर सब कुछ होता है, भीतर कुछ भी नहीं। बुद्धू से बुद्धू को भी दिखाई पड़ सकता है कि भीतर कुछ भी नहीं है।
इसलिए पश्चिम ज्यादा देर निराश न रहेगा, ज्यादा देर हताश न रहेगा; राह तोड़ ही लेगा। और वही कोशिश चल रही है। इसलिए पश्चिम पूरब की तरफ दौड़ रहा है--सीखने उस शास्त्र को जिससे तीसरी सीढ़ी निर्मित हो जाए, बंद दीवाल टूट जाए, द्वार बन जाए। एक बार पश्चिम के हाथ में कुंजियां आ गईं कि तुम्हें पश्चिम जाना पड़ेगा सीखने धर्म को भी। क्योंकि पश्चिम बड़ा कुशल है; जिस चीज को भी करता है, फिर बड़ी संलग्नता से करता है।
अब यहां मैं देखता हूं, भारतीय संन्यासी हैं, उनमें मैं वैसी समग्रता नहीं देखता, ध्यान भी करते हैं तो कुनकुना-कुनकुना। ऐसा कर लेते हैं, क्योंकि मैं कहता हूं। करने में ऐसा लगता है कि मैंने कहा इसलिए कर रहे हैं। पूरा प्राण दांव पर नहीं लगाते, कुछ बचाते हैं। पश्चिम का संन्यासी आता है, पूरा प्राण दांव पर लगा देता है। कुछ भी नहीं बचाता, जिंदगी को दांव पर लगा देता है। जल्दी ही परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।
रोज मैं देख कर चकित हूं! भारतीय आता है, वह कहता है कि यह ध्यान किया,
यह जमता नहीं; वह ध्यान किया, वह भी नहीं जमता; इसको करने में सांस पर तकलीफ मालूम होती है, उसको करने में पैर थक जाते हैं। हजार बहाने हैं। अभी कोई बता दे कि सोने की खदान है तो वह पहाड़ चढ़ जाए। अभी खबर भर मिल जाए उसको कि कहीं धन बंट रहा है तो वह जी-जान दांव पर लगा दे। लेकिन ध्यान में वह कहता है, पैर दुखते हैं; ध्यान में वह कहता है कि इतनी देर सांस नहीं ली जाती। पश्चिम से जो लोग आते हैं वे यह नहीं कहते; वे पहले पूरा दांव लगाते हैं, पूरा करके देखते हैं। उनकी अगर कोई तकलीफ होती है तो वह चौथे चरण की होती है ध्यान की, तीन चरणों की कभी नहीं। और जब भी भारतीय आते हैं तो तीन चरणों की कठिनाई होती है, चौथे की वह बात ही नहीं, क्योंकि चौथा तो आता ही नहीं। जब तीन ही पूरे नहीं होते तो चौथा कैसे आएगा?
इससे मैं चकित हूं कि बात क्या है! पश्चिम जो भी करता है परिपूर्णता
से करता है। या तो करता नहीं या करता है तो परिपूर्णता से करता है। पूरब कुछ ढुलमुल हालत में है; करता भी है, अधूरा करता है। पूरब का मन बड़ी दुविधा में दिखता है। पूरब की स्थिति ऐसी है कि वह चाहता है संसार भी सम्हाल ले और परमात्मा को भी सम्हाल ले। वह एक कदम इस नाव में और दूसरा कदम उस नाव में। और दोनों नावें दो अलग दिशाओं में जा रही हैं। वह संकट में पड़ता है। दांव पर लगाने की हिम्मत पूरब ने खो दी है।
और उसका कारण वही है कि पहली दो सीढ़ियां नहीं हैं। दांव पर लगाने की हिम्मत तो तभी आती है जब तुम समझ लेते हो कि यहां कुछ सार्थक है ही नहीं, लगा दो। जब तक तुम्हें लगता है कि यहां संसार में कुछ सार्थक है बचाने योग्य, इसको जरा साथ में ही लेकर अगर धर्म की यात्रा पर जा सके तो अच्छा होगा, तब तक तुमने पहली दो सीढ़ियां पार नहीं की हैं।
इसलिए तुम यह पूछ कर अपने मन में बहुत प्रसन्न मत होना कि पश्चिम बहुत निराश है, विषाद है, अर्थहीन अनुभव कर रहा है। सौभाग्य होगा कि तुम भी इतने ही विषाद से घिर जाओ और इस व्यर्थ के जीवन को तुम भी व्यर्थ जानो; इस अर्थहीन दौड़ को तुम भी अर्थहीनता की तरह पहचान लो; तुम भी इतने हताश हो जाओ

कि जीवन में कुछ भी सार न दिखाई पड़े, ताकि तुम पूरे जीवन को दांव पर लगा सको। वह आगे की छलांग तुम्हें पूरा का पूरा मांगती है; अधूरे से काम न चलेगा। आधा कहीं कोई यात्रा पर गया है? आधे घर और आधे यात्रा पर? जाना हो तो पूरे ही जाना होगा।
कबीर ने कहा हैः जो घर बारे आपना चले हमारे संग। जला दो घर तो हमारे साथ चल सकते हो।
वे किस घर की बात कह रहे हैं? वे उस घर की बात कह रहे हैं जिसको तुम बचाना चाहते हो। तुम घर भी रहना चाहते हो और यात्रा पर भी जाना चाहते हो। असल में, तुम मुफ्त में पाना चाहते हो परमात्मा को। या तुम परमात्मा को भी इसीलिए पाना चाहते हो ताकि संसार के संबंध में कुछ वरदान मांग लो।
तुमने कभी सोचा, अगर परमात्मा तुम्हें मिल जाएगा तो तुम क्या मांगोगे? सोचना ईमानदारी से कि अगर परमात्मा मिल ही जाए कल सुबह उठते ही से, तुम क्या मांगोगे? एक कागज पर जरा लिखना। तीन चीजें तुम मांग सकते हो, तो लिखना कि कौन सी तीन चीजें मांगोगे। तुम खुद ही चकित होओगे कि क्या मांगने की आकांक्षा आ रही है--कि एक सुंदर पत्नी, फिल्म अभिनेत्री, कोई बड़ा मकान, कि बड़ी कार, कि मुकदमे में जीत--क्या मांगोगे? तुम जो मांगोगे, उससे पता चलेगा कि तुम कहां हो। तुम्हारी मांग तुम्हें बता देगी। क्या तुम परमात्मा को देख कर मांगने की चेष्टा करोगे या सच में ही देख कर इतने परितृप्त हो जाओगे कि कहोगे कि कुछ भी मांगना नहीं? मांगने की चेष्टा में ही छिपा है कि परमात्मा की चाह न थी; चाह कुछ और थी, परमात्मा का तो उपयोग था। मांग तो कुछ और ही रहे थे; परमात्मा से मिलेगा, इसलिए परमात्मा की भी खोज थी। लेकिन परमात्मा लक्ष्य न था; लक्ष्य तो वही है जो तुम मांगना चाहते हो। मिला परमात्मा और तुमने मांग ली इंपाला कार; इंपाला कार लक्ष्य था। तो परमात्मा न हुआ, इंपाला कार का कोई दुकानदार हुआ। और तुम्हारी नजर इंपाला कार पर थी और परमात्मा से भी तुमने वही मांगा। तुम जब मंदिर जाते हो, क्या मांगते हो, सोचना थोड़ा। तुम्हारी मांग ही तुम्हारे और परमात्मा के बीच में बाधा है।
वे दो सीढ़ियां नहीं हैं तुम्हारे जीवन में, इसलिए हजार तरह की मांगें खड़ी हो गई हैं। अगर तुम परमात्मा से ही तृप्त हो सको तो समझना कि दो सीढ़ियों को तुम पार कर गए।
इसलिए अपने मन में बहुत प्रसन्न मत होना। क्योंकि मैं यह देखता हूं
कि पूरब के लोग बड़ी रुग्ण सांत्वना से भर गए हैं। वे अपने को संतोष दिलाते रहते हैं कि पश्चिम में तो बड़ा विषाद है, लोग दुखी हैं। देखो पश्चिम में कितने लोग आत्महत्या करते हैं, यहां कोई करता है? आत्मा भी तो होना चाहिए आत्महत्या करने के पहले; हत्या किसकी करोगे! पश्चिम में कितने लोग पागल हो जाते हैं; यहां कोई होता है? पागल होने के लिए बुद्धि भी तो चाहिए। जिनकी बुद्धि नहीं है, उनको कभी पागल होते देखा है? जो हो वही तो खो सकते हो। पश्चिम सोचता है, प्रगाढ़ता से सोचता है, इसलिए पागल हो जाता है। तुमने कभी सोचा है? तुम्हारा सोच-विचार क्या है? अखबार पढ़ने से ज्यादा तुम्हारा कोई सोच-विचार है? अखबार पढ़ कर तुम सोच रहे हो पागल हो जाओगे? तुमने किसी विचार को इतनी गहनता से समझने की कोशिश की है कि तुम्हारा सारा जीवन आंदोलित हो जाए, कि तुम कंप जाओ, कि तुम्हारी जमीन से जड़ें हिल जाएं, कि तुम्हारी बुनियाद गिर जाए? तुमने कभी कुछ नहीं सोचा है। तुमने क्या सोचा है? पागल कैसे हो जाओगे? और जिंदगी में तुमने पाया कुछ नहीं है अभी; आत्महत्या के करीब तुम आओगे कैसे? आत्महत्या के करीब तो वही आता है जिसने जीवन को सारा देख लिया और पाया कि व्यर्थ है; अब कुछ करने को नहीं दिखाई पड़ता, आत्महत्या कर लूं! मिटा दूं इस जीवन को!
इस घड़ी में ही दो रास्ते खुलते हैं--या तो आत्महत्या या आत्मक्रांति। अगर कोई द्वार न दिखे तो आदमी आत्महत्या कर लेता है। अगर कोई द्वार दिख जाए तो रूपांतरित हो जाता है। आत्महत्या की घड़ी को ही पूरब ने आत्मक्रांति में बदल लिया है। पश्चिम तैयार है अब पूरब की क्रांति के लिए। और पूरब तो अभी पश्चिम की क्रांति के लिए तैयार हो रहा है। पूरब के गुरु अब मार्क्स, एंजिल्स, स्टैलिन, लेनिन, माओत्से-तुंग। तुम बातें कितनी

ही करो वेद की और उपनिषदों की, तुम्हारे गुरु माओ, महावीर नहीं। उनकी तो तुम सिर्फ पूजा करते हो! पश्चिम देख रहा है उपनिषद की तरफ, वेद की तरफ, गीता की तरफ। वह घड़ी आ गई है जहां शरीर और मन की यात्रा पूरी हो गई है। अभी हताशा है; जल्दी ही आनंद की वर्षा भी हो जाएगी। अभी उदासी है; अगर मार्ग मिल गया तो जितनी गहन उदासी है उतना ही हर्षोन्माद भी हो जाएगा। वह अनुपात हमेशा बराबर होता है।
तुम कितने उदास हो परमात्मा के बिना, इस पर ही निर्भर करेगा कि परमात्मा को पाकर तुम कितने आनंदित होओगे! अगर परमात्मा को बिना पाए तुम सिर्फ दो इंच उदास हो तो परमात्मा को पाकर दो इंच आनंद की वर्षा होगी, बस। अगर परमात्मा को बिना पाए तुम सौ इंच उदास हो तो परमात्मा को पाकर सौ इंच वर्षा हो जाएगी। अगर परमात्मा को बिना पाए तुम पांच सौ इंच उदास हो तो परमात्मा को पाकर तुम चेरापूंजी में हो जाओगे, पांच सौ इंच मेघ बरस जाएंगे। कितनी तुम्हारी उदासी है परमात्मा को बिना पाए उतना ही तुम्हारा आनंद होगा परमात्मा को पाकर। आनंद की मात्रा वही होगी जो उदासी की सघनता है। प्यास ही तो तय करेगी कि तृप्ति कितनी होगी! प्यासे ही नहीं थे, ऐसा ही कोकाकोला दिखाई पड़ गया, इसलिए प्यास पैदा हो गई; ऐसे भूल-चूक से आ गए किसी सदगुरु के पास। कोई मित्र जा रहा था और तुम खाली बैठे थे, तो कहा चलो, खाली बैठे क्या करते। कोई प्यास ही न थी। सुन लीं बातें आनंद की, अमृत की, और एक झूठी प्यास पैदा हो गई। तुम्हें परमात्मा मिल भी जाए तो कोई तृप्ति न होगी। वस्तुतः तुम्हें मिल भी जाए तो तुम उसे पहचान भी न पाओगे। उसे पहचानने को बड़ी गहन प्यास चाहिए।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि मुझे तुम कम पहचान पाओगे, पश्चिम के लोग ज्यादा। वहां बड़ी हताशा है। इसलिए तुम्हें कई दफे हैरानी होगी कि पश्चिम के लोग क्यों चले आते हैं! जब वे मेरे पास आते हैं तो उन्हें कोई द्वार दिखाई पड़ता है जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। जब वे मेरे पास आते हैं तो उनके जीवन में कुछ नये का उदय होता है जो तुम्हारे जीवन में नहीं होता। तुम हताश ही नहीं हो। तुम उदास ही नहीं हो। और अगर तुम उदास भी हो तो उन चीजों के लिए हो जो चीजें पहली दो सीढ़ियों से संबंधित हैं।
अपने को सौभाग्यशाली मत समझ लेना; अपने को सौभाग्यशाली समझ लेना खतरनाक है। क्योंकि उसमें फिर अगर तुम लिप्त होकर बैठ गए तो तुम्हारी यात्रा अवरुद्ध हो जाएगी। और सांत्वना झूठी मत दे देना अपने को। और यह मत सोचना कि पश्चिम के लोग पूरब आ रहे हैं, तो हम पूरब के लोग बड़ी ऊंची अवस्था में हैं इसलिए आ रहे हैं। यह भी भ्रांति है तुम्हारी। कभी कोई एकाध आदमी उस अवस्था में होता है; कोई पूरा पूरब उस अवस्था में नहीं है। लेकिन हमारे मन में ऐसा होता है कि बुद्ध पूरब में पैदा हुए, महावीर पूरब में पैदा हुए और हम भी पूरब में पैदा हुए! तो जैसे कोई हमारी जाति बुद्ध और महावीर की है, जैसे हम उनके वंशज हैं।
बुद्ध का वंशज केवल वही हो सकता है जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो। बुद्ध
का वंशज भूगोल से तय नहीं होता, चेतना से तय होता है। तुम व्यर्थ अपनी प्रशंसा करके और व्यर्थ अपने अहंकार को आभूषणों से सजा कर तृप्त होकर मत बैठ जाना, क्योंकि वह तुम्हारी मौत हो सकती है। वे आभूषण जंजीरें सिद्ध होंगे, और वह झूठी सांत्वना कब्र बन जाएगी।
जागो! मुझे पता है कि तुम्हारी दो सीढ़ियां टूटी हुई हैं। इसलिए तुम्हें बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत है, बहुत होश की जरूरत है। और इसलिए मैं ऐसी विधियां तुम्हारे लिए दे रहा हूं जो छलांग लगाने की हैं और सीढ़ियां चढ़ने की नहीं हैं। क्योंकि सीढ़ियां टूटी हुई हैं, उनको बनाने अगर बैठा जाए तो वे कब बनेंगी, कुछ पता नहीं है। लेकिन जब सीढ़ी टूटी होती है तो आदमी दो सीढ़ियां इकट्ठी भी छलांग लगा कर चढ़ जाता है। तुम छलांग लगाओगे तो ही पहुंच पाओगे। पश्चिम को छलांग लगाने की जरूरत नहीं है, वह दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है; तीसरी सीढ़ी मिल भर जाए, वह पैर रख देगा। लेकिन पूरब को तो छलांग लगानी पड़ेगी; दो सीढ़ियां चूक गई हैं। और चूकने का कारण है। उसको भी तुम समझ लो। उसका गणित है। अकारण कुछ भी नहीं होता।

जब भी कोई मुल्क समृद्ध होता है तब उस मुल्क को पता चलता है, समृद्धि बेकार है। जैसे ही मुल्क को पता चलता है समृद्धि बेकार है, वह आत्मा की खोज में लग जाता है, परमात्मा की खोज में लग जाता है, वह मोक्ष की यात्रा पर निकल जाता है। और जीवन की दो सीढ़ियों की तरफ नकार का भाव पैदा हो जाता है-- बेकार है। उन दो सीढ़ियों की साज-सम्हाल बंद हो जाती है। उनकी कोई फिक्र नहीं लेता। उनकी निंदा शुरू हो जाती है। समाज धीरे-धीरे-धीरे-धीरे पदार्थ, शरीर के विरोध में हो जाता है। और जिसके तुम विरोध में हो वह सीढ़ी टूट जाती है। और जब सीढ़ी टूट जाती है तब ऐसी अड़चन आ जाती है जिसमें हम हैं।
जब कोई समाज गरीब होता है तब धन में मूल्य मालूम होता है, तब वह धन के पीछे पड़ जाता है। जब वह धन के पीछे पड़ जाता है तब धर्म की उपेक्षा हो जाती है। जब धन इकट्ठा कर लेता है तब उसे पता चलता है कि यह तो बेकार है। तब धन की आकांक्षा शुरू होती है।
ऐसा एक वर्तुल है। गरीब समाज धन में उत्सुक होता है; धन पाकर पाता है
कि यह तो बेकार की मेहनत हुई, तब वह धर्म में उत्सुक होता है। जब धर्म में उत्सुक होता है तो धन की उपेक्षा हो जाती है। जब धन की उपेक्षा हो जाती है तो धीरे-धीरे समाज फिर गरीब हो जाता है। ऐसा चक्र की तरह सारी बात घूमती जाती है।
पूरब अमीर था, बहुत अमीर था। लोग कहते थे, सोने की चिड़िया है। वह था।
उस सोने की चिड़िया के दिनों में उसने पाया कि सब सोना व्यर्थ है; सोने की चिड़िया होने में कोई सार नहीं। वह दूध और दही की नदियां सब व्यर्थ हैं। इस संसार में सब असार है। यह सब माया है, सपना है--ऐसा पाया। और यह पाना सच है। जब ऐसा पाया कि यह सब सपना है, तो सपने की कौन फिक्र करता है? कौन साज-सम्हाल रखता है? उपेक्षा हो गई। जब उपेक्षा हो गई तो पूरब धीरे-धीरे-धीरे- धीरे गरीब हो गया। अब जब गरीब हो गया तो सीढ़ियां टूट गईं; अब धर्म से कोई संबंध न रहा। अब उत्सुकता है--कैसे धन वापस मिले? कैसे शरीर वापस मिले? कैसे मन के सुख वापस मिलें?
अब पश्चिम अमीर है। पश्चिम गरीब था जब पूरब अमीर था। करीब-करीब ऐसा है
कि जैसा सूरज जब पूरब में होता है तो पश्चिम में रात होती है; जब पश्चिम में सूरज होता है तो पूरब में रात हो जाती है। जो बाहर के सूरज के संबंध में सच है वही भीतर के सूरज के संबंध में भी सच है। जब पूरब में प्रकाश था तो पश्चिम अंधकार में था; गहन रात थी वहां। लोग भयंकर गरीबी में थे। धर्म की कोई बात ही न थी; कोई पूछने का सवाल ही न था।
फिर अब पश्चिम में सूरज उग रहा है। पूरब में गहन अंधेरी रात है। सारा पूरब धीरे-धीरे कम्युनिज्म की अमावस में दबा जा रहा है। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः धन महत्वपूर्ण है, धर्म नहीं। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः पदार्थ महत्वपूर्ण है, परमात्मा नहीं। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः यही संसार सब कुछ है, और कोई संसार नहीं। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः सपना ही सत्य है, और कोई सत्य नहीं। इसको सम्हाल लो, सब सम्हल जाएगा। पूरब कम्युनिस्ट होता जा रहा है। सब तरफ पूरब की पुरानी व्यवस्था टूटती जाती है। इसे बचाना मुश्किल है। पश्चिम धीरे-धीरे धार्मिक होता जा रहा है। पूरब का जवान कम्युनिस्ट होता है। और अगर पूरब में कोई जवान कम्युनिस्ट न हो तो लोगों को शक होता है कि यह आदमी जवान ही कैसा! समाजवादी, साम्यवादी, नाम कुछ भी हों, लेकिन पूरब का जवान आदमी कम्युनिस्ट होता है।
पश्चिम में जवान आदमी हिप्पी हो गया है। हिप्पी का अर्थ समझते हैं? हिप्पी का अर्थ है कि इस संसार में कुछ सार नहीं। कपड़े-लत्ते कैसे ही हुए, तो चल जाएगा। नहाए, न नहाए, तो चल जाएगा। पैसे पास हुए, न हुए, तो चल जाएगा। न बड़े मकान की जरूरत है, न बड़ी कार की जरूरत है। पैदल चल लिए, तो चल जाएगा; राह में चलते ट्रक वाले से प्रार्थना कर ली, उसने बिठा लिया, तो चल जाएगा।
पश्चिम में अमीर से अमीर घरों के लड़के और लड़कियां हिप्पी हो गए हैं।
हिप्पी पश्चिम का संस्करण है संन्यास का। वह पश्चिमी ढंग है संन्यासी होने का।

बुद्ध ने हजारों लोगों को संन्यासी कर दिया था। संन्यास का अर्थ ही थाः इस जिंदगी की हम चिंता नहीं करते, उपेक्षा करते हैं। एक बार भोजन मिल गया तो ठीक है, न मिला तो भूखे सो जाएंगे।
पश्चिम का जवान आदमी तो समाज के बाहर हट रहा है; एक तरह के संन्यास का जन्म हो रहा है। और पूरब का जवान आदमी संसार में प्रवेश कर रहा है। सूरज पश्चिम में उग रहा है, पूरब में डूब रहा है। और यह स्वाभाविक है। लेकिन अगर समझ हो तो अंधेरी रात में भी तुम परिपूर्ण प्रकाशित हो सकते हो, और नासमझी हो तो सूरज उगा हो तो भी आंख बंद करके अंधेरे में बैठ सकते हो।
इसलिए इससे कुछ बहुत परेशान मत हो जाना। जिसको समझ है, वह भीतर का दीया जला लेता है और बाहर के सूरज की चिंता छोड़ देता है। और जो नासमझ है, वह सूरज भी उगा रहता है तो आंख बंद करके खड़ा रहता है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि हिंसा से अहिंसा नहीं आ सकती, लेकिन कृष्ण
और मोहम्मद ने तो युद्ध के विराट हिंसा-कार्य में सक्रिय भाग लिया। वे युद्ध से किस ढंग की अहिंसावी शांति लाना चाहते थे?

हिंसा से शांति नहीं आ सकती, यह कृष्ण भी जानते हैं और मोहम्मद भी। और
आई भी नहीं। महाभारत के बाद कौन सी शांति आई भारत में? युद्ध तो हुआ; शांति कौन सी आई? मुल्क अशांत रहा। हिंसा मिट नहीं गई; हिंसा जारी रही। मोहम्मद के युद्धों के बाद कौन सी शांति आ गई है मुसलमानों में? वस्तुतः वे और अशांत हो गए। मोहम्मद की तलवार उनके लिए बहाना बन गई तलवार चलाने का। मोहम्मद का युद्ध उनको हर युद्ध को करने के लिए तर्क बन गया। मुसलमान अशांत रहे हैं, युद्धखोर रहे हैं। कृष्ण भी हार गए, मोहम्मद भी हार गए; हिंसा से अहिंसा आ ही नहीं सकती।
लेकिन तब तुम पूछोगे, फिर कृष्ण को, मोहम्मद को क्या यह दिखाई नहीं पड़ा?
यह भलीभांति दिखाई पड़ा; लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय न था। यह मजबूरी थी। यह था कम से कम बुराई को चुनना। इसे तुम थोड़ा समझ लेना।
सवाल यह नहीं था कृष्ण के सामने कि युद्ध से अहिंसा आएगी कि नहीं; वह
तो उन्हें भी साफ है कि युद्ध से कहीं अहिंसा आती है! हिंसा से कैसे अहिंसा का जन्म हो सकता है? और घृणा से कैसे प्रेम पैदा होगा? और शत्रु बनाने से कैसे कोई मित्र हो जाएगा? पागलपन है। मारने से कहीं कोई जीता है? आग लगाने से कहीं वृक्षों में फूल खिलेंगे? और कांटे बोने से क्या तुम सोचते हो कि फूलों की शय्या बन जाएगी? यह तो कृष्ण को भी पता है। कोई कृष्ण नासमझ नहीं हैं। कृष्ण से समझदार आदमी खोजना मुश्किल है। कृष्ण को भलीभांति पता है कि युद्ध से कोई शांति नहीं होगी; हिंसा से कोई अहिंसा नहीं आएगी।
लेकिन यह सवाल ही नहीं है कृष्ण के सामने; सवाल ही दूसरा था। सवाल था
दो तरह की हिंसाओं के बीच चुनने का; अहिंसा और हिंसा के बीच चुनाव का सवाल ही नहीं था। युद्ध खड़ा था सामने। या तो कौरवों की हिंसा जीतेगी या पांडवों की हिंसा जीतेगी, चुनाव था दो हिंसाओं के बीच में। अगर कृष्ण के सामने अहिंसा और हिंसा का चुनाव होता तो स्वभावतः वे अहिंसा चुनते। लेकिन वह चुनाव न था। चुनाव थाः ये दो तरह की हिंसाएं आमने-सामने खड़ी थीं युद्ध में; इसमें जो सबसे कम बुरा था, उसे चुनने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। पांडव कौरवों से कम बुरे थे, बस इतनी ही बात है। और अगर पांडव हारते हैं तो कौरव जीतेंगे, वह बहुत भयंकर हिंसा जीतेगी। अगर कौरव जीतते हैं तो हिंसा पूरी तरह जीतती है। अगर पांडव जीतते हैं तो हिंसा आधी तरह जीतती है।
यही तो पूरे गीता का राज है। वह राज यह है कि दुर्योधन ने तो नहीं पूछा
कि मैं युद्ध करूं या न करूं; दुर्योधन के मन में तो सवाल भी न उठा। दुर्योधन के सामने सवाल तो वही था जो अर्जुन के सामने था। मित्र-परिजन खड़े थे, अपने ही सगे-संबंधी खड़े थे--उस तरफ भी, इस तरफ भी। परिवार का ही गृहयुद्ध था। सब बंट गए थे। इस तरफ भाई खड़ा था, दूसरा भाई उस तरफ खड़ा था। कृष्ण एक तरफ खड़े थे, उनकी युद्ध की सेना दूसरी तरफ खड़ी थी। अपनी ही सेना

से लड़ रहे थे। गृहयुद्ध था। ठीक-ठीक गृहयुद्ध था। लेकिन दुर्योधन को सवाल भी न उठा। अर्जुन को सवाल उठा। इसलिए अर्जुन कम हिंसक है इसलिए सवाल उठा। और अर्जुन ने पूछा कि इससे तो अच्छा है मैं छोड़ कर चला जाऊं। अपनों को
ही मार कर क्या पा लूंगा? और अगर इन सबको मार कर राज्य मिल भी गया तो उस राज्य का भी क्या मूल्य है? इतने खून के बाद इस खून से सने राज्य को पाकर मेरा मन तो सदा पीड़ा ही पाता रहेगा। वह कोई सुख की अवस्था न होगी; वह तो एक दुखस्वप्न हो जाएगा। ये सब अपने ही हाथ से काटे गए लोगों के चेहरे मुझे याद आते रहेंगे। न मैं ठीक से भोजन कर सकूंगा, न रात सो सकूंगा। इससे तो बेहतर है मैं भाग जाऊं, युद्ध से पलायन कर जाऊं। सिर्फ जीतने की आकांक्षा से इतना बड़ा रक्तपात मुझसे नहीं होता। अर्जुन ने कहा कि मेरे गात शिथिल हुए जाते हैं; मेरा गांडीव मेरे हाथ से छूटा जाता है; मेरे हाथ कंप रहे हैं। इससे खबर दी अर्जुन ने कि यह आदमी कम हिंसक है।
दुर्योधन को तो कोई सवाल ही न उठा। वह असंदिग्ध रूप से हिंसक है। अर्जुन की हिंसा में कम से कम विचार है, बोध है, होश है। यह छोड़ने को राजी है। यह धन को, राज्य को त्याग देना चाहता है। इसके भीतर एक समझ है। इसीलिए तो कृष्ण ने इतनी मेहनत करके इसे राजी किया कि तू लड़!
अब सारा गणित इतना है कि कृष्ण को दिखाई पड़ा साफ-साफ कि अर्जुन का लड़ना, अर्जुन का जीतना, कम बुरे लोगों के हाथ में सत्ता जाएगी। तो जहां दो बुराइयों में चुनना हो वहां कम बुराई को ही चुनना उचित है।
इस संसार में भलाई और बुराई के बीच तो चुनाव बहुत मुश्किल से खड़ा होता है; यहां तो चुनाव हमेशा कम बुराई और ज्यादा बुराई के बीच खड़ा होता है। यह तो ऐसे ही है कि जैसे तुम डाक्टर के पास जाओ और डाक्टर तुमसे कहे कि यह पैर इतना खराब है कि इसे काट डालो; अगर न काटोगे तो दोनों पैर खराब हो जाएंगे। क्या करोगे? डाक्टर के पास जाते हो, वह कहता है, यह एक दांत सड़ गया है, इसे अलग कर दो; अगर इसे अलग न किया तो बाकी दांत भी सड़ जाएंगे। क्या करोगे? कोई दांत निकालना सुखद तो नहीं है। एक पैर काटना कोई सुखद तो नहीं है। और डाक्टर कोई पैर काटने का हिमायती तो नहीं है कि वह कहता है सब लोग एक पैर काट डालो। न; वह यह कह रहा है कि इस स्थिति में अगर पैर न काटा गया तो दूसरा पैर भी काटना पड़ेगा। तो विकल्प दो हैं, या तो दोनों पैर कटेंगे या एक कटेगा। तो बेहतर है एक काट डालो। अब कोई विकल्प और है नहीं। विकल्प अगर यह हो कि दोनों पैर बचते हों तो डाक्टर भी नहीं कहेगा कि एक पैर काट डालो; वह कहेगा, कोई सवाल ही नहीं है। अगर सब दांत बचते हों तो डाक्टर भी कहेगा कि इलाज कर लो, दांत बचा लो।
कृष्ण ने सब तरह की कोशिश कर ली थी कि युद्ध टल जाए। सब तरह की कोशिश पांडवों ने कर ली थी कि युद्ध टल जाए। लेकिन वह संभव नहीं था। दूसरी तरफ बड़ा युद्धखोर आदमी था। हिंसा उसकी आंखों में थी। वह बिल्कुल विक्षिप्त था। ऐसी अवस्था में यही एक उपाय था कि या तो संसार को दुर्योधन के हाथों में छोड़ दिया जाए; ये पांचों पांडव संन्यासी हो जाएं, हिमालय चले जाएं-- जिसकी उनकी तैयारी थी; वे छोड़ देना चाहते थे। और इसलिए एक बड़ी बेबूझ घटना घटती है कि कृष्ण को युद्ध के लिए उन्हें तैयार करना पड़ता है। क्योंकि कृष्ण को लगता है कि अगर युद्ध ही होना है तो भले आदमी जीतें, जिनका युद्ध पर भरोसा नहीं है। अगर युद्ध ही होना है तो वे लोग जीतें जो छोड़ने को तैयार थे। अगर युद्ध ही होना है तो अर्जुन जीते, दुर्योधन न जीते।
दो बुराइयों में कम बुराई को चुनने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।
वही अवस्था मोहम्मद की भी थी। वे जिनसे भी लड़े हैं, उसका कारण कुल इतना था कि जिन लोगों के बीच वे थे, वे लड़ाई के अतिरिक्त दूसरी कोई भाषा ही नहीं समझते थे। कोई उपाय ही न था। जब तुम संसार में खड़े होते हो तो संसार में जो विकल्प होते हैं उन्हीं में से तो चुनोगे। मोहम्मद जिन खूंखार लोगों के बीच में थे, वे सिर्फ तलवार की भाषा समझते थे। और अगर मोहम्मद लड़ने को राजी नहीं हैं तो जितने लोग मोहम्मद के पास ध्यान में, प्रार्थना में, धर्म में उत्सुक हुए थे, वे सब काट डाले जाएंगे। तो उपाय एक ही था--या तो धार्मिक लोग कट जाएं, अधार्मिक लोग जीत जाएं। या फिर धार्मिक लोग लड़ें।

यद्यपि लड़ने से कोई शांति नहीं आती, न कहीं हिंसा से अहिंसा आती है। लेकिन अच्छे आदमी की हिंसा से थोड़ी अच्छी हिंसा आती है, बुरे आदमी की हिंसा से बुरी हिंसा आती है। और अगर बुरी हिंसा, अच्छी हिंसा में चुनना हो तो अच्छी हिंसा ही बेहतर है।
इसे ख्याल में रखोगे तो दुविधा न पड़ेगी। कोई कृष्ण में और महावीर में भेद नहीं है; परिस्थिति में भेद है। और इसलिए कृष्ण और महावीर को मानने वाले व्यर्थ का विवाद करते रहे हैं। परिस्थिति दोनों की भिन्न है। महावीर कह रहे हैं कि मांस मत खाओ, क्योंकि मांस खाना या न खाना दो विकल्प हैं। महावीर कह रहे हैं, देख कर चलो, क्योंकि चींटी व्यर्थ दबा कर मर जाए पैर के नीचे; बचाई जा सकती है तो क्यों मारते हो?
महावीर ने जो परिस्थिति चुनी है मनुष्य के लिए वह साधक की है। वे संन्यासी से बात कर रहे हैं। अगर महावीर खड़े होते कृष्ण की जगह तो जो सलाह कृष्ण ने दी है, मैं कहता हूं कि वही सलाह महावीर ने दी होती। क्योंकि कोई और उपाय न था; वह परिस्थिति साफ थी। लेकिन महावीर वहां नहीं थे; महावीर की परिस्थिति और थी। महावीर किसी युद्ध के मैदान पर नहीं खड़े थे। महावीर संन्यस्त हैं, उन्होंने संसार छोड़ दिया है। वे जो सलाह दे रहे हैं वह संन्यासी को दे रहे हैं। वे उससे कह रहे हैं कि तू अहिंसा की तरफ बढ़ और हिंसा को छोड़, क्योंकि हिंसा से हिंसा ही पैदा होती है। लेकिन महावीर क्या करते कृष्ण की स्थिति में? या तो वे कह देते मैं सलाह नहीं देता, जो कि उचित न होता; और या वे वही सलाह देते जो कृष्ण ने दी है।
कई बार मैंने इस बात को सोचा है कि अगर परिस्थिति वही हो और ज्ञानी बदल दिया जाए तो क्या ज्ञानी दूसरी सलाह दे सकेगा? और मैंने बहुत सोच कर यही पाया है कि असंभव है! ज्ञानी वही सलाह देगा, क्योंकि कोई उपाय ही नहीं है। अगर महावीर होते अरब में और हिंदुस्तान में नहीं--क्योंकि हिंदुस्तान की हवा और, हिंदुस्तान की बात और। हजारों-हजारों साल की अहिंसा का शिक्षण है इस मुल्क के पास। ठीक वेदों से लेकर, और महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं, उनके पहले तेईस महान विराट पुरुषों ने अहिंसा के फूल बिछाए हैं; एक धारा है; पीछे से आता एक महान प्रवाह है! उस प्रवाह के कारण पूरे मुल्क में अहिंसा की भाषा को समझने की क्षमता है। तो महावीर यह बात कह सके। मोहम्मद के पीछे कोई प्रवाह नहीं है। मोहम्मद पहले हैं; महावीर आखिरी हैं। एक बड़ी धारा के महावीर आखिरी पुरुष हैं। और मोहम्मद एक बड़ी धारा के पहले पुरुष हैं। बड़ा फर्क है। फिर अरब, जहां सिवाय जंगली, खूंखार लोगों के और कोई भी नहीं; जिनके पास न कोई संस्कृति है, न कोई सभ्यता है; जिनके पास कोई अतीत नहीं है; जिनकी अतीत में कोई जड़ें नहीं हैं; जिनके पीछे कोई इतिहास नहीं है; जो बिल्कुल असंस्कृत हैं। इन आदमियों से अगर तुम अहिंसा की बात करते तो तुम ही मूढ़ सिद्ध होते। क्योंकि इनसे बात ही नहीं की जा सकती; अहिंसा का कोई अर्थ ही नहीं होता। हिंसा एकमात्र बात थी जिसे वे समझ सकते थे।
तो मोहम्मद ने उन्हें समझाने की चेष्टा स्वभावतः उन्हीं की भाषा में की, और कोई उपाय नहीं था। तो मोहम्मद ने भी तलवार उठाई। लेकिन तलवार पर मोहम्मद ने लिख रखा थाः शांति मेरा संदेश है। यह तलवार की भाषा से शांति समझाने का उपाय है। कोई और रास्ता नहीं था। तो तलवार पर लिखना पड़ा है बेचारे मोहम्मद को अपना संदेश कि शांति मेरा संदेश है। इसलाम शब्द का अर्थ होता है शांति। शांति भी समझानी पड़ी तो तलवार से। क्योंकि जो समझने वाले थे उन पर सब निर्भर करता है।
आखिर जब मैं तुम्हें समझाता हूं तो तुम्हारी ही भाषा में बोलना पड़ेगा, और तो कोई उपाय नहीं है। या मैं अपनी भाषा बोलता रहूं, जिस भाषा को तुम समझते ही नहीं, तो मैं पागल हूं। महावीर अगर मोहम्मद की जगह होते, वही तलवार महावीर के हाथ में होती और वही संदेश होता कि शांति मेरा संदेश है। और मोहम्मद अगर भारत में पैदा होते महावीर के समय में, तो वे चौबीसवें तीर्थंकर हो जाते। कोई बचने का उपाय न था।
लेकिन परिस्थिति बदल जाती है रोज। और परिस्थिति तय करती है कि क्या कहा जाए, क्या न कहा जाए; कहां तक लोग बढ़ सकेंगे, कहां तक लोग जा सकेंगे;

कितने दूर तक लोगों की चेतना को खींचा जा सकता है। कहीं ऐसा तो न होगा कि जो हम कहें, वह लोगों को असंभव मालूम पड़े, इसलिए वे उसकी बात ही छोड़ दें। ऐसा समझो कि अगर मैं तुम्हें कोई बात बताऊं, वह इतनी दूर मालूम पड़े कि जैसे एवरेस्ट का शिखर हो, तो तुम बात ही छोड़ दो, तुम कहो कि यह अपने से होने वाला नहीं है; अपनी जिंदगी ठीक, और अपन ठीक। लेकिन मैं तुम्हें एक छोटी सी पहाड़ी बताऊं जिसको तुम चढ़ सकते हो, फिर तुम्हें और बड़ी पहाड़ी बताऊं; क्योंकि छोटी पहाड़ी पर चढ़ने के बाद तुम्हारा साहस बढ़ जाएगा, स्वयं में आस्था बढ़ जाएगी; फिर और बड़ी पहाड़ी बताऊं। एक दिन जब तुम्हें रस पकड़ जाए पहाड़ों को चढ़ने का, तब मुझे बताना भी न पड़ेगा, तुम खुद ही पूछने लगोगे कि अब आखिरी बता दें! बार-बार चढ़ने-उतरने का क्या सार; अब उसको ही चढ़ लें जिसके बाद चढ़ने को फिर कुछ बचता नहीं है।
तुम्हें देख कर बोलना पड़ता हैः तुम्हारी समझ कहां तक खींची जा सकती है? कहीं ऐसा तो न होगा कि बात बिल्कुल तुम्हारे सिर पर से निकल जाएगी। और निश्चित ही अर्जुन भला आदमी था, अत्यंत भला था। अन्यथा कभी युद्ध
के मैदान में किसी को इतना होश आता है कि सोचे? क्रोध से, ज्वर से भरा हुआ जब दुश्मन सामने खड़ा हो, तुम्हें भी ख्याल आता है कभी? जब दूसरा तुम्हें गाली दे रहा हो और शंख बजा दिए हों युद्ध के, तब तुम्हें यह ख्याल आता है कि मारूं, न मारूं? मारना उचित होगा कि न मारना? ख्याल की बात कहां, तुम्हें होश ही नहीं रह जाता। युद्ध के क्षण में होश की बात करनी, युद्ध के क्षण में इस तरह बोलना जैसा संन्यासी को शोभा देता है; सैनिक की बात ही नहीं है अर्जुन में।
और यह, जिस गणित को मैं निरंतर तुम्हें समझाता हूं, उसे फिर तुम्हें समझाऊंः जब कोई सैनिक अपनी सैन्य शक्ति की पराकाष्ठा पर होता है तब संन्यास का जन्म हो जाता है। क्योंकि जान लिया सब; अर्जुन ने सब जान लिया खेल मारने का, मरने का। वह कोई छोटा-मोटा सैनिक नहीं है; उससे बड़ा कोई सैनिक नहीं हुआ। वह प्रतिमान है सैनिकों का। उसने सब जान लिया; सब तरह के खेल हिंसा के जान लिए। इस तरफ या उस तरफ उसका कोई भी मुकाबला नहीं है। वह बेजोड़ है। इस बेजोड़ सैनिक के मन में संन्यास का भाव आ रहा है। छोटे-मोटे सैनिक के मन में नहीं आता; अभी सेना की यात्रा बाकी है, अभी लड़ना बाकी है। यह लड़ चुका, जीत चुका, सब देख चुका; सबको व्यर्थ पाया, संन्यास का भाव उठ रहा है।
इसलिए तुम चकित होओगे, क्षत्रियों ने जितने संन्यासी पैदा किए हैं,
और जितने गहन संन्यासी, उतने ब्राह्मणों ने पैदा नहीं किए। क्षत्रियों की बात ही और है। उन्होंने देख लिया सब राग-रंग हिंसा का, इसलिए अहिंसा की बात उनकी समझ में आती है।
इसलिए मैं गांधी और महावीर की स्थिति को बड़ा भिन्न मानता हूं। महावीर क्षत्रिय हैं; गांधी बनिया हैं। महावीर जिनको समझा रहे थे वे सब सैन्य-जीवन में निष्णात लोग थे; गांधी जिनको समझा रहे थे वे सब डरे हुए, डरपोक लोग थे, भयभीत लोग थे। अन्यथा एक हजार साल तक कोई कौम गुलाम रहती है? और एक छोटी सी कौम इतनी विराट कौम को तीन सौ साल तक, दो सौ साल तक गुलाम रख ले! उसके पहले आठ सौ साल तक इसलाम गुलाम रखे! एक हजार साल लंबे समय तक जो कौम गुलाम रही हो, वह कोई बहादुरों की कौम नहीं हो सकती। वे डरपोक हैं, कमजोर हैं, कायर हैं। गांधी कायरों से बोल रहे थे।
और इसलिए गांधी की अहिंसा सिर्फ एक तरकीब थी। मनुष्य बहुत तरकीबें खोजता है अपनी कायरता को छिपा लेने की। और गांधी की बात कायरों को जंच गई और काम भी कर गई। काम भी कर गई, लेकिन काम होते ही सब बिखर गया। क्योंकि जैसे ही कायर ताकत में आए, फिर वे भूल गए अहिंसा वगैरह। बिल्कुल आसान था ब्रिटिश हुकूमत से लड़ना अहिंसा से, क्योंकि हिंसा से लड़ने की हमारी कोई सामर्थ्य ही न थी। लेकिन जैसे ही शक्ति में आई अहिंसकों की सेना, वैसे ही वे सब हिंसक हो गए, वैसे ही उठा ली बंदूक।
यह कायर की अहिंसा थी जो अपने को छिपा रहा था। अन्यथा असली रूप तो तब प्रकट होता जब सत्ता हाथ में आती। अगर ये असली अहिंसक थे तो जब तुम बिना सत्ता के अहिंसक रह सके तो सत्ता में तो तुम्हें बिल्कुल अहिंसक हो जाना

था। जब दुश्मन से तुम लड़ सके अहिंसा से तो अपने ही लोगों को समझाने में अहिंसा काम न आई? अपने ही लोगों की छाती में गोली दागने में तुम्हें रास्ता दिखाई पड़ता है?
साफ है मामला। तुम्हारे हाथ में गोली न थी, न हाथ तैयार थे, न हिम्मत
थी गोली चलाने की अंग्रेज के खिलाफ। लेकिन अब ये गरीब हिंदुस्तानियों के खिलाफ तो तुम गोली मजे से चला सकते हो; कोई अड़चन नहीं है। हाथ में बंदूक भी है, ताकत भी है, चलाओ गोली।
तो जितनी गोली इन पच्चीस साल की आजादी में अहिंसावादियों ने चलाई है, गांधीवादियों ने चलाई है, उतनी अंग्रेजों ने अपने पूरे दो सौ साल में नहीं चलाई थी। सच बात तो यह है कि गांधी की अहिंसा जीत सकी, क्योंकि अंग्रेज कौम बड़ी विशिष्ट कौम है। अन्यथा जीत नहीं सकती थी।
थोड़ी देर को समझो कि अंग्रेजों की जगह जर्मन होते; गांधी-वांधी की कोई स्थिति नहीं थी। अंग्रेज बड़ी सुसंस्कृत कौम है। वह अहिंसा की भाषा को समझ सकी। जर्मन होते, मिट्टी में मिला देते। गांधी को कोई इतना सम्हाल कर रखने की जरूरत नहीं। तुम थोड़ा सोचो, अंग्रेज गांधी को न मार पाए और हिंदुओं ने खुद मार दिया! अंग्रेजों को क्या दिक्कत थी इस आदमी को मिटाने में? इतना आसान मामला था, इससे ज्यादा आसान कुछ भी नहीं था कि इस आदमी को मिटा दो, झंझट खतम करो।
लेकिन नहीं; अंग्रेज जाति के पास एक अंतःकरण है, एक समझ है; उदार है।
यह आदमी अहिंसक था तो इसको मिटाया नहीं; इसको बचाया, सम्हाला; इसको सब तरह से सम्हाला; और धीरे से इसको राज्य भी सौंप दिया। फिर हमने ही मार डाला। वल्लभ भाई पटेल न बचा सके जो कि गांधी के सरदार थे, और अंग्रेज बचाए रहे। और ऐसी संभावना है पूरी कि गांधी के मारने में जाने-अनजाने गांधीवादियों का भी हाथ है। कहता हूं, जाने-अनजाने। अचेतन मन से वे भी चाहते थे कि अब यह बुड्ढा खतम हो, क्योंकि अब यह एक उपद्रव था। पहले तो यह नेता था, अब यह एक उपद्रव था। पहले तो यह कायरों को छिपाने का आवरण था। और अब? अब यह हर चीज में अड़ंगा डाल रहा था। क्योंकि यह अब भी अपनी अहिंसा का राग लगाए हुए था। गांधी की अहिंसा वस्तुतः कायर आदमी की सांत्वना है। और गांधी ने पूरा अहिंसा का शास्त्र बड़ी कायरता से विकसित किया। अगर तुम गांधी का जीवन ठीक से समझने की कोशिश करो तो तुम पाओगे, यह आदमी अपनी जवानी में बहुत कायर आदमी था। इतना कायर कि कहना मुश्किल है। जब वे भारत से यूरोप की यात्रा पर जा रहे थे तो कसम मां ने दिला दी ब्रह्मचर्य की।
वह कसम भी कायरता में ही खाई होगी; क्योंकि मां कहती थी, जाने न देंगे, अगर ब्रह्मचर्य की कसम न खाई। तो कसम खा ली, क्योंकि जाना था। एक सज्जन से मित्रता हो गई जहाज पर। और जब कैरो में जहाज रुका तो वे सज्जन वेश्या के घर जा रहे थे, जैसा कि जहाज में यात्रा करने वाले लोग, हर जगह जहां जहाज रुकता है, स्त्रियों की तलाश करने निकलते हैं। और हर जहाजी नगर वेश्याओं का घर हो जाता है। वह आदमी एक वेश्या के यहां जा रहा था। उसने कहा कि आओ, चलो भी! गांधी इतने कायर कि उससे यह न कह सके कि मुझे नहीं जाना है। तब तुम्हें समझ में आएगा कि ब्रह्मचर्य का व्रत भी कैसे लिया होगा। मां ने कहा लो, तो ले लिया। इस आदमी ने कहा चलो, तो अब उनको ऐसा लगा अगर मैं कहूं कि मुझे नहीं जाना है या ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया है तो यह आदमी समझेगा कि पता नहीं नपुंसक है, क्या है, क्यों डरता है। डर के मारे उसके साथ चले गए। हाथ-पैर कंप रहे हैं, क्योंकि व्रत लिया है। डर लग रहा है कि अब यह बड़ी मुसीबत हुई। और इसको भी न नहीं कह सकते और वह आदमी ऐसा है जिद्दी कि वह सुनेगा भी नहीं। वह ठीक वेश्या के घर ले गया। उसने जाकर वेश्या के कमरे में उनको प्रवेश भी करवा दिया।
वे उस वेश्या से भी न कह सके कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है और मुझ पर कृपा करो, मुझे जाने दो, मैं बड़ी भूल में आ गया। वे आंख बंद करके बैठ गए वहां। हाथ कंप रहे हैं, पसीना बह रहा है; वह वेश्या बेचारी सेवा कर रही है कि यह मामला क्या हो गया! किसी तरह हिम्मत जुटा कर वहां से वापस लौटे। उनका अगर पूरा जीवन पढ़ो तो तुम पाओगे कि सारे जीवन का सूत्र कायरता थी। वे भीरु आदमी थे और उनका धर्म भीरु का धर्म था। और उसी भीरुता में से

उन्होंने धीरे-धीरे अहिंसा का शास्त्र निकाला। तो कायरता तो छिप गई और अहिंसा ऊपर आ गई।
मगर बहुत मुश्किल है, क्योंकि एक दफा जब हम एक आदमी को स्वीकार कर लेते हैं, पूजने लगते हैं, तो कभी उसके जीवन का ठीक-ठीक विश्लेषण नहीं करते, और कभी उसके जीवन की पर्तों में नहीं उतरते कि उसका जीवन कैसे निर्मित हुआ।
महावीर की बात और है। वह एक क्षत्रिय की अहिंसा थी। वह अहिंसा किसी कायरता से पैदा नहीं हो रही थी। वह अहिंसा बड़े अभय से आई थी। और कृष्ण भी क्षत्रिय हैं; वे भी समझ लेते महावीर की अहिंसा को। मोहम्मद भी क्षत्रिय हैं; वे भी समझ लेते महावीर की अहिंसा को। ये लड़ाके हैं, और अहिंसा तो आखिरी लड़ाई है। तब तुम प्रेम से लड़ते हो, मगर वह लड़ाई है। हिंसा में तुम घृणा से लड़ते हो, क्योंकि तुम्हें अपने प्रेम का भरोसा नहीं है। और हिंसा में तुम तलवार उठाते हो, क्योंकि तुम्हें अपने बल पर भरोसा नहीं है, तलवार का सहारा लेते हो।
अहिंसा आदमी की आखिरी ताकत है। तब वह तलवार छोड़ देता है, क्योंकि हाथ काफी हैं। तब वह शस्त्र छोड़ देता है, क्योंकि हृदय काफी है। तब वह हमला नहीं करता, क्योंकि प्रार्थना काफी है। तब वह तुम्हें अपने प्रेम से हरा देता है। वह तुम्हें हराना भी नहीं चाहता, क्योंकि वह भी व्यर्थ है। वह तुम्हारे ऊपर जीतना भी नहीं चाहता, क्योंकि वह भी हिंसा है। वह तुमसे हार जाता है, और तुम्हें हरा देता है।
वही लाओत्से का पूरा शास्त्र है कि तुम हारो। और तुम जिससे हार जाओगे उसे तुम हरा दोगे। इसलिए लाओत्से स्त्रैण शक्ति का बड़ा हामी और बड़ा तरफदार है। वह कहता है, स्त्री की ताकत क्या है? स्त्री की ताकत यह है कि वह जिसको प्रेम करती है उससे हार जाती है। और तुम्हें पता है कि वह हार कर तुम पर पूरा कब्जा कर लेती है। तुम्हें लगता है तुम जीत गए; जीतती वही है। एक कमजोर से कमजोर स्त्री जो तुम्हारे प्रेम में तुमसे हार जाती है,
और तुम्हारे कंधे का ऐसा ही सहारा लेती है जैसे कोई लता वृक्ष का सहारा लेकर चढ़ती है--बिल्कुल कमजोर, अपने में खड़ी भी न हो सकेगी लता, वृक्ष का सहारा चाहिए। एक स्त्री बिल्कुल हार जाती है; लता की तरह तुम्हारे चारों तरफ लिपट जाती है--बिल्कुल हारी हुई। लेकिन अंततः तुम पाओगे कि वह जीत गई, तुम हार गए। वह बिना कहे, जो करवाना चाहती है, करवा लेती है। वह बिना इशारे के तुम्हें चलाती है। वह तुम्हारे पीछे होती है, लेकिन वस्तुतः तुम्हारे आगे होती है। उसकी तरकीब आगे होने की यही है कि वह तुम्हारे पीछे हो जाती है। वह तुम्हें प्रेम में दबा लेती है। वह तुम्हें सेवा से भर देती है। वह तुम्हारे आस-पास इतनी कोमल हवा को पैदा कर देती है कि तुम उस हवा को तोड़ना भी न चाहोगे।
जब भी कोई स्त्री प्रेम में होती है तब जो घटना घटती है वही अहिंसक के पास भी घटती है। हिंसा पुरुष के मन का लक्षण है। अहिंसा स्त्री के हृदय का भाव है।
अहिंसा से ही अहिंसा आती है; हिंसा से कभी अहिंसा नहीं आती। लेकिन ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जब हिंसा-अहिंसा के बीच चुनाव ही नहीं होता; चुनाव अच्छी हिंसा और बुरी हिंसा के बीच होता है। और कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है कि चुनाव अच्छी अहिंसा और बुरी अहिंसा के बीच होता है। और यही मैं फर्क करता हूं महावीर और गांधी की अहिंसा में। महावीर की अहिंसा, बात और। उसके भीतर अभय है; वह अच्छी अहिंसा है। गांधी की अहिंसा, बात और। उसके भीतर भय है और कायरता है। वह बुरी अहिंसा है।
तो चार चीजें हैं संसार में। हिंसा और अहिंसा दो चीजें ही होतीं तो आसान हो जाता मामला; जटिल है मामला। यहां अच्छी अहिंसा भी है, रुग्ण अहिंसा भी है। यहां स्वस्थ हिंसा है और रुग्ण हिंसा भी है। और इन चारों के बीच केवल वही चुनाव कर सकता है जिसकी अंतःप्रज्ञा बहुत थिर हो गई हो। जब तुम चीजों के आर-पार देखने में समर्थ हो जाओगे तुम्हारे ध्यान से, तभी तुम्हें साफ हो पाएगा। क्योंकि बुरी अहिंसा भी अहिंसा मालूम पड़ती है और अच्छी हिंसा भी हिंसा मालूम पड़ती है। इसलिए तुम्हें या तो मोहम्मद और

कृष्ण हिंसक मालूम पड़ेंगे, अगर तुम अच्छी हिंसा को देखने में समर्थ नहीं हो। और या तुम्हें गांधी अहिंसक मालूम पड़ेंगे, अगर तुम बुरी अहिंसा को पहचानने में समर्थ नहीं हो।
तुम्हारी प्रज्ञा इतनी गहन जब हो जाएगी, जब विचार शांत हो जाएंगे और तुम्हारा मन का दर्पण उजला होगा, धूल हट गई होगी, तभी तुम देख पाओगे। और तब तुम हर जगह यह बात पाओगे कि यहां अच्छा चरित्र भी है और बुरा चरित्र भी है; यहां अच्छे अपराधी हैं, बुरे अपराधी भी हैं; यहां संत भी अच्छे हैं और बुरे संत भी हैं। क्योंकि तुम्हें यह लगेगा कि यह तो बड़ी मैं अटपटी बात कह रहा हूं, क्योंकि संत यानी अच्छा। लेकिन संतत्व भी अगर भय पर खड़ा हो तो बुरा और असंतत्व भी अगर अभय पर खड़ा हो तो अच्छा।
जीवन थोड़ा जटिल है; उतना सरल नहीं जितना तुम गणित को सरल पाते हो। और जीवन की जटिलता को पहचानने की क्षमता जब तक विकसित न हो, तब तक बहुत सी बातें जो मैं तुमसे कहता हूं, तुम समझ न पाओगे। और डर यह है कि तुम कहीं उलटा न समझ लो। इसलिए बहुत होश से मेरे साथ चलना, क्योंकि बहुत बार मैं बहुत खतरनाक रास्ते पर चलता हूं। चलना जरूरी है, क्योंकि ऐसे ही चल-चल कर तुम्हारा अभ्यास भी होगा और खतरनाक रास्ते भी सुगम और सरल हो जाएंगे।

आखिरी सवालः एक मित्र ने पूछा है कि अठारह वर्ष की उम्र से, कैसे प्रबुद्ध हो जाएं, इसकी ही उत्कंठा रही है। प्रबुद्धता तो नहीं मिली, एक सतत सिरदर्द पैदा हो गया है; एक तनाव, एक बेचैनी। और वह बेचैनी धीरे-धीरे चौबीस घंटे का सिरदर्द बन गई है। तो अब क्या करें?

बन ही जाएगी। क्योंकि प्रबुद्धता को पाने की आकांक्षा प्रबुद्धता के पाने में बाधा है। तुम उसे इस तरह न पा सकोगे, चाह कर न पा सकोगे। क्योंकि चाह तो तनाव पैदा करेगी; तनाव सिरदर्द बन जाएगा। और इस संसार की चीजों को पाना हो तो शायद तुम कोशिश करके पा भी लो; उस संसार की चीजें तो तुम्हारी मौन दशा में ही अवतरित होती हैं। उनको पाने का ढंग ही यही है कि तुम्हारे भीतर पाने वाला भी खो जाए। अन्यथा सिरदर्द पैदा हो जाएगा।
अब क्या किया जाए?
प्रबुद्धता को पाने का ख्याल छोड़ दो। इस क्षण आनंदित और शांत होने की फिक्र लो। कल की बात ही मत पूछो और कल की बात ही मत सोचो। यह क्षण आनंद में बीत जाए, काफी। क्योंकि दूसरा क्षण इसी क्षण से तो पैदा होगा। अगर यह क्षण आनंद में बीत गया तो दूसरा क्षण भी अपने आप और गहरे आनंद में बीतेगा। आएगा कहां से दूसरा क्षण? दूसरा क्षण भी तुमसे ही पैदा होता है। तुम अगर प्रसन्न हो अभी तो कल भी प्रसन्न होओगे। तुम कल की बात ही मत पूछो। आज जीओ! और जो व्यक्ति भी आज जीता है, उसके सिरदर्द खो जाते हैं।
फिर भी, हो सकता है, लंबे अभ्यास से सिरदर्द न केवल मानसिक रहा हो, शारीरिक हो गया हो; न केवल मन में रहा हो, बल्कि मस्तिष्क के स्नायुओं में प्रवेश कर गया हो। तो फिर एक काम करो; सिरदर्द को हटाने की कोशिश मत करो, लाने की कोशिश करो।
यह तुम्हें बहुत कठिन मालूम पड़ेगा, लेकिन यह बड़ा अदभुत उपाय है। और न केवल सिरदर्द में, बहुत सी बातों में कारगर है।
सिरदर्द को तुम जितना हटाने की कोशिश करते हो, तुम उतने ही तनाव से भर जाते हो। और सिरदर्द पैदा हो जाता है। पहला सिरदर्द तो रहता ही है; दूसरा सिरदर्द कि सिरदर्द को कैसे हटाएं। सिरदर्द है, उसे स्वीकार कर लो। स्वीकार करते ही, तुम्हारे स्नायु शिथिल हो जाएंगे। स्वीकार करते ही आधा सिरदर्द तो गया। न केवल स्वीकार कर लो, बल्कि अहोभाव से परमात्मा के प्रति अनुगृहीत भी हो जाओ--कि तूने सिरदर्द दिया, जरूर कोई कारण होगा, जरूर कोई राज होगा, हम स्वीकार करते हैं। हमें कुछ पता भी नहीं कि इस सिरदर्द से कल क्या फायदा होने वाला है। कुछ पता नहीं। हम स्वीकार करते हैं।
तुम सिरदर्द को लाने की कोशिश करो कि आ जाए। जब सिरदर्द हो, तब तुम पूरी कोशिश करो कि वह अपनी पूरी त्वरा को उपलब्ध हो जाए, तीव्रता को उपलब्ध हो जाए। और तुम चकित हो जाओगे कि कुछ ही दिनों में जितना तुम लाने

की कोशिश करते हो उतना ही वह आना मुश्किल हो गया। और जितना तुम उसे त्वरा देने की कोशिश करते हो वह उतना ही कम हो गया। और जितना तुम स्वीकार करते हो वह उतना ही समाप्त हो गया।
यही लाओत्से की विधि है। जीवन के दुख को स्वीकार कर लो और दुख चला जाता है। जो भी हो रहा है, उसे स्वीकार कर लो; संघर्ष मत करो। संघर्ष के हटते ही सभी चीजें सरल और शुभ और शांत और आनंदपूर्ण हो जाती हैं।
एक युवक यहां पूना में है। वह एक कालेज में प्रोफेसर है। उसने कोई पांच साल पहले मुझे आकर कहा कि एक बड़ी मुसीबत है उसकी। और मुसीबत यह है कि वह भूल जाता है और बार-बार इस तरह चलने लगता है जिस तरह स्त्रियां चलती हैं। तो कालेज में तो मुसीबत हो ही जाएगी। कहीं भी होओ तो मुसीबत होगी, लोग हंसेंगे; फिर कालेज तो सबसे ज्यादा खतरनाक जगह हो गई। वहां हजार, पांच सौ विद्यार्थी, और कोई प्रोफेसर स्त्रियों जैसा चले, तो वह तो मजाक का, हंसी का आधार बन गया। और वह जितना इससे बचने की कोशिश करता है--क्योंकि वह सम्हल कर जाता है, एक-एक कदम सम्हल कर उठाता है--लेकिन जितना ही वह बचने की कोशिश करता है उतनी ही मुश्किल में पड़ जाता है।
तो मैंने उस युवक को कहा, तू एक काम कर, तू स्त्रियों जैसा चलने का अभ्यास कर। हंसी तो हो ही रही है, मजाक तो हो ही रही है, बदनामी तो हो ही रही है; अब इससे ज्यादा कुछ और होगा नहीं। अब जब हो ही रहा है स्त्री जैसा चलना, तो कुशलता से चलो।
उसने कहा, क्या आप कहते हैं! मैं मरा जा रहा हूं इसको हटा-हटा कर और आप कहते हैं कि अभ्यास करूं?
मैंने कहा, तू हटा-हटा कर हटा नहीं पाया, हमारी भी बात सुन ले। तू कल अब कालेज जा और घर से ही स्त्री जैसा चलने की कोशिश करता हुआ जा।
डरा बहुत, पर उसने हिम्मत की। और तीन महीने तक निरंतर, जब भी वह कालेज जाए, तो होशपूर्वक स्त्री जैसा चलने की कोशिश करे। लेकिन तीन महीने में एक बार भी सफल न हो पाया, स्त्री जैसा न चल पाया।
मन का एक यंत्र है; कुछ चीजें हैं जो अचेतन हैं। अगर तुम उन्हें चेतन बना लोगे, विलीन हो जाएंगी। कुछ चीजें इसीलिए जीती हैं, क्योंकि तुम उनसे लड़ते हो। अगर तुम स्वीकार कर लो, वे समाप्त हो जाएंगी।
यही मैं सिरदर्द के संबंध में कहता हूं। और यही तुम्हारे जीवन की बहुत सी चीजों के संबंध में तुम प्रयोग करके देखना। अलग-अलग होंगे उपद्रव तुम्हारे जीवन में, लेकिन स्वीकार करना, अहोभाव से स्वीकार करना, और फिर देखना, तुमने उनका प्राण ही छीन लिया! तुमने उनकी जड़ काट दी! तुमने मूल स्रोत पर चोट कर दी!
आज इतना ही।

एक सौ इक्कीसवां प्रवचन

# जीवन कोमल है और मृत्यु कठोर

Chapter 76

Hard And Soft

When man is born, he is tender and weak;
At death, he is hard and stiff,
When the things and plants are alive,
They are soft and supple;
When they are dead, they are brittle and dry.
Therefore hardness and stiffness are
the companions of death,
And softness and gentleness are
the companions of life.
Therefore when an army is headstrong,
It will lose in battle.
When a tree is hard, it will be cut down.
The big and strong belong underneath.
The gentle and weak belong at the top.

अध्याय 76

कठोर और कोमल

जब आदमी जन्म लेता है ,
वह कोमल और कमजोर होता है ;
मृत्यु के समय वह कठोर और सख्त हो जाता है।
जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं ,
तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं ;
और जब वे मर जाते हैं ,
वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं।
इसलिए कठोरता और दुर्नम्यता मृत्यु के साथी हैं ;
और कोमलता और मृदुता जीवन के साथी हैं।
इसलिए सेना जब हठी होगी ,
वह युद्ध में हार जाएगी।
जब वृक्ष कठिन होगा , वह काट दिया जाएगा।
बड़े और बलवान की जगह नीचे है।
सौम्य और कमजोर की जगह शिखर पर है।

लाओत्से से ज्यादा सूक्ष्म जीवन का निरीक्षक खोजना कठिन है। निरीक्षण तो बहुत लोग जीवन का करते हैं , लेकिन निरीक्षण में शुद्धता नहीं होती ; चित्त दर्पण की भांति नहीं होता ; विचारों से भरा होता है। इसलिए निरीक्षण निरीक्षण न रह कर व्याख्या बन जाता है ; विचार सम्मिलित हो जाते हैं। और विचार निरीक्षण की शुद्धता को नष्ट कर देते हैं।

दो तरह के निरीक्षण हैं। एक निरीक्षण है जब तुम विचारों से भरे हुए जीवन को देखते हो। तब तुम जीवन को नहीं देखते। तुम अपने विचारों की ही छवि जीवन में देख लोगे। तब तुम अपने विचारों को ही जीवन पर आरोपित कर लोगे। तब तुम जो देखना ही चाहते थे वही देख लोगे। वही नहीं , जो है , वरन वह जो तुम पहले से ही मान बैठे थे --तुम्हारा विश्वास , तुम्हारी धारणा , तुम्हारा

धर्म, तुम्हारा शास्त्र, तुम जीवन में देख लोगे। और तब तुम जीवन के सम्यक निरीक्षक नहीं हो।
जीवन को तो ऐसे देखा जाना चाहिए जैसे दर्पण देखता है--खाली; शून्य।
जिसके पास अपना जोड़ने को कुछ भी नहीं है, जो सिर्फ दिखलाता है वही जो है।
शांत झील; एक तरंग भी नहीं। उगता है चांद, बदलियां आकाश में गतिमान होती हैं; बनता है प्रतिबिंब। फिर एक और झील है, तरंगायित, लहरों से भरी। तब भी चांद का प्रतिबिंब तो बनता है, लेकिन हजार-हजार खंडों में टूट जाता है। तुम चांद को खोज न पाओगे। लहर-लहर पर चांद फैला होगा। तुम्हें पूरी झील पर ही चांदनी फैली हुई मालूम पड़ेगी। चांद को पकड़ना मुश्किल होगा।
तुम्हारा मन विचार की तरंगों से भरा है। जब तुम पांडित्य लेकर आते हो प्रकृति के पास तब तुम चूक जाते हो। तब तुम्हें जरूर कुछ दिखाई पड़ेगा, लेकिन तुम इस धोखे में मत पड़ना कि जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है वह सत्य है। वह केवल तुम्हारे विचार की अनुगूंज है। तुमने जो पहले से ही स्वीकार कर लिया था, वही प्रतिफलित हो रहा है। लाओत्से बड़ा शुद्ध निरीक्षक है। वह कोई विचार लेकर प्रकृति के पास नहीं गया है। उसने तथ्यों को सीधा-सीधा देखना चाहा है। बड़ा कठिन है; शायद इससे कठिन और कुछ भी नहीं है। क्योंकि यही तो मार्ग है सत्य के उदघाटन का।
लाओत्से न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न बौद्ध है। लाओत्से का कोई धर्म नहीं है। लाओत्से का कोई शास्त्र भी नहीं है। लाओत्से ने जो भी देखा है वह किसी शास्त्र, किसी शब्द की आड़ से नहीं देखा; सब हटा कर देखा है। इसलिए जो लाओत्से को दिखाई पड़ा है वह बहुत कम लोगों को दिखाई पड़ता है। महावीर के वचनों में भी ऐसी शुद्धता नहीं है, क्योंकि महावीर के वचन बड़ी प्राचीन परंपरा पर आधारित हैं। कृष्ण के वचनों में भी ऐसी शुद्धता नहीं है, क्योंकि कृष्ण के वचन तो वेदों और उपनिषदों का सार हैं। बुद्ध के वचन महावीर और कृष्ण के वचनों से ज्यादा शुद्ध हैं, फिर भी लाओत्से के मुकाबले वैसी शुद्धता नहीं है। बुद्ध बगावती हैं। उन्होंने वेदों को इनकार कर दिया है, शास्त्रों को इनकार कर दिया है, उपनिषदों को ताक पर रख दिया है। लेकिन अगर कोई गौर से खोजेगा तो बुद्ध के प्राणों में उपनिषदों की गूंज मौजूद है; वह खो नहीं गई है। तुम उनके वचनों में छिपा हुआ उपनिषद पा लोगे। तुम उनके एक-एक शब्द में, भारत का जो पूरा अतीत है, उसका रंग पाओगे, गंध पाओगे।
मनुष्य-जाति के इतिहास में लाओत्से जैसा दूसरा व्यक्ति खोजना करीब-करीब असंभव है। कोई गूंज नहीं है अतीत की। किसी शास्त्र की कोई प्रतिध्वनि नहीं है। जैसे लाओत्से पहला आदमी है; उसके पहले जैसे आदमी हुए ही न हों। जैसे कोई संस्कृति, सभ्यता लाओत्से के पहले थी ही नहीं; जैसे कोई कंडीशनिंग नहीं है, कोई संस्कार नहीं है। लाओत्से बिल्कुल पहले आदमी की तरह जगत को देख रहा है।
और जिस दिन तुम भी इस तरह देख सकोगे जैसे पीछे कोई अतीत हुआ ही नहीं, जैसे तुम अभी और यहां बस पहली बार अवतरित हुए हो, खाली और शून्य, उस क्षण तुम लाओत्से को समझ पाओगे। उसके पहले तुम लाओत्से की व्याख्या समझ लोगे, लाओत्से को न समझ पाओगे। लाओत्से को समझने के लिए लाओत्से जैसा हो जाना जरूरी है। यह पहली बात ख्याल रखनी आवश्यक है।
लाओत्से को समझने की चेष्टा में इस बात का ध्यान रखना कि लाओत्से किसी सिद्धांत को सिद्ध करने नहीं निकला है। उसका कोई सिद्धांत ही नहीं है। वह तो जीवन के सिद्धांत को खोजने निकला है। वह आरोपित नहीं कर रहा है कुछ, अगर कुछ हो जीवन में तो उसे खोलने की कोशिश कर रहा है। वह तथ्यों के ऊपर पड़े घूंघट को उठा रहा है। उस घूंघट को उठाने में भी उसकी कला अनूठी है। क्योंकि वह घूंघट भी बहुत तरह से उठाया जा सकता है। रास्ते पर चलती एक स्त्री का घूंघट जबरदस्ती उठाया जा सकता है; बलात उसे निर्वस्त्र किया जा सकता है। लेकिन तब तुम देह को ही खोज पाओगे; उस देह के भीतर छिपी गरिमा विलुप्त हो जाएगी। क्योंकि बलात, सौंदर्य को देखा ही नहीं जा सकता। सौंदर्य नाजुक है, टूट जाता है। सौंदर्य अति कोमल है; आक्रामक रूप से तुम

सौंदर्य के रहस्य को कभी भी न जान पाओगे। यह तो ऐसा है जैसे झपट कर फूल तोड़ लिया, पंखुड़ियां उखाड़ दीं, और खोजने लगे कि सौंदर्य कहां है?
तुम राह चलती एक स्त्री को निर्वस्त्र कर सकते हो, लेकिन नग्न न कर पाओगे। यही तो महाभारत की मीठी कथा है कि दुर्योधन द्रौपदी को नग्न करना चाहता है; कर नहीं पाया। कहानी का अर्थ इतना ही है कि जब तुम जबरदस्ती किसी को नग्न करने की चेष्टा करोगे तब तुम हारोगे। कोई कृष्ण ने द्रौपदी का चीर बढ़ा दिया हो, ऐसा मत समझ लेना। कौन बैठा है किसी का चीर बढ़ाने को? लेकिन जीवन की व्यवस्था ऐसी है कि उसमें जब तुम जबरदस्ती किसी के वस्त्र उतारना चाहोगे तब चीर बढ़ता ही चला जाता है--जैसे कि चीर बढ़ता चला जाता है। तुम करते हो जितनी जबरदस्ती उतना ही रहस्य छिपता चला जाता है। रहस्य को खोलना हो तो फुसलाना पड़ता है, आक्रमण नहीं। रहस्य को खोलना हो तो प्रेम भरे आग्रह से जाना पड़ता है, हिंसात्मक दुराग्रह से नहीं।
दुर्योधन तो प्रतीक है उन सबका जिन्होंने जीवन के रहस्य को जबरदस्ती खोलना चाहा है। दुर्योधन बड़ा वैज्ञानिक है। और विज्ञान की यही विधि है। विज्ञान बलात्कार है, जबरदस्ती है। और इसलिए विज्ञान जितना ही चीजों को खोल रहा है, चीर बढ़ता जा रहा है। और चीर बढ़ता ही चला जाएगा।
एक बड़े वैज्ञानिक को मैं पढ़ रहा था, हेजेन बर्ग को। तो हेजेन बर्ग ने कहा है कि पहले हम सोचते थे कि अणु पर सब समाप्त हो जाता है। डेमोक्रीटस से लेकर अब तक यही ख्याल था कि अणु का अर्थ है आखिरी टुकड़ा, उसके आगे विभाजन संभव नहीं है। लेकिन फिर चीर बढ़ गया। अणु टूटा, परमाणु आया। फिर सोचा गया कि परमाणु बस आखिरी बात आ गई, रहस्य खुल गया। लेकिन चीर बढ़ गया। जब-जब जाना कि रहस्य खुल गया, तभी चीर बढ़ गया। परमाणु भी टूट गया। अब इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोटान। और हेजेन बर्ग ने लिखा है कि अब हम उतने आश्वासन से नहीं कह सकते कि यही आखिरी है। जल्दी ही इलेक्ट्रान भी टूटेगा। चीर बढ़ता ही चला जाता है। चीर बढ़ता ही चला जाएगा। क्योंकि रहस्य पीछे सरकता जाता है।
मैंने कहा कि तुम किसी स्त्री को निर्वस्त्र कर सकते हो, नग्न नहीं।
और जब तुम निर्वस्त्र कर लोगे तब स्त्री और भी गहन वस्त्रों में छिप जाती है। उसका सारा सौंदर्य तिरोहित हो जाता है; उसका सारा रहस्य कहीं गहन गुहा में छिप जाता है। तुम उसके शरीर के साथ बलात्कार कर सकते हो, उसकी आत्मा के साथ नहीं। और शरीर के साथ बलात्कार तो ऐसे है जैसे लाश के साथ कोई बलात्कार कर रहा हो। स्त्री वहां मौजूद नहीं है। तुम उसके कुंआरेपन को तोड़ भी नहीं सकते, क्योंकि कुंआरापन बड़ी गहरी बात है।
लाओत्से वैज्ञानिक की तरह जीवन के पास नहीं गया निरीक्षण करने। उसने प्रयोगशाला की टेबल पर जीवन को फैला कर नहीं रखा है। और न ही जीवन का डिसेक्शन किया है, न जीवन को खंड-खंड किया है। जीवन को तोड़ा नहीं है। क्योंकि तोड़ना तो दुराग्रह है; तोड़ना तो दुर्योधन हो जाना है। द्रौपदी नग्न होती रही है अर्जुन के सामने। अचानक दुर्योधन के सामने बात खतम हो गई; चीर को बढ़ा देने की प्रार्थना उठ आई। वैज्ञानिक पहुंचता है दुर्योधन की तरह प्रकृति की द्रौपदी के पास; और लाओत्से पहुंचता है अर्जुन की तरह-- प्रेमातुर; आक्रामक नहीं, आकांक्षी; प्रतीक्षा करने को राजी, धैर्य से, प्रार्थना भरा हुआ। लेकिन द्रौपदी की जब मर्जी हो, जब उसके भीतर भी ऐसा ही भाव आ जाए कि वह खुलना चाहे और प्रकट होना चाहे, और किसी के सामने अपने हृदय के सब द्वार खोल देना चाहे।
तो जो रहस्य लाओत्से ने जाना है वह बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी नहीं जान पाता। क्योंकि जानने का ढंग ही अलग है। लाओत्से का ढंग शुद्ध धर्म का ढंग है। धर्म यानी प्रेम। धर्म यानी अनाक्रमण। धर्म यानी प्रतीक्षा। और धीरे- धीरे राजी करना है। धर्म एक तरह की कोर्टिंग है। जैसे तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो, उसे धीरे-धीरे राजी करते हो। हमला नहीं कर देते। विज्ञान अति आतुर है, अधैर्यवान है। वह जल्दी हमला कर देता है। और तब उसके हाथ में जो लगता है वह कचरा है। उसकी उपयोगिता कितनी ही हो, उसमें अर्थ बहुत ज्यादा नहीं है। उससे यंत्र बन सकते हों, क्योंकि यंत्र मुर्दा हैं। और विज्ञान जबरदस्ती में प्रकृति को मार लेता है। इसलिए मृत्यु का

जो राज है वह तो उसे पता चल जाता है; इसलिए यंत्र बना लेता है, क्योंकि यंत्र यानी मुर्दा चीजें। लेकिन जीवन का रहस्य नहीं खोल पाता।
लाओत्से ऐसा गया है जीवन के तथ्यों के पास जैसा सुहागरात के दिन कोई अपनी नववधू के पास जाता है, आहिस्ता-आहिस्ता घूंघट उठाता है; उतना ही उठाता है जितने से ज्यादा वधू को राजी पाता है, उससे ज्यादा नहीं। और तब धीरे-धीरे जीवन अपने सब रहस्य खोल देता है। और लाओत्से के समक्ष जीवन ने ऐसे रहस्य खोल दिए हैं जो बहुत बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, तार्किकों के समक्ष छिपे रह गए हैं। लाओत्से के सामने छोटी-छोटी चीजों ने बड़े-बड़े द्वार खोल दिए हैं; राह के किनारे पत्थर माणिक-मोती हो गए हैं। लाओत्से को समझोगे तो पाओगे वह बहुत छोटी-छोटी चीजों की बात कर रहा है। लेकिन छोटी-छोटी चीजें बहुत बड़ी हो गई हैं। वैज्ञानिक बड़ी-बड़ी चीजों की बात करते हैं और बड़ी-बड़ी चीजें बहुत छोटी हो जाती हैं। वैज्ञानिक अगर चांद-तारों की भी बात करे तो छोटे हो जाते हैं। लाओत्से अगर फूल-पत्तों की भी बात करता है तो बड़े हो जाते हैं। धर्म का स्पर्श प्रत्येक चीज को विराट कर देता है। विज्ञान का स्पर्श प्रत्येक चीज को क्षुद्र कर देता है।
और वही स्पर्श पाने योग्य है जिससे हर कण ब्रह्म हो जाए। उस स्पर्श का क्या करोगे जिससे ब्रह्म को छुओ और वह अणु हो जाए? क्षुद्र को बना कर तुम क्या करोगे? क्योंकि जितना तुम्हारे पास क्षुद्र इकट्ठा हो जाएगा, उसमें घिरे--ध्यान रखना--तुम भी क्षुद्र हो जाओगे। तुम जो खोजोगे वह तुम्हें निर्मित करेगा। तुम जो उघाड़ लोगे वह तुम्हें भी बनाएगा। क्योंकि उघाड़ने वाला बाहर नहीं रह सकता घटना के। इसलिए जो क्षुद्र की खोज में लगता है और क्षुद्रतर को पाता चला जाता है, वह धीरे-धीरे क्षुद्र हो जाता है। हो ही जाएगा। लेकिन जो क्षुद्र को विराट करने की कला जानता है, जो जहां छूता है वहीं से अनंत का द्वार खुलने लगता है, उसके स्पर्श में धर्म आ गया। उसका स्पर्श पारस हो गया। और उसके स्पर्श में वह स्वयं भी तो घिर जाएगा, वह स्वयं भी धीरे-धीरे विराट हो जाएगा।
इन तथ्यों को ख्याल में रखो, फिर लाओत्से की बड़ी छोटी-छोटी बातों में छिपे बड़े राजों को समझना कठिन न होगा।
कहता है लाओत्से, "जब आदमी जन्म लेता है, वह कोमल और कमजोर होता है।"
सभी के घरों में बच्चे जन्म लेते हैं। लेकिन तुमने कभी यह देखा कि बच्चे कोमल हैं, कमजोर हैं? सभी के घर में बूढ़े मरते हैं। तुमने कभी यह देखा कि बूढ़े कठोर और सख्त हैं? अगर तुमने यह देखा तो तुम्हें जीवन का एक बड़ा रहस्य हाथ आ गया कि अगर चाहते हो कि सदा जीवित रहो तो कोमल बने रहना। किसी भी कारण से सख्त मत हो जाना। क्योंकि सख्ती हर हालत में मौत की खबर है।
और तुम्हें हजार तरह की सख्तियों ने घेर लिया है। फिर तुम तड़फड़ाते हो। और फिर तुम कहते हो, जीवन कहां है? अपने हाथ मरते हो, आत्मघात करते हो। क्योंकि सख्त होते चले जाते हो। और फिर पूछते हो, जीवन कहां? फिर पूछते हो, शांति नहीं। फिर पूछते हो, आनंद नहीं। फिर पूछते हो, जीवन की पुलक खो गई; नृत्य खो गया; काव्य नहीं। होगा कैसे? तुम सख्त हो, और सख्त बहुत-बहुत आयाम से हो।
और तुम्हारी सारी दीक्षा-शिक्षा तुम्हें सख्त बनाने की है। हिंदू कहते हैं, मजबूती से हिंदू हो जाओ, सख्त हिंदू। मुसलमान समझाते हैं, कठोर मुसलमान। कोई तुम्हें डिगा न सके; पत्थर की चट्टान हो जाओ। ईसाई सिखाते हैं कि चाहे मर जाना, मगर अपना सिद्धांत कभी मत छोड़ना। और तुम ऐसे लोगों की बड़ी प्रशंसा करते हो कि कितना दृढ़ आदमी है! लेकिन तुम्हें पता है कि दृढ़ता यानी सख्ती! सख्ती यानी मौत!
लाओत्से बड़ा छोटा सा तथ्य पकड़ रहा है। पर यह बड़ी खुली आंखों से देखी
गई बात है। देखता है, "जब आदमी जन्म लेता है, वह कोमल और कमजोर होता है; मृत्यु के समय वह कठोर और सख्त हो जाता है। जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं, तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं; और जब वे मर जाते हैं, वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं। इसलिए कठोरता और दुर्नम्यता मृत्यु के साथी हैं, और कोमलता और मृदुता जीवन के साथी हैं।"

यह किसी शास्त्र का वचन नहीं है। ऐसा तुमने किसी शास्त्र में लिखा देखा है? किसी उपनिषद में, किसी वेद में, किसी बाइबिल में, किसी कुरान में यह वचन है? अगर तुम खोजने चलोगे तो पाओगे, इससे विपरीत वचन तुम्हें सब शास्त्रों में मिल जाएंगे। यह वचन तो तुम्हें केवल जीवन के शास्त्र में मिलेगा। इसलिए लाओत्से बड़ा ताजा है--सुबह की ओस की भांति, रात के चांद-तारों की भांति, वृक्षों में आई नयी कोंपलों की भांति। एकदम ताजा है; जीवन से सीधी खबर ला रहा है। उसका संदेश जीवंत है। वह किसी शास्त्र को सिद्ध करने में नहीं लगा है। वह सिर्फ इतना कह रहा है कि जरा जीवन को गौर से देखो, और कुंजियां तुम्हें मिल जाएंगी।
तुमने अगर कुंजियां खोई हैं तो कहीं और नहीं, शास्त्रों में खो दी हैं। कोई हिंदू होकर बैठ गया है, कोई मुसलमान होकर बैठ गया है। दोनों मर गए। जिंदा आदमी कहीं हिंदू होता है? जिंदा आदमी कहीं मुसलमान होता है? जिंदा आदमी कहीं जैन होता है? जिंदा आदमी किसी संप्रदाय में हो कैसे सकता है? क्योंकि संप्रदाय तो मरा हुआ रूप है धर्म का। जिस धर्म का प्राण जा चुका वह संप्रदाय है। जहां से आत्मा निकल चुकी और लाश पड़ी रह गई, वह संप्रदाय है।
कभी जैन जीवित था जब महावीर जिंदा थे। तुम्हारे कारण जैन जीवित नहीं था, वह महावीर के कारण जीवित था। फिर महावीर की सुगंध गई, महावीर की लाश को तो तुम दफना आए; लेकिन महावीर के शब्दों की लाश को तुम ढो रहे हो। जो तुमने महावीर के शरीर के साथ किया था वही तुम्हें महावीर के शब्दों के साथ भी करना था, क्योंकि शब्द भी लाश हैं। सत्य तो निःशब्द है। वह जब महावीर उन शब्दों को बोलते थे तब उसमें जीवन था। क्योंकि भीतर निःशब्द से वे शब्द आते थे। भीतर के मौन से उनका जन्म होता था। भीतर के बोध से सिक्त थे वे, तरोताजा थे। अभी-अभी बगीचे से तोड़ा गया फूल था। अभी-अभी, क्षण भी न हुआ था, तोड़ा था और तुम्हें दिया था महावीर ने। लेकिन तुम्हारे हाथों में फूल कितनी देर जिंदा रहेगा? तोड़ते ही फूल की मृत्यु शुरू हो गई। थोड़ी-बहुत देर हरियाली रहेगी; वह भी थोड़ी देर में खो जाएगी। और जब महावीर खो जाएंगे, बगीचा खो जाएगा, जहां से फूल आते थे वह स्रोत खो जाएगा। तुम मुर्दा उन फूलों को लिए चलते रहोगे।
बाइबिलों में तुमने देखा होगा लोग फूलों को रख देते हैं। फिर फूल सूख जाते हैं; धब्बे छूट जाते हैं बाइबिल के पन्नों पर थोड़े से फूल के रंग के। एक मुर्दा फूल रखा रह जाता है, एक याददाश्त फूल की कि कभी जीवित था। बाइबिल में रखा यह फूल ही मुर्दा नहीं है, बाइबिल में रखे शब्द भी इतने ही मुर्दा हैं। सिर्फ याददाश्त हैं कि कभी जीवन उनमें था, सिर्फ स्मृतियां हैं, पदचिह्न हैं। नदी तो खो गई है सागर में, सिर्फ सूखे तट, रेत का फैलाव छूट गया है। उससे खबर मिलती है कि कभी यहां नदी थी। पर नदी अब वहां है नहीं।
संप्रदाय मृत घटना है। इसलिए सांप्रदायिक आदमी को तुम बहुत सख्त पाओगे। और धार्मिक आदमी को तुम सदा कोमल पाओगे। इससे तुम पहचान कर लेना। धार्मिक आदमी सुनम्य होगा। तुम उसे विनम्र पाओगे। वह झुकने को राजी होगा; वह दूसरे को समझने को राजी होगा। वह नये सत्यों को जगह देने को राजी होगा। अगर तुम नया आकाश दिखाओगे तो वह आंख नहीं बंद कर लेगा; वह अपने पुराने आकाश से नये आकाश को जोड़ कर और बड़े आकाश का मालिक हो जाएगा। तुम उसे अगर नया सत्य दोगे तो वह यह नहीं कहेगाः यह मैं नहीं मान सकता, क्योंकि यह मेरे शास्त्र में नहीं है! शास्त्र कितने छोटे हैं; सत्य कितना बड़ा है। सत्य किसी शास्त्र में कभी पूरा नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति हमेशा सुनम्य होगा; वह छोटे बच्चे की भांति होगा।
लाओत्से कहता है, कोमल और कमजोर। और यहीं सारा राज है। कोमलता तो तुम
भी चाहोगे, लेकिन कमजोरी तुम न चाहोगे। और कोमलता सदा कमजोरी के साथ होती है। कमजोरी तुम नहीं चाहते, इसलिए तुम सख्त होना चाहते हो। क्योंकि सख्ती हमेशा ताकत के साथ होती है। गणित सीधा है कि आदमी क्यों सख्त होना पसंद करता है। क्योंकि सख्त होने में ताकत मालूम पड़ती है, और कोमल होने में कमजोरी मालूम पड़ती है।

लेकिन लाओत्से यह कहता है कि जीवन ही कमजोर है; सिर्फ मौत ताकतवर है।
तुम मरे हुए आदमी को मार सकते हो? कोई उपाय ही न रहा। तुम मरे हुए आदमी
के साथ क्या कर सकते हो? मरे हुए आदमी को बदल सकते हो? अगर वह हिंदू था तो तुम उसको मुसलमान बना सकते हो? कैसे बनाओगे? मरे हुए आदमी के साथ तुम कुछ भी नहीं कर सकते। वह इतना सख्त हो गया, उसकी दृढ़ता का कोई अंत नहीं है। उसकी ताकत की कोई सीमा नहीं है। तुम लाख सिर पटको, तुम अंधे आदमी के हृदय तक आवाज न पहुंचा सकोगे, मरे हुए आदमी तक आवाज न पहुंचा सकोगे। जीवित आदमी निश्चित ही कमजोर है। जीवन का लक्षण कमजोर है। कमजोरी बड़ी गहन बात है। कमजोर का इतना ही अर्थ हो सकता है कि जो टूट सकता है, जो मिट सकता है, जो खो सकता है।
फूल उगता है; पास ही एक चट्टान पड़ी होती है। कल भी पड़ी थी, परसों भी पड़ी थी। कल भी पड़ी रहेगी, परसों भी पड़ी रहेगी। फूल सुबह उगा है, सांझ खो जाएगा। इसलिए क्या तुम कहोगे कि चट्टान फूल से श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्यादा मजबूत है? फूल को चाहो तो हाथ में मसल दो, और मिट्टी हो जाएगा। चट्टान को तोड़ना इतना आसान नहीं। शायद चट्टान को तोड़ने में तुम खुद ही टूट जाओ। और फूल को तुम्हें मसलने की भी जरूरत नहीं है। सिर्फ समय की बात है; सुबह उगा है, सांझ अपने से ही गिर जाएगा। लेकिन फूल के पास जीवन है। और फूल के पास एक सौंदर्य है। माना घड़ी भर को है, लेकिन है। और इसीलिए फूल कमजोर है, क्योंकि उसके पास कुछ है जो खो सकता है। चट्टान के पास कुछ भी नहीं है जो खो सके। ध्यान रखना, जिसके पास कुछ है वह कमजोर होगा, और जिसके पास कुछ भी नहीं है वह मजबूत होगा। और जितनी तुम्हारी भीतर की संपदा बढ़ती जाएगी, तुम उतने कमजोर होते जाओगे। क्योंकि उस संपदा के खोने की उतनी ही संभावना बढ़ती जाएगी।
बुद्ध से ज्यादा कमजोर आदमी तुम न पा सकोगे। लाओत्से से कमजोर आदमी तुम न पा सकोगे। क्योंकि वे कोमल हैं, और जीवन की महा संपदा के मालिक हैं। एक फूल नहीं खिला है बुद्ध और लाओत्से में, हजारों फूल खिले हैं। जिसके पास है, उसके पास ही तो खोने की संभावना होती है। जिसके पास है ही नहीं, वह खोएगा क्या?
मैंने सुना है। जापान में एक फकीर हुआ। पुरानी कहानी है कि सम्राट जब गांव के चक्कर लगाते थे रात में। सम्राट चक्कर लगा रहा था राजधानी का, कई बार उसने देखा कि वह फकीर हमेशा उसे जागा मिला। वह एक वृक्ष के नीचे या तो बैठा रहता, या खड़ा रहता, या चलता रहता। लेकिन जागा मिला। कभी गया--आधी रात गया, सुबह गया, सांझ गया--जब भी जाकर देखा, सारी बस्ती भला सो गई हो, वह फकीर जागा हुआ था। सम्राट बड़ा हैरान हुआ। उसने एक दिन, उसकी उत्सुकता न रुक सकी तो उसने पूछा कि मैं एक सवाल पूछना चाहता हूं। बहुत बार यहां से निकलता हूं, तुम पहरा किस चीज का दे रहे हो? क्योंकि सूखे रोटियों के टुकड़े पड़े देखे मैंने। टूटा-फूटा बरतन है। कोई चुरा कर ले जाने की भी चेष्टा न करेगा। फटी गुदड़ी है। जराजीर्ण वस्त्र हैं। तुम्हारे पास कुछ दिखाई नहीं पड़ता, जिस पर तुम पहरा दे रहे हो। तुम पहरा किस चीज का दे रहे हो?
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, कुछ है जो भीतर है। और जब से वह पैदा हुआ
है तब से खोने का डर भी पैदा हो गया। मैं बड़ा कमजोर और कोमल हूं। भीतर कोई चीज खिल रही है, जैसे एक कली खिल रही हो। अब तक तो बंजर था तुम्हारे जैसा ही; मजे से सोता था। कुछ था ही नहीं; खोने को कोई डर ही न था; एक रेगिस्तान था। अब एक छोटा सा मरूद्यान पैदा हो रहा है। अब भय लगता है। अब हाथ-पैर कंपते हैं। अब डर लगता है कि जो हुआ है कहीं वह न न हो जाए। और घटना इतनी कोमल है और इतनी सूक्ष्म है कि जरा भी चूक गया तो खो जाएगी, यह पक्का है। फूल अभी पक्का हाथ में आया भी नहीं है, सिर्फ आभास मिलने शुरू हुए हैं।
जब तुम ध्यान करने उतरोगे तब तुम्हें पता लगेगा कि भीतर एक फूल खिलना शुरू होता है। तब तुम्हारा एक-एक कदम सम्हल कर पड़ने लगेगा। तब तुम एक-एक शब्द होश से बोलोगे; क्योंकि तुम डरोगे, तुम्हारा ही कोई शब्द तुम्हारे ही प्राणों में उठती हुई नयी संभावना को नष्ट न कर दे। तब तुम क्रोध न कर सकोगे; इसलिए नहीं कि तुम दूसरों पर करुणावान हो गए हो, बल्कि अब तुम्हारे पास एक संपत्ति है जो क्रोध की आग में जल सकती है, झुलस सकती है। तुम झगड़ा न

करोगे। तुम विवाद में न पड़ोगे। क्योंकि तुम जानते हो, तुम्हारे पास कुछ बचाने योग्य है जो विवाद में चूक सकता है, नष्ट हो सकता है।
कुछ बहुमूल्य जब पैदा होता है तो तुम कमजोर हो जाते हो, इसको ध्यान में रखना। जैसे कि स्त्री जब गर्भवती होती है और एक नया जीवन उसके गर्भ में होता है तब कमजोर हो जाती है। लेकिन गर्भवती स्त्री से ज्यादा सुंदर स्त्री कहीं होती ही नहीं। और गर्भवती स्त्री के चेहरे पर जैसे सौंदर्य की आभा प्रकट होती है वैसी आभा इस स्त्री के चेहरे पर भी पहले न थी। क्योंकि गर्भवती स्त्री मरूद्यान हो रही है; पहले मरुस्थल थी। अब जीवन का उसमें फूल लग रहा है। लेकिन तब वह कोमल हो जाती है। तब वह पैर भी सम्हाल कर चलती है; उठती है तो सम्हाल कर उठती है। कुछ है जो बचाने योग्य है। उससे भी ज्यादा मूल्यवान उसमें कुछ है। अपने जीवन को खोकर भी, एक नये जीवन का सूत्रपात हो रहा है, उसे बचाना है। एक फूल खिल रहा है जो किसी भी क्षण मुर्झा सकता है।
इस दुनिया में तुम चट्टानों को ताकतवर पाओगे, फूलों को कमजोर। इससे
एक बड़ी भयंकर स्थिति पैदा होती है। वह स्थिति यह है कि कहीं तुम चट्टान न होने की आकांक्षा कर लो। माना कि चट्टान मजबूत है, लेकिन मुर्दा है। उसकी मजबूती को क्या करोगे? उसका मुर्दापन तुम्हें भी मार डालेगा। उस चट्टान को तोड़ने न तो शैतान बच्चे आएंगे, उस चट्टान को मिटाने न तो पशु-पक्षी आएंगे, उस चट्टान को न तो तोड़ने माली आएगा, उस चट्टान को तोड़ने कोई भी नहीं आएगा। बड़ी सुरक्षित है चट्टान। लेकिन उस सुरक्षा का तुम करोगे क्या? वह कब्र की सुरक्षा है।
जीवन तो कोमल है, और जीवन कमजोर है। और जब तक तुम कोमल और कमजोर होने
को राजी हो तभी तक तुम जीवन के धनी रहोगे। जिस दिन तुम सख्त और ताकतवर हुए उसी दिन तुम्हारे हाथ से जीवन की धारा सूखनी शुरू हो गई। क्योंकि केवल मृत्यु ही सख्त और शक्तिशाली हो सकती है। और तुम सब शक्तिशाली होना चाहते हो। इसलिए तुम कब्रें बन गए हो।
धार्मिक व्यक्ति कमजोर होना चाहता है। यह कमजोर शब्द तुम्हारे मन में
तो बड़ी निंदा से भरा है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति के लिए यही जीवन की सबसे बड़ी गहरी संपदा है कि वह कमजोर होना चाहता है। जब वह घुटने टेकता है और प्रार्थना के लिए आकाश की तरफ सिर उठाता है तब वह एक छोटे बच्चे से भी ज्यादा कमजोर है। वह कंपता है। उसके शब्द तुतला कर निकलते हैं। परमात्मा से क्या बोले? रोता है। घुटने टेक कर झुका हुआ बैठा व्यक्ति जो प्रार्थना में लीन है वह फिर से छोटा बच्चा हो गया है। उसके भीतर एक नये बच्चे का जन्म हो रहा है। उसको ही हम द्विज कहते हैं; जब तुम्हारे भीतर ऐसे कमजोर नये कोमल बच्चे का जन्म फिर से हो जाए तो तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ। तब तक तुम मरुस्थल थे, अब तुम अपने को ही जन्म देने की संभावना से भरे। अब तुम्हारे भीतर एक गर्भ का सूत्रपात हुआ जिससे तुम्हारा शाश्वत रूप, सनातन रूप प्रकट होगा।
लाओत्से ने बात पकड़ ली है। कोमलता तो तुम भी चाहोगे, लेकिन कमजोरी नहीं चाहते। इसी से उपद्रव है। और कोमलता हमेशा कमजोर होगी। कोमलता कहीं सख्त हो सकती है?
तो तुम हर हालत में जब भी शक्ति चाहते हो--और तुम शक्ति चाहते हो। नीत्शे कहता है कि आदमी के भीतर एक ही आकांक्षा, दि विल टु पावर, शक्ति की आकांक्षा है। नीत्शे और लाओत्से दो विरोधी छोर हैं। दोनों को साथ-साथ पढ़ना बड़ा उपयोगी है। क्योंकि तब तुम चीजों को ठीक उनकी अति में पाओगे। नीत्शे कहता है, शक्ति की आकांक्षा एकमात्र आत्मा है। और नीत्शे कहता है, मैंने फूल देखे, चांद-तारे देखे, झरने देखे, जल-प्रपात देखे, लेकिन मुझे सौंदर्य न मिला। सौंदर्य तो मुझे तब दिखाई पड़ा जब मैंने सैनिकों की एक टुकड़ी को कवायद करते देखा, और उनकी संगीनों पर चमकता हुआ सूरज देखा, और उनके पैरों की ताकत देखी, और जो छंद पैदा हो रहा था उनके चलने से, और उनकी संगीनों पर आई हुई सूरज की किरणों की चमक से जो रूप पैदा हो रहा था, उस क्षण मैंने सौंदर्य जाना।

यह सौंदर्य बड़ा सख्त सौंदर्य है। असल में, इसको जानने के लिए बड़ा पथरीला हृदय चाहिए। कोई आश्चर्य नहीं कि नीत्शे पागल होकर मरा। और कोई आश्चर्य नहीं है कि लाओत्से परम ज्ञानी होकर मरा।
शक्ति की आकांक्षा विक्षिप्तता में ले जाएगी। और तुम सब तरफ से शक्ति चाहते हो। धन इकट्ठा करते हो तो इसीलिए क्योंकि धन शक्ति का माध्यम है। जितना ज्यादा धन होगा उतनी शक्ति होगी। अगर तुम्हारी जेब में लाखों रुपये हैं तो इन लाखों रुपयों के कारण तुम बड़े शक्तिशाली हो। तुम जो चाहो करो। स्त्रियों को खरीदना हो खरीदो। नौकरों को खरीदना हो खरीदो। धन ने बड़ी सुविधा बना दी है। बिना धन के आदमी बहुत शक्तिशाली नहीं हो सकता। जब दुनिया में धन नहीं था और विनिमय की मुद्रा नहीं थी, तो लोग इतने शक्तिशाली नहीं हो सकते थे जितने धन के द्वारा हो गए। इसीलिए तो धन का इतना मूल्य हो गया लोगों के मन में। सब कुछ धन मालूम होता है।
तुम्हारी जेब में एक रुपया पड़ा है तो एक रुपया नहीं पड़ा है, हजारों चीजें पड़ी हैं। तुम चाहो तो एक आदमी को कहो, पांव दाबो! तो वह पैर दाबेगा। यह उसमें पड़ा है रुपये में। तुम एक स्त्री को कहो कि चलो प्रेम करो! वह प्रेम करेगी। यह पड़ा है उस एक रुपये में। भूखे हो, भोजन पड़ा है; प्यासे हो, पानी पड़ा है। एक रुपये में कितनी चीजें पड़ी हैं! इनको तुम बिना रुपये के कैसे खीसे में रखते? इसलिए रुपया प्रतीक हो गया शक्ति का। उसमें बड़ी चीजें छिपी हैं। तुम जो चाहो, जब चाहो, उसी वक्त होगा। इसलिए सब छोड़ो फिक्र, सिर्फ रुपया कमाओ।
शक्ति का खोजी कहता है कि रुपया कमाओ। फिर सब पीछे अपने आप चला आएगा। जीसस का वचन हैः फर्स्ट यी सीक दि किंगडम ऑफ गॉड, देन आल एल्स विल कम आटोमेटिकली बाइ इटसेल्फ। पहले खोज लो परमात्मा का राज्य और पीछे सब अपने आप चला आएगा।
शक्ति का पुजारी कहता हैः फर्स्ट यी सीक दि किंगडम ऑफ दि रूपी, देन एवरी थिंग विल फालो आटोमेटिकली। पहले रुपये का राज्य खोज लो, और तब सब अपने आप चला आएगा। और कुछ खोजने की जरूरत नहीं। पद चाहिए, पद मिलेगा; प्रतिष्ठा चाहिए, प्रतिष्ठा मिलेगी। रुपये का खोजी कहता है, धर्म चाहिए? वह भी मिलेगा। मंदिर बना देना, धर्मशाला बना देना, दान कर देना। रुपया होगा तो सब मिलेगा।
शक्ति का खोजी रुपया खोजता है, या राजनीति खोजता है। क्योंकि जितने बड़े पद पर होगा उतने हजारों लोग उसके हाथ में होंगे; उनका जीवन और मरण उसके हाथ में होगा। आखिर राष्ट्रपति होने का क्या सुख होता होगा? क्योंकि राष्ट्रपति होने के लिए लोग कैसे दुखस्वप्न से गुजरते हैं! कैसा कष्ट पाते हैं! हजार तरह की गालियां, घेराव, हजार तरह के उपद्रव, लेकिन राष्ट्रपति होकर रहते हैं। और जब राष्ट्रपति हो जाते हैं तो उनको मिलता क्या है? मिलती है ताकत। अगर चालीस करोड़ का मुल्क है तो चालीस करोड़ लोगों की जिंदगी और मौत उनके हाथ में है। युद्ध में उतार दें मुल्क को तो लाखों लोग मर जाएंगे। युद्ध को बचा दें तो लाखों लोग बच जाएंगे। बड़ी ताकत है। शक्ति का खोजी सभी तरह से शक्ति खोजता है।
अगर वह विवाह भी करता है तो एक पत्नी पर ताकत के लिए। अगर पत्नी विवाह करती है तो एक पति को गुलाम बनाने के लिए। अगर ऐसा आदमी बच्चे भी पैदा करता है तो सिर्फ ताकत के लिए। क्योंकि बच्चों से ज्यादा निरीह तुम कहां पा सकोगे किसी को! तुम्हारे ही बच्चे, जितनी मालकियत तुम उन पर कर सकते हो, किसी और पर दुनिया में न कर सकोगे। अगर तुम बहुत बड़े समाज के मालिक नहीं हो सकते तो कम से कम एक छोटे परिवार के मालिक तो हो सकते हो। तानाशाह तुम्हारे लिए स्टैलिन जैसा बनना मुश्किल होगा तो अपने-अपने घर में तो हर आदमी तानाशाह हो सकता है। वहां तो तुम्हारी आज्ञा चलेगी।
लेकिन जितनी तुम्हारे पास ताकत आती है, ध्यान रखना, उतने ही तुम मरते चले जाते हो, उतने ही तुम सख्त हो जाते हो। तुम्हारी नम्यता खो जाती है; तुम झुक नहीं सकते। धनपति कैसे झुकेगा? अकड़ा रहता है। त्यागी कैसे झुकेगा? अकड़ा रहता है।

ऐसा हुआ। एक जैन मुनि हैं आचार्य तुलसी। बहुत वर्ष पहले उन्होंने एक सम्मेलन किया। मुझे भी बुला भेजा। उन दिनों मोरारजी देसाई सत्ता में थे। वे भी आए। स्वभावतः, आचार्य तुलसी ऊंचे स्थान पर बैठे, सबको नीचे बिठाया। मोरारजी को बात खल गई। मोरारजी भी कोई छोटे महात्मा तो हैं नहीं। दोनों पद के आकांक्षी। अन्यथा निमंत्रित किया था लोगों को तो आचार्य तुलसी को साथ ही बैठना था। अतिथि थे ये लोग, और बुलाए गए थे। लेकिन वे अपने ऊंचे पद पर बैठे; सबको नीचे बिठाया। और किसी को तो नहीं अखरा, लेकिन मोरारजी को कष्ट हो गया। तो मोरारजी ने पहला ही सवाल पूछा कि यह जो गोष्ठी बुलाई गई है इसको हम इस सवाल से ही शुरू करें; मैं आपसे पूछता हूं कि आप ऊपर क्यों बैठे हैं और हम लोग नीचे क्यों बैठे हैं?
दो पदाकांक्षियों की मुठभेड़ हो गई। तुलसी भी थोड़े बेचैन हुए। जवाब भी कुछ न सूझा कि अब जवाब क्या दें! बात ही कोई सिद्धांत की होती तो समझा देते; जीवन की आ गई तो मुश्किल है। इधर-उधर देखने लगे। इतना ही कह सके कि चूंकि परंपरा है कि गुरु ऊपर बैठे। तो मोरारजी ने कहा, आप हमारे गुरु नहीं हैं। आप जिनके गुरु हों उनके साथ ऊपर बैठें; हम तो मेहमान हैं, और समानता की अपेक्षा रखते हैं।
मैंने देखा यह तो बात बिगड़ गई, और अब आगे कुछ चर्चा का कोई उपाय न रहा।
तो मैंने आचार्य तुलसी को कहा कि अगर आप मुझे कहें तो मैं मोरारजी को जवाब दूं। और अगर मोरारजी मेरा जवाब सुनने को राजी हों तो। अन्यथा मेरे बोलने का कोई सवाल नहीं। तुलसी जी तो चाहते थे कोई झंझट टले। उन्होंने कहा, जरूर। मोरारजी ने कहा, ठीक है आप जवाब दें; जवाब चाहिए।
मैंने उनको पूछा कि पहली तो बात यह, प्रश्न से ही हम जवाब की खोज करें। आपको यह अखरा क्यों? तुलसी जी ऊपर बैठे हैं; छिपकली देखिए और ऊपर बैठी है; कौआ और ऊपर बैठा है। अब इनसे कोई झगड़ा करने जाएंगे? न छिपकली से कोई झगड़ा, न कौआ से। तुलसी जी से भी क्या झगड़ा? बैठे रहने दें। यह कष्ट क्यों? यह पीड़ा कहां हो रही है? आप भी ऊपर बैठना चाहते थे; उस आकांक्षा को चोट लगी है। और मैं आपसे यह पूछता हूं कि जहां तुलसी जी बैठे हैं अगर वहीं आप भी बिठाए गए होते तो आपने यह सवाल पूछा होता? हम सब नीचे होते, आप भी उनके साथ ऊपर होते, आपने यह सवाल पूछा होता? इसलिए आप यह मत कहिए कि हम नीचे क्यों बिठाए गए हैं; आप इतना ही कहिए कि मैं नीचे क्यों बिठाया गया हूं। हम में मैं को मत छिपाइए; मैं को सीधा करिए। और अगर आप अपने मैं को ठीक से समझ लें तो तुलसी जी के मैं को समझने में कोई अड़चन न रहेगी। आप दोनों एक ही रास्ते के यात्री हैं। आपको अखर रहा है कि नीचे क्यों बिठाया गया; उनको मजा आ रहा है कि मोरारजी को नीचे बिठा दिया। दोनों की भाषा एक है। सवाल उठता नहीं है। अगर हम जो नीचे बैठे हैं इस तरह बैठे रहें कि जैसे हमें नीचे बिठाया या नहीं बिठाया बराबर है, तुलसी जी का मजा खो जाएगा नीचे बिठाने का। रस भी इसी में है कि भारत के वित्त मंत्री को नीचे बिठा दिया। और आपका कष्ट भी इसी में है कि भारत का वित्त मंत्री और नीचे बिठा दिया! आपका कष्ट और उनका सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। या तो वे अपना सुख छोड़ें, नीचे आ जाएं। या आप अपना कष्ट छोड़ दें और नीचे बैठने को राजी हो जाएं।
पर आदमी के अंधेपन की कोई सीमा नहीं है। मोरारजी को तो फिर भी समझ में आया--इसीलिए मैं कई बार अनुभव करता हूं कि राजनीतिज्ञ भी उतने राजनीतिज्ञ नहीं होते जितने तुम्हारे साधु पुरुष होते हैं--मोरारजी ने तो कहा कि सोचेंगे इस बात पर, विचार करेंगे। और बात को लीपापोती करके दूसरी चर्चा शुरू की। जब सब विदा हो रहे थे और मैं विदा लेने लगा तुलसी जी से तो उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रख कर कहा कि आपने अच्छा मुंहतोड़ जवाब दिया मोरारजी को। तब मैं बहुत चकित हुआ! यह जवाब मोरारजी को, तुलसी जी को नहीं? यह जवाब तो दोनों को था।
पदाकांक्षी त्याग से भी पद की ही तलाश करते हैं। महत्वाकांक्षी चाहे
धन इकट्ठा करें, चाहे धन छोड़ें, हर हालत में पद की ही आकांक्षा काम करती रहती है।
मुझे अभी पिछले सप्ताह ही एक पत्र मिला है तीन साध्वियों का तुलसी जी की, कि चूंकि वे मेरी किताबें पढ़ती थीं इसलिए तुलसी जी ने उन्हें संघ से

निष्कासित कर दिया। उन्होंने लिखा है कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गई हैं कि अब क्या करें। और उनका कहना यह है कि उनके आदेश के बिना हमने यह हिम्मत कैसे की कि आपकी किताबें पढ़ें!
तो यह कोई साधु होना न हुआ; यह तो सैनिक होने से भी बदतर हो गया। सैनिक
को भी कम से कम इतनी स्वतंत्रता है कि वह कौन सी किताब पढ़ना चाहे पढ़े। लेकिन किताब पढ़ने के लिए भी परतंत्रता! वह भी पूछा जाना चाहिए; आज्ञा के अनुसार। और चूंकि मना किया गया था, फिर भी उन्होंने किताब पढ़ीं, उन्होंने उन्हें निकाल बाहर कर दिया। अब वृद्ध साध्वियां, जिन्होंने जीवन कुछ किया नहीं, कुछ करने का उपाय भी नहीं है। उनमें से एक तो बीमार है जो चल-फिर भी नहीं सकती, जिनका कोई परिवार नहीं। उन्हें ऐसा फेंक देना साधुता का लक्षण तो नहीं। गहन असाधुता छिपी है।
लेकिन महत्वाकांक्षी हमेशा असाधु होता ही है। उसकी आकांक्षा यह होती
है कि मुझसे ऊपर कोई भी नहीं।
तुलसी जी मुझसे ध्यान के संबंध में समझना चाहते थे। तो उन्होंने कहा,
हम बिल्कुल एकांत में बात करेंगे। पर मैंने कहा, क्या एकांत की जरूरत है! और लोग भी मौजूद हो सकते हैं। क्योंकि और सब बातें तो आपने सबके सामने मुझसे की हैं। उन्होंने कहा, नहीं, यह जरा गहन बात है, एकांत में ही करेंगे। और एकांत में करने का कुल कारण इतना कि तुलसी जी के अनुयायियों को अगर पता चल जाए कि तुलसी जी भी ध्यान के संबंध में किसी से पूछते हैं, इन्हें अभी ध्यान का पता नहीं, तो पद संकट में पड़ जाएगा।
न कभी ध्यान किया है, न कभी ध्यान के संबंध में कुछ जाना है। शास्त्रों को पढ़ कर पंडित हो गए हैं लोग; कुछ जाना नहीं है। शब्द में कुशल हैं, लेकिन स्वयं में कोई गति नहीं है। हो भी नहीं सकती। क्योंकि स्वयं में तो गति तभी होती है जब तुम कोमल और कमजोर होने को राजी हो।
शक्ति की आकांक्षा का अर्थ है, तुम दूसरे पर कब्जा करना चाहते हो। और अगर गौर से देखो, बहुत गौर से देखो, तो कमजोर आदमी ही दूसरे पर कब्जा करना चाहता है। अब तुम बड़ी जटिलता में पड़ोगे। और कमजोर होने को जो राजी है वही असली शक्तिशाली है। क्योंकि उसे कोई भय ही नहीं है। ठीक है, अगर कमजोर और कोमलता जीवन का लक्षण है तो वह राजी है। वह मिटने को राजी है, लेकिन जीवन को खोने को राजी नहीं है। वह चट्टान होने के लिए तैयार नहीं है, वह फूल ही होने के लिए तैयार है। माना कि सांझ फूल गिर जाएगा, गिरेंगे। लेकिन जब तक फूल है तब तक फूल एक ऐसे अनंत को ला रहा है पदार्थ के जगत में, एक ऐसे सौंदर्य को उतार रहा है, रूप में उसे ला रहा है जिसका कोई रूप नहीं है। इतनी देर को सही, लेकिन जीवन की धड़कन अगर इतनी देर भी बजेगी, अगर वीणा जीवन की इतनी देर भी बजेगी तो बहुत है। एक क्षण भी बजेगी तो अनंत है। पत्थर की तरह अनंतकाल तक भी पड़े रहेंगे तो उसका कोई मूल्य नहीं है।
"आदमी जब जन्म लेता है, वह कोमल और कमजोर होता है। मृत्यु के समय वह कठोर और सख्त हो जाता है। जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं, तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं। और जब वे मर जाते हैं, वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं।" जाओ, जीवन को देखो-परखो, और तुम लाओत्से की बात सही पाओगे। छोटे-छोटे पौधे बच जाते हैं, आंधी आती है, और बड़े-बड़े वृक्ष गिर जाते हैं। बड़े वृक्ष अकड़े खड़े हैं। अपनी ताकत से आंधी से लड़ना चाहते हैं। छोटे वृक्ष कमजोर हैं; लड़ते नहीं, सिर्फ झुक जाते हैं। आंधी आती है, चली जाती है, छोटे वृक्ष फिर खड़े हो जाते हैं। और बड़े वृक्ष गिर गए, फिर उनके उठने का कोई उपाय नहीं रह जाता। जब सख्त गिरता है, तो सिर्फ मरता है। जब कोमल गिरता है, कुछ अंतर नहीं पड़ता, फिर उठ कर खड़ा हो जाता है। कोमल नम्य है, लोचपूर्ण है; झुक सकता है। जितने तुम लोचपूर्ण हो उतने ही तुम जीवंत हो।
क्या तुम अपने सिद्धांतों में लोचपूर्ण हो? क्या तुम आस्तिक हो, और नास्तिक की बात भी शांति से सुन सकते हो? क्योंकि हो सकता है वह सही हो। अगर तुम लोचपूर्ण हो तो तुम्हारे भीतर ज्ञान की धारा जीवंत रहेगी। क्या तुम अपने विरोधी की बात उतनी ही शांति से सुन सकते हो जितनी तुम अपनी ही बात शांति से सुनते हो? अगर तुम सख्त हो तो तुम कहोगे कि नहीं, विरोधी की बात ही क्यों सुननी?

ऐसा शास्त्रों में लिखा है--हिंदुओं के शास्त्रों में भी, जैनों के शास्त्रों में भी। हिंदुओं के शास्त्रों में लिखा है कि अगर पागल हाथी तुम्हारा पीछा करता हो और जैन मंदिर पास हो जिसमें शरण लेकर तुम आत्म-रक्षा कर सकते हो, तो भी जैन मंदिर में मत जाना। पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है, लेकिन जैन मंदिर में संकट के काल में शरण लेना भी पाप है। वही बात जैनों के शास्त्रों में भी लिखी है। बड़े सख्त लोग, पागलपन की सीमा पर सख्त। और ऐसे लोग कैसे जीवंत ज्ञान को उपलब्ध हो सकेंगे!
जीवन की धारा तो बड़ी कोमल है, लोचपूर्ण है। न तो सिद्धांतों में सख्त होना, न मान्यताओं में, न विश्वासों में सख्त होना। और तभी तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर ज्ञान प्रतिपल बढ़ता जाता है। जिस क्षण तुम सख्त होते हो वहीं ज्ञान का विकास रुक जाता है। अगर प्रतिपल ज्ञान को जन्म देना है तो उसका अर्थ हुआ, प्रतिपल ज्ञान का बालक जन्म लेगा; तुम लोचपूर्ण रहोगे। मरते दम तक लोचपूर्ण रहोगे; मरते दम तक तुम आग्रह न करोगे कि जो मैं कहता हूं वही सही है। तुम सदा यही कहोगे कि ऐसा मैंने जाना, पर अन्यथा भी सही हो सकता है; क्योंकि मैंने पूरा जीवन नहीं जाना। जीवन बड़ा है, मैं बहुत छोटा हूं। मैंने सागर का एक किनारा जाना; सभी किनारे ऐसे ही होंगे, कहना जरूरी नहीं है। कहीं चट्टानें होंगी, कहीं रेत का फैलाव होगा, कहीं वृक्ष होंगे, कहीं पहाड़ होंगे। सागर के किनारे अलग-अलग होंगे। हजार-हजार रूप होंगे। यही सागर होगा। मैंने जो जाना, जो कोना मैंने जाना, वह ऐसा है। और कोनों की मुझे कुछ खबर नहीं है। दूसरा भी ठीक होगा। तुमसे जो बिल्कुल विरोध में बोल रहा है वह भी ठीक हो सकता है, क्योंकि जीवन इतना बड़ा है कि सभी विरोधाभासों को अपने में समा लेता है।
जीवन की विराटता का अर्थ ही यही है। वहां सभी असंगतियां एक ही संगीत
की लयबद्धता में खो जाती हैं। हेराक्लाइटस का वचन बहुत प्यारा है। हेराक्लाइटस कहता है, गॉड इ.ज समर एंड विंटर, डे एंड नाइट, लाइफ एंड डेथ, हंगर एंड सेटाइटी। ईश्वर सब है। ग्रीष्म भी वही है और शीत भी वही; और दिन भी वही, रात भी वही; हार भी वही, जीत भी वही; भूख भी वही, परितृप्ति भी वही। तुमने किसी किनारे से जाना हो कि ईश्वर प्रकाश है, और कोई दूसरा आकर कहे कि ईश्वर महा अंधकार है, तो लड़ने मत खड़े हो जाना। क्योंकि ईश्वर दोनों है। अन्यथा महा अंधकार कहां होगा?
दुनिया के अधिक शास्त्रों में लिखा है ईश्वर प्रकाश है। पर जीसस जिस संप्रदाय में दीक्षित हुए और जिस साधना-पद्धति से उन्होंने परमात्मा को पाया उस संप्रदाय का नाम है इसेनीज। वे अब तो करीब-करीब खो गए। लेकिन उन्हीं के आश्रमों में जीसस का पालन-पोषण हुआ और जीसस बड़े हुए। उनके वचनों में लिखा हैः ईश्वर महा अंधकार है। और इसेनीज के पास अपने तर्क हैं। वह कहता है, अंधकार में जैसी शांति है वैसी प्रकाश में कहां? प्रकाश तो एक उत्तेजना है। इसलिए तुम अगर बहुत प्रकाश हो तो सो भी नहीं सकते। तो परम विश्राम कैसे कर सकोगे परमात्मा में? वह महा अंधकार है। और प्रकाश की तो हमेशा सीमा दिखाई पड़ती है; महा अंधकार की कोई सीमा नहीं। और परमात्मा असीम है। और प्रकाश को तो पैदा करो तब पैदा होता है, और ईंधन चुक जाने पर समाप्त हो जाता है। उसका आदि है, अंत है। अंधकार अनादि-अनंत है। न तो कोई पैदा करता, न कोई कभी बुझा पाया; सदा है।
इसेनीज की बात में भी अर्थ है। जो कहते हैं परमात्मा प्रकाश है, उनकी बात में भी अर्थ है। पर कुछ और दूसरे कोने से उनकी बात में अर्थ है। वे कहते हैं, परमात्मा प्रकाश है, क्योंकि परमात्मा के होते ही सब ऐसा ही साफ दिखाई पड़ने लगता है जैसा प्रकाश में। ठीक है बात। अंधकार में तो आदमी अंधा हो जाता है, प्रकाश में दिखाई पड़ता है, दर्शन होता है। अंधकार में तो भय लगता है, प्रकाश में निर्भय-अभय हो जाता है। उनकी बात में भी सत्य है। असल में, अगर तुम नम्य हो तो तुम्हें असत्य कहीं दिखाई ही न पड़ेगा। अगर तुम नम्य हो तो तुम्हें हर जगह सत्य दिखाई पड़ जाएगा। और अगर तुम्हें हर जगह सत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो ही तुमने जीवन का पाठ सीखा।
अकड़ से मत भर जाना, सख्त मत हो जाना, अन्यथा तुम मृत्यु को बुला रहे हो। लोचपूर्ण बने रहना मरने के आखिरी क्षण तक, और तुम मृत्यु को हरा दोगे।

मृत्यु आएगी जरूर, लेकिन तुम्हें मार न पाएगी। क्योंकि मृत्यु केवल उसी को मार पाती है जो सख्त हो गया। मृत्यु आएगी जरूर, देह भी चली जाएगी; लेकिन तुम अछूते रह जाओगे। तुम्हें मृत्यु छू भी न पाएगी। तुम कमल जैसे रह जाओगे; मृत्यु का जल तुम्हें स्पर्श भी न कर पाएगा--अगर तुम लोचपूर्ण हो। अगर तुम सख्त हो तो ही मरोगे। सख्ती के कारण तुम मरते हो, तुम्हारे कारण नहीं। सख्ती की खोल तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती है और कस देती है, और तुम मर जाते हो।
तो न तो संप्रदाय में, न सिद्धांत में, न शास्त्र में, किसी भी चीज में सख्त मत हो जाना। लेकिन सख्ती बड़े अनूठे ढंग से आती है। मुझे तुम सुनते हो, मुझे प्रेम करते हो। कोई मेरे खिलाफ बोलता हो, तुम तत्क्षण सख्त हो जाओगे। मरे! तुम गए! तुमने मुझसे जीवन न पाया, मौत पाई।
वह भी सही हो सकता है, लोचपूर्ण रहना। उसकी बात भी गौर से सुन लेना, और
भी गौर से सुन लेना, जितना कि तुम मुझे प्रेम करने वाले की बात सुनते हो। क्योंकि मुझे प्रेम करने वालों से तुम्हारा मिलना ज्यादा होगा। तुम उनके बीच घूमोगे। उनसे तुम्हारी मैत्री होगी। लेकिन जो मुझे घृणा करता हो उसकी बात बहुत गौर से सुन लेना। क्योंकि वह एक दूसरा पहलू प्रकट कर रहा है। और सत्य बड़ा है। तुम यह मत कहना कि तुम गलत हो। वह भी सही हो सकता है। उसकी बात इतने गौर से सुनना और कोशिश करना कि उसमें भी कुछ सत्य हो तो निकाल लो। असल में, सत्य के खोजी को सत्य की खोज है। कहां से मिलता है, यह क्या देखना है? प्यासा पानी चाहता है। नदी का है कि कुएं का है कि नल से आता है कि वर्षा का है, क्या लेना-देना? प्यासे को पानी चाहिए। सत्य के प्यासे को सत्य की खोज है। वह अपना द्वार बंद नहीं करता, सब तरफ से खुला रहता है। और जो भी आए, सत्य का खोजी उसमें से अपने सत्य के पानी को खोज लेता है। और उसे धन्यवाद दे देता है।
और अगर तुम, जो मुझे गाली दे रहा हो, उसको भी धन्यवाद दे सको, तो तुमने उसे भी बदलने की शुरुआत कर दी। वह तुम्हें न मार पाया; तुमने उसे जीवन देना शुरू कर दिया। क्योंकि वह चौंकेगा। वह भरोसा न कर सकेगा। तुमने उसे हिला दिया। तुम मेरे कारण कोई संप्रदाय अपने आस-पास मत बना लेना। तुम मुझे प्रेम करना, लेकिन मुझे तुम्हारा कारागृह मत बना लेना। और प्रेम मंदिर भी बन सकता है और कारागृह भी। तुम्हारे हाथ में है। अगर प्रेम लोचपूर्ण बना रहे तो मंदिर है और अगर लोच खो जाए तो कारागृह है। और फासला बहुत बारीक है। और एक-एक कदम सम्हल कर चलोगे तो ही बच पाओगे। अन्यथा संप्रदाय से बचना बहुत मुश्किल है; करीब-करीब असंभव है। क्योंकि जिसको भी हम प्रेम करते हैं, बस हम प्रेम करते हैं और अंधे हो जाते हैं।
और तुम दूसरे अंधों को पहचान लोगे, लेकिन अपना अंधापन तुम्हें पहचान में न आएगा। तुम पहचान लोगे कि यह आदमी पागल है महावीर के पीछे, यह आदमी पागल है बुद्ध के पीछे, यह आदमी पागल है कृष्ण के पीछे, तुम दूसरों को पहचान लोगे। लेकिन दूसरों को पहचानने से कुछ सार नहीं है। अपना ख्याल रखना कि तुम कहीं किसी संप्रदाय में तो नहीं बंध जाते हो! तुम कहीं मेरे शब्दों को शास्त्र तो नहीं बना रहे हो!
इसलिए मैं रोज अपने भी विरोध में बोले चला जाता हूं, ताकि तुम शास्त्र बना ही न पाओ। जब तुम शास्त्र बनाने बैठोगे, तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। मैंने करीब-करीब सब बातें कह दी हैं जो कही जा सकती थीं। कृष्ण ने तो एक पहलू कहा है, इसलिए शास्त्र बन सकता है। लाओत्से ने एक पहलू कहा है, शास्त्र बन सकता है। कृष्णमूर्ति, जो कि शास्त्र के बिल्कुल विपरीत हैं, उनका शास्त्र निश्चित बनेगा। क्योंकि उनसे ज्यादा कंसिस्टेंट और संगत आदमी खोजना मुश्किल है। चालीस साल में एक बात के सिवा उन्होंने कुछ कहा ही नहीं है। वे उसी को दोहरा रहे हैं। मेरा तुम शास्त्र न बना सकोगे, क्योंकि जो भी कहा जा सकता है वह सब मैंने कह दिया है। इसकी बिल्कुल मैंने फिक्र नहीं की है कि मैं अपना ही विरोध कर रहा हूं, कि आज कुछ, कल कुछ। जब तुम शास्त्र बनाने बैठोगे, तुम पागल हो जाओगे। तुम मुझमें से सिद्धांत निकाल ही न सकोगे। मैंने इंतजाम कर दिया पूरा।

लेकिन प्रेम इतना अंधा है कि मेरे इंतजाम को तोड़ सकता है। क्योंकि जब तुम किसी आदमी को प्रेम करते हो तो तुम उसका विरोध देख ही नहीं पाते, उसका विरोधाभास भी नहीं देख पाते। वह खुद अपने ही सिद्धांतों के विपरीत बोल रहा है, यह भी नहीं देख पाते। तुम भरोसा रखते हो कि वह ठीक ही बोल रहा होगा, संगत ही बोल रहा होगा; सब ठीक ही होगा। क्योंकि प्रेम ठीक तो पहले मान लेता है, फिर विचार करता है। डर है कि तुम शास्त्र बना लो। उससे मुझे कोई नुकसान नहीं है। मेरा उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। लेकिन तुम मर जाओगे। शास्त्रों के नीचे दब कर बहुत लोग मर चुके हैं। तुम मत मरना। उसका होश रखना।
"जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं, तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं; और जब
वे मर जाते हैं, वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं।"
इसलिए पंडितों को तुम सदा शुष्क पाओगे, तुम वहां रसधार न पाओगे। तुम वहां तर्क तो बहुत पाओगे, काव्य तुम्हें बिल्कुल न मिलेगा। पंडित बिल्कुल शुष्क होगा। क्योंकि पंडित से ज्यादा मुर्दा और क्या होता है? बुद्ध में तो एक काव्य है; शब्दों में एक लय है, एक सौंदर्य है। तुम पाओगे कि शब्द किसी भीतर की आर्द्रता से आ रहे हैं, गीले हैं। अभी भी ओस सूखी नहीं है। लेकिन पंडित के शब्द बिल्कुल सूखे हैं। तुम अगर बुद्ध के शब्दों को जलाओगे तो धुआं ही धुआं पैदा होगा। बहुत गीले हैं, प्रेम से भरे हैं। लेकिन अगर तुम पंडित के शब्दों को जलाओगे तो अग्नि बिल्कुल ठीक से जलेगी; जरा भी धुआं पैदा न होगा। बिल्कुल सूखे हैं; भीतर कोई रसधार ही नहीं है। उधार हैं; भीतर से आए ही नहीं हैं, जीवन में डूबे ही नहीं हैं। उन्होंने जीवन का पानी जाना ही नहीं है, केवल तर्क की सूखी धूप जानी है।
ख्याल रखना, जब भी तुम कुछ बोलो वह तुम्हारे पांडित्य से न आए। अगर पांडित्य से आता है, बेहतर है बिना बोले रह जाना, मत बोलना। जब भी कुछ बोलो तो ध्यान रखना, वह तुम्हारे हृदय से डूब कर आए। और जब भी वह हृदय से डूब कर आएगा, तुम पाओगे उसमें रस है। वह दूसरे को भी भिगाएगा, वह दूसरे को भी अपने में डुबा लेगा। पंडित दूसरे को हो सकता है कनविंस भी कर दे, कोई सिद्धांत सिद्ध कर दे दूसरे के सामने, लेकिन कभी किसी दूसरे को कनवर्ट नहीं कर पाता। वह कितना ही समझा दे, तर्क दे दे; दूसरा शायद तर्क का उत्तर भी न दे पाए, कसमसाए, लेकिन उत्तर न हो पास तो मानना पड़े कि ठीक है, भाई ठीक है; लेकिन कभी किसी के दूसरे के हृदय को रूपांतरित नहीं कर पाता पंडित। क्योंकि जब अपने ही हृदय से शब्द न आते हों तो दूसरे के हृदय तक नहीं पहुंच सकते। जितनी गहराई से शब्द आता है उतनी ही गहराई तक दूसरे में जाता है। खोपड़ी से आता है, खोपड़ी तक जाता है; कंठ से आता है, कंठ तक जाता है; हृदय से आता है, हृदय तक जाता है; अगर आत्मा से आता है, आत्मा तक जाता है। बस उतनी ही गति होती है दूसरे में, जितनी गहराई से आता है। वही अनुपात।
जब भी कोई चीज मर जाती है तो शुष्क हो जाती है। तुमने मरे आदमी की लाश देखी, कैसी अकड़ जाती है! वैसे ही पंडित के शब्द हैं, वैसे ही सांप्रदायिक की मान्यताएं हैं, विश्वास हैं।
"कठोरता और दुर्नम्यता मृत्यु के साथी हैं।"
तुम मौत से तो बचना चाहते हो और कठोरता को साधते हो। तुम मौत से तो बचना चाहते हो और अनम्यता को साधते हो। तो तुम एक हाथ से जो बचाना चाहते हो उसी को दूसरे हाथ से मिटाते हो। तुम्हारी गति ऐसी ही है जैसा पश्चिम में अभी मस्तिष्क के सर्जन एक नतीजे पर पहुंचे हैं। वह नतीजा यह है कि आदमी के भीतर दो मस्तिष्क हैं, और दोनों बीच में जुड़े हैं। अगर उनको दोनों को बीच से काट दिया जाए तो एक आदमी दो आदमियों की तरह व्यवहार करने लगता है। तो उसका बायां हाथ किसी चीज को उठाता है, लेकिन दाएं हाथ को पता नहीं चलता। दायां उसको फिर उठा कर वहीं के वहीं रख देता है। जैसे दो आदमी। और बड़ी बेबूझ स्थिति पैदा हो जाती है। वह एक हाथ से खाना खाता है, क्योंकि एक मस्तिष्क अनुभव कर रहा है भूख का; और दूसरे हाथ से वह हाथ धो रहा है और भोजन से उठ रहा है, और एक हाथ अभी भोजन जारी रखे है। करीब-करीब जीवन की अवस्था में तुम्हारी स्थिति ऐसी ही है। तुम एक हाथ से बनाते हो, दूसरे से मिटाते

हो; एक हाथ से मांगते हो, दूसरे से इनकार करते हो; एक हाथ से द्वार खोलते हो, दूसरे से बंद करते हो।
इसी से तो इतनी चिंता तुम्हारे जीवन में पैदा हो गई है। चिंता का अर्थ है, तुम कुछ ऐसा कर रहे हो जो स्व-विरोधी है। एंग्जायटी का इतना ही अर्थ होता है, चिंता का, कि तुम अपने ही विपरीत कुछ करने में लगे हो। तुम्हें पता न होगा। और सबसे बड़ी विपरीतता यह--कौन आदमी है जो मरना चाहता! कोई नहीं मरना चाहता है; लेकिन हर आदमी सख्त हो जाता है, अनम्य हो जाता है, अकड़ जाता है, और अभ्यास करता है जीवन भर अनम्य होने का। फिर मौत तो स्वाभाविक है। अगर नहीं मरना है और अमृत को जानना है, तो नम्यता को मत खोना।
साक्रेटीज मर रहा था। जब वह मर रहा है तब भी उसकी नम्यता कायम है। ठीक मरते वक्त सब साथी, मित्र, शिष्य रो रहे हैं। साक्रेटीज ने कहा, चुप रहो! अभी रोने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि अभी तो मैं जिंदा हूं। और दूसरी बात, अभी पक्का कहां है कि मैं मर ही जाऊंगा! एक शिष्य ने कहा कि कितनी देर लगेगी, सूरज ढलने के करीब आ गया है। सूरज ढलते वक्त ही आपको जहर दिया जाना है। जहर बाहर पीसा जा रहा है। उसकी आवाज सुनाई पड़ रही है। आपको घबराहट नहीं लग रही है? एक शिष्य ने पूछा।
सुकरात ने कहा कि दो ही संभावनाएं हैं। एक तो कि मैं मर ही जाऊंगा। अगर मर ही गए तो डरने का क्या कारण? जब बचे ही नहीं, तो डरे भी कौन? अगर मर ही गए बिल्कुल, जैसा कि नास्तिक कहते हैं, तो भय किस बात का है? जन्म के पहले नहीं थे, उससे कोई चिंता पैदा होती है? मृत्यु के बाद फिर वैसे ही हो जाएंगे जैसे जन्म के पहले नहीं थे। चिंता का क्या कारण है? तुमने कभी चिंता की कि जन्म के पहले नहीं थे, तो बैठे हैं चिंता में कि कितना दुख पाया, जन्म के पहले नहीं थे! नहीं होने से कोई दुख होता है? जब थे ही नहीं तो दुख किसको होगा? सुकरात ने कहा कि हो सकता है नास्तिक सही हों और मैं बिल्कुल ही मर जाऊं, तो भय किस बात का? जितनी देर जीया, ठीक। फिर मर गए, बात खतम हो गई। रहे ही न, तो अब बात कौन चलाए? और हो सकता है आस्तिक सही हों कि मैं मरने के बाद बच जाऊं। और अगर बच ही गए तो मरना हुआ ही नहीं; चिंता क्यों करना?
यह खुले हुए आदमी का लक्षण है; इतना नम्य कि मरते क्षण में भी!
भय के कारण भी आदमी मरते वक्त आस्तिक हो जाता है; सोचने लगता है कि शायद परमात्मा हो ही; प्रार्थना कर लो। मरते-मरते अधिक नास्तिक आस्तिक हो जाते हैं। मरने के पहले ही, जवान आदमी अधिक नास्तिक होते हैं, जैसे-जैसे बुढ़ापा आता है आस्तिक होने लगते हैं। इसलिए मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजाघरों में तुम बूढ़ों को बैठे पाओगे। जवान आदमी मधुशाला में मिलेंगे, क्लबघर में मिलेंगे, वेश्यागृह में मिलेंगे; बूढ़े मंदिर में मिलेंगे। अभी जवान को फिक्र नहीं है, अभी पक्का भरोसा है। जैसे पैर डगमगाएंगे, भरोसा कम होगा। जैसे ही भरोसा कम होगा, घबराहट पकड़ेगी, मंदिर की तरफ चलने लगेगा, भगवान का सहारा लेगा।
साक्रेटीज न तो भयभीत है, न कोई सहारा ले रहा है। वह कहता है, मुझे पता
ही नहीं है कि बचूंगा या नहीं बचूंगा, तो पता तो चल जाने दो। तभी कुछ निर्णय किया जा सकता है। यह लोचपूर्णता है।
तुम्हें कुछ भी पता नहीं है, और तुमने कितने निर्णय कर लिए हैं! तुम्हें कुछ भी पता नहीं है, और तुमने कितने सिद्धांत मान लिए हैं! तुम्हें कुछ भी पता नहीं है, और तुम कितने ज्ञानी होकर बैठे हो! गहन अज्ञान पर पांडित्य को तुमने छा दिया है; पता ही नहीं चलता तुम्हारे अज्ञान का कि कहां है। उस पांडित्य के कारण ही तुम सख्त हो गए हो, तुम्हारी लोच खो गई है।
मेरे पास पंडित आ जाते हैं। तो जितना जड़-बुद्धि मैं उनको पाता हूं उतना किसी को भी नहीं पाता। खोपड़ी उनकी बिल्कुल भरी, हृदय बिल्कुल खाली। वे खुद बोलते ही नहीं, उपनिषद उनमें से बोलता है। वे खुद बोलते ही नहीं, गीता उनमें से दोहरती है। टेप रेकार्डर हो सकते हैं, आदमी नहीं हैं। ग्रामोफोन के रेकार्ड हो सकते हैं, मनुष्य नहीं हैं। और ग्रामोफोन के रेकार्ड भी घिसे-पिटे; वह भी कोई ताजा रेकार्ड नहीं कि अभी ले आए बाजार से;

घिसा-पिटा! अक्सर तो ऐसी हालत है उनकी जैसा ग्रामोफोन के रेकार्ड में कहीं लकीर टूटी होती है और सुई फंस जाती है और वही लकीर दोहरती जाती हैः हरे कृष्ण हरे राम, हरे कृष्ण हरे राम, हरे कृष्ण हरे राम। इसको वे मंत्र कहते हैं। यह केवल टूटा हुआ ग्रामोफोन रेकार्ड है जिसमें सुई फंस गई। वे उसी को दोहराए चले जाते हैं। आगे जाने का उपाय नहीं, पीछे लौटने का उपाय नहीं; बस एक ही लकीर दोहरती रहती है।
एक गहन जड़ता पंडितों में दिखाई पड़ती है। छोटे बच्चे कहीं ज्यादा ज्ञानपूर्ण होते हैं। अज्ञान उनका है, लेकिन अभी ढंका नहीं। अभी खुले आकाश जैसा है; अभी सब रास्ते खुले हैं; अभी वे कहीं भी जा सकते हैं, अभी उनकी मुक्ति साफ है। तुम छोटे बच्चे की भांति सदा बने रहना--सीखने को तत्पर, सदा उत्सुक-आतुर। पंडित का अर्थ है, जो सिखाने को उत्सुक है, सीखने को नहीं। पंडित का अर्थ है, जो शिष्य की तलाश में है, गुरु की तलाश में नहीं।
सीखने को उत्सुक व्यक्ति हमेशा, हर जगह खोज रहा है; खोजी है। जहां से मिल जाए, धन्यवाद देगा और ले लेगा। और अतीत को कभी भी बोझिल नहीं होने देता, भविष्य को खुला रखता है। अतीत को कभी भविष्य और अपने बीच में दीवाल नहीं बनने देता कि मैंने जान लिया, अब जानने को क्या है, अब जाना कहां है। कितना ही जाना हो, वह ना-कुछ है उसके मुकाबले जो अभी जानने को शेष है।
और सब कुछ जान लिया हो तो भी इस जगत में कुछ है जो अज्ञेय है, जो जानने से जाना ही नहीं जाता। वही परमात्मा है। वह तो होने से जाना जाता है, जानने से नहीं जाना जाता।
"इसलिए सेना जब हठी होगी, वह युद्ध में हार जाएगी।"
क्योंकि हठ सख्ती है।
"जब वृक्ष कठिन होगा, वह काट दिया जाएगा। बड़े और बलवान की जगह नीचे है, सौम्य और कमजोर की जगह शिखर पर है।"
इसलिए मैं कहता हूं कि लाओत्से ओस की तरह ताजा है। उसने जिंदगी से सीधा पीया है, जिंदगी के घाट से सीधा पीया है, किसी शास्त्र से नहीं। वह कहता है कि बड़ा और बलवान तुम्हें दिखाई पड़ता है शिखर पर है; तुम गलती में हो। सिर्फ कोमल, नम्य, कमजोर शिखर पर है; क्योंकि कोमल और नम्य सुंदर है, सत्य है, जीवंत है। जड़ें जमीन में हैं; वे मजबूत हैं। फूल शिखर पर है; वह कमजोर है। बड़े पत्थर, मजबूत पत्थर नींव में पड़े हैं मंदिर की; स्वर्ण-शिखर कमजोर, नम्य, ऊपर है। और जीवन में भी यही सत्य है। अगर इससे विपरीत तुम्हें दिखाई पड़ता हो तो उसका केवल एक ही कारण होगा कि तुम शीर्षासन कर रहे हो। अब अगर तुम शीर्षासन करके खड़े हो जाओ।
मैंने सुना है, एक गधा एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू को मिलने गया। वे
उस वक्त शीर्षासन कर रहे थे। सुबह का वक्त था, वे अपने लान में शीर्षासन कर रहे थे। सिपाही भी द्वार पर खड़ा झपकी ले रहा था। और कोई आदमी गुजरता तो वह रोकता भी; गधा जा रहा था, उसने कहा जाने दो, गधा क्या बिगाड़ लेगा! कोई शड्यंत्रकारी भी नहीं हो सकता; कोई बम भी नहीं रख सकता। गधा ही है। थोड़ा- बहुत घास-पात चर लेगा, चला जाएगा।
लेकिन वह गधा बोलने वाला गधा था, वह कोई साधारण गधा नहीं था। अखबार पढ़-
पढ़ कर वह बोलना सीख गया था। उसने जाकर पंडित नेहरू के पास खड़े होकर कहा कि सुनिए पंडित जी!
वे थोड़े घबरा गए। उन्होंने आंख उठा कर देखा। वे भूल ही गए कि मैं शीर्षासन कर रहा हूं। तो उन्होंने कहा कि ऐसा गधा मैंने कभी भी नहीं देखा; तू उलटा क्यों खड़ा है?
उस गधे ने कहा, महानुभाव, आप शीर्षासन कर रहे हैं; मैं उलटा नहीं खड़ा हूं।
जब तुम शीर्षासन करते होते हो तो जो चीज ऊपर है वह नीचे मालूम पड़ती है,
जो नीचे है वह ऊपर मालूम पड़ती है। तुमने जीवन को शीर्षासन करके देखा है, इसीलिए तुम्हें दिल्ली में जो लोग बैठे हैं वे ऊपर मालूम पड़ते हैं, और जो आदमी सड़क के किनारे गड्ढा खोद रहा है वह तुम्हें नीचे मालूम पड़ता है। जिन्होंने बहुत धन इकट्ठा कर लिया है, बिरला हैं, राकफेलर हैं, वे तुम्हें

ऊपर मालूम पड़ते हैं। और जो भिखारी वृक्ष के नीचे भर दोपहरी में शांति से सोया है वह तुम्हें नीचे मालूम पड़ता है। तुम शीर्षासन कर रहे हो। लाओत्से ने जिंदगी को सीधा खड़े होकर देखा है। उसने देखा है कि सम्राटों के हृदयों में शांति नहीं, न प्रेम है, न आनंद है। कभी-कभी भिखारी के जीवन में आनंद की वर्षा तो होते देखी है, लेकिन सम्राटों के जीवन में कभी नहीं देखी। अन्यथा बुद्ध नासमझ थे कि महलों को छोड़ कर और भिखारी हो जाते? कि महावीर पागल थे? जिसे तुमने ऊपर देखा है, वह तुम्हारी कहीं न कहीं कोई भूल है। क्योंकि हमने उस ऊपर से बैठे आदमी को नीचे उतरते देखा है। बुद्ध और महावीर ईर्ष्या से भर गए हैं भिखारियों की, इसीलिए भिक्षु हो गए। उन्होंने कुछ जीवन का राज देखा। लाओत्से वही कह रहा है। उन्होंने देखा कि जीवन तो बड़ी छोटी-छोटी चीजों में आनंदित है। पद, शक्ति की दौड़ से जीवन का आनंद खो जाता है।
तुम जिस दिन ना-कुछ हो रहोगे उस दिन जीवन बरस जाएगा। इसलिए भिखारी जिस शांति से सोता है, सम्राट नहीं सोता। साधारण आदमी जिसको हम कहें, जिसको कोई भी नहीं जानता, वह जिस भांति प्रेम करता है, उस भांति, जिन लोगों को बहुत लोग जानते हैं, वे लोग प्रेम नहीं कर पाते।
अमरीका की बड़ी अभिनेत्री थी--बड़ी से बड़ी अभिनेत्री--मर्लिन मनरो। उसने आत्महत्या की। उसने बहुत बार विवाह किया। उस जैसी सुंदर स्त्री न थी इस सदी में। दुनिया के बड़े से बड़े लोग उससे विवाह को आतुर थे। और भरी जवानी में उसने आत्महत्या की। और आत्महत्या का कारण उसने यह लिखा कि मैं प्रेम करने में बिल्कुल असमर्थ हूं, और मैं कोई प्रेम नहीं पा सकी। साम्राज्ञी थी वह सिनेमा जगत की, लेकिन प्रेम न पा सकी। क्या हो गया? क्या अड़चन आ गई? असल में, प्रेम उसी हृदय में उपजता है जिस हृदय में शक्ति की आकांक्षा नहीं उपजती। जहां शक्ति की आकांक्षा उपज गई वहीं प्रेम मर जाता है, प्रेम का दम घुट जाता है। और जिसने प्रेम न जाना उसने क्या जाना? वह बैठा रहे शिखर पर, जीवन को गंवा दिया उसने। जिसने धन जाना और धर्म न जाना, उसने जीवन को गंवा दिया। उसने कुछ भी न जाना। जिसने शब्द जाने, शास्त्र जाने और सत्य को न जाना, वह वंचित रह गया। जब सब तरफ सब कुछ भरा था और मिल सकता था तब भी वह खाली हाथ प्यासा लौट गया।
लाओत्से कहता है, उसका निरीक्षण यह है, कि बड़े और बलवान नीचे हैं, सौम्य और कमजोर शिखर पर हैं। और जिस दिन तुम सीधे खड़े होकर देखोगे--और जब मैं कहता हूं सीधे खड़े होकर तो मेरा मतलब होता है निर्विचार होकर देखोगे, विचार ने तुम्हारी खोपड़ी उलटी कर दी है--जिस दिन तुम निर्विचार होकर देखोगे उस दिन यह जीवन का सीधा सा सत्य तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा कि साधारण होना ही यहां असाधारण होना है। ना-कुछ होना ही यहां सब कुछ होने का उपाय है।
चुपचाप जी लेना--जैसे वृक्ष जीते हैं, पशु-पक्षी जीते हैं, चांद-तारे जीते हैं--कि किसी को तुम्हारी खबर भी न हो, तुम्हारे पदचिह्न इतिहास के पृष्ठों पर पड़ें ही न। समय की धार में तुम्हारी रेखा भी न उभरे, तुम्हारा हस्ताक्षर कहीं भी दिखाई न पड़े। ऐसे जी लेना जैसे पानी पर किसी ने लकीर खींची हो, खींची और मिट गई। तब तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में बड़े फूल खिलते हैं। जब तुम ना-कुछ होने को राजी होते हो, शून्य होने को, तब तुम्हारे भीतर पूर्ण होने की क्षमता आ जाती है।
सिर्फ शून्य ही पूर्ण हो सकता है। इसलिए शून्य को मैं परमात्मा का मंदिर कहता हूं। और साधारण होने को संन्यास कहता हूं। असाधारण होने की आकांक्षा पागलपन में ले जाती है। और असाधारण होने की आकांक्षा बड़ी साधारण है, सभी की है। और जिसने साधारण होना चाहा वही असाधारण हो जाता है। क्योंकि साधारण कौन होना चाहता है? निर्विचार होकर देखोगे तो जो लाओत्से की समझ है वही तुम्हारी समझ भी हो जाएगी। और मैं फिर से कहता हूं, लाओत्से से ज्यादा जीवन का सीधा निरीक्षक खोजना मुश्किल है।
आज इतना ही।

एक सौ बाईसवां प्रवचन

# संत संसार भर को देता है, और बेशर्त

Chapter 77

Bending The Bow

The Tao (way) of Heaven, is it not like the bending of a bow?
The top comes down and the bottom-end goes up.
The extra (length) is shortened, the insufficient (width) is expanded.
It is the way of Heaven to take away from those that have too much;
And to give to those that have not enough.
Not so with man's way. He takes away from those that have not;
And gives it as tribute to those that have too much.
Who can have enough and to spare to give to the entire world?
Only the man of Tao.
Therefore the Sage acts, but does not possess,
Accomplishes, but lays claim to no credit,
Because he has no wish to seem superior.

अध्याय 77

धनुष झुकाना

स्वर्ग का ताओ-मार्ग, क्या वह धनुष के झुकाने जैसा नहीं है?
शिखर नीचे चला आता है और अधोभाग ऊपर उठ जाता है;
अतिरिक्त (लंबाई) छोटा होता है और अपर्याप्त (चौड़ाई) बढ़ जाता है।
स्वर्ग का ढंग है कि वह उनसे छीन लेता है, जिनके पास अतिशय है;
और उन्हें दिए देता है जिनको पर्याप्त नहीं है।
मनुष्य का ढंग यह नहीं है। वह उनसे छीन लेता है जिनके पास नहीं है;
और उसे वह भेंट के रूप में उन्हें दिए देता है, जिनके पास अतिशय है।
कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है?
केवल ताओ का व्यक्ति।
इसलिए संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं करते;
संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते; क्योंकि उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।

जीसस का वचन है कि जो यहां प्रथम हैं वे मेरे प्रभु के राज्य में अंतिम होंगे, और जो यहां अंतिम हैं वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे।

अंतिम प्रथम हो जाता है; प्रथम अंतिम हो जाते हैं।

लेकिन साधारणतः मनुष्य की दौड़ प्रथम होने की है। और प्रथम होने की दौड़ में जो पड़ा वह अंततः पाएगा कि अंतिम हो गया, और बुरी तरह अंतिम हो गया। और जो अंतिम होने के लिए राजी है वह अंततः पाता है कि समग्र अस्तित्व ने ही उसे प्रथम बना दिया। यह पहेली सी मालूम पड़ेगी, पर यह जीवन की कुंजियों में से एक है। और इसे बहुत सूक्ष्मता से, इसकी एक-एक पर्त को समझ लेना जरूरी है।

सभी के भीतर कामना है प्रथम होने की; कामना बुरी भी नहीं है। कामना के पीछे जरूर कोई राज है। असल में, प्रत्येक व्यक्ति प्रथम होने को ही बना है; इससे कम किसी की भी नियति नहीं है। परमात्मा से कम पर राजी होने का उपाय भी नहीं है। उससे कम पर तुम राजी हो गए तो तुम दुखी और विपन्न ही रहोगे, पीड़ा

ही रहेगी। एक संताप तुम्हें घेरे ही रहेगा; एक बेचैनी, एक कमी, कुछ खोया- खोया, कुछ जो पाया जा सकता है और नहीं पाया जा सका। जैसे कोई वृक्ष फूलने से वंचित रह गया हो; पत्ते लगे हों, हरियाली आई हो; फिर कलियां न लगीं, फिर फूल न खिले, फिर फल न लगे। जैसे कोई वृक्ष निष्फल रह गया हो, बांझ रह गया हो, ऐसा तुम अनुभव करोगे।
प्रथम होने की आकांक्षा के भीतर यही गहन बात छिपी है कि तुम्हारी नियति प्रथम होना है। तुम पैदा ही प्रथम होने को हुए हो। तुम्हारा स्वभाव ही प्रथम होना है। तुम किसी से पीछे रहने को नहीं हो। और प्रथम तो परमात्मा ही है। शेष सब तो उसके पीछे ही होगा। इसलिए जब तक तुम परमात्मा न हो जाओ, उस परम पद को न पा लो, तब तक तुम दौड़ोगे, भागोगे, चाहोगे, भटकोगे, हारोगे, विषाद से भरोगे, चूकोगे बहुत बार।
कामना तो ठीक है, लेकिन कामना काफी नहीं है, समझ भी चाहिए। यह तो ठीक
है कि तुम प्रथम होना चाहते हो, लेकिन गलत ढंग से अगर तुम प्रथम होना चाहे तो कभी भी न हो पाओगे। प्रथम होने का ठीक ढंग भी है, गलत ढंग भी है। समझ की कमी है; भाव तो बिल्कुल ठीक ही उठा है। सिंहासन पर होने को ही तुम पैदा हुए हो। वह तुम्हारा स्वभाव-सिद्ध अधिकार है। लेकिन कौन सा सिंहासन?
आदमी के बनाए सिंहासनों पर होने से तुम तृप्त न हो पाओगे, जब तक परमात्मा ही तुम्हें सिंहासन पर न बिठा दे। तब तक सभी सिंहासन कामचलाऊ होंगे; आज होंगे, कल छीन लिए जाएंगे। आदमी का दिया कितनी देर टिक सकता है? और आदमी इधर देता है, उधर छीनने को तैयार हो जाता है। और आदमी का सिंहासन आदमी का ही बनाया सिंहासन है। आदमी की सामर्थ्य क्या है? तुम पद पर होना चाहते हो, वह तो ठीक है। तुम परम पद पर होना चाहते हो, वह भी ठीक है। लेकिन राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री होने से हल न होगा। वहां भी तुम पाओगेः पा लिए पद मनुष्य के, लेकिन भीतर की आकांक्षा तो अतृप्त ही रह गई। जल-स्रोत भी करीब आ गया, और प्यास मिटती भी नहीं। तो जल-स्रोत धोखा होगा, मृग-मरीचिका होगा। पदों पर पहुंच कर भी तो आदमी कहां परम पद को उपलब्ध हो पाता है! वहां भी तो भूख उतनी ही रह जाती है, प्यास उतनी ही बनी रहती है, दौड़ उतनी ही जारी रहती है। धन पाकर भी तो परम धन नहीं मिलता।
असल में, आकांक्षा तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन कैसे उस आकांक्षा को पूरा करें, वहां कहीं भूल हो रही है। धर्म तुम्हारे भीतर की परम अभीप्सा को पूरा करने की विधि है। अधर्म भी तुम्हारे भीतर की अभीप्सा को पूरा करने की विधि है; लेकिन गलत। अधर्म भी रास्ता दिखाता है कि आओ।
ऐसी कथा है कि जीसस जब परम क्षण के करीब आए और जब उनकी प्रार्थना पूरी होने को हुई, और जब परमात्मा उन्हें अंगीकार करने को राजी हो गया, एक क्षण की देर थी कि जीसस तो मिट जाएंगे और क्राइस्ट का जन्म हो जाएगा, तभी शैतान बीच में आ खड़ा हुआ। और शैतान ने कहा, तुम जो चाहते हो मैं पूरा करने को राजी हूं। तुम्हें सारे संसार का सम्राट बनना है? बस कहो, कहने की देर है और मैं तुम्हें बना दूं। तुम्हें धन चाहिए? अपरिसीम धन चाहिए? कुबेर का खजाना चाहिए? बोलो! तुम बोले कि मैं पूरा कर दूं। तुम्हारी जो भी कामना हो, जिस लिए तुम प्रार्थना कर रहे हो, तुम बता दो।
जीसस ने कहा, हट शैतान, मेरे पीछे हट! मैं तुझसे नहीं मांग रहा हूं। और तुझसे अगर जो भी लेने को राजी हो गया वह सदा-सदा भटकेगा। तेरे धन से तो निर्धन होना बेहतर। और तेरे राज्य से तो भिखारी होना बेहतर। क्योंकि तू मृग-मरीचिका है। तू धोखा है।
जब भी कोई खोजने निकलेगा तब हजार धोखों के जाल भी हैं। कोई शैतान नहीं तुम्हें धोखा दे रहा है; तुम्हारा मन ही सस्ता रास्ता चुनता है। वह कहता है, सिंहासन चाहिए? दिल्ली चलो। धन चाहिए? धन कमाओ। बाजार है, चोरी करो, बेईमानी करो, लूटो-खसोटो। रास्ता तो यह है, हम बताए देते हैं तुम्हें जो चाहिए। मंदिर में प्रार्थना करने किसलिए जा रहे हो? पूजा-अर्चना किसकी कर रहे हो? विधि हमारे पास है। मन तुम्हें रास्ता दे देता है।
और मन के रास्ते पर चल-चल कर तुम जन्मों-जन्मों भटके हो। अभी भी मंजिल करीब नहीं दिखाई पड़ती, उतनी ही दूर है, जितनी पहले दिन तुम्हारी चेतना के लिए रही होगी। रत्ती भर भी यात्रा नहीं हो पाई। चले बहुत हो, लेकिन एक

वर्तुलाकार परिधि में घूम रहे हो। कोल्हू के बैल जैसी तुम्हारी यात्रा है। चलता दिन भर है, पहुंचता कहीं भी नहीं। सांझ पाता है वहीं खड़ा है। फिर भी दिन भर चलता है इसी आशा में कि शायद कहीं पहुंच जाएगा।
कोल्हू के बैल को चलाने के लिए उसका मालिक उसकी आंखों के दोनों तरफ पट्टियां बांध देता है, ताकि उसे आस-पास दिखाई न पड़े, सिर्फ सामने दिखाई पड़े। तांगे में घोड़े को जोतते हैं तो उसके पास भी पट्टियां बांध देते हैं, उसे सामने दिखाई पड़े। सामने दिखाई पड़ने से भ्रांति पैदा होती है; रास्ता गोलाकार है, यह नहीं दिखाई पड़ता। जब सामने दिखाई पड़ता है, रास्ता सीधा मालूम पड़ता है। अगर वह आस-पास देख ले तो पता चल जाए कि यह तो मैं वहीं के वहीं घूम रहा हूं।
मन भी रेखाबद्ध कोल्हू के बैल की तरह चलता है। उसे दिखाई नहीं पड़ता कि मैं वहीं-वहीं घूम रहा हूं। थोड़ा जाग कर, थोड़ा मन से दूर खड़े होकर देखो। वही क्रोध, वही काम, वही लोभ बार-बार तुम करते रहे हो। नया क्या है? हर बार किया है, पछताया है। पछतावा तक नया नहीं है, वही तुम बार-बार करते रहे हो। लेकिन दिखाई नहीं पड़ता। तुम सोचते हो यात्रा हो रही है। यात्रा नहीं हो रही, तुम सिर्फ चल रहे हो, पहुंच नहीं रहे। जरा सी भी तो तृप्ति की गंध नहीं आती। जरा सा भी तो परितोष नहीं बरसता। कहीं से भी तो कोई दीया नहीं जलता दिखाई पड़ता। अंधेरा वैसा का वैसा है।
आकांक्षा तो ठीक है, परम पद चाहिए; विधियां गलत हैं। और विधियों को जिसने ठीक कर लिया, उसकी आकांक्षा पूरी हो जाती है। बुद्ध ने बार-बार कहा है कि तुम मुझसे गंतव्य मत पूछो, गंतव्य तो तुम्हें ही पता है। तुम सिर्फ केवल मुझसे विधियां सीख लो। मंजिल मत पूछो, मंजिल तो तुम्हें भी पता है; मार्ग भर पूछ लो।
बुद्ध के वचनों में कहीं भी मंजिल का उल्लेख नहीं है, सिर्फ मार्ग का। मंजिल किसे पता नहीं है?
आंखें अंधी हों तो भी आदमी आनंद खोज रहा है। पैर लंगड़े हों तो भी आदमी आनंद खोज रहा है। बीमार हो, स्वस्थ हो, बच्चा हो, जवान हो, बूढ़ा हो, आदमी आनंद खोज रहा है। पौधे, पक्षी, सभी आनंद खोज रहे हैं। मार्ग, मार्ग भला गलत हो, मंजिल किसी की भी गलत नहीं है। सुर-तान बंधी है भीतर मंजिल की तरफ। लेकिन कैसे पहुंचें? कहां है आनंद? कहां है स्वर्ग का राज्य? ताओ का अर्थ भी होता है मार्ग। ताओ मंजिल नहीं है। मंजिल देने की जरूरत ही नहीं है। उसकी खबर लेकर तो तुम पैदा ही हुए हो। वह तो तुम्हारा ब्लू-प्रिंट है; वह तो तुम्हारे रोएं-रोएं में लिखी है। उसे किसी से भी सीखने की जरूरत नहीं है। वह तुम सीखे हुए ही आए हो। अगर तुम उसे सीखे हुए न आए होते तो कोई तुम्हें सिखा भी न सकता था।
थोड़ी देर को सोचो, अगर आनंद की अभीप्सा ही तुम्हारे भीतर न होती, तो बुद्ध सिर पटकें और मर जाएं, कहीं आनंद की अभीप्सा पैदा करवाई जा सकती है? अभीप्सा भीतर हो तो कोई जगा दे; अभीप्सा भीतर हो तो कोई जला दे। अभीप्सा ही भीतर न हो तो क्या करोगे तुम? अगर बुद्ध पुरुषों का तुम पर प्रभाव पड़ता है, अगर सदगुरु तुम्हें अनुप्रेरित करते हैं, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि जो तुम चाहते थे, उस चाह को ही उन्होंने निखार कर साफ कर दिया। जो तुम चाहते ही थे सदा से उसी को उन्होंने तुम्हें समझा दिया। जो तुम्हारे भीतर छिपा ही था उसी को उन्होंने प्रकट कर दिया। जो अनजाना था, अपरिचित था, धुंधला-धुंधला था, उसे उन्होंने साफ कर दिया।
कोई किसी को मंजिल नहीं दे सकता। मार्ग दिया जा सकता है। ताओ का अर्थ
है मार्ग।
बुद्ध के वचनों का जो सबसे महत्वपूर्ण संग्रह है उसका नाम है धम्मपद। उसका अर्थ होता हैः दि राइट वे। धम्म का अर्थ होता है ठीक और पद का अर्थ होता है जिस पर चला जाए, जिस पर पैर पड़ें। बुद्ध ने कहा है, तुम्हारे पास सब है, सिर्फ कैसे तुम उस तक पहुंचो, बस उस मार्ग की जरूरत है।
मार्ग क्या है? मार्ग है कि अगर तुम प्रथम होना चाहते हो तो अंतिम हो जाओ, तुम प्रथम हो जाओगे। अगर तुम सदा ही अंतिम रहना चाहते हो तो तुम्हारी मर्जी, प्रथम होने की दौड़ में लग जाओ। तुम सदा अंतिम रह जाओगे। लेकिन तब

रोना मत, पछताना मत। यह मत कहना कि मैंने इतनी दौड़ की, इतना श्रम किया, इतना कष्ट उठाया, और फिर भी मैं अंतिम हूं। तुम अंतिम अपने कारण हो। अगर तुम सच में ही प्रथम होना चाहते हो तो तुम प्रथम होने की दौड़ छोड़ दो। क्यों? क्योंकि प्रथम होने की दौड़ तुम्हें अपने स्वभाव से वंचित करा देगी। जैसे ही तुम किसी के साथ प्रतिस्पर्धा में लगते हो, नजर बाहर हो जाती है। प्रथम होने की दौड़ का अगर ठीक-ठीक अर्थ निकालना चाहो, निचोड़, सार, तो क्या है? प्रथम होने की दौड़ का अर्थ है दूसरे को पीछे करने की दौड़।
तुम्हारा संबंध दूसरे से हो जाता है। तुम दूसरे को देखने लगते हो। तुम दूसरे की चालों का जवाब देने लगते हो। तुम दूसरे से संघर्ष करने लगते हो।
तुम दूसरे को मिटाने में लग जाते हो। तुम दूसरे को गिराने में लग जाते हो।
क्योंकि वही एकमात्र रास्ता दिखाई पड़ता है कि कैसे तुम प्रथम हो जाओगे।
जितने प्रतिस्पर्धी हैं, उनको समाप्त करना होगा, तभी तो प्रथम हो सकोगे। जो आदमी प्रथम होने की दौड़ में लगता है उसकी नजर दूसरे से उलझ जाती है। और जो दूसरे से उलझ गया वह अपने को खो देता है। और अपने को पा लेना ही प्रथम होना है। क्योंकि तुम परमात्मा हो ही। तुम्हारे परमात्मा को खोने का एक ही ढंग है कि तुम दूसरे से उलझ जाओ। तो तुम्हारी नजर अपने पर लौटना मुश्किल हो जाती है। कैसे आएगी?
राजनीतिज्ञ हमेशा दूसरे की सोचता है। इंदिरा के सपनों में जयप्रकाश होंगे, जयप्रकाश के सपनों में इंदिरा होगी। न जयप्रकाश को अपना पता, न इंदिरा को अपना पता। फुरसत कहां? दूसरे पर नजर है। जो पहुंच गया पद पर उसकी भी नजर दूसरे पर है। क्योंकि लोग पैर खींच रहे हैं, उनसे बचना जरूरी है। क्योंकि दूसरों को भी प्रथम होना है। और सभी तो प्रथम नहीं हो सकते इस संसार में। सभी तो दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठ सकते। अन्यथा सिंहासन भारत जितना बड़ा बनाना पड़ेगा। वह सिंहासन ही न रह जाएगा। वह भारत ही हो जाएगा। तुम बैठे ही हो सिंहासन पर; फिर कोई जरूरत ही नहीं दिल्ली जाने की। सिंहासन पर तो कोई एक बैठ सकता है। और पचास करोड़ प्रतिस्पर्धी होंगे जो सब तरफ से तुम्हारे रोएं-रोएं को खींच रहे हैं।
तो जो पद पर बैठा है वह भी निश्चिंत नहीं है कि अपनी सोच ले। पद पर जो बैठा है उसे पद की रक्षा करनी है; जो पा लिया उसकी रक्षा करनी है। अन्यथा एक क्षण में ही खो जाएगा। चारों तरफ दुश्मन मौजूद हैं; दुश्मन ही दुश्मन हैं। और जो पद पर नहीं पहुंचा है वह भी कैसे निश्चिंत होकर ध्यान करे? वह कैसे आंख बंद करे? वह कैसे प्रार्थना-पूजा में उतरे? सोचता है, जब सिंहासन पर पहुंच जाएंगे, जब सब पा लेंगे, तब कर लेंगे पूजा। अभी क्या जल्दी है? और अभी अगर पूजा में लग गए तो ये दूसरे जो आगे निकले जा रहे हैं, और आगे निकल जाएंगे। करोड़ों लोग चल रहे हैं सिंहासन की खोज में। तुम पूजा के लिए बैठ गए रास्ते के किनारे उतर कर, भटक जाओगे, पीछे छूट जाओगे। फुरसत कहां है? भागो, दौड़ो। न सोओ, न ठीक से भोजन करो।
प्रेम खो जाता है, प्रार्थना की तो बात दूर। पद का आकांक्षी न प्रेम
कर सकता है, न दो क्षण बैठ कर गीत सुन सकता है। न संगीत का रस ले सकता है, न फूलों को देख सकता है। सारी ऊर्जा उसे लगानी पड़ती है प्रतिस्पर्धा में। भयंकर संघर्ष है। उस संघर्ष में सुविधा नहीं। सोचता है, सिंहासन पर पहुंच कर! सिंहासन पर पहुंचा आदमी डरा हुआ है पूरे वक्त। क्योंकि चली आ रही है भीड़ हजारों प्रतिस्पर्धियों की। वे सभी जान लेने को तत्पर हैं।
सिंहासन पर बैठा भी दूसरों को देखता रहता है; सिंहासन पर जो नहीं हैं
वे भी दूसरों को देखते रहते हैंः कोई आगे न निकल जाए। जो पीछे हैं उन्हें पीछे रखना है। जो आगे हैं उन्हें भी पीछे करना है। एक पल खोने को नहीं है। जिंदगी एक कशमकश मालूम होती है, एक गहन संघर्ष और एक युद्ध। कैसे तुम अपनी तरफ देखोगे?
जिसने पहले होने की दौड़ में भाग ले लिया, वह और सबको देखेगा, अपने भर
को न देख पाएगा। और जो अपने को न देख पाएगा वह कैसे प्रथम होगा? क्योंकि प्रथम तो तुम हो ही। तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम खोजते कहां हो? तुम पाने कहां चले हो? तुम दूसरों के द्वार पर दस्तक दे रहे हो, और

तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। उसे तुम लेकर ही आए हो। वह तुम्हारी निजता है, तुम्हारा स्वभाव है।
इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि जो प्रथम होने की दौड़ में लग जाएगा वह परमात्मा के राज्य में अंतिम रह जाएगा।
दौड़ में कुछ बुराई न थी। अभीप्सा बिल्कुल ठीक थी। लेकिन विधि गलत हो गई। अगर तुम वस्तुतः प्रथम होना चाहते हो तो जीसस ठीक कहते हैं कि तुम अंतिम खड़े हो जाओ। क्योंकि जो अंतिम खड़ा है उसे कोई भी भय नहीं, उससे कोई कुछ छीन नहीं सकता। उसके पास कुछ है ही नहीं, तुम छीनोगे क्या? तो वह निश्चिंत बैठ सकता है। वह आंख बंद करके ध्यान कर सकता है। वह अपने स्वभाव में उतर सकता है। उसकी किसी से कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वह अंतिम है। उससे पीछे कोई है ही नहीं जो उससे आगे निकलना चाहे। उसके आगे जो है वह तो प्रसन्न है कि तुम ध्यान कर रहे हो, बैठे हो, बहुत अच्छा, कृपा है; ऐसे ही बैठे रहना। नहीं तो एक प्रतियोगी और बढ़ जाता है।
इसीलिए तो संसारी लोग संन्यासियों का पैर छूते हैं। वे कहते हैं, बड़ी कृपा! संन्यास ले लिया, बड़ा अच्छा किया। वे यह कह रहे हैं कि चलो, इतने प्रतिस्पर्धी कम हुए। अगर तुम्हारा खुद का बेटा संन्यास ले ले तो तुम दुखी होते हो, किसी दूसरे का बेटा ले ले तो तुम उसको धन्यवाद देने जाते हो कि सौभाग्यशाली हो, धन्यभाग तुम्हारे कि ऐसा बेटा घर में पैदा हुआ। और तुम्हारा बेटा संन्यास ले ले? तुम्हारा बेटा संन्यास ले ले तो तुम्हारी महत्वाकांक्षा की रीढ़ टूट जाती है। इसके ही सहारे तो तुम आशा कर रहे थे। तुम्हारे तो पैर टूट चुके हैं दौड़-दौड़ कर। अब यह तुम्हारी बैसाखी था। जो महत्वाकांक्षा तुम पूरी नहीं कर पाए हो और सड़ गए, अब तुम चाहते थे इसके कंधे पर सवार होकर पूरी कर लो। और यह संन्यास ले रहा है!
जब बुद्ध ने संन्यास लिया होगा तो बुद्ध के पिता को, तुम सोच सकते हो, कैसी पीड़ा हुई होगी। इकलौता बेटा था। साम्राज्य के बढ़ने की इसी से आशा थी; सम्हालने की भी इसी से आशा थी। बुढ़ापे में घर छोड़ कर भाग गया; सब महत्वाकांक्षाएं चकनाचूर हो गई होंगी।
नहीं, दूसरे का बेटा जब संन्यास लेता है तब तुम प्रसन्न होते हो। तुम शायद सोचते होओगे कि संन्यास का तुम्हारे मन में बड़ा आदर है; तो तुम बड़ी गलती में हो। क्योंकि संन्यास का ही आदर होता तो तुमने खुद ही संन्यास ले लिया होता। अगर संन्यास की ही समझ होती तो तुमने अपने बेटों को भी अनुप्रेरित किया होता कि जाओ, क्यों देर कर रहे हो, क्यों गंवा रहे हो! नहीं, संन्यास का तुम्हारे मन में न तो समादर है, न संन्यास के प्रति कोई प्रेम, कोई आस्था, कोई श्रद्धा का भाव है। लेकिन तुम धन्यवाद देने जाते हो कि जितने प्रतियोगी कम हुए उतना ही अच्छा। तो तुम भी संन्यासी हो गए, अच्छा हुआ।
बुद्ध के नाम के कारण बुद्धू शब्द प्रचलित हुआ है। शायद बुद्ध के पिता ने सबसे पहले कहा होगाः यह बुद्ध क्या हुआ, बुद्धू! सब छोड़-छाड़ कर भाग गया। दूसरे समझदारों ने भी कहा होगा। और जब किसी का बेटा ध्यान करने बैठने लगता है तो वह कहता है, क्या बुद्धू की तरह बैठे हो! उठो, काम में लगो; ऐसे बैठने से दुनिया न चलेगी। बुद्ध जैसे परम पुरुष के नाम के पीछे बुद्धू जैसी गाली जुड़ गई। कुछ कारण होगा।
और ऐसा बुद्ध के साथ ही नहीं हुआ है, ऐसा बहुत ज्ञानी पुरुषों के साथ हुआ है। गोरख के पीछे गोरखधंधा शब्द चल पड़ा है। क्योंकि गोरख ने बड़ी विधियां खोजीं, ध्यान की बड़ी गहन विधियां खोजीं। और बड़ा ही सूक्ष्म उन विधियों का जाल था। तो लोग एक-दूसरे को कहने लगे, उठो! क्या गोरखधंधे में पड़े हो? गोरखधंधे का मतलब कि यह गोरख की झंझट में उलझ गए? बचो इससे! इसमें उलझे कि गए।
महावीर के पीछे एक शब्द चलता है जो है नंगा-लुच्चा। तुमने कभी सोचा भी
न होगा, क्योंकि तुम किसी को गाली देते हो तब कहते हो कि नंगा-लुच्चा। लेकिन वह आया महावीर से है। महावीर नग्न रहते थे, और बालों की लोंच करते थे। क्योंकि बालों को कटाते नहीं थे। वे कहते थे कि इतना भी साधन का उपयोग करना, उस तरह का उपयोग करना व्यर्थ है। बिना साधन के जो चीज हो सकती है

उसमें साधन की निर्भरता क्यों? तो वे अपने बाल को लोंच लेते थे। नंगा- लुच्चा महावीर के आधार पर बना शब्द हैः जो नंगे रहते हैं और अपने बाल लोंचते हैं।
महापुरुषों के साथ तुम्हारे भीतर की आकांक्षा किस भांति प्रकट हुई है, यह तुम समझ सकते हो। तुमने गालियां दी हैं! बातें तुम पूजा की करते हो। लेकिन यह इस तरह पैदा हुआ होगा कि जब किसी का बेटा, किसी का पति घर छोड़ कर महावीर के पीछे चलने लगा होगा, तो लोगों ने कहा होगा, क्या नंगे-लुच्चों की बातों में पड़े हो? जब कोई गोरखधंधे में उलझने लगा होगा, तब लोगों ने कहा होगा कि बचो, अपने को बचाओ; यह गोरखधंधा है; इसमें कुछ सार नहीं। गोरख भूल गए; गोरखधंधा याद है। महावीर कितने लोगों को पता हैं? जो लोग नंगा-लुच्चा शब्द प्रयोग करते हैं, उनमें से लाखों को महावीर का कोई पता नहीं है। और बुद्धू का प्रयोग तो सभी लोग करते हैं; लेकिन बुद्ध से किसका क्या जोड़ है? जीवन बड़ा जटिल है। और बड़ी से बड़ी जटिलता यह है कि तुम जो पाने निकले हो, अगर वह तुम्हें मिला ही हुआ था तो तुम्हारे पाने की हर कोशिश उसके मिलने में बाधा होगी। कैसे तुम उसे पा सकोगे जो मिला ही हुआ है? उसे पाने का तो एक ही उपाय है कि तुम पाने की सब दौड़ छोड़ कर थोड़ी देर शांत होकर बैठ कर अपने को पहचान लो तुम कौन हो। उसी पहचान से तुम्हारा पद तुम्हें मिल जाएगा। तुम सिंहासन पर विराजमान ही हो। अब तुम किस और सिंहासन की खोज कर रहे हो?
इसलिए जीसस कहते हैं कि जो अंतिम है वह मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम है। है ही। कोई ऐसा नहीं कि परमात्मा अंतिम को बड़ा प्रेम करता है, इसलिए उठा कर उसको सिंहासन पर रख देता है। परमात्मा हो या न हो, अंतिम सिंहासन पर पहुंच ही जाएगा। अंतिम सिंहासन पर है ही। अंतिम होने में ही मिल जाता है सिंहासन। क्योंकि जब तुम सबके पीछे खड़े हो जाते हो, कतार में बिल्कुल आखिरी, तुम्हें कोई धक्का-मुक्का नहीं देता।
क्यू में खड़े होकर देख लो। अगर तुम बिल्कुल आखिर में हो, तुम्हें बिल्कुल धक्के-मुक्के न लगेंगे। अगर तुम बीच में हो, धक्के-मुक्के खाओगे। अगर प्रथम हो तो पिटाई भी हो सकती है। अगर तुम आखिर में खड़े हो तो तुम्हारा कोई भी दुश्मन नहीं है; सभी तुम्हारे मित्र हैं। तुम सभी की मैत्री पाओगे। अगर तुम प्रथम खड़े हो तो सभी तुम्हारे दुश्मन हैं। जो मित्र की तरह दिखाई पड़ते हैं वे भी दुश्मन हैं। क्योंकि भीतर तो उनके भी वही आकांक्षा लगी है कि कब तुम हटो, कब तुम विदा हो जाओ, ताकि वे तुम्हारी जगह पर आरूढ़ हो जाएं। अंतिम खड़ा होना दो तरह से हो सकता है। एक तो कि तुमने कोशिश तो की थी प्रथम खड़े होने की, लेकिन तुम्हारे पैर न टिक पाए, धक्का-मुक्की भारी थी, तुम कमजोर सिद्ध हुए; लोग ज्यादा मजबूत थे, और उन्होंने तुम्हें पीछे कर दिया। यह अंतिम होने से तुम यह मत सोचना कि परमात्मा के राज्य में तुम प्रथम हो जाओगे। क्योंकि भला तुम पीछे खड़े हो, लेकिन आकांक्षा तो तुम्हारी पहले ही खड़े होने की है। भला तुम कमजोर हो इसलिए असहाय हो। इस असहाय अवस्था में तुम्हें स्वभाव का पता न चलेगा।
इसलिए एक बात जो जीसस ने नहीं कही है, मैं उसमें जा.ेड देता हूं कि जो सभी अंतिम खड़े हैं वे सभी परमात्मा के राज्य में प्रथम न हो जाएंगे। क्योंकि हजार अंतिम खड़े लोगों में नौ सौ निन्यानबे तो मजबूरी में खड़े हैं। मजबूरी कोई मुक्ति नहीं है। वे वहां खड़े इसलिए हैं कि लोगों ने जबरदस्ती वहां उन्हें खड़ा कर दिया है, मजबूर कर दिया है। मगर उनके प्राण तड़प रहे हैं। सपना तो वे प्रथम खड़े होने का ही देख रहे हैं।
नहीं, ये लोग प्रथम न हो पाएंगे। असलियत में प्रथम पहुंचो, असलियत में प्रथम पहुंचने की कोशिश करो, या तुम्हारे सपनों में तुम प्रथम होने की कोशिश करो; कोई भेद नहीं है। कभी खाली कुर्सी पर बैठे-बैठे ख्याल आ जाता है कि प्रधानमंत्री हो गए। तब तुम थोड़ी देर को रसलीन हो जाते हो। तब तुम योजनाएं भी बनाने लगते हो कि क्या करोगे, क्या करवा दोगे दुनिया में। कोई भेद नहीं है, सपना देखो या सच्चाई में पहुंच जाओ; लेकिन तुम्हारी भीतर की आकांक्षा प्रथम होने के लिए दौड़ कर रही है।

अंतिम तो वही है जो स्वेच्छा से अंतिम है; जिसे किसी ने पीछे नहीं कर दिया है; जो खुद पीछे हो गया। किसी कमजोरी के कारण नहीं, किसी गहरी समझ के कारण; किसी असहाय अवस्था के कारण नहीं, बोधपूर्वक।
और स्वेच्छा शब्द भी ठीक नहीं है। क्योंकि उसमें भी लगता है कि जैसे थोड़ी सी तकलीफ रही, समझा लिया, सांत्वना कर ली और हट गए। नहीं, स्वेच्छा शब्द भी कमजोर है। अगर ठीक ही कहना हो, तो जो उत्सवपूर्वक अंतिम खड़ा है, अहोभाव से, आनंद से अंतिम खड़ा है, अंतिम होने में जिसने जीवन की कृतार्थता जानी है, जो अंतिम होकर परमात्मा को धन्यवाद दे रहा है, जो अंतिम होकर यह कह रहा है, पा लिया! यही तो पाना था। सांत्वना नहीं है, बड़ा परितोष है, बड़ी गहन तृप्ति है। आनंद से नाच रहा है, क्योंकि अंतिम है। गीत गा रहा है, क्योंकि अंतिम है। अब गीत गा सकता है, क्योंकि अंतिम है, अब कोई प्रथम होने की दौड़ न रही। अब नाच सकता है, क्योंकि अब अंतिम है। अब धन्यवाद दे सकता है, अब प्रार्थना कर सकता है। अब घुटने टेक कर आकाश के सामने झुक सकता है। अब पैरों के लिए और कोई काम न रहा, अब पैर प्रार्थना में झुक सकते हैं। अब हृदय के लिए और कोई उलझन न रही; अब हृदय रस-विभोर हो सकता है। जो रस-विभोर होकर अंतिम है वही जीसस के अर्थों में पहुंच सकेगा।
इसलिए सभी अंतिम न पहुंच जाएंगे, क्योंकि सभी अंतिम ही नहीं हैं। अंतिम तो वही है जो प्रसन्नता से अंतिम है, जो हार्दिकता से अंतिम है, जो संपूर्णता से अंतिम है। इसी को मैं संन्यासी कहता हूं। संन्यास का अर्थ हैः अहोभावपूर्वक अंतिम खड़े हो जाने की दशा; जिसने सब प्रतिस्पर्धा छोड़ दी। प्रतिस्पर्धा यानी राजनीति। प्रतिस्पर्धा यानी दूसरे के गले काटने की चेष्टा। प्रतिस्पर्धा अहंकार की दौड़ है। जो अंतिम है वह विनम्र हो जाता है, अहंकार की दौड़ समाप्त हो गई। यह जो अंतिम खड़ा आदमी है, इसने दूसरे की तरफ देखना ही बंद कर दिया; जैसे दूसरा है ही नहीं। यह अकेला ही है। यह सारा विराट आकाश, ये अनंत-अनंत चांद-तारे इस अकेले के लिए हैं। दूसरा खो गया; क्योंकि दूसरा तभी तक है जब तक तुम उसके लिए सोच रहे हो।
इसे तुम समझ लेना। दूसरा तभी तक है जब तक तुम उसके विचार में पड़े हो।
जब विचार ही न दूसरे का रहा तो दूसरा खो गया। होगा न होगा, कोई अर्थ न रहा। तुम्हारे लिए आकाश अकेले का हो गया; तुम परम स्वतंत्र हो उड़ने को अब। अब तुम्हारे पंख बंधे नहीं हैं। संसार में जिसने दौड़ छोड़ दी उसके पास सारी ऊर्जा बच जाती है। वही ऊर्जा तो पंख बनती है परमात्मा की तरफ जाने का। अब तुम्हारी उड़ान मुक्त है। और ध्यान रखना, परमात्मा की तरफ यात्रा में कोई स्पर्धा नहीं है; कोई स्पर्धा कर भी नहीं रहा है।
मैंने सुना है, एक नया दुकानदार मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में आया।
वह वहां दुकान खोलना चाहता था। नसरुद्दीन पुराना दुकानदार है तो उसने सलाह ली, गांव-बाजार के संबंध में जानकारी ली। और बातचीत में उसने कहा कि मैं एक ईमानदार आदमी हूं; और ईमान से ही काम करना चाहता हूं। ईमानदारी ही मेरी दुकानदारी है। नसरुद्दीन ने कहा, तुम बेफिक्र रहो; तब तो तुम बिल्कुल निश्चिंत, आ सकते हो। क्योंकि तुम्हारा कोई प्रतिस्पर्धी इस गांव में नहीं है। ईमानदारी में कौन प्रतिस्पर्धा कर रहा है? अगर बेईमान होते तो मुश्किल में पड़ते। ईमानदारी? मजे से आओ। अकेले ही हो। और किसी को कोई झगड़ा नहीं है, तुम मजे से अपनी ईमानदारी करो।
ईमानदारी में कौन स्पर्धा कर रहा है? और धर्म तो वहां कोई तुम्हारे साथ दौड़ ही नहीं रहा। तुम अकेले ही दौड़ रहे हो। जहां भी खड़े हो जाओ वहीं प्रथम हो। न दौड़ो तो भी प्रथम, दौड़ो तो भी प्रथम। वहां कोई तुम्हारे साथ दौड़ ही नहीं रहा। और बात कुछ ऐसी है कि धर्म के जगत में प्रतिस्पर्धी हो ही नहीं सकता। क्योंकि धर्म के जगत में प्रवेश ही तब होता है जब प्रतिस्पर्धा गिर जाती है। नहीं तो कोई धर्म के जगत में प्रवेश नहीं करता।
अगर तुम मुझसे परिभाषा पूछो तो यह परिभाषा हुईः संसार का अर्थ है प्रतिस्पर्धा का जगत, और परमात्मा का अर्थ है गैर-प्रतिस्पर्धा का जगत। वहां तुम नितांत अकेले हो। महावीर ने तो उस स्थिति को कैवल्य कहा है; बिल्कुल अकेले, इतने अकेले कि केवल तुम हो, और कोई भी नहीं बचता। कहीं कोई

दीवार नहीं। कहीं कोई रोकने वाला नहीं। कहीं कोई जंजीर नहीं। स्वभावतः, तुम प्रथम हो जाओगे। जहां तुम अकेले हो वहां तुम्हारे द्वितीय होने का उपाय भी कहां? कौन तुम्हें द्वितीय करेगा? तुम चाहो तो क्यू में खड़े हो जाओ, तो भी तुम प्रथम ही रहोगे।
जार्ज माइक्स ने इंग्लैंड के संबंध में एक किताब लिखी है। और उसने लिखा है कि इंग्लैंड अकेला मुल्क है जहां एक आदमी भी बस-स्टैंड पर हो तो क्यू में खड़ा होता है। सारी दुनिया में अकेला ही मुल्क है। एक आदमी भी, जहां कोई है ही नहीं, वह भी क्यू में ही खड़ा रहता है।

परमात्मा के जगत में, तुम चाहो क्यू में खड़े हो जाओ, तुम ही अंतिम हो, तुम ही प्रथम हो।
कुछ और बातें समझ लें, फिर हम इस सूत्र में आसानी से गति कर पाएंगे।
प्रथम होने की दौड़ तुम्हारे भीतर की जरूर किसी गहरी हीनता से पैदा होती है। तुम क्यों दूसरे को पीछे करना चाहते हो? तुम डरते हो कि कहीं दूसरा तुम्हें पीछे न कर दे। तुम डरते हो कि कहीं तुम्हारी हीनता जगत में प्रकट न हो जाए, कोई तुम्हें हरा न दे।
मेरा अनुभव है कि लोग प्रतिपल सुरक्षा में लगे रहते हैं। तुम अपने निकटतम मित्रों के साथ भी सुरक्षा का उपाय करते रहते हो। कोई ऐसी बात न कह दे, कोई ऐसा विवाद न उठ आए, जिसमें तुम हार जाओ। तुम ऐसी चर्चा में नहीं पड़ते जिसमें कोई संघर्ष पैदा हो जाए, कोई प्रतिस्पर्धा हो जाए। तुम अपने को बचाए फिरते हो। तुम सब तरफ से यह कोशिश करते हो कि कोई ऐसी स्थिति न बने जिसमें तुम किसी भांति पीछे दिखाई पड़ जाओ।
इसका सीधा-सीधा अर्थ है, गहनता में तुम जानते ही हो कि तुम पीछे हो और हीन हो। अन्यथा यह इतनी हीनता की ग्रंथि क्यों? इतना भय किसका? अगर यह बात तुम्हें ठीक से समझ आ जाए तो हीनता की ग्रंथि से ही प्रथम होने की दौड़ पैदा होती है। इसलिए राजनीति में तुम पाओगे कि सबसे ज्यादा हीनता-ग्रंथि पीड़ित लोग तुम्हें मिलेंगे। या तो पागलखाने में मिलेंगे और या राजधानियों में मिलेंगे। पागल भी वे इसीलिए हो गए हैं कि हीनता ने उनको इतना-इतना हीन कर दिया कि वे कल्पनाएं करने लगे अपने कुछ होने की।
जब हिटलर जिंदा था तो पागलखानों में ऐसे कई लोग थे जिन्होंने अपने को एडोल्फ हिटलर घोषित कर दिया। क्या मुश्किल थी उन बेचारों की? उनकी मुश्किल यह थी कि हो तो न सके वे एडोल्फ हिटलर, तब एक ही उपाय रहा अपनी हीनता से मुक्त होने का कि उन्होंने मान ही लिया कि वे एडोल्फ हिटलर हैं। और तुम उनको समझा भी नहीं सकते किसी तरह कि वे नहीं हैं। पागल के भीतर प्रवेश करना मुश्किल है। वह सब तरफ से दुर्ग खड़ा कर लेता है।
खलिल जिब्रान ने लिखा है कि उसका एक मित्र पागल हो गया तो वह उसे मिलने गया। वह पागलखाने की दीवार के भीतर बगीचे की एक बेंच पर बैठा हुआ था, बड़ा प्रसन्न था। जिब्रान ने सोचा था उदास पाऊंगा उसे; प्रसन्न पाकर जिब्रान थोड़ा उदास हुआ। वह इतना प्रसन्न था कि जैसे उसे पता ही न हो कि वह पागलखाने में है। और जिब्रान तो सांत्वना, धीरज धराने आया था। उसकी कोई जगह न रही। वह बड़ा ही प्रसन्न था। इतना प्रसन्न वह कभी बाहर नहीं था। जिब्रान उसके पास बैठ गया। उसकी प्रसन्नता देख कर जिब्रान ने कहा कि तुम्हें पता है कि तुम कहां हो?
उस आदमी ने कहा, मुझे और पता न होगा? मैं उस पागलखाने को, जिससे तुम आ रहे हो, दीवार के उस तरफ छोड़ आया। यहां बड़ी शांति है। थोड़े से लोग हैं, और सभी समझदार। अब भूल कर मैं तुम्हारे पागलखाने में वापस नहीं आना चाहता। जिब्रान गया था सांत्वना बंधाने, कोई उपाय न था। पागलपन के घेरे के भीतर तुम प्रवेश नहीं कर सकते। तुम सोचते हो कि वे पागल हैं और पागल सोचते हैं कि तुम सब पागल हो।
हर आदमी अपने आस-पास एक घेरा बना लेता है; उस घेरे के भीतर जीता है। तुम अपने को जो समझते हो, दुनिया में कोई तुमको वैसा नहीं समझता। इस पर तुमने कभी ख्याल किया? तुम अपने को सुंदर समझते हो; कोई उतना सुंदर तुम्हें नहीं समझता। तुम अपने को बुद्धिमान समझते हो; उतना बुद्धिमान

तुम्हें कोई नहीं समझता। न तुम्हारी पत्नी समझती है, न तुम्हारा बेटा समझता है। तुम अपने भीतर अपने को न मालूम क्या समझते रहते हो। वह पागलपन है। वही थोड़ा और बढ़ जाए... ।
पंडित नेहरू एक पागलखाने में गए बरेली। और एक पागल उस दिन मुक्त हो रहा था, तो उनके हाथ से मुक्त करवाया गया। ऐसे ही पूछ लिया उत्सुकतावश कि इस आदमी का पागलपन क्या था?
तो उस आदमी ने कहा कि मेरा पागलपन? मैं जब तीन साल पहले आया तो अपने को पंडित जवाहरलाल नेहरू समझता था। मगर इन लोगों की कृपा कि बिल्कुल ठीक कर दिया, रास्ते पर लगा दिया। अब वह झंझट न रही। उस पागल ने पूछा, और आप कौन हैं? मैंने तो पूछा ही नहीं। तो नेहरू ने कहा कि मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू हूं। वह पागल खिलखिला कर हंसा। उसने कहा, घबराओ मत, तीन साल लगेंगे, अगर इन्हें एक मौका दो। मुझको भी ठीक कर दिया, ये तुम्हें भी ठीक कर देंगे। पागल की अपनी दुनिया है। और तुम ध्यान रखना, जब तक तुम्हारी कोई निजी दुनिया है तब तक तुम थोड़े न बहुत पागल हो। क्योंकि ज्ञानी की कोई निजी दुनिया नहीं रह जाती। ज्ञानी के भीतर अपने प्रति कोई भाव ही नहीं रह जाता। न वह दूसरे के संबंध में कोई भाव रखता है, न अपने प्रति कोई भाव रखता है। वह खाली हो जाता है। और खाली हो जाना विमुक्ति है। जब तक तुम सोचते हो, मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं, तब तक तुम समझना कि जो तुम हो उसको दबाने का तुम उपाय कर रहे हो। मूढ़ आदमी अपने को बुद्धिमान समझता है; कुरूप अपने को सुंदर समझता है। यही उपाय है कुरूपता से बचने का और ढांकने का। दीन-हीन अपने को बड़ा शक्तिशाली समझता है। असहाय अपने को बड़ा अहंकारी समझता है। तुम जो भी अपने को समझते हो, ख्याल करना, वह तुम्हारी दशा से बिल्कुल विपरीत होगा। और तुम जो भी समझते हो, वह सभी गलत है।
अंतिम खड़े हो जाने का अर्थ है, तुम अपनी सब दौड़ छोड़ देते हो--बाहर की, भीतर की। न तुम बाहर से किसी की प्रतिस्पर्धा में हो, न भीतर से। तभी तो तुम्हारी विक्षिप्तता शांत होती है, और धीरे-धीरे तुम्हें वह दिखाई पड़ता है जो तुम हो। उसको ही आत्मज्ञान कहा है। आत्मज्ञान तुम्हें राम-राम जपने से न मिलेगा, न राम चदरिया ओढ़ लेने से मिलेगा, न माला फेरने से मिलेगा। आत्मज्ञान तो तुम्हें मिलेगा, अगर तुम अंतिम खड़े होने की सामर्थ्य जुटा लो। और कोई उपाय नहीं है। और सब उपाय धोखे हैं, तरकीबें हैं। और सब उपाय ऐसे ही हैं जैसे बीमारी तो कैंसर की है और तुम मलहम-पट्टी कर रहे हो। उसका कोई अर्थ नहीं है। बीमारी बहुत गहरी है; तुम चमड़ी पर मालिश में लगे हो। इस तरह हो सकता है तुम अपने को समझा लो, भुला लो, वंचना दे लो; लेकिन तुम रूपांतरित न हो पाओगे।
अंतिम खड़े हो जाने का अर्थ हैः तुम जैसे हो, वैसे ही अपने को जान लेना।
और जब कोई प्रतिस्पर्धा न रही तो डर क्या है? तुम अपने को खोल कर देख लोगे। अगर दीन हो तो दीन हो; अगर मूढ़ हो तो मूढ़ हो; अज्ञानी हो तो अज्ञानी हो।
दावा किसके सामने करना है ज्ञान का? जब प्रतिस्पर्धा न रही तो किसको धोखा देना है?
और ध्यान रखना, जब तुम दूसरों को धोखा देना बंद कर देते हो, तभी तुम अपने को धोखा देना बंद करते हो। क्योंकि वे दोनों चीजें संयुक्त हैं। दूसरे को धोखा देने का बहुत गहरा अर्थ अपने को ही धोखा देना है। दूसरे को जब तुम धोखा देने में सफल हो जाते हो तब तुम्हें खुद भी धोखा आ जाता है कि ठीक है, जब इतने लोग मुझे बुद्धिमान समझते हैं तो जरूर मैं बुद्धिमान होना चाहिए। ऐसा कैसे हो सकता है! इतने लोग थोड़े ही धोखा खा जाएंगे? मेरे कहने से कोई इतने लोग थोड़े ही मान लेंगे? बात कुछ होनी ही चाहिए मुझमें। तुम धोखा दूसरे को देने जाते हो; अपने को दे लेते हो। इस धोखे में अगर रहोगे, तो तुमने जीवन बहुत गंवाए, यह जीवन भी गंवा दोगे। जागने का समय आ गया। ऐसे भी काफी सो लिए हो।
और अगर जागना हो, पंक्ति में पीछे खड़े हो जाओ, पंक्ति को छोड़ दो। खोने
को कुछ भी नहीं है पंक्ति को छोड़ने में, सिवाय तुम्हारी आत्म-वंचनाओं के। पाने को कुछ भी नहीं है पंक्ति के भीतर खड़े होकर, किसी ने कभी कुछ नहीं पाया। सिकंदरों ने नहीं पाया, तुम क्या पाओगे!

मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक चोर घुस गया। मुल्ला ने देखा कि चोर घुस गया है तो वह एक बड़ी अलमारी में छिप कर खड़ा हो गया। पीठ कर ली दरवाजे की तरफ और अलमारी में छिप कर खड़ा हो गया। जब चोर वहां आया तो वह बहुत हैरान हुआ। उसने दीया जब जला कर देखा कि मुल्ला छिपा खड़ा है, उसने कहा, अरे नसरुद्दीन, हम तो सोचते थे तुम बड़े बहादुर आदमी हो! और तुम इस तरह डर कर क्यों खड़े हो? नसरुद्दीन ने कहा कि भाई, बहादुर तो हम हैं ही। और यह तुमसे किसने कहा
कि हम डर कर खड़े हैं? हम तो शरम के मारे खड़े हैं। बीस साल से इस मकान में हम रह रहे हैं। खोज-खोज कर मर गए, कुछ न पाया। अब तुम खोजने आए हो। शरम के मारे खड़े हैं कि तुम खाली हाथ लौटोगे। आए इतनी दूर से, इतनी मेहनत की, और कुछ न पाया। तो अपनी दीनता की शरम--कि घर में कुछ है नहीं। और अगर तुम राजी होओ तो मैं भी तुम्हें साथ दूं खोजने में। बीस साल कोशिश करके यहां हमने कुछ खोज नहीं पाया।
तुम अगर सिकंदरों से पूछो तो वे भी आखिर में अलमारियों में छिप कर खड़े
हो जाते हैं। कुछ नहीं पाया; शरम के मारे खड़े हो जाते हैं। सिकंदर ने मरते वक्त कहा कि मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, क्योंकि मैं चाहता हूं लोग ठीक से देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। और अकेली अरथी है दुनिया में जो हाथ लटकी हुई निकली। क्योंकि सिकंदर की आज्ञा थी, इसलिए मानी गई। उसके दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके थे। लाखों लोग उसकी अरथी को देखने इकट्ठे हुए थे। पूछने लगे कि यह क्या मामला है? इस तरह की अरथी कभी देखी नहीं! सांझ होते-होते राजधानी के लोगों को पता चला कि सिकंदर की मर्जी थी कि उसके हाथ बाहर लटके रहें, ताकि लोग ठीक से पहचान लें कि मैं भी कुछ पाकर नहीं जा रहा हूं; खाली हाथ जा रहा हूं।
जहां से सिकंदर खाली हाथ लौट जाते हैं वहां तुम पंक्ति में खड़े होकर करोगे भी क्या? प्रथम पहुंचे हुए लोग भी खाली हाथ जाते हैं। खोने को कुछ भी नहीं है पंक्ति अगर छोड़ दो; पाने को बहुत कुछ है।
लेकिन पंक्ति छोड़ने में डर लगता है। क्योंकि पंक्ति में जो खड़े हैं
वे कहते हैं, अरे, भगोड़े हो गए? संन्यास ले लिया? पलायनवादी! एस्केपिस्ट! पंक्ति में जो खड़े हैं स्वभावतः ऐसा कहेंगे; क्योंकि तभी वे पंक्ति में खड़े रह सकते हैं। अन्यथा तुम्हारा पंक्ति को छोड़ कर जाना उनको दीनता और शरम से भर देगा। जब वे तुमसे कहते हैं एस्केपिस्ट, पलायनवादी, भगोड़े, तो वे यह कह रहे हैं कि हम भगोड़े नहीं हैं, हम डट कर खड़े रहेंगे। वे अपनी आत्म-रक्षा कर रहे हैं। बहुत से लोग इसीलिए पंक्ति में खड़े हैं डर के मारे कि अगर निकलेंगे तो लोग कहेंगे, भाग गए! मैदान छोड़ दिया! पीठ दिखा दी! हमने न सोचा था कि तुम इतने कमजोर साबित होओगे!
बुद्ध से भी यही कहा गया। खुद बुद्ध के सारथी ने बुद्ध से यह कहा, जो छोड़ने गया था उन्हें जंगल में। उसे पता न था। बुद्ध ने कहा, चलो जंगल, तो वह चल पड़ा। जब बुद्ध रुके एक नदी के किनारे, उन्होंने कहा, अब तुम वापस लौट जाओ। और अपने हाथ के आभूषण और गले के आभूषण सब उतार कर दे दिए। तो सारथी ने कहा, यह पलायन है। सारथी! उसने भी बुद्ध को शिक्षा दी। क्योंकि वह भी पंक्ति में खड़ा है। माना कि बहुत दूर पीछे खड़ा है, लेकिन बिल्कुल पीछे तो नहीं खड़ा है, उससे भी पीछे लोग हैं। और बुद्ध तो प्रथम खड़े थे। उसने कहा, यह पलायन है, यह भागना है। योग्य नहीं है मेरे कि मैं आपको शिक्षा दूं, लेकिन आप भगोड़ापन कर रहे हैं। हिम्मतवर लड़ते हैं; पीठ नहीं दिखा देते।
बुद्ध ने कहा कि मैं जहां से भाग रहा हूं वहां आग लगी है। और जब किसी
के घर में आग लगती है और कोई आदमी बाहर भाग कर आता है, उसे तुम भगोड़ा कहते हो? उस वक्त क्या तुम यह कहोगे कि खड़े रहो भीतर! क्या पीठ दिखा रहे हो? जल जाओ, मगर बाहर मत निकलना। अगर कोई आदमी ऐसा डट कर भीतर खड़ा रहे, तुम उसको बहादुर कहोगे कि मूर्ख? उस सारथी ने कहा, मुझे कहीं आग नहीं दिखाई पड़ती। महल। वहां कैसी आग? सुंदर पत्नी। वहां कैसी आग?
बुद्ध ने कहा, जो तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, वह मुझे दिखाई पड़ रहा है; क्योंकि तुम्हारे पास देखने की आंखें नहीं हैं। वहां महल नहीं है, सिवाय लपटों के। और वहां कोई सुंदर पत्नी नहीं है, सिवाय लपटों के। मैं भाग नहीं रहा हूं।

यह बड़े मजे की बात है। जिंदगी इतनी जटिल है कि कभी-कभी भगोड़े ही साहसी होते हैं; और जो खड़े हैं, लड़ रहे हैं, वे कमजोर होते हैं इसलिए खड़े हैं। लेकिन खड़े होने वालों की बड़ी भीड़ है; भीड़ से कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब भी तुम छोड़ने को, पीछे जाने को हटोगे, भीड़ तुम्हें कहेगीः कहां जाते हो? छूट गई हिम्मत? साहस मिट गया? डटे रहो। टूट जाओ, झुको मत। यही बहादुरों का लक्षण है।
संन्यासी भगोड़ा लगता है। संन्यासी भगोड़ा है नहीं। वह वहां से हट रहा है, जहां आग लगी है।
अब हम लाओत्से के सूत्र को समझें।
"स्वर्ग का, ताओ का मार्ग, क्या वह धनुष के झुकाने जैसा नहीं है?"
लाओत्से कहता है कि स्वर्ग का मार्ग ऐसा है, जैसे कोई धनुर्धर प्रत्यंचा को खींचता है और धनुष को झुकाता है। तीर चलता तभी है जब धनुष झुकता है। और जब कोई प्रत्यंचा को खींचता है तो क्या घटना घटती है? जो सिरा ऊपर था वह झुक कर नीचे आ जाता है; जो सिरा नीचे था वह उठ कर ऊपर जाता है। और जितना ही बड़ा धनुर्धर होगा उतनी ही बड़ी यह घटना घटेगी। ऊपर का सिरा नीचे आएगा; नीचे का सिरा ऊपर जाएगा।
कहता है लाओत्से, "स्वर्ग का ताओ-मार्ग, क्या वह मनुष्य के द्वारा धनुष के झुकाने जैसा नहीं है? शिखर नीचे चला जाता है, अधोभाग ऊपर उठ जाता है।"
और एक संतुलन निर्मित हो जाता है। जो आगे था वह पीछे खींच लिया जाता है; जो पीछे था वह आगे बढ़ा दिया जाता है। और जीवन एक संतुलन में आ जाता है। जीवन की अति खो जाती है।
संतुलन सार है लाओत्से के वचनों का। प्रथम होना भी सार्थक नहीं है, अंतिम होना भी सार्थक नहीं है। यहां जीसस और लाओत्से में तुम्हें फर्क साफ दिखाई पड़ेगा। जीसस कहते हैं, जो प्रथम खड़ा है वह अंतिम हो जाए, क्योंकि वही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होने का उपाय है। लाओत्से यह नहीं कहता। लाओत्से कहता है कि प्रथम और अंतिम तो एक ही द्वंद्व के दो भाग हैं। इसलिए लाओत्से जीसस से गहरा जाता है। या तो तुम प्रथम खड़े होते हो, या जब तुम सब छोड़ देते हो, तुम अंतिम खड़े हो जाते हो। लाओत्से कहता है कि जीवन का मार्ग तो संतुलन है।
तो वह यह नहीं कहता कि जो अंतिम हैं वे प्रथम हो जाएंगे और जो प्रथम हैं वे अंतिम हो जाएंगे। लाओत्से कहता है, जो अंतिम हैं वे थोड़े ऊपर आ जाएंगे; जो प्रथम हैं वे थोड़े नीचे आ जाएंगे; और एक जगह दोनों एक समान लयबद्धता में लीन हो जाएंगे; एक संतुलन निर्मित हो जाएगा।
"शिखर नीचे चला जाता है, अधोभाग ऊपर उठ जाता है। अतिरिक्त लंबाई छोटी
हो जाती है... ।"
धनुष लंबा था; चौड़ाई छोटी थी, लंबाई ज्यादा थी; वह असंतुलन था। जब प्रत्यंचा खींची जाती है तो लंबाई छोटी हो जाती है।
"अतिरिक्त लंबाई छोटी हो जाती है, अपर्याप्त चौड़ाई बड़ी हो जाती है।" खिंची हुई प्रत्यंचा में धनुष की चौड़ाई और लंबाई बराबर हो जाती है। "स्वर्ग का ढंग है, वह उससे छीन लेता है जिसके पास अतिशय है, और उन्हें दिए देता है जिनको पर्याप्त नहीं है।"
क्योंकि स्वर्ग निरंतर संतुलन बना रहा है। तो जो पीछे खड़े हैं उनको आगे ले आता है; जो आगे खड़े हैं उनको पीछे ले आता है। जिनके पास बहुत है उनसे छीन लेता है; और जिनके पास बहुत नहीं है उन्हें दे देता है। पहाड़ों को गिराता है, घाटियों को भरता है। अहंकारियों को काटता है; विनीत को, विनम्र को देता है। अकड़े हुओं से छीन लेता है; और जिनकी नमने की क्षमता है उनको बांट देता है। जहां कमी है वहां भरता है; जहां ज्यादा है वहां से हटाता है। सारी प्रकृति सदा एक गहरे संतुलन की चेष्टा में संलग्न है।
"स्वर्ग का ढंग है, उनसे छीन लेता है जिनके पास अतिशय है, और उन्हें दिए देता है जिनको पर्याप्त नहीं है।"
इसलिए अगर तुम्हें प्रथम होना हो तो अंतिम खड़े हो जाना। क्योंकि स्वर्ग का नियम तुम्हें खींच कर आगे ले आएगा। और अगर तुम्हें अंतिम ही

होना हो तो तुम प्रथम की कोशिश करना। आखिर में तुम पाओगे तुम खींच कर पीछे ले आए गए। लाओत्से की विचार-पद्धति जीसस से गहरी जाती है। लेकिन विधि तो वही रहेगी जो जीसस की है। तुम यह मत सोचना कि हम बीच में खड़े हो जाएं। बीच में तो तुम पता भी न लगा पाओगे कहां बीच है, कहां मध्य है। और मध्य में होने का तो अर्थ यह हुआ कि संघर्ष जारी रहेगा। क्योंकि कुछ तुम्हारे पीछे होंगे, कुछ तुम्हारे आगे होंगे। जो पीछे हैं वे आगे जाना चाहेंगे। तुम्हें अपने मध्य को भी बचाना पड़ेगा। जो आगे हैं वे तुम्हें आगे न बढ़ने देंगे। जो पीछे हैं वे तुम्हें पीछे खींचेंगे। मध्य में भी संघर्ष जारी रहेगा। इसलिए उपाय तो वही है जो जीसस कह रहे हैं। लेकिन लाओत्से की समझ और ऊंचाई पर ले जाती है।
लाओत्से यह नहीं कहता कि तुम अंतिम खड़े होओगे तो तुम प्रथम हो जाओगे।
और यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। क्योंकि आदमी का अहंकार ऐसा है कि वह इसीलिए अंतिम खड़ा हो सकता है ताकि प्रथम हो जाए। तब भीतर-भीतर तो वह प्रथम होना चाहता है। गहरे में तो वह प्रथम होना चाहता है। अब मानते नहीं हैं जीसस और कहते हैं कि यही रास्ता है प्रथम होने का कि अंतिम खड़े हो जाओ, इसलिए अंतिम खड़ा हो जाता है। लेकिन अंतिम वह होना नहीं चाहता, होना तो प्रथम चाहता है। तो आदमी इतना बेईमान है और इतना चालाक है, इतना चालाक है कि अपने साथ
भी चालाकी कर लेता है; अपनी ही एक जेब में से चुरा कर दूसरी जेब में रख लेता है। तो जीसस की बात से खतरा है। वह खतरा यह है कि तुम विनम्र हो सकते हो सिर्फ इसीलिए ताकि परमात्मा के राज्य में तुम्हारे अहंकार की पूर्ति हो। जीसस के मरने के दिन, एक ही रात पहले, जीसस के शिष्य जीसस से पूछते हैं
कि स्वर्ग के राज्य में यह तो निश्चित है कि आप परमात्मा के पास बैठे होंगे, हम बारह शिष्यों की क्या दशा होगी? हम कहां-कहां खड़े होंगे, कहां बैठेंगे? परमात्मा के दरबार में हमारी जगह का क्या हिसाब है? हममें से, बारह में से कौन आपके पास होगा और कौन दूर होगा?
ये शिष्य जीसस को समझे ही नहीं। ये जीसस के साथ भी इसीलिए हैं कि वहां प्रथम होने का मौका सुविधा से मिल जाएगा। अपना ही आदमी परमात्मा का बेटा है। तो यह तो भाई-भतीजावाद हुआ वहां भी कि तुम जब प्रथम खड़े होओगे, परमात्मा के पास, तो हमारी क्या स्थिति होगी? जाने के पहले कम से कम यह तो बता जाओ। यह कोई धार्मिक व्यक्तियों का लक्षण न हुआ। इसलिए जीसस के वचन और जीसस की जीवन-चेतना बिल्कुल ही ईसाइयत ने मार डाली, क्योंकि इन बारह आदमियों ने ईसाइयत को खड़ा किया, जिनको कोई समझ नहीं है, जो जीसस को बिल्कुल चूक ही गए। वहां भी प्रतिस्पर्धा जारी है। परमात्मा के राज्य में भी प्रथम होने का मोह जारी है। और जब तक तुम प्रथम होना चाहते हो, तुम ध्यान रखो, तुम हीन ही रहोगे।
जब हम कहते हैं कि अंतिम खड़े हो जाओ तो तुम प्रथम हो जाओगे, इसका यह अर्थ नहीं है कि हम तुम्हें प्रथम होने की तरकीब बता रहे हैं। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि जो भी अंतिम हो जाता है वह प्रथम हो जाता है। वह उसका परिणाम है, वह सहज घटता है। लेकिन अंतिम होने का अर्थ है प्रथम होने की सारी आकांक्षा को छोड़ देना। तभी वह महान घटना घटती है। इसलिए लाओत्से, जो अंतिम खड़े हैं उनको यह नहीं कहता कि तुम प्रथम हो जाओगे। न, वह बात ही काट देता है। क्योंकि उससे तुम्हारे धोखा देने की संभावना है।
लाओत्से कहता है, स्वर्ग का ढंग है, उनसे छीन लेता है जिनके पास अतिशय है, उन्हें दे देता है जिनके पास पर्याप्त नहीं है। तो परमात्मा के राज्य में अंतिम प्रथम नहीं हो जाएंगे और प्रथम अंतिम नहीं हो जाएंगे। न तो परमात्मा के राज्य में कोई प्रथम रह जाएगा और न कोई अंतिम रह जाएगा। परमात्मा के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होगा। प्रथम और अंतिम तो दूसरे के साथ तुलना है। परमात्मा के राज्य में प्रथम व्यक्ति का अर्थ हुआ दूसरे पीछे खड़े हैं; वह तो फिर भी नजर दूसरे पर रही। परमात्मा के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होगा। तुलना टूट जाएगी, कंपेरिजन खो जाएगा। परमात्मा के राज्य में तुम तुम होओगे, मैं मैं होऊंगा। न तुम मुझसे आगे होओगे, न मैं तुमसे पीछे। न मैं तुमसे आगे, न तुम मुझसे पीछे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी खिलावट में खिल जाएगा। कमल गुलाब से पीछे है या आगे?

कमल कमल है, गुलाब गुलाब है। कौन पीछे है? कौन आगे है? परमात्मा के राज्य में सभी खिल जाएंगे। कोई आगे-पीछे नहीं होगा। आगे-पीछे की धारणा ही सांसारिक धारणा है। वह अहंकार की ही तुलना है।
लाओत्से कहता है, सब सम हो जाएगा, एक संगीत पैदा होगा। सबके पास बराबर होगा। सभी अद्वितीय होंगे अपनी निजता में, लेकिन सभी के पास बराबर होगा। "मनुष्य का ढंग यह नहीं है।"
मनुष्य का ढंग परमात्मा के ढंग से बिल्कुल उलटा है।
"वह उनसे छीन लेता है जिनके पास नहीं है।"
तुम गरीबों से तो छीनते हो और अमीरों को भेंट दे आते हो। दीन-दरिद्र
से तो छीन लेते हो और सम्राट के चरणों में चढ़ा आते हो। जिसे कोई जरूरत न थी उसे तो तुम भेंट देते हो, और जिसे जरूरत थी उसे तुम इनकार कर देते हो, उससे उलटा छीन लेते हो। तुम भिखारी के खीसे से निकालते हो और सम्राटों के खीसों में डालते हो। तुम उसे भोजन का निमंत्रण दे आते हो जिसका पेट भरा ही हुआ है, जो तुम्हारी थाली पर बैठ कर थोड़ा स्वाद लेगा इधर-उधर, और सब पड़ा छोड़ जाएगा। और जो तुम्हारे द्वार पर भीख मांगने खड़ा होता है, उससे तुम कहते हो, आगे जाओ, यहां खड़े मत हो। जो भूखा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है वह तो आगे हटा दिया जाता है। और भरे पेट लोग, तुमने जो भी बनाया है उनके स्वागत-समारोह में, उसे वैसा ही पड़ा छोड़ जाएंगे।
असल में, तभी तुम प्रसन्न होते हो जब कोई सब पड़ा छोड़ जाए। उसका अर्थ हुआ कि कोई बड़ा मेहमान तुम्हारे घर आया था। अगर सब जो तुमने परोसा था वह सब खा जाए, तो तुम समझोगे कहां के दीन-दरिद्र को घर बुला बैठे! तो शिष्टाचार भी यह कहता है कि किसी के घर अगर बुलाए जाओ तो भूख भी लगी हो तो भी खाना मत। क्योंकि भूख के कारण तुम नहीं बुलाए गए हो। और भूख के कारण तो तुम अगर खड़े होते द्वार पर तो हटा दिए गए होते। तुम भरे पेट के कारण बुलाए गए हो। तुम बुलाए ही इसलिए गए हो कि तुम्हारे पास बहुत है; वे तुम्हें और देना चाहते हैं। इसलिए तुम भूल कर भी यह प्रकट मत करना कि तुम्हें भूख लगी है। तुम थाली पर ऐसे बैठना जैसे उपेक्षा से; ऐसा जरा सा दाना यहां से ले लेना, जरा सा सूप यहां से चख लेना, एकाध रोटी का टुकड़ा तोड़ लेना, और सब ऐसे ही कचरे में डला रह जाने देना। तभी घर के लोग प्रसन्न होंगे कि कोई बड़ा आदमी घर आया था। अगर तुमने सभी भोजन कर लिया तो वे भी दुखी होंगे, कहां के भिखारी को बुला बैठे! गलती हो गई। दोबारा तुम्हें निमंत्रण न मिलेगा। आदमी के ढंग बड़े अजीब हैं।
ऐसा हुआ, कि उर्दू में बहुत बड़ा महाकवि हुआ गालिब। दिल्ली के सम्राट
ने गालिब को किसी उत्सव में निमंत्रण दिया। बड़ा निमंत्रण था, बड़ा भोज था। लेकिन सम्राट को गालिब के वचनों में लगाव था, उसके गीतों में रस था। गालिब के मित्रों ने कहा कि जा रहे हो तो थोड़ा सोच-समझ कर जाओ। ये कपड़े तुम्हारे ठीक नहीं हैं, ये सम्राट के दरबार के योग्य नहीं हैं। ये फटे-पुराने कपड़े पहन कर जाओगे, कोई पहचानेगा भी नहीं। और डर यह है कि पहरेदार शायद तुम्हें भीतर न घुसने दें। पर उसने कहा कि निमंत्रण मुझे मिला है! यह निमंत्रण-पत्र मेरे पास है, यह तो मैं दिखा सकता हूं। उन्होंने कहा, तुम इस भूल में मत पड़ो, ढंग से जाओ। कोई निमंत्रण-पत्र नहीं पूछेगा। इस हालत में तो पूछेगा और भरोसा भी नहीं करेगा कि तुम्हें मिल कैसे गया! पर गालिब को बात जंची नहीं। गालिब ने कहा, मुझे बुलाया है, वस्त्रों को तो नहीं।
तो वैसे ही गया। द्वारपाल ने भीतर घुसने ही न दिया। धक्का-मुक्की की हालत आ गई। उसने निकाल कर अपना निमंत्रण-पत्र दिखाया। उसने कहा, फेंक निमंत्रण-पत्र! किसी का चुरा लिया होगा। तू भाग जा यहां से, नहीं तो हम पकड़वा देंगे।
गालिब उदास घर लौटा। मित्र तो जानते ही थे। तो उन्होंने इंतजाम कर रखा था। कपड़े उधार ले आए थे; शेरवानी, पगड़ी, सब तैयार कर रखी थी, जूते। घर लौट कर आया तो उन्होंने कहा, समझ गए? फिर गालिब कुछ बोला नहीं, उसने पहन लिए उधार कपड़े, वापस गया। वही पहरेदार झुक कर सलाम किए। आदमियों की थोड़े ही कोई पूछ है, कपड़े की पूछ है। यह भी न पूछा--गालिब बेचारा खीसे में हाथ

डाले था कि जल्दी से निकाल कर कार्ड बता देगा--लेकिन किसी ने कार्ड पूछा ही नहीं। बात ही बदल गई।
वह भीतर गया। सम्राट ने अपने पास बिठाया। जब वह भोजन करने लगा तो सम्राट थोड़ा हैरान हुआ कि यह क्या कर रहा है! उसने मिठाइयां उठाईं, अपने कोट को छुआईं और कहा, ले कोट, खा ले! पगड़ी को छुआया और कहा, ले पगड़ी, खा ले! सम्राट ने कहा कि माफ करें। कवियों से विचित्र व्यवहार की अपेक्षा होती है, लेकिन इतना विचित्र व्यवहार! यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा, मैं तो आया था, लेकिन लौटा दिया गया। अब तो कपड़े आए हैं। मैं आया था, लेकिन लौटा दिया गया। अब तो जिनके सहारे मैं आया हूं पहले उनको भोजन देना जरूरी है। अब तो मैं नंबर दो हूं।
आदमी का व्यवहार स्वर्ग के व्यवहार से भिन्न है। यहां जिनके पास है उनको दिया जाता है, जिनके पास नहीं है उनसे छीन लिया जाता है। स्वर्ग का व्यवहार स्वभावतः इससे उलटा है। जिनके पास नहीं है उन्हें दिया जाता है, जिनके पास है उनसे छीन लिया जाता है। क्योंकि स्वर्ग एक संतुलन है। स्वर्ग न तो गरीब का है न अमीर का। क्योंकि गरीबी एक बीमारी है और अमीरी भी एक बीमारी है। क्योंकि दोनों अतिशय हैं। अमीर के पास अमीरी ज्यादा है, गरीब के पास गरीबी ज्यादा है। गरीब से थोड़ी गरीबी छीन कर अमीर को देना जरूरी है। अमीर से थोड़ी अमीरी छीन कर गरीब को देना जरूरी है। मध्य हमेशा संतुलित है और स्वस्थ है।
"मनुष्य का ढंग यह नहीं है। वह उनसे छीन लेता है जिनके पास नहीं है, और उन्हें दे देता है--कर के रूप में, भेंट के रूप में--जिनके पास अतिशय है।" "कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है?"
मनुष्य तो देता है उसको जिसके पास है। और स्वर्ग का राज्य देता है उसे जिसके पास नहीं है। लाओत्से संत को स्वर्ग से भी ऊपर उठा देता है। लाओत्से कहता है, कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है? जो किसी से छीन कर किसी को नहीं देता? स्वर्ग का राज्य भी किसी से छीन कर किसी को देता है। लेकिन कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है? "केवल ताओ का व्यक्ति।"
इसे थोड़ा समझें। क्योंकि संत स्वर्ग से ऊपर है। संत में स्वर्ग है, स्वर्ग में संत नहीं। संत का घेरा बड़ा है।
ऐसी यहूदी कथा है कि एक यहूदी फकीर झुसिया ने रात सपना देखा कि वह स्वर्ग पहुंच गया है। वह बड़ा हैरान हुआ; उसने कभी सोचा भी न था। स्वर्ग में महान-महान संत हैं सदियों पुराने। पूरे अनंत काल से चले आ रहे। वे सब, कोई झाड़ के नीचे बैठा प्रार्थना कर रहा है, कोई सड़क के किनारे बैठे घुटने टेक कर हाथ जोड़े है। वह बिल्कुल हैरान हुआ। उसने कहा कि हमने तो सोचा था कम से कम स्वर्ग में जाकर तो यह छुटकारा मिलेगा प्रार्थना से। प्रार्थना तो स्वर्ग आने के लिए ही करते थे; अब ये लोग किसलिए प्रार्थना कर रहे हैं? और सारा स्वर्ग प्रार्थना और पूजा से गूंज रहा है। बात तो ठीक है; क्योंकि यह अगर यहां भी जारी है तो छुटकारा फिर कहां होगा? तो उसने पूछा किसी देवदूत को कि यह क्या हो रहा है? यह स्वर्ग है कि नरक? क्योंकि हमने तो सोचा था आदमी जब दुखी होता है तो प्रार्थना करता है, पूजा करता है। यहां तो सुख ही सुख है। तो ये सब लोग पूजा क्यों कर रहे हैं?
उस देवदूत ने कहा, संत की प्रार्थना में स्वर्ग है। स्वर्ग यहां है नहीं। इन सब की प्रार्थनाओं के कारण स्वर्ग है; संत के हृदय में स्वर्ग है। उस देवदूत ने कहा कि तुम यह भ्रांति छोड़ दो कि संत स्वर्ग में जाता है; संत जहां जाता है वहां स्वर्ग जाता है।
स्वर्ग कोई भौगोलिक स्थिति नहीं है कि उठे और टिकट खरीदी, पहुंच गए। तुम्हारे धर्मगुरुओं ने ऐसी ही हालत बना दी है कि स्वर्ग जैसे कोई भौगोलिक स्थिति है। इधर दो दान, उधर नाम लिख दिया, कि इनका पक्का हो गया, रिजर्वेशन हो गया। अब तुम्हें कोई भी रोकेगा नहीं। कोई दरवाजा थोड़े ही है वहां। न कोई द्वारपाल हैं। सब दरवाजे, सब द्वारपाल कथाएं हैं। स्वर्ग तो भाव-दशा है। प्रार्थना के क्षण में स्वर्ग में तुम होते हो। या ज्यादा अच्छा होगाः स्वर्ग तुम में होता है।

संत स्वर्ग से ऊपर है। स्वर्ग तो केवल संतुलन कर पाता है। संतुलन ठीक
है, लेकिन काफी नहीं। संतुलन बिल्कुल ठीक है। संतुलन ऐसा है, जैसे कोई आदमी जो बीमार नहीं है, बिल्कुल ठीक है, स्वस्थ है। अगर डाक्टर के पास ले जाओ तो कोई बीमारी पकड़ में नहीं आती, और डाक्टर कह देता है कि बिल्कुल ठीक है। लेकिन तुम्हें पता है कि डाक्टर के बिल्कुल ठीक कह देने से काफी नहीं है, पर्याप्त नहीं है। जितना होना चाहिए उतना नहीं है। स्वास्थ्य तो एक अहोभाव है, एक पुलक है। स्वास्थ्य केवल बीमारी का अभाव नहीं है। स्वास्थ्य का अपना एक भाव है, एक अपनी पाजिटिविटी है, अपनी विधायकता है। कभी-कभी तुम पाते हो कि एक वेल-बीइंग, एक प्रसन्नता रोएं-रोएं में भरी है। किसी सुबह, अचानक, अकारण कभी तुम पाते हो, सब पुलकित है, सब आह्लादित है। इस आह्लाद को डाक्टर पकड़ न पाएगा। अगर तुम उसके पास जाओगे कि बताओ मैं आह्लादित क्यों हूं? या कहां कारण है? वह न पकड़ पाएगा। डाक्टर तो केवल बीमारी पकड़ सकता है; ज्यादा से ज्यादा बीमारी का अभाव बता सकता है कि कोई बीमारी नहीं, तुम ठीक हो। मेडिकली फिट का अर्थ नहीं होता कि तुम परम स्वस्थ हो। मेडिकली फिट का इतना ही अर्थ होता है कि कोई बीमारी नहीं है; संतुलित हो। स्वास्थ्य तो एक बाढ़ है, ऐसा पूर कि किनारे तोड़ कर बह जाता है। प्रकृति तो संतुलन से जीती है; संत समाधि से जीता है। इसलिए लाओत्से कहता है कि कौन है जिसके पास पर्याप्त है? इतना पर्याप्त है कि सारे संसार को दे दे?
"केवल ताओ का व्यक्ति।"
संत किसी से छीनता नहीं। क्योंकि उसकी संपदा छीनने वाली संपदा नहीं है। उसके पास अपनी संपदा है जो वह देता है। जो भी लेने को राजी हो उसे दे देता है। और उसके पास इतना भरपूर है! एक अलग सूत्र काम करता है संत के लिए। जैसे मनुष्य का सूत्र हैः उससे छीन लो जिसके पास नहीं है, उसको दे दो जिसके पास है। स्वर्ग का या प्रकृति का सूत्र हैः जिसके पास है उससे ले लो और उसे दे दो जिसके पास नहीं है, ताकि संतुलन हो जाए। संत का तीसरा सूत्र है। उसका सूत्र यह है कि जो भी तुम्हारे पास है तुम बांटते जाओ। जितना तुम बांटते हो उतना वह बढ़ता है। तुम दो। किसी से छीन कर किसी को देना नहीं है। संत के पास खुद है। उसे अपने हृदय को उलीचना है।
कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिए, यही संतन का काम।
उलीचते जाओ! और जैसे कोई कुएं को उलीचता है, और नये जल-स्रोत के झरने निकलते आते हैं, और कुआं फिर भर गया, फिर भर गया, फिर भर गया। ऐसा संत अपने को बांटता जाता है। और उसके पास इतना है कि वह सारे संसार के लिए देने के लिए पर्याप्त है। वह संपदा और! वह संपदा बांटने से बढ़ती है। इस संसार की संपदा बांटने से घटती है।
एक भिखारी एक द्वार पर खड़ा है। घर की गृहिणी ने उसे भोजन दिया, कपड़े दिए। उसे उस पर बड़ी दया आई। और दया का कारण यह था कि उसके चेहरे से बड़ा संपन्न होने का भाव था, जैसे कभी उसके पास संपत्ति रही हो, सुविधा रही हो। उसके चेहरे पर संस्कार था, एक कुलीनता थी। वह भिखारी मालूम नहीं पड़ता था।
उसके कपड़े फटे-पुराने थे, लेकिन भीतर से एक सुसंस्कृत व्यक्ति की आभा थी। भोजन के बाद, कपड़े देने के बाद उस गृहिणी ने पूछा, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? उस आदमी ने कहा, जल्दी ही तुम्हारी भी हो जाएगी। इसी तरह हुई! जो आया द्वार पर उसको ही दिया; मांगा भोजन तो कपड़े भी दिए। तुम्हारी भी हो जाएगी। इस संसार की संपत्ति को बांटो तो घटती है। अगर ठीक से समझो तो उसको संपत्ति ही क्या कहना जो बांटने से घट जाए? वह विपत्ति है, संपत्ति है नहीं। जो बांटने से घट जाए वह संपत्ति ही नहीं है। क्योंकि संपत्ति का तो तभी पता चलता है जब तुम बांटो और बढ़े।
संत के पास एक संपत्ति है--उसके आनंद की, उसके ध्यान की, उसकी समाधि की--जो जितनी बांटी जाए उतनी बढ़ती है। उसे घटाने का कोई उपाय नहीं। उसके घटाने का एक ही उपाय है कि उसे मत बांटो। तो वह सड़ जाती है। इसीलिए तो बुद्ध चले जाते हैं जंगल, जब वे अज्ञानी हैं; महावीर चले जाते हैं पहाड़ों में, जब वे अज्ञानी हैं; जीसस एकांत में, मोहम्मद एकांत में। और जब संपदा बरसती है उन पर तो भागे हुए बाजार में आ जाते हैं। क्योंकि अब बांटना

पड़ेगा। पाने के लिए अकेला होना जरूरी था। बांटने के लिए तो दूसरे चाहिए।
इसलिए समस्त ज्ञानी पुरुष ज्ञान की खोज में एकांत में जाते हैं। लेकिन फिर क्या होता है? ज्ञान को पाते ही तत्क्षण भागते हैं समाज की तरफ। क्योंकि सड़ जाएगा स्रोत; जिस कुएं से कोई पानी न भरेगा, वह गंदा हो जाएगा। अब चाहिए कि कोई पानी भरे, अब लोग आएं और अपने प्यास के घड़े लटकाएं संत के हृदय में--भरें, उलीचें। संत द्वार-द्वार जाता है बांटने को, देने को। जो भी राजी हो उसे देने को वह तैयार है। और कभी-कभी तो ऐसी घड़ी आ जाती है कि तुम चाहे राजी न भी हो, वह देता है। क्योंकि सवाल तुम्हारे लेने का नहीं है, सवाल उसके देने का है। अन्यथा सड़ेगा।
तिब्बत में एक बहुत बड़ा संत हुआ, मिलरेपा। उसने जिंदगी भर इनकार किया लोगों को समझाने से। शास्त्र न लिखा; न किसी को समझाए। और जब भी कोई उसका शिष्य बनने आए तो वह ऐसी कठिन शर्तें बताए कि कोई शिष्य न हो सके। उसकी शर्तों को पूरा करना मुश्किल।
फिर उसके मरने का दिन आया और उसने घोषणा कर दी कि तीसरे दिन मैं मर जाऊंगा। और जो आदमी पास था उससे कहा कि तू भाग कर बाजार में जा और जो भी राजी हो लेने को उसको बुला ला। पर उस आदमी ने कहा कि जीवन भर तो आप ऐसी शर्तें लगाते रहे कि हजारों लोग आए, लेकिन शर्तें ऐसी कठिन थीं कि कौन पूरा करे! कोई पूरा न कर सका तो आपने किसी को शिष्य की भांति स्वीकार न किया, न किसी को दीक्षा दी। अब आप क्या आखिरी वक्त में दिमाग आपका खराब हो गया है? आप कहते हैं किसी को भी! क्या मतलब? शर्तों का क्या होगा?
उसने कहा, तू शर्तों की फिक्र छोड़। वे शर्तें तो इसलिए थीं कि मेरे पास था ही नहीं। अब मेरे पास है। और अब इसकी फिक्र छोड़ कि कौन लेने को राजी है या कौन नहीं। जो तुझे मिल जाए! तू बाजार में डुंडी पीट दे कि मिलरेपा बांट रहा है; आ जाओ। और जिसको भी लेना हो आ जाए।

एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम्हारे पास इतना होता है कि बांटे बिना न चलेगा, बोझ हो जाएगा। संत के पास इतना है कि सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है; क्योंकि वह घटता नहीं।
उसी संपदा को खोजो जो देने से कम न होती हो। तभी तुम सम्राट हो सकोगे, अन्यथा तुम भिखारी रहोगे। जो देने से कम होती हो वह संपदा तुम्हें भिखारी ही बनाए रखेगी। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, पर रहोगे भिखारी ही। बड़े से बड़ा अमीर भी भिखारी ही रहता है। क्योंकि उसकी संपदा देने से घट जाएगी। तो वह मांगता ही रहता हैः लाओ! वह बुलाता ही रहता है कि आओ, और लाओ! उसके और की दौड़ कम नहीं होती। क्योंकि मांगने से बढ़ती है, छीनने से बढ़ती है संपदा; देने से घटती है। संत के पास एक संपदा है जो देने से बढ़ती है, बांटने से बढ़ती है। "केवल ताओ का व्यक्ति। इसलिए संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं करते। संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते। उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।"
"संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं करते।"
वे देते हैं, लेकिन देकर इतना भी नहीं चाहते कि तुम उनके अनुगृहीत हो जाओ। क्योंकि वह तो अधिकृत करना होगा, वह तो तुम पर मालकियत करनी होगी। यह बड़ी अनूठी बात है। संत देते हैं और तुम्हीं को मालिक बनाते हैं। संत देते हैं और इतना भी नहीं चाहते कि तुम उनके अनुगृहीत हो जाओ। उतना भाव भी संतत्व में कमी होगी। तुम धन्यवाद दो, उसकी भी आकांक्षा हो तो अभी संत संसार का ही हिस्सा है। तब वह तुम्हारे धन्यवाद की संपत्ति जोड़ रहा है। संत का अर्थ ही यह है कि तुम उसे अब कुछ भी देने में समर्थ नहीं रहे; वह तुम्हारे देने की सीमा के बाहर हो गया। तुम अपना सब कुछ भी दे डालो तो भी संत तुम्हारे देने की सीमा के बाहर हो गया है। और संत तुम्हें जो भी दे रहा है, वह ऐसा है कि तुम उसे लेने में डरना मत।
तुम लेने में भी डरते हो। क्योंकि तुम्हें लगता है, जिससे भी लेंगे उसके अनुगृहीत हो जाते हैं, एक ऑब्लिगेशन हो जाता है। तुमने केवल संसार की चीजें ली हैं। तो किसी से अगर दो पैसे ले लिए तो उसका भार तुम्हारी छाती पर बैठ जाता है। वह आदमी रास्ते पर मिलता है तो इस भांति देखता है कि दो पैसे

दिए हैं। इसलिए इस संसार में तुम्हें जो भी कुछ दे देता है वह तुम्हें अधिकृत कर लेता है, पजेस करता है। वह कहता है, मैंने तुम्हें प्रेम दिया। दूसरों की तो बात छोड़ दो, मां, जिसका प्रेम शुद्धतम कहा जाता है, वह भी अपने बेटे से कहती है कि मैंने तुझे पाला-पोसा, बड़ा किया, इतना तेरे लिए श्रम उठाया, गर्भ में ढोया, कष्ट पाए, और तू कुछ भी नहीं कर रहा है!
तो मां का प्रेम तक जहां अधिकृत करता हो तो वहां दूसरे प्रेमों का तो क्या कहना? और घृणा की तो बात ही क्या पूछनी है? यहां तो तुम्हें कोई कुछ देता है सिर्फ इसीलिए ताकि तुम्हें अधिकृत कर ले। कब्जा करना चाहता है। यहां देना तो राजनीति का हिस्सा है। इसलिए तुम संतों से लेने में भी डरते हो। तुम भयभीत होते हो कि कहीं इनसे लिया, ऐसा न हो कि अधिकृत हो जाएं। लेकिन संत तो वही है जो पजेस नहीं करता, अधिकृत नहीं करता।
ऐसी कथा है कि जुन्नून एक सूफी फकीर हुआ। वह इतना परम ज्ञान को उपलब्ध
हो गया कि देवदूत उसके द्वार पर प्रकट हुए। और उन्होंने कहा कि परमात्मा ने खबर भेजी है कि हम तुम्हें वरदान देना चाहते हैं, तुम जो भी वरदान मांगो मांग लो।
जुन्नून ने कहा, बड़ी देर कर दी; कुछ वर्ष पहले आते तो बहुत मांगने की आकांक्षाएं थीं। अब तो हम परमात्मा को दे सकते हैं। अब तो इतना है! उसकी कृपा वैसे ही बरस रही है। अब हमें कुछ चाहिए नहीं। उसने वैसे ही बहुत दे दिया है, इतना दे दिया है कि अगर उसको भी कभी जरूरत हो तो हम दे सकते हैं। लेकिन देवदूतों ने जिद्द की। ऐसा घटता है। जब तुम नहीं मांगते तब सारी दुनिया देना चाहती है, सारा अस्तित्व देना चाहता है। जब तुम मांगते थे, हर द्वार से ठुकराए गए। देवदूतों ने कहा कि नहीं, यह तो ठीक न होगा। कुछ तो मांगना ही पड़ेगा। जुन्नून ने कहा कि तो फिर तुम्हें जो ठीक लगता हो दे दो। तो उन्होंने कहा, हम तुम्हें यह वरदान देते हैं कि तुम जिसे भी छुओगे, वह अगर मुर्दा भी हो तो जिंदा हो जाएगा, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाएगा। उसने कहा, ठहरो! ठहरो! अभी दे मत देना। देवदूतों ने कहा, क्या प्रयोजन ठहरने का? उसने कहा, ऐसा करो, मेरी छाया को वरदान दो, मुझे मत। क्योंकि अगर मैं किसी को छुऊंगा और वह जिंदा हो जाएगा तो उसे धन्यवाद देना पड़ेगा। सामने ही रहूंगा खड़ा। और इस संसार में लोग धन्यवाद देने से भी डरते हैं। मरना पसंद करेंगे, लेकिन अनुगृहीत होना नहीं। इससे उनके अहंकार को चोट लगती है। तुम ऐसा करो, मेरी छाया को वरदान दे दो। मैं तो निकल जाऊं, मेरी छाया जिस पर पड़ जाए, वह ठीक हो जाए। ताकि किसी को यह पता भी न चले कि मैंने ठीक किया है। और मैं तो जा चुका होऊंगा, और छाया को धन्यवाद देने की किसको जरूरत है?
यह जुन्नून बड़ी समझ की बात कह रहा है। संत अगर देना भी चाहें तो तुम लेने को राजी नहीं होते। संत अगर उंडेलना भी चाहें तो तुम्हारा हृदय का पात्र सिकुड़ जाता है। तुम लेने तक में भयभीत हो गए हो। तुम्हारे प्राण इतने छोटे हो गए हैं, देना तो दूर, तुम लेने तक में भयभीत हो। तुम्हारे जीवन के बहुत से अनुभवों से तुमने यही सीखा हैः जिससे भी लिया उसी ने गुलाम बनाया। उसी अनुभव के आधार पर तुम संतों के साथ भी व्यवहार करते हो। बड़ी भूल हो जाती है। संत तो वही है जो तुम्हें देता है और मुक्त करता है, और देता है और तुम्हें मालिक बनाता है।
"संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं; संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते।"
ऐसे ही जैसे छाया ने सब कर दिया, उन्होंने कुछ नहीं किया। इसलिए संत कभी भी नहीं कहते कि हमने यह किया, हमने यह किया। जहां यह आवाज हो करने की, वहां तुम समझना कि संतत्व नहीं है। संत तो ऐसे हो जाते हैं जैसे बांस की पोंगरी, गीत परमात्मा के हैं। संत निमित्त मात्र हो जाते हैं। संत अपने को बिल्कुल हटा लेते हैं। संत पारदर्शी हो जाते हैं। तुम अगर उनमें गौर से देखोगे तो परमात्मा को खड़ा पाओगे; तुम उनको खड़ा हुआ न पाओगे।
इसलिए तो हमने बुद्ध को भगवान कहा, महावीर को भगवान कहा। महावीर ठीक तुम्हारे जैसे, बुद्ध ठीक तुम्हारे जैसे। लेकिन जिन्होंने गौर से देखा, उन्होंने पाया कि वहां बुद्ध हैं ही नहीं, वे तो निमित्त हो गए। वह घर तो खाली है; वहां तो परमात्मा ही सिंहासन पर विराजमान है।

इसलिए बुद्ध के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने चालीस वर्ष निरंतर बोला, और एक शब्द नहीं बोला। और चालीस वर्ष निरंतर उन्होंने यात्रा की, और एक कदम नहीं चले। इसका अर्थ समझ लेना। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा ही बोला, परमात्मा ही चला। बुद्ध तो उसी दिन समाप्त हो गए जिस दिन समाधि उपलब्ध हुई।
"संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते। क्योंकि उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।"
वरिष्ठ दिखने की कामना तो हीन-ग्रंथि से पैदा होती है। संत तो परमात्मा को उपलब्ध हो गए; कोई हीनता न बची, कोई हीनता की रेखा न बची। कुछ पाने को न बचा। अब हीनता कैसी? नियति पूरी हो गई; गंतव्य उपलब्ध हो गया; मंजिल आ गई। अब कुछ और इसके आगे नहीं है। इसलिए अब तुमसे वरिष्ठ होने की, श्रेय लेने की बात ही नासमझी की है। और अगर कोई श्रेय लेना चाहे तो समझना कि उसकी मंजिल अभी नहीं आई। और अगर कोई वरिष्ठ होना चाहे तो समझना कि अभी राह पर है, राहगीर है, अभी पहुंचा नहीं।
सदगुरु को पहचानने के जो सूत्र हैं, उनमें एक सूत्र यह भी है कि वह वरिष्ठ न होना चाहेगा, वह श्रेय न लेना चाहेगा। तुम अगर उसके पास ज्ञान को भी उपलब्ध हो जाओगे तो वह यही कहेगा कि तुम अपने ही कारण उपलब्ध हो गए हो; मैं तो केवल बहाना था।
बुद्ध मरने लगे, आनंद रोने लगा। तो बुद्ध ने कहा, रुक, क्यों रोता है? आनंद ने कहा कि आपके बिना मैं कैसे ज्ञान को उपलब्ध होऊंगा?
बुद्ध ने कहा, पागल! ज्ञान को तो तू ही उपलब्ध होता, मेरे रहते या न रहते कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरी मौजूदगी तो सिर्फ बहाना है। और अगर तूने मुझे प्रेम किया है तो मेरी मौजूदगी सदा बनी रहेगी। उस बहाने का तू कभी भी उपयोग कर सकता है।
वैज्ञानिक एक शब्द का प्रयोग करते हैं, वह है कैटेलिटिक एजेंट। कुछ घटनाएं घटती हैं किन्हीं चीजों की मौजूदगी में। जिन चीजों की मौजूदगी में घटती हैं उनकी मौजूदगी से कुछ भी क्रिया नहीं होती; सिर्फ मौजूदगी! हाइड्रोजन आक्सीजन मिलते हैं, लेकिन विद्युत की मौजूदगी चाहिए। विद्युत के कारण नहीं मिलते, विद्युत का जरा सा भी उपयोग नहीं होता। लेकिन बिना मौजूदगी के नहीं मिलते; मौजूदगी चाहिए। बस सिर्फ मौजूदगी काफी है।
तो संत तो कैटेलिटिक एजेंट हो जाता है। उसकी मौजूदगी में कुछ घटनाएं घटती हैं। वह उनका श्रेय नहीं लेता।
तुम निकलते हो, और राह के किनारे अगर पक्षी भी गीत गाने लगे तो तुम समझते हो शायद तुम्हारी वजह से ही गा रहा है; कि फूल खिल जाए तो तुम सोचते हो शायद तुम्हारी वजह से ही खिल रहा है। अहंकारी आदमी अपने को केंद्र मानता है सारे अस्तित्व का; सब कुछ उसकी वजह से हो रहा है।
संत का अहंकार टूट गया; सब कुछ अपने आप हो रहा है।
तो बुद्ध ने कहा कि तू अपने ही कारण ज्ञान को उपलब्ध होगा। तेरा भीतर
का ही दीया जलेगा। मेरी मौजूदगी गैर-मौजूदगी का कोई सवाल नहीं है। और अगर तुझे बहाना ही लेना हो तो तेरे लिए मैं सदा मौजूद हूं। क्योंकि शरीर ही गिर रहा है, मैं तो रहूंगा।
संत जरा सा भी श्रेय लेने की आकांक्षा नहीं रखते। तभी तो वे संत हैं। संतत्व खिलता ही तब है जब सारी हीनता गिर जाती है। जब कोई अपने भीतर की परम आत्यंतिक श्रेष्ठता को उपलब्ध हो जाता है तब तुमसे धन्यवाद भी क्या मांगेगा?
"कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है? केवल ताओ
का व्यक्ति। इसलिए संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं; संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते। क्योंकि उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।"
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ तेईसवां प्रवचन

निर्बल के बल राम

Chapter 78

Nothing Weaker Than Water

There is nothing weaker than water,
But none is superior to it in overcoming the hard,
For which there is no substitute.
That weakness overcomes strength
And gentleness overcomes rigidity,
No one does know; No one can put into practice. Therefore the Sage says:
"Who receives unto himself the calumny of the world Is the preserver of the state.
Who bears himself the sins of the world
Is the king of the world."
Straight words seem crooked.

अध्याय 78

पानी से दुर्बल कुछ नहीं

पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है,
लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं है;
उसके लिए उसका कोई पर्याय नहीं है।
यह कि दुर्बलता बल को जीत लेती है और मृदुता कठोरता पर विजय पाती है;
इसे कोई नहीं जानता है; इसे कोई व्यवहार में नहीं ला सकता है।
इसलिए संत कहते हैंः
"जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है।
जो संसार के पाप अपने ऊपर ले लेता है, वह संसार का सम्राट है।"
सीधे शब्द टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं।

मैं लाओत्से को देखता हूं--बहुत सी स्थितियों में। कभी जलप्रपात के पास बैठे हुए। जल की कोमल धार गिरती है कठोर चट्टानों पर। कोई सोच भी नहीं सकता कि चट्टानें राह दे देंगी; कोई तर्क-विचार नहीं कर सकता कि चट्टानें टूटेंगी और पानी मार्ग बना लेगा। लेकिन जीवन में होता यही है। चट्टानें धीरे-धीरे टूट कर रेत हो जाती हैं, बह जाती हैं, और जल मार्ग बना लेता है। पहले क्षण में तो जल को भी भरोसा न आ सकता था कि जिस चट्टान पर गिर रहा हूं वह टूट सकती है। लेकिन सतत, कमजोर भी सातत्य से बलवान हो जाता है। लाओत्से जलप्रपात के पास ऐसे ही नहीं बैठा है। जलप्रपात उसके लिए एक बहुत बड़ा विमर्श, ध्यान हो गया। उसने कुछ पा लिया। उसने देख लिया कमजोर का बल और बलवान की कमजोरी। पत्थर टूट गया, बह गया; जल को न हटा पाया, न तोड़ पाया।
कमजोर को तुम तोड़ोगे कैसे? कमजोर का अर्थ ही है कि जो टूटा हुआ है, जो नम्य है, जो टूटने को तैयार है। जो टूटने को तैयार है वह चुनौती नहीं देता कि मुझे तोड़ो। जो टूटने को तैयार है उससे किसी के भी मन में यह अहंकार नहीं जगता कि इसे तोडूं। पानी तो तरल है, टूटा ही हुआ है, बह ही रहा है। और उसे क्या बहाओगे? चट्टान सख्त है, कठोर है, जमी है; बहने की उसकी कोई क्षमता

नहीं है। और जब भी तरल और कठोर में संघर्ष होगा, तरल जीत जाएगा, कठोर टूटेगा। क्योंकि तरल जीवंत है और कठोर मृत है।
जीवन सदा कमजोर है, इसे जितनी बार दोहराया जाए, उतना भी कम है। जीवन सदा कमजोर है; मृत्यु सदा मजबूत है। लेकिन कितनी बार मृत्यु दुनिया में घटती है, फिर भी मृत्यु जीत नहीं पाती। रोज घटती है, फिर भी हारी हुई है। जीवन फिर-फिर मृत्यु को पार करके ऊपर उठ आता है। हर मृत्यु के बाद जीवन पुनः अंकुरित हो जाता है। हर कब्र पर फूल खिल जाते हैं; हर लाश की राख पर फिर नये अंकुर उठ आते हैं। मृत्यु अनंत-अनंत बार आई है; जीवन को मिटा नहीं पाती। और जीवन कितना कमजोर है? जीवन से कमजोर और क्या?
मृत्यु चट्टान जैसी है; जीवन जलधार जैसा। लेकिन अंततः मृत्यु राख होकर बह जाती है; जीवन बचा रहता है। जिसने यह जान लिया उसने अमृत का सूत्र जान लिया। उसने जान लिया कि मरना चाहे कितनी ही बार पड़े, मृत्यु जीत न सकेगी। मृत्यु मुर्दा है, उसके जीतने का उपाय कहां? जीवन जीवंत है, उसके हारने की संभावना कहां?
लाओत्से को और स्थितियों में भी देखता हूं। देखता है लाओत्सेः एक छोटा सा बच्चा एक बड़े बलवान आदमी के कंधे पर बैठा जा रहा है। खड़ा है किनारे; राह से लोग गुजर रहे हैं। वह सोचता है, आदमी इतना बलवान है, कमजोर बच्चे को क्यों कंधे पर लिए है? बच्चे की कोमलता ही, उसकी कमजोरी ही, उसे कंधे पर चढ़ा देती है। बलवान नीचे हो जाता है; कमजोर ऊपर हो जाता है।
देखता है लाओत्से--पूर्णिमा की रात होगी, झुरमुट के पास से गुजरता है--
एक शक्तिशाली युवक एक कोमल सी दिखने वाली युवती के चरणों में झुका है, याचना कर रहा है प्रेम की। स्त्री कमजोर है; बड़े से बड़े पुरुष को झुका लेती है। सिकंदर भी, नेपोलियन भी किसी स्त्री के चरणों में ऐसे झुक जाते हैं जैसे भिखारी हों। बड़ी सेनाएं उन्हें नहीं झुका सकतीं; पर्वत भी उनसे लड़ने को राजी हों तो पर्वतों को उखड़ जाना पड़ेगा। नेपोलियन के सामने आल्प्स पर्वत को झुक जाना पड़ा; किसी ने कभी पार न किया था, नेपोलियन ने पार कर लिया। सिकंदर ने सारी दुनिया रौंद डाली; बड़े-बड़े योद्धाओं को मिट्टी में मिला दिया। लेकिन एक कोमलगात, एक स्त्री, फूल जैसी, और सिकंदर वहां घुटने टेके खड़ा है।
लाओत्से देखता है। पूरे चांद की रात, झुरमुट में देखी घटना, ऐसे ही नहीं देखता। लाओत्से जो भी देखता है, वहां से जीवन का सार ले लेता है; कमजोर जीत जाता है, बलवान हार जाता है। बलवान होने की एक ही कला है, वह है कमजोर हो जाना। जीतने का एक ही मार्ग है, वह है जल की भांति हो जाना। इसलिए लाओत्से स्त्री की महिमा के इतने गुणगान गाता है कि संसार में कभी किसी ने नहीं गाए। अगर कभी भी सोचा जाएगा कि किस व्यक्ति ने स्त्री को सबसे ज्यादा समझा है तो लाओत्से का कोई मुकाबला नहीं। और स्त्री के गुणगान का कारण क्या है? उसके गुणगान का कारण है कि स्त्रैण-गुण कोमल है, जल जैसा है; उसमें एक बहाव है। पुरुष सख्त है, पत्थर जैसा है। और कोमल सदा सख्त को झुका लेता है। चट्टान सदा टूट जाती है जलधार के सामने।
लाओत्से गुजर रहा है एक बाजार से। मेला भरा है। एक बैलगाड़ी उलट गई है; दुर्घटना हो गई है। मालिक था, हड्डी-पसलियां टूट गई हैं। बैल तक बुरी तरह आहत हुए हैं। गाड़ी तक चकनाचूर हो गई है। एक छोटा बच्चा भी गाड़ी में था; दुर्घटना जैसे उसे छुई ही नहीं।
तुमने अक्सर देखा होगा, कभी किसी मकान में आग लग गई है, सब जल गया, और
एक छोटा बच्चा बच गया। कभी कोई छोटा बच्चा दस मंजिल ऊपर से गिर जाता है, और खिलखिला कर खड़ा हो जाता है, और चोट नहीं लगती। लोगों में कहावत है, जाको राखे साइयां मार सके न कोए। इसमें परमात्मा का कोई सवाल नहीं है। क्योंकि परमात्मा को क्या भेद है--कौन छोटा, कौन बड़ा!
नहीं, राज कुछ और है। वह लाओत्से जानता है। बच्चा कमजोर है। अभी बच्चा सख्त नहीं हुआ। अभी उसकी हड्डियां पथरीली नहीं हुईं। अभी उसकी जीवन-धार तरल है। जितनी हड्डियां मजबूत हो जाएंगी उतनी ही ज्यादा चोट लगेगी। बैलगाड़ी उलटेगी, तो बूढ़े को ज्यादा चोट लगेगी, बच्चे को न के बराबर। क्योंकि बच्चा इतना कोमल है; जब गिरता है जमीन पर तो उसका कोई प्रतिरोध

नहीं होता जमीन से। वह जमीन के खिलाफ अपने को बचाता नहीं। उसके भीतर बचाव का कोई सवाल ही नहीं होता; वह जमीन के साथ हो जाता है। वह गिरने में साथ हो जाता है। वह समर्पण कर देता है, संघर्ष नहीं। कठोरता में संघर्ष है।
जब तुम गिरते हो तो तुम लड़ते हुए गिरते हो, तुम गिरने के विपरीत जाते हुए गिरते हो, तुम अपने को बचाते हुए गिरते हो, तुम मजबूरी में गिरते हो। तुम्हारी चेष्टा पूरी होती है कि न गिरें, बच जाएं, आखिरी दम तक बच जाएं। तो तुम्हारी हड्डी-हड्डी, रोएं-रोएं में सख्ती होती है कि किसी तरह बच जाएं। और जब बचने का भाव होता है तो सब चीजें सख्त हो जाती हैं। बच्चे को पता ही नहीं होता क्या हो रहा है। वह ऐसे गिरता है जैसे कोई नदी की धार में धार के साथ बहता हो। तुम धार के विपरीत तैरते हुए गिरते हो। तुम्हारी विपरीतता में, तुम्हारी सख्ती में ही तुम्हारी चोट छिपी है। बच्चा बच जाता है।
लाओत्से खड़ा है नदी के किनारे। एक आदमी डूब गया है। लोग उसकी लाश को खोज रहे हैं। आखिर में लाश खुद ही पानी के ऊपर तैर आई है। और लाओत्से बड़ा चकित होता हैः जिंदा आदमी तो डूब गया और मुर्दा ऊपर तैर आया, मामला क्या है? क्या नदी जिंदा को मारना चाहती थी और मुर्दे को बचाना चाहती है? जिंदा आदमी डूब जाते हैं और मुर्दा तैर आते हैं।
नहीं, लाओत्से समझ गया राज को। मुर्दा ऊपर तैर आता है, क्योंकि मुर्दे
से ज्यादा और कमजोर क्या? मर ही गया, अब उसका कोई विरोध न रहा। जिंदा आदमी डूबता है, क्योंकि नदी से लड़ता है। अगर जिंदा भी मुर्दावत हो जाए तो नदी उसे भी ऊपर उठा देगी। तैरने की सारी कला ही इतनी है कि तुम नदी में मुर्दे की भांति हो जाओ। तो जो लोग तैरने में कुशल हो जाते हैं वे नदी में बिना हाथ-पैर तड़फड़ाए भी पड़े रहते हैं मुर्दे की तरह। नदी उनको सम्हाले रहती है। उन्होंने नदी पर ही छोड़ दिया सब। कमजोर का अर्थ यह है कि अपना बल क्या? इसलिए अपने पर भरोसा क्या? छोड़ देते हैं।
ऐसा लाओत्से जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से सारभूत को चुनता रहा है। उसने किसी वेद से और उपनिषद से ज्ञान नहीं पाया है। उसने जीवन का शास्त्र सीधा समझा है; जीवन के पन्ने, जीवन के पृष्ठ पढ़े हैं। और उनमें से उसने जो सबसे सारभूत सूत्र निकाला है वह है कि इस संसार में अगर तुमने शक्तिशाली होने की कोशिश की तो तुम टूट जाओगे, और अगर तुमने निर्बल होने की कला सीख ली तो तुम बच जाओगे।
भक्त गाते हैंः निर्बल के बल राम। जो बात स्वभावतः घटती है वह राम पर आरोपित कर रहे हैं। भक्त की भाषा में राम का अर्थ सारा अस्तित्व है। लाओत्से कोई भक्त नहीं है। वह राम और परमात्मा जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करता। पर बात वह भी यही कह रहा हैः निर्बल के बल राम। जितना जो निर्बल है उतना ही राम का बल उसे मिल जाता है। लाओत्से भी यही कह रहा है कि जो जितना कमजोर है, अस्तित्व उसे उतनी ही ज्यादा शक्ति दे देता है। और जो अकड़ा हुआ है अपनी शक्ति से, अस्तित्व उससे उतना ही विमुख हो जाता है। जब तुम अकड़े तब तुम अकेले; जब तुम विनम्र तब सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ। स्वभावतः, कमजोर बलवान हो जाएगा और बलवान कमजोर रह जाएंगे। बलवान होने की आकांक्षा अहंकार है। और अहंकार से ज्यादा बड़ी बीमारी, बड़ी उपाधि, बड़ा रोग खोजना मुश्किल है। कैंसर है अहंकार आत्मा का। अभी तो शरीर के कैंसर का ही कोई इलाज नहीं है तो आत्मा के कैंसर का तो कभी कोई इलाज नहीं होगा। अहंकार का अर्थ हैः मैं लडूंगा, जीतूंगा, अपने ही पर खड़ा रहूंगा। न मुझे किसी राम की सहायता की जरूरत है, न अस्तित्व की सहायता की जरूरत है। मैं अकेला काफी हूं।
कैसे तुम सोचते हो कि तुम अकेले काफी हो? एक क्षण भी तो जी नहीं सकते श्वास न आए, हवाओं में उदजन न हो, आक्सीजन न हो, सूरज न हो, ताप न मिले; तुम बचोगे? नदियां सूख जाएं; तुम्हारे भीतर जल की धार सूख जाएगी। सूरज बुझ जाए; तुम्हारे भीतर शरीर की ऊष्मा खो जाएगी। श्वास न आए; एक क्षण में तुम टूट जाओगे। फिर भी तुम्हारा अहंकार कहता है, अपने पर जीऊंगा, मुझे किसी के सहारे की जरूरत नहीं। बिना सहारे के एक पल भी जी सकते हो?

तुम जुड़े हो। अस्तित्व चौबीस घंटे तुम्हें दे रहा है इसीलिए तुम हो, चाहे तुम भूल ही गए हो। क्योंकि अस्तित्व देने में शोरगुल नहीं मचाता, और न देते वक्त डुंडी पीटता है कि कितना दान दिया। पता ही नहीं चलता कि तुम प्रतिपल अस्तित्व के सहारे जी रहे हो। तुम एक क्षण भी उसके विपरीत न जी सकोगे। लेकिन अहंकार तुम्हें यह भ्रांति पैदा करवा देता हैः अपने बल जी लूंगा। उसी दिन तुम कमजोर हो जाते हो। जिसने कहा अपने बल जी लूंगा, वह कमजोर। हालांकि वह समझ रहा है कि ताकतवर। और जिसने कहा कि राम के बल के बिना और कोई बल कहां, वह दिखता तो निर्बल है पर उसकी सबलता का कोई मुकाबला नहीं।
अब हम लाओत्से के इन वचनों को समझने की कोशिश करें।
"पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है, लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान
भी कोई नहीं। उसके लिए पानी का कोई मुकाबला नहीं; वह अद्वितीय है। उसका कोई पर्याय नहीं।"
पानी की निर्बलता क्या है? समझें। पानी को गिलास में डाल दो, गिलास के ढंग का हो जाता है; लोटे में रख दो, लोटे का आकार ले लेता है। पानी का अपना कोई आकार नहीं। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। यह उसकी पहली निर्बलता है। पानी की अपनी कोई आकृति नहीं। इतना निर्बल है कि अपने आकार को भी नहीं सम्हाल सकता; जैसा ढाल दो वैसा हो जाता है। जरा भी जिद्द नहीं करता कि यह क्या कर रहे हो? मुझे क्यों लोटे का आकार का बनाए दे रहे हो? पानी में प्रतिशोध नहीं है, विरोध नहीं है, रेसिस्टेंस नहीं है। तुमने जैसा ढाला वैसा ही ढल जाता है। एक दफे भी आवाज नहीं देता कि यह क्या कर रहे हो? मेरा आकार बिगाड़े देते हो! इसलिए हमें लगेगाः बड़ा निर्बल है। न कोई व्यक्तित्व, न कोई अहंकार की घोषणा।
पत्थर को इतनी आसानी से न ढाल सकोगे। सब तरह की अड़चन खड़ी करेगा। छेनी- हथौड़ी लानी पड़ेगी; बड़ी कुशलता से मेहनत करनी पड़ेगी तब कहीं तुम पत्थर को आकार दे पाओगे। इंच-इंच लड़ेगा; प्रतिपल विरोध करेगा। तुम चाहे सुंदर मूर्ति ही गढ़ रहे होओ, अनगढ़ पत्थर भी विरोध करेगा। वह कहेगा, रहने दो मुझे जैसा मैं हूं। तुम हो कौन बदलने वाले? तुम्हारी छेनी-हथौड़ी से भी लड़ेगा, संघर्ष देगा। वह पत्थर का बल है। वह तुम्हें ऐसे ही नहीं बदल लेने देगा। बिना संघर्ष के तुम इंच भर भी जीत न सकोगे।
लेकिन पानी ऐसा निर्बल है कि एक क्षण को भी विरोध खड़ा नहीं करता। तुम इधर ढालते हो, उधर वह ढल जाता है। न छेनी लानी पड़ती न हथौड़ी; कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता। लेकिन यही उसका बल भी है। पत्थर को--वह कितना ही बलवान मालूम पड़ता हो--तोड़ा जा सकता है, आकार दिया जा सकता है, मूर्ति बनाई जा सकती है। तुमने कभी किसी को पानी की मूर्ति बनाते देखा? पत्थर लड़ता है, लेकिन ढाला जा सकता है। पानी ढलने को बिल्कुल तैयार है। कैसे ढालोगे? तुम भला सोच लो कि तुमने पानी को आकार दे दिया, लेकिन पानी अपने निराकार होने में लीन रहता है। गिलास में ढालते हो तो भी तुम सोचते हो कि आकार मिल गया। आकार मिला नहीं है। गिलास से बाहर निकालो पानी को, वह फिर निराकार है। पानी अपने निराकार में लीन रहता है। ऊपर से दिखाई पड़ती है जो निर्बलता वही उसकी बड़ी सबलता है। पानी निराकार है; पत्थर आकार है। पानी परमात्मा के ज्यादा निकट है। अहंकार नहीं है पानी के पास कोई।
पानी को भी जमा कर अगर तुम बर्फ बना लो तो संघर्ष शुरू हो जाता है। अहंकार की भी ऐसी ही तीन दशाएं हैं। जैसे पानी जम जाए बर्फ, ऐसा जो गहन अहंकारी होता है उसके भीतर पत्थर जैसा अहंकार होता है, बर्फ जैसा। अहंकार की दूसरी अवस्था है पानी जैसी तरल। यह विनम्र आदमी है; तुम उसे जैसा ढालो वैसा ढल जाए; तुम उसे जहां चलाओ चल जाए; जो किसी तरह का प्रतिरोध नहीं करता; कोई संघर्ष नहीं करता; हवाएं जहां ले जाएं वहां जाने को राजी है; जिसकी अपनी कोई मर्जी नहीं; तरल। और फिर अहंकार की आखिरी अवस्था है जैसे भाप। खो ही जाए, इतना भी न बचे जितना कि पानी है, विराट आकाश में लीन हो जाए। जैसे- जैसे तरल होता है पत्थर का बर्फ वैसे-वैसे निराकार के करीब आता है। फिर जैसे-जैसे वाष्प बनता है तो निराकार के साथ बिल्कुल लीन हो जाता है।

अपने भीतर खोजना कि अहंकार किस दशा में है। अक्सर तो तुम पाओगे, पत्थर
की तरह है। हर वक्त संघर्ष में लीन है, और हर वक्त सुरक्षा के लिए तत्पर है, कि कहीं कोई हमला न कर दे, कि कहीं कोई हंस न दे, कि कहीं कोई चोट न पहुंचा दे। तुम पूरे वक्त अपने को बचा रहे हो। और बचाने योग्य भीतर कुछ भी नहीं है। व्यर्थ ही पहरा दे रहे हो; अभी पहरा देने योग्य संपदा भी पास में नहीं है। व्यर्थ ही पूरे समय संघर्ष कर रहे हो। लोग जिंदगी भर लड़ते रहते हैं कि कोई हमें पिघला न दे, कोई चोट न पहुंचा दे, कोई छेनी-हथौड़ा लाकर थोड़ी सी आकृति न दे दे। छोटे-छोटे बच्चे तक लड़ते हैं। छोटे से बच्चे से कहो, मत जाओ बाहर! और वह उसी क्षण बाहर जाना चाहता है। क्योंकि तुमने उसके अहंकार को चुनौती दे दी। तुम यह कह रहे हो कि कौन बड़ा है? किसका अहंकार बड़ा है? कौन बलशाली है?
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था। दवा सामने रखी थी, वह पीने से इनकार कर रहा था। मां थक गई थी। सब कुछ कर चुकी थी। मार-पीट भी हो चुकी थी। आंसू जम गए थे सूख कर, लेकिन वह बैठा था और दवा नहीं पी रहा था तो नहीं पी रहा था। नसरुद्दीन ने उसे कहा कि देख बेटा, मुझे मालूम है कि दवा कड़वी है। मैं भी तेरे जैसा कभी छोटा बच्चा था; दवा मुझे भी कभी पीनी पड़ती थी। लेकिन तेरे जैसा नहीं था मैं; मैं एक बार संकल्प कर लेता था कि रहने दो कड़वी, पीऊंगा! तो अपने संकल्प का पक्का साबित होता था, और पीकर रहता था। उस लड़के ने नसरुद्दीन की तरफ देखा, और कहा कि संकल्प का पक्का मैं भी हूं। मैंने संकल्प किया है कि नहीं पीऊंगा। रखी रहने दो दवा को; देखें क्या होता है! मैं आपका ही बेटा हूं। संकल्प मेरा भी पक्का है।
छोटे-छोटे बच्चे भी सीख रहे हैं अहंकार की कला--कैसे अपने को बचाना, अपनी बात को। और जानते हैं क्या करने से अपनी सुरक्षा होगी। और धीरे-धीरे निष्णात होते जाते हैं।
नसरुद्दीन के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि घर में उसका नाम, जब वह बच्चा था, उलटी खोपड़ी था। क्योंकि जो भी उससे कहो वह उससे उलटा करता था। तो घर के लोग समझ गए थे, नसरुद्दीन का बाप भी समझ गया था, कि जो करवाना हो उससे उलटी बात कहो। गणित सीधा था। चाहते हो बाहर न जाए, इससे कहो कि देखो, बाहर जाओ! अगर न गए तो ठीक न होगा। तो वह घर में ही बैठा रहेगा। बाहर न भेजना हो तो बाहर भेजने का आदेश दे दो; वह घर में बैठा रहेगा। फिर लाख उपाय करो वह बाहर नहीं जा सकता।
एक दिन दोनों चले आ रहे थे गांव के बाहर से। गधे पर नमक की बोरियां लादी थीं। नमक खरीदने गए थे। जब नदी के पुल पर से गुजर रहे थे तो बाप ने देखा कि बोरियां नमक की बाएं तरफ ज्यादा झुकी हैं, और हो सकता है न सम्हाली गईं तो गिर जाएं। लेकिन नसरुद्दीन से कुछ भी करवाना हो तो उलटी बात कहनी जरूरी है। तो बाप ने कहा कि देख नसरुद्दीन, बोरियां दाईं तरफ ज्यादा झुकी हैं। थोड़ा बाईं तरफ झुका दे।
झुकी थीं बाईं तरफ, झुकवानी थीं दाईं तरफ; ठीक उलटी बात कही। लेकिन नसरुद्दीन ने जैसा बाप ने कहा वैसा ही कर दिया। बोरियां, जो कभी गिर सकती थीं, फौरन नदी में गिर गईं।
बाप ने कहा, नसरुद्दीन, यह तेरे आचरण के बिल्कुल विपरीत है!
नसरुद्दीन ने कहा, शायद आपको पता नहीं कि कल मैं अठारह साल का हो गया,
अब मैं प्रौढ़ हूं। अब बचपने की बातें ठीक नहीं। अब मैं वही करूंगा जो किया जाना चाहिए। अब जरा सोच-समझ कर आज्ञा देना।
छोटे बच्चे भी संघर्ष में लीन हो जाते हैं। बड़े-बूढ़ों की तो बात ही क्या, छोटे बच्चे तक विकृत हो जाते हैं। फिर यह विकृति जीवन भर पीछे चलती है। और तब तुम तड़पते हो और चिल्लाते हो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हमें हृदय का कुछ पता नहीं चलता; कि हृदय है, इसका भी पता नहीं चलता। तुम यह मत सोचना कि यह होगा किसी और के संबंध में सही; तुम्हें भी पता नहीं है हृदय के होने का। वह जो धक-धक हो रही है वह हृदय की नहीं है, वह तो फेफड़े की है। वह तो केवल खून के चलने की चाल का तुम्हें पता चल रहा है। हृदय की धक-धक तो तुमने अभी सुनी ही नहीं। उसे तो केवल वही सुन पाता है जो अहंकार की चट्टान को तोड़ देता है। तब जीवन का सारा

रूप बदल जाता है। तब तुम कुछ और ही देखते हो। तब यह सारा अस्तित्व अपनी परिपूर्ण महिमा में प्रकट होता है।
क्योंकि तुम्हारे पास हृदय ही नहीं है, वीणा के तार ही टूटे पड़े हैं, अस्तित्व कैसे गीत को गाए? कैसे गाए अपने गीत को तुम्हारे हृदय की वीणा पर? अहंकारी के पास कोई हृदय नहीं होता। अहंकार कीमत मांगता है। और सबसे पहली कुर्बानी हृदय की है। क्योंकि हृदय का अर्थ है तरलता।
तुम जितना हार्दिक आदमी पाओगे उतना तरल पाओगे। इसीलिए तो हम कहते हैं--किसी आदमी में अगर तरलता न हो तो कहते हैं--इसका हृदय पाषाण हो गया, पत्थर हो गया। हम कहते हैं, पत्थर भी पिघल जाए लेकिन इस आदमी का हृदय नहीं पिघलता। यह मुहावरा कीमती है। यह घटना तब घटती है जब अहंकार इतना मजबूत हो जाता है कि अहंकार के परकोटे में छिप जाता है हृदय, अहंकार के पत्थरों में छिप जाता है। उसका पता ही खो जाता है। वह तुम्हारे भीतर होता है, पड़ा रहता है निर्जीव, निष्क्रिय।
हृदय तरल है, और आत्मा वाष्पीभूत रूप है, अहंकार पत्थर की तरह है जमा हुआ बर्फ। इसलिए अहंकार तुम्हारी खोपड़ी में जीता है, मस्तिष्क में, विचार में। वे सब मुर्दा हैं। अहंकार उन हड्डियों-पसलियों को इकट्ठा कर लेता है। उस अस्थिपंजर--विचारों के अस्थिपंजर--के ऊपर अकड़ कर बैठ जाता है। वहीं उसकी गति है। उससे नीचे, उससे गहरे में उसकी कोई गति नहीं है।
उससे नीचे हृदय है, जहां सब तरल है, पानी की तरह है। और उससे भी गहराई में तुम्हारी आत्मा है जो वाष्प की तरह है, जो कि लीन, शून्य है, जिसको तुम छू न सकोगे, जिसे तुम देख न सकोगे, जिसे तुम मुट्ठी में बांध न सकोगे, जिसका कोई स्पर्श नहीं हो सकता और न कोई दर्शन हो सकता है। क्योंकि तुम ही वही हो।
और जिसे भी अंतर्यात्रा करनी हो, उसे पहले मस्तिष्क की बर्फ पिघलानी पड़ती है। उसके पिघलने पर पहली दफा तरल हृदय का पता चलता है। फिर तरल हृदय को भी तपश्चर्या, योग, ध्यान से वाष्पीभूत करना होता है। और जैसे-जैसे तरल हृदय वाष्पीभूत होने लगता है, तुम्हें पहली दफा आत्मा के आकाश का अनुभव होता है। सब द्वार गिर जाते हैं, सब दीवालें मिट जाती हैं। अनंत आकाश है। जितना अनंत आकाश तुमसे बाहर है उतना ही अनंत आकाश तुम्हारे भीतर है; उससे रत्ती भर भी कम नहीं है। और चांद-तारों का सौंदर्य कुछ भी नहीं है जब तुम्हें भीतर के चांद-तारे दिखाई पड़ेंगे। तब बाहर के सूर्योदय का कोई भी अर्थ नहीं है, क्योंकि कबीर कहते हैं कि मेरे भीतर हजार-हजार सूरज जैसे एक साथ उग गए हैं।
जब तुम भीतर के आकाश को देख पाओगे तब तुम समझोगे कि तुमने कितनी बड़ी कीमत पर क्षुद्र से अहंकार को सजा कर, क्षुद्र से अहंकार को लेकर बैठ गए थे। एक पत्थर की पूजा कर रहे थे, और जीवंत भीतर तड़प रहा था। पक्षी भीतर मौजूद था जो आकाश में उड़ सकता था, और तुम पक्षी को तो भूल ही गए थे, लोहे के पिंजड़े को पकड़ कर बैठ गए थे। और उसकी ही पूजा चल रही थी।
लाओत्से कहता है, "पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है, लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं है।"
और अगर कठिन को जीतना हो तो पानी जैसे हो जाना। और तुमसे ज्यादा कठिन क्या है? अगर तुम्हें स्वयं को भी जीतना हो तो पानी जैसे तरल हो जाना, तो ही जीत पाओगे, अन्यथा नहीं। यह जीत की बात किसी और को जीतने के लिए नहीं है, जीत की बात अंततः तो आत्म-विजय के लिए है।
दूसरे को जीतने जो चला है वह तो कठोर होगा ही। तुमने कभी किसी आदमी को झगड़े में पानी उठा कर किसी को मारते देखा है? लोग पत्थर उठा कर मारते हैं, पानी उठा कर नहीं। जब कोई दूसरे से लड़ने चलेगा तब तो तुम्हारा पूरा तर्क तुम्हें कहेगा कि पत्थर जैसे हो जाओ! पीस डालो दूसरे को पत्थर के नीचे! लेकिन ध्यान रखना, जब तुम दूसरे के लिए पत्थर जैसे होते हो तभी एक बड़ी भारी घटना तुम्हारे भीतर घट रही है। उसका तुम्हें पता नहीं है। जब तुम दूसरे के लिए पत्थर जैसे होते हो तब तुम अपने लिए भी पत्थर जैसे हो जाते हो। क्योंकि जो तुम्हारा व्यवहार दूसरे के लिए है वही अंततः तुम्हारा

व्यवहार अपने लिए हो जाता है। जो अभ्यास तुम दूसरे के साथ करते हो वही अभ्यास तुम्हारा कारागृह हो जाएगा; उसी अभ्यास में तुम बंद हो जाओगे। अगर तुम दूसरे के लिए पत्थर जैसे होना चाहते हो तो चौबीस घंटे दूसरे मौजूद हैं। घर आओ तो पत्नी है, बेटे हैं, बच्चे हैं, नौकर-चाकर हैं। बाहर जाओ तो बाजार है, भीड़ है, सब तरफ दुश्मन हैं। कठोर आदमी के लिए मित्र तो कहीं भी नहीं हैं, प्रतियोगी हैं, प्रतिस्पर्धी हैं। बाहर जाओ तो, घर आओ तो, चौबीस घंटे तुम्हें दूसरे से संघर्ष करना पड़ रहा है। तुम्हारे सपने तक में तुम दूसरों से लड़ते रहते हो। अगर चौबीस घंटे तुमने यह अभ्यास किया कठोरता का, तो तुम सोचते हो तुम अपने प्रति पत्थर होने से बच जाओगे? यह अभ्यास इतना मजबूत हो जाएगा कि तुम अपने प्रति भी पथरीले हो जाओगे।
मैं बहुत मुश्किल से ऐसे आदमी के करीब आ पाता हूं कभी। हजारों लोग मेरे करीब आते हैं। इतने करीब आते हैं जितने वे करीब किसी आदमी के न आते होंगे। मेरे सामने अपना हृदय खोल कर रख देते हैं। न भी रखें तो मुझसे बचने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन कभी-कभी ऐसा घटता है कि ऐसा आदमी मुझे दिखाई पड़ता है जो अपने को प्रेम करता हो--कभी! जितने लोग आते हैं, उनमें से अधिक लोग खुद को घृणा करते हैं। उन्हें पता भी नहीं है, लेकिन दूसरे को घृणा करते-करते, दूसरे के प्रति पथरीले होते-होते, चलते-चलते अभ्यास के, वे अपने प्रति भी पथरीले हो गए हैं। अब पत्थर होना उनकी सहज आदत हो गई है, वह उनका दूसरा स्वभाव हो गया है। अब वे अकेले में भी बैठे हैं जहां कोई दूसरा नहीं है तो भी पत्थर की तरह बैठे हैं। इस पत्थर होने से छुट्टी लेना आसान नहीं है। यह उनके रग-रेशे में समा गया है। वे खुद को भी निंदा करते हैं, घृणा करते हैं।
दूसरे के प्रति तुम्हारा जो व्यवहार है, ध्यान रखना, अंततः वही तुम्हारा अपने प्रति व्यवहार हो जाएगा। जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः जो तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथ हो, वही तुम दूसरे के साथ करना। और इस वचन का इतना ही अर्थ नहीं है कि जो तुम चाहते हो दूसरे तुम्हारे साथ करें, वही तुम उनके साथ करना; इस वचन का गहरे से गहरा अर्थ यह है कि तुम जो दूसरों के साथ करोगे, अंततः तुम अपने साथ भी करोगे। वह तुम्हारे जीवन की शैली और पद्धति हो जाएगी।
इसलिए भूल कर भी पत्थर जैसे होने की सुविधा मत बनाना। कठिन से कठिन समय भी हो तो भी तुम कठोर मत बनना। तुम तरल रहना। अगर तुम्हें कभी जीवन की गहरी अनुभूतियों में उतरना है तो तुम्हें पिघलना ही होगा। तो दूसरा जब गालियों की वर्षा भी कर रहा हो तब भी तुम भीतर तरल रहना।
जीसस के बड़े प्यारे वचन हैं। जीसस और लाओत्से में बड़ा तालमेल है। जीसस का वचन है कि तुम्हारा कोई कोट छीने तो तुम कमीज भी दे देना; और कोई तुम्हें दो मील चलने को कहे बोझ ढोने को तो तुम चार मील चले जाना; और कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो तुम देर मत करना, दूसरा गाल उसके सामने कर देना।
इन सारी बातों का क्या अर्थ है? इन सारी बातों का इतना ही अर्थ है कि तुम कठोर मत होना, तुम तरल रहना, तुम पानी की भांति रहना। वह कहे दो मील, तुम कहना हम चार मील तैयार। तुम बहने को तत्पर रहना। तुम साथ जाने को राजी रहना। तुम सहयोग करना दुश्मन के साथ भी।
और अगर तुमने दुश्मन के साथ सहयोग किया तो तुम पाओगे कि दुश्मन दुश्मन न रहा; क्योंकि सहयोग करने की कला दुश्मन को रूपांतरित कर देती है। और अगर तुमने दुश्मन के साथ भी सहयोग किया तो मित्रों के साथ तो तुम कितना न कर पाओगे। और मित्रों के साथ जब तुम इतना कर पाओगे तो तुम उसका तो कोई हिसाब ही नहीं लगा सकते कितना तुम अपने साथ न कर पाओगे।
दुश्मन सबसे दूर है। बीच में मित्र हैं। फिर तुम हो। दुश्मन तुम्हारा अड्डा है जहां तुम सीखोगे क्या करनाः कठोर होना? दुश्मन के साथ कठोर हुए तो मित्र के साथ भी कठोरता जारी रहेगी। और तुम जो विनम्रता दिखलाओगे वह चेहरे पर होगी, वह असली में भीतर नहीं होगी। और अपने साथ--जो कि आखिरी मित्रता है--वहां भी तुम वही व्यवहार करोगे। बुद्ध ने कहा है, तुम ही हो अपने मित्र और तुम ही हो अपने शत्रु। अगर तुम कठोर होने का अभ्यास कर लेते

हो--घृणा का, ईर्ष्या का, मत्सर का--तो तुम अपने दुश्मन हो जाओगे। और अपने तुम ही हो मित्र, अगर तुमने प्रेम का, करुणा का, तरलता का अभ्यास किया, अगर तुमने बहने का अभ्यास किया।
तुमने कभी सोचा! हर चीज, छोटी-छोटी चीज बहुत विचार और विमर्श करने जैसी है। जब तुम घृणा से भरे होते हो तब तुम्हारे भीतर सब बहाव बंद हो जाता है। और जब मैं कह रहा हूं बहाव बंद हो जाता है, तो मैं शाब्दिक रूप से कह रहा हूं; ऐसा निश्चित हो जाता है, शब्दशः हो जाता है। यह कोई प्रतीक नहीं है। जब तुम घृणा से भरे होते हो तब तुम बंद हो जाते हो, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बाहर की तरफ बहती नहीं। जब तुम प्रेम और करुणा से भरे होते हो तब? तब तुम्हारी ऊर्जा बहती है, तब तुम्हारे चारों तरफ झरने निकल पड़ते हैं। जब तुम प्रेमपूर्ण होते हो तब तुम अनायास बंटने को आतुर होते हो, बांटना चाहते हो, दूसरे को साझीदार बनाना चाहते हो, सहभागी बनाना चाहते हो। तुम्हारा हाथ फैलता है और दूसरे के हाथ को अपने हाथ में लेना चाहता है। तुम अपने द्वार खोलना चाहते हो। तुम चाहते हो कोई तुम्हारे भीतर अंतरतम में प्रवेश करे और तुम्हारे खजाने में साझी हो जाए। जब तुम घृणा से भरे होते हो, तत्क्षण सब द्वार-दरवाजे बंद हो जाते हैं। तुम अपने भीतर रुक जाते हो, बहाव रुक जाता है।
न केवल इतना, बल्कि घृणा से भरे हुए आदमी के पास जाकर तुम अनुभव करोगे
कि जैसे तुम किसी पत्थर के पास से गुजर रहे हो जिसमें कोई संवेदन नहीं है। जहां से कोई रिस्पांस, जहां से कोई प्रत्युत्तर नहीं आता, जहां से कोई प्रतिध्वनि भी नहीं गूंजती। मुर्दा घाटियां भी प्रतिध्वनि से भर जाती हैं; लेकिन घृणा में बंद आदमी, कठोर हुआ आदमी, घाटियों से बदतर हो जाता है। तुम गीत गाओ, उसके भीतर कोई गूंज पैदा नहीं होती। तुम हाथ बढ़ाओ, उसके भीतर से कोई तुम्हारी तरफ नहीं बढ़ता। तुम उसके पास जाओ, वह तुमसे हटता है। चाहे वस्तुतः शरीर से न हटा हो, लेकिन भीतर हटता है।
जब तुम प्रेम से भरे आदमी के पास जाते हो तब तुम पाते हो एक आमंत्रण,
एक बुलावा। तुम कभी भी बिना बुलाए मेहमान नहीं हो वहां। प्रेम से भरे आदमी को पाकर तुम अनुभव करोगे जैसे वह तुम्हारी ही जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा कर रहा था, तुम्हारे लिए ही द्वार खोल कर बैठा था, पता नहीं तुम कब आ जाओगे। तुम वहां बिना बुलाए मेहमान नहीं हो। वहां द्वार पर ही स्वागतम लिखा है। तुम पाओगे, वह बांटने को राजी है। जो भी है उसके पास वह तुम्हारे साथ साझीदार हो जाना चाहता है। उसके हाथ बढ़े हैं। वह आलिंगन को तत्पर है। हेनरी थारो अमरीका में एक बहुत बड़ा विचारक और एक बड़ा साधक हुआ। उसने धीरे-धीरे अनुभव किया... । उसकी जीवन-धारा बड़ी प्रवाहमान थी। उसने अनुभव किया--अमरीका में तो जैसे हाथ मिलाने की विधि है, पद्धति है--तो उसने अनुभव किया कि सभी लोगों से हाथ मिलाते वक्त एक सी प्रतीति नहीं होती। किसी के हाथ में से कुछ बहता हुआ आता है। किसी के हाथ में से कुछ बहता हुआ नहीं आता। किसी का हाथ तो शोषक मालूम पड़ता है कि उसने तुम्हें चूस लिया, लेकिन दिया कुछ भी नहीं। और किसी का हाथ तुम्हें आपूर कर देता है, भर देता है और लेता कुछ भी नहीं, मांगता कुछ भी नहीं।
तुम भी ख्याल करना, जब तुम लोगों से हाथ मिलाओ तब ख्याल करना, दूसरे हाथ से कोई जीवन-ऊर्जा आती है दौड़ कर तुम्हारे स्वागत को? शरीर तो विद्युत-प्रवाह है। वैज्ञानिक कहते हैं, बायो-इनर्जी। दौड़ रही है जीवन-ऊर्जा, एक वर्तुल में दौड़ रही है। तुम्हारे चारों तरफ एक वर्तुल में जीवन-ऊर्जा दौड़ रही है।
दूसरों के प्रति घृणा से भरा हुआ और अपने प्रति घृणा से भरा हुआ आदमी
इस जीवन-ऊर्जा को सख्त कर लेता है, यह पथरीली हो जाती है। पानी की तरह तरल आदमी इसे तरल कर लेता है। और मजा यह है कि जितनी यह तरल होती है उतने ही नये झरने तुम्हारे भीतर फूटने लगते हैं। क्योंकि तुम भीतर अनंत हो। तुम भीतर महासागर हो। तुम जितना बांटोगे उतना ही तुम्हें भीतर के नये झरनों का बोध होगा। तुम जितना दोगे उतना ही पाओगे। यहां से पानी बाहर जाएगा और तुम भीतर से पाओगे नये झरनों ने तुम्हें फिर भर दिया। तुम जितना रोकोगे उतना ही

सड़ोगे। तब तुम एक डबरे हो जाओगे जिसमें सिर्फ गंदगी पलेगी, मच्छरों का आवास होगा, बदबू उठेगी। जीवन की सतत धार रुक जाएगी।
परमात्मा तुम्हारे कुएं से प्रतिपल बहने को तैयार है, लेकिन तुम बहने
को तैयार नहीं हो। थोड़ा सहयोग दो। थोड़ा बहो, और देखो। इतने कंजूस होने की कोई भी जरूरत नहीं है। और जिस जीवन के लिए तुम इतने कृपण हो वह जीवन अनंत है। तुम कितना ही लुटाओ लुटेगा न। तुम कितना भी बांटो बंटेगा न, बढ़ेगा। बढ़ता चला जाता है।
लाओत्से कहता है, "पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है, लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं है।"
अगर तुम बहने को राजी हो प्रेम से तो तुम कठोर से कठोर को भी जीत लोगे। इसलिए नहीं कि तुम जीतना चाहते थे; क्योंकि जो जीतना चाहता है वह तो तरल हो ही न सकेगा; बल्कि इसीलिए कि तुम्हारी जीतने की कोई आकांक्षा ही न थी। तुम तो सिर्फ जीवन में सहभागी बनाना चाहते थे। मित्र था या शत्रु, यह उसकी दृष्टि थी; तुम तो सभी को देना चाहते थे, तुम बांटने को तत्पर थे, और तुम्हारी कोई शर्त न थी। और तुम पाओगे कि कठोर से कठोर हार जाता है। बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। वे एक पहाड़ के पास से गुजरते थे। गांव
के लोगों ने रोका। वह रास्ता निर्जन हो गया था; वहां कोई जाता न था। क्योंकि वहां एक हत्यारे ने वास कर लिया था। और उस हत्यारे ने कसम ले ली थी कि वह एक हजार आदमियों की गर्दन काटेगा और उनकी अंगुलियों की माला पहनेगा। उस आदमी का नाम अंगुलीमाल हो गया था। उसने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार ही डाले थे। इसलिए अब लोग इतने डर गए थे कि जिसका कोई हिसाब नहीं। खुद उसकी मां उससे मिलने जाना बंद कर दी थी। क्योंकि वह ऐसा पागल था और हजारवें आदमी की प्रतीक्षा कर रहा था कि यह भी हो सकता है कि वह मां की भी गर्दन उतार दे और अंगुलियों की माला बना कर पहन ले। मां भी जहां जाने से डरने लगी हो, तुम सोच सकते हो खतरा कैसा था! जहां मां भी पथरीली हो गई हो, तुम सोच सकते हो कि खतरा कैसा था! जहां मां ने भी बेटे को देना बंद कर दिया हो वहां तुम सोच सकते हो कि खतरा कैसा था!
लोगों ने बुद्ध को कहा, आप वहां मत जाएं। यह आदमी पागल है। यह तुम्हारी फिक्र न लेगा और न यह समझेगा कि तुम कौन हो। यह समझ ही नहीं सकता; इसकी बुद्धि मारी गई है।
लेकिन बुद्ध ने कहा, यह भी तो सोचो, वह हजारवें आदमी की प्रतीक्षा कर रहा है। और कोई भी न जाएगा तो उस बेचारे का क्या होगा? तुम उसकी तकलीफ भी तो समझो। वह कब तक ऐसी प्रतीक्षा करता रहेगा? और मेरे शरीर से जो होना था वह हो चुका, जो पाना था, वह पा लिया। अब इस शरीर का और क्या इससे अच्छा उपयोग हो सकता है कि इस आदमी की प्रतिज्ञा पूरी हो जाए? कौन जाने यह प्रतिज्ञा पूरे होने पर इसका पागलपन खो जाए? मुझे जाना ही होगा, बुद्ध ने कहा।
गांव में खबर पहुंच गई कि ये बुद्ध उस अंगुलीमाल से भी ज्यादा पागल मालूम होते हैं। बुद्ध के शिष्य भी डरे। प्रतिज्ञा ली थी सदा साथ चलने की, वे सब भूल गईं प्रतिज्ञाएं। पास-पास चलने में बड़ा रस आता था, क्योंकि प्रतिष्ठा मिलती थी। अब खतरे का मामला था। बुद्ध के पास जो चलता था वह बड़े सम्राटों की नजरों में भी आ जाता था। अब आज कौन जाएगा साथ? लोगों के कदम धीमे हो गए। बुद्ध पहली दफा अकेले चले उस रास्ते पर। साथी थे, लेकिन वे काफी पीछे थे, अचानक उनके पैरों की गति धीमी हो गई थी। ऐसा कभी न हुआ था। और जब लोगों ने अंगुलीमाल को देखा कि वह एक चट्टान पर फरसे पर धार रख रहा है तब तो वे ठहर ही गए।
अंगुलीमाल ने आंख उठाई। पीत वस्त्रों में आते हुए सुंदर इन बुद्ध को देखा; एक चमत्कार घटित हुआ। वह हमें चमत्कार लगता है, क्योंकि हमें प्रेम की परिभाषा नहीं आती, और न हमें प्रेम के गणित का कोई पता है। लेकिन चमत्कार नहीं, सीधा गणित है। उसने बुद्ध को देखा। उसके जीवन में पहली दफे करुणा का भाव उठा। यह आदमी इतना निरीह मालूम हुआ, इतना कमजोर, कि इसको मारना? एक भिक्षु को? और इसके चेहरे पर ऐसी स्निग्धता और ऐसी शांति कि

क्षण भर को अंगुलीमाल को भी दया आ गई। कोई जीवन-ऊर्जा प्रवाहित हो रही है; पानी पत्थर को तोड़ रहा है, जलधार कठोर पत्थर को गिराए दे रही है। अंगुलीमाल थोड़ा घबराया। जो अंगुलीमाल से घबराते थे उनसे अंगुलीमाल कभी नहीं घबराया था। अंगुलीमाल थोड़ा घबराया। यह अतिशय हुआ जा रहा है। उसने खड़े होकर आवाज दी कि रुक जाओ भिक्षु वहीं! आगे मत बढ़ो! तुम्हें शायद पता नहीं है। क्या तुम्हें गांव के लोगों ने नहीं बताया? लगता है अनजान-अपरिचित तुम चले आए हो इस मार्ग पर। मैं हूं अंगुलीमाल। शायद तुमने नाम सुना हो। यह देखते हो, नौ सौ निन्यानबे लोगों की अंगुलियों की माला पहने बैठा हूं। एक आदमी की कमी रह गई है। मेरी मां भी आना बंद कर दी है। आ जाए तो उसकी मैं गर्दन उतार दूं। तुम लौट जाओ। अनजान देख कर मुझे तुम पर दया आती है।
अंगुलीमाल समझ नहीं पा रहा है। कैसे समझ पाएगा! यह दया अंगुलीमाल के कारण नहीं आ रही है, नहीं तो पहले भी आ गई होती। नौ सौ निन्यानबे आदमी मार चुका और दया न आई। और आज अचानक दया आ रही है! अंगुलीमाल के कारण नहीं आ रही है। यह घटना बुद्ध के कारण घट रही है। वह जो बहता हुआ प्रेम का प्रवाह है, वह दूसरे को भी रूपांतरित करता है। वह बड़ी अनजान शक्ति है, दिखाई नहीं पड़ती। एक हृदय से दूसरे हृदय तक जाते हुए बीच के रास्ते में तुम उसे कहीं पकड़ कर प्रयोग न कर पाओगे कि कैसी है। शायद छलांग लेती है, शायद बीच में कोई रास्ता पूरा करती ही नहीं। अभी यहां और युगपत वहां, जैसे बीच में कोई यात्रा नहीं होती। इतनी त्वरा है।
वे कहते हैं प्रकाश की गति एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील है-- प्रति सेकेंड! लेकिन प्रकाश को भी वे पकड़ पाए हैं, प्रेम को अभी तक नहीं पकड़ पाए। शायद प्रेम की गति कभी पकड़ में न आ सके। आना भी नहीं चाहिए। क्योंकि प्रेम तो प्रकाश से भी गहरा प्रकाश है, महाप्रकाश है। और जब सूरज भी ठंडे हो जाएं तब भी प्रेम ठंडा नहीं होता। जब सूरज भी बुझ जाएं और मृत्यु का अंधेरा उन पर छा जाए तब भी प्रेम का गीत तो गुनगुनाया ही जाता है। प्रेम की वीणा बजती ही रहती है। अंधेरा हो या प्रकाश, दिन हो या रात, जीवन हो या मृत्यु, सुख हो या दुख, प्रेम को कुछ भी मिटा नहीं पाता। अंगुलीमाल को पता नहीं है, लेकिन उसके मन में करुणा का जन्म हो गया।
और बुद्ध मुस्कुराए। बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल, तुम प्रतीक्षा करते एक आदमी की। मैंने सोचा इस शरीर का सब काम पूरा हो ही चुका है, जो पाना था पा लिया, जो जानना था वह जान लिया, अब दुबारा आना भी नहीं है, अगर मैं इतने काम आ जाऊं कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो जाए! इसलिए मैं जान कर आ रहा हूं; मैं कोई अनजान नहीं हूं। मुझ पर दया करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारी दया का भिखारी नहीं हूं। मैं कुछ देने आ रहा हूं, लेने नहीं। इस शरीर का काम पूरा हो चुका अंगुलीमाल, तुम बिल्कुल निर्भय होकर मुझे मार सकते हो।
ऐसा आदमी तो पहले कभी आया न था। जो आए थे वे या तो मृत्यु से डरते थे और भागते थे। जो आए थे या तो भीरु लोग थे, भाग जाते थे; या बहादुर लोग थे, तलवार निकाल कर लड़ने को खड़े हो जाते थे। उन दोनों तरह के आदमियों से अंगुलीमाल भलीभांति परिचित था। उन दोनों से वह निपट सकता था। उसमें कोई अड़चन न थी। यह आदमी कुछ तीसरी तरह का है। अंगुलीमाल ने नीचे से ऊपर तक देखा। तलवार की तो बात दूर, हाथ में कुछ भी नहीं है, भिक्षा-पात्र है। अंगुलीमाल ने फिर एक बार कहा। इस आदमी पर उसे बड़ी दया आने लगी, जैसे कोई छोटा बच्चा आ रहा हो, और उसके हाथ कंपने लगे। और उसने कहा कि मैं फिर तुम्हें कहता हूं कि आगे मत बढ़ो! मैं आदमी बुरा हूं, वहीं रुक जाओ!
और बुद्ध ने एक बड़ा अनूठा वचन कहा है जो मुझे बड़ा ही प्यारा रहा। बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल, मुझे रुके सालों हो गए, तब से मैं चला ही नहीं। जब मन रुक जाता है तो कैसा चलना? मैं तुमसे कहता हूं कि तू ही चल रहा है, मैं नहीं चल रहा हूं। मैं तो खड़ा हुआ हूं। तू गौर से देख!
बुद्धों से बात करना ठीक नहीं, खतरे से खाली नहीं। अंगुलीमाल फंस गया। वह हंसा जोर से। और उसने कहा कि तुम पागल हो। मुझे पहले ही शक हो गया

था कि कोई पागल ही ऐसा आएगा। चलते हुए को खड़ा हुआ कहते हो और मुझ खड़े हुए को चलता हुआ! मैं समझा नहीं, क्या तुम्हारा मतलब है?
और जब कोई बुद्ध से पूछने लगे तो गया, फिर उसके बचने का कोई उपाय नहीं। अंगुलीमाल ने पूछा, और वहीं वह हार गया। वह भूल ही गया कि मारना है इस आदमी को; मैं हूं बधिक, काटना है इस आदमी को। हिंसा जैसी चीज करनी हो तो बुद्ध जैसे लोगों के साथ जल्दी कर लेनी चाहिए। इसमें देर करना खतरनाक है। जरा सा अवसर, कि बुद्ध की ऊर्जा तुम्हें आपूरित कर लेगी, सब तरफ से घेर लेगी, तुम्हें निरस्त्र कर देगी।
बुद्ध पास आ गए हैं। और बुद्ध ने कहा, तू गौर से देख, मेरी आंखों में देख। मन ठहर गया; वासना रुक गई; चलना कैसा?
ऐसे कठिन सवाल अंगुलीमाल ने न तो कभी सोचे थे, न मौका आया था। सीधा- सादा आदमी था।
अपराधियों से ज्यादा सीधे-सादे आदमी दुनिया में खोजने मुश्किल हैं। सज्जन तो जरा तिरछे होते हैं, दुर्जन बिल्कुल सीधा होता है। उसका गणित साफ है। वह कोई छिपाधड़ी धोखाधड़ी नहीं करता। बुरा है, यह उसे भी स्पष्ट है। वह पाखंडी नहीं है। पाखंडी खोजना हों तो मंदिर-मस्जिदों, गुरुद्वारों में खोजने चाहिए। वे तुम्हें तिलक लगाए, माला फेरते मिलेंगे। अपराधियों में पाखंडी नहीं हैं। वे सीधे-सादे लोग हैं। बुरे हैं, खतरनाक हैं, पर पाखंडी नहीं हैं।
वह अपने सिर पर हाथ रख कर सोचने लगा। उसने कहा, तुम मुझे बिगूचन में डालते हो। बुद्ध ने कहा, तू बातचीत में मत पड़, अन्यथा तू उलझ जाएगा। तू अपना काम कर। तू उठा अपना फरसा और मुझे काट दे। लेकिन काटने के पहले मैं तुझसे एक बात पूछता हूं। इसके पहले कि तू मुझे काटे, मरते आदमी की एक इच्छा पूरी कर दे। यह जो सामने वृक्ष है, इसके कुछ पत्ते फरसे से काट कर मुझे दे दे।
उसने उठाया फरसा, पत्ते क्या उसने एक शाखा काट दी और कहा, यह लो। इसका क्या करोगे?
बुद्ध ने कहा, बस यह आधा काम तूने कर दिया, आधा और। इसे तू वापस जोड़ दे। उसने कहा, तुम निश्चित पागल हो। टूटी शाखा कहीं वापस जोड़ी जा सकती है?
तो बुद्ध ने कहा, बस एक सवाल और, फिर मैं कुछ भी न पूछूंगा। तू मेरी गर्दन काट; बात खतम कर। क्या तू उस आदमी को बहादुर कहता है जो तोड़ सकता है और जोड़ नहीं सकता? क्या उसको तू शक्तिशाली कहता है जो तोड़ सकता है और जोड़ नहीं सकता? या उसे शक्तिशाली कहता है जो जोड़ सकता है? यह शाखा तो बच्चे भी तोड़ देते अंगुलीमाल, तू कोई बहादुर नहीं है। हम तो सोचे थे कुछ बहादुर आदमी मिलेगा। तूने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले, तूने कभी यह सोचा कि एक चींटी भी तू बना नहीं सकता, एक सूखे पत्ते को हरा नहीं कर सकता, टूट गई डाल को वापस जोड़ नहीं सकता, जीवंत नहीं कर सकता! मारना तो बहुत आसान है अंगुलीमाल, जिलाना?
अंगुलीमाल का फरसा नीचे गिर गया। वह बुद्ध के चरणों पर गिर गया। और उसने कहा, मुझे जिलाने की कला सिखाओ। मैं तो यही सोचता था कि यह बलवान होना है, लेकिन साफ हो गई है बात कि यह कोई बल नहीं है।
अहंकार का बल कोई बल नहीं है। वह तोड़ता है; वह बनाता नहीं। तो इसे तुम
बल की परिभाषा समझ लो कि शक्ति सदा सृजनात्मक है। निर्बलता सदा विध्वंसात्मक है। लेकिन निर्बलता बलपूर्ण मालूम होती है, क्योंकि वह तोड़ती है। हिटलर और नेपोलियन और माओ और स्टैलिन सब कमजोर लोग हैं। बड़े बलशाली मालूम पड़ते हैं, क्योंकि तोड़ने में बड़े कुशल हैं; अंगुलीमाल के वंशज हैं। अंगुलीमाल भी झेंप जाए। अंगुलीमाल ने तो नौ सौ निन्यानबे लोग ही मारे थे, स्टैलिन ने कितने मारे हिसाब लगाना मुश्किल है। अंदाज एक करोड़। हिटलर ने कितने मारे मुश्किल है पता लगाना। एक करोड़ से भी ज्यादा। मिटाना बल नहीं है। लेकिन मिटाने वाला आदमी बलपूर्वक मिटाता है और देखने वालों को लगता है बड़ी शक्ति प्रकट हो रही है।
सृजन शक्तिशाली है, लेकिन सृजन बड़ा कमजोर मालूम पड़ता है। किसी कवि को कविता लिखते देख कर तुम्हें कभी ख्याल उठा है कि यह कवि बलशाली है? किसी

चित्रकार को चित्र बनाते देख कर तुम्हें लगा है कि यह महा शक्तिशाली व्यक्ति है? या किसी मूर्तिकार को गढ़ते हुए मूर्ति को? कौन सोचेगा कि चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, नर्तक, ये बलशाली हैं। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, यही असली बलशाली हैं। ये निर्बल दिखाई पड़ते हैं; इनकी निर्बलता जल जैसी है। हिटलर, माओत्से तुंग, स्टैलिन बलशाली मालूम पड़ते हैं, इनका बल पत्थर जैसा है। इनके नीचे दब कर कोई मर सकता है। इनके द्वारा किसी के ऊपर जीवन की वर्षा नहीं हो सकती।
राजनीति में मत खोजना बल, न खोजना धन में, न खोजना पद-प्रतिष्ठा में, क्योंकि वहां पत्थर ही पत्थर हैं। जितना तुम्हारे पास धन हो जाएगा उतनी ही तुम्हारी आत्मा सिकुड़ जाएगी और पथरीली हो जाएगी। जितने बड़े पद पर तुम पहुंचोगे, पहुंच ही न पाओगे अगर पथरीला हृदय न हो। क्योंकि लोगों के हृदय पर पैर रखने पड़ेंगे, सिर काटने पड़ेंगे, लोगों की सीढ़ियां बनानी पड़ेंगी, लोगों का साधनों की तरह उपयोग करना पड़ेगा। धोखाधड़ी, बेईमानी, पाखंड, सब करना पड़ेगा, तभी तुम पहुंच पाओगे बड़े पदों पर। तुम पत्थर हो जाओगे। राष्ट्रपति होते-होते भीतर की आत्मा बिल्कुल ही मर गई होती है। वहां कोई होता ही नहीं, सिंहासन पर मुर्दे बैठे रहते हैं।
सृजन है असली बल, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि वह जल की तरलता जैसा है। जो बनाते हैं उन्हें सम्मान देना; जो मिटाते हैं उनसे सम्मान वापस ले लो। अंगुलीमालों की पूजा बहुत हो चुकी। उस पूजा में खतरा है, क्योंकि तुम भी जिसकी पूजा करते हो उसी जैसे होने लगते हो। तुम जिसको आदर देते हो उसी जैसे होने लगते हो। तुम जिसको आदर्श की तरह देखते हो, अनजाने तुम अपने को उसी के रूप में ढालने लगते हो। पत्थरों की पूजा बहुत हो चुकी। जलधार को समझो, सृजन की धार को समझो। कमजोर दिखाई पड़ती चीजों को खोजो। तुम पाओगे वहां बड़ा बल छिपा है।

कोई वीणा पर एक धुन उठा रहा है। क्या है ताकत वहां? एक पत्थर मार दो, वीणा भी टूट जाएगी, संगीत खो जाएगा। बड़ा कोमल फूल है संगीत का। लेकिन काश तुम उसे बरस जाने दो अपने ऊपर तो तुम नये हो जाओगे, तुम्हें अपने ही भीतर नये आयाम मिल जाएंगे। तुम अपने ही भीतर आंगन की जगह आकाश को खोज लोगे। छोटी क्षुद्र सीमाएं गिर जाएंगी। असीम की झलक मिलने लगेगी।
एक नर्तक नाच रहा है। उसके घूंघर बज रहे हैं। क्या है वहां? शरीर की ऊर्जा से एक संगीत पैदा कर रहा है; एक लयबद्धता पैदा कर रहा है; शरीर की गति से एक अदृश्य लोक निर्मित कर रहा है। एक क्षण को यह जगत खो जाता है अगर तुम उसके नृत्य में खो जाओ। एक क्षण को अपने नृत्य के द्वार से तुम्हें वह किसी दूसरे ही जगत का दर्शन करा देता है। बड़ा बलशाली है; लेकिन कितना निर्बल। उठाओ एक पत्थर और मार दो, नृत्य भी गिर जाएगा, नर्तक भी गिर जाएगा। फूल जैसा कमजोर है, यहां जो भी महत्वपूर्ण है।
और लाओत्से कहता है, "कठिन को जीतने में उससे बलवान और कोई नहीं है। उसका कोई पर्याय ही नहीं है। यह कि दुर्बलता बल को जीत लेती है, और मृदुता कठोरता पर विजय पाती है। इसे कोई नहीं जानता है, न ही इसे कोई व्यवहार में ला सकता है।"
इसे कोई नहीं जानता, क्योंकि तुम जानते तो तुम्हारे जीवन में वह अपने
आप घट जाता। यह थोड़ा समझने के लिए, थोड़ी नाजुक बात है।
लाओत्से यह कह रहा है, जो जान लेता है वह हो जाता है। जानने और होने में फासला नहीं है। जीवन में कुछ चीजें हैं बाहर की, उन्हें तुम पहले जानो, फिर जानने के बाद अभ्यास करना पड़ता है। और भीतर के जगत का नियम बिल्कुल अनूठा है। वहां जानना ही पर्याप्त है; जानो कि हो गए। तुमने अगर समझ ली यह बात--मेरे समझाने से नहीं, लाओत्से के समझाने से नहीं, जीसस के प्रभाव में नहीं--तुमने यह बात समझ ली तुम्हारी ही बुद्धि की आभा में। तुमने सोचा, ध्यान किया, जीवन का दर्शन किया, जगह-जगह गए, घूंघट उठाया प्रकृति का और पहचानने की कोशिश की कि कौन है विजेता? अंततः कौन जीत जाता है--कमजोर कि सबल? तुमने असली बल की खोज की। तुमने असली शक्ति के स्रोत को देख लिया। तुमने! ध्यान रखना। मेरे दिखाने से भी तुम देख सकते हो, वह उधार होगा। मेरी

बात के प्रभाव में भी तुम्हें दिख सकता है, वह दर्शन सपने का दर्शन होगा। नहीं, मेरी बात के प्रभाव में नहीं। मेरी बात तो इतना ही करवा दे कि तुम जीवन में खोजने निकल जाओ और तुम जीवन को खुली आंख से देखने लगो, बस काफी है। जीवन में जिस दिन तुम देख लोगे कि निर्बलता कठोरता पर विजय पा लेती है, स्त्री पुरुष पर जीत जाती है, विनम्र अहंकारी पर जीत जाता है, ना-कुछ जिसके पास सब कुछ है उसे हरा देता है, भिक्षु के भीतर तुम जिस दिन छिपे सम्राट को देख लोगे, उस दिन अभ्यास करना पड़ेगा? फिर क्या तुम निर्बल होने का अभ्यास करोगे? अभ्यास की बात ही क्या रही!
यह तो ऐसे ही है कि तुम पत्थर हाथ में लेकर चल रहे थे और एक दिन अचानक जीवन ने तुम्हें उस खदान के निकट पहुंचा दिया जहां हीरे-जवाहरात भरे थे, तुम्हें दिखाई पड़ गया कि यह जो हाथ में तुम लिए हो वह पत्थर है। क्या तुम उसे छा.ेडने का अभ्यास करोगे? क्या तुम किसी गुरु के पास जाकर कहोगे कि कैसे अब इस पत्थर को छोडूं? छोड़ने का भी कहीं कोई अभ्यास करना पड़ता है? पकड़ने का अभ्यास करना पड़ता है, छोड़ना तो क्षण में हो जाता है। पकड़ने का अभ्यास करना पड़ता है। छोड़ दोगे तुम। पूछने जाओगे किसी से? छोड़ दोगे, यह कहना भी ठीक नहीं है। छूट जाएगा; दिखते ही छूट जाएगा। हाथ खुल जाएंगे; पत्थर गिर जाएगा। हाथ बंधे थे इसलिए कि सोचा था हीरा है। हाथ खुल जाएंगे, जैसे ही दिखाई पड़ जाएगा हीरा नहीं है।
शक्ति की तलाश में तुम भटकते रहे हो जन्मों-जन्मों से। उसको तुमने हीरा समझा है। जिस दिन तुम देखोगे कि निर्बलता बल है, उसी क्षण पत्थर हाथ से गिर जाएगा। अचानक तुम पाओगे सब बदल गया। अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। अभ्यास का तो कोई प्रयोजन ही नहीं है। ऐसे ही जैसे तुम्हें बाहर जाना होता है तो तुम दरवाजे से निकल जाते हो। तुम सोचते भी नहीं, कहां है दरवाजा? पूछते भी नहीं, कहां है दरवाजा? सोच-विचार भी नहीं करते, कैसे निकलें? बस निकल जाते हो। दरवाजा तुम्हें दिखाई पड़ता है। अब क्या पूछना है? क्या सोचना है?
अंधा आदमी निकलना चाहे इस कमरे के बाहर तो पहले पूछेगा, कहां है दरवाजा? टटोलेगा। सोचेगा कि जिस आदमी से पूछा है यह विश्वसनीय है या नहीं! कहीं मजाक तो नहीं कर रहा है कि अंधे को टकरवा दे और गिरवा दे और हंसी करे! तो भी अंधा पूछ कर भी लकड़ी से जांच-पड़ताल करेगा, क्योंकि कई बार लोग मजाक कर गए हैं। और इतने कठोर लोग भी हैं कि अंधों से भी मजाक कर लेते हैं। इतने पथरीले लोग भी हैं कि अंधा गिर जाए उस पर भी हंस लेते हैं। तो अंधा सोचेगा, विचारेगा, हिसाब लगाएगा, लकड़ी से जांच-पड़ताल करेगा, दरवाजे के पास पहुंचेगा, बड़ी व्यवस्था से निकलेगा। उसकी सारी व्यवस्था इसीलिए है कि उसे दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई पड़ जाए तो वह पूछेगा भी नहीं किसी से। जरूरत ही न रही।
इसलिए लाओत्से कहता है, "इसे कोई नहीं जानता है; इसे कोई व्यवहार में नहीं ला सकता है।"
क्योंकि जब तक तुम जानते नहीं तब तक तो तुम व्यवहार में लाओगे कैसे?
और जब तुम जान लोगे तब व्यवहार में लाने की जरूरत ही न रही, व्यवहार में आ जाएगा। इसलिए असली बात है जान लेना। ज्ञान ही क्रांति है। मगर ज्ञान उधार न हो, बासा न हो, तभी ज्ञान है। अपना हो, मौलिक हो, सीधा-सीधा जाना गया हो, प्रत्यक्ष हो, परोक्ष न हो, किसी और का बताया हुआ न हो; अन्यथा तुम अंधे रहोगे। कितना ही वेद चिल्लाते रहें कि ब्रह्म है और कुछ भी नहीं है। लेकिन कौन जाने कोई मजाक कर रहा हो। अंधे आदमी से मजाक की जाती है। कौन जाने जिन्होंने वेद लिखे वे खुद ही धोखे में रहे हों? विश्वास कैसे करो? उपनिषद चिल्लाते हैं, भरोसा नहीं आता। भरोसा तो तुम्हें तभी आएगा जब तुम देख लोगे, एक झलक मिल जाए। और वह झलक अगर तुम्हें चाहिए हो तो उपनिषद, वेदों को एक तरफ रख देना। तभी किसी दिन तुम्हारे जीवन में वेद और उपनिषद सच हो पाएंगे। तुम गवाह बन सकते हो वेद-उपनिषदों की सचाई के, अनुयायी नहीं। तुम अगर उन्हें मान कर चले तो तुम कभी न पहुंचोगे। अगर तुम उन्हें हटा कर चले तो तुम जरूर पहुंच जाओगे। और एक दिन तुम गवाह बन सकोगे कि उपनिषद ठीक कहते हैं।

शास्त्रों से सिद्धांत सीखा नहीं जा सकता; शास्त्रों में सिद्धांत है। सीखा तो जीवन से ही जा सकता है। कोई जीवन के शास्त्र का पर्याय नहीं है। जिस दिन तुम जान लोगे जीवन से उस दिन सब शास्त्र तुम्हारे लिए सही हो जाएंगे। और ध्यान रखना, मैं कहता हूं सब शास्त्र।
जब तक तुम शास्त्रों को मान कर चलोगे तब तक वेद सही रहेगा तो कुरान गलत रहेगा; कुरान सही रहेगा तो वेद गलत रहेगा, बाइबिल गलत रहेगी; बाइबिल सही रहेगी तो धम्मपद गलत रहेगा। अगर तुम शास्त्र को मान कर चलते हो तो तुम या तो हिंदू होगे, या मुसलमान, या ईसाई, या जैन, या बौद्ध, या सिक्ख; धार्मिक नहीं।
जिस दिन तुम जीवन के शास्त्र को पढ़ लोगे... । तो जीवन के शास्त्र पर किसी की बपौती नहीं है। वह न हिंदू का है, न मुसलमान का है। जिस दिन तुम जीवन का शास्त्र पढ़ लोगे उस दिन तुम सारे शास्त्रों के गवाही हो जाओगे कि कुरान भी ठीक कहती है, बाइबिल भी ठीक कहती है, वेद भी ठीक कहते हैं, उपनिषद भी ठीक कहते हैं। क्योंकि अब तुमने जीवन की भाषा समझ ली। अब संस्कृत धोखा न दे सकेगी, अरबी छिपा न सकेगी। अब अरबी में कही जाए बात कि संस्कृत में कि हिब्रू में, कोई फर्क न पड़ेगा। तुमने जीवन से पढ़ ली। अब किसी भी भाषा में कही जाए, किसी भी ढंग से कही जाए, कोई भी रूप दिया जाए, तुम पहचान ही लोगे। तुम्हें स्वाद मिल गया पानी का, अब पानी मानसरोवर का हो कि काबा का, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम स्वाद जानते हो। तुम पानी को चख लोगे, तुम पहचान लोगे, तुम्हारे ओंठों ने स्वाद जान लिया। तब सभी शास्त्र सही हो जाते हैं।
जब तक तुम्हारे लिए एक शास्त्र सही रहे और दूसरा गलत रहे, तब तक समझना
कि तुम जीवन के शास्त्र से बच रहे हो। जीवन का शास्त्र वह मूल स्रोत है जहां से सब शास्त्रों का जन्म होता है, जहां से सब ज्ञानी खबर लाते हैं। तुम भी उसी स्रोत से खबर लाओ। और कोई रास्ता नहीं है।
"इसलिए संत कहते हैंः जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है। जो संसार के पाप अपने ऊपर ले लेता है, वह संसार का सम्राट है। सीधे शब्द टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं।"
जब तुम्हें कोई गाली देता है तब तुम दो काम कर सकते हो। एक जो तुम करते
हो कि जब तुम्हें कोई गाली देता है तो तुम भी गाली देते हो। अगर ताकतवर दिखाई पड़ता है तो भीतर देते हो, ऊपर से मुस्कुराते हो। अगर कमजोर दिखाई पड़ता है तो ऊपर से देते हो।
एक छोटे स्कूल में पादरी बच्चों को समझा रहा था कि क्षमा करना चाहिए, क्षमा बड़ा गुण है। जब तुम्हें कोई गाली दे, क्षमा कर दो। फिर उसने एक छोटे बच्चे से पूछा कि बोलो, तुम्हें समझ में आया? उसने कहा, बिल्कुल समझ में आया। अपने से बड़ों को तो मैं बिल्कुल सरलता से क्षमा कर देता हूं, लेकिन अपने से छोटों को क्षमा करना असंभव है।
अपने से बड़ों को सरलता से क्षमा कर देता हूं; अपने से छोटों को क्षमा करना असंभव है। कमजोर को क्षमा करना असंभव है, ताकतवर को तो तुम क्षमा कर ही देते हो; क्योंकि झंझट है। लेकिन जिस दिन तुम कमजोर को क्षमा कर देते हो, उस दिन तुम्हारे जीवन में एक रूपांतरण होता है।
तो एक तो व्यवहार है गाली देने का--या तो ऊपर से दो या भीतर से दो।
मैंने सुना है कि एक साधारण सिपाही पहले महायुद्ध में पुरस्कृत हुआ।
एक साधारण सा सैनिक उसकी वीरता के कारण मेजर बना दिया गया। वह एक दिन जनरल के साथ रास्ते से गुजर रहा है और सभी सैनिक सलामी मारते हैं। वह जब भी सलामी सुनता है तो धीरे से भीतर कहता हैः दि सेम टु यू, वही तुम्हारे लिए भी। जनरल थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, तुम यह बार-बार क्या करते हो कि दि सेम टु यू? ऊपर से सलामी करते हो और धीरे से यह क्या कहते हो कि वही तुम्हारे लिए भी? उसने कहा, आपको पता नहीं कि भीतर-भीतर ये लोग क्या कह रहे हैं। मुझे पता है; मैं सैनिक रह चुका हूं। भीतर ये गाली दे रहे हैं; ऊपर से सलाम मार रहे हैं। इसलिए मैं धीरे से कह देता हूंः दि सेम फॉर यू। इनकी असली हालत मुझे पता है। मैं रह चुका हूं सैनिक।

आदमी का यह तो सहज व्यवहार है कि गाली कोई दे तो वह गाली दे। या तो ऊपर
से दे सके तो ऊपर से दे, न दे सके ऊपर से तो भीतर से दे। क्योंकि बिना दिए उसे बेचैनी अनुभव होगी।
और लाओत्से कह रहा है, जब तुम्हें कोई गाली दे तो तुम उसे पी जाओ, तुम उत्तर मत दो। तुम किसी तरह का बाहर या भीतर प्रतिकार मत करो।
और लाओत्से एक ऐसी गहन बात कह रहा है कि अगर तुम कर पाओ तो तुम चकित हो जाओगे कि तुमने कितनी ऊर्जा अब तक व्यर्थ गंवाई! जब तुम किसी की गाली को चुपचाप पी जाते हो तो उसकी गाली तुम्हें मजबूत कर जाती है, शक्तिशाली कर जाती है। एक तो तुम गाली देने में जितनी ऊर्जा खर्च करते, क्रोधित होते, परेशान होते, बेचैन होते, उससे बच जाते हो। और उसने गाली के द्वारा जो ऊर्जा तुम्हारी तरफ फेंकी है, तुम उसे भी लीन कर लेते हो, तुम उसको भी आत्मसात कर लेते हो। वह गाली देकर कमजोर हो गया, वह गाली देकर छोटा हो गया, सिकुड़ गया। उसकी गाली को तुमने आत्मसात कर लिया। तुम सबल हो गए। हालांकि दुनिया यह कहेगी कि यह आदमी कितना निर्बल है कि लोग इसको गाली देते हैं और यह गाली का जवाब भी नहीं देता! लोग तुम्हें निर्बल कहेंगे। लेकिन जीवन के शास्त्र से अगर तुम पूछो तो तुम सबल हो रहे हो।
लाओत्से के इन वचनों के आधार पर एक पूरा शास्त्र विकसित हुआ है। जुजुत्सु, जूडो, अकीदो, अनेक नामों से उस शास्त्र का चीन और जापान में विकास हुआ। न केवल गाली के लिए लाओत्से कहता है, जब तुम्हें कोई घूंसा मारे तब भी तुम उसके घूंसे को पी जाओ। घूंसा तो शुद्ध ऊर्जा है, तुम उसको फेंको मत, तुम उसे लीन कर लो, आत्मसात कर लो, तुम उसे स्वीकार कर लो। जैसे किसी आदमी ने कोई चीज भेंट दी है। तुम उसे पी जाओ। और जुजुत्सु को जो लोग ठीक से अभ्यास कर लेते हैं--क्योंकि जुजुत्सु का अभ्यास बड़ा कठिन है, तुम्हारी सारी जीवन की व्यवस्था के बिल्कुल प्रतिकूल है, कोई मारे, उसकी ऊर्जा को पी जाओ--तो ऐसी घटनाएं घटती हैं कि कमजोर से कमजोर आदमी बलवान से बलवान आदमी को चारों खाने चित्त गिरा देता है। सिर्फ उसकी ऊर्जा पीकर। अभी पश्चिम में नारियों का बड़ा विराट आंदोलन चल रहा है। और पश्चिम के सभी बड़े नगरों में जुजुत्सु की क्लासें हैं; खासकर स्त्रियों के लिए। स्त्रियों का जो आंदोलन चल रहा है स्वातंष्य का। क्योंकि स्त्री पुरुष से और किसी तरह से तो लड़ नहीं सकती, मगर अगर जुजुत्सु सीख ले तो तुम्हारा पहलवान भी स्त्री को हरा नहीं सकता।
ऊर्जा को पी जाने की कला! दूसरे ने घूंसा मारा, तुम जगह दे दो अपने शरीर में उसको। कड़े मत हो जाओ, हड्डियां तुम्हारी मजबूत न हो जाएं। अन्यथा टूट जाएंगी। तुम उसको पी लो। उसके घूंसे को पड़ जाने दो, जैसे तकिए पर पड़ रहा हो और तकिया जगह दे दे, ऐसा तुम अपने शरीर को तकिए जैसी जगह दे जाने दो। तुम अचानक पाओगे, एक ऊर्जा का बड़ा गहन प्रवाह तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो गया और वह आदमी कमजोर हो गया। दस-पांच घूंसे उसे मारने दो और उसे कमजोर होने दो। कहते हैं कि अगर तीन मिनट कोई व्यक्ति जुजुत्सु की हालत में रह जाए तो सबल से सबल व्यक्ति अपने आप ही हांफने लगेगा और गिर जाएगा।
और यह कोई कथा नहीं है। लाखों लोग जुजुत्सु का प्रयोग करते हैं जापान
और चीन में। और अब पश्चिम में उसकी हवा जोर से फैल रही है। और मैं भी मानता हूं कि स्त्रियों को हर जगह वह कला सीख लेनी चाहिए। अन्यथा स्त्री कभी भी बलवान न हो सकेगी। स्त्री का बल उसकी निर्बलता में है। इसलिए अगर मनुष्य-जाति को कभी भी स्त्रियों को मुक्त होते देखना है तो लाओत्से स्त्रियों का गुरु होगा, और कोई गुरु नहीं हो सकता। क्योंकि लाओत्से ने सिखाई है कलाः निर्बल कैसे बलवान है। फिर कोई स्त्री पर बलात्कार नहीं कर सकता। जुजुत्सु जानने वाली स्त्री पर कभी कोई बलात्कार नहीं कर सकता। जुजुत्सु जानने वाली स्त्री पर गुंडे हमला नहीं कर सकते।
पर वह एक अनूठी ही कला है। अब पश्चिम में उस पर काफी काम चल रहा है, और वैज्ञानिक भी राजी होते जा रहे हैं कि बात सच है। क्योंकि एक घूंसे का अर्थ होता है काफी ऊर्जा वह आदमी अपने शरीर की इकट्ठी कर रहा है और फेंक रहा है। तुम उसे वापस मत लौटाओ; तुम उसे लीन कर लो। तुम उसे पी जाओ। तुम उसे निमज्जित हो जाने दो। तुम उसे पचा लो।

"जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है।"
वही समाज का संरक्षक है। संत समाज की सुरक्षा है। संत के नीचे जब भी कोई समाज जीता है तो बड़ी सुरक्षा में है। संत तो ऐसे है जैसे बहुत बड़ा वृक्ष, जिसके नीचे छाया है, जिसकी छाया में तुम बैठ सकते हो। और जिसकी छाया को कोई भी डगमगा नहीं सकता, और जिसके नीचे शीतलता की वर्षा होती ही रहेगी। क्योंकि उसने वह कीमिया सीख ली है कि वह संसार की गालियों को शांति में बदल लेता है; संसार के क्रोध को प्रेम में बदल लेता है।
यही तो असली अल्केमी है। तुमने अल्केमी और अल्केमी को मानने वाले लोगों का नाम सुना होगा। और तुमने सुना होगा कि वे लोहे को सोने में बदलने की कोशिश करते हैं। तुम यह मत समझना कि वे लोहे को सोने में बदलने की कोशिश करते हैं। लोहा और सोना तो प्रतीक हैं। लोहा है क्रोध; सोना है प्रेम। लोहा है मूर्च्छा; सोना है जागृति। लोहा है घृणा, ईर्ष्या, मत्सर; सोना है करुणा। लोहे को सोने में बदल लेने का कुल इतना ही अर्थ है कि दुनिया तुम्हें कुछ भी दे, कांटे फेंके, लेकिन तुम्हारे भीतर वह कला होनी चाहिए कि कांटे तुम्हारे भीतर फूल हो जाएं।
और यह कला है। अगर तुम लड़ो मत। अगर तुम स्वीकार कर लो। अगर तुम अहोभाव
से स्वीकार कर लो। अगर तुम गाली को भी अहोभाव से स्वीकार कर लो कि जरूर इसके पीछे भी कोई राज होगा, जरूर इसके पीछे भी कोई छिपा रहस्य होगा। और परमात्मा ने अगर ऐसी स्थिति बनाई है कि गाली मिले तो वह हमसे ज्यादा जानता है। जिसने दिया है जन्म, जिसने दिया है जीवन, वह निश्चित हमसे ज्यादा जानता है। अस्तित्व हमसे बहुत बड़ा है। इस क्षण में उसने गाली दिलवाई है; जरूर कोई राज होगा, कोई रहस्य होगा, कोई छिपी बात होगी। हम जल्दी न करें। हम स्वीकार कर लें। तब तुम पाओगे दुख में भी सुख की सुवास आने लगी। और क्रोध से भी करुणा जन्मने लगी। और तुम्हारे भीतर हर कांटा फूल बन जाता है। फेंके जाते हैं अंगारे और तुम्हारे भीतर सब शीतल हो जाते हैं।
"जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है। जो संसार के पाप अपने ऊपर ले लेता है, वह संसार का सम्राट है।" कहीं भी कुछ बुरा हो रहा है, कहीं भी कोई पाप हो रहा है, जो अपने को जिम्मेवार मानता है, जो समझता है कि मेरा उसमें हाथ है, और जो उसे अपने ऊपर ले लेता है, वही सुरक्षा बन जाता है, वही सम्राट है। सम्राट वे नहीं हैं जो सिंहासनों पर बैठे हैं। सम्राट वे हैं जिन्हें तुम शायद खोज भी न पाओगे। सम्राट वे हैं जिन्होंने तुम्हारे सारे पाप को अपने ऊपर ले लिया है, जिन्होंने तुम्हारे सारे पापों की अग्नि को अपने भीतर शीतल करने की व्यवस्था कर ली है, जो तुम्हें शुद्ध करने की प्रक्रिया हैं।
जीसस के संबंध में ईसाइयों का विश्वास है कि उन्होंने सारे संसार के पाप अपने ऊपर ले लिए। सारे संसार का पाप उन्होंने अपनी सूली में समाहित कर लिया। सारे संसार को जो दुख मिलना चाहिए पापों के कारण, वह उन्होंने सूली पर झेल लिया उस एक क्षण में।
यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है। संत का अर्थ ही यही है। इसके कारण बहुत से प्रतीक संसार में फैल गए। और प्रतीक धीरे-धीरे अर्थहीन हो जाते हैं।
तुम पाप करते हो, तुम जाकर गंगा में स्नान कर आते हो। प्रतीक तो बड़ा कीमती है, क्योंकि तीर्थ का अर्थ ही वह होता है जहां तुम्हारे सब पाप ले लिए जाएं। मूलतः तो गंगा में लोग तीर्थ के लिए स्नान के लिए नहीं जाते थे, क्योंकि गंगा के किनारे संतों का वास था। गंगा तो बाद में धीरे-धीरे-धीरे- धीरे प्रतीक की तरह महत्वपूर्ण हो गई। संत रहे न रहे, गंगा महत्वपूर्ण हो गई। लेकिन गंगा के किनारे संतों का वास था; उनके कारण गंगा तीर्थ बन गई। संतों के पास जाने का अर्थ ही यह है कि कोई, जो तुम्हारे लोहे को सोने में बदल देगा, जो पारस की तरह है। उसका स्पर्श तुम्हें रूपांतरित कर देगा, तुम्हारी विकृति को जो सुकृति में बदल देगा। तुम्हारी निम्नता को जो रूपांतरित करेगा। तुम्हारी अधोगामी ऊर्जा को जो ऊर्ध्वगामी कर देगा। संत के संस्पर्श का इतना ही अर्थ है, जो तुम्हारे दुख, तुम्हारी पीड़ाएं, तुम्हारा पाप, तुम्हारा अंधकार ले लेगा, और तुम्हें प्रकाश दे देगा। संत

ले सकता है तुम्हारा पाप, क्योंकि पाप को संत पुण्य में बदलने की कला जानता है। तुम सोचते हो कि तुम पाप दे आए; संत तो हर चीज से पुण्य निकाल लेने की कला जानता है। तुम्हारा पाप भी संत के पास पुण्य हो जाता है। लेकिन तुम हलके हो जाते हो और संत तुम्हें पुण्य से भर देता है।
इसका क्या अर्थ है? इसका गूढ़ अर्थ केवल इतना ही है जैसे चुंबक के पास लोहा खिंचा चला जाता है; और चुंबक के पास अगर लोहा बहुत देर रह जाए तो लोहे में भी चुंबक का गुण आ जाता है। बस इतना ही अर्थ है। सत्संग का इतना ही अर्थ है, संतों के पास होने का इतना ही अर्थ है कि तुम अगर उनके पास थोड़ी देर रह गए... ।
रहना बहुत मुश्किल है, क्योंकि पाप की लत तुम्हें दूर जाने को कहेगी। रहना मुश्किल है, क्योंकि संत तुम्हें रूपांतरित करेगा और तुम्हारा अहंकार बाधा डालेगा। रहना मुश्किल है, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि बड़े सिद्धांतों को माने बैठी है; संत तुम्हारे सब सिद्धांतों को तोड़ेगा। तुम्हें बड़ी नाराजगी आएगी। तुम्हें बड़ा क्रोध होगा। तुम्हारी मान्यताएं खंडित होंगी। तुम्हारे आदर्श गिरेंगे। तुमने जिन मूर्तियों को परमात्मा की समझा है, वह पत्थर कहेगा। तुम्हें बड़ी बेचैनी होगी। तुम्हारी बुद्धि राजी न होना चाहेगी। तुम्हारा अहंकार इनकार करेगा। तुम्हारा समग्र व्यक्तित्व पाप की मांग करेगा। और तुम्हारा जो जीवन का पुराना ढांचा है, तुम उसमें वापस लौट जाना चाहोगे।
इसलिए संत के पास रहना कठिन है। अगर कोई रह जाए--उस रहने के लिए बड़ा धीरज चाहिए, बड़ी क्षमता चाहिए, प्रतीक्षा की कला चाहिए, जल्दबाजी और निर्णय से बचने की क्षमता चाहिए--अगर कोई संत के पास रह जाए, धीरे-धीरे- धीरे-धीरे कुछ करे भी न, सिर्फ रह जाए, सिर्फ संत को अपने भीतर मिलने दे और निमज्जित होने दे, संत की ऊर्जा के साथ अपनी ऊर्जा को एक होने दे, थोड़ा सा भी संस्पर्श हो जाए, तो जैसे पारस की कथा है कि वह लोहे को सोने में बदल देता है, ऐसा पारस कहीं होता नहीं, कहानी है। लेकिन संत के पास ऐसा पारस है। संत ऐसा पारस है।
लाओत्से कहता है, "वही संसार का सम्राट है।"
और फिर वह कहता है, "ये सीधे-सादे शब्द टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं।"
क्योंकि तुम सम्राट को सिंहासन पर खोजते हो; वहां नहीं है सम्राट, सिंहासन खाली है। वहां मुर्दे, पापी, हत्यारे बैठे हुए हैं। तुम राजधानियों में खोजते हो; वहां नहीं है। तुम सत्ताधिकारियों में खोजते हो; वहां नहीं है। तुम बलशालियों में खोजते हो; वहां नहीं है। संत तो तरल है, पानी की तरह तरल है। वाष्प की तरह अदृश्य है। बड़ी गहन तुम्हें खोज करनी पड़ेगी। और उन जगहों में खोजना पड़ेगा जहां तुम सोचते ही नहीं थे। हो सकता है तुम्हारे पड़ोस में हो, और वहां तुमने कभी नहीं खोजा। क्योंकि अपने पड़ोसी में कभी कोई संत देख सकता है? असंभव!
मैं बहुत से गांवों में रहा हूं। दुनिया के दूर-दूर कोने से लोग आ जाते हैं, लेकिन पड़ोसी नहीं आता। यह नियम मैंने समझ लिया कि यह पक्का नियम है, इसमें कुछ हो ही नहीं सकता। एक मकान में मैं आठ साल रहा। मेरे ऊपर ही जो सज्जन रहते थे, वे कभी मुझसे मिलने नहीं आए। करीब-करीब रोज सीढ़ियों पर या रास्ते पर मिलना-जुलना हो जाता। नमस्कार हो जाती। वह भी मुझे ही करनी पड़ती। इतना खतरा भी उन्होंने कभी नहीं लिया कि अपनी तरफ से नमस्कार करें। फिर आठ साल बाद--वे किसी कालेज के प्रिंसिपल थे; बदली हो गई--जब मैं उनके गांव में बोलने गया, तब उन्होंने मुझे सुना। रोने लगे आकर मेरे पास कि मैं भी कैसा अभागा हूं कि आठ साल ठीक तुम्हारे सिर पर था! मैंने कहा, इसीलिए चरणों में आने में कठिनाई हुई। सिर पर थे, चरणों में आने में बहुत कठिनाई है। चलो देर-अबेर जब आ गए, कुछ देर नहीं हो गई। अभी भी आ गए तो ठीक।
मुल्क के मैं बहुत से नगरों में रहा हूं। लेकिन देख कर चकित हुआ, इसको मैंने फिर मान लिया कि यह कोई सिद्धांत ही होना चाहिए कि पड़ोसी नहीं आएगा। आ ही नहीं सकता। क्योंकि पड़ोसी में, तुम्हारे पड़ोसी में और परमात्मा हो सकता है? असंभव! तुम्हारे रहते और तुम्हारे पड़ोसी में? यह संभव ही नहीं हो सकता।

सीधी-सीधी बातें भी तुम्हारे टेढ़े-मेढ़े मन के कारण टेढ़ी-मेढ़ी दिखाई पड़ती हैं। पड़ोसी में भी परमात्मा है। और ऐसा नहीं कि तुम में नहीं है। तुम में भी परमात्मा है। लेकिन तुम न तो अपने पड़ोसी में मान सकते हो, और न अपने में मान सकते हो। और परमात्मा कहीं बहुत दूर आकाश में छिपा नहीं है; यहां जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में छिपा है। परमात्मा कोई ऐसा सत्य नहीं है जिसे तुम एक दिन आखिर में उघाड़ लोगे; हर तथ्य के भीतर छिपा है सत्य। तथ्य तो सिर्फ घूंघट है, जरा सा उठाओ और वहीं से तुम्हें सत्य मिलना शुरू हो जाएगा।
लाओत्से ने बहुत से तथ्यों पर से वस्त्र उठाए हैं। और यह एक गहनतम तथ्य है कि जीवन में कोमल होना, तो तुम जीवंत होओगे। सख्त हुए कि मरे। कमजोर होना, तो ही तुम बलशाली रहोगे। बलशाली हुए कि तुमने अपने को गंवा दिया। जो अपने को बचाएगा वह गंवाएगा। और जो अपने को बिल्कुल गंवा कर एकदम निर्बल हो जाता है, निश्चित ही राम उसके हैं। निर्बल के बल राम!
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ चौबीसवां प्रवचन

प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जिम्मेवार है

Chapter 79

Peace Settlements

Patching up of the great hatred
Is sure to leave some hatred behind.
How can this be regarded as satisfactory? Therefore the Sage holds for the left tally, And does not put the guilt on the other party. Virtuous man is for patching up,
The vicious is for fixing guilt.
But the way of Heaven is impartial,
It sides only with the good man.

अध्याय 79

सुलह-समझौता

भारी वैर में सुलह के बाद भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है; इसे संतोषजनक कैसे कहा जा सकता है?
इसलिए समझौते में संत अपने को दुर्बल पक्ष मानते हैं,
दूसरे पक्ष पर कसूर नहीं मढ़ते।
पुण्यवान आदमी समझौते के पक्ष में होता है;
पापी कसूर मढ़ने के पक्ष में।
लेकिन स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है;
वह केवल सज्जन का साथ देता है।

जीवन में उत्तरदायित्व की समस्या बड़ी से बड़ी समस्या है। और अगर ठीक समाधान न खोजा जाए तो जीवन की पूरी यात्रा ही भ्रांत और भटक सकती है। साधारणतः सदा ही दूसरे को दोषी ठहराने का मन होता है, क्योंकि यही अहंकार के लिए तृप्तिदायी है। मैं, और कैसे गलत हो सकता हूं? मैं कभी गलत होता ही नहीं। मैं तो खड़ा ही इस भित्ति पर है कि गलती मुझसे नहीं हो सकती।
जैसे ही यह समझ आनी शुरू हुई कि गलती मुझसे भी हो सकती है, मैं का भवन गिरने लगता है। और जिस दिन यह दिखाई पड़ता है कि मैं ही सारी भूलों के लिए उत्तरदायी हूं, उस दिन अहंकार ऐसे ही तिरोहित हो जाता है जैसे सुबह के सूरज उगने पर ओस-कण। अहंकार कहीं पाया ही नहीं जाता, अगर यह समझ में आ जाए कि उत्तरदायी मैं हूं। जिसने यह जान लिया कि दायित्व मेरा है उसका अहंकार मर जाता है। और जिसने यह कोशिश की कि हर हालत में दूसरा जिम्मेवार है उसका अहंकार और भी सुरक्षित होता चला जाता है।
अहंकार को समझने की पहली बातः क्यों हम दूसरे पर दायित्व को थोपते हैं? जब भी भूल होती है तो दूसरे से ही क्यों होती है? और यही दशा दूसरे की भी है; वह भी दोष दूसरे पर थोप रहा है। तब संघर्ष पैदा होता है, कलह पैदा होती है। फिर समझौता भी कर लिया जाए तो भी कलह का धुआं तो शेष ही रह जाता है। क्योंकि समझौता तब तक सत्य नहीं हो सकता जब तक कि बुनियादी रूप से मैं यह न जान लूं कि जिम्मेवार मैं हूं। तब तक सब समझौता कामचलाऊ है, ऊपर-ऊपर है। तब ऐसा ही है कि आग को हमने राख में दबा दिया; अंगारे मौजूद हैं, और कभी भी फिर विस्फोट हो जाएगा। अवसर की तलाश रहेगी; समझौता टूटेगा; संघर्ष फिर ऊपर आ जाएगा। क्योंकि समझौते में हमने यह तो स्वीकार किया ही नहीं गहरे

में कि भूल हमारी है। अगर हमने यह जान लिया कि भूल हमारी है तब तो समझौते का कोई सवाल नहीं। तब तो हम झुक जाते हैं; तब तो हम समग्र रूप से स्वीकार कर लेते हैं। तब तो किसी को क्षमा भी नहीं करना है। तब तो भूल अपनी ही थी। कहते हैं नेपोलियन जब हार गया, और जब पराजित नेपोलियन को सेंट हेलेना
के द्वीप में ले जाया गया, तो उसके किसी मित्र ने उसे कहा कि अब तुम व्यर्थ चिंता का बोझ मत ढोओ; जो हुआ, हुआ; अब तुम माफ कर दो दुश्मनों को और जीवन के इन आखिरी क्षणों में शांति से जी लो। नेपोलियन के शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। नेपोलियन ने कहा, आई कैन फॉरगिव देम, बट आई कैन नाट फॉरगेट; मैं उन्हें क्षमा तो कर सकता हूं, लेकिन भूल नहीं सकता।
और अगर भूल नहीं सकते तो यह क्षमा कैसी? यह क्षमा मजबूरी की क्षमा है।
यह क्षमा असहाय की क्षमा है। अब कुछ और किया नहीं जा सकता, इसलिए नेपोलियन क्षमा कर रहा है। लेकिन भीतर आग सुलग रही है। भीतर अभी भी वह क्रुद्ध है। और कभी अवसर आ जाए, सुविधा मिल जाए, तो फिर लड़ने को तत्पर हो सकता है।
यदि तुमने दूसरे पर दोष मढ़ने को जीवन की शैली बना लिया हो तो तुम कभी धार्मिक न हो पाओगे--एक बात निश्चित! तुम संसार में कितने ही सफल हो जाओ, तुम कितना ही धन कमा लो, कितनी ही यश-प्रतिष्ठा, लेकिन तुम वस्तुतः असफल ही रह जाओगे। क्योंकि तुम्हारे भीतर कोई क्रांति घटित न हो सकेगी। और एक ही क्रांति है, वह भीतर की क्रांति है। बाहर तुम कितना पा लेते हो उसका बहुत मूल्य नहीं है; क्योंकि भीतर तो तुम बढ़ते ही नहीं, भीतर तो तुम बचकाने रह जाते हो। बाहर की साधन-सामग्री बढ़ जाती है, भीतर का मालिक कली की तरह बंद रह जाता है। और जब तक कली न खिले तब तक जीवन में कोई सुवास न होगी। स्वर्ग तो बहुत दूर, सुवास भी नहीं हो सकती। और भीतर की कली तब तक न खिलेगी जब तक तुम्हारी दृष्टि में यह रूपांतरण न आ जाए कि भूल मेरी है।
धर्म की शुरुआत होती है इस बोध से कि भूल मेरी है। ऐसा ही नहीं कि कभी- कभी भूल मेरी होती है। अगर कभी-कभी का तुमने हिसाब रखा तो कौन निर्णय करेगा? अगर तुमने सोचा कि कभी मेरी भूल होती है, कभी और की भूल होती है, तब तुम आधे-आधे ही रहोगे। यह सवाल नहीं है कि भूल किसकी होती है, भूल तो दूसरे की भी होती है। लेकिन धार्मिक दृष्टि का यह आधार है कि जब भी कहीं कुछ गड़बड़ हो रही है तो भूल मेरी है, पूर्णतः भूल मेरी है, समग्रतः भूल मेरी है। ऐसे बोध के आते ही अहंकार गिर जाता है और तुम्हारे भीतर एक क्रांति शुरू हो जाती है, तुम बदलना शुरू हो जाते हो।
पूरब और पश्चिम की दृष्टियों में यही भेद है। पश्चिम ने, दूसरे की भूल है, इस बात को इतने गहरे से अंगीकार किया है कि बड़े-बड़े दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान निर्मित हो गए हैं इसी आधार पर। अगर तुम फ्रायड के पास जाओ या फ्रायड के मनोविश्लेषक के पास, तो तुम्हारी बीमारी के लिए वह हमेशा किसी दूसरे को जिम्मेवार ठहराएगा। अगर तुम भयभीत हो तो वह तुम्हारे बचपन में खोजेगा कि शायद तुम्हारे पिता ने तुम्हें डराया हो। अगर तुम प्रेम करने में असमर्थ हो और तुम्हारे भीतर प्रेम नहीं खिलता, तो जरूर तुम्हारी मां ने कुछ किया होगा; तुम्हें प्रेम न दिया होगा, तिरस्कारा होगा, अंगीकार न किया होगा, तुमसे मां ने जल्दी ही अपना स्तन छुड़ा लिया होगा। लेकिन फ्रायड हमेशा भूल खोजेगा दूसरे में।
अब यह एक बहुत दुष्टचक्र है। अगर तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है इसलिए तुम क्रुद्ध हो, तो तुम्हारे क्रोध को बदलने का उपाय ही न रहा। क्योंकि तुम्हारे पिता को बदलना पड़े। हो सकता है, पिता स्वर्गवासी हो गए हों। मौजूद भी हों, तो भी अगर तुम्हारे पिता फ्रायड के पास जाएं तो उनको भी वह यही समझाएगा कि तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ कुछ गलत किया होगा; तुम्हारी मां ने, बचपन में किसी दूसरे ने, समाज ने, परिवेश ने कुछ किया होगा। पर मूल आधार यह है कि भूल तुम्हारी नहीं हो सकती। भूल सदा किसी और की होगी। और अगर इस तरह तुम पीछे चलो तो तुम पाओगे कि फ्रायड जैसे व्यक्ति के मन में भी ईसाइयत का बहुत ही पुराना सिद्धांत काम कर रहा है। वह यह है कि आदम ने मूल पाप किया; उसका फल आदमी भोग रहे हैं।
ईसाइयत की धारणा यह है कि तुम अगर दुख पा रहे हो तो वह आदम के पाप का फल
है; पहले आदमी का। और अगर हम फ्रायड को--जो कि ईसाई नहीं मालूम पड़ता--अगर

उसकी चिंतन-धारा को भी उसके ठीक अंत तक खींच कर ले जाएं तो उसका परिणाम यही होगा। तुम्हारी गलती तुम्हारे पिता पर, तुम्हारे पिता की गलती उनके पिता पर, उनके पिता की गलती उनके पिता पर, अंततः आदम पकड़ में आएगा। और आदम को बदलने का अब क्या उपाय है? तो इसका अर्थ यह हुआ कि बदलाहट हो ही नहीं सकती। इसलिए फ्रायड का प्रभाव जितना पश्चिम में बढ़ता चला गया उतनी ही धार्मिक क्रांति की संभावना क्षीण होती चली गई। बदलोगे कैसे? तुम्हारा कोई कसूर नहीं है, तुम्हारी कोई भूल नहीं है। भूल किसी और की है। और जब तक और न बदल जाए तब तक तुम बदल नहीं सकते।
अब यह बहुत आश्चर्य की बात है--और इसे मैं कहता हूं कि धारणाएं अचेतन
से काम करती हैं--फ्रायड चाहे कितना ही बचना चाहे यहूदी और ईसाई धारणाओं से, वे उसके अचेतन में छिपी हैं। उसने कभी नहीं कहा कि आदम के पाप का फल हम भोग रहे हैं। लेकिन उसने जो सिद्धांत बनाया उसका तार्किक निष्कर्ष यही होता है।
मार्क्स है, जो कि अपने को बिल्कुल धर्म-विरोधी समझता है, ईसाइयत का कट्टर दुश्मन समझता है, लेकिन उसकी भी धारणा वही है कि जब भी कहीं कोई भूल है, समाज जिम्मेवार है, तुम नहीं। कोई और जिम्मेवार है। और जब तक समाज न बदलेगा तब तक तुम न बदल सकोगे। और समाज कब बदलेगा? तुम थोड़ी देर के लिए हो; समाज कब बदलेगा? और तुम अगर समाज के बदलने के लिए प्रतीक्षा किए तो तुम तो मिट्टी में मिल जाओगे। समाज तो सदा रहेगा; तुम आज हो कल नहीं होओगे।
और समाज बदलेगा कब? दस हजार साल का तो इतिहास हमारे सामने है; समाज कभी बदला नहीं। बदल कर भी नहीं बदला। बड़ी-बड़ी बदलाहटें हो गईं और समाज का मूल रूप वही का वही रहा। समाज की बदलाहट तो ऐसी ही लगती है जैसे ऊपर-ऊपर के रंग बदल जाते हैं और भीतर की आत्मा पर कोई स्पर्श नहीं होता। गिरगिट जैसी है बदलाहट समाज की। गिरगिट रंग बदलता रहता है, लेकिन गिरगिट गिरगिट है। भीतर वही रहता है; बाहर के रंग बदल जाते हैं। समाज कब बदलेगा?
अंग्रेजी में एक शब्द है, उटोपिया। उटोपिया उस परिकल्पित समाज के लिए दिया गया नाम है जो कभी होगा, जिसको गांधी रामराज्य कहते हैं। उटोपिया शब्द बड़ा मूल्यवान है। वह जिस लैटिन मूल धातु से आता है उसका अर्थ होता है नो व्हेयर। उटोपिया का मतलब होता है नो व्हेयर, जो कहीं है ही नहीं और न कहीं होगा; सिर्फ ख्याल में है। रामराज्य का अर्थ होता है, जो न था कभी, न है और न कभी होगा; कल्पना है।
तुम रामराज्य की प्रतीक्षा करोगे अपनी बदलाहट के लिए? जब सब ठीक हो जाएगा तब तुम बदलोगे?
फिर तुम कभी न बदल पाओगे। फिर तो यह तरकीब हो गई आत्मा के रूपांतरण से बचने की। न बदलेगा समाज, न तुम्हें बदलने की जरूरत होगी। यह तो तुम्हें बहाना मिल गया। और बहाने तो तुम बहुत चाहते हो। क्योंकि रूपांतरण कष्टप्रद है; रूपांतरण तपश्चर्या है; यात्रा दुरूह है। क्योंकि यात्रा पहाड़ की तरफ जाती है, वह ढलान की तरफ नहीं है। वासनाएं ढलान की तरफ हैं। वासनाओं में उतरने के लिए तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता; पानी जैसे नीचे की तरफ बहता है ऐसे तुम वासनाओं में बहते चले जाते हो। जैसे एक पत्थर लुढ़कता है पहाड़ के शिखर से और खाई की तरफ चला जाता है। कुछ पत्थर को करना नहीं पड़ता; जमीन का गुरुत्वाकर्षण ही सब कर देता है। लेकिन पत्थर को चढ़ाना हो पहाड़ पर, तब श्रमसाध्य हो जाता है। शिखर पर पहुंचना हो तुम्हें जीवन के, तो तपश्चर्या!
लेकिन ये बहाने, कि जब पूरा समाज बदलेगा तभी तो तुम बदल सकोगे, फिर तुम्हें कभी न बदलने देंगे। और ऐसा समाज कभी होने वाला नहीं है। मान लें, सिद्धांततः, तर्क के लिए कि ऐसा समाज किसी दिन हो जाएगा, तो मैं तुमसे कहता हूं, अगर ऐसा समाज हो गया और फिर तुम बदले तो वह बदलाहट दो कौड़ी की होगी। पहली तो बात, ऐसा समाज कभी होगा नहीं। दूसरी बात, अगर ऐसा समाज कभी हो और तब तुम बदलो तो तुम्हारी बदलाहट दो कौड़ी की होगी। क्योंकि उसका अर्थ यह होगा कि समाज के कारण तुम बुरे थे, अब समाज के कारण भले हो; न तुम अपने कारण बुरे थे, न अपने कारण भले हो। इससे तुम्हारी आत्मा कैसे पैदा होगी? सभी लोग अच्छे हैं, इसलिए तुम अच्छे हो; सभी लोग बुरे थे, तुम भी बुरे थे। तुम लोगों

की छाया हो। तुम्हारे पास आत्मा कैसे होगी? तुम केवल लोगों की प्रतिगूंज हो। तुम्हारे पास अपना स्वर कैसे होगा?
और आत्मा का अर्थ होता हैः तुम कुछ हो, तुम्हारे भीतर कुछ सघन-चेतना है। और सघन-चेतना का एक ही अर्थ है कि विपरीत परिस्थिति में भी तुम तुम ही रहोगे। परिस्थिति तुम्हें न बदल सकेगी, यही तो आत्मा का अर्थ है।
इसलिए मार्क्स, फ्रायड आत्म-क्रांति को भयानक रूप से हानि पहुंचाने वाले विचारक हैं। क्योंकि वे दूसरे पर दोष डाल देते हैं। और इसे कोई कभी नहीं सोचता कि तुम किसको दोषी ठहराओ।
समझो, एक सात मंजिल मकान है और एक आदमी खिड़की से कूद कर आत्महत्या कर लिया। कौन दोषी है? फ्रायड से पूछो, वह बचपन में खोजेगा। वह यह न कहेगा इस आदमी ने आत्महत्या की है; वह खोजेगा बचपन में। कोई बचपन का ट्रॉमा, कोई बचपन की दुखद घटना इसे आत्मघाती बना दी है। वह बचपन में जाएगा, और बचपन में वह मां-बाप की खोज करेगा। फ्रायड के जो बहुत गहरे अनुयायी हैं, उनमें एक है ओटो रैंक। वह तो बचपन में ही नहीं जाता, गर्भ की अवस्था तक जाता है कि गर्भ की अवस्था में कुछ घटा होगा--मां गिर पड़ी होगी, चोट खा गई होगी, दुखी हुई होगी, संतप्त हुई होगी--उसका घाव इस बच्चे पर रह गया।
अगर मार्क्स से पूछो तो वह कहेगा, कोई आर्थिक, सामाजिक, गरीबी होगी, दुकान का दिवाला निकलने के करीब है। मार्क्स खोजेगा धन में, फ्रायड खोजेगा अतीत स्मृतियों में। लेकिन सीधा यह आदमी जिम्मेवार है, कोई भी न कहेगा। और अगर हम इस तरह खोजने चलें तो बड़ी कठिनाई होगी।

कौन जिम्मेवार है? इसकी पत्नी जिम्मेवार है जो इसे घर में चौबीस घंटे कलह की अवस्था बनाए रखती है? या इसकी प्रेयसी जिम्मेवार है जो इसे पत्नी से अलग करने की कोशिश के लिए चौबीस घंटे लड़ती रहती है? या इसका बेटा जिम्मेवार है जो कि शराबी हो गया है और उसके कारण यह पीड़ित और परेशान है? या इसकी लड़की जिम्मेवार है? यह हिंदू है और लड़की ने एक मुसलमान से शादी कर ली है, जो इसके हृदय में छुरे के घाव की तरह चुभ गया है। या इसका धंधा जिम्मेवार है जो कि रोज गिरता जा रहा है और इसकी आर्थिक परिस्थिति उलझती जा रही है? या वह आर्किटेक्ट जिम्मेवार है जिसने खिड़की ठीक इसकी कुर्सी के पीछे बनाई? क्योंकि मनसविद कहते हैं कि अगर खिड़की बहुत दूर होती, उतने दूर चल कर जाता, उतनी देर में भी बदल सकता था भाव। खिड़की बिल्कुल पीछे थी। क्षण भर का मौका न मिला, भावावेश पकड़ा मरने का और मौका मिल गया, सीधी खिड़की थी, कूद गया। या वह मैनेजर जिम्मेवार है जिसने सातवीं मंजिल पर आफिस बनाने की जिद की और पहली मंजिल पर बनाने को राजी न हुआ? या बिजली की कंपनी जिम्मेवार है कि बिजली अचानक बंद हो गई, और इस आदमी का पंखा न चला, और वह पसीने से तरबतर हुआ, और परेशान था, और उस परेशानी के क्षण में यह आत्मघात पकड़ गया? या वह मक्खी जिम्मेवार है जो उसके चारों तरफ चक्कर लगा रही थी, उसके सिर को खाए जा रही थी? जिसको वह भगाने की कोशिश कर रहा था और भागने को वह राजी न थी। मक्खी बड़ी जिद्दी होती हैं। पिछले जन्मों में सभी मक्खियां हठयोगी रही हैं। उनको जहां से भगाओ, वहीं वापस लौट कर आती हैं। मक्खी ने उसे चिड़चिड़ा कर दिया। कौन जिम्मेवार है? अगर खोजने निकलोगे तो तुम पाओगे, सारा संसार जिम्मेवार है, सिर्फ इस आदमी को छोड़ कर। यह भी खूब खोज हुई। लेकिन पश्चिम का पूरा जोर इस बात पर है कि दायित्व दूसरे का है। क्योंकि पश्चिम में अहंकार को सबल करने की चेष्टा की गई है। पश्चिम का पूरा मनसशास्त्र, अहंकार को कैसे परिपक्व किया जाए, इसकी चेष्टा है। पश्चिम में मनसविद कहता है, अगर किसी का अहंकार परिपक्व न हो तो वह ठीक से प्रौढ़ नहीं हुआ। तो अहंकार परिपक्व होना चाहिए, आक्रामक होना चाहिए। और अहंकार के आक्रमण का यही अर्थ होता है कि सारी दुनिया जिम्मेवार है, सिर्फ मुझे छोड़ कर।
कुछ आश्चर्य नहीं है कि पश्चिम विक्षिप्त होता जो रहा है। कुछ आश्चर्य नहीं है कि पश्चिम में सब सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं, धन है, वैभव है, लेकिन आत्म-क्रांति संभव नहीं हो पा रही। एक पत्थर की तरह अटका है।

करीब आ गए हैं मंदिर के, लेकिन द्वार बिल्कुल बंद मालूम पड़ता है, दीवाल दिखाई पड़ती है।
फ्रायड ने अपने मरने के पहले एक वक्तव्य दिया और उसने कहा कि मुझे इस बात की कोई भी आशा नहीं कि मनुष्य कभी भी सुखी हो सकेगा। हो ही नहीं सकता। क्योंकि कारण अनंत हैं। और जब तक सब कारण ठीक न बैठ जाएं, और सारा अस्तित्व ठीक न हो जाए, तब तक कोई आदमी सुखी कैसे हो सकता है?
किसी ने फ्रायड को पूछा कि जब कोई आदमी सुखी ही नहीं हो सकता तो तुम लोगों की चिकित्सा क्या करते हो?
तो उसने कहा, हम इतना ही करते हैं कि लोग सामान्य रूप से दुखी रहें, असामान्य रूप से दुखी न हो जाएं। बस, इससे ज्यादा हम कोई अपेक्षा नहीं करते। सामान्य रूप से दुखी रहें, असामान्य रूप से दुखी न हो जाएं। बस हम थोड़ा सा दुख कम कर सकते हैं, सुख की तो कोई संभावना नहीं।
और यहां पूरब में हमने बिल्कुल उलटी ही बात कही कि सुख तो दूर, सुख का
भी कोई मूल्य है, आनंद की संभावना है। आनंद का अर्थ है महासुख। आनंद का अर्थ है ऐसा सुख जो शुरू तो होता है, लेकिन अंत नहीं होता। आनंद का अर्थ है ऐसा सुख जो शाश्वत है। जिसकी फिर अहर्निश वर्षा होती रहती है; फिर कभी प्यासा नहीं होता कोई उसे पाकर, एक दफा पी लिया जिसने आनंद का जल वह सदा के लिए तृप्त हो जाता है, सदा-सदा के लिए। सुख तो क्षणभंगुर है; अभी है, अभी खो जाएगा। उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। पानी पर खींची गई लकीर है, बनी भी नहीं कि मिट जाएगी। और कितनी ही चेष्टा करो, मिट ही जाएगी। उसे बचाने का उपाय नहीं है। सुख का स्वभाव नहीं कि वह बचे। यहां पूरब में लोग हुए जिन्होंने कहा कि सुख की तो बात ही छोड़ो, सुख तो दो कौड़ी का है, हम आनंद का आश्वासन देते हैं।
इस आश्वासन का आधार क्या है? इस आश्वासन का आधार है कि तुम दूसरे पर दायित्व मत डालो। जीवन की भूल-चूक को, जीवन के दुख-पीड़ा को, जीवन के संताप को किसी और के कंधे पर मत रखो। तुमने रखा कि फिर तुम दुखी ही रह जाओगे। क्योंकि उसी कोशिश में तुम्हारा अहंकार मजबूत होता जाएगा। और सुख की क्षीणता होती जाएगी। आनंद तो दूर, सुख भी न पा सकोगे। पूरब ने कुछ और ही बात कहीः सारी स्थिति का दायित्व अपने ऊपर ले लो; दायित्व लेते ही तुम्हारे भीतर आत्मा का जन्म शुरू हो जाता है।
किसी ने तुम्हें गाली दी। निश्चित ही, अगर उस आदमी ने गाली न दी होती
तो तुम्हें क्रोध न आया होता। यह सीधी-साफ बात है। तुम अपने रास्ते पर चले जा रहे थे गीत गुनगुनाते; क्रोध का सवाल ही न था, तुम बड़े प्रसन्न थे, पैरों में पुलक थी, अभी सुबह थी, रात विश्राम करके ताजा थे, स्नान करके घर से निकले थे, गीत गुनगुना रहे थे। एक आदमी ने गाली दे दी। साफ है कि इस आदमी की गाली ने तुम्हें क्रोधित किया।
लेकिन नहीं, जल्दी मत करना। इतना साफ नहीं है। क्योंकि पूरब यह कहता
है कि अगर क्रोध तुम्हारे भीतर न होता तो इस आदमी की गाली निष्फल चली जाती; यह गाली तो देता, लेकिन तुम्हारे भीतर गाली कहीं छिद न सकती थी; इसका तीर आर-पार निकल जाता। तुम्हारे भीतर क्रोध न होता तो क्रोध यह आदमी पैदा नहीं कर सकता था। इसलिए मूल कारण यह आदमी नहीं है; निमित्त से ज्यादा नहीं है। पश्चिम इसको कहता है मूल कारण; पूरब इसको कहता है निमित्तमात्र।
ऐसा ही समझो कि तुमने एक कुएं में बाल्टी डाली। कुएं में पानी ही न था। अब तुम क्या करोगे? थोड़ी देर खखोड़ोगे, आवाज करोगे, खींच कर वापस अपनी खाली बाल्टी लिए घर चले जाओगे। तुम्हारे भीतर क्रोध न हो, किसी ने गाली की बाल्टी तुम्हारे भीतर डाली; क्या भर लेगा? क्या निकाल लेगा? बाल्टी खाली लौट आएगी। कुएं में पानी होता है तो बाल्टी पानी निकाल सकती है। इसलिए बाल्टी पानी निकालती है यह सिर्फ निमित्त है; कुएं में पानी होता है तो ही निकालती है। मूल कारण कुएं में पानी का होना है।
कितना ही तुम गीत गुनगुना रहे हो, गीत ऊपर-ऊपर है; नीचे क्रोध चल रहा है, भभक रहा है। जरा सी गाली! बारूद मौजूद है, कोई चिनगारी फेंक दे जरा सी, बस विस्फोट हो जाता है। चिनगारियों से विस्फोट नहीं होते, जो बारूद तुम

अपने भीतर लेकर चलते हो उससे ही विस्फोट होते हैं। तुम बड़ी बारूद लिए चल रहे हो। कारण वहां है।
तो जब कोई तुम्हें गाली दे तो दो उपाय हैं। या तो तुम जिम्मेवार उसे समझो कि इस आदमी ने क्रोधित करवा दिया! या तुम अपने को जिम्मेवार समझो कि मेरे भीतर क्रोध था, इस आदमी की बड़ी कृपा कि गाली देकर भीतर का दर्शन करवा दिया। तब तुम शत्रु को धन्यवाद दे सकोगे। और जिस दिन तुम शत्रु को धन्यवाद दे सकोगे कि तुम्हारी बड़ी कृपा है, मुझे तो पता ही नहीं था, मैं गीत गुनगुना रहा था--इस गीत की गुनगुनाहट में हम भूले ही रह जाते--तुमने भीतर की आग दिखा दी, धन्यवाद! जैसे ही तुम अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेते हो, पहली दफे तुम्हारे भीतर व्यक्तित्व का जन्म होता है। तुम स्वतंत्र हुए। तुमने यह कहा कि मैं कारण हूं। तुमने मालकियत अपने हाथ में ले ली; मालिक दूसरा न रहा।
इस बात को ठीक से समझ लेना। जब भी तुम दूसरे को जिम्मेवार ठहराते हो, तुम दूसरे को मालिक बना रहे हो। दूसरा गाली देता है तो तुम क्रोधित हो जाते हो। दूसरा स्वागत करता है तो तुम प्रसन्न हो जाते हो। दूसरा फूलमाला चढ़ाता है तो तुम्हारे आनंद का अंत नहीं है, और दूसरा जरा सा हंस देता है व्यंग्य में, और तुम्हारे सब भवन गिर जाते हैं। तो दूसरा मालिक है। फ्रायड और मार्क्स और वे सारे लोग जो कहते हैं दूसरा जिम्मेवार है, वे तुम्हारी मालकियत छीने ले रहे हैं, वे तुम्हें गुलाम बना रहे हैं। फ्रायड और मार्क्स की सारी धारणा मनुष्य को गुलाम और गहरा गुलाम बनाएगी, आत्मवान नहीं। मालकियत तुम्हारे हाथ में होगी कैसे? जब सब चीजों के लिए दूसरा जिम्मेवार है तो तुम कौन हो? तुम तो लहरों पर हवा के झोंकों में भटकते हुए एक लकड़ी के टुकड़े हो। जब लहर पूरब जाती, तुम पूरब जाते; हवा दक्षिण जाती, तुम दक्षिण जाते; हवा नहीं चलती, तुम वहीं पड़े रह जाते हो जहां हवा छोड़ देती है। तुम कौन हो? तुम्हारा होना कहां है? तुम्हारे अस्तित्व की अभी पहली खबर भी तुम्हें नहीं मिली, और तुम्हारी आत्मा ने मालकियत का अभी तक कोई दावा नहीं किया, कोई उदघोषणा नहीं की।
जिस क्षण तुम कहते हो कि जिम्मेवार मैं हूं, तुम मालिक बनने शुरू हो गए, तुम्हारे भीतर रूपांतरण शुरू हुआ। अब न केवल सुख में, न केवल दुख में, हर हालत में, कोई भी मनोदशा हो, तुम ही अपने को कारण समझोगे। उपनिषदों में ऋषि कहते हैं कि कोई अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करता; पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। कोई पुत्रों को प्रेम नहीं करता; पुत्रों के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। प्रेम हो, घृणा हो; सुख हो, दुख हो; क्रोध हो, करुणा हो; हर हालत में तुम अपने पर ही लौट आते हो।
यह पूरब की गहनतम खोज है। तुमसे ही तुम्हारा प्रारंभ है, और तुम पर ही तुम्हारा अंत है। जिस दिन तुम यह जान लोगे, पहचान लोगे... ।
और कोई कठिनाई नहीं है, सारा जीवन इसका शास्त्र है। थोड़ा पढ़ना सीखो। थोड़े शब्दों के अर्थ सीखो। थोड़े जीवन के संकेत को पहचानो। और तुम जान लोगे कि तुम ही मालिक हो। फिर तुम्हारी मर्जी, तुम्हें क्रोधित होना हो क्रोधित हो जाना, लेकिन जिम्मेवार दूसरे को भूल कर मत ठहराना।
और तब तुम पाओगे तुम क्रोधित भी नहीं हो सकते। क्योंकि क्रोध तभी संभव है जब दूसरा जिम्मेवार हो। नहीं तो क्रोध किस पर करना? किस कारण करना? धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन का वैमनस्य गिरने लगा। तुम समझौता नहीं करते, न ही तुम किन्हीं शर्तों पर किसी तरह की शांति की व्यवस्था करते हो; तुम बेशर्त अपने मालिक हो जाते हो, और दूसरे पर से सारी जिम्मेवारी हटा लेते हो। तुम अपने संसार खुद हो जाते हो। तुम्हारे जीवन में केंद्र का जन्म हो जाता है। एक आधारभूत स्थिति तुम्हारे भीतर बनने लगती है। इसी आधारभूत स्थिति पर फिर तुम्हारे जीवन के सारे स्वर्ग का आरोहण, जीवन के सारे संगीत का जन्म संभव हो पाता है।
मत ठहराओ किसी और को दोषी। मत ठहराओ किसी और को उत्तरदायी। सब तरफ से उत्तरदायित्व खींच लो। अपने केंद्र स्वयं हो जाओ। तब तुम्हारे जीवन में क्रांति संभव है। इससे कम पर क्रांति न होगी। और तुमने और तरह के तो सब उपाय किए हैं। दूसरा गाली देता है; तुम अपने को समझाते हो कि झगड़ा करना

उचित नहीं, असभ्य है, शिष्टाचार के विपरीत है। लेकिन ऊपर से चाहे तुम झगड़ा न करो, भीतर झगड़ा शुरू हो गया। कोई अपमान करता है; तुम सोचते हो कि अरे छोड़ो भी, कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी निकल जाता है।
यह तो अहंकार का विचार हुआ--कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी निकल जाता है। तुम हाथी हो; बाकी लोग कुत्ते हैं। यह कोई बड़ी समझदारी की बात न हुई। यह तो बड़ा अहंकार हुआ। और दोषी तो तुम ठहरा ही रहे हो। अपने को समझा रहे हो कि दूसरे कुत्ते हैं, तुम हाथी हो। ऐसा संतोष पैदा कर रहे हो।
यह संतोष काफी संतोष नहीं है। इस संतोष के भीतर असंतोष छिपा है; जल्दी
ही प्रकट हो जाएगा। तुम ज्यादा देर शांत न रह सकोगे। यह शांति थेगड़े वाली शांति है; ये थेगड़े छिपा न सकेंगे तुम्हारी अशांति को। सच तो यह है, ये और बुरी तरह प्रकट करेंगे।
ऐसा हुआ कि एक भिखमंगा एक घर के द्वार पर भीख मांग रहा था। उसकी कमीज फटी थी। गृहिणी को दया आ गई और उसने कहा कि तुम्हारी कमीज निकाल दो; जब तक तुम भोजन करोगे तब तक मैं तुम्हारी कमीज सी दूं। फटी कमीज। क्यों फटी कमीज पहने फिर रहे हो? उस आदमी ने कहा कि नहीं, क्षमा करें। आपकी बड़ी कृपा, लेकिन कमीज सीने को मैं न दे सकूंगा। गृहिणी हैरान हुई। उसने कहा, बात क्या है? उस आदमी ने कहा कि थेगड़े से तो गरीबी बहुत जाहिर होती है; थेगड़े का तो मतलब है कि घर से ही फटी कमीज पहन कर निकले हैं। फटी कमीज से तो इतना ही हो सकता है कि रास्ते में फट गई हो; घर जाकर बदल लेंगे। फटी कमीज से पक्का नहीं लगता कि आदमी गरीब है। फटी कमीज से तो इतना ही लगता है कि रास्ते में फट गई हो, कोई वृक्ष की टहनी में उलझ गई हो; घर लौट कर बदल लेंगे। लेकिन थेगड़ा लगी कमीज से तो गरीबी बिल्कुल जाहिर होती है। उसका मतलब घर से ही थेगड़ा लगा पहन कर निकले हैं। नहीं, उस आदमी ने कहा, गरीब हूं, लेकिन इतना गरीब नहीं कि दुनिया में जाहिर करता फिरूं कि घर से ही थेगड़ा लगी कमीज को पहन कर निकले हैं।
बुरा होना भी बेहतर है थेगड़े लगे भले होने से, क्योंकि थेगड़ों के पीछे बुरा होना प्रकट हो रहा है। बुरे आदमी में भी एक तरह की सच्चाई और प्रामाणिकता होती है जो थेगड़े लगे सज्जन में नहीं होती। थेगड़े मत लगाना। और तुमने सबने यह कोशिश की है, क्योंकि वह आसान लगता है। कमीज बदलना मंहगा काम है; थेगड़ा लगाना बहुत आसान है। क्रोध आता है तो लोग थेगड़े लगा लेते हैं; मूल को बदलने की फिक्र न करके समझा लेते हैं कि क्रोध कोई सज्जन का काम नहीं; समझा लेते हैं कि क्रोध हमें करना नहीं है; कसम ले लेते हैं कि हम क्रोध न करेंगे; क्रोध करेंगे तो अपने को दंड देंगे, उपवास रख लेंगे एक दिन का। यह सब थेगड़े लगाना है। मंदिर में भीड़ के सामने कसम ले लेंगे कि अब से मैं क्रोध न करूंगा।
ऐसे आदमियों को तुम जरा गौर से देखो। तो तुम तो कभी-कभी क्रोध करते हो, ऐसे आदमियों को तुम चौबीस घंटे क्रोध में तपता हुआ पाओगे। तुम्हारा तो कभी-कभी विस्फोट होता है, ऐसे आदमियों में तुम कभी क्रोध का विस्फोट न देखोगे, क्योंकि कसम ले ली है; लेकिन क्रोध इकट्ठा होता जाता है। दर पर्त जमता जाता है, पर्त-पर्त जमता जाता है। ऐसा आदमी क्रोधी हो जाता है। क्रोध नहीं करता, उसके होने का ढंग ही क्रोध हो जाता है। वह तुमसे भी ज्यादा जलता है। उसने थेगड़ा लगाने की कोशिश की।
हमेशा स्मरण रखोः जीवन को बदलना हो तो पत्तों को मत काटो, शाखाओं से
मत उलझो; जड़ की तरफ जाओ। जड़ कहां है? जड़ यहां है; दूसरे को दोषी ठहराना जड़ है। उसकी आड़ में तुम्हारा अहंकार खड़ा होता है। बस फिर जाल शुरू हो गया। फिर अहंकार और भी दूसरे को दोषी ठहराएगा। जितना दूसरे को दोषी ठहराएगा उतना अहंकार बड़ा होता जाएगा। अब तुम एक ऐसे उपद्रव में पड़े जिससे बाहर आना मुश्किल मालूम होगा।
लेकिन मुश्किल नहीं है, समझ के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं है। नासमझ के लिए बहुत मुश्किल है; क्योंकि नासमझ पत्तियां काटने लगेगा। अहंकार की जड़ तो न गिराएगा, अहंकार को सजाने में लग जाएगा। वह कहेगा, हाथी है, कुत्ते भौंकते रहते हैं।

तुम्हारे नीति के बहुत से वचन सिवाय अहंकार के अलंकरण के और कुछ भी नहीं हैं। तुम्हारे हितोपदेशों में सिवाय अहंकार को सजाने के और कुछ भी नहीं है। छोटे-छोटे बच्चों को तुम अहंकार देते हो। छोटे-छोटे बच्चों से तुम कहते हो कि देखो, इस तरह झगड़ना ठीक नहीं; तुम कुलीन हो! याद रखो, किस कुल में पैदा हुए हो! हाथियों के कुल में पैदा हुए हो और कुत्तों के भौंकने से नाराज हो रहे हो। छोटे-छोटे बच्चों को तुम अहंकार दे रहे हो कि यह तुम्हारे योग्य नहीं है कि तुम क्रोध करो। तुम जड़ नहीं काट रहे, तुम जड़ को बढ़ा रहे हो, पानी दे रहे हो। तुम बच्चे से कह रहे हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं। तुम बच्चे को कह रहे हो, तुम्हारा अहंकार इतना बड़ा है, तुम ऐसे बड़े कुल में पैदा हुए हो। देखो, तुम्हारे पिता, उनके पिता, कभी क्रोध नहीं किए, और तुम क्रोध कर रहे हो! तुम बच्चे को अहंकार दे रहे हो। और अहंकार जड़ है सारे उपद्रवों की, और तुम सोचते हो कि तुम उपद्रवों से बचा रहे हो बच्चे को।
लेकिन सारा जीवन ऐसा चल रहा है; इसलिए तो सारा जीवन एक कलह हो गया है। वहां शांति नहीं है। और अगर कभी शांति होती भी है तो बस थेगड़े वाली शांति होती है। भीतर कुछ और ही छिपा होता है; ऊपर-ऊपर थेगड़े हैं। तुम गौर से देखोगे तो अपने को पाओगे कि तुम भिखारी की गुदड़ी जैसे हो जिसमें थेगड़े ही थेगड़े लगे हैं। तुम्हारे भीतर कुछ भी साबित नहीं है; छेद और थेगड़े। इससे तुम आत्मवान कैसे बनोगे!
लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करो।
"भारी वैर में सुलह के बाद भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है। पैचिंग अप ए ग्रेट हेट्रेड इ.ज श्योर टु लीव सम हेट्रेड बिहाइंड।"
अगर घृणा में तुमने थेगड़े लगाए तो कुछ न कुछ घृणा पीछे शेष रह जाएगी।
रह ही जाएगी। थेगड़े में छिप जाएगा फटा हुआ कपड़ा; मिट तो न जाएगा। अगर तुमने दुश्मन से सुलह करने की कोशिश की तो सुलह के भीतर सुलगती आग सदा ही बनी रहेगी। सुलह का मतलब ही होता है कामचलाऊ। सुलह का मतलब यह होता है कि अभी लड़ने का ठीक समय नहीं। सुलह का मतलब यह होता है कि अभी परिस्थिति इस योग्य नहीं कि लड़ो। सुलह का मतलब होता है लड़ाई को कल पर टालना। ठीक अवसर पर, ठीक मौके पर, जब तुम्हारा हाथ ऊपर होगा तब तुम देख लोगे। इसलिए दुनिया में कितनी शांति-संधियों पर हस्ताक्षर होते हैं! और सब शांति-संधियां युद्धों में नष्ट होती हैं। जब शांति-संधियों पर हस्ताक्षर होते हैं तभी साफ रहता है कि युद्ध होने के करीब है। थेगड़े लगाए जाते हैं; राष्ट्र भी लगाते हैं, व्यक्ति भी लगाते हैं। सब अपना-अपना चेहरा बचाने की कोशिश में होते हैं। जब तुम ताकतवर हो जाते हो तब तुम फिक्र छोड़ देते हो; फिर चेहरा बचाने की कोई जरूरत नहीं।
जर्मनी ने शांति-संधि पर हस्ताक्षर किए पहले महायुद्ध के बाद, सिर्फ इसलिए किए कि कमजोर पड़ गया, युद्ध ने जराजीर्ण कर दिया। लेकिन वह सिर्फ तैयारी के लिए था। बीस साल लगे तैयार होने में; फिर दूसरा युद्ध खड़ा हो गया। यह उसी दिन जाहिर था, क्योंकि सुलह के भीतर सुलगती हुई आग थी।
पाकिस्तान और हिंदुस्तान कितने ही शिमले-समझौते करें। सब थेगड़े हैं। क्योंकि भीतर सुलगती हुई आग है। मिलते भी हैं, हाथ भी बढ़ाते हैं, तो भीतर दुश्मनी है।
राजनीतिज्ञ मिलते हैं तो मुस्कुराते हैं; भीतर तलवारें छिपी हैं।
मुस्कुराहटों में जो चमक है वह तलवारों की है; वह कोई हृदय की नहीं है। और भीतर तैयारी चल रही है। भीतर तैयारी चल रही है सारी दुनिया में हर घड़ी युद्ध की; और हर घड़ी शांति की बातें हो रही हैं। राजनीतिज्ञ कबूतर उड़ा रहे हैं शांति के; और रोज फैक्टरियां बड़ी करते जा रहे हैं युद्ध के सामान की। भीतर बम बन रहे हैं; जमीन के नीचे सुरंगें बिछाई जा रही हैं; ऊपर कबूतर उड़ाए जा रहे हैं। किसको धोखा दिया जाता है? सारे राजनीतिज्ञ शांति की बात करते हैं; फिर युद्ध क्यों होता है? बड़ी बेबूझ बात मालूम पड़ती है। जब सारे ही दुनिया के राजनीतिज्ञ शांति के पक्ष में हैं तो युद्ध कौन करवा रहा है? नहीं, वे कहते हैं कि शांति के लिए युद्ध करना जरूरी है। वहीं सारा जाल है; शांति के लिए युद्ध करना जरूरी है। युद्ध मालूम होता है मूल चीज

है। शांति तो दो युद्धों के बीच का समय है, जब लोग युद्ध की तैयारी करते हैं। बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। अभी तीसरा महायुद्ध भभक रहा आदमी के भीतर। कभी थोड़ा सा विस्फोट वियतनाम में होता है, कभी इजरायल में होता है, कभी बंगला देश में होता है। ये छोटे-छोटे विस्फोट हैं। ये आने वाले महा विस्फोट की खबरें हैं। ये छोटे-छोटे धक्के हैं भूकंप के। किसी भी दिन महा विस्फोट हो सकता है, और सारा मनुष्य अग्नि में समाहित हो सकता है। और राजनीतिज्ञ शांति की बातें किए चले जाएंगे। और शांति की सभाएं होती रहेंगी; कबूतर उड़ते रहेंगे। जैसे कि कबूतर उड़ाने से कोई शांतियां होती हैं। कबूतर और बम को कैसे जोड़ोगे? लेकिन आदमी के अंधेपन का कोई अंत नहीं है।
और यही दशा व्यक्ति-व्यक्ति की है। तुम पड़ोसी को देख कर मुस्कुराते हो, नमस्कार करते हो। ये सब थेगड़े हैं। भीतर कलह है; मुस्कुराहट कलह को छिपाने का ढंग है। मुस्कुराहट का मतलब ही यह है कि कुछ भीतर उबल रहा है जिसको छिपाना जरूरी है। तुम्हारी जयरामजी के पीछे भी आग है। अगर गौर से देखोगे, अगर अपना थोड़ा निरीक्षण करोगे, तो तुम पाओगे। और तुमने जितनी सुलह कर ली हैं, हर सुलह के पीछे वैर शेष रह गया है। वह इकट्ठा होता जा रहा है। उसकी राख जमती जा रही है। वह राख तुम्हारी कब्र बन जाएगी। इससे तो बेहतर था वैर को निकल ही जाने देते। जो होता होता, थेगड़े तो न लगाते। लेकिन थेगड़े लगाना समझदारी मालूम पड़ती है।
मैं तुमसे कहता हूं, या तो वैर को निकल ही जाने देना, या तो लड़ ही लेना। कबूतर क्यों उड़ाना? कबूतरों का क्या कसूर? उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? या तो लड़ ही लेना, लेकिन प्रामाणिकता से। और या प्रामाणिकता से जड़ काट देना संघर्ष की। और मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम लड़ने को प्रामाणिकता से राजी हो जाओ तो तुम जड़ काट दोगे। क्योंकि कौन लड़ना चाहता है? लड़ना तो सिर्फ विनाश है इस बहुमूल्य जीवन का, जिसे तुम फिर से न पा सकोगे; जो फिर से मिलेगा, पक्का नहीं है। क्योंकि कोई मरा हुआ आदमी लौट कर नहीं कहता। इस अमूल्य अवसर को, जो तुम्हें यूं ही मिला है, तुम वैर में गंवाओगे? नहीं, अगर तुम ठीक प्रामाणिक हो जाओ और लड़ने में प्रामाणिक हो जाओ, तो तुम अचानक पाओगे लड़ने में कोई अर्थ नहीं है।
लेकिन लड़ने को तुम छिपाए रखते हो; ऊपर-ऊपर शांति की पर्त बनाए रखते हो। यह शांति की पर्त ही खतरनाक है। इसकी वजह से तुम अपनी असलियत को नहीं देख पाते कि तुम्हारे भीतर घृणा की कितनी मवाद है। उसको नहीं देख पाते, वह भीतर बढ़ती रहती है। अगर तुम देख लो तो तुम खुद ही उसका आपरेशन करने को राजी हो जाओगे। वह तो कैंसर है।
मेरा अनुभव है, अगर कोई पति अपनी पत्नी से दिल खोल कर लड़ लेता है, पत्नी पति से दिल खोल कर लड़ लेती है, बादल जल्दी ही छंट जाते हैं, शांति हो जाती है। लेकिन वह शांति सुलह की नहीं है, वह शांति वास्तविक है। बादल आए और गए। तूफान उठा और गया। और तूफान के बाद की जो शांति है वह बड़ी प्रामाणिक है। जो पति-पत्नी लड़ते नहीं कभी, वे खतरनाक हैं। जो कभी साफ-साफ नहीं लड़ते; जो अपने बीच भी कूटनीति चलाते हैं, कि पत्नी को अगर पति को मारना हो तो बेटे की पिटाई करती है। यह कूटनीति है। मारना किसी को था, मारा किसी को। अक्सर बच्चे पिटते हैं दोनों तरफ से, क्योंकि वे कमजोर हैं और दोनों के बीच में खड़े हैं। पत्नी अगर पति से सीधा लड़ ले, उसके मन में जो उठा है उठ आने दे, छिपाए न... ।
लेकिन कैसे न छिपाए? क्योंकि पाठ पढ़ाया गया हैः सती-सावित्री होना है, सीता होना है। सीता को जंगल में फेंक आए राम, अकारण, जिसके लिए जरा भी कोई आधार नहीं है। एक धोबी ने कह दिया कि मैं कोई राम नहीं हूं, अपनी पत्नी से, कि तू रात भर घर से गायब रही और तुझे दूसरे दिन स्वीकार कर लूं। मैं कोई राम नहीं हूं कि बरसों सीता नदारद रही, कहां रही, क्या हुआ, कुछ पता नहीं, रावण ने क्या किया, क्या नहीं किया, कुछ मालूम नहीं, और फिर स्वीकार कर लिया। मैं कोई राम नहीं हूं। बस इतनी सी धोबी की बात पर! और कथा यह है कि राम अग्नि-परीक्षा भी ले चुके थे सीता की। वह भी व्यर्थ हो गई? इस एक मूढ़

के कहने पर सीता को फिंकवा दिया जंगल में। और सीता गर्भवती थी! और सीता ने कुछ भी न कहा।
ऐसे आरोपण किए गए हैं आदर्शों के तुम्हारे ऊपर। तो पत्नी सोचती है, सीता-सावित्री होना है, लड़ना कैसे? लेकिन लड़ना तो भीतर है, ऊपर-ऊपर सुलह है। ऊपर-ऊपर सीता है; भीतर-भीतर आग जल रही है। और पति को भी आदर्श सिखाए गए हैं। सच्चा तो किसी को नहीं होना है।
आदर्श झूठ के जन्मदाता हैं। जितने आदर्श तुम्हें सिखाए गए हैं उतने
ही अप्रामाणिक तुम हो गए हो। क्योंकि आदर्श का मतलब उसको पूरा करना है जो तुम नहीं हो; वैसा आचरण करना है जैसा तुम नहीं हो; वैसा व्यवहार करना है जो तुम नहीं कर सकते हो। आदर्श का मतलब ही यह होता है, तुम्हें अपने को दबाना है और आदर्श को प्रकट करना है। तुम एक झूठ हो गए हो। और तुम्हारा वह जो दबा हुआ रूप है वह प्रकट होगा जगह-जगह से, हजार ढंग से प्रकट होगा। मवाद को तुम भीतर कैसे रोकोगे? मलहम-पट्टी करके और ऊपर से एक फूल चिपका लोगे, इससे कुछ हल होने वाला है?
प्रत्येक पुरुष के आदर्श हैं। प्रत्येक स्त्री के आदर्श हैं। संघर्ष मुश्किल है। और तब असली संघर्ष शुरू होता है, जिसमें जीवन डूब जाते हैं। तब घड़ी-घड़ी कलह होती है। स्त्री बरतन भी रखती है तो जोर से। पति दरवाजा भी खोलता है तो दुश्मनी से। बेटे पिट जाते हैं, बेटियां कुट जाती हैं। और उनका जीवन भी उपद्रव के जाल में संलग्न हो जाता है। पति घर आता है तो डरा हुआ; पत्नी अपने से भयभीत हो जाती है कि कहीं कलह न हो जाए, फिर कहीं वही बात न निकल आए जो कल निकल आई थी। और वह निकलेगी, क्योंकि जिससे तुम बचना चाहते हो उससे बचना असंभव है। जिसे तुम दबाते हो वह उभरेगा। जिससे तुम भयभीत हो, जाहिर है कि वह तुमसे ज्यादा ताकतवर है, तभी तो तुम भयभीत हो। फिर कलह होती है। और कलह को ऊपर से हम थेगड़ों से ढांकते जाते हैं। फिर जीवन का प्रेम ही नष्ट हो जाता है। क्योंकि जहां प्रामाणिकता न रही वहां प्रेम कैसा?
मैं तुमसे कहता हूं, ऐसा भूल कर मत करना। किसी को सीता नहीं होना है।
एक सीता काफी है। किसी को राम बनने की जरूरत नहीं है। नहीं तो धोबी तुम्हें परेशान करेंगे। तुम्हें तुम्हीं होना है, और तुम्हें प्रामाणिकता से होना है। और तब एक अनूठा जीवन में रहस्य खुलता है। अगर पति-पत्नी दिल खोल कर कलह कर लेते हैं; जो कहना है कह लेते हैं। स्वभावतः, जीवन में धूल इकट्ठी होती है। चौबीस घंटे साथ रहने से कलह भी होती है, संघर्ष भी होता है। मन मेल भी नहीं खाते कभी, बड़े से बड़े प्रेमियों में भी विरोध हो जाता है। धारणाएं मेल नहीं खातीं, विचार मेल नहीं खाते। स्वाभाविक है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। क्रोध इकट्ठा होता है; धूल जमती है; धुआं आता है। निकालो! अगर तुम्हारा प्रेम समर्थ है तो इस सबको पार करके भी बचेगा। और निश्चित ही, अगर इस सबको पार करके तुम्हारा प्रेम बचेगा तो निखर कर बचेगा। और ये सब आएंगे और चले जाएंगे, आकाश तो बना रहता है। बादल आते हैं, घिरते हैं, तूफान उठते हैं, आकाश बना रहता है। आकाश डरता है बादलों से? भयभीत होता है? तुम्हारा प्रेम अगर है तो सब कलह के बादल आएंगे और चले आएंगे, और हर तूफान के बाद तुम पाओगे एक गहन शांति आ गई। वह शांति सुलह की नहीं है, वह शांति वास्तविक है। वह दो व्यक्तियों ने अपनी व्यर्थता को फेंक दिया; दो व्यक्ति शांत हो गए, और उस शांति में करीब आ गए। और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाएगा तब तुम पाओगे कि प्रामाणिक होने
का मजा कैसा है। प्रामाणिकता ही धर्म है। और तब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जितने तुम प्रामाणिक बनोगे और जितनी तुम्हारे जीवन में शांति, वास्तविक शांति--सुलह नहीं, सुलह झूठी शांति का नाम है--जितनी वास्तविक शांति के क्षण आने लगेंगे, जितना तुम्हारे जीवन में बादल हटने लगेंगे और खुले आकाश का दर्शन होगा, जितना तुम आकाश की नीलिमा में तिरने लगोगे, उतना ही तुम पाओगे कि हर क्रोध व्यर्थ था, हर संघर्ष बेबुनियाद था; तुम पीड़ा अपनी दूसरे के कंधों पर व्यर्थ ही डाल रहे थे।
उस शांति में ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा, क्योंकि शांति आंख है। उसमें
वे सब उलझनें साफ हो जाती हैं जो कि क्रोध से भरी आंखों में कभी साफ नहीं

हो सकतीं। तब तुम पाओगे कि जिम्मेवार तो तुम ही थे। तुम घर क्रोधित लौटे थे दफ्तर से; मालिक ने कुछ कहा था, दफ्तर की हालत कुछ थी। क्रोध से तुम भरे चले आए थे और पत्नी पर टूट पड़े थे। कोई भी छोटी बात पकड़ ली होगी कि रोटी क्यों जल गई। कोई भी छोटी बात पकड़ ली होगी कि तुम्हारा अखबार क्यों फट गया, कि तुम्हारी बटन क्यों नहीं सीयी गई है। यह छोटी सी बात बहुत बड़ी हो गई, क्योंकि भीतर तुम क्रोध से उबल रहे थे और बहाना खोज रहे थे। और अगर तुम इसको गौर से देखते जाओगे तो धीरे-धीरे पाओगे, दुनिया में कोई तुम्हें क्रोधित नहीं कर रहा है। तुम क्रोधित होना चाहते हो, दूसरे अवसर बन जाते हैं। कोट है तुम्हारे पास क्रोध का, खूंटी तुम किसी को भी बना लेते हो और टांग देते हो। जिस दिन यह तुम्हें दिखाई पड़ेगा उस दिन तुमने आत्मवान होना शुरू किया। तुम्हें किसी मंदिर जाने की जरूरत न आएगी, न किसी मस्जिद जाने की। तुम जहां हो, वहीं से तुम्हारी आत्मा का पहला सूत्रपात हो गया। तुम्हारा पुनर्जन्म शुरू हुआ।
लाओत्से कहता है, "वैर में सुलह के बाद भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है।"
यह सुलह किस काम की? क्योंकि जो बच गया है, जो अंगारा शेष रह गया है, वह फिर आग पैदा कर देगा। एक छोटी चिनगारी भी काफी है।
"इसे संतोषजनक कैसे कहा जा सकता है?"
सुलह से संतोष मत करना, शांति से संतोष करना। और सुलह और शांति का फर्क साफ समझ लेना। सुलह का अर्थ है, लड़ने से बचने की कोशिश; शांति का अर्थ है, लड़ने के पार हो जाना। शांति का अर्थ है, लड़ाई खो गई, लड़ाई का मूल कारण खो गया। सुलह का अर्थ है, मूल कारण मौजूद है, लेकिन लड़ाई करना अभी सुविधापूर्ण नहीं है; इसलिए सुलह कर ली। देखेंगे कल। लोग कहते हैं न झगड़े में, देख लेंगे। उसका मतलब यह है कि अभी सुविधा नहीं है, देख लेंगे वक्त पर, कभी मौके की तलाश रखेंगे। लोग जिंदगी भर मौके की तलाश करते हैं। निश्चित ही, उनके भीतर घाव बना रहता होगा हरा, सूखने न देते होंगे।
"इसलिए समझौते में संत अपने को दुर्बल पक्ष मानते हैं, और दूसरे पक्ष
पर कसूर नहीं मढ़ते।"
संत का अर्थ ही यही है, जो दूसरे पर कसूर नहीं मढ़ता, हर हालत में अपना कसूर खोज लेता है। तुम हर हालत में दूसरे का कसूर खोज लेते हो। और मैं कहता हूं, हर हालत में। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि दूसरा क्या कर रहा है, तुम हर हालत में कसूर खोज लेते हो। कसूर खोजना ही चाहते हो, खोज ही लोगे। तुम्हें भलीभांति अनुभव से भी पता है कि जब तुम्हें कसूर ही खोजना हो, तब दुनिया में तुम्हें कोई ताकत रोक नहीं सकती कसूर खोजने से। कुछ न कुछ तुम खोज ही लोगे। कितना ही अतर्क्य मालूम पड़े, तर्कहीन मालूम पड़े, और कितना ही असंगत मालूम पड़े दूसरों को, तुम्हें नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन संत इससे ठीक विपरीत है।
कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए, आंगन-कुटी छवाय।
जो तुम्हारी निंदा करते हों उनको तुम मेहमान की तरह घर में ही रख लो, पास ही रखो उनको सदा। क्योंकि वे एक बहुत बड़ा काम करते हैं, वे हमेशा तुम्हें कसूरवार ठहराते हैं। और संत अपने कसूर के खोजने में लगा है। जो भी उसे बता दे उसकी भूल, वह तैयार है। क्योंकि जैसे ही वह अपनी भूल को देख लेता है वैसे ही बदलने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।
तुम अपनी भूलें बचा रहे हो; तुम अपने दोष बचा रहे हो; तुम अपने दोषों
की भी रक्षा करते हो। और तब अगर तुम्हारा जीवन नरक हो जाता है तो कौन जिम्मेवार है? तुमने गलत-गलत तो बचाया, तुमने सब इकट्ठा कर लिया; तुमने कभी स्वीकार ही न किया कि मुझमें कोई गलती है। इसलिए सब गलतियां बसती चली गईं। स्वीकार करते तो वे सब मिट सकती थीं। तुमने अगर शांत भाव से स्वीकार किया होता कि मैं क्रोधी आदमी हूं... । ध्यान रखना, अगर तुमने किसी दिन यह स्वीकार कर लिया कि मैं क्रोधी आदमी हूं तो तुम्हारा क्रोधी आदमी मरने लगा। क्योंकि कहीं क्रोधी यह स्वीकार करते हैं कि मैं क्रोधी? असंभव! तुमने अगर स्वीकार कर लिया कि मैं अहंकारी हूं, दंभी हूं--कहीं अहंकारी यह स्वीकार करते हैं? यह तो विनम्रता का सूत्रपात हो गया। यह तो विनम्रता के अंकुर निकलने लगे। तुमने अगर स्वीकार कर लिया कि मैं पागल हूं तो तुम

स्वस्थ होने लगे। क्योंकि पागल कहीं स्वीकार करते हैं? पागलों को समझा सकते हो कि तुम पागल हो? कोई उपाय नहीं।
मनसविद कहते हैं कि जब तक पागल को समझाया जा सके कि वह पागल है, और वह मानने को राजी हो, तब तक वह पागल नहीं है। रुग्ण होगा, लेकिन अभी पागल नहीं है। अभी इलाज बिल्कुल आसान है। लेकिन जिस दिन पागल को समझाना असंभव हो जाता है कि वह पागल है, उस दिन वह सीमा के बाहर चला गया। अब उसे वापस लौटाना बहुत मुश्किल है।
तुम मानते नहीं कि तुम क्रोधी हो। तुम मानते नहीं कि तुम लोभी हो। तुम मानते नहीं कि तुम कामी हो। तुम मानते नहीं कि तुम दंभी हो। तुम इन सबको बचा रहे हो। अब तुम खुद ही सोच लो, कांटों को बचाओगे तो नरक के अतिरिक्त कहां पहुंचोगे? वे कांटे तुम्हें चुभेंगे जो तुमने बचा लिए हैं। कोई अगर कहे कि यह कांटा लगा है, तो तुम उससे लड़ने को खड़े हो जाते हो। कबीर कहते हैं, आंगन-कुटी छवाय! उसको तो घर में ही बसा लो। क्योंकि कांटे बताता है तो निकालने की संभावना है।
लेकिन नहीं, तुम तो उनको आंगन-कुटी छवा कर रखते हो जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, खुशामद करते हैं। जो तुमसे कहते हैं कि अहो, तुम जैसा कभी कोई हुआ! ऐसा सुंदर, ऐसा शालीन, ऐसा गरिमापूर्ण! तुम तो प्रतिमा हो आदर्श की! उनको तुम घर रखना चाहते हो। और वे दुश्मन हैं। क्योंकि वे तुम्हें भ्रांति से भर रहे हैं। वे तुम्हें काट डालेंगे। उनका कोई प्रयोजन है। पहले वे तुम्हें फुलाएंगे; फिर अपना प्रयोजन पूरा कर लेंगे।
ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो खुशामद के चक्कर में न पड़ जाता हो। बहुत मुश्किल है। अगर तुम खोज लो कोई आदमी ऐसा जो खुशामद के चक्कर में न पड़ता हो, तो समझ लेना कि संत है। क्योंकि खुशामद के चक्कर में वही नहीं पड़ता जो अपने दोष देखना शुरू कर देता है। तुम उसको धोखा न दे सकोगे। उसे पता है कि वह क्रोधी है, और तुम कह रहे हो कि आप जैसा शांत पुरुष कभी देखा नहीं! आपके पास ही आकर आनंद की वर्षा हो जाती है! पास आते हैं ऐसा लगता है स्नान हो गया, चित्त शुद्ध हो जाता है! संत के पास जाकर, तुम्हें अगर संतों की पहचान करनी हो तो एक काम तुम कर सकते हो, यह कसौटी हैः उनकी स्तुति करना।
ऐसा हुआ, एक आदमी आया बायजीद को मिलने। बायजीद एक सूफी फकीर हुआ। और
वह आदमी बड़ी प्रशंसा करने लगा कि तुम सूफियों के सम्राट हो! फकीर बहुत देखे, पर तुमसे कोई तुलना नहीं! बायजीद सिर झुकाए बैठा रहा, और उसकी आंखों से आंसू गिरते रहे। शिष्य थोड़े हैरान हुए।
वह आदमी जा भी न पाया था कि एक और आदमी आ गया, और वह गालियां देने लगा
और बायजीद को अनाप-शनाप कहने लगा कि तुम शैतान हो और धर्म को नष्ट कर रहे हो! और तुम जो सिखा रहे हो यह शास्त्रों की शिक्षा नहीं है! तुम शैतान के ही दूत हो, परमात्मा के नहीं! और तुम मोहम्मद के खिलाफ हो! और उसने बड़ी गालियां दीं और बड़ी निंदा की। बायजीद के आंसू वैसे के वैसे बहते रहे; वह आंख झुकाए बैठा रहा।
दोनों चले गए। शिष्यों ने पूछा कि हम कुछ समझे नहीं, मामला क्या है? एक आदमी प्रशंसा कर रहा था तब भी आप रोते रहे और एक आदमी गाली दे रहा था तब भी रोते रहे। राज क्या है? यह बड़ा विरोधाभासी व्यवहार है।
बायजीद ने कहा, जो आदमी स्तुति कर रहा था तब मैं रो रहा था कि बेचारा, इसको कुछ भी पता नहीं। मेरी दशा मुझे पता है। मैं रो रहा था, क्योंकि मेरी दशा मुझे पता है कि मैं कैसा साधारण आदमी हूं। मुझे फकीर कहना भी उचित नहीं है। और यह कह रहा है तुम सम्राट हो फकीरों के। मैं रो रहा था, क्योंकि मुझे अपनी हालत का पता है।
तो शिष्यों ने पूछा, फिर आप क्यों रो रहे थे जब दूसरा आदमी आपकी निंदा
कर रहा था?
उसने कहा, तब भी मैं रो रहा था, क्योंकि वह बिल्कुल ठीक कह रहा था। यही मेरी हालत है जो वह कह रहा था। शिष्यों ने कहा, हम क्या करें? क्योंकि हमें पहला आदमी बिल्कुल ठीक लगा और दूसरा बिल्कुल गलत लगा। बायजीद ने कहा, दोनों की ठीक से सुनो, उससे तुम्हारे मन में संतुलन आएगा। क्योंकि एक पलड़े को नीचे झुका रहा है, एक ऊपर उठा रहा है। अगर तुम दोनों की बिल्कुल ठीक से

सुनोगे तो दोनों के मध्य में संतुलन आ जाएगा। बस मध्य में रुको; न स्तुति, न निंदा। वे दोनों एक-दूसरे के परिपूरक थे। ऐसा समझो कि वे एक ही आदमी की दो तस्वीरें थे। और दोनों--दोनों ही--गौर से सुनने योग्य हैं। और तुम एक को मत चुनना। तुम अगर पहले को चुनोगे तो भी तुमसे गलती हो जाएगी; क्योंकि तुम मेरे प्रति बहुत ज्यादा आशाओं से भर जाओगे। अगर दूसरे को चुन लोगे तो तुम भाग जाओगे और दुश्मन हो जाओगे। और जो मुझसे मिल सकता था, चूक जाओगे। तुम दोनों की बिल्कुल ठीक से सुन लो। और दोनों में चुनाव मत करना। दोनों एक-दूसरे को काट देंगे और तुम संतुलन को उपलब्ध हो जाओगे।
संत स्तुति में पीड़ा पाता है। क्योंकि स्तुति तो उनकी की जानी चाहिए
जो स्तुति से प्रभावित होते हैं। संत को तुम प्रभावित नहीं कर सकते। संत का अर्थ ही यह है कि जिसने सारे दोषों का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है। अब तुम उसे धोखा नहीं दे सकते। खुशामद वहां सार्थक नहीं है। वहां अगर तुम निंदा करते जाओ तो शायद स्वीकार भी कर लिए जाओ, स्तुति करते जाओ तो स्वीकार न हो सकोगे।
"संत अपने को हमेशा दुर्बल पक्ष मानते हैं जिसका कसूर है, और दूसरे पक्ष पर कसूर नहीं मढ़ते। पुण्यवान आदमी समझौते के पक्ष में होता है, पापी कसूर मढ़ने के पक्ष में।"
पापी की पूरी चेष्टा यह होती है कि वह सिद्ध कर दे कि तुम गलत हो। इसमें उसे बड़ा रस है, क्योंकि यही उसके पापी बने रहने का बचाव है, पापी बने रहने की सुरक्षा है, वह सदा कोशिश करता है कि तुम जिम्मेवार हो। पापी कसूर मढ़ने के पक्ष में है, पुण्यवान सदा समझौते के पक्ष में है। और सदा दोषी अपने को मानने को राजी है। पुण्यवान झुकने को राजी है, वह कोमल है जल की भांति। पापी झुकने को राजी नहीं, वह सख्त है पत्थर की भांति। इसलिए आखिर में उसे टूटना पड़ेगा; क्योंकि नम्य जीतता है, अनम्य टूटता है। पुण्यवान है छोटे बच्चे की भांति, ताजा, कोमल; पापी है बूढ़े की भांति। सभी पापी बूढ़े होते हैं। अंग्रेजी में मुहावरा हैः ओल्ड सिनर, बूढ़े पापी। असल में, सभी पापी बूढ़े होते हैं। कोई बच्चा पापी नहीं होता। पाप के लिए बड़ा अनुभव चाहिए, जीवन के उतार-चढ़ाव देखने चाहिए। पाप के लिए बड़ी शिक्षा चाहिए। सभी बच्चे पुण्यवान होते हैं।
असल में, पुण्य स्वभाव है, शिक्षा नहीं। पुण्य स्वभाव है, संस्कृति नहीं। पुण्य कोई सिखावन नहीं है, पुण्य तो स्वाभाविक ढंग है। पाप अनुभव है। और जितने ज्यादा लोग अनुभवी होते जाते हैं उतने पाप में कुशल होते जाते हैं, उतना झूठ, बेईमानी, उतना हिसाब-किताब, उतना गणित उनके जीवन में बैठने लगता है। उतना ही हृदय उनका नष्ट होता जाता है।
"लेकिन स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है।"
यह एक बहुत अनूठी बात कह रहा है, और बड़ी विरोधाभासी, लाओत्से।
"लेकिन स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है; वह केवल सज्जन का साथ देता है।"
दूसरे वचन से तो लगता है निष्पक्ष नहीं है। स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है; वह केवल सज्जन का साथ देता है। इसका तो मतलब हुआ कि सज्जन के पक्ष में है। निष्पक्ष कहां? ऐसा वचनः बट दि वे ऑफ हेवन इ.ज इंपार्शियल; इट साइड्स ओनली विद दि गुड मैन। इस विरोधाभासी वचन को समझने की कोशिश करना।
स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है; यहां तक तो कोई कठिनाई न थी। वर्षा पापी
पर भी होती है, पुण्यात्मा पर भी। सूरज निकलता है तो पापी को भी प्रकाश देता है, पुण्यात्मा को भी। फूल खिलते हैं तो पुण्यात्माओं के लिए ही नहीं खिलते, पापी के लिए भी खिलते हैं। अगर इतनी ही बात होती कि स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है तब तो कोई हर्ज न था। लेकिन दूसरे वचन में लाओत्से बड़े से बड़ा विरोधाभास खड़ा करता है। और लाओत्से लाजवाब है विरोधाभास खड़े करने में। वह कहता है, वह केवल सज्जन का साथ देता है। दूसरे वचन में लाओत्से कह रहा है, फूल खिलते हैं केवल पुण्यात्मा के लिए, सूरज निकलता है केवल पुण्यात्मा के लिए, रोशनी है पुण्यात्मा के लिए, वर्षा होती है पुण्यात्मा के लिए, पापी के लिए नहीं। क्या अर्थ होगा इसका?
इसका अर्थ सीधा है। और लाओत्से के वचन कितने ही टेढ़े-मेढ़े लगें, अगर तुम्हें जरा ही समझ हो तो उसकी कुंजी सीधी है। वह यह कह रहा है कि परमात्मा

तो निष्पक्ष है, सूरज निकलता है तो पुण्यात्मा के लिए ही नहीं निकलता, लेकिन पुण्यात्मा ही उसका लाभ ले पाता है; पापी तो आंखें बंद किए खड़ा रह जाता है। वर्षा होती है तो कोई परमात्मा पुण्यात्मा के लिए ही वर्षा नहीं करता, लेकिन पुण्यात्मा ही नाचता है उस वर्षा में; पापी तो घर के भीतर छिप जाता है।
कबीर ने कहा हैः चहुं दिशि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर।
पापी तो छिपे हैं अपनी-अपनी गुफाओं में, चारों तरफ चमकती है उसकी रोशनी, बिजलियां चमकती हैं; दास कबीर भीज रहा है। कुछ जीवन की बात ऐसी है कि फूल की सुगंध केवल फूल के खिलने से तुम्हें नहीं मिलती, तुम्हारे नासापुटों की तैयारी भी चाहिए। और तुम अगर मछलियों की ही गंध को सुगंध मानते रहे हो तो फूल खिलेंगे और तुम्हारे लिए नहीं खिलेंगे। नहीं कि तुम्हारे लिए नहीं खिले, बल्कि तुम खुद अपने हाथ से वंचित रह जाओगे। जिब्रान की एक छोटी सी कहानी है। एक आदमी एक रास्ते पर चलते-चलते गिर पड़ा; भरी दोपहरी थी; बेहोश हो गया। जिस राह पर बेहोश हुआ उस राह के दोनों तरफ गंधियों की दुकानें थीं, सुगंध बेचने वालों की दुकानें थीं। दुकानदार भागे, उनके पास जो श्रेष्ठतम गंध थी... । क्योंकि अगर श्रेष्ठतम गंध सुंघाई जाए तो बेहोश आदमी होश में आ जाता है। गंध उसके प्राणों तक चली जाती है, और बड़ी धीमी सी सरसराहट देती है उसकी चेतना को, और वह जाग जाता है। उन्होंने गंध सुंघाई, लेकिन वह आदमी हाथ-पैर तड़फाने लगा; होश में न आया। जब वे उसे गंध सुंघाएं तो वह और बेचैन मालूम पड़े। भीड़ इकट्ठी हो गई। एक आदमी भीड़ में खड़ा था। उसने कहा, ठहरो, तुम उसे मार डालोगे। मैं उसे जानता हूं, वह एक मछलीमार है और मछलियां बेचने का काम करता है। मैं भी पहले वही काम करता था। वह केवल एक ही गंध जानता है, वह मछलियों की सुगंध। उसकी टोकरी कहां है? पास ही भीड़ में उसकी टोकरी पड़ी थी। उस आदमी ने उस टोकरी पर थोड़ा सा, जिसकी मछलियां वह बेच आया था, टोकरी पर थोड़ा सा पानी छिड़का और उस आदमी के मुंह पर टोकरी रख दी। उसने गहरी सांस ली; होश में आ गया। और उसने कहा कि वह कौन है जिसने यह सुगंध मेरे पास लाई! ये तो मुझे मार डालते। ये लोग मेरी जान लिए ले रहे थे।
सूर्य निकलता है। किसी के लिए नहीं, सूर्य तो सिर्फ निकलता है। निष्पक्ष है। स्वर्ग का नियम निष्पक्ष है। मगर तुम अपनी आंखें बंद किए खड़े रह सकते हो। तो सूर्य तुम्हारी आंखें जबरदस्ती नहीं खोलेगा। जिनकी खुली आंखें हैं वे दर्शन कर लेंगे, उनके सिर नमस्कार में झुक जाएंगे; जिनकी आंखें बंद हैं वे वंचित रह जाएंगे।
इसलिए लाओत्से कहता है, स्वर्ग का राज्य और उसके नियम तो निष्पक्ष हैं, लेकिन वह केवल सज्जन का साथ देता है।
ऐसा नहीं कि वह सज्जन का साथ देता है, संत का साथ देता है, बल्कि ऐसा कि संत ही समझ पाता है कि उसके साथ कैसे हो जाएं। पापी तो लड़ता है धार से, उलटा बहता है, उलटा बहने की कोशिश करता है। बह तो नहीं सकता; हारेगा, थकेगा, टूटेगा। संत धार के साथ जाता है। पापी गंगोत्री की तरफ तैरता है; लड़ने में उसे मजा है। पुण्यात्मा गंगा के हाथ में अपने को छोड़ देता है; सागर की तरफ बहने लगता है।
परमात्मा के साथ होने का ढंग ही तो संतत्व है। जिसको वह ढंग आ गया, उसके लिए ही फूल खिलते हैं; उसके लिए ही चांद-तारे चलते हैं; उसके लिए सूरज निकलता है। उसके लिए जीवन एक धन्यता है, अहोभाव है।
तुम्हारे लिए भी वह सब हो रहा है, लेकिन तुम कुछ उलटे खड़े हो। और तुम्हें जो मिलता है तुम उसके प्रति भी धन्यवाद नहीं देते। इसलिए और जो मिल सकता था उससे वंचित रह जाते हो।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा अमीर आदमी था। उसने अपने गांव के सब गरीब लोगों के लिए, भिखमंगों के लिए माहवारी दान बांध दिया था। किसी भिखमंगे को दस रुपये मिलते महीने में, किसी को बीस रुपये मिलते। वे हर एक तारीख को आकर अपने पैसे ले जाते थे। वर्षों से ऐसा चल रहा था। एक भिखमंगा था जो बहुत ही गरीब था और जिसका बड़ा परिवार था। उसे पचास रुपये महीने मिलते थे। वह हर एक तारीख को आकर अपने रुपये लेकर जाता था।

एक तारीख आई। वह रुपये लेने आया, बूढ़ा भिखारी। लेकिन धनी के मैनेजर ने कहा कि भई, थोड़ा हेर-फेर हुआ है। पचास रुपये की जगह सिर्फ पच्चीस रुपये अब से तुम्हें मिलेंगे। वह भिखारी बहुत नाराज हो गया। उसने कहा, क्या मतलब? सदा से मुझे पचास मिलते रहे हैं। और बिना पचास लिए मैं यहां से न हटूंगा। क्या कारण है पच्चीस देने का? मैनेजर ने कहा कि जिनकी तरफ से तुम्हें रुपये मिलते हैं उनकी लड़की का विवाह है और उस विवाह में बहुत खर्च होगा। और यह कोई साधारण विवाह नहीं है। उनकी एक ही लड़की है, करोड़ों का खर्च है। इसलिए अभी संपत्ति की थोड़ी असुविधा है। पच्चीस ही मिलेंगे। उस भिखारी ने जोर से टेबल पीटी और उसने कहा, इसका क्या मतलब? तुमने मुझे क्या समझा है? मैं कोई बिरला हूं? मेरे पैसे काट कर और अपनी लड़की की शादी? अगर अपनी लड़की की शादी में लुटाना है तो अपने पैसे लुटाओ।
कई सालों से उसे पचास रुपये मिल रहे हैं; वह आदी हो गया है, अधिकारी हो गया है; वह उनको अपने मान रहा है। उसमें से पच्चीस काटने पर उसको विरोध है। तुम्हें जो मिला है जीवन में, उसे तुम अपना मान रहे हो। उसमें से कटेगा तो तुम विरोध तो करोगे, लेकिन उसके लिए तुमने धन्यवाद कभी नहीं दिया है। इस भिखारी ने कभी धन्यवाद नहीं दिया उस अमीर को आकर कि तू पचास रुपये महीने हमें देता है, इसके लिए धन्यवाद। लेकिन जब कटा तो विरोध।
जीवन के लिए तुम्हारे मन में कोई धन्यवाद नहीं है, मृत्यु के लिए बड़ी शिकायत। सुख के लिए कोई धन्यवाद नहीं है, दुख के लिए बड़ी शिकायत। तुम सुख के लिए कभी धन्यवाद देने मंदिर गए हो? दुख की शिकायत लेकर ही गए हो जब भी गए हो। जब भी तुमने परमात्मा को पुकारा है तो कोई दुख, कोई पीड़ा, कोई शिकायत। तुमने कभी उसे धन्यवाद देने के लिए भी पुकारा है? जो तुम्हें मिला है उसकी तरफ भी तुम पीठ किए खड़े हो। और इस कारण ही तुम्हें जो और मिल सकता है उसका भी दरवाजा बंद है।
निश्चित ही, परमात्मा का नियम तो निष्पक्ष है, लेकिन तुम नासमझ हो। और
जो तुम्हें मिल सकता है, जो तुम्हें मिलने का पूरा अधिकार है, वह भी तुम गंवा रहे हो। लेकिन वह तुम अपने कारण गंवा रहे हो; उसका जिम्मा परमात्मा पर नहीं है।
परमात्मा निष्पक्ष है; वह केवल सज्जन का साथ देता है।
सज्जन का साथ परमात्मा नहीं देता; वह तो चल रहा है, सज्जन उसके साथ हो लेता है; दुर्जन उसके विपरीत हो जाता है। दुर्जन हमेशा विपरीत चलने में रस पाता है, क्योंकि वहीं लड़ाई और कलह और वहीं अहंकार का पोषण है। सज्जन सदा झुकने में, समर्पण में रस पाता है, क्योंकि वहीं असली अहोभाव है, वहीं जीवन का संगीत और नृत्य और फूल, वहीं जीवन का स्वर्ग और जीवन की परम धन्यता है। वहीं आत्यंतिक अर्थों में जिसको महावीर और बुद्ध ने निर्वाण कहा है, उस निर्वाण की परम शांति है, उस निर्वाण का महासुख है।
आज इतना ही।

एक सौ पच्चीसवां प्रवचन

## राज्य छोटा और निसर्गोन्मुख हो

Chapter 80

The Small Utopia

(Let there be) a small country with a small population,
Where the supply of goods are tenfold or hundredfold, more than they can use.
Let the people value their lives and not migrate far.
Though there be boats and carriages, none be there to ride them.
Though there be armor and weapons, no occasion to display them.
Let the people again tie ropes for reckoning,
Let them enjoy their food, beautify their clothing,
Be satisfied with their homes, delight in their customs.
The neighboring settlements overlook one another
So that they can hear the barking of dogs and crowing of cocks of their neighbors,
And the people till the end of their days shall never have been outside their country.

अध्याय 80

छोटा आदर्श राज्य

छोटी आबादी वाला छोटा सा देश हो,
जहां जिन्सों की पूर्ति दस गुनी या सौ गुनी है--
उससे ज्यादा जितना वे खर्च कर सकते हैं।
लोग अपने जीवन को मूल्य दें, और दूर-दूर प्रव्रजन न करें।
वहां नाव और गाड़ियां तो हों, लेकिन उन पर चढ़ने वाले न हों।
वहां कवच और शस्त्र तो हों, लेकिन उन्हें प्रदर्शित करने का अवसर न हो।
गिनती के लिए लोग फिर से रस्सी में गांठें बांधना शुरू करें,
वे अपने भोजन में रस लें; अपनी पोशाक सुंदर बनाएं;
अपने घरों से संतुष्ट रहें; अपने रीति-रिवाजों का मजा लें।
पास-पड़ोस के गांव एक-दूसरे की नजर में हों,
ताकि वे एक-दूसरे के कुत्तों का भौंकना और मुर्गों की बांग सुन सकें;
और लोग अपने अंतिम दिनों तक भी अपने देश से बाहर न गए हों।

लाओत्से आदर्शवादी नहीं है। यही उसका आदर्श है। इस मूलभूत बात को पहले समझ लें।

आदर्शवादी का अर्थ है जिसने जीवन की सहजता और निसर्ग के पार, जीवन की सहजता और निसर्ग से ऊपर, जीवन की सहजता और निसर्ग के विपरीत, कोई आदर्श नियत किया है; जो मनुष्य से कहता है, तुम्हें ऐसा होना चाहिए; जो मनुष्य को जैसा वह है वैसा स्वीकार नहीं करता; जो मनुष्य के जीवन में एक द्वंद्व पैदा करता है। तुम जैसे हो, निंदित; तुम्हें कुछ और होना चाहिए, तभी तुम स्वीकार योग्य हो सकोगे। आदर्श का अर्थ है मनुष्य के जीवन में एक कलह का सूत्र। आदर्श का अर्थ है मनुष्य की प्रकृति की गहन निंदा, और कहीं दूर आकाश में ऐसी प्रतिमा का निर्माण, जैसा मनुष्य को होना चाहिए।

लाओत्से आदर्शवादी नहीं है। लाओत्से मनुष्य के निसर्ग को उसकी परिपूर्णता में स्वीकार करता है। वह तुमसे नहीं कहता कि तुम्हें ऐसा होना चाहिए, वह तुमसे कहता है, यह होने की दौड़ छोड़ो। जब तक तुम अपने से भिन्न कुछ होना चाहोगे तब तक तुम मुसीबत में रहोगे। तुम तो वही हो जाओ जो तुम हो। दौड़ो नहीं, अपने को स्वीकार करो।
निसर्ग ही परम निष्पत्ति है; उसके पार कुछ भी नहीं है। उसके पार मनुष्य के मन की अंधी दौड़ है, और कल्पनाएं हैं, और सपनों के इंद्रधनुष हैं, जिन्हें न कभी कोई पूरा कर पाया है--क्योंकि वे पूरे किए ही नहीं जा सकते-- और न कभी कोई पूरा कर सकेगा। क्योंकि उनका स्वभाव ही असंभव पर निर्भर है। आदर्श ही क्या अगर असंभव न हो! आदर्श का प्राण ही उसका असंभव होना है। और वहीं उसकी अपील है, आकर्षण है। क्योंकि अहंकारी आदर्श में इसीलिए उत्सुक होता है कि वह असंभव है; वह गौरीशंकर जैसा है, जिस पर चढ़ना करीब-करीब होगा नहीं। और गौरीशंकर पर तो कोई चढ़ भी जाए, आदर्श पर कोई कभी नहीं चढ़ पाता। तुम जितने उसके करीब पहुंचते हो उतना ही तुम्हारा अहंकार आदर्श को ऊंचा उठाने लगता है। इसलिए तुम कभी करीब नहीं पहुंचते; तुम में और तुम्हारे आदर्श में सदा उतनी ही दूरी रहती है जितनी पहले थी, अंतिम दिन भी उतनी ही दूरी रहती है।
आदर्शवादी अपने को ही काटता है, तोड़ता है, किसी प्रतिमा के अनुसार, जो उसकी कल्पना ने तय किया है। ऐसे वह भग्न होता है, भ्रष्ट होता है। ऐसे धीरे-धीरे वह प्रतिमा तो कभी निर्मित नहीं होती जो उसके सपनों ने संजोई थी; लेकिन जो प्रतिमा प्रकृति ने उसे दी थी वह जरूर खंडित और खंडहर हो जाती है। तुम परमात्मा तो नहीं बन पाते; आदमियत भी खो जाती है। तुम जो होना चाहते थे, वह तो नहीं हो पाते; तुम जो थे, वह भी खो जाता है। विषाद के सिवाय हाथ में कुछ भी लगता नहीं।
सभी आदर्शवादी दुखी मरते हैं, क्योंकि असफल मरते हैं। तुम अगर आदर्शवादियों का जीवन ठीक से समझने की कोशिश करो तो तुम उनसे ज्यादा तनावग्रस्त आदमी न पाओगे। वे जीवन की हर छोटी सी चीज को समस्या बना लेते हैं; जीवन को जीने की कला भूल ही जाते हैं। वे जीवन के साथ शत्रुता का व्यवहार करते हैं, मित्रता का नहीं।
ऐसा हुआ कि मैं विनोबा के एक आश्रम में, बोधगया में, मेहमान था। पता नहीं कैसे उन्होंने मुझे आमंत्रित कर लिया। जो युवती मेरे भोजन और मेरी देख-रेख के लिए तय की गई थी, आश्रमवासिनी, वह मुझे अति उदास दिखाई पड़ी, मुर्दा-मुर्दा मालूम हुई। तो दूसरे-तीसरे दिन मैंने उससे पूछा कि तू इतनी उदास क्यों है? तो वह रोने लगी, जैसे किसी ने उसका घाव छेड़ दिया। उसने अपनी पूरी कहानी मुझे कही।
उसने मुझे कहा कि मैं बड़ी पापिनी हूं; मुझसे बड़ा अपराधी और कोई भी नहीं; और अपने ही पाप में दबी मैं मर रही हूं। पूछा कि क्या तूने पाप किया होगा? अभी तेरी कोई इतनी उम्र भी नहीं कि बहुत पाप तू कर सके। तू मुझे कह। उसने कहा कि मैं इस आंदोलन में सम्मिलित हुई भूदान के, तो विनोबा ने मुझे ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवा दिया। और वह मैं सम्हाल न पाई। और एक युवक के प्रेम में पड़ गई। वह युवक भी ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था। तो प्रेम हमें पाप जैसा लगने लगा, क्योंकि प्रेम के कारण ही तो ब्रह्मचर्य का व्रत टूट रहा है। आत्मग्लानि भर गई। अपराध। तो विनोबा के सामने हम दोनों ने प्रार्थना की कि आप ही कुछ उपाय बताएं, हम बहुत मुश्किल में पड़ गए हैं। न हम प्रेम छोड़ सकते हैं, और न ही हमारी तैयारी है कि हम व्रत को तोड़ दें, क्योंकि वह तो जीवन भर के लिए दुख हो जाएगा। तो हम मझधार में उलझ गए हैं।

विनोबा पहले तो नाराज हुए, क्योंकि व्रत को तोड़ने की बात ही साधु पुरुषों को बुरी लगती है। लेकिन कोई उपाय न देख कर उन्होंने कहा, फिर ऐसा करो, तुम दोनों विवाह कर लो।
युवक-युवती प्रसन्न हुए। उनका विवाह भी हो गया। वे विनोबा से आशीर्वाद लेने गए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और आशीर्वाद देते समय कहा कि अब तुम ऐसा करो, तुम्हारा विवाह भी हो गया, अब तुम दोनों आजीवन ब्रह्मचर्य

का व्रत ले लो। भीड़ की करतल ध्वनि! बड़ी सभा थी। विनोबा का प्रवाह वाणी का, व्यक्तित्व का प्रभाव! मन तो उनके सकुचाए कि यह तो फिर वही झंझट खड़ी हुई। लेकिन अहंकार जागा। और इतनी भीड़ के सामने कैसे इनकार करो कि हम ब्रह्मचर्य का व्रत लेने को तैयार नहीं हैं! अहंकार ने सिर उठाया। प्रेम को दबा दिया। निसर्ग को दबा दिया क्षण के प्रभाव में। और इतने लोगों की नजरें अहंकार को बढ़ाने में बड़ा काम करती हैं। फिर लोग क्या कहेंगे कि विनोबा ने कहा और हम व्रत न ले सके! दोनों ने व्रत ले लिया।
अब और भयंकर संघर्ष शुरू हुआ। अब पति-पत्नी हो गए। अब तक तो दूर-दूर थे; अब एक मकान में हो गए। और अब एक चौबीस घंटे निसर्ग से कलह की स्थिति बन गई। तो उस युवती ने कहा कि हम रात सोते थे, तो युवक दूसरे कमरे में, मैं दूसरे कमरे में। वह ताला लगा देता और चाबी खिड़की से मेरे कमरे में फेंक देता कि कहीं रात, किसी अचेतन प्रवाह में, किसी वृत्ति के वेग में, कहीं व्रत न टूट जाए।
सो सकेंगे? शांत हो सकेंगे? बेचैनी बढ़ती गई। युवती को हिस्टीरिया के फिट आने लगे। और युवक इसको और न सह सका, इस अवस्था को, तो पदयात्रा पर निकल गया। जब मैं गया तो पति मौजूद न था। फिर भी वह युवती यह नहीं समझ पा रही है कि भूल कहीं विनोबा की है। कहीं साधु पुरुष भूल करते हैं? वे तो सदा तुम्हें ऊंचा ही उठाने में लगे रहते हैं। भूल है तो तुम्हारी ही है।
तो आत्मग्लानि से भरी जा रही है। और अनेक बार सोचती है कि आत्महत्या
कर लूं, क्योंकि कहीं व्रत न टूट जाए; उससे तो बेहतर खुद ही मिट जाना है। यह युवती शांति को, ध्यान को, समाधि को उपलब्ध हो सकेगी? इस युवती के तो जीवन की साधारण स्वाभाविकता ही नष्ट हो गई। अब तो इसके लिए कोई द्वार न रहा। यह सिर्फ ग्लानि से भरेगी, सड़ेगी। इसमें आत्मा का जन्म होगा? इसका तो शरीर भी मर गया।
निसर्ग के विपरीत ले जाने वाले दुश्मन हैं। और अगर कहीं कोई परमात्मा
है तो वह निसर्ग के साथ बह कर ही उपलब्ध होता है, विपरीत चल कर नहीं। अगर कहीं कोई ब्रह्मचर्य है तो वासना की समझ से ही उसका फूल खिलता है, वासना से लड़ कर नहीं।
आदर्शवादी का अर्थ है जो तुम्हें तुम्हारी प्रकृति के खिलाफ संघर्ष में उतरवा दे। एक बार तुम फंस गए तो उस जाल के बाहर आना करीब-करीब मुश्किल है। क्योंकि जाल ऐसा है कि तुम्हें खुद भी लगेगा कि बात तो बिल्कुल ठीक है। ब्रह्मचर्य में क्या भूल है? ब्रह्मचर्य से सुंदर और क्या? वासना से ज्यादा दूषित और क्या? वासना तो गंदगी है और ब्रह्मचर्य तो फूल है! लेकिन तुम्हें पता, कमल कीचड़ में खिलता है। माना कि वासना कीचड़ है, लेकिन कमल कीचड़ के खिलाफ नहीं खिल सकता। और माना कि ब्रह्मचर्य कमल है, लेकिन कमल कीचड़ से ही उपजता है। कमल कीचड़ का ही रूपांतरण है। कमल कीचड़ ही है अपनी परिपूर्ण नैसर्गिक अवस्था में खिल गया; कीचड़ में जो छिपा था वह प्रकट हो गया।
आदर्शवादी कीचड़ और कमल को लड़ाता है। और जैसे ही लड़ाई शुरू हो जाती है, तुम कीचड़ ही रह जाते हो। कमल फिर पैदा ही नहीं होगा। क्योंकि कमल तो कीचड़ का ही प्रवाह है। कमल तो कीचड़ से ही आता है। कीचड़ और कमल के बीच कोई दुश्मनी नहीं है; बड़ी गहन दोस्ती है। वासना से ही खिलता है ब्रह्मचर्य का कमल। करुणा का कमल आता है क्रोध से ही। त्याग भोग का सार है। उपनिषद कहते हैंः त्येन त्यक्तेन भुंजीथा। उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा। भोगोगे ही नहीं, त्यागोगे कैसे? भोग को ही न जाना, त्याग को तुम जानोगे कैसे? त्याग तो बहुत दूर है। भोग तो मार्ग है; त्याग मंजिल है। मार्ग का ही त्याग कर दिया; मंजिल कैसे मिलेगी?
तो दुनिया में दो तरह के लोग हैं। और बड़ी समझदारी की जरूरत है चुनाव करने की, अन्यथा तुम किसी न किसी जाल में उलझ ही जाओगे। एक तरह के लोग हैं जिनको हम कहें आदर्शवादी, आइडियलिस्ट। उसमें दुनिया में जितने सौ प्रसिद्ध लोग हैं, उनमें से निन्यानबे आ जाते हैं। निन्यानबे महापुरुष आदर्शवादी हैं। उन्होंने ही तो नरक बना दिया पृथ्वी को। उनके ही पदचिह्नों पर चल कर तो तुम भटके हो। लेकिन गणित ऐसा है कि तुम्हें यह कभी

समझ में न आएगा कि महात्मा ने डुबाया; तुम्हें यही समझ में आएगा कि तुम खुद ही डूबे, क्योंकि तुमने महात्मा की मानी न। महात्मा की मान कर ही डूबे हो तुम। लेकिन भीतर तर्क यही कहेगा कि अगर मान लेते और ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते तो क्यों डूबते? डूबे इसलिए कि तुम माने नहीं!
अब यह बड़ा जटिल जाल है। जटिल इसलिए है कि तुम्हारा मन कहेगा कि जो महात्मा ने कहा था वह कर लेते और फिर न पहुंचते तब महात्मा का दोष था। तुम पूरा किए ही नहीं तो पहुंचोगे कैसे? और महात्मा ने जो कहा था वह ऐसा था कि वह पूरा किया ही नहीं जा सकता। इसलिए जाल भयंकर है।
महात्मा ने कहा था, प्रकृति से लड़ो। तुम प्रकृति के पुतले हो; लड़ोगे कैसे? रोआं-रोआं प्रकृति का है, धड़कन-धड़कन प्रकृति की है, श्वास-श्वास प्रकृति की है; जिस ऊर्जा से तुम लड़ने चले हो, वह भी प्रकृति की है। प्रकृति में ही छिपा है परमात्मा। परमात्मा कोई प्रकृति का शत्रु नहीं है; प्रकृति में ही छिपा है, प्रकृति का ही गहनतम रूप है। अगर प्रकृति मंदिर है तो परमात्मा विराजमान प्रतिमा है उस मंदिर में ही।
असंभव को जब तुम करने में लग जाओगे तो एक कठिन जाल पैदा होगा। वह कठिन जाल यह है कि असंभव पूरा न होगा, और जब पूरा न होगा तब तुम कैसे कह सकोगे कि जो बताया गया था वह गलत था। तब तुम्हें ऐसा लगेगा कि पूरा न कर पाया, यह मेरी कमजोरी है। तब तुम आत्मग्लानि से भरोगे। तब तुम निंदा से भरोगे। तब तुम स्वयं को घृणा करने लगोगे; स्वयं को ऐसा देखोगे जैसे पाप की खान। बड़े मजे की बात है, महात्मा तुम्हें आत्मा तो नहीं दे पाते, तुम्हारी आत्मा को कलुषित कर देते हैं।
मैं उन्हें महात्मा नहीं कहता। मेरे तो महात्मा की परिभाषा यही है कि जिसके पास तुम्हें आत्मा उपलब्ध हो। लाओत्से मेरे अर्थों में महात्मा है। सौ में कभी एक महापुरुष लाओत्से जैसा होता है जो प्रकृति को स्वीकार करता है, और उसी गहन स्वीकार में से सूत्र को खोज लेता है जिसके सहारे तुम धीरे-धीरे बिना किसी असंभव प्रक्रिया में उतरे मंजिल को उपलब्ध हो जाते हो। और गुरु तो वही है जो तुम्हें ऐसा मार्ग दे दे जो सुगमता और सहजता से जीवन के परम निष्कर्ष को निकट ले आए।
तुम बहुत चकित होओगे, क्योंकि लाओत्से जो आदर्श बता रहा है, वे तुम्हें आदर्श जैसे ही न लगेंगे। लाओत्से ब्रह्मचर्य की बात ही नहीं करता, क्योंकि लाओत्से जानता है कि अगर तुमने सहजता सीख ली और सहजता से कामवासना को जी लिया तो ब्रह्मचर्य अपने से पैदा हो जाएगा। उसकी चर्चा की कोई जरूरत नहीं है। ब्रह्मचर्य की चर्चा तो वहां चलती है जहां वह पैदा नहीं हो पाता। वहां ब्रह्मचर्य का बड़ा गुणगान चलता है, बड़ी स्तुति चलती है। वह स्तुति इसीलिए चल रही है। वह धुआं है, जिसके भीतर दबी हुई वासना पड़ी है। और जीवन भर लोग संघर्ष करते हैं, कुछ भी तो उपलब्ध नहीं कर पाते। फिर भी तुम नहीं जागते।
महात्मा गांधी ने जीवन भर ब्रह्मचर्य के लिए चेष्टा की; अंत तक उपलब्ध नहीं कर पाए। फिर भी तुम नहीं जागते। और महात्मा गांधी नहीं कर पाए तो तुम सोचते हो, तुम कर लोगे? तुम्हें यह ख्याल ही नहीं आता कि महात्मा गांधी जितना श्रम तुम कर सकोगे? अथक श्रम किया; उनके श्रम में कोई जरा भी कमी नहीं है। लेकिन श्रम करने से ही थोड़े मंजिल पास आ जाती है; दिशा भी तो ठीक होनी चाहिए। तुम कितना ही दौड़ो, दौड़ने से थोड़े ही मंजिल पर पहुंच जाओगे। कभी-कभी धीमे चलने वाला भी मंजिल पहुंच सकता है, अगर दिशा ठीक हो; और दौड़ने वाला भटक जाए, अगर दिशा गलत हो। सच तो यह है, दिशा गलत हो तब तो धीमे ही चलना ठीक है; दौड़ने से तो बहुत दूर निकल जाओगे। दिशा गलत हो तब तो बैठे रहना ही बेहतर है। जल्दी मत करना दौड़ने की, क्योंकि नहीं तो वापस लौटने का फिर श्रम उठाना पड़ेगा।
महात्मा गांधी ने बड़ा श्रम किया। अगर उनके श्रम पर ध्यान दो तो वह चेष्टा अनूठी है, बहुत कम लोगों ने की है। लेकिन उस श्रम के कारण कुछ उपलब्ध नहीं हुआ। गांधी आदमी ईमानदार थे; तुम्हारे हजारों महात्मा उतने ईमानदार भी नहीं हैं। क्योंकि गांधी को जो उपलब्ध नहीं हुआ, उन्होंने स्वीकार भी किया कि उपलब्ध नहीं हुआ। तुम्हारे हजारों महात्मा स्वीकार

भी नहीं करते। वे तो कहे चले जाते हैं कि उन्हें उपलब्ध हो गया जो उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ है। वे उसकी घोषणा करते रहते हैं कि उन्होंने पा ही लिया जो उन्होंने बिल्कुल नहीं पाया है, जिसकी गंध भी उन्हें नहीं मिली है। तो गांधी ईमानदार हैं, लेकिन गलत हैं। कोई ईमानदारी से ही तो ठीक नहीं हो जाता। ईमानदारी ठीक है अपने आप में। इसलिए मुझे आशा है कि अगले जन्म में गांधी रास्ते को पकड़ लेंगे, क्योंकि ईमानदारी का एक सूत्र उनके हाथ में है। तुम्हारे महात्माओं को तो अनेक-अनेक जन्मों तक भटकना पड़ेगा। उनके पास तो ईमानदारी का सूत्र भी नहीं है।
गांधी ने स्वीकार किया है कि सत्तर साल की उम्र में भी उनको स्वप्नदोष हो जाता है। हो ही जाएगा। इसमें कसूर वासना का नहीं है; इसमें कसूर गांधी का वासना के खिलाफ लड़ने का है। तुम जिस चीज से लड़ोगे वही तुम्हारे सपनों को घेर लेगी। तुम जिस चीज से दिन भर जूझोगे, तो दिन भर तो तुम जूझ सकते हो, क्योंकि चेतन मन काम करता है। लेकिन रात चेतन मन सो जाएगा; जिसने व्रत लिया, संकल्प किया, वह मन तो सो जाएगा। रात तो दूसरा मन जगेगा जिसे तुम्हारे व्रत का कोई पता ही नहीं है। रात तो नैसर्गिक मन जगेगा। सांस्कृतिक, सामाजिक, सभ्यता का दिया हुआ मन तो थक गया दिन भर में, वह सो जाएगा। वह तो बहुत छोटा सा है, दसवां हिस्सा है तुम्हारे मन का; वह जल्दी थक जाता है, दिन भर के काम में, व्यवसाय में रुक जाता है। रात तो तुम्हारा जो नौ गुना बड़ा मन है प्रकृति का, वह जागेगा। उसको पता ही नहीं कि तुम महात्मा हो; उसको पता ही नहीं कि तुमने ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया है; उसने यह खबर ही नहीं सुनी। तुम्हारे चेतन मन और अचेतन मन के बीच बड़ा फासला है; खबर तक नहीं पहुंचती, संवाद का साधन भी नहीं है। और तुम्हें पता भी नहीं है कि तुम कैसे खबर पहुंचाओ। लड़ाई भी कोई संवाद की व्यवस्था है? खबर पहुंचाने का मतलब होता है कि चेतन और अचेतन करीब आएं। लड़ाई से तो दूरी बढ़ती जाती है। जिससे भी तुम लड़ोगे उससे दूरी बढ़ जाती है। दुश्मन से कहीं निकटता हो सकती है?
तो गांधी के चेतन-अचेतन मन में जितना फासला है उतना तुम्हारे चेतन-अचेतन मन में भी नहीं है; भारी फासला है! उन्होंने तो अचेतन को बिल्कुल दूर फेंक दिया है जैसे उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उससे तो घबड़ाहट है, दुश्मनी है; उसी से तो लड़ाई है; उसी के कारण तो बार-बार कामवासना मन को पकड़ती है। रात चेतन मन तो सो गया, अचेतन जागा। अब इस अचेतन को न महात्मा होने का पता है, न सभ्यता-संस्कृति का कोई पता है; यह तो नैसर्गिक मन है। यह तो वैसा ही है जैसा पशुओं का है, साधारण आदमियों का है, पक्षियों का है। इस नैसर्गिक मन की वासना तो अछूती, अदम्य है; वह उठेगी, सपने बनाएगी। जिसे तुम जीवन में जागते में नहीं भोग पाए, अचेतन मन उसे निद्रा में सपने बना कर भोग लेगा। स्वप्नदोष स्वाभाविक है।
तुम्हारे सौ में से निन्यानबे महात्मा स्वप्नदोष से पीड़ित होंगे। लेकिन कौन कहे? और कह कर कौन झंझट ले? वे राजी भी नहीं होंगे। लेकिन गांधी ईमानदार हैं; उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृति में ही उनके अगले जन्मों की संभावना है कि वे रूपांतरित हो जाएं। लेकिन गांधी के पीछे बहुत से अनुयायी पैदा हो जाएंगे। ये अनुयायी बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे, और ये अनुयायी ऐसी स्थिति में आ जाएंगे जिसको कि करीब-करीब विक्षिप्तता कहा जा सकता है।
अब गांधी कहते हैं, अस्वाद व्रत है! स्वाद मत लो!
तुम्हें भी बात जमती है कि क्या भोजन में स्वाद ले रहे हो? रखा क्या है भोजन में? निंदा के स्वर बड़ा तर्क रखते हैं अपने पीछे, क्या रखा है भोजन में? कोई भी निंदा कर सकता है भोजन की। और तुम्हें भी निंदा जमती है, क्योंकि तुम कभी ज्यादा खा जाते हो, कभी पेट में तकलीफ होती है, वजन बढ़ता जाता है, चर्बी बढ़ती जाती है, बीमारियां आती हैं। तुम्हें भी लगता है कि ज्यादा भोजन करके तुम दुख ही तो पा रहे हो। और इतनी बार तो भोजन कर लिया, कुछ मिला तो है नहीं। इस स्वाद में रखा भी क्या है? जरा सा जीभ पर स्पर्श हुआ, स्वाद खो गया। और जिंदगी भर तो यही दोहरा रहे हो। अस्वाद व्रत है! स्वाद मत लो! बिना स्वाद के भोजन करो!

अब बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। यह होगा कैसे? बिना स्वाद के भोजन कैसे करोगे? और जितना भोजन बिना स्वाद के करने की कोशिश करोगे, तुम पाओगे, स्वाद की आकांक्षा उतनी ही प्रगाढ़ होती जाती है।
गांधी अपने भोजन को बिगाड़ने के लिए नीम की चटनी साथ में रख लेते थे।
अब नीम की भी कोई चटनी होती है? लेकिन अस्वाद जिसने व्रत ले लिया, उसके काम की है। लेकिन नीम की चटनी भी स्वाद है; कड़वा स्वाद है। उससे तुम स्वाद को मार सकते हो, अस्वाद को उपलब्ध नहीं हो सकते। वह तो तरकीब छिपाने की है, वह तो भोजन को बिगाड़ने की है। ध्यान रखें, कुस्वाद अस्वाद नहीं है, वह भी स्वाद है। लेकिन अगर नीम की चटनी खा ली भोजन के साथ बार-बार तो भोजन का स्वाद बिगड़ जाएगा; तुम कैसे अस्वाद को उपलब्ध हो जाओगे?
लेकिन अनुयायी तो मिल जाते हैं इन बातों के लिए भी। और फिर एक बड़े महिमाशाली व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। लुई फिशर अमरीका से गांधी को मिलने आया। तो वे तो मेहमानों के भी भोजन में चटनी रखवा देते थे। लुई फिशर साथ ही बैठा भोजन करने। प्रसिद्ध विचारक, लेखक, और गांधी पर उसने बाद में बड़ी महत्वपूर्ण किताब लिखी। तो गांधी ने चटनी रखवाई; वह उनका खास, सबसे ज्यादा मनचीता हिस्सा था भोजन का। क्योंकि अस्वाद सधे कैसे! जीभ को खराब कर लो। क्या जरूरत है रोज-रोज नीम की चटनी खाने की! जीभ पर तेजाब लगवा दो, जल जाए। स्वाद के जो छोटे-छोटे अणु हैं जीभ पर, कोष्ठ हैं, जिनसे स्वाद आता है, उनको जला दो। वह भी लोगों ने किया है। सूरदास ने अपनी आंखें फोड़ ली थीं, सिर्फ इसलिए ताकि सुंदर स्त्रियां दिखाई न पड़ें। क्योंकि सुंदर स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं तो वासना जगती है।
लुई फिशर को भी चटनी रखवा दी। लुई फिशर ने गांधी को चटनी खाते देख कर चखा। उसे क्या पता कि यह नीम है! वह तो कड़वा जहर थी। उसका तो सारा मुंह खराब हो गया। लेकिन अब गांधी से कैसे कहे? यही तकलीफ है। और गांधी बड़े रस से ले रहे हैं चटनी को; एक कौर दूसरी चीज का लेते हैं तो चटनी जरूर उसमें मिला लेते हैं। तो लुई फिशर ने सोचा कि होगा कोई भारतीय रिवाज, कोई रहस्यपूर्ण बात होगी; जब इतना बड़ा महात्मा करता है, तो कुछ रहस्य होगा! झंझट में बोलना ठीक भी नहीं, कुछ कहना ठीक भी नहीं। और पश्चिम के लोग इस अर्थ में थोड़े सोच-विचारपूर्ण हैं कि दूसरे की संस्कृति का ख्याल रखो; इसका कोई रहस्य होगा, धार्मिक अर्थ होगा; गांधी करते हैं तो निष्प्रयोजन तो नहीं करेंगे। पर उसने देखा कि अगर मैं भी इस चटनी को मिला कर खाऊं तो सारा भोजन ही खराब हो जाएगा और यह तो वमन की हालत हो जाएगी। तो उसने सोचा, बेहतर है इस चटनी को एकबारगी इकट्ठा गटक जाओ, एक ही दफे झंझट होगी, और फिर शांति से भोजन कर लो। तो वह चटनी को गटक गया। गांधी ने कहा कि और चटनी ले आओ; लुई फिशर को बहुत पसंद पड़ी मालूम होता है।
शिष्य ऐसे ही फंसे हैं! शिष्य पूरी की पूरी चटनी इकट्ठी गटक जाते हैं।
वे अपना बचाव खोज रहे हैं। लेकिन बचाव है नहीं। लुई फिशर जैसे बुद्धिमान आदमी में यह कहने का साहस नहीं है कि मैं यह चटनी नहीं खाऊंगा। बड़े लोगों का प्रभाव एक तरह की गुलामी मालूम पड़ता है। जैसे तुम गुलाम हो! जैसे तुम्हारे पास अपनी कोई अंतस-चेतना न रही, कि प्रभावशाली लोग जो करते हैं वह ठीक ही करते हैं। और अक्सर प्रभावशाली लोग गलत करते हैं, क्योंकि उनके सारे प्रभाव की गहराई में तो अहंकार होता है। उनके प्रभाव का कारण ही यही है कि उन्होंने अहंकार को खूब सजाया है; कभी-कभी प्रकट हो जाता है। लेकिन इतिहास उसको भी भूल जाएगा।
गांधी के एक शिष्य मेरे पास थे। उनका नाम तुमने सुना होगा--स्वामी आनंद। एक रात हम साथ ही सोए। तो उन्होंने मुझे कहा कि शुरू-शुरू में जब गांधी भारत आए अफ्रीका से तो वे उनका प्रेस रिपोर्टर का काम करते थे--आनंद स्वामी। तो गांधी ने एक व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने बड़े भद्दे, अभद्र शब्दों का उपयोग किया अंग्रेजों के खिलाफ, जैसी कि लोगों को गांधी से अपेक्षा न थी। आनंद स्वामी ने जो रिपोर्ट बनाई उसमें वे भद्दे शब्द, गालियों जैसे शब्द छोड़ दिए। सोचा कि उत्तेजना में कह गए हैं, बाद में खुद भी पछताएंगे।

गांधी ने दूसरे दिन जब रिपोर्ट पढ़ी, आनंद स्वामी को बुलाया और बहुत पीठ थपथपाई और कहा, तुमने ठीक किया, ऐसा ही करना चाहिए। क्योंकि उत्तेजना के क्षण में जो निकल गया उसको जनता तक पहुंचाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम जैसा ही रिपोर्टर होना चाहिए!
आनंद स्वामी बहुत प्रभावित और प्रसन्न। वे मुझे इसीलिए सुना रहे थे
कि गांधी ने कितनी मेरी प्रशंसा की। और मैंने उनसे कहा कि अगर मैं गांधी की जगह होता तो उसी दिन तुम्हारा-मेरा संबंध समाप्त था, क्योंकि तुमने झूठ फैलाया! गांधी ने अगर अपशब्द उपयोग किए थे तो अपशब्द रिपोर्ट में होने चाहिए। तुम भी बेईमान हो और तुम्हारे गांधी भी बेईमान हैं जो उन्होंने तुम्हारी पीठ ठोंकी और कहा कि तुमने ठीक किया। गांधी को तो लगा कि ठीक किया, क्योंकि उत्तेजना के क्षण में, जब अहंकार पहरे पर नहीं होता, चीजें निकल जाती हैं। मगर वे वास्तविक हैं, अन्यथा निकलेंगी कहां से? वे भीतर हैं, इसलिए तो बाहर आ जाती हैं। अनगार्डेड मोमेंट, पहरे पर नहीं थे गांधी उस वक्त, बोलने में बह गए। मगर वह असलियत है। न होता भीतर तो निकलता कैसे? तुमने झूठ का प्रचार किया। मैंने कहा कि तुम ऐसा सोचो कि गांधी ने गालियां न दी होतीं और तुमने जोड़ दी होतीं रिपोर्ट में तो गांधी क्या कहते? क्या तुम्हारी पीठ ठोंकते? वे तुम्हें अलग करते उसी वक्त। वे कहते, तुमने यह झूठ कैसे जोड़ा?
गालियां न दी जाएं और जोड़ दी जाएं तो झूठ; और गालियां दी जाएं और निकाल
ली जाएं तो झूठ नहीं? वह निषेधात्मक झूठ। तुम गांधी की प्रतिमा को सीधा- सीधा क्यों नहीं रखते? फिर बाद में इतिहास में लोग लिखेंगे कि गांधी ने अंग्रेजों के खिलाफ कभी एक अपशब्द का उपयोग नहीं किया! और गांधी की प्रतिमा झूठी होगी। फिर उससे लोग अनुप्राणित होते हैं, प्रभावित होते हैं।
गांधी कहते थे कि मेरा राजनीति में कोई बड़ा लगाव नहीं है। लेकिन सुभाष के खिलाफ उन्होंने पट्टाभि सीतारामैया को खड़ा किया चुनाव में। फिर एक क्षण में भूल हो गई उनसे, क्योंकि सुभाष जीत गए और पट्टाभि हार गए, तो गांधी के मुंह से निकल गया कि यह मेरी हार है। पट्टाभि सीतारामैया की हार मेरी हार है तो पट्टाभि सीतारामैया की जीत गांधी की जीत होती। निष्पक्ष नहीं हैं! सुभाष को हराने के लिए पूरी-पूरी योजना थी, कुशल राजनीति थी। लेकिन ये सब तथ्य धीरे-धीरे हटा दिए जाते हैं।
गांधी के अंतिम जीवन में उनको खुद ही शक आ गया कि जीवन भर का ब्रह्मचर्य कुछ सार नहीं लाया, तो जीवन के अंत में तंत्र की तरफ झुके। जिस तंत्र की मैं बात कर रहा हूं उसको जीवन के अंत में गांधी झुके। मुझे गालियां पड़ रही हैं, पड़ती रहेंगी; लेकिन गांधी का पूरा जीवन कहता है कि आखिर में उनको याद आई कि वह जीवन भर उन्होंने व्यर्थ गंवाया। यह ब्रह्मचर्य ऐसे उपलब्ध नहीं होता! ब्रह्मचर्य उपलब्ध होने के रास्ते और हैं! तब वे तंत्र की तरफ झुके। लेकिन शिष्य घबड़ाए, क्योंकि शिष्यों ने तो पूरी जिंदगी उनका पीछा ब्रह्मचर्य के कारण किया था कि वे महान ब्रह्मचारी हैं। और उन्होंने भी ब्रह्मचर्य के व्रत लिए थे; अब यह क्या होने लगा!
तो तुम चकित होओगे कि गांधी के जीवन का वह हिस्सा शिष्यों ने छोड़ ही दिया, उसकी वे बात ही नहीं करते। गांधी के जीवन लिखे जाते हैं, किताबें छापी जाती हैं; वह हिस्सा छोड़ दिया जाता है। तो एक झूठी प्रतिमा बनाई जाती है। जब कि जीवन भर के अनुभव के बाद गांधी का यह ख्याल कि तंत्र में शायद कोई रास्ता हो ब्रह्मचर्य को पाने का, इस बात की घोषणा है कि संघर्ष का रास्ता कहीं भी नहीं ले जाता। गांधी जैसे महापुरुष को भी नहीं ले जाता, तुम्हें कहां ले जाएगा!
लेकिन गांधी के शिष्यों ने गांधी की गर्दन पकड़ ली जब गांधी ने तंत्र
के प्रयोग किए। शिष्य भी छोड़ कर जाने लगे। शिष्यों में भी बात फैल गई कि यह आदमी बिगड़ गया है, आखिरी में पतन हो गया। वे ही शिष्य अब बड़े-बड़े गांधीवादी हैं जिन्होंने अंत में गांधी को त्याग दिया। लेकिन फिर सत्ता आई गांधी के शिष्यों के हाथ में। जो छोड़ कर चले गए थे वे वापस लौट आए। अब वे बड़े-बड़े गांधीवादी हैं। लेकिन वे सब गांधी के अंतिम क्षण में विरोध में थे,

क्योंकि गांधी एक ऐसा काम कर रहे थे जो उनकी समझ के बिल्कुल बाहर था। गांधी एक नग्न युवती के साथ एक साल तक बिस्तर पर साथ-साथ सोते रहे। यह उनके लिए घबड़ाने वाली बात थी।
मगर वह प्रयोग भी गांधी का बहुत गहरा नहीं जा सका, क्योंकि जीवन भर का संस्कार और जीवन भर की धारणा। तो उन्होंने उस प्रयोग को भी अपनी ही परिभाषा दे दी; वह तंत्र का प्रयोग न रहा। लिया उन्होंने तंत्र से, ध्यान उनका तंत्र पर गया; लेकिन परिभाषा उन्होंने अपनी दे दी। ऐसे ही तो सत्य विकृत होते हैं। उन्होंने कहा कि मैं यह तंत्र का प्रयोग इसलिए नहीं कर रहा हूं कि मुझे इससे कुछ पाना है; सिर्फ एक कसौटी! मैं जांचना चाहता हूं कि मेरे भीतर ब्रह्मचर्य अभी तक गहरे गया है या नहीं। अगर नग्न युवती मेरे पास सोई हो रात भर तो मेरे मन में वासना उठती है या नहीं, इसकी मैं जांच कर रहा हूं।
अगर वासना न उठती हो तो जांच करनी पड़ेगी? जांच की जरूरत है? तुम्हारे सिर में जब दर्द नहीं होता तो क्या तुम डाक्टर के पास जाते हो कि जरा जांच करके बताओ, मेरे सिर में दर्द है या नहीं? जब नहीं होता तब तुम जानते हो; जब होता है तब भी तुम जानते हो। सारी दुनिया भी कहे कि तुम्हारे सिर में दर्द नहीं है और तुम्हें हो रहा है, तो क्या फर्क पड़ेगा उस प्रमाण से? तुम्हें हो रहा है, सारी दुनिया कहती रहे कि नहीं हो रहा है, इससे क्या फर्क पड़ रहा है? कौन जान सकता है तुम्हारे सिर के दर्द को सिवाय तुम्हारे? कोई भी नहीं जान सकता। तुम्हारा सिर, तुम्हारा दर्द! और क्या इसकी कोई परीक्षा करनी पड़ती है, जांच करनी पड़ती है कि हो रहा है कि नहीं हो रहा? जब वासना तुम्हारे मन में होती है तो क्या पूछना पड़ता है किसी से कि वासना है या नहीं?
किया तो तंत्र का प्रयोग, लेकिन व्याख्या अपनी करके उसको भी खराब कर लिया। गांधी ब्रह्मचर्य के संबंध में असफल मरे। लेकिन इसमें गांधी का कोई कसूर नहीं है। गांधी ने मेहनत पूरी की; रास्ता गलत था। गांधी का श्रम पूजा योग्य है, लेकिन दिशा भ्रांत थी। जाना था पूरब, चल पड़े पश्चिम। दौड़े बहुत, थका डाला; कुछ उठा न रखा, सब किया जो करना था; लेकिन दिशा ही गलत थी। लाओत्से निसर्ग को स्वीकार करके बढ़ता है। वह तुमसे यह नहीं कहता कि तुम्हें कोई आदर्श पुरुष होना है; वह तुमसे कहता है कि तुम साधारण हो जाओ, बस काफी है। असाधारण नहीं, तुम बस साधारण हो जाओ। तुम इतने साधारण हो जाओ कि न किसी को तुम्हारी खबर रहे, न तुम्हें किसी की खबर रहे। तुम जीवन में ऐसे साधारण हो जाओ कि तुम्हारे जीवन में कोई कलह और संघर्ष न रहे। प्यास लगे तो पानी पीओ। और जब प्यास लगे तो क्या जरूरत है अस्वाद से पानी पीने की? पूरे स्वाद से पीओ! लेकिन स्वाद को परमात्मा के प्रति धन्यवाद बना लो, अहोभाव बना लो। भोजन ही करना है तो स्वाद से करो!
ध्यान रहे, धर्मगुरु लोगों को समझाते हैं कि भोजन में स्वाद लेना पशुओं जैसा है। वे बिल्कुल गलत कहते हैं। पशु तो भोजन में स्वाद लेते ही नहीं, सिर्फ मनुष्य लेता है। वह मनुष्य की गरिमा है और ऊंचाई है। पशु तो भोजन में स्वाद लेते ही नहीं। पशुओं का भोजन तो बिल्कुल यांत्रिक है। तुम एक भैंस को छोड़ दो। उसका बंधा हुई घास है, वह वही घास चुन-चुन कर खा लेगी, दूसरे घास को छोड़ देगी। भैंस स्वाद लेती है? कभी भूल कर मत सोचना। कोई जानवर भोजन में स्वाद नहीं लेता। भोजन करता है, बिल्कुल अस्वाद से करता है; स्वाद का कोई सवाल ही नहीं है। इसलिए तो जानवर एक ही भोजन को सतत करते रहते हैं, कभी परिवर्तन नहीं करते। स्वाद जहां भी होगा वहां परिवर्तन होगा। क्योंकि एक ही स्वाद अगर तुम रोज-रोज लेते रहोगे तो ऊब जाओगे। भैंस कभी नहीं ऊबती; साफ है कि उसे कोई स्वाद नहीं है। तुम एक ही सब्जी रोज खाकर देखो--आज अच्छी लगेगी, कल साधारण हो जाएगी, परसों ऊब आने लगेगी, चौथे दिन तुम थाली पटक दोगे उठा कर पत्नी के सिर पर कि बहुत हो गया।
स्वाद का अर्थ ही होता है परिवर्तन। पशु परिवर्तन नहीं करते, इसलिए जाहिर है कि उनको स्वाद का कोई सवाल नहीं है। भोजन! तो पशु तो अस्वाद व्रत को उपलब्ध हैं; सिर्फ आदमी के जीवन में स्वाद उठा है।

तुमने कभी देखा पशुओं को संभोग करते? उनको कोई रस नहीं आता। दो पशुओं
को तुम कभी भी संभोग करते देखो, तुम उनमें कोई रस न पाओगे। वे संभोग यंत्रवत करते हैं--जैसे कोई मजबूरी है, करना पड़ रहा है। और संभोग करने के बाद तुम उनके चेहरे पर कोई शांति न पाओगे; न कोई आनंद का भाव पाओगे। संभोग कर लिया, निपट गए, चल पड़े अपने-अपने रास्ते पर।
सिर्फ मनुष्य संभोग में स्वाद ले सकता है; भोजन में स्वाद ले सकता है; गंध में स्वाद ले सकता है। पशुओं को गंध तो आती है मनुष्य से ज्यादा, लेकिन गंध में स्वाद नहीं है। तुमने किसी पक्षी को फूल को खोंसे हुए देखा है? कि किसी भैंस को कि फूल को पास लेकर गंध ले रही है? पशुओं की गंध की शक्ति तीव्र है, वे मील भर दूर से भी गंध ले लेते हैं, लेकिन गंध में कोई स्वाद नहीं है। पशु बिल्कुल अस्वाद में जीते हैं।
मनुष्य के जीवन में स्वाद पहली दफा उठता है। वह चेतना की ऊपर की सीढ़ी
पर संभव है; नीचे की सीढ़ी पर संभव नहीं है। इसलिए अगर तुम अस्वाद साधोगे तो पशुओं जैसे हो सकते हो, परमात्मा जैसे नहीं। परमात्मा जैसे तो तुम तभी हो पाओगे, जब तुम्हारे छोटे-छोटे स्वाद में तुम्हें परम स्वाद आने लगेगा। तब तो उपनिषद के ऋषियों ने कहा, अन्नं ब्रह्म! निश्चित ही, ये अलग तरह के लोग हैं गांधी से। गांधी कहते हैं, नीम ब्रह्म! और ये उपनिषद के ऋषि कहते हैं, अन्नं ब्रह्म! कहते हैं, स्वाद! इतना स्वाद कि साधारण अन्न में से ब्रह्म प्रकट होने लगे! पी रहे हैं जल, लेकिन इतनी परितृप्ति कि कंठ पर जल का स्पर्श ब्रह्म का स्पर्श हो जाए! हवा का एक झोंका फूल की गंध ले आया है। नाक सिकोड़ कर महात्मा बन कर मत बैठ जाना, क्योंकि उस गंध में परमात्मा तुम्हारी तरफ आया है। वह हवा का झोंका परमात्मा को तुम्हारी तरफ बहा लाया है। तुम महात्मा बन कर अकड़ कर मत बैठ जाना; नाक बंद मत कर लेना--अस्वाद। नहीं, लाओत्से तुम्हें आदर्श नहीं बनाना चाहता, तुम्हें नैसर्गिक बनाना चाहता है। सौ में एक ही महापुरुष तुम्हें नैसर्गिक बनाना चाहता है। क्यों? ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि तुम नैसर्गिक बनना नहीं चाहते। नैसर्गिक बनने में तुम्हें कोई मजा ही नहीं है, क्योंकि न कोई संघर्ष है वहां, न अहंकार की तृप्ति है। इसलिए तुम्हारे सौ महात्माओं में निन्यानबे वे हैं जो तुम्हें अहंकार की तृप्ति देना चाहते हैं--संघर्ष का मजा, चुनौती, लड़ाई, जीतने का मजा; न सही जीता दूसरे को, तो खुद ही को जीतो! महात्माओं के वचन हैं कि दूसरे को क्या जीतना; असली जीत तो खुद को जीतना है। मगर जीतने का रस कायम है!
लाओत्से कहता है, जीतना ही क्या? न दूसरे को, न अपने को। जीतने की कोई जरूरत ही नहीं, क्योंकि जीतने का मतलब हिंसा, जीतने का मतलब संघर्ष, द्वंद्व, कलह, तनाव, बेचैनी, संताप। दूसरे को जीता तो, अपने को जीता तो, लड़ाई तो रहेगी ही। लाओत्से कहता है, लड़ो ही मत; स्वीकार करो।
जो-जो व्यक्ति तुम्हें लड़ने की सिखाते हैं उन-उनका तुम पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि तुम लड़ने को तत्पर खड़े हो। अगर दूसरे से न लड़े तो अपने से ही लड़ना पड़ेगा। बिना लड़े तुम्हारा मन मानता नहीं, क्योंकि बिना लड़े अहंकार निर्मित नहीं होता।
इसे ठीक से समझ लो। इसे मैं हजार-हजार बार दोहराता हूं कि तुम लड़ाई की उत्सुकता में हो, तत्पर हो, खोज रहे हो कि कहीं लड़ाई मिल जाए। और निश्चित ही, दूसरे से लड़ना जरा मंहगा काम है, क्योंकि दूसरा ऐसे ही खाली नहीं बैठा रहेगा।
इसलिए बहादुर दूसरों से लड़ते हैं; कायर खुद से लड़ते हैं। क्योंकि दूसरे से लड़ने में खतरा है; खुद से लड़ने में तो कोई खतरा ही नहीं है, निहत्थे। खुद से लड़ने का मतलब है तुम अपने को दो हिस्सों में बांट लेते होः शरीर, आत्मा; लड़ाओ! निम्न प्रकृति, उच्च परमात्मा; लड़ाओ! ऊर्ध्वगामी ऊर्जा, अधोगामी ऊर्जा; लड़ाओ! तुम अपने भीतर दो हिस्से कर लेते हो। तुम अपने भीतर अंधेरा पक्ष और उजाला पक्ष कर लेते हो। यह रही पूर्णिमा, यह रही अमावस; संघर्ष शुरू! शुभ-अशुभ, हिंसा-अहिंसा, स्वाद-अस्वाद, वासना- ब्रह्मचर्य; लड़ाओ!

सारा खेल इस बात का है कि तुम किसी भांति अपने से लड़ो। लड़ो तो अहंकार निर्मित होता है। इसलिए जैसा अहंकार तुम्हारे साधुओं के पास होता है-- जैसा तीखा, प्रखर, धार वाला--वैसा असाधुओं के पास नहीं होता। असाधु दूसरों से लड़ रहे हैं। दूसरे से लड़ाई कभी भी निर्णीत नहीं हो पाती; विजय कभी आखिरी नहीं हो पाती। क्योंकि दूसरा फिर तैयार होकर आ जाएगा। आज हार गया, कल फिर तैयार हो जाएगा। और यह दूसरा हार गया; हजार दूसरे हैं, वे तुम्हें हराएंगे। दूसरे से लड़ाई तो अनंत है; वह कभी तय नहीं हो पाएगी कि तुम निश्चित रूप से जीत गए। लेकिन खुद से लड़ाई तो बड़ा सुविधापूर्ण काम है-- अपनी ही छाती पर चढ़ कर बैठ गए।
यह सबसे कठिन काम है दुनिया में, अपनी छाती पर चढ़ कर बैठना। सोचो, कैसे बैठोगे अपनी छाती पर चढ़ कर? लेकिन बहुत बैठ गए हैं। जो बैठ जाते हैं वे तुम्हारे महात्मा हैं। लेकिन यह लड़ाई भी कभी पूरी नहीं होती, क्योंकि जिसकी छाती पर तुम बैठे हो, वह भी तुम्हीं हो। उसे तुम दबा लो क्षण भर को, वह भी प्रकट होगा आज नहीं कल। और ध्यान रखें, जब भी कभी महात्मा छाती पर से उतरता है अपनी तो जितना बड़ा शैतान उसमें से निकलेगा उतना शैतान साधारण आदमी से नहीं निकल सकता। क्योंकि उसका शैतान बिल्कुल ताजा है, उसका उपयोग ही नहीं हुआ। महात्मापन तो उसका बासा पड़ गया है, सेकेंड हैंड है; खूब उपयोग कर लिया है; लेकिन उसका शैतान बिल्कुल ताजा बैठा है; उसने उपयोग करने ही नहीं दिया; वह उसके भीतर छिपा है। अस्वाद तो थक गया, लेकिन स्वाद की कामना अनथकी भीतर पड़ी है--कुंआरी, ताजी! ब्रह्मचर्य तो जराजीर्ण हो गया; वासना प्रतीक्षा कर रही है कि कब ब्रह्मचर्य को धक्का देकर गिरा दे।
इसलिए मेरे निरीक्षण में, जवान आदमी अगर ब्रह्मचर्य का व्रत ले तो कुछ वर्ष तक सफल हो सकता है। लेकिन कोई चालीस और पैंतालीस साल के करीब उपद्रव शुरू होता है, क्योंकि ब्रह्मचर्य की शक्ति थकनी शुरू हो जाती है और जवानी की ताकत जो दबा रही थी वह भी क्षीण होने लगती है। इसलिए तुम्हारे महात्माओं का पतन अगर होता है तो वह पैंतालीस साल के करीब होता है। पैंतालीस साल के करीब महात्मा से सावधान रहना, क्योंकि दबाने के लिए जिस जवानी की जरूरत थी, अब वह शिथिल हो रही है। ब्रह्मचारी बुढ़ापे में कामवासना से भर जाते हैं।
अब यह बिल्कुल विपर्य हो गया। जवानी में कामवासना से भरे रहते, कुछ हर्ज न था। जवानी में कामवासना स्वाभाविक थी। उसे अगर ठीक से भोग लेते, जान लेते, पहचान लेते, तो बूढ़े होते-होते उसके पार हो गए होते। लेकिन जवानी में ब्रह्मचर्य से लड़ने का मजा लिया; फिर बुढ़ापे में वासना--अनथकी और ताजी--हमला करती है। इसलिए बूढ़े आदमियों के मस्तिष्क जितने गंदे होते हैं, उतने जवान आदमियों के कभी नहीं होते।
हां, बूढ़े आदमी का मस्तिष्क तभी ताजा और स्वस्थ होता है जब उसने वासना
को जी लिया हो और पार हो गया हो; स्वाद को भोग लिया हो और स्वाद ब्रह्म हो गया हो; वासना को जी लिया हो और अब वासना अपने आप ही रूपांतरित होकर ब्रह्मचर्य बन गई हो।
अनुभव के बिना कोई शुद्धि नहीं है। इसलिए लाओत्से तुमसे कहता है, अनुभव! और जीवन का सरल अनुभव--न केवल व्यक्ति के लिए, बल्कि समाज के लिए भी।
लाओत्से के सुझाव बड़े नैसर्गिक हैं। कोई सुनेगा नहीं। मेरे सुझाव भी बड़े नैसर्गिक और सीधे हैं। कोई सुनेगा नहीं। सुन भी लेगा तो करेगा नहीं; क्योंकि उनमें अहंकार की कोई तृप्ति नहीं है। मैं सिखा रहा हूं ना-कुछ हो जाना; तुम कुछ होना चाहते हो। अगर धन की दुनिया में न हो पाए तो धर्म की दुनिया में हो जाओ। देखो तुम्हारे शंकराचार्यों को बैठे हुए अपनी-अपनी पीठ पर! उनकी अकड़ देखो! दुकान पर बैठे दुकानदार की भी कमर झुक गई, लेकिन शंकराचार्यों की नहीं झुकती। राजनीति में दौड़ने वाला नेता भी थक गया है, कभी-कभी धर्म की बात भी सोचने लगता है; लेकिन शंकराचार्य शुद्ध अहंकार के शिखर हैं।
तुम्हारे अहंकार की तृप्ति नहीं है लाओत्से में! और अगर तुम लाओत्से
को सुन पाओ तो तुम्हारे भीतर छिपे परमात्मा की परितृप्ति हो सकती है।

लाओत्से के सूत्र को हम समझें।
"छोटी आबादी वाला छोटा सा देश हो।"
लाओत्से बड़े देशों के पक्ष में नहीं है, मैं भी नहीं हूं। क्योंकि बड़े देश महामारियों की भांति हैं। जितना बड़ा देश होगा उतनी बड़ी हिंसा होगी। जितना बड़ा देश होगा उतनी बड़ी राजनीति होगी, उतना उपद्रव होगा। जितना बड़ा देश होगा उतना दूसरों के लिए आतंक होगा। और बड़े देश का मतलब यह है कि विभिन्न-विभिन्न तरह के लोग, विभिन्न रीति-रिवाज, विभिन्न जीवन की शैलियां, उनको जबर्दस्ती एक ही थैले में बंद करने की कोशिश। कोई तृप्त न होगा।
और बड़े राज्य का आकर्षण क्या है? गांधी का मन नहीं था कि भारत बंटे। अच्छी-अच्छी बातों में बड़ी अजीब बातें छिपाई जाती हैं। अखंड भारत! जनसंघी चिल्लाते रहते हैंः अखंड भारत! जितना बड़ा राज्य हो, उसके ऊपर कब्जा होने पर उतना ही बड़ा राजनीतिज्ञ हो जाता है। छोटे मुल्क के नेता की उतनी ही कीमत होती है जितना छोटा मुल्क। इसलिए कोई राजनीतिज्ञ देश को छोटा नहीं करना चाहता। इसलिए तो पाकिस्तान मुसलमानों को ही काट दिया बंगला देश में। इसलाम का राज्य है, इसलामी देश है, और मुसलमानों को काट दिया बंगला देश में। क्योंकि बंगला देश अलग हो, पाकिस्तान आधा मर गया उसी दिन अलग होते ही से। मियां भुट्टो आधे हैं अब। वह ताकत न रही, वह बल न रहा। क्योंकि बड़ा देश हो तो बड़ी ताकत।
मगर तुम भेद मत समझना कि कुछ भेद है। नागालैंड में हिंदुस्तान वही कर रहा है। नागा अलग रहना चाहते हैं। कश्मीर में पाकिस्तान, हिंदुस्तान दोनों ने वही किया। कश्मीर अलग रहना चाहता है। आज नहीं कल तमिलनाडु अलग रहना चाहेगा। तुम भी वही करोगे। तुम भी हिंदुस्तानी हो, लेकिन हिंदुस्तानी को काटोगे, उसी तरह जैसा बंगाल में हुआ। क्योंकि कोई नहीं चाहता राजनीतिज्ञ कि देश छोटा हो जाए। देश के छोटे होने का मतलब है कि राजनीतिज्ञ छोटा होता जाता है। अगर देश जिले के बराबर है तो प्रधानमंत्री की हैसियत डिप्टी कलेक्टर से ज्यादा नहीं है। जितना बड़ा हो देश उतने अहंकार का फैलाव और सुख है।
फिर बड़ा देश हो तो हिंसा होगी, क्योंकि इतने विभिन्न लोगों को जबर्दस्ती एक ढांचे में ढालना पड़ेगा। अब चेष्टा चलती है कि हिंदी राष्ट्रभाषा हो जाए। यह जबर्दस्ती है, क्योंकि सारे मुल्क की राष्ट्रभाषा हिंदी है नहीं। तमिल तमिल को चाहता है, तेलगू तेलगू को चाहता है, बंगाली बंगाली को चाहता है, मराठी मराठी को चाहता है। और इन आकांक्षाओं में कुछ भी बुराई नहीं है। यह सीधी बात है कि अपनी मातृभाषा हर आदमी चाहता है बोले, प्रसन्न हो, गाए, अपने गीत रचे। अब जबर्दस्ती एक भाषा को थोपना पड़ेगा, क्योंकि देश बड़ा है, आज नहीं कल। और हिंदी की कलह चलती ही रहेगी। इस तरह हर चीज में जबर्दस्ती करनी पड़ती है। जहां जितने विभिन्न लोग होंगे, उतनी जबर्दस्ती हो जाएगी। बड़ा मुल्क एक बड़ा हिंसा का युद्ध हो जाता है। हर छोटी बात में कलह हो जाती है। और बड़े युद्ध का आकर्षण इसीलिए है कि लड़ना है किसी और बड़े दुश्मन से तो बड़े रहो; छोटे हो गए तो हार जाओगे। बड़े होने का रस लड़ाई के लिए है।
लाओत्से कहता है, "छोटी आबादी वाला छोटा सा देश हो।"
उसका मतलब यह है कि एक ही तरह के लोग, एक भाषा बोलने वाले लोग, एक रीति- रिवाज के लोग, जो परिवार की तरह रह सकें, ऐसा छोटा सा देश हो। कोई बड़े देशों की जरूरत नहीं है। वह राजनीति को जड़ से काट रहा है। राजनीतिज्ञ यह बरदाश्त न करेगा कि देश छोटे हों। राजनीतिज्ञ विस्तारवादी है, साम्राज्यवादी है। जितना बड़ा देश हो, उतना ही राजनीतिज्ञ की प्रतिभा बढ़ती जाती है और शिखर बड़ा होता जाता है।
लाओत्से कह रहा है, धार्मिक आदमी चाहेगा कि देश छोटे हों, इतने छोटे हों कि वहां एक ही तरह के लोग एक परिवार को बना कर रह जाएं। अच्छी दुनिया तभी पैदा होगी जब देश बहुत छोटे हों। छोटे देश लड़ न सकेंगे, बड़ी लड़ाई न कर सकेंगे। होगी भी लड़ाई तो छोटी-मोटी होगी--जैसे हाकी का मैच हो गया या फुटबाल का मैच हो गया, ऐसी होगी। कोई लड़ाई बड़ी नहीं हो सकती। बड़ा देश बड़ी

लड़ाई करता है। बड़े देशों के साथ महायुद्ध आते हैं। छोटे देशों के साथ अगर कभी होगा भी तो छोटा-मोटा झगड़ा होगा--एक गांव दूसरे गांव से झगड़ा कर ले। उसकी भी जरूरत न पड़े अगर लाओत्से की बात सुनी जाए।
"जहां जिन्सों की पूर्ति दस गुनी या सौ गुनी हो, उससे ज्यादा जितना वे खर्च कर सकते हैं।"
यह कैसे होगा? आवश्यकता और वासना का फर्क ख्याल में ले लेना चाहिए तो
यह हो सकता है। आवश्यकताएं तो बहुत थोड़ी हैं आदमी की; आवश्यकताएं तो पूर्ण हो सकती हैं, कोई अड़चन नहीं है; सब की पूरी हो सकती हैं। वासना नहीं पूरी हो सकती, वासना तो एक आदमी की नहीं पूरी हो सकती; सबका तो सवाल ही नहीं है। वासना का अर्थ हैः जो तुम्हें नहीं चाहिए उसकी मांग। वह कैसे पूरी होगी? आवश्यकता का अर्थ हैः जो जरूरत है उसकी मांग; वह पूरी हो सकती है। भोजन चाहिए, पानी चाहिए, निश्चित, कपड़ा चाहिए, छप्पर चाहिए। पूरा हो सकता है। इसमें कौन सी अड़चन है? और जब यह पूरा हो जाए तो तुम वृक्ष के नीचे बैठ कर बांसुरी बजा सकते हो। इसके पूरे होने में अड़चन कहां है? पशु-पक्षी पूरा कर लेते हैं; वृक्ष खड़े-खड़े पूरा कर लेते हैं, चल कर भी कहीं नहीं जाते; तो आदमी पूरा न कर सकेगा--जो शिखर है, जीवन के विकास की सर्वोत्तम कृति है? बड़ी सरलता से पूरा हो सकता है। जमीन बहुत खुशहाल थी; जमीन फिर खुशहाल
हो सकती है। आदमी की विक्षिप्तता रोकनी जरूरी है। कुछ चाहें गैर-जरूरी हैं। जैसे तुम्हें कोहिनूर चाहिए। अब कोहिनूर को खाओगे, पीओगे, क्या करोगे? बच्चा बीमार होगा तो कोहिनूर की दवाई बनाओगे? भूख लगेगी, कोहिनूर से पेट भरेगा? लेकिन तुम तैयार हो कि चाहे भूखे रहना पड़े, चाहे बच्चा मर जाए, लेकिन कोहिनूर होना चाहिए। पागल मालूम होते हो। कोहिनूर को सिर पर रख कर घूमोगे?
जापान में ऐसा हुआ। एक बड़ा फकीर था। सम्राट उससे प्रभावित हो गया। और
जब सम्राट प्रभावित होते हैं तो सम्राटों की अपनी भाषा, अपना ढंग, अपना पागलपन। प्रभावित हो गया तो उसने बड़े बहुमूल्य हीरे-जवाहरातों जड़ी हुई एक पोशाक बनवाई मखमल की, एक ताज बनवाया। क्योंकि सम्राट का गुरु! ताज और पोशाक लेकर वह उस फकीर की पहाड़ी पर गया जहां फकीर एक झाड़ के नीचे रहता था। और उसने उसे भेंट किया।
फकीर ने कहा, तुम दुखी होओगे अगर लौटाऊं, लेकिन मेरी भी फजीहत मत करवाओ। सम्राट ने कहा, मतलब? उस फकीर ने कहा, यहां न तो कोई आदमी आता न जाता। और राजधानियों से तो यहां कोई आता ही नहीं, जो इन कपड़ों को समझ सकता है और इस ताज को समझ सकता है। यहां तो जंगली जानवरों से मेरी दोस्ती है; हिरण हैं, मोर हैं, यही मेरे पास आते-जाते हैं। वे बहुत हंसेंगे और मेरी मजाक उड़ाएंगे कि यह आदमी देखो, पागल हो गया। यह क्या पहने हुए है! तो मेरी फजीहत मत करवाओ। मैं स्वीकार कर लेता हूं, फिर तुम इन्हें ले जाओ। क्योंकि यह भाषा यहां बिल्कुल बेकार है। इसका मैं करूंगा क्या? और ये पक्षी हंसेंगे, जानवर हंसेंगे। बड़ी बेइज्जती होगी।
उसने ठीक कहा। पशु-पक्षी हीरे-जवाहरातों की फिक्र नहीं करते। लेकिन क्या उनके सौंदर्य में कोई कमी है? जब मोर नाचता है तो कौन से कोहिनूर उसका मुकाबला कर सकते हैं! लेकिन तुम नाच भूल गए; अब तुम्हें कोहिनूर चाहिए। जब कोयल गाती है तो कौन से कोहिनूर की जरूरत है? लेकिन तुम गीत भूल गए; तुम्हें कोहिनूर चाहिए।
जीवन बड़ा सरल हो सकता है, जरा सी समझ होनी चाहिए। आवश्यकता बराबर पूरी करो। क्योंकि आवश्यकता पूरी न होगी तो तुम जीओगे कैसे? गीत कैसे गाओगे? नाचोगे कैसे? परमात्मा का धन्यवाद कैसे दोगे? आवश्यकता निश्चित पूरी करो। लेकिन थोड़ा समझने की कोशिश करो कि आवश्यकता वह है जो जरूरी है, वासना वह है जो बिल्कुल गैर-जरूरी है; जिसका कोई उपयोग नहीं है; जिसका एक ही उपयोग है कि वह अहंकार को भरती है। जिसके पास कोहिनूर है, उसका अहंकार मजबूत होता है; बस।
वासना वह है जो अहंकार को भरती है; आवश्यकता वह है जो शरीर को तृप्त करती है। तुम तृप्ति की खोज करो। तुम्हारा निसर्ग तृप्त हो।

लेकिन तुम्हारे महात्मा तुम्हें उलटा समझा रहे हैं। वे तुम्हें समझा रहे हैं, आवश्यकता काटो। वे तुमसे कह रहे हैं, वासना को बढ़ाओ कि मोक्ष छूने लगे। कोहिनूर तो दो कौड़ी का है, मोक्ष पाओ। धन पाकर क्या करोगे? परमात्मा को पाना है। वे तुम्हारी वासना को तो भयंकर रूप से बड़ा कर रहे हैं।
क्या करोगे परमात्मा का? भूख लगेगी, खाओगे? प्यास लगेगी, पीओगे? बच्चा बीमार होगा तो सिल पर घिस कर दवाई बनाओगे परमात्मा की? क्या करोगे? मोक्ष का क्या करना है?
तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हारी वासनाओं को इस पृथ्वी से दूसरे लोक में ले जा रहे हैं, बदल नहीं रहे। और कोहिनूर तो मिल भी जाए; मोक्ष और उपद्रव हो गया। कोहिनूर तो फिर भी पृथ्वी का हिस्सा है, मिल सकता है; मोक्ष को कहां पाओगे? अब तुम बड़े बेचैन और पागल हुए।
तो दुनिया में धन के दीवाने हैं और धर्म के दीवाने हैं। और मेरे अनुभव में ऐसा आया कि धन के दीवानों को तो थोड़ा-बहुत समझा दो तो समझ में भी आता है; धर्म का दीवाना सुनता ही नहीं। क्योंकि वह धर्म को पहले से ही महान समझ रहा है।
निश्चित ही, परमात्मा तुम्हारे जीवन में आएगा, लेकिन कोहिनूर की तरह नहीं। परमात्मा तुम्हारे जीवन में आएगा भूख में भोजन की तरह, प्यास में पानी की तरह, आनंद में एक गीत और नृत्य की तरह। मोक्ष तुम्हें मिल सकता है; मोक्ष तुम्हें मिलेगा जब तुम्हारी वासना छूट जाएगी, क्योंकि वही बंधन है। आवश्यकता मुक्ति है; वासना बंधन है। जब तुम सिर्फ आवश्यकता को पूरा कर लोगे, तुम पाओगे, तुम मुक्त हो।
कितनी छोटी सी जरूरत है जीवन की! थोड़े से श्रम से पूरी हो जाती है। और श्रम भी एक जरूरत है। इसे थोड़ा समझ लो। थोड़े से श्रम से आवश्यकता पूरी होती है। और उतना श्रम, वह भी जरूरी है, वह भी आवश्यकता है, नहीं तुम मुर्दा हो जाओगे। उतना श्रम तुम्हारे जीवन को जीवंत रखने के लिए जरूरी है। वासना पूरी नहीं होती और इतना श्रम करना पड़ता है कि जिसका कोई अंत नहीं। वह श्रम भी घातक हो जाता है।
जिस आदमी को चालीस साल के करीब हार्ट अटैक का दौरा न हो, समझना कि जीवन में असफल रहा। सफल आदमियों को तो होता ही है। सफलता का मतलब ही तब पता चलता है जब हार्ट अटैक हो। तुमने कभी किसी भिखारी को हार्ट अटैक होते देखा? होने का कोई कारण ही नहीं है। इतना तनाव भी तो होना चाहिए। हार्ट अटैक तो उनको होता है जिन्होंने धन कमा लिया और जो सोच रहे थे कि धन कमा कर भोगेंगे। जब भोगने का वक्त आता है, हार्ट अटैक हो जाता है। जब पद पर पहुंच गए तब हार्ट अटैक हो जाता है। जब सब ठीक होने के करीब मालूम हो रहा था तब खुद गैर-ठीक हो जाते हैं। जब भूख थी तब भोजन न किया; क्योंकि भोजन कैसे कर सकते हैं जब तक महल न निर्मित हो जाए? फिर महल निर्मित हो गया, भोजन तैयार हो गया, भूख न रही। अब खा नहीं सकते; अब भोजन कर नहीं सकते। क्योंकि इस बीच खुद नष्ट हो गए।
यह बड़े मजे की बात है। मकान तो बन जाता है; तुम खंडहर हो जाते हो। धन तो इकट्ठा हो जाता है; तुम बिल्कुल निर्धन हो जाते हो। जिंदगी का साज-संवार पूरा होते-होते-होते जिसको संगीत उठाना था, वही मर जाता है। सितार तो तैयार रहती है, संगीतज्ञ मर जाता है।
आवश्यकताएं बहुत थोड़ी हैं। और जो भी व्यक्ति ठीक से पहचान ले क्या है आवश्यकता और क्या है वासना, उसे मैं बुद्धिमान कहता हूं। उसने वेद न जाने हों, उपनिषद न पढ़े हों; कोई जरूरत नहीं। और क्या इतनी छोटी सी बात के लायक बुद्धि तुम्हारे पास नहीं है? सबके पास है। इतनी बुद्धि तो परमात्मा ने सबको दी है। तुम उपयोग नहीं कर रहे। तुम चालबाज हो। तुम खुद को धोखा दे रहे हो। इतनी सीधी-सीधी बात है। इसके लिए कोई बहुत गणित थोड़े ही बिठाना पड़ेगा कि क्या वासना है और क्या आवश्यकता है?
आवश्यकता को पूरा करो; भूल कर मत काटना। और वासना की दौड़ को पहले कदम
पर ही रोक देना। क्योंकि बाद में रुकना मुश्किल हो जाता है; दौड़ पकड़ जाती है तो ज्वार आ जाता है दौड़ का, बुखार आ जाता है। फिर रुकना मुश्किल हो जाता है। पहले कदम पर समझ कर रुक जाना। मत मांगना व्यर्थ की चीजें, क्योंकि

उनको पाकर भी क्या करोगे? सार्थक वही है जो तृप्ति देता हो। और तब तुम निश्चित पाओगे कि जिंदगी में चैन की बांसुरी बजने लगी।
लाओत्से कहता है, "जहां जिन्सों की पूर्ति दस गुनी या सौ गुनी है।"
अगर लोग आवश्यकताओं से जीएं तो हजार गुनी पूर्ति है। तुम्हारी प्यास
से पानी बहुत ज्यादा है। तुम्हारी भूख से भोजन बहुत ज्यादा है। तुम्हारे तन को ढंकने से बहुत ज्यादा कपड़े हो सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन अगर तुम वासना का तन ढंकना चाहते हो तो सारी दुनिया के कपड़े तुम्हारी वासना के तन को भी न ढंक सकेंगे। तुम सारी दुनिया को नंगा कर दो तो भी तुम नंगे रहोगे; तुम्हारी वासना का तन न ढंक सकेगा। इसे पहचानो। यह जीवन में क्रांति का सूत्रपात है।
"लोग अपने जीवन को मूल्य दें, और दूर-दूर प्रव्रजन न करें।"
लाओत्से कहता है, जीवन को मूल्य दो। अहोभाग्य है कि तुम जीवित हो। और कोई चीज मूल्यवान नहीं है; जीवन मूल्यवान है। जीवन को तुम किसी चीज के लिए भी खोने के लिए तैयार मत होना, क्योंकि कोई भी चीज जीवन से ज्यादा मूल्यवान नहीं है।
लेकिन तुम जीवन को तो किसी भी चीज पर गंवाने को तैयार हो। एक आदमी ने गाली दे दी; तुम तैयार हो कि अब चाहे जान रहे कि जाए! इस आदमी ने किया ही क्या है? एक गाली पर तुम जीवन को गंवाने को तैयार हो? धन कमा कर रहेंगे, चाहे जान रहे कि जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में चोर घुसे और उन्होंने छाती पर उसके बंदूक
रख दी और कहा कि चाबी दो, अन्यथा जीवन! मुल्ला ने कहा, जीवन ले लो; चाबी न दे सकूंगा। चोर भी थोड़े हैरान हुए; कहा, नसरुद्दीन! थोड़ा सोच लो, क्या कह रहे हो? उसने कहा, जीवन तो मुझे मुफ्त मिला था; तिजोड़ी के लिए मैंने बड़ी ताकत लगाई, बड़ी मेहनत की। जीवन तुम ले लो; चाबी मैं न दे सकूंगा। और फिर यह भी है कि तिजोड़ी तो बुढ़ापे के लिए बचा कर रखी है। जीवन भला ले लो, चलेगा; तिजोड़ी असंभव।
कहां-कहां तुम जीवन को गंवा रहे हो, थोड़ा सोचो। कभी धन के लिए, कभी पद
के लिए, प्रतिष्ठा के लिए। जीवन ऐसा लगता है, तुम्हें मुफ्त मिला है। जो सबसे ज्यादा बहुमूल्य है उसे तुम कहीं भी गंवाने को तैयार हो। जिससे ज्यादा मूल्यवान कुछ भी नहीं है, उसे तुम ऐसे फेंक रहे हो जैसे तुम्हें पता ही न हो कि तुम क्या फेंक रहे हो। और क्या कचरा तुम इकट्ठा करोगे जीवन गंवा कर?
लोग मेरे पास आते हैं। उनसे मैं कहता हूं, ध्यान करो। वे कहते हैं, फुर्सत नहीं। क्या कह रहे हैं वे? वे यह कह रहे हैं, जीवन के लिए फुर्सत नहीं है। प्रेम करो! फिर फुर्सत नहीं है। कब फुर्सत होगी? मरोगे तब फुर्सत होगी? तब कहोगे कि मर गए; अब कैसे ध्यान करें?
जीवन के लिए तुम्हारे पास फुर्सत ही नहीं है। कभी बैठते हो दो घड़ी, जैसे कोई भी काम न हो? उठाई बांसुरी, बजाने लगे; कि कुछ न किया, बैठ गए अपने बच्चों के साथ, खेलने लगे; कि कुछ न किया, लेट गए वृक्ष के तले, आने दी धूप, जाने दी छाया, पड़े रहे, कुछ न किया। नहीं, तुम कहोगे कि फुर्सत कहां है? तब तुम जीवन का स्वर सुन ही न पाओगे। क्योंकि जीवन के स्वर को केवल वे ही सुन सकते हैं जो बड़ी गहरी फुर्सत में हैं; काम जिन्हें व्यस्त नहीं करता।
और काम व्यस्त करेगा भी नहीं, अगर तुम आवश्यकताओं पर ही ठहरे रहो। काम
की व्यस्तता आती है वासना से। कमा लीं दो रोटी, पर्याप्त है। फिर तुम पाओगे फुर्सत जीवन को जीने की। अन्यथा आपाधापी में सुबह होती है सांझ होती है, जिंदगी तमाम होती है। मरते वक्त ही पता चलता है कि अरे, हम भी जीवित थे! कुछ कर न पाए। ऐसे ही खो गया; बड़ा अवसर मिला था!
"लोग अपने जीवन को मूल्य दें।"
और लाओत्से बड़ी अनूठी बात कहता है, "और दूर-दूर यात्रा न करें।"
लोग दूर-दूर की यात्रा क्यों करते हैं? दूर-दूर की यात्रा अंतर्यात्रा से बचने का साधन है। भीतर न जाकर, यहां-वहां जाते हैं। चले काशी। कहां जा रहे हैं? तीर्थयात्रा पर जा रहे हैं। भीतर जाते, वहां है काशी। चले काबा। हज करने जा रहे हैं, हाजी होना है। भीतर जाते, वहां है

काबा। वहां मोहम्मद भी, वहां कृष्ण भी, वहां बुद्ध भी, वहां तुम्हारा जीवन का सर्वोत्तम रूप विराजमान है। वहां पुरुषोत्तम बैठा है।
लाओत्से कहता है, लोग दूर-दूर प्रव्रजन न करें, यहां-वहां न जाएं। क्योंकि बाहर की यात्रा में समय खो जाता है; भीतर की यात्रा के लिए मौका नहीं मिलता। और जाकर करोगे भी क्या? पक्षी वहां भी यही गीत गाते हैं; वृक्ष वहां भी यही फूल खिलाते हैं; आकाश वहां भी ऐसा ही है और ऐसे ही तारे हैं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं सारी दुनिया से यात्रा करते। वे कहते हैं कि
बस एक दिन यहां, फिर नेपाल जाना है। तुम यहां किसलिए आए? कि बस आना था। लंदन से यहां आना था; यहां से नेपाल जाना है! नेपाल से कहां जाओगे? काबुल जाना है। तो ऐसे ही जाते-जाते-जाते चले जाओगे? रुकोगे कहीं? नहीं, वे कहते हैं कि बहुत दिन की अभिलाषा है कि नेपाल जाना है। बहुत दिन की अभिलाषा थी कि मेरे पास आना है। वे कहते हैं, वह अभिलाषा पूरी हो गई, आ गए। अब चले। ऐसे ही नेपाल में जाओगे; क्या पाओगे वहां? आकाश यही है सब जगह; चांद-तारे यही हैं; यही आदमी हैं; यही रंग-रूप हैं; यही संसार है। दूसरे चांद-तारों पर भी अगर आदमी होगा तो सब यही होगा! कहां जाना है?
लाओत्से कहता है, "लोग अपने जीवन को मूल्य दें, और दूर-दूर प्रव्रजन न करें। वहां नाव और गाड़ियां तो हों, उस राज्य में, लेकिन उन पर चढ़ने वाले न हों। वहां कवच और शस्त्र तो हों, लेकिन उन्हें प्रदर्शित करने का अवसर न हो। गिनती के लिए लोग फिर से रस्सी में गांठें बांधना शुरू करें।"
गणित ने लोगों को बहुत नुकसान पहुंचाया है। तुम एक थोड़ा सोचो, अगर तुम अंगुलियों पर ही गिन सकते हो या रस्सी में गांठ बांध कर गिन सकते हो तो तुम कितने धन की कामना करोगे? सोचो! रस्सी पर कितनी गांठें बांधोगे? थक जाओगे। लेकिन गिनती ने बड़ी सुविधा बना दी है--शंख, महाशंख, जो भी तुम्हें सोचना हो। गिनती ने वासना को बड़ी गति दी। जिंदगी का काम तो अंगुलियों पर गिनने से चल जाता है। और बड़ी गिनती की जरूरत नहीं है। वासना का काम नहीं चलता। वासना के लिए बड़ी संख्या चाहिए, बड़ा फैलाव चाहिए। सब संख्याएं छोटी पड़ जाती हैं; वासना का फैलाव सब संख्याओं से बड़ा है।
लाओत्से कहता है, लोग फिर से गांठें बांधने लगें रस्सियों पर, क्योंकि गणित लोगों को चालाक बनाता है।
असल में, सब शिक्षा लोगों को चालाक बनाती है। शिक्षित आदमी और सीधा- सादा, जरा कठिन है। क्योंकि शिक्षा आदमी को कुटिल, होशियार, चालबाज बनाती है। शिक्षा लोगों को, दूसरों का शोषण कैसे किया जाए अपनी वासना के लिए, इसकी कला देती है।
लाओत्से कहता है, लोग फिर से अशिक्षित हो जाएं, क्योंकि शिक्षा ने कुछ दिया नहीं। लोगों का जीवन खो गया शिक्षा में; कुछ पाया नहीं।
"गिनती के लिए लोग फिर से रस्सी में गांठें बांधना शुरू करें। वे अपने भोजन में रस लें।"
तुमने सुना है किसी महात्मा को कहते कि वे अपने भोजन में रस लें?
"अपनी पोशाक सुंदर बनाएं।"
तुमने सुना है कभी किसी महात्मा को कहते?
"अपने घरों से संतुष्ट रहें। अपने रीति-रिवाज का मजा लें।"
लाओत्से यह कह रहा है, कर लो सब चीजें सरल; कुछ हर्जा नहीं है। भोजन में रस लो। न लेने में हर्जा है। क्योंकि अगर भोजन में रस न लिया तो वह जो रस लेने की वासना रह जाएगी, वह किसी और चीज में रस लेगी। और वह रस तुम्हें अप्राकृतिक बनाएगा। और वह रस तुम्हें विकृति में ले जाएगा। स्वाभाविक रस ले लो; अस्वाभाविक रस के लिए बचने ही मत दो जगह। छोटी-छोटी चीजों में रस लो, उसका अर्थ है। स्नान करने में रस लो। वह भी अनूठा अनुभव है, अगर तुम मौजूद रहो। गिरती जल की धार, किसी जलप्रपात के नीचे। बहती नदी में, बहती जल की धार, उसका शीतल स्पर्श।
अगर तुम मौजूद हो और रस लेने को तैयार हो तो छोटी-छोटी चीजें इतनी रसपूर्ण हैं कि कौन फिक्र करता है मोक्ष की? मोक्ष की फिक्र तो वे ही करते हैं जिनके जीवन में सब तरफ रस खो गया। कौन चिंता करता है मंदिर-मस्जिदों

की? अपने छोटे घर में संतुष्ट रहो; वही मंदिर है। संतोष मंदिर है। अपने छोटे से घर को मंदिर जैसा बना लो; संतुष्ट रहो। उसे बड़ा करने की जरूरत नहीं है। बड़े से तो वासना पैदा होगी। उस छोटे में संतोष भर देने की जरूरत है। तब आवश्यकता तृप्त हो जाएगी। कितना बड़ा घर चाहिए आदमी को? छोटा सा घर और संतोष, बहुत बड़ा घर हो जाता है। और बड़े से बड़ा घर और असंतोष, बड़ा छोटा हो जाता है। महलों में तुम पाओगे इतनी जगह नहीं है जितनी छोटे घर में जगह होती है।
मैंने सुना है, एक फकीर हुआ। वह रात सोने जा ही रहा था कि किसी ने द्वार पर दस्तक दी। बड़ी छोटी झोपड़ी थी; पति और पत्नी सो सकते थे, बस इतनी ही जगह थी। पति ने पत्नी से कहा, द्वार खोल। बाहर तूफान है। शायद कोई भटका हुआ यात्री। पर पत्नी ने कहा, जगह कहां? उसने कहा कि दो के सोने के लायक काफी है, तीन के बैठने के लिए काफी है। यह कोई महल नहीं है कि यहां जगह कम हो जाए। यह तो गरीब का घर है; यहां जगह की क्या कमी? दरवाजा खोल दिया गया; मेहमान भीतर आ गया। वे तीनों बैठ गए। थोड़ी ही देर बीती होगी कि फिर किसी ने द्वार पर दस्तक दी। फकीर ने कहा मेहमान से, जो कि द्वार के पास बैठा था, कि द्वार खोल। तो उस मेहमान ने कहा, जगह कहां? फकीर ने कहा, यह कोई महल नहीं है, पागल! तीन के बैठने के लिए काफी है; चार के खड़े होने के लिए काफी है। गरीब का घर है, यहां बहुत जगह है। हम जगह बना लेंगे।
उस फकीर ने बड़ी अनूठी बात कही कि यह कोई महल नहीं है कि जगह कम पड़ जाए। महल में कितनी जगह होती है, मगर सदा कम होती है। वासना जहां है, असंतोष जहां है, अतृप्ति जहां है, वहां सभी छोटा हो जाता है। जहां तृप्ति है, वहां सभी बड़ा हो जाता है। छोटा सा घर महल हो सकता है--तृप्ति से जुड़ जाए। बड़े से बड़ा महल झोपड़े जैसा हो जाता है--अतृप्ति से जुड़ जाए। तो तुम क्या करोगे? महल चाहोगे कि छोटे से घर को तृप्ति से जोड़ लेना चाहोगे?
लाओत्से कहता है, "भोजन में रस लें। अपनी पोशाक सुंदर बनाएं।"
लाओत्से बड़ा नैसर्गिक है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। मोर नाचता है, देखो उसके पंख! पक्षियों के रंग! तितलियों के रूप! प्रकृति बड़ी रंगीन है। आदमी उसी प्रकृति से आया है। थोड़ी रंगीन पोशाक एकदम जमती है। इतना स्वीकार है। जब पशु-पक्षी तक रंग से आनंदित होते हैं।
पुराने दिनों में आदमी सुंदर पोशाक पहनते थे, थोड़ा-बहुत आभूषण भी पहनते थे। शानदार दुनिया थी। फिर बात बदल गई। आदमी नहीं पहनते अब शानदार पोशाक; औरतें पहनती हैं। यह अप्राकृतिक है। क्योंकि स्त्री तो अपने आप में सुंदर है। उसके लिए सुंदर पोशाक की जरूरत नहीं है। प्रकृति में देखो। मोर के पंख हैं; मादा मोर के पंख नहीं हैं। वह नर है जो पंख फैलाता है। जो कोयल गीत गाती है वह नर है। मादा कोयल के पास गीत नहीं है। उसका तो मादा होना ही काफी है। नर को थोड़ी जरूरत है; वह उतना सुंदर नहीं है।
इसलिए पुराने दिनों में लोग थोड़ा आभूषण पहनते, थोड़ी रंगीन पोशाक। कोई बड़ी मंहगी नहीं, रंगों का कोई बड़ा मूल्य थोड़े ही है। सस्ते रंग हैं, जगह-जगह मिल जाते हैं, सरलता से उपलब्ध हैं। और कोई हीरे-मोती थोड़े ही लगा लेने हैं; फूल भी लगाए जा सकते हैं। लकड़ी के टुकड़ों से भी आभूषण बन जाते हैं। लाओत्से कहता है, "अपनी पोशाक सुंदर बनाएं।"
तुम्हारे साधु पुरुष इन छोटी-छोटी बातों में तुम्हें सुख नहीं लेने देते। तुम्हारे साधु पुरुष बड़े कठोर हैं। वे जीवन में रस लेने के दुश्मन हैं। लाओत्से कहता है, जो सहज है वह ठीक है। सहज यानी ठीक। यह बिल्कुल सहज है।
मुर्गा देखो; कलगी है। मुर्गी बिना कलगी के है। क्या शान से चलता है मुर्गा! सारा जगत मात है! लोग सुंदर पोशाक पहनें, शान से चलें, गीत गाएं, नाचें, भोजन में रस लें। छोटा छप्पर हो, लेकिन संतोष का बड़ा छप्पर हो! अपने रीति-रिवाज का मजा लें। इस चिंता में न पड़ें कि कौन सी रीति ठीक है, कौन सा रिवाज गलत है। कोई रीति-रिवाज ठीक-गलत नहीं है, मजे में सारी बात है। तुम्हें आनंद आता है तो बिल्कुल ठीक है, होली मनाओ! इस फिक्र में मत पड़ो कि मनोवैज्ञानिक क्या कहते हैं। इस चिंता में पड़ने की जरूरत क्या है? ये

मनोवैज्ञानिकों से पूछने की आवश्यकता कहां है? और कहीं मनोवैज्ञानिकों से पूछ कर कुछ निर्णय होगा?
मनोवैज्ञानिक कहेगा कि होली का मतलब है कि लोग दमित हैं, लोगों के भीतर दमन है, दमन को निकाल रहे हैं। उन्होंने होली का मजा भी खराब कर दिया। अब तुम किसी पर पिचकारी नहीं चला सकते, क्योंकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसका मतलब तुम दमन निकाल रहे हो। तुम किसी पर रंग नहीं फेंक सकते, गुलाल नहीं फेंक सकते। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, तुम किसी पर पत्थर फेंकना चाहते थे, वह तुम नहीं फेंक पाए, यह बहाना है। तुम जबर्दस्ती किसी के मुंह पर रंग पोत रहे हो, यह हिंसा है।
मनोवैज्ञानिक होली तक न करने देंगे; दीवाली पर दीये न जलाने देंगे।
वे कोई न कोई मतलब निकाल लेंगे। मनोवैज्ञानिकों का एक ही काम हैः बैठे हुए मतलब निकालते रहें और चीजों का रहस्य खराब करते रहें। उनकी जिंदगी तो खराब हो ही गई; वे दूसरों की जिंदगी खराब कर रहे हैं।
लाओत्से कहता है, इसकी फिक्र मत करो कि रीति-रिवाज का क्या अर्थ है। रीति-रिवाज मजा देता है, बस काफी है। मजा अर्थ है। होली भी मनाओ, दीवाली भी मनाओ। कभी दीये भी जलाओ, कभी रंग-गुलाल भी उड़ाओ। लाओत्से यह कह रहा है, जिंदगी को सरल और नैसर्गिक रहने दो। उस पर बड़ी व्याख्याएं मत थोपो। "पास-पड़ोस के गांव एक-दूसरे की नजर में हों, ताकि वे एक-दूसरे के कुत्तों का भौंकना और मुर्गों की बांग सुन सकें। और लोग अपने अंतिम दिनों तक भी अपने देश से बाहर न गए हों।"
लाओत्से यह कह रहा है, गांव पास-पड़ोस में होंगे, लेकिन क्या जरूरत है दूसरे गांव में जाने की? वह भी मन की रुग्ण दशा है जो भटकती है। अपना गांव काफी है। अपना आकाश बहुत। अपने फूल पर्याप्त। तो लाओत्से कहता है कि इतने पड़ोस में गांव होंगे कि कुत्ते भौंकेंगे तो आवाज सुनाई पड़ेगी, मुर्गे सुबह बांग देंगे तो भोर में उनकी आवाज सुनाई पड़ेगी पड़ोस के गांव की, पड़ोस के गांव में लोग सांझ को रोटियां बनाएंगे तो आकाश में उनका धुआं दिखाई पड़ेगा। इतने करीब भी जो गांव हैं, उन तक भी लोग क्यों जाएं?
जो तृप्त है वह कहीं नहीं जाता; अतृप्त भटकता है। जो तृप्त है वह ठहर जाता है। तृप्ति एक बड़ा ठहराव है; एक शांत झील जिसमें लहर भी नहीं उठती यात्रा की, तरंग भी नहीं उठती।
पश्चिम में लोग बहुत अशांत हैं तो बड़ी यात्रा शुरू हो गई।
एक मित्र मेरे पास आए। मैंने उनसे पूछा, आप कहां जा रहे हैं? उन्होंने कहा, अब मैं यूनान जा रहा हूं। सारी दुनिया देख डाली है, बस एक सपना और रह गया है--यूनान देखने का। उम्र उनकी कोई पैंसठ साल; थक गए हैं। सारी दुनिया देख डाली है, एक सिर्फ यूनान रह गया है, वह कहीं बिना देखा न रह जाए। मैंने उनसे पूछा कि सारी दुनिया देख कर क्या पाया? कंधे बिचकाए उन्होंने। कहा, पाया तो कुछ भी नहीं। तो मैंने कहा, वह यूनान देख कर और क्या पा लोगे जब सारी दुनिया देख कर न पाया? नहीं, उन्होंने कहा कि एक बात अटकी न रह जाए मन में। पता नहीं, जो कहीं नहीं मिला वह यूनान में मिल जाए!
लोग भटक रहे हैं, यहां से वहां जा रहे हैं। एक बेचैनी है चित्त की। इसलिए पश्चिम की बेचैनी के कारण रोज स्पीड बढ़ती जाती है। तुमने कभी ख्याल न किया हो, अगर तुम कभी कार चलाते हो तो जिस दिन तुम बेचैन होते हो, उस दिन एक्सीलरेटर ज्यादा दबता है; उस दिन तुम सीमा के बाहर गाड़ी को चलाते हो। बेचैनी तीव्रता चाहती है। इसलिए पश्चिम में बेचैनी के कारण नये-नये साधन खोजे जा रहे हैं। चांद पर जाना है।
यहां कुछ न मिला; तुम चांद को खराब करने और किसलिए जा रहे हो? कृपा करो, अपनी बीमारी को यहीं जमीन तक सीमित रखो। चांद को क्यों भ्रष्ट करने का विचार किया? जहां तुम्हारे चरण पड़ेंगे वहीं उपद्रव शुरू हो जाएगा। नहीं लेकिन बेचैनी है! चांद पर जाना है। कहां रुकेगी यह बेचैनी?
लाओत्से कहता है, पड़ोस के गांव में भी जाने की क्या जरूरत है?
इसे थोड़ा समझ लेना। इसका मतलब है। इसका मतलब है कि जब तुम अपने भीतर ठहर जाते हो तो सब बाहरी यात्राएं रुक जाती हैं, व्यर्थ हो जाती हैं। तुम

इतने प्रसन्न हो, जहां हो वहीं आकाश का कोना तुम्हारे लिए मोक्ष हो गया; वहीं स्वर्ग अवतरित हुआ है। अब और कहां जाना है?
कहता है लाओत्से, छोटा हो देश ताकि बड़ी राजनीति के जाल खड़े न हों। लोगों की वासनाएं न हों; आवश्यकताएं बराबर तृप्त की जाएं। ताकि जितनी आवश्यकताएं हैं उससे हजार गुनी पूर्ति के साधन हों। कोई दीन-दरिद्र अनुभव न करे। लोग शिक्षा, संस्कार, सभ्यता, गणित भूल जाएं; फिर से गिनने लगें अंगुलियों पर या बांधने लगें गांठें रस्सियों में, ताकि चालाकी खो जाए। सभ्य आदमी बड़ी बुरी तरह से छिपा हुआ असभ्य है। असभ्य भी इतने असभ्य नहीं। असभ्य बड़े सीधे-सादे लोग हैं।
लाओत्से कहता है, लोग वापस प्रकृति के साथ दोस्ती बना लें, दुश्मनी छोड़ दें। और जीवन की छोटी-छोटी चीजें प्रार्थनापूर्ण हो जाएं, अहोभाव हो जाएं। कोई उनकी निंदा न करे। उनकी निंदा करके ही उपद्रव हुआ है।
जीवन अपने आप में मूल्यवान है; उसकी इनट्रिंजिक वैल्यू है, उसकी आंतरिक मूल्यवत्ता है। जीवन किसी और कारण से मूल्यवान नहीं है। जीवन अपने आप में मूल्य है, आखिरी चरम मूल्य है। लोग जीएं और लोगों का जीवन एक नृत्य और गीत बन जाए। इस गीत और नृत्य से ही परमात्मा की सुगंध उठेगी। इस गीत और नृत्य से ही, कभी तुम पाओगे, तुम्हारे चरण मंदिर के द्वार पर आ गए।
जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। जीवन की गहनता ही है परमात्मा। और जीवन के अतिरिक्त कोई तीर्थ नहीं है। जीवन में ही जो उतर जाता है वह तीर्थ पर पहुंच जाता है।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ छब्बीसवां प्रवचन

परमात्मा का आशीर्वाद बरस रहा है

Chapter 81

The Way Of Heaven

True words are not fine-sounding; Fine-sounding words are not true.
A good man does not argue;
He who argues is not a good man.
The wise one does not know many things;
He who knows many things is not wise.
The Sage does not accumulate (for himself).
He lives for other people, and grows richer himself;
He gives to other people, and has greater abundance.
The Tao of Heaven blesses, but does not harm.
The way of the Sage accomplishes, but does not contend.

अध्याय 81

स्वर्ग का ढंग

सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते हैं; कर्ण-मधुर शब्द सच्चे नहीं होते।
सज्जन विवाद नहीं करता है; जो विवाद करता है, वह सज्जन नहीं।
बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता है;
जो बहुत बातें जानता है, वह बुद्धिमान नहीं।
संत अपने लिए संग्रह नहीं करते।
वे दूसरे लोगों के लिए जीते हैं, और स्वयं समृद्ध होते जाते हैं;
वे दूसरों को दान देते हैं, और स्वयं बढ़ती प्रचुरता को उपलब्ध होते हैं।
स्वर्ग का ताओ आशीर्वाद देता है, लेकिन हानि नहीं करता।
संत का ढंग संपन्न करता है, लेकिन संघर्ष नहीं करता।

मनुष्य जैसा है वैसा एक झूठ है, एक गहरा असत्य, एक मिथ्यात्व, एक वंचना; पर्त दर पर्त झूठ और झूठ। जैसे प्याज को कोई छीले, और हर पर्त के बाद नयी पर्त निकलती आए, ऐसे मनुष्य का झूठ है। गहरी झूठ की आदत है।
सत्य अपने आप में न तो कर्ण-मधुर है और न कठोर; न तो मीठा है न कड़वा। लेकिन मनुष्य इतना असत्य है; इस कारण सत्य के शब्द सदा ही कठोर मालूम पड़ेंगे। तुम्हारे असत्य के कारण। सत्य तो निष्पक्ष है। सत्य का कोई स्वाद नहीं है। सत्य तो स्वादातीत है। लेकिन तुम्हें स्वाद आएगा, तुम पर निर्भर करेगा। अगर तुम सच्चे हो तो सत्य से ज्यादा कर्ण-मधुर और कुछ भी नहीं। अगर तुम झूठ हो, जैसे कि तुम बड़ी मात्रा में हो, तो सत्य हर जगह से चोट करेगा, चुभेगा, कांटे जैसा मालूम पड़ेगा।
इसे ठीक से समझ लेना, तो ही लाओत्से के वचन समझ में आ सकेंगे। अन्यथा भूल हो सकती है।
जिस व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व के झूठ का परित्याग कर दिया, जो सहज
और सरल हो गया, उसके लिए सत्य तो अमृत जैसा मालूम होगा। उसके लिए बस सत्य ही पीने जैसा लगेगा। वह वर्षों प्यासा रह सकता है। जैसे चातक की कथा है कि स्वाति की बूंद की प्रतीक्षा करता है। सरोवर भरा है जल से, लेकिन स्वाति

की बूंद की प्रतीक्षा करता है। ऐसे ही बहुत ज्ञान भरा रहे सब तरफ, लेकिन सत्य का खोजी, सत्य की बूंद की प्रतीक्षा करता है। वही है अमृत, वही बूंद बनेगी मोती उसके हृदय में जाकर, उसी बूंद से उसके मोक्ष का द्वार खुलेगा। सत्य अपने आप में न तो मीठा है न कड़वा। जो सत्य को उपलब्ध हो गया है, जो सत्य हो गया है, उसे न तो सत्य मीठा मालूम पड़ेगा न कड़वा। सत्य तो उसके होने के ढंग में एक हो जाएगा। उसका कोई स्वाद ही न आएगा। स्वाद तो उसका आता है जो हमसे विजातीय हो, हमसे भिन्न हो। तुम्हें अपना ही स्वाद आता है? अपना क्या स्वाद! सत्य को जो उपलब्ध हो गया है उसे सत्य का कोई भी स्वाद न आएगा; उसे पता ही न रहेगा कि सत्य क्या है, असत्य क्या है। वह तो भूल ही जाएगा, संसार क्या है, मोक्ष क्या है। ये तो सब सपने हो जाएंगे, जो टूट गए। वह नींद तो मिट गई। जो सत्य में जाग गया है, सपनों के स्वाद उसके खो ही जाएंगे। लेकिन तुम जागे नहीं, तुम गहन निद्रा में हो। इसलिए जो भी जगाएगा वह कड़वा मालूम पड़ेगा। जो भी जगाएगा! क्योंकि नींद को तुमने बड़ा मधुर मान रखा है। तो जो भी तुम्हारी नींद तोड़ेगा वही दुश्मन मालूम पड़ेगा। सुबह कभी तुम्हें उठना हो पांच बजे तो तुम कह कर सोते हो कि मुझे उठा देना। तुम ही कह कर सोते हो कि उठा देना, और सुबह पांच बजे जब तुम्हें कोई उठाने लगता है तो शत्रु जैसा मालूम पड़ता है। नींद बड़ी मधुर लग रही है तुम्हें, और झूठ बड़े प्यारे लग रहे हैं। झूठ को ही तुमने अपने चारों तरफ बसाया है। वही तुम्हारा घर है। वही तुम्हारी दुनिया है। उसके टूटने में लगता है तुम ही टूट जाओगे। नींद टूटने में ऐसा लगता है तुम टूट रहे हो।
जागरण का तो कोई पता नहीं है, नींद का ही पता है। उसी नींद में मीठे सपने भी देखे हैं। माना कि दुखद स्वप्न भी देखे हैं, लेकिन आदमी दुख-स्वप्नों को तो भूलता चला जाता है; मीठे स्वप्नों को याद रखता है। दुख को तो स्मृति के बाहर कर देता है; सुख कीशृंखला को संजो लेता है। उसी की याद में जो सुख अतीत में पाया, और उसी की आशा में कि फिर-फिर उसी सुख को भविष्य में पाऊंगा, आदमी चाहता है सोया रहे। तो जो भी जगाएगा वह शत्रु मालूम पड़ेगा। सुबह की अजान, मस्जिद से उठती हुई, कर्ण-मधुर नहीं मालूम होगी, कड़वापन लगेगा। कड़वापन तुम्हारे कारण। ऐसा ही समझो कि बहुत दिन तुम बीमार रहे हो; बुखार से अभी-अभी उठे हो। मिष्ठान्न भी मीठा नहीं लगता। तुम्हारी जीभ अस्वस्थ है। मिठाई की मिठास, मिठास और मिठाई में कम, तुम्हारी जीभ पर निर्भर है।
तुम उदास हो; आकाश में पूर्णिमा का चांद निकला हो, वह भी उदास लगता है। लगता है रो रहा है जार-जार। अगर तुम बहुत दुखी हो--कोई मर गया है, प्रीतम से छूट गए हो, कोई दुर्घटना घटी है--लगेगा कि चांद से आंसू टपक रहे हैं। फूल कुम्हलाए हुए दिखाई पड़ेंगे। वृक्षों में सन्नाटा होगा उदासी का। तुम जैसे होते हो वही व्याख्या तुम्हारे चारों तरफ फैल जाती है। फिर प्रीतम घर लौट आया है; तो अमावस की रात भी पूर्णमासी से ज्यादा उजाली मालूम पड़ेगी; सूखे कुम्हलाए फूलों में भी नये जीवन का आविर्भाव दिखाई पड़ेगा; सूख गए पत्ते हरे मालूम पड़ेंगे। जब तुम्हारे भीतर सावन है तो सब तरफ सावन हो जाता है। जब तुम्हारे भीतर मरुस्थल है, सब तरफ मरुस्थल हो जाता है। क्योंकि तुम केंद्र हो तुम्हारे जगत के। और तुमसे ही व्याख्या उठती है।
तो जब लाओत्से कहता है कि सत्य शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते, और कर्ण-मधुर शब्द सत्य नहीं होते, तो तुम से कुछ कह रहा है। यह सत्य के संबंध में वह कुछ भी नहीं कह रहा है; क्योंकि सत्य के संबंध में तो कुछ भी कहा नहीं जा सकता। वह स्वयं ही कहता है पहले सूत्र में ताओ तेह किंग के कि जो कहा जा सके वह सत्य नहीं है; जो नहीं कहा जा सके वही सत्य है। तो सत्य के संबंध में तो लाओत्से कुछ भी नहीं कह रहा है, तुम्हारे संबंध में कह रहा है। तुम इतने झूठ हो गए हो कि तुम्हें सत्य का स्वाद ही खो गया है। तुम इतने विपरीत चले गए हो कि सत्य तुम्हें निकट नहीं मालूम पड़ता, दूर मालूम पड़ता है। दूर ही नहीं मालूम पड़ता, दुश्मन मालूम पड़ता है।
मैंने सुना है कि बर्नार्ड शॉ से उसके एक विरोधी ने कहा कि तुम मेरे संबंध में झूठी बातों का प्रचार बंद करो, अन्यथा मुझसे बुरा कोई भी न होगा! बर्नार्ड शॉ ने कहा, रुको, पहले ठीक से सोच लो। अभी मैं तुम्हारे संबंध में

झूठी बातों का प्रचार कर रहा हूं, अगर मैं सत्य बातों का प्रचार करने लगूं तब?
बर्नार्ड शॉ यह कह रहा है कि ये तो झूठी बातें हैं तुम्हारे संबंध में, ये इतना दुख दे ही हैं; अगर सत्य बातों का प्रचार करूं तो कितना दुख न देंगी! तुम मेरी अनुकंपा अनुभव करो कि मैं तुम्हारे संबंध में सत्य बातें नहीं कह रहा हूं।
तुम्हारे संबंध में कोई झूठ कह देता है। अगर वह सच में ही झूठ है तो तुम परेशान नहीं होते। उसमें कोई सचाई होगी, तभी तुम परेशान होते हो। अगर उसमें बिल्कुल ही सचाई न हो तो परेशानी होती ही नहीं। उसमें जितनी ज्यादा सचाई होगी उतनी परेशानी बढ़ती जाती है।
तुम बेईमान हो और कोई बेईमान कह देता है। तो तुम तलवार निकाल कर खड़े
हो जाते हो, क्योंकि यह तो जीवन का सवाल हो गया। हो तुम बेईमान, और अगर यह बात फैल गई कि बेईमान हो तो बेईमानी करने की सुविधा क्षीण हो जाएगी। बेईमानी तो तभी तक कर सकते हो जब तक लोग मानते हैं कि तुम ईमानदार हो। लोग जब तक मानते हैं ईमानदार हो तभी तक तो बेईमानी की गुंजाइश है। बेईमानी के अपने पैर नहीं हैं; वह भी ईमानदारी के कंधों पर बैठ कर चलती है। झूठ के अपने कोई पैर नहीं हैं; वह भी सत्य का सहारा लेता है। तो अगर कोई तुमसे कह दे कि तुम झूठे हो, अगर तुम सच में ही झूठे हो तो तुम उबल पड़ोगे, भयंकर क्रोध का जन्म होगा। वह क्रोध ही बता रहा है कि सत्य ने चोट की। और अगर वह झूठ ही था बिल्कुल तो तुम हंस कर निकल जाते।
इसलिए तो संतों को तुम गाली देते हो, वे हंस कर निकल जाते हैं। इसलिए नहीं कि तुम कुत्ते हो और वे हाथी हैं, कि भौंकते रहें कुत्ते, हाथी कोई फिक्र नहीं करता। नहीं, यह तो बड़े अहंकार की भावना हो गई। वे सिर्फ इसलिए हंस कर निकल जाते हैं कि बात में कोई बल ही नहीं है; क्रोध के लायक मामला ही नहीं है; हंसने योग्य ही है। और तुम पर उन्हें दया आती है कि तुम कैसे झूठ में पड़े हो।
सत्य चोट करता है, क्योंकि तुम झूठे हो। सत्य कड़वा लगता है, क्योंकि तुम झूठे हो। जिसने भी हिम्मत की तुमसे सत्य कहने की उससे ही तुम्हारी दुश्मनी बन जाएगी।
ऐसा हुआ। मेरे एक परिचित थे, ख्यातिनाम व्यक्ति थे, सेठ गोविंद दास। संसद के सदस्य थे पचास वर्षों से। दुनिया में कोई आदमी इतने लंबे समय तक किसी संसद का सदस्य नहीं रहा। कोई सौ किताबों के लेखक थे। जीवन भर राजनीति और साहित्य में बिताया था। फिर उनके लड़के की मृत्यु हो गई। लड़का मध्यप्रदेश में उपमंत्री था। और उससे उन्हें बड़ी आशाएं थीं, बड़ी महत्वाकांक्षाएं थीं। उसकी मृत्यु जैसे उनकी ही महत्वाकांक्षा की मृत्यु थी। बड़े दुखी हो गए, आत्महत्या की बात सोचने लगे। और पहली दफा साधु-संतों के पास जाना शुरू किया।
उसी दुख की घड़ी में वे मेरे पास भी आ गए। मुझसे कहने लगे कि मैं आचार्य तुलसी के पास गया था, जैन मुनि, प्रसिद्ध जैन मुनि, और उनसे जब मैंने कहा कि मेरे बेटे की मृत्यु हो गई है, आप कुछ खोज कर बताएं कि उसका जन्म हो गया या नहीं, तो उन्होंने आंख बंद की और वे ध्यान में लीन हो गए। और फिर उन्होंने कहा कि आप बड़े सौभाग्यशाली हैं, आपका बेटा तो स्वर्ग में देवता हो गया। बड़े प्रसन्न मेरे पास आए। कहने लगे, आदमी तो यह है आचार्य तुलसी। बड़े साधु-संन्यासी देखे, बाकी ऐसा गहरा खोजी नहीं देखा। मैंने उनसे कहा कि मैं एक संन्यासी को जानता हूं जो स्वर्ग-नरक के संबंध में तुलसी जी से बहुत आगे है। आप उनके पास जाएं। कभी आप इलाहाबाद जाएं तो वहां एक स्वामी राम हैं उनसे आप मिलें। उनका अन्वेषण स्वर्ग-नरक में तुलसी जी से बहुत आगे है। तुलसी जी तो अभी सिक्खड़ हैं।
जरूर कहा कि जाऊंगा। गए। राम स्वामी को मैंने खबर कर दी थी कि भई क्या- क्या कहना। उन्होंने आंख बंद की। आंख ही बंद नहीं की, बड़े हाथ-पैर फड़फड़ाए, और चिल्लाए, और चीखे, और खड़े हुए। सेठ जी बहुत प्रभावित हुए कि यह तो तुलसी जी ने भी नहीं किया था। फिर उन्होंने बिल्कुल उसी भावदशा में कहा, एक ग्राम है जबलपुर के पास, सालीवाड़ा ग्राम उसका नाम है। सेठ जी चौंके। उनका

ही गांव है छोटा; खेती-बाड़ी और बगीचा वहां है। सालीवाड़ा! और वहां एक पीपल का वृक्ष है बड़ा प्राचीन। तब तो पक्का हो गया, यह आदमी बड़ा गहरा है। है वृक्ष वहां। उसी वृक्ष पर तुम्हारा लड़का प्रेत होकर रहने लगा है। बहुत धक्का लगा। प्रेत? और राम ने कहा, थोड़ा सोच-समझ कर जाना, क्योंकि खतरनाक प्रेत हो गया है।
क्योंकि राजनीतिक जब मरते हैं तो खतरनाक प्रेत होते ही हैं। कभी राजनीतिक को स्वर्ग जाते सुना?
सेठ जी की सब आस्था डगमगा गई। इस आदमी पर भरोसा न आया कि यह भी कोई साधु है! और फिर कहा उस स्वामी ने, और जबलपुर में एक मंदिर है, गोपालदास जी का मंदिर। वह सेठ जी का ही पुश्तैनी मंदिर है। वहां भी तुम्हारा लड़का रोज शाम को छह बजे आता है, पूजा में सम्मिलित होने।

लौट कर आए। बिल्कुल उदास हो गए थे। लड़का मरा था, उससे भी ज्यादा दुखी होकर लौटे। कहने लगे, यह कहां भेज दिया आपने! यह आदमी तो दुष्ट है। और यह सच नहीं हो सकता, यह बात बिल्कुल झूठ है। यह मैं मान ही नहीं सकता। तुलसी जी बिल्कुल ठीक हैं।
मैंने कहा, आप थोड़ा सोचो। तुलसी जी के ठीक होने का आपके लिए कोई प्रमाण है? आपकी वासना के, आपकी महत्वाकांक्षा के अनुकूल है। आपका बेटा और स्वर्ग में पैदा न हो, यह हो ही कैसे सकता है! अहंकार की तृप्ति होती है। यहां भी आप चाहते थे मुख्य मंत्री हो जाए, यहां भी आप सोचते थे कि जवाहरलाल के बाद जगमोहन दास के अलावा कोई आदमी भारत में है ही नहीं काम का। तो जवाहरलाल के बाद अगर भारत में समझ होगी तो जगमोहन दास, उनका लड़का ही प्रधानमंत्री होना चाहिए। वह यहां नहीं हो पाया तो अब कम से कम स्वर्ग में पैदा हो जाए। और मैंने कहा, अगर दोनों में कोई सच हो सके तो यह राम स्वामी ही सच हो सकता है, क्योंकि लड़का मरा राजनीति के तनाव में ही। चौबीस घंटे की कलह और संघर्ष और राजनीति का उपद्रव और दांव-पेंच, वही उसे ले डूबा। स्वर्ग जाने की अगर इन सबको सुविधा है तो साधु-संत कहां जाएंगे?
मैंने कहा, तुलसी जी से फिर पूछना कि अगर राजनीतिज्ञ स्वर्ग में देवता होने लगे तो तुम्हारा क्या होगा? तुम कहां जाओगे? कोई जगह ही नहीं बचती फिर। नहीं, न तो तुलसी जी सच हैं और न कोई राम स्वामी सच हैं। राम स्वामी तो निश्चित झूठ थे वह तो मेरे कहे से उन्होंने सब किया था। लेकिन तुम वही सुनना चाहते हो जो तुम्हारे अहंकार को, तुम्हारे झूठ को परिपुष्ट करे।
फिर वे कभी राम स्वामी के पास दोबारा नहीं गए। वे लोगों को कहते रहे,
वह भी कोई साधु! बहुत दुष्ट प्रकृति का आदमी है। मेरा तो लड़का मर गया, और उसने इस तरह की बातें कहीं। मगर डर के मारे वे सालीवाड़ा जाना बंद कर दिए। और गोपालदास जी के मंदिर भी सुबह जाने लगे शाम की बजाय। क्योंकि शाम को, हो न हो कहीं सच हो यही। भीतर तो डर। लेकिन राम स्वामी के खिलाफ जब तक वे जिंदा रहे--अब तो वे भी चले गए--वे जब भी मुझे मिलते तो उनके खिलाफ जरूर कुछ कहते।
सत्य और असत्य का बड़ा सवाल नहीं है। तुम जहां हो, उसे जो परिपुष्ट करे
वह मधुर लगता है। तुम्हारी जो मनोकामना है उसे जो परिपुष्ट करे वह मधुर लगता है, वह मीठा लगता है, वह अपना लगता है। जो तुम्हारी धारणा को तोड़े वह शत्रु लगता है; बात कड़वी लगती है। तुम्हारी जड़ों को हिलाए उसे तुम कैसे मित्र मान सकते हो? वह तो मृत्यु जैसा मालूम होता है। इसीलिए तो तुमने जहर दिया सुकरातों को, सूलियों पर चढ़ाया तुमने क्राइस्टों को, पत्थर मारे बुद्धों को; और चालबाजों को तुमने पूजा है, झूठों को तुमने पूजा है। लेकिन इसमें कुछ असंगति नहीं; गणित साफ है। तुम झूठे हो; तुम झूठों को
ही पूज सकते हो। तुलसी जी ने होशियारी की। आंख बंद करके जो बात उन्होंने बताई कि तुम्हारा लड़का स्वर्ग में पैदा हो गया है, यह बड़ी होशियारी की बात है। यह राजनीतिक दांव-पेंच है। तुम जो चाहते थे वह कह दिया।
तुम जो चाहते हो वह ठीक हो ही नहीं सकता; तुम ठीक नहीं हो। इसलिए सत्य कड़वा लगता है।

लाओत्से के वचन को हम समझने की कोशिश करें।
"सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते।"
क्योंकि तुम असत्य हो; और तुम्हारे कानों में इतने असत्य भरे हैं कि सत्य का पहले तो प्रवेश का ही उपाय नहीं। सत्य को तुम भीतर ही न जाने दोगे। क्योंकि वह तुम्हें डगमगा देगा, वह तूफान की तरह आएगा, आंधी की तरह आएगा; तुम्हारे सारे जीवन को ध्वस्त कर देगा। तो सत्य को तुम पहले तो सुनते ही नहीं। अगर भूल-चूक से सुन लिया तो तुम उसकी व्याख्या अपने हिसाब से कर लेते हो। फिर तुम व्याख्या में उसे लीप-पोत देते हो। तुम्हारी व्याख्या ऐसी है जैसे कि कड़वी गोली किसी को देनी हो तो शक्कर चढ़ा दी।
तो तुम व्याख्या कर लेते हो कड़वे सत्यों की, और व्याख्या करके तुम निश्चिंत हो जाते हो। या तो तुम सुनते नहीं, या सुनते हो तो गलत सुनते हो। और अगर इन दोनों बातों को तोड़ कर कोई व्यक्ति तुम्हारे भीतर सत्य को पहुंचा दे तो वह व्यक्ति प्रीतिकर नहीं मालूम होता। गुरु कभी प्रीतिकर मालूम नहीं हो सकता। गुरु तो तभी प्रीतिकर मालूम होगा जब तुम मिटने को तैयार हो जाओगे।
मेरे पास इतने लोग आते हैं; उनमें तीन कोटियों के लोग हैं। एक वे हैं
जो इसलिए आते हैं कि मैं उनकी मान्यताओं को पुष्ट कर दूं। वे मेरे पास आते ही नहीं; वे अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए आते हैं। वे जो मानते हैं, अगर मैं भी कह दूं कि ठीक है, तो उनके चित्त की प्रसन्नता देखने जैसी होती है। उनका अहंकार पुष्ट हुआ। वे गीता के भक्त थे, और मैंने गीता की प्रशंसा कर दी; तत्क्षण मैं उनके लिए ज्ञानी हो जाता हूं। मैं ज्ञानी हो जाता हूं, क्योंकि वे ज्ञानी हैं, और गीता में उनकी श्रद्धा है और मैंने भी कह दी बात। मैंने उनकी ही बात कह दी। ऐसे लोग मुझसे आकर कहते हैं कि आपने जो कहा वह हमारी ही बात कह दी; चित्त प्रसन्न हो गया; बड़े आनंदित जा रहे हैं।
ऐसा मौका कम ही आ पाता है। ऐसे लोगों को मैं आनंदित नहीं भेजता। क्योंकि वह तो गलती हो जाएगी। यह तो गलत तरह का आनंद होगा। यह तो दवा न होगी, जहर होगा। इनके अहंकार को तो तोड़ना है। और अगर इनके अहंकार में गीता की बुनियाद रखी है तो गीता को भी तोड़ना जरूरी है, ताकि इनका अहंकार गिर जाए। अगर इन्होंने अपने अहंकार को कृष्ण के सहारे खड़ा कर रखा है तो कृष्ण को भी खींच लेना जरूरी है, ताकि इनका अहंकार गिर जाए।
एक मित्र कुछ ही दिन पहले आए। आते ही से हाथ जोड़ कर कहा कि और सब ठीक है, आप कभी रामायण पर बोलें। आए थे मुझे सुनने को। रामायण के भक्त हैं। मैंने कहा, राम में मेरा कोई लगाव नहीं। इसलिए नहीं कि राम में मेरा कोई लगाव नहीं है। जैसे ही मैंने कहा राम में मेरा कोई लगाव नहीं, उनके चेहरे पर अंधेरे बादल घिर गए। और मैंने कहा, तुलसीदास होंगे अच्छे कवि, लेकिन उनके संतत्व में मेरा भरोसा नहीं। पैर के नीचे से जमीन खिसक गई; फिर दोबारा उनके मुझे दर्शन ही न हुए। आए थे यहां रुकने दस दिन कि हां सुनेंगे। लेकिन दूसरे दिन सुबह वे दिखाई ही नहीं पड़े। सांझ मिल कर ही निबटारा हो गया।
वे आए थे सुनने कि मैं राम की प्रशंसा करूं। राम की प्रशंसा में मुझे कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन मुसलमान से करता हूं मैं राम की प्रशंसा, राम के भक्त से नहीं करता। लोग मुझसे पूछते हैं, यह लाओत्से पर आप किसलिए बोल रहे हैं? तो मैं कहता हूं, यहां कोई चीनी नहीं है इसलिए। अगर चीन जाऊं तो लाओत्से पर भूल कर नहीं बोलूंगा। क्योंकि वहां लाओत्से के आधार पर अहंकार खड़े हो गए हैं। वहां तो लोग बड़े प्रसन्न होंगे कि ठीक; उनकी ही बात को मैं ठीक कह रहा हूं।
इसे थोड़ा समझ लें। यह मेरा गणित थोड़ा समझ में आ जाए तो अच्छा। न कुछ लेना-देना है लाओत्से से, न कुछ लेना-देना है कृष्ण से। अगर सवाल है कुछ तो मेरे और तुम्हारे बीच है। तुम्हें तोड़ना है। तुम्हारे अहंकार को गिराना है। और जो-जो सहारे तुमने ले रखे हैं वे भी हटाने पड़ेंगे। नहीं कि वे सहारे गलत थे, बल्कि उन सहारों से तुमने एक गलत अहंकार खड़ा कर लिया था। इसलिए कभी हटाऊंगा और कभी जमाऊंगा। क्योंकि कभी मुझे लगेगा कि कोई ऐसा आदमी आ गया, कोई जैन आ जाए, तो मैं राम की प्रशंसा करता हूं। गहरे में सवाल इस तरह के

आदमी के साथ यह होता है कि वह जो मानता है उसकी परितृप्ति हो जाए, उसका अहंकार भर जाए; मैंने भी हां भर दी, मैंने भी प्रमाण पत्र दे दिया कि वह ठीक है। जब राम का भक्त कहता है राम पर कुछ बोलें, तो वह यह नहीं कह रहा है कि राम से उसको कुछ लेना-देना है, वह यह कह रहा है कि मेरी जो मान्यताएं हैं उनको तृप्त करें, मेरी मान्यताओं पर जल सींचें। राम से कोई मतलब नहीं है। मेरे अहंकार को थोड़ा और बढ़ा दें कि मैं लौट कर जाकर कह सकूं कि मैं सदा ठीक था, सदा ही ठीक था। मैं और तर्क और प्रमाण जुटा लूं अपने ठीक होने के। नहीं ऐसी भूल मैं नहीं करता। ऐसा आदमी अगर बहुत हिम्मतवर हो तो ही मेरे पास टिक सकता है, नहीं तो भाग जाएगा। उसके बचने का कोई उपाय नहीं। बहुत साहसी हो कि अपने अहंकार को टूटता देख सके और रुक जाए, तो ही रुक पाएगा। लेकिन तो ही रुके तो कोई अर्थ है। तुम्हारे अहंकार को बचा कर तुम्हें मैंने रोक भी लिया अपने पास तो तुम्हारी भीड़ को इकट्ठा करके क्या करूंगा? तुम्हारी भीड़ नहीं चाहिए, तुम्हारा निरहंकार भाव चाहिए। एक भी व्यक्ति मेरे पास हो, लेकिन निरहंकार की भाव-दशा में हो, तो जो मैं चाहता हूं--जो परम फूल मुक्ति का--वह उसमें खिल सकता है।
दूसरी तरह के लोग हैं जो इस आशा में मेरे पास आते हैं, उनकी कोई मान्यताएं नहीं हैं, वे मान्यताओं की तलाश में आते हैं, कि कुछ भरोसे के लिए मिल जाए, कुछ विश्वास करने को सहारा मिल जाए। वे डगमगा रहे हैं। शायद शिक्षा ने, आधुनिक जगत ने उन्हें ठीक-ठीक आधार नहीं दिए मान्यताओं के, धर्म की ठीक-ठीक शिक्षा नहीं हो पाई बचपन में, तो उनका अहंकार थोड़ा डांवाडोल है, संदिग्ध है। वे आते हैं इस तलाश में कि मैं उनके अहंकार को असंदिग्ध कर दूं, उन्हें कुछ मान्यताएं दे दूं। उनके पास मान्यताएं नहीं हैं, वे मेरे पास मान्यता लेने आते हैं।
वे भी गलत लोग हैं। क्योंकि मैं किसी को मान्यता देना नहीं चाहता। मैं तुम्हें ज्ञान देना चाहता हूं, मान्यता नहीं। मान्यता तो झूठ है। मान्यता का तो अर्थ हैः जो तुम नहीं जानते उसे मान लिया; जिसे नहीं देखा उसे स्वीकार कर लिया; जिसका कोई स्वाद नहीं लिया उस पर उधार भरोसा कर लिया। किसी और की आंख से देखने का नाम मान्यता है। वे चाहते हैं कि मेरी आंख से देखना हो जाए। मेरी आंख से तुम कैसे देख सकोगे? तुम अपनी ही आंख से देख सकोगे। और मेरी आंख से अगर देखा तुमने तो तुम्हारी आंख अंधी हो जाएगी। और तुम्हें मैं अंधा नहीं बनाना चाहता, मैं तुम्हें तुम्हारी आंख देना चाहता हूं। विश्वास नहीं, मान्यता नहीं, बोध!
दूसरी तरह का व्यक्ति उतना कठिन नहीं जितना पहली तरह का व्यक्ति। लेकिन वह भी हैरान होता है। वह आया था अपनी मान्यताओं को मजबूत करने, और उसके पास जो थोड़ी-बहुत संदिग्ध मान्यताएं थीं वे भी मैं तोड़ डालता हूं। फिर एक तीसरी तरह का व्यक्ति है, जिसकी न कोई मान्यता है, न जो किसी मान्यता की तलाश में आया है। वही सत्य का खोजी है। उसके लिए सत्य बिल्कुल कर्ण-मधुर होगा। उस पर माधुर्य की वर्षा हो जाएगी। उसके चारों तरफ काव्य की धुन बजने लगेगी। उसे मैं एक गीत की तरह लपेट लूंगा चारों तरफ से। तत्क्षण उसके भीतर नये का आविर्भाव होने लगेगा। उसके भीतर के मंदिर की घंटियां बजने लगेंगी, अर्चना के दीये जल जाएंगे, धूप से सुगंध उठने लगेगी। अगर तुम शून्य होकर आए हो तो सत्य मधुर लगेगा, अति मधुर लगेगा। उससे मीठा कहीं कुछ है? तुम पर निर्भर है, कैसे तुम आए हो।
तीसरी तरह का आदमी तो बहुत मुश्किल कभी-कभी आता है। दूसरी तरह के लोगों को थोड़ी कम मेहनत से तीसरी तरह का आदमी बनाया जा सकता है। पहली तरह के लोगों को बड़ी मुश्किल से तीसरी तरह का आदमी बनाया जा सकता है। पहले तो वे रुकते ही नहीं, बनाने का मौका नहीं देते; भाग जाते हैं। उनकी मान्यता को जरा चोट लगी कि वे भागे। वे छुईमुई हैं।
तुमने एक पौधा देखा होगा, लजनू। उसको छू दो, बस उसकी पंखुड़ी बंद हो जाती हैं एकदम, सब पत्ते बंद हो जाते हैं। वह बिल्कुल मुर्दे की तरह हो जाता है। ऐसे ही पहली तरह के लोग हैं--छुईमुई। उनकी मान्यता को छू दो कि बस समाप्त; वे बंद हो गए। फिर तुमसे उनका कोई लेना-देना न रहा। फिर वे कभी तुम्हारी तरफ आंख उठा कर न देखेंगे। उनकी आंख बंद हो गई। तुम उनके लिए रहे

नहीं, वे तुम्हारे लिए न रहे। सब सेतु टूट गए। इस तरह का आदमी सबसे ज्यादा अधार्मिक आदमी है। और इसी तरह के लोग मंदिर-मस्जिदों में अड्डा जमा कर बैठे हैं। तो बड़ी दुर्घटना घट गई है। अधार्मिक धार्मिक स्थलों में अड्डा जमा लिए हैं।
दूसरी तरह का आदमी मध्य बिंदु में है। वह धार्मिक भी हो सकता है, अधार्मिक भी हो सकता है। अगर कोई उसकी मान्यताएं मजबूत कर दे और नयी मान्यताएं दे दे, तो वह मंदिरों में सम्मिलित हो जाएगा। वह भी अधार्मिक हो जाएगा। और अगर वह सौभाग्य से किसी ऐसे व्यक्ति के पास पहुंच जाए जो उसकी डगमगाती हुई मीनारों को बिल्कुल गिरा दे, खाली कर दे, नग्न और शून्य, चित्त में कोई धारणा न रह जाए, तभी तो तुम सत्य के निकट आ सकोगे। शून्य चित्त हो तो सत्य अमृत की वर्षा है; भरा हुआ चित्त हो तो सत्य बड़ा दुखदायी है।
पर लाओत्से ठीक ही कह रहा है। क्योंकि शून्य चित्त तो कभी करोड़ में एकाध का होता है। वह अपवाद है। उसे नियम के भीतर लेने की जरूरत नहीं है। वह तो केवल नियम को ही सिद्ध करता है।
"सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते।"
कैसा दुर्भाग्य है कि सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते! कैसा दुर्भाग्य है कि कर्ण-मधुर शब्द सच्चे नहीं होते! होना तो इससे उलटा ही चाहिए कि झूठ कड़वा हो। लेकिन तुमने खूब अभ्यास कर लिया है झूठ का। अभ्यास से कड़वी चीजें भी मधुर लगने लगती हैं।
पहली दफा तुम सिगरेट पीना शुरू करते हो; कड़वी है। खांसी आती है; आंख में आंसू आ जाते हैं; जरा भी स्वाद नहीं आता। अभ्यास करना पड़ता है। थोड़े ही दिनों में तुम अभ्यस्त हो जाते हो। तिक्त कड़वापन खो जाता है; मधुर मालूम पड़ने लगता है धुएं का पीना। शराब तुम पीना शुरू करते हो, तिक्त है। फिर अभ्यास की जरूरत है। एक बार अभ्यास हो गया तो शराब में बड़ी मधुरिमा मालूम होने लगती है; भागे चले जा रहे हो मधुशाला की तरफ।
झूठ का अभ्यास हो जाए तो मधुर लगने लगता है। और झूठ का लंबा अभ्यास है। इस जन्म में भी बहुत लंबा अभ्यास है। और पिछले जन्मों की लंबी यात्रा है। उसमें झूठ ही परिपोषित किया गया है।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर मैं एक दिन मेहमान था। उसकी पत्नी अमीर घर की लड़की है। और जैसा अमीर घर की लड़कियां होती हैं, एक तो पत्नियां वैसे ही उपद्रव, गरीब घर की हों तो भी, अमीर घर की पत्नी तो फिर बहुत उपद्रव। वह हर छोटी बात में याद दिला देती है मुल्ला को कि यह शानदार मकान न होता अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते; यह कार न खड़ी होती पोर्च में अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते; जिस कुर्सी पर आराम से बैठे हो यह कुर्सी घर में न होती, भीख मांग रहे होते, अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते। मैं मेहमान था। भोजन की थाली लग गई थी, और उसने अपना राग छेड़ दिया कि यह चांदी की थालियों में भोजन चल रहा है, अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते तो मुल्ला तुम भीख मांगते! मुल्ला ने कहा, अब मैं सच बात कह ही दूं, अब बहुत हो गया। मैं तुझसे कहता हूं कि अगर तेरे बाप के पास पैसे न होते तो तू भी यहां न होती, टेबल और कुर्सी का तो सवाल ही नहीं है। तेरे बाप के पास पैसे न होते तो तू भी यहां न होती। हमने कोई तुझसे विवाह नहीं किया, तेरे बाप के पैसों से विवाह किया है।
प्रेम तो झूठ है। सौ में निन्यानबे मौके पर कभी पैसे के लिए है, कभी प्रतिष्ठा के लिए है, कभी चमड़ी के लिए है, और कभी बहुत क्षुद्र बातों के लिए है, जिनका तुम हिसाब ही न लगा सकोगे कि कैसा पागलपन है! पैसे के लिए बहुत मौकों पर प्रेम का आवरण खड़ा हो जाता है। प्रतिष्ठा के लिए, पद के लिए, कुलीनता के लिए, बड़ा घर, बड़े संबंधी, आर्थिक लाभ, कभी स्त्री की चमड़ी सुंदर है इसलिए; वह भी ऊपर-ऊपर है, क्योंकि स्त्री चमड़ी नहीं है, चमड़ी से बहुत ज्यादा है। और चमड़ी तो भूल जाएगी दो दिन बाद; रोज तो भीतर की आत्मा के साथ रहना पड़ेगा। कभी आंखों के लिए कि आंखें सुंदर हैं। लेकिन कहीं आंखों के साथ रहने से कुछ काम चला है! कि कभी नाक का आकार, कि कभी वाणी की मधुरता, और कभी-कभी और भी क्षुद्र बातों के लिए प्रेम का आवरण खड़ा हो जाता है, स्त्री का चलने का ढंग, कि उसके मुड़ने का ढंग, कभी बहुत छोटी-छोटी बातों के लिए।

लेकिन तुम इन सबको प्रेम का आवरण दे देते हो। छोटी बातें बड़ी मालूम होने लगती हैं। लेकिन यह आवरण टूटेगा, जब तक कि प्रेम ही न हो।
और प्रेम अकारण है; प्रेम का कोई कारण नहीं है। न तो नाक का झुकाव, न आंख का मछलियों जैसा होना; कोई कारण नहीं है प्रेम का। प्रेम अकारण भावदशा है; अतर्क्य। तुम यह नहीं बता सकते कि क्यों। क्यों का अगर उत्तर दे सको तो तुम्हारा प्रेम झूठा है। तुम क्यों का उत्तर खोजो, और खोजो, और न पा सको, तो तुम्हारा प्रेम सच्चा है। तुम कहो कि क्यों तो कुछ भी नहीं मिलता, कारण तो कुछ भी नहीं मिलता, बस हृदय है कि बहा जाता है। अगर तुम कारण बता सको कि इस कारण से प्रेम है, तो प्रेम नहीं है। कारण ही महत्वपूर्ण है, धन, पद, प्रतिष्ठा, कुछ भी नाम हो उसका। और आज नहीं कल चुक जाएगा। कारण सदा चुक जाते हैं। कारण शाश्वत नहीं हो सकते; कारण तो क्षणभंगुर जीवन है उनका। अकारण प्रेम शाश्वत हो सकता है। वही प्रेम है। फिर जिससे तुमने प्रेम किया है, उसका शरीर भी छूट जाए तो भी प्रेम नहीं छूटता।
अभी मैं जैकुलिन के चित्र देख रहा था। दूसरा पति मर गया, ओनासिस। लेकिन जैकुलिन के चेहरे पर कोई उदासी और दुख नहीं है। ओनासिस की संपत्ति ही कारण रही होगी प्रेम का। और कैनेडी से भी प्रेम नहीं रहा होगा, क्योंकि इधर कैनेडी मरा नहीं कि उधर नयी साज-सज्जा, नये विवाह का आयोजन हो गया। शायद आयोजन पहले से ही तैयार था। शायद कैनेडी से भी प्रेम इसीलिए लगा लिया होगा कि कैनेडी की बड़ी संभावनाएं थीं भविष्य में, कभी न कभी वह आदमी प्रेसिडेंट होने ही वाला था। उसमें प्रतिभा थी, दौड़ थी, गति थी, महत्वाकांक्षा थी, अदम्य महत्वाकांक्षा थी। शायद उस अदम्य महत्वाकांक्षा के कारण ही यह स्त्री कैनेडी के प्रेम में पड़ गई होगी। फिर धन था अपार। कैनेडी मरा नहीं कि ओनासिस। और ओनासिस तो बूढ़ा आदमी था; उनहत्तर साल का होकर मरा। फासला लंबा है। जैकुलिन पैंतालीस साल की है। कुछ इस बूढ़े से प्रेम के कारण विवाह न किया होगा। दुनिया के थोड़े से संपत्तिशालियों में एक था ओनासिस; उसकी संपत्ति से प्रेम किया होगा। इधर ओनासिस मरा नहीं कि सारे अमरीका में चर्चा शुरू है कि अब कौन? जैकुलिन किसके साथ विवाह करने वाली है? और देर न लगेगी। और अब तो देर करने का समय भी नहीं है; पैंतालीस साल की है। जल्दी ही करनी पड़ेगी; नहीं तो समय गुजर जाएगा।
सारी प्रेम की कथा के पीछे अक्सर कुछ और ही छिपा होता है। तुम्हारी मित्रता के पीछे कुछ और ही छिपा होता है। तुम्हारी मुस्कुराहट के पीछे कुछ और ही छिपा होता है। कोई भी चीज सरल नहीं मालूम पड़ती कि तुम सिर्फ मुस्कुरा रहे हो, पीछे कुछ भी नहीं है; कि तुम सिर्फ प्रेम कर रहे हो, पीछे कुछ भी नहीं है; कि तुम किसी के प्रति मित्रता का हाथ बढ़ा दिए हो अकारण, पीछे कुछ भी नहीं है।
जिस दिन तुम सच होने शुरू हो जाओगे, जब तुम्हारा प्रत्येक कृत्य अपने
आप में समग्र होगा और उसके पार कुछ भी न होगा, तब तुम्हें सत्य बड़ा कर्ण-मधुर मालूम पड़ेगा; उससे ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। तुम उसे आलिंगन कर लोगे। उससे सुंदर कुछ भी नहीं है। उससे संगीतपूर्ण कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम्हारे विसंगीत में, तुम्हारे भीतर के कोलाहल में, तुम्हारे कपट के जाल में जब संगीत की किरण आती है, तो तुम्हारे कारण संगीत की किरण संगीत की किरण नहीं मालूम पड़ती, उपद्रव मालूम पड़ती है। तुम अंधकार के इतने आदी हो गए हो कि जब प्रकाश तुम्हारे द्वार आता है तो तुम आंख बंद कर लेते हो, तुम तिलमिला जाते हो। तुम्हारी तिलमिलाहट प्रकाश के कारण नहीं है, तुम्हारी तिलमिलाहट लंबे दिनों तक अंधकार में रहने के कारण है।
"सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते; कर्ण-मधुर शब्द सच्चे नहीं होते।"
ऐसे बनने की कोशिश करना कि सत्य तुम्हें कर्ण-मधुर हो सके। और तब तक समझना कि यात्रा करनी है जब तक सत्य कर्ण-मधुर न हो जाए। चाहे कितना ही काटता हो, चाहे आरे की तरह तुम्हारी आत्मा को टुकड़े-टुकड़े कर देता हो, तो भी तुम अपने को इस योग्य बनाते जाना कि सत्य प्रीतिकर लगे। क्योंकि उसी प्रीति से तो परमात्मा तक पहुंचने का सेतु बनेगा।
और अगर असत्य कर्ण-मधुर लगता है, और जानते हो कि असत्य है... ।

कोई तुमसे कह देता है, अहा, कितने सुंदर हो! और तुम्हें खुद ही शक है, आईने में तुमने खुद ही शक्ल बहुत बार देखी है। तुम खुद भी नहीं कह सकते इतने विश्वास से कि अहा, कितने सुंदर हो। लेकिन दूसरे पर तुम भरोसा कर लेते हो। असत्य कितना सुंदर मालूम पड़ता है! और असत्य को जब तक तुम सुंदर मालूम करते हो, सुखद, प्रीतिकर, तब तक तुम कैसे सत्य से संबंध जोड़ पाओगे? तब तो जोड़ना बिल्कुल मुश्किल है। असत्य तुम्हें लूट ही लेगा, असत्य तुम्हें बुरी तरह दबा डालेगा। और तुम धीरे-धीरे इतने झूठ हो जाओगे कि तुम यह भरोसा भी न ला सकोगे कि सत्य जैसी कोई चीज होती है।
"सज्जन विवाद नहीं करता।"
विवाद तो वे ही करते हैं जिन्हें अपने सत्य पर भरोसा नहीं है। विवाद
तो पैदा ही तब होता है जब तुम दूसरे के सामने कुछ सिद्ध करना चाहते हो। लेकिन यह बड़ा जटिल है। जब भी तुम दूसरे के सामने कुछ सिद्ध करना चाहते हो तो असलियत में तुम दूसरे के माध्यम से अपने सामने कुछ सिद्ध करना चाहते हो। तुम संदिग्ध हो। हिंदू सिद्ध करना चाहता है हिंदू धर्म सर्वश्रेष्ठ है। यह संदिग्ध है आदमी। यह तर्क का जाल फैला कर अपने को भरोसा दिलाना चाहता है। और दूसरे को दिला पाए या न दिला पाए, अपने को तो दिला ही लेगा। दूसरे के सामने हम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, ताकि दूसरे की आंखों में देख लें कि हमारा तर्क सार्थक है, तो हमें भी ख्याल आ जाए।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। उसकी रंग-बिरंगी पोशाक और उसके चलने का ढंग, कुछ आवारा बच्चे उसके पीछे हो लिए हैं। कोई कंकड़ मार रहा है; कोई मजाक कर रहा है। उनसे छुटकारा पाने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सुनो, तुम्हें खबर है कि आज राजमहल में भोज दिया जा रहा है सारे नगर को! बच्चे साथ हो लिए। वे भूल गए कंकड़-पत्थर फेंकना; वे बात गौर से सुनने लगे। बच्चे बात गौर से सुनने लगे, मुल्ला भी गरमा गया; बातचीत में ज्यादा गरमी आ गई; वाचाल हो गया; भोजनों की चर्चा करने लगा कि कैसे- कैसे, क्या-क्या बन रहा है महल में आज, और तुम यहां क्या कर रहे हो! बात में जोश आ गया, जैसा कि बोलने वालों को अक्सर आ जाता है। बोलने से गरमी बढ़ती है। और अगर सुनने वाले उत्सुक दिखाई पड़ें तो बुखार और बढ़ता है। जब बुखार तेजी से हो जाता है तो सन्निपात। फिर बोलने वाला कुछ भी बोलता है। इतनी उसने जोर से चर्चा की और इतनी प्रगाढ़ता से भोजनों का विवरण दिया कि उसकी खुद की जीभ में लार आने लगी।
बच्चे तो उसे छोड़ कर भागे महल की तरफ। जब बच्चे भागने लगे आगे की छाया में, और दूर खोने लगे सड़क पर, तो मुल्ला भी दौड़ने लगा। एक बार उसने अपने आपसे कहा, यह क्या कर रहा है नसरुद्दीन! पर उसने कहा कि बात में जरूर कुछ मामला होना ही चाहिए, नहीं तो बच्चे इतने जल्दी भरोसा नहीं कर सकते थे। कौन जाने भोज दिया ही जा रहा हो? हर्ज भी क्या है? देख तो लेना ही चाहिए चल कर।
खुद ही झूठ को गढ़ा था। तुम ख्याल करो, ये कहानियां केवल कहानियां नहीं हैं। तुमने बहुत से झूठ गढ़े थे; फिर धीरे-धीरे तुमने खुद ही उन पर विश्वास कर लिया। जब तुम दूसरे को विश्वास दिला देते हो तो तुम्हें खुद विश्वास आ जाता है। दूसरे के चेहरे में तुम अपनी तस्वीर देख लेते हो, और भरोसा आ जाता है कि ठीक होना ही चाहिए। दुनिया में जो लोग दूसरे के सामने कुछ सिद्ध करने में लगे रहते हैं वे वे ही लोग हैं जिनके भीतर अभी कुछ भी सिद्ध नहीं हो पाया है।
"सज्जन विवाद नहीं करता।"
सज्जन वक्तव्य देता है। कह देता है जो उसे ठीक लगता है। वह किसी विवाद
के लिए उत्सुक नहीं है, वह कुछ सिद्ध करने को उत्सुक नहीं है। वह कोई तर्क, वह कोई वकील नहीं है, वह कोई वकालत नहीं कर रहा है किसी सिद्धांत की। अपने अनुभव की बात कह देता है।
उपनिषद जब पहली दफा पश्चिम में अनुवादित हुए तो अनुवाद करने वाले बड़े चकित हुए कि उपनिषदों में कोई तर्क नहीं हैं, सिर्फ स्टेटमेंट हैं, वक्तव्य हैं। उपनिषद कहते हैं, ब्रह्म है; तुम भी ब्रह्म हो। मगर कोई तर्क नहीं देते; कोई सिलोजिज्म कोई अरस्तू के ढंग का कि क्यों ऐसा है। इसके लिए

कोई प्रमाण नहीं देते। वक्तव्य देते हैं; सीधे-सादे वक्तव्य हैं। जानना हो, तुम भी जान लो। बाकी उपनिषद का ऋषि सिद्ध करने की कोई कोशिश नहीं कर रहा है। जब भीतर सब सिद्ध हो जाता है तो कौन फिक्र करता है किसी के सामने सिद्ध करने की?
तो एक तो वे लोग हैं जो दूसरों के सामने सिद्ध करके अपने को भरोसा दिलाना चाहते हैं। और दूसरे वे लोग हैं जिन्होंने अनुभव कर लिया, खुद सिद्ध हो गए। अब वे किसी के सामने कुछ सिद्ध नहीं करना चाहते हैं।
और मजा यह है कि जो दूसरे को चेष्टा करते हैं सिद्ध करने की, खुद चाहे धोखे में पड़ जाएं, दूसरे को कभी धोखा नहीं दे पाते। तुमने कभी कोशिश की कि जब भी तुम तर्क से किसी को समझाने की कोशिश करते हो, तो यह हो सकता है तुम उसका मुंह बंद कर दो--तर्क तीखा प्रहार है; किसी का मुंह बंद कर सकता है-- लेकिन क्या तुमने कभी यह पाया कि तर्क से तुमने कभी किसी दूसरे पर विजय कर ली हो, दूसरे के हृदय को जीत लिया हो? मुंह बंद कर सकते हो। मुंह बंद करने से कहीं हृदय जीता जाता है? वह आदमी कसमसाएगा। वह आदमी भीतर से तो जानता ही है कि मामला गलत है। सिर्फ तुम तर्क दे रहे हो। और तर्क तो गलत से गलत बात के लिए भी दिए जा सकते हैं। तर्क को कोई चिंता ही नहीं है कि तुम किसके लिए दे रहे हो। तर्क तो वेश्या है। वह किसी के भी साथ जाने को तैयार है। इसलिए तो कहा जाता है कि वकील और वेश्या स्वर्ग नहीं जा सकते। किसी के संगी-साथी नहीं हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने वकील के घर गया। और उसने जाकर विस्तार से, एक मुकदमा उस पर चलने वाला है, उसकी सारी बात कही। सारी बात कह कर उसने कहा कि क्या ख्याल है आपका जीत सकूंगा या नहीं? वकील ने कहा कि जीत सौ प्रतिशत निश्चित है; इसमें तो कोई मामला ही नहीं है। तुम जीते ही हुए हो, बस थोड़ा अदालत से गुजरना है, प्रक्रिया से। अन्यथा तुम जीते ही हुए हो। मुल्ला ने नमस्कार की और चलने लगा। वकील ने कहा, कहां जाते हो, मेरी फीस? और सारा इंतजाम? उसने कहा, कोई जरूरत नहीं है। यह तो मैंने विपक्षी की तरफ से सारी बात कही थी। अब लड़ने की कोई जरूरत ही नहीं। यह तो मेरे विरोधी की तरफ से मैंने मामला पेश किया था। और तुम कहते हो कि सौ प्रतिशत जीत, तो मामला खतम ही है। हार ही जाना बेहतर, अदालत तक जाने की जरूरत क्या है? लेकिन नसरुद्दीन गलत है। वकील तो हर हालत में यही कहता; तुम अपना मुकदमा रखते तो भी कहता कि सौ प्रतिशत जीत है; वकील तो हर हालत में कहेगा कि जीत है। और ऐसा भी नहीं है कि जीत नहीं हो सकती; सिर्फ बड़ा वकील चाहिए। अदालत सत्य और असत्य के बीच थोड़े ही निर्णय करती है, छोटे वकील और बड़े वकील के बीच निर्णय करती है। कोई अदालत दुनिया में कैसे सत्य और असत्य का निर्णय कर सकेगी? अदालतों का काम है सत्य और असत्य का निर्णय? समाधि में ही तय हो सकता है कि क्या सत्य और क्या असत्य। अदालत कैसे करेगी? अदालत तो इतना ही कर सकती है कि किसकी तरफ से बड़ा वकील लड़ रहा है, किसकी तरफ से छोटा वकील लड़ रहा है। कौन ज्यादा फीस दे सकता है, वह सत्य होकर निकल आता है। कौन कम फीस दे सकता है, वह असत्य हो जाता है। अमीर जीत जाता है; गरीब हार जाता है। वकील पर निर्भर है, तर्क पर निर्भर है कि तुम कितना मंहगा और सुसंस्कृत तर्क खरीद सकते हो, बस। तर्क का कोई पक्ष नहीं है, किसी के भी साथ हो लेता है।
सज्जन विवाद नहीं करता, क्योंकि सज्जन का तर्क पर भरोसा नहीं है, अनुभव पर भरोसा है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लो। पंडित का तर्क पर भरोसा है; पंडित तर्क देता है। वह सिद्ध कर सकता है कि ईश्वर है या नहीं। ऐसे ही पंडित और दूसरे पंडितों को पैदा कर देते हैं जो नास्तिकों के पंडित हैं। क्योंकि जब तुम तर्क देते हो कि ईश्वर है, तुम ईश्वर को अदालत में खड़ा कर दिए। अब नास्तिक भी तर्क दे सकता है, बड़े तर्क दे सकता है। कभी तुमने सुना कि कोई आस्तिक किसी नास्तिक को तर्क से आस्तिक बना पाया हो? या कभी कोई नास्तिक किसी आस्तिक को तर्क से नास्तिक बना पाया हो?
तर्क से बदलाहट होती ही नहीं, हृदय अछूता रह जाता है। सारी बदलाहट हृदय की है, भाव की है। तुम्हारा हृदय प्रेम से जीता जाता है, तर्क से

नहीं। तर्क तो तुम्हारे हृदय के पास भी न पहुंच पाएगा, फटक भी न पाएगा पास। सज्जन तुम्हें जीतता है अपने होने से। उसका व्यक्तित्व ही उसका एकमात्र तर्क है। उसका होना ही एकमात्र प्रमाण है।
मेस्टर एकहार्ट हुआ, जर्मनी का एक बहुत बड़ा रहस्यवादी संत। एक तर्कनिष्ठ पंडित उसके पास गया और उसने कहा, एकहार्ट, मैंने सुना है कि तुम ईश्वर में भरोसा करते हो। तुम मेरे सामने सिद्ध करो, मैं तुम्हें चुनौती देता हूं! एकहार्ट ने कहा, चुनौती हम स्वीकार करते हैं, लेकिन हमारे सिद्ध करने के ढंग अलग-अलग हैं। तुम बातचीत करोगे, मैं मौन बैठूंगा; तुम बुद्धि का फैलाव करोगे, मैं हृदय को बहाऊंगा। तो कह नहीं सकता कि हमारा मेल कहीं हो पाएगा कि नहीं हो पाएगा। क्योंकि हम अलग-अलग तरह के लोग हैं। मेरा होना ही प्रमाण है ईश्वर का। मेरी तरफ देखो! मेरी आंखों में झांको! क्या तुम्हें मेरी आंखों में वैसी झील दिखाई पड़ती है जिसका कोई अंत न हो? अगर दिखाई पड़ती है तो परमात्मा के बिना यह कैसे हो सकता है? मेरे पास आओ। मेरे हाथ को अपने हाथ में ले लो। अनुभव करो। क्या कोई प्रेम तुम्हारी तरफ बह रहा है अकारण? अगर अनुभव कर सको तो बिना परमात्मा के यह कैसे हो सकता है? मैं प्रार्थना करने बैठूंगा। तुम बैठो, देखो, आंख से अपूर्व आंसू बहते हैं आनंद के। तुम मेरे आंसुओं को समझो। क्या बिना गहन प्रेम के यह संभव है? क्या बिना गहरी विरह-वेदना के यह संभव है? अगर परमात्मा न हो तो इतने विराट प्रेम की प्यास मुझमें कैसे हो सकती है? तुम मुझे जानो, शायद तुम पहचान लो। लेकिन तर्क मेरे पास कोई भी नहीं। मैं ही तर्क हूं।
संत स्वयं तर्क है। और जो संत को समझ सकते हैं उनके लिए परमात्मा एक सिद्धांत हो जाता है। क्योंकि संत ही असंभव है बिना परमात्मा के। संत प्रमाण हो जाता है। संत इस पृथ्वी के गहन अंधकार में उस महा-प्रकाशवान की छोटी सी किरण है। माना कि मिट्टी का दीया है, मगर ज्योति उसी परमात्मा की है। और अगर तुम मिट्टी के दीये में जलती ज्योति को पहचान लो तो आकाश के महासूर्यों में भरोसा आ जाएगा।
लेकिन संत विवाद नहीं करता। विवाद तो हिंसा है, असज्जन का लक्षण है। विवाद जबरदस्ती है तुम्हें दबाने की। विवाद हिंसात्मक आक्रमण है तुम्हारे ऊपर। विवाद का अर्थ है कि मैं सिद्ध करके रहूंगा और तुम्हें झुकना पड़ेगा। विवाद तलवार है, सूक्ष्म, शब्दों की, तर्क की, लेकिन है तलवार। और तुम विवाद के सामने अगर झुक गए, अगर तुमने ऐसे तर्क मान लिए जिन्हें तुम्हारा हृदय इनकार करता था तो तुम भटक जाओगे। तुम आस्तिक भी हो सकते हो तर्क मान कर, तब भी तुम आस्तिक न हो पाओगे। क्योंकि आस्तिकता का कोई संबंध ही तर्क से नहीं है। तुम नास्तिक भी हो सकते हो। दोनों बराबर हैं। आस्तिक और नास्तिक में जरा भी फर्क नहीं है। अगर तुमने तर्क के कारण, विचार के कारण आस्तिकता और नास्तिकता को चुन लिया, तुम में कोई बहुत फर्क नहीं है। तुम एक ही नदी के दो किनारे हो।
फर्क तो उस आदमी में है जिसने तर्क के कचरे को एक तरफ फेंक दिया, और हृदय की पुकार सुनी, आह्वान सुना अपनी ही गहराइयों का। धरातल पर, सतह पर जो हो रहा था उसकी चिंता छोड़ दी विचार की तरंगों की, गहन में उतरा, भीतर की पुकार सुनी, और उस भीतर की पुकार के सहारे चलने लगा। वही आस्तिक है। लेकिन उसको आस्तिक कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि वह नास्तिक के विरोध में नहीं है। वस्तुतः वह आस्तिकता-नास्तिकता के पार हो गया, क्योंकि तर्क के पार हो गया।
"सज्जन विवाद नहीं करता।"
वह कुछ भी सिद्ध करने के लिए उत्सुक नहीं है। अगर उसका होना ही काफी प्रमाण नहीं है तो वह चिंता नहीं करता। क्योंकि जब उसका होना ही प्रमाणित नहीं कर सकता तो और क्या प्रमाणित करेगा?
"बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता; जो बहुत बातें जानता है
वह बुद्धिमान नहीं है।"
बुद्धिमान व्यक्ति एक ही बात जानता है; उसका सारा जानना एक का ही जानना है। वह हजार ढंग से वही कहता है, वह एक ही कहता है। उसका स्वर एक है। वाद्य वह कोई भी चुने, कभी वीणा पर बजाए, कभी बांसुरी पर, कभी सितार को

छेड़े, कभी तबले पर, मृदंग पर। लेकिन उसका स्वर एक है, उसका गीत एक है। वह गाता एक ही बात है। मैं तुमसे रोज बोलता हूं, और ऐसा रोज बोलता रह सकता हूं अनंत काल तक। मगर मैंने तुमसे एक बात छोड़ कर दूसरी बात नहीं कही है। बहुत-बहुत द्वारों से मैं तुम्हें एक ही द्वार पर ले आया हूं। बहुत-बहुत शब्दों से एक निशब्द की तरफ ही इशारा किया है।
लाओत्से कहता है, बुद्धिमान आदमी बहुत बातें नहीं जानता। वह एक को ही जान लेता है; क्योंकि उस एक को ही जान लेने से सब जान लिया जाता है। उद्दालक का बेटा श्वेतकेतु घर लौटा तो उसके पिता ने पूछा, तू क्या- क्या जान कर लौटा है? तो उसने कहा, सब जान कर लौटा हूं। ज्योतिष, गणित, व्याकरण, भाषा, भूगोल, इतिहास, पुराण, वेद, स्मृतियां, श्रुतियां; सभी जान कर लौटा हूं। बाप ने कहा, तूने वह एक जाना या नहीं जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है? श्वेतकेतु बहुत अकड़ से आया था, सब जान कर आया था, प्रमाणपत्र लेकर आया था गुरुकुल से। गुरुओं ने बड़ी प्रशंसा की थी, क्योंकि बड़ा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। स्मृति उसकी अपार थी; वेद कंठस्थ हो गए थे। सोचा था बाप बहुत प्रभावित होगा। और बाप ने एक अजीब सा सवाल पहले ही क्षण में पूछ लिया कि बेटा जमीन पर गिर गया, अहंकार टूट गया। कहा कि नहीं, उस एक को तो जान कर नहीं आया जिसको जानने से सब जान लिया जाता है। सब जान कर आया हूं; एक का मुझे कोई भी पता नहीं है। गुरुओं ने उसकी बात ही नहीं की। यह सवाल ही वहां नहीं उठा। तो बाप ने कहा, वापस जा। सब जानने से क्या होगा? यह तो सब असार है। तू तो एक को ही जान कर लौट। उस एक को ही जान लेने से सब जान लिया जाता है।
वापस लौट गया श्वेतकेतु एक को जानने।
लाओत्से कहता है, "बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता है; जो बहुत बातें जानता है वह बुद्धिमान नहीं है।"
बहुत के जानने का आग्रह ही इसलिए होता है कि तुम एक से चूक रहे हो। एक
को पा लोगे, तृप्त हो जाओगे; जानने की प्यास ही बुझ जाएगी। इसलिए बहुत बातें जानते हो, जानने की चेष्टा करते हो, और जान लें, और जान लें, क्योंकि प्यास मिटती नहीं। तुम्हारा ज्ञान, जिसको तुम ज्ञान कहते हो, कितना ही पीए चले जाओ, कंठ सूखता ही चला जाता है; प्यास मिटती नहीं। प्यास नहीं मिटती तो मन होता है और पीयो, और पीयो। शायद पर्याप्त नहीं पी रहे हैं। इसलिए आदमी ज्ञान को इकट्ठा करता चला जाता है।
वह ज्ञान का सागर हो सकता है, लेकिन प्यास न मिटेगी। क्योंकि सागर से कहीं प्यास मिटी है? प्यास के लिए तो छोटा सा एक का झरना चाहिए। बड़े से बड़ा सागर भी प्यास न बुझा सकेगा। वह बहुत खारा है। तुम सब जान लो, सागर जैसा तुम्हारा ज्ञान हो जाए विस्तीर्ण, फिर भी तुम प्यासे रहोगे। तृप्ति तो उसके झरने से मिटती है, तृप्ति तो उसके झरने से होती है; वह एक का झरना है। उस एक को ही उपनिषद ब्रह्म कहते हैं, उस एक को ही लाओत्से ताओ कहता है। उस एक को तुम जो भी नाम देना चाहो दे दो, परमात्मा कहो, निर्वाण कहो, सत्य कहो, पर वह एक है। और वह एक तुमसे दूर नहीं; तुम्हारे भीतर है।
असल में, जो स्वयं को जान लेता वह सब जान लेता। क्योंकि स्वयं सबका सार-संचित है; स्वयं के भीतर सारा ब्रह्मांड छिपा है छोटे से पिंड में।
अनंत आकाश समाया है तुम्हारे छोटे से हृदय में। वह बीज-रूप है, यह विराट वृक्ष-रूप है। बीज को जिसने जान लिया उसने पूरे वृक्ष को जान लिया।
क्योंकि बीज में सारा ब्लू-प्रिंट है, पूरे वृक्ष की एक-एक पत्ती छिपी है।
अभी प्रकट नहीं हुई है, छिपी है। तुम्हारे भीतर सारा ब्रह्मांड छिपा है।
इसलिए उपनिषद कहते हैं, तत्वमसि। वह तुम ही हो।
यह श्वेतकेतु जब गुरु के पास गया तब यह वचन बोला गया। श्वेतकेतु वापस लौटा और उसने गुरु से कहा--उदास होकर, चिंतित होकर--इतना सब सीखा, लेकिन पिता प्रसन्न न हुए और उन्होंने एक सवाल किया जिसका मैं जवाब न दे पाया। उन्होंने पूछा, उस एक को जाना जिसको जानने से सब जान लिया जाता है?
गुरु ने कहा, तत्वमसि श्वेतकेतु। वह तू ही है श्वेतकेतु, जिस एक की तेरे पिता ने बात उठाई। अच्छा हुआ तू वापस लौट आया, क्योंकि हम उस एक का इशारा तभी कर सकते हैं जब कोई प्यासा होकर आए। इसके पहले तूने और सबके

जानने के लिए चेष्टा की, जिज्ञासा की, वह तूने जाना। अब तू एक की जिज्ञासा लेकर आया; अब तू उसे भी जान लेगा। लेकिन वह तू ही है। इसलिए कहीं और नहीं जाना है, भीतर जाना है। किसी और से नहीं पूछना है, भीतर डूबना है। अब शास्त्र बेकार हैं, उच्छिष्ठ हैं। अब वेदों में कुछ सार नहीं, क्योंकि वह तो निशब्द है, वहां तो मौन में उतरना है।
बुद्धिमान एक को जानता है, और एक को जान कर सबको जान लेता है। बुद्धिहीन अनेक को जानता है, और अनेक को जान-जान कर एक को भी खो देता है। एक साधे सब सधे। और जिसने एक को साध लिया उसने सब साध लिया। और जिसने अनेक को साधना चाहा वह तीन-तेरह बांट हो गया, वह खंड-खंड हो गया। वह अनेक के साथ अनेक हो गया। इसीलिए तो तुम एक भीड़ हो। अभी तुम्हारे भीतर व्यक्तित्व नहीं। एक नहीं तो व्यक्तित्व कैसे होगा? तुम तो एक भीड़ हो। बहुत तरह के लोग तुम्हारे भीतर हैं।
सुना है मैंने कि बायजीद जब अपने गुरु के पास गया, तो जैसे ही गुरु के झोपड़े में प्रविष्ट हुआ और कहा कि मैं अब सब छोड़ कर आ गया हूं आपके चरणों में, अब और प्यासा न रखें, अब मुझे तृप्त कर दें, बायजीद के गुरु ने ऐसा चारों तरफ देखा। सन्नाटा था, और कोई न था, बायजीद खड़ा था। और गुरु ने कहा, तू आ गया वह तो ठीक, लेकिन यह भीड़ क्यों साथ लेकर आया है? वहां कोई था ही न। बायजीद ने लौट कर पीछे देखा खुद भी कि कोई भीड़ है? आस-पास कोई भी न था। बायजीद ने कहा, कैसी भीड़? मैं बिल्कुल अकेला आया हूं। बायजीद के गुरु ने कहा, आंख बंद कर और भीड़ को पाएगा। और कहते हैं बायजीद ने आंख बंद की और भीड़ को पाया।
क्योंकि तुम अभी एक नहीं हो, बहुत हो। पत्नी के सामने तुम्हारा कोई और चेहरा है; ग्राहक के सामने दुकान पर तुम्हारा कोई और चेहरा है; बेटे के सामने तुम्हारा कोई और चेहरा है। नौकर के सामने तुम्हारी अकड़ ही और। अमीर को देख कर तुम कैसी पूंछ हिलाने लगते हो; गरीब को देख कर कैसे अकड़ जाते हो। तुम्हारे कितने चेहरे हैं! तुम्हारे कितने रूप हैं! यह भीड़ है तुम्हारे भीतर। तुम्हारे भीतर अभी एक स्वर तो बजा ही नहीं। तुम हो कौन? तुम अभी पूछोगे मैं कौन हूं, उत्तर न पाओगे। क्योंकि बहुत उत्तर मिलेंगे। कोई कहेगा कि तुम फलाने के बेटे हो; तुम फलाने के बाप हो; तुम उसके पति हो; तुम इसके नौकर हो, उसके मालिक हो। तुम पूछोगे मैं कौन हूं, हजार उत्तर आएंगे भीतर। उत्तरों से घाटी गूंज उठेगी। उनमें से कोई भी उत्तर सही नहीं है। क्योंकि एक ही तुम हो सकते हो।
न तो तुम किसी के पति हो, और न किसी के मित्र, न किसी के शत्रु। इन सबको छोड़ो। तुम अपने में क्या हो? ये तो दूसरों से संबंध हैं; यह तुम्हारा होना नहीं है। यह तुम्हारा अस्तित्व नहीं है, तुम्हारा स्वरूप नहीं है। ये तो नाटक में मिले तुम्हें अभिनय हैं। कभी बाप हो, कभी बेटे हो, कभी मित्र हो, कभी शत्रु हो, ठीक है; लेकिन ये तुम नहीं हो। तुम्हारा मौलिक स्वरूप क्या है--जो तुम जन्म के पहले थे? जो तुम मरने के बाद होओगे? जो तुम समाधि के एकांत में होओगे वह तुम कौन हो? जो उस एक को जान लेता है, जो जान लेता है मैं कौन हूं, उसने सब जान लिया।
इसलिए हम ज्ञानी को सर्वज्ञ कहते हैं। सर्वज्ञ का यह मतलब मत समझना जैसा कि समझ लिया जाता है। लोग बिल्कुल लिटरल शब्दों को पकड़ लेते हैं। महावीर के लिए कहा गया है शास्त्रों में कि वे सर्वज्ञ हैं। तो जैनों ने बिल्कुल ऐसा पकड़ लिया है कि जैसे अगर महावीर से तुम पूछो कि साइकिल का पंचर कैसे जोड़ा जा सकता है तो वे बता देंगे। सर्वज्ञ! कि तुम्हारी कार बिगड़ गई हो तो वे मेकेनिक का काम कर देंगे; कि तुम्हें बुखार चढ़ा है तो वे प्रिस्क्रिप्शन दवाई का लिख देंगे।
सर्वज्ञ का यह मतलब नहीं है। सर्वज्ञ का इतना ही मतलब है कि जिसने स्वयं को जाना उसने सब जान लिया जो जानने योग्य है। कोई साइकिल का पंचर जोड़ने की कला जानने योग्य बात है? उसकी उपयोगिता होगी; सत्य उसमें कुछ भी नहीं है। उपादेयता होगी; लेकिन आत्यंतिक कोई भी सार उसमें नहीं है। महावीर ने सब जान लिया, इसका केवल इतना अर्थ है कि एक को जान लिया जिसमें

सब छिपा है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम उनसे कुछ भी पूछोगे तो जान लिया।
लेकिन जैनों ने ऐसी हवा उड़ाई कि महावीर सर्वज्ञ हैं, और वे सब जानते हैं।
बुद्ध ने बड़ी मजाक की है फिर। बुद्ध का मजाक सार्थक है। बुद्ध ने महावीर की मजाक नहीं की है, जैनों की ही मजाक की है। लेकिन महावीर की मजाक करना पड़ी, क्योंकि ये जैन अपनी मूढ़ता को महावीर के सर्वज्ञ के सहारे सम्हाल रहे हैं। महावीर की सर्वज्ञता इनकी मूढ़ता के लिए आधार बन रही है। तो बुद्ध ने बड़ी गहरी मजाक की है। और बुद्ध ने कहा है कि कोई-कोई कहते हैं कि ज्ञात-पुत्र महावीर सर्वज्ञ है, लेकिन मैंने यह भी सुना है कि ज्ञात-पुत्र महावीर कभी-कभी ऐसे मकान के सामने भीख मांगने खड़े हो जाते हैं जिसमें वर्षों से कोई नहीं रहता। कैसी सर्वज्ञता? यह भी पता नहीं कि इस घर में कोई रहता ही नहीं, वर्षों से खाली पड़ा है, उसके सामने भीख मांगने खड़े हो जाते हैं। यह कैसी सर्वज्ञता? राह पर चलते हैं, अंधेरा होता है सुबह का, सोए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है। जब कुत्ता भौंकता है तब पता चलता है कि कुत्ता है। यह कैसी सर्वज्ञता?
बुद्ध महावीर का मजाक नहीं कर रहे हैं। क्योंकि बुद्ध कैसे महावीर का मजाक कर सकते हैं? वह तो अपना ही मजाक होगा। जैनों का मजाक कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, कैसे मूढ़ हो तुम! देखते भी नहीं कि महावीर ऐसे घर के सामने भी भीख मांगते हैं जहां कोई नहीं है, फिर तुम सर्वज्ञ कहे जा रहे हो! सर्वज्ञ का अर्थ इतना है कि जिसने स्वयं को जान लिया उसने जो जानने योग्य है वह सब जान लिया। ये तो सब न जानने योग्य बातें हैं। इनको जान कर भी क्या होगा?
बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता, एक को ही जान लेता है, सार
को पकड़ लेता है।
सूफियों में कहानी है कि एक सम्राट यात्रा को गया। लौटते समय उसने अपनी पत्नियों को लिखा--उसकी एक हजार पत्नियां थीं--कि मैं आ रहा हूं, तो तुम सब खबर भेजो कि तुम्हारे लिए क्या ले आऊं। तो किसी ने हीरे-जवाहरातों के बहुमूल्य आभूषण मांगे; किसी ने स्वर्ण के बहुमूल्य पात्र बुलवाए; किसी ने अनूठी सुगंधियों को लाने के लिए लिखा; अलग-अलग, हजार पत्नियां थीं। सम्राट ने उनके पत्र देखे और फाड़ कर फेंकता गया। सिर्फ एक पत्नी ने लिखा था कि तुम घर वापस लौट आओ, यही भेंट है; और कुछ चाहिए नहीं। तुम आ गए, सब आ गया।
ज्ञानी परमात्मा को मांगता है। अज्ञानी और सब मांगता है; परमात्मा से
भी मांगता है तो और सब मांगता है। ज्ञानी सिर्फ एक को जान लेना चाहता है। एक आ गया, सब आ गया। प्रीतम आ गया, सब आ गया। और भेंट की बात ही बेहूदी है। तो उस पत्नी ने कहा, तुम्हें पा लिया, सब पा लिया। क्या इसका मतलब यह हुआ कि सम्राट के आ जाने से हीरे-जवाहरातों के आभूषण आ जाएंगे, कि स्वर्ण-कलश आ जाएंगे, कि सारी दुनिया की संपदा आ जाएगी?
नहीं, यह मतलब नहीं हुआ। अगर ऐसा तुम समझे तो गलत समझे। लेकिन जिसके हृदय में प्रेम है, उसके लिए सब आ गया। हीरे-जवाहरात आ गए; स्वर्ण-कलश आ गए। प्रेमी के आने में सब आ गया। तुम्हें दिखाई भी न पड़ेगा, तुम्हें तो सिर्फ प्रेमी आता दिखाई पड़ेगा, हाथ खाली दिखाई पड़ेंगे। लेकिन जिसके हृदय में प्रेम है उसके लिए सब आ गया। कुछ पाने योग्य और बचा ही न। लाने की कोई जरूरत न थी। तुम आ गए, सब आ गया।
बुद्धिमान एक को जान लेता है; निर्बुद्धि अनेक के पीछे दौड़ता, भटकता
और पागल हो जाता है। अनेक के पीछे दौड़ोगे तो पागल हो ही जाओगे। बहुत सी नावों में एक साथ यात्रा कैसे करोगे? बहुत दिशाओं में कैसे चलोगे? एक की खोज वाला धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शांत होकर विमुक्त हो जाता है; अनेक की खोज वाला धीरे-धीरे अशांत होते-होते विक्षिप्त हो जाता है।
विक्षिप्तता और विमुक्तता ये दो छोर हैं। मध्य में खड़े हो तुम। अगर अनेक की खोज की तो विक्षिप्तता की तरफ बढ़ते जाओगे, पागल होओगे ही। वह तार्किक निष्कर्ष है। अगर एक की खोज की तो पागलपन मिटता जाएगा। शांत हो

जाओगे, प्रफुल्लित हो जाओगे, खिल जाओगे। एक मेधा प्रकट होगी, एक प्रतिभा का प्रकाश आने लगेगा। जैसे-जैसे एक की तरफ बढ़ोगे वैसे-वैसे संगठित होने लगोगे। जैसे-जैसे एक के पास पहुंचोगे वैसे-वैसे भीड़ छंटने लगेगी; तुम भी एक होने लगोगे। क्योंकि समान ही समान को जान सकता है। जब तुम एक हो जाओगे तभी तुम एक को जान पाओगे। जब तुम अनेक हो जाओगे तभी तुम अनेक के साथ संबंध बना पाओगे। अनेकता विक्षिप्तता में ले जाएगी। एकता विमुक्ति है।
"संत अपने लिए संग्रह नहीं करते। दूसरों के लिए जीते हैं, और स्वयं समृद्ध होते जाते हैं। दूसरों को दान देते हैं, और स्वयं बढ़ती प्रचुरता को उपलब्ध होते हैं।"
संत अपने लिए संग्रह नहीं करते, क्योंकि अपने लिए जीते नहीं।
दो तरह के जीने के ढंग हैं। एक तो अपने लिए जीने का ढंग है जो तुम जानते हो। और इसीलिए परेशान हो। अपने लिए जो जी रहा है वह सारी दुनिया की शत्रुता में जीएगा। सब दुश्मन हैं। जो अपने लिए जी रहा है, शत्रुता उसका आधार है। जो अपने लिए जी रहा है वह जी ही न पाएगा; शत्रुता में ही उसका जीवन नष्ट हो जाएगा। एक दूसरा ढंग हैः दूसरे के लिए जीना। जो दूसरे के लिए जीता है मित्रता उसका आधार है। अब कोई डर ही न रहा किसी से कुछ। कोई दूसरा छीन ही नहीं सकता; हम दूसरे के लिए ही जी रहे हैं। महावीर ने कहा हैः मित्ति मे सब्ब भुए सू, वैरं मज्झ न केणई। मेरी मित्रता है सबसे, सारे भूमंडल से-- सब्ब भुए सू। और वैर मेरा किसी से भी नहीं। कोई कारण ही न रहा वैर का। महत्वाकांक्षा न रही; स्वयं के लिए जीने का पागलपन न रहा। वासना की जगह करुणा जीवन का सूत्र हो गया। वासना का मतलब है छीनो; करुणा का मतलब है दो। बड़ी पुरानी भारतीय कथा है कि देव, दानव और मानव तीनों प्रजापति के पास उपस्थित हुए ठीक सृष्टि के प्रारंभ में और उन्होंने कहा, हमें उपदेश दें हम क्या करें?
प्रजापति ने कुछ उपदेश नहीं दिया, जोर से निनाद कियाः दो, दो, दो। यह
तो निनाद दो, दो, दो, दानवों ने नहीं सुना, केवल देवताओं ने सुना। वस्तुतः प्रजापति ने दो, दो, दो, दान-दान-दान ऐसा कहा न था, सिर्फ इतना ही कहा थाः द, द, द। देवताओं ने सुना द; निश्चित अर्थ हैः दान, दो। मानवों ने, मनुष्यों ने सुना द--दमन, दबाओ। अपने अनुसार ही तो सुना जाएगा। प्रजापति ने तो जैसे द, द, द, जैसे छोटे बच्चे उदघोष कर दें ऐसा उदघोष किया। दानवों ने क्या समझा? उन्होंने समझा दुष्टता। द, उन्होंने व्याख्या की दुष्टता, क्रूरता, छीनो, सताओ। देवताओं ने समझाः दो, दान, करुणा। मनुष्यों ने सोचाः दबाओ अपनी वासनाओं को, इच्छाओं को, दमन, संयम। हम वही सुनते हैं जो हम हैं; जो कहा जाता है वह नहीं सुनते। वह हम सुन भी कैसे सकेंगे?
"संत अपने लिए संग्रह नहीं करते।"
इसलिए नहीं कि संग्रह बुरा है, बल्कि इसलिए कि संतों ने अपने अनुभव से जाना है कि जितना तुम संग्रह करोगे उतना ही तुम दीन होते चले जाओगे, दरिद्र हो जाओगे, जितना तुम दोगे उतने ही समृद्ध हो जाओगे। असल में, तुम उसी चीज के मालिक होते हो जिसे तुम दे सकते हो। तुमने कभी देकर देखा कि देते वक्त कैसी परितृप्ति होती है! जैसी लेते वक्त कभी नहीं होती। और छीनते वक्त तो हो ही कैसे सकती है? जब तुम किसी की जेब से कुछ निकालते हो, तो तुम चाहे हीरा भी निकाल लो, लेकिन परितृप्ति नहीं हो सकती। भीतर एक बेचैनी होती है, भीतर पूरे प्राण आकुल होते हैं। कुछ तुम कर रहे हो जो तुम्हारी प्रकृति के विपरीत है; अन्यथा बेचैनी क्यों? परेशानी क्यों? अगर तुम अपनी बेचैनी के इंगित को भी समझ लो तो तुम समझ जाओगे कि कुछ तुम्हारी प्रकृति के प्रतिकूल हो रहा है। लेकिन तुम साधारण सी चीज किसी को भेंट दे देते हो--किसी मित्र को, किसी के विवाह में, किसी के जन्मदिन पर, या अकारण किसी गरीब को कुछ दे देते हो, राह चलते भिखारी को दो पैसे दे देते हो--देते वक्त तुमने देखा, एक बड़ी गहरी परितृप्ति, एक परितोष तुम्हें घेर लेता है। जैसे स्वाभाविक है। जैसे दान स्वाभाविक है, स्वभाव के अनुकूल है; और छीनना स्वभाव के प्रतिकूल है।
अगर तुम्हें दान देते वक्त परितृप्ति न मालूम हो तो समझना कि तुमने दान गलत कारणों से दिया। अन्यथा परितृप्ति होगी ही। अब कोई राजनेता आ गया

कि चुनाव में आपकी सहायता की जरूरत है। देना तुम चाहते नहीं, लेकिन अगर न दो तो यह आदमी कभी न कभी बदला ले सकता है, कहीं जीत गया चुनाव तो फिर झंझट खड़ी करेगा, तो दे देना अच्छा है। तो होशियार आदमी दोनों पार्टियों के उम्मीदवारों को दे देते हैं। तुम शांत रहो, क्योंकि तुमसे शैतान होने की संभावना है, तुम कभी भी शैतानी कर सकते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा कि तुम्हारे इलाके से दो आदमी चुनाव में खड़े हुए हैं; दोनों में से तुम किसको अच्छा समझते हो? उसने कहा कि दोनों एक-दूसरे से ज्यादा बुरे हैं। दोनों एक-दूसरे से ज्यादा बुरे हैं; लेकिन परमात्मा का धन्यवाद, शुक्र अल्लाह का उसने कहा कि केवल दो में से एक ही चुना जा सकता है। नहीं तो और मुसीबत होती। शुक्र अल्लाह का कि दो में से एक ही चुना जा सकता है। यही एक आशा है। बाकी दोनों एक-दूसरे से बुरे हैं।
राजनेता आ जाता है, उसको भी देना पड़ता है, मुस्कुरा कर देना पड़ता है। लेकिन भीतर तुम्हें बेचैनी मालूम होती है, सुख नहीं मालूम होता। राह पर एक भिखमंगा मांगने खड़ा हो जाता है। चार आदमी क्या कहेंगे देख कर अगर तुम न दोगे--कि दो पैसे न दिए! अरे कंजूस, इतना कंजूस कि दो पैसे न निकले, और गिड़गिड़ा रहा था भिखमंगा! और भिखमंगे बड़ा शोर मचाते हैं, ताकि और लोग भी देख लें, पैर पकड़ लेते हैं, इज्जत का सवाल बना देते हैं। तो दो पैसे तुम देते हो; लेकिन परितोष नहीं होता।
परितोष तो तभी होगा जब तुम हृदय से देते हो, और कोई कारण देने का नहीं है। अगर कारण है तो वह दान ही न रहा; वह भी धंधे का हिस्सा है, सौदा है। वह भी बाजार में प्रतिष्ठा खरीद रहे हो दो पैसे देकर भिखमंगे को। उसको तुम मूल और ब्याज से वसूल करके रहोगे। इसी बाजार से वसूल करोगे। इसी राजनेता को जिसको तुमने हजार रुपये दे दिए हैं चुनाव में लड़ने के लिए, तुम दस हजार के लाइसेंस निकलवा कर रहोगे। सब सौदा है।
लेकिन दान सौदा नहीं है। दान का अर्थ हैः दे दिया, और देने में इतना पा लिया कि अब इसके आगे पाने का कोई सवाल ही नहीं उठता; जितना दिया उससे ज्यादा देने में ही पा लिया।
संत संग्रह नहीं करते, क्योंकि उन्हें एक कला आ गई है। वह कला है, वे देकर इतना पा लेते हैं कि रोक कर उसको गंवाने को वे राजी नहीं। दूसरे के लिए जीते हैं, क्योंकि उन्होंने यह जाना कि जितना तुम दूसरे के लिए जीते हो उतना ही तुम्हारा जीवन परमात्ममय होता जाता है। परमात्मा अपने लिए नहीं जीता, इसीलिए तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। कभी वृक्ष के लिए जीता है तो वृक्ष दिखाई पड़ता है; कभी झरने के लिए जीता है तो झरना दिखाई पड़ता है; कभी फूल के लिए जीता है तो फूल खिल जाता है; कभी आदमी के लिए जीता है तो आदमी प्रकट होता है। परमात्मा को तुम सीधा कहीं न पा सकोगे, क्योंकि वह अपने लिए जीता ही नहीं।
इसीलिए तो मुसीबत है। नास्तिक पूछता है, कहां है? दर्शन करवा दो!
उसका दर्शन नहीं करवाया जा सकता। अगर वह अपने लिए जीता होता तो उसका पता-ठिकाना अब तक हमने लगा लिया होता--कहां रहता है? क्या करता है? वह जीता है सबके लिए; जीता है सब में। सब होकर जीता है। उसका अपना अलग होना नहीं है; फूल में, पत्ते में, पहाड़ में, चांद-तारों में, जहां है वही है।
जिस दिन तुम समझोगे इस राज को कि परमात्मा सब में जी रहा है उस दिन तुम पाओगे कि संत होने की एक ही कला है कि तुम भी सब में जीना शुरू कर दो। जितना-जितना तुम अपने में कम जीओगे, उतना ही उतना पाओगे महाजीवन तुम पर उतरने लगा।
वे दूसरों के लिए जीते हैं; स्वयं समृद्ध होते चले जाते हैं लेकिन। संग्रह नहीं करते, जीते हैं दूसरे के लिए, और स्वयं समृद्ध होते चले जाते हैं।
यह समृद्धि, जिसे तुम समृद्धि कहते हो, वह नहीं है। और तुम जिसे समृद्धि कहते हो उसे संत समृद्धि कहते ही नहीं। तुम्हारी संपत्ति को संत विपत्ति कहते हैं। तुम्हारी संपदा विपदा है। संत एक भीतरी समृद्धि से जीता है। उसकी प्रचुरता आंतरिक है। वह भीतर से भरा हुआ जीता है। आपूर, ऊपर

से बहता हुआ जीता है। उसकी संपदा आंतरिक है। और जितना ही वह बांटता है, यह संपदा बढ़ती जाती है। बाहर की संपदा को बांटो, घटेगी; भीतर की संपदा को रोको, घटेगी। बाहर की संपदा को बांटो, समाप्त हो जाएगी; भीतर की संपदा को बांटो, बढ़ती चली जाएगी।
"दूसरों को दान देते हैं, और स्वयं बढ़ती प्रचुरता को उपलब्ध होते हैं। स्वर्ग का ताओ आशीर्वाद देता है, लेकिन हानि नहीं करता। संत का ढंग संपन्न करता है, लेकिन संघर्ष नहीं करता।"
वह जो परमात्मा का आत्यंतिक नियम है ताओ, ऋत, वह आशीर्वाद देता है, हानि नहीं करता। और अगर हानि होती है तो तुम्हारे अपने कारण होती है। तुम आशीर्वाद को भी अभिशाप में बदलने में बड़े कुशल हो। तुम अभिशाप को भी झेलते हो और आशीर्वाद को भी अभिशाप बना लेते हो। लेकिन परमात्मा की तरफ से कोई अभिशाप नहीं आता। अगर तुम्हारा जीवन अभिशप्त हो तो समझ लेना कि तुम परमात्मा के विपरीत जी रहे हो, तुम अपने ढंग से जीने की कोशिश कर रहे हो, तुम संघर्ष कर रहे हो, और तुम्हारे भीतर एक रेसिस्टेंस है, तुम परमात्मा की धारा में बह नहीं रहे।
लाओत्से से किसी ने पूछा कि तूने परमात्मा को पाया, सत्य को, ताओ को, कैसे? कैसे तुझे बोध हुआ? तो कहते हैं, लाओत्से ने कहा कि मैंने एक वृक्ष के ऊपर से एक सूखे पत्ते को गिरते देखा।
पतझड़ के दिन रहे होंगे, लाओत्से टिका बैठा रहा होगा वृक्ष से, शांत, मौन देखता रहा होगा प्रकृति को। टूटा एक पत्ता वृक्ष से, गिरने लगा नीचे। हवा ने कभी उसे बाएं उड़ाया तो बाएं चला गया, हवा ने कभी दाएं झुकाया तो दाएं झुक गया। पत्ते ने कोई संघर्ष न किया, वह हवा से लड़ा ही नहीं। वृक्ष से टूटने के समय भी उसने कोई जिद न की कि मैं जुड़ा ही रहूं; चुपचाप टूट गया। पीछे उसने घाव भी न छोड़ा वृक्ष में। शायद वृक्ष को पता भी न चला हो कि कब सूखा पत्ता जराजीर्ण पुराना होकर गिर गया, पक गया और गिर गया। हवा ने नीचे गिरा दिया तो पत्ता जमीन पर पड़ गया; फिर हवा का झोंका आया तो पत्ता आकाश में उड़ गया।
लाओत्से ने कहा, उसी दिन से मैं उस सूखे पत्ते जैसा हो गया, अपना संघर्ष छोड़ दिया; हवा जहां ले जाए। मेरी अपनी कोई मंजिल न रही, उसकी मंजिल को ही मैंने अपनी मंजिल बना लिया। और मुझे कुछ पता नहीं कि उसकी मंजिल क्या है, लेकिन होगी कोई। अपनी नियति को मैंने अलग न बांटा, मैंने अपने को अलग-थलग खड़ा न किया; मैं नदी की धार में बहने लगा। धार जहां ले जाए वहीं जाने लगा। और तत्क्षण सब रूपांतरित हो गया।
संघर्ष सत्य को पाने का मार्ग नहीं है। समर्पण! और जैसे ही तुम समर्पित हो, अचानक तुम पाते हो, सब तरफ से उसके आशीर्वाद बरसने लगे। वे सदा से बरस रहे थे, लेकिन तुम उलटे जा रहे थे, और तुम उन्हें अभिशाप में रूपांतरित कर रहे थे। तुम अगर जीवन में दुखी हो तो जानना कि परमात्मा के विपरीत चल रहे हो। क्योंकि परमात्मा दुख जानता ही नहीं। दुख तुम्हारी जिद्द है। दुख परमात्मा की नियति से अपनी नियति अलग बनाने की चेष्टा का परिणाम है। समग्र से पृथक होने की जो तुम्हारी धारणा है वही तुम्हारा नरक है। समग्र के साथ तुम एक हो गए, स्वर्ग का द्वार खुल गया।
आज इतना ही।

ताओ उपनिषद, भाग छह
एक सौ सत्ताईसवां प्रवचन

प्रेम और प्रेम में भेद है

पहला प्रश्नः एक प्रेम कारागृह बन जाता है और एक प्रेम मंदिर। क्या प्रेम और प्रेम में भी भेद है?

प्रेम और प्रेम में बहुत भेद है, क्योंकि प्रेम बहुत तलों पर अभिव्यक्त हो सकता है। जब प्रेम अपने शुद्धतम रूप में प्रकट होता है-- अकारण, बेशर्त--तब मंदिर बन जाता है। और जब प्रेम अपने अशुद्धतम रूप में प्रकट होता है, वासना की भांति, शोषण और हिंसा की भांति, ईर्ष्या-द्वेष की भांति, आधिपत्य, पजेशन की भांति, तब कारागृह बन जाता है।
कारागृह का अर्थ हैः जिससे तुम बाहर होना चाहो और हो न सको। कारागृह
का अर्थ हैः जो तुम्हारे व्यक्तित्व पर सब तरफ से बंधन की भांति बोझिल हो जाए, जो तुम्हें विकास न दे, छाती पर पत्थर की तरह लटक जाए और तुम्हें डुबाए। कारागृह का अर्थ हैः जिसके भीतर तुम तड़फड़ाओ मुक्त होने के लिए और मुक्त न हो सको; द्वार बंद हों, हाथ-पैरों पर जंजीरें पड़ी हों, पंख काट दिए गए हों। कारागृह का अर्थ हैः जिसके ऊपर और जिससे पार जाने का उपाय न सूझे। मंदिर का अर्थ हैः जिसका द्वार खुला हो; जैसे तुम भीतर आए हो वैसे ही बाहर जाना चाहो तो कोई प्रतिबंध न हो, कोई पैरों को पकड़े न; भीतर आने के लिए जितनी आजादी थी उतनी ही बाहर जाने की आजादी हो।
मंदिर से तुम बाहर न जाना चाहोगे, लेकिन बाहर जाने की आजादी सदा मौजूद है। कारागृह से तुम हर क्षण बाहर जाना चाहोगे, और द्वार बंद हो गया! और निकलने का मार्ग न रहा!
मंदिर का अर्थ हैः जो तुम्हें अपने से पार ले जाए; जहां से अतिक्रमण
हो सके; जो सदा और ऊपर, और ऊपर ले जाने की सुविधा दे। चाहे तुम प्रेम में किसी के पड़े हो और प्रारंभ अशुद्ध रहा हो; लेकिन जैसे-जैसे प्रेम गहरा होने लगे वैसे-वैसे शुद्धि बढ़ने लगे। चाहे प्रेम शरीर का आकर्षण रहा हो; लेकिन जैसे ही प्रेम की यात्रा शुरू हो, प्रेम शरीर का आकर्षण न रह कर दो मनों के बीच का खिंचाव हो जाए, और यात्रा के अंत-अंत तक मन का खिंचाव भी न रह जाए, दो आत्माओं का मिलन बन जाए।
जिस प्रेम में अंततः तुम्हें परमात्मा का दर्शन हो सके वह तो मंदिर है, और जिस प्रेम में तुम्हें तुम्हारे पशु के अतिरिक्त किसी की प्रतीति न हो सके वह कारागृह है। और प्रेम दोनों हो सकता है, क्योंकि तुम दोनों हो। तुम पशु भी हो और परमात्मा भी। तुम एक सीढ़ी हो जिसका एक छोर पशु के पास टिका है और जिसका दूसरा छोर परमात्मा के पास है। और यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम सीढ़ी से ऊपर जाते हो या नीचे उतरते हो। सीढ़ी एक ही है, उसी सीढ़ी का नाम प्रेम है; सिर्फ दिशा बदल जाएगी। जिन सीढ़ियों से चढ़ कर तुम मेरे पास आए हो उन्हीं सीढ़ियों से उतर कर तुम मुझसे दूर भी जाओगे। सीढ़ियां वही होंगी, तुम भी वही होओगे, पैर भी वही होंगे, पैरों की शक्ति जैसा आने में उपयोग आई है वैसे ही जाने में भी उपयोग होगी, सब कुछ वही होगा; सिर्फ तुम्हारी दिशा बदल जाएगी। एक दिशा थी जब तुम्हारी आंखें ऊपर लगी थीं, आकाश की तरफ, और पैर तुम्हारी आंखों का अनुसरण कर रहे थे; दूसरी दिशा होगी, तुम्हारी आंखें जमीन पर लगी होंगी, नीचाइयों की तरफ, और तुम्हारे पैर उसका अनुसरण कर रहे होंगे।
साधारणतः प्रेम तुम्हें पशु में उतार देता है। इसलिए तो प्रेम से लोग इतने भयभीत हो गए हैं; घृणा से भी इतने नहीं डरते जितने प्रेम से डरते हैं; शत्रु से भी इतना भय नहीं लगता जितना मित्र से भय लगता है। क्योंकि शत्रु क्या बिगाड़ लेगा? शत्रु और तुम में तो बड़ा फासला है, दूरी है। लेकिन मित्र बहुत कुछ बिगाड़ सकता है। और प्रेमी तो तुम्हें बिल्कुल नष्ट कर सकता है, क्योंकि तुमने इतने पास आने का अवसर दिया है। प्रेमी तो तुम्हें बिल्कुल नीचे उतार सकता है नरकों में। इसलिए प्रेम में लोगों को नरक की पहली झलक मिलती है। इसलिए तो लोग भाग खड़े होते हैं प्रेम की दुनिया से, भगोड़े बन

जाते हैं। सारी दुनिया में धर्मों ने सिखाया हैः प्रेम से बचो। कारण क्या होगा? कारण यही है कि देखा कि सौ में निन्यानबे तो प्रेम में सिर्फ डूबते हैं और नष्ट होते हैं।
प्रेम की कुछ भूल नहीं है; डूबने वालों की भूल है। और मैं तुमसे कहता हूं, जो प्रेम में नरक में उतर जाते थे वे प्रार्थना से भी नरक में ही उतरेंगे, क्योंकि प्रार्थना प्रेम का ही एक रूप है। और जो घर में प्रेम की सीढ़ी से नीचे उतरते थे वे आश्रम में भी प्रार्थना की सीढ़ी से नीचे ही उतरेंगे। असली सवाल सीढ़ी को बदलने का नहीं है, न सीढ़ी से भाग जाने का है; असली सवाल तो खुद की दिशा को बदलने का है।
तो मैं तुमसे नहीं कहता हूं कि तुम संसार को छोड़ कर भाग जाना; क्योंकि भागने वाले कुछ नहीं पाते। सीढ़ी को छोड़ कर जो भाग गया, एक बात पक्की है कि वह नरक में नहीं उतर सकेगा; लेकिन दूसरी बात भी पक्की है कि स्वर्ग में कैसे उठेगा? तुम खतरे में जीते हो, संन्यासी सुरक्षा में; नरक में जाने का उसका उपाय उसने बंद कर दिया। लेकिन साथ ही स्वर्ग जाने का उपाय भी बंद हो गया। क्योंकि वे एक ही सीढ़ी के दो नाम हैं। संन्यासी, जो भाग गया है संसार से, वह तुम्हारे जैसे दुख में नहीं रहेगा, यह बात तय है; लेकिन तुम जिस सुख को पा सकते थे, उसकी संभावना भी उसकी खो गई। माना कि तुम नरक में हो, लेकिन तुम स्वर्ग में हो सकते हो--और उसी सीढ़ी से जिससे तुम नरक में उतरे हो। सौ में निन्यानबे लोग नीचे की तरफ उतरते हैं, लेकिन यह कोई सीढ़ी का कसूर नहीं है; यह तुम्हारी ही भूल है।
और स्वयं को न बदल कर सीढ़ी पर कसूर देना, स्वयं की आत्मक्रांति न करके सीढ़ी की निंदा करना बड़ी गहरी नासमझी है। अगर सीढ़ी तुम्हें नरक की तरफ उतार रही है तो पक्का जान लेना कि यही सीढ़ी तुम्हें स्वर्ग की तरफ उठा सकेगी। तुम्हें दिशा बदलनी है, भागना नहीं है। क्या होगा दिशा का रूपांतरण?
जब तुम किसी को प्रेम करते हो--वह कोई भी हो, मां हो, पिता हो, पत्नी हो, प्रेयसी हो, मित्र हो, बेटा हो, बेटी हो, कोई भी हो--प्रेम का गुण तो एक है; किससे प्रेम करते हो, यह बड़ा सवाल नहीं है। जब भी तुम प्रेम करते हो तो दो संभावनाएं हैं। एक तो यह कि जिसे तुम प्रेम करना चाहते हो, या जिसे तुम प्रेम करते हो, उस पर तुम प्रेम के माध्यम से आधिपत्य करना चाहो, मालकियत करना चाहो। तुम नरक की तरफ उतरने शुरू हो गए।
प्रेम जहां पजेशन बनता है, प्रेम जहां परिग्रह बनता है, प्रेम जहां आधिपत्य लाता है, प्रेम न रहा; यात्रा गलत हो गई। जिसे तुमने प्रेम किया है, उसके तुम मालिक बनना चाहो; बस भूल हो गई। क्योंकि मालिक तुम जिसके भी बन जाते हो, तुमने उसे गुलाम बना दिया। और जब तुम किसी को गुलाम बनाते हो तो याद रखना, उसने भी तुम्हें गुलाम बना दिया। क्योंकि गुलामी एकतरफा नहीं हो सकती; वह दोधारी धार है। जब भी तुम किसी को गुलाम बनाओगे, तुम भी उसके गुलाम बन जाओगे। यह हो सकता है कि तुम छाती पर ऊपर बैठे होओ और वह नीचे पड़ा है; लेकिन न तो वह तुम्हें छोड़ कर भाग सकता है, न तुम उसे छोड़ कर भाग सकते हो। गुलामी पारस्परिक है। तुम भी उससे बंध गए हो जिसे तुमने बांध लिया। बंधन कभी एकतरफा नहीं होता। अगर तुमने आधिपत्य करना चाहा तो दिशा नीचे की तरफ शुरू हो गई।
जिसे तुम प्रेम करो उसे मुक्त करना; तुम्हारा प्रेम उसके लिए मुक्ति बने। जितना ही तुम उसे मुक्त करोगे, तुम पाओगे कि तुम मुक्त होते चले जा रहे हो, क्योंकि मुक्ति भी दोधारी तलवार है। तुम जब अपने निकट के लोगों को मुक्त करते हो तब तुम अपने को भी मुक्त कर रहे हो; क्योंकि जिसे तुमने मुक्त किया, उसके द्वारा तुम्हें गुलाम बनाए जाने का उपाय नष्ट कर दिया तुमने। जो तुम देते हो वही तुम्हें उत्तर में मिलता है। जब तुम गाली देते हो तब गालियों की वर्षा हो जाती है। जब तुम फूल देते हो तब फूल लौट आते हैं। संसार तो प्रतिध्वनि करता है। संसार तो एक दर्पण है जिसमें तुम्हें अपना ही चेहरा हजार-हजार रूपों में दिखाई पड़ता है।
जब तुम किसी को गुलाम बनाते हो तब तुम भी गुलाम बन रहे हो; प्रेम कारागृह बनने लगा! यह मत सोचना कि दूसरा तुम्हें कारागृह में डालता है। दूसरा तुम्हें कैसे डाल सकता है? दूसरे की सामर्थ्य क्या? तुम ही दूसरे को

कारागृह में डालते हो तब तुम कारागृह में पड़ते हो; यह साझेदारी है। तुम उसे गुलाम बनाते हो; वह तुम्हें गुलाम बनाता है। पति-पत्नियों को देखो, वे एक-दूसरे के गुलाम हो गए हैं। और स्वभावतः, जो तुम्हें गुलाम बनाता है उसे तुम प्रेम कैसे कर पाओगे? भीतर गहरे में रोष होगा, क्रोध होगा; गहरे में प्रतिशोध का भाव होगा। और वह हजार-हजार ढंग से प्रकट होगा; छोटी-छोटी बात में प्रकट होगा। क्षुद्र-क्षुद्र बातों में पति-पत्नियों को तुम लड़ते पाओगे। प्रेमियों को तुम ऐसी क्षुद्र बातों पर लड़ते पाओगे कि यह तुम मान ही नहीं सकते कि इनके जीवन में प्रेम उतरा होगा। प्रेम जैसी महा घटना जहां घटी हो वहां ऐसी क्षुद्र बातों की कलह उठ सकती है? यह क्षुद्र बातों की कलह बता रही है कि सीढ़ी नीचे की तरफ लग गई है।
जब भी तुम किसी पर आधिपत्य करना चाहोगे, तुमने प्रेम की हत्या कर दी। प्रेम का शिशु पैदा भी न हो पाया, गर्भपात हो गया; अभी जन्मा भी न था कि तुमने गर्दन दबा दी।
प्रेम खिलता है मुक्ति के आकाश में; प्रेम का जन्म होता है स्वतंत्रता के परिवेश में। कारागृह में प्रेम का जन्म नहीं होता; वहां तो प्रेम की कब्र बनती है। और जब तुम दूसरे पर आधिपत्य करोगे तब तुम धीरे- धीरे पाओगे, प्रेम तो न मालूम कहां तिरोहित हो गया और प्रेम की जगह कुछ बड़ी विकृतियां छूट गईं--ईर्ष्या। जब तुम दूसरे पर आधिपत्य करोगे तब ईर्ष्या पैदा हो जाएगी।
अगर तुम्हारी पत्नी किसी के साथ थोड़ी हंस कर भी बोल रही है; प्राण कंपित हो गए। यह तो पत्नी तुम्हारे कारागृह के बाहर जाने के लिए कोई झरोखा बना रही है। यह तो सेंध मालूम पड़ती है; दीवाल तोड़ कर बाहर निकलने का उपाय है। तुम्हारी पत्नी और किसी और के साथ हंसे? तुम्हारी पत्नी और किसी और से बात करे? तुम्हारा पति किसी और स्त्री के सौंदर्य का गुणगान करे? नहीं, यह असंभव है। क्योंकि यह तो प्रथम से ही खतरा है। यह तो स्वतंत्र होने की चेष्टा है। इसको पहले ही प्रेमी मार डालते हैं। ईर्ष्या का जन्म होता है। और ध्यान रखना, अगर तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो तो वस्तुतः उस स्त्री के द्वारा तुम सभी स्त्रियों को प्रेम करते हो। वह स्त्री प्रतिनिधि है, वह प्रतीक है। उस स्त्री में तुमने स्त्रैणता को प्रेम किया है। जब तुम किसी एक पुरुष को प्रेम करते हो तो उस पुरुष में तुमने सारे जगत के पुरुषों को प्रेम कर लिया जो आज मौजूद हैं, जो कभी मौजूद थे, जो कभी मौजूद होंगे। व्यक्तित्व तो ऊपर-ऊपर है, भीतर तो शुद्ध ऊर्जा है पुरुष होने की या स्त्री होने की। जब तुम एक स्त्री के सौंदर्य का गुणगान करते हो तब यह कैसे हो सकता है कि सौंदर्य को परखने वाली ये आंखें राह से गुजरती दूसरी स्त्री को, जब वह सुंदर हो, तो उसमें सौंदर्य न देखें? यह कैसे हो सकता है? यह तो असंभव है। लेकिन इस सौंदर्य के देखने में कुछ पाप नहीं है। यह कैसे हो सकता है कि जब तुमने एक दीये में रोशनी देखी और आह्लादित हुए तो दूसरे दीये में रोशनी देख कर तुम आह्लादित न हो जाओ?
लेकिन एक स्त्री कोशिश करेगी कि तुम्हें अब सौंदर्य कहीं और दिखाई न पड़े। और एक पुरुष कोशिश करेगा, अब स्त्री को यह सारा संसार पुरुष से शून्य हो जाए, बस मैं ही एक पुरुष दिखाई पडूं। तब एक बड़ी संकटपूर्ण स्थिति पैदा होती है। स्त्री कोशिश में लग जाती है इस पुरुष को कहीं कोई सुंदर स्त्री दिखाई न पड़े। धीरे-धीरे यह पुरुष अपनी संवेदनशीलता को मारने लगता है, क्योंकि संवेदनशीलता रहेगी तो सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। सौंदर्य का किसी ने ठेका नहीं लिया है; जहां होगा वहां दिखाई पड़ेगा। और अगर प्रेम स्वतंत्र हो तो हर जगह हर सौंदर्य में इस व्यक्ति को अपनी प्रेयसी दिखाई पड़ेगी, और प्रेम गहरा होगा।
लेकिन स्त्री काटेगी संवेदनशीलता को; पुरुष काटेगा स्त्री की संवेदनशीलता को; दोनों एक-दूसरे की संवेदना को मार डालेंगे। और जब पुरुष को कोई भी स्त्री सुंदर नहीं दिखाई पड़ेगी तो तुम सोचते हो घर में जो स्त्री बैठी है वह सुंदर दिखाई पड़ेगी? वह सबसे ज्यादा कुरूप स्त्री हो जाएगी। उसी के कारण सौंदर्य का बोध ही मर गया। तो तुम सोचते हो जिस स्त्री को कोई पुरुष सुंदर दिखाई न पड़ेगा उसे घर का पुरुष सुंदर दिखाई पड़ेगा? जब

पुरुष ही सुंदर नहीं दिखाई पड़ते तो इस भीतर का जो पुरुषत्व है वह भी अब आकर्षण नहीं लाता।
तुम ऐसा ही समझो कि तुमने तय कर लिया हो कि तुम जिस स्त्री को प्रेम करते हो, बस उसके पास ही श्वास लोगे, शेष समय श्वास बंद रखोगे। और तुम्हारी स्त्री कहे कि देखो, तुम और कहीं श्वास मत लेना! तुमने खुद ही कहा है कि तुम्हारा जीवन बस तेरे लिए है। तो जब मेरे पास रहो, श्वास लेना; जब और कहीं रहो तो श्वास बंद रखना। तब क्या होगा? अगर तुमने यह कोशिश की तो दुबारा जब तुम इस स्त्री के पास आओगे तुम लाश होओगे, जिंदा आदमी नहीं। और जब तुम और कहीं श्वास न ले सकोगे तो तुम सोचते हो इस स्त्री के पास श्वास ले सकोगे? तुम मुर्दा हो जाओगे।
ऐसे प्रेम कारागृह बनता है। प्रेम बड़े आश्वासन देता है--और आश्वासनों
को पूरा कर सकता है--लेकिन वे पूरे हो नहीं पाते। इसलिए हर व्यक्ति प्रेम के विषाद से भर जाता है। क्योंकि प्रेम ने बड़े सपने दिए थे, बड़े इंद्रधनुष निर्मित किए थे, सारे जगत के काव्य का वचन दिया था कि तुम्हारे ऊपर वर्षा होगी; और जब वर्षा होती है तो तुम पाते हो कि वहां न तो कोई काव्य है, न कोई सौंदर्य; सिवाय कलह, उपद्रव, संघर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य के सिवाय कुछ भी नहीं। तुम गए थे किसी व्यक्ति के साथ स्वतंत्रता के आकाश में उड़ने; तुम पाते हो कि पंख कट गए। तुम गए थे स्वतंत्रता की सांस लेने; तुम पाते हो गर्दन घुट गई।
प्रेम फांसी बन जाता है सौ में निन्यानबे मौके पर; लेकिन प्रेम के कारण नहीं, तुम्हारे कारण। तुम्हारे धर्मगुरुओं ने कहा है, प्रेम के कारण। वहां मेरा फर्क है। और तुम्हारे धर्मगुरु तुम्हें ज्यादा ठीक मालूम पड़ेंगे, क्योंकि जिम्मेवारी तुम्हारे ऊपर से उठा रहे हैं वे। वे कह रहे हैं, यह प्रेम का ही उपद्रव है; पहले ही कहा था कि पड़ना ही मत इस उपद्रव में, दूर ही रहना। तो तुम्हारे धर्मगुरु प्रेम की निंदा करते रहे हैं। तुम्हें भी जंचती है बात; जंचती है इसलिए कि तुम्हारे धर्मगुरु तुम्हें दोषी नहीं ठहराते, प्रेम को दोषी ठहराते हैं। मन हमेशा राजी है, दोष कोई और पर जाए; तुम हमेशा प्रसन्न हो।
मैं तुम्हें दोषी ठहराता हूं, सौ प्रतिशत तुम्हें दोषी ठहराता हूं। प्रेम की जरा भी भूल नहीं है। और प्रेम अपने आश्वासन पूरे कर सकता था। तुमने पूरे न होने दिए; तुमने गर्दन घोंट दी। सीढ़ी ऊपर ले जा सकती थी; तुम नीचे जाने लगे। नीचे जाना आसान है; ऊपर जाना श्रमसाध्य है। प्रेम साधना है। और प्रेम को कारागृह बनाना ऐसे ही है जैसे पत्थर पहाड़ से नीचे की तरफ लुढ़क रहा हो; जमीन की कशिश ही उसे खींचे लिए जाती है।
ये दोनों यात्राएं समान नहीं हैं, क्योंकि ऊपर जाने में तुम्हें बदलना पड़ेगा। क्योंकि ऊपर जाना है तो ऊपर जाने के योग्य होना पड़ेगा; प्रतिपल तुम्हारे चेतना के तल को ऊपर उठना पड़ेगा, तभी तुम सीढ़ी पार कर सकोगे। नीचे गिरने में तो कुछ भी नहीं करना पड़ता।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटों के लिए एक साइकिल खरीद लाया था। दो बेटे। तो उसने कहा कि दोनों आधा-आधा साइकिल से खेलना; कोई झगड़ा खड़ा न हो। एक दिन उसने देखा कि बड़ा बेटा बार-बार ऊपर टेकरी पर जाता है और वहां से साइकिल पर बैठ कर नीचे आता है। कई बार उसे टेकरी से साइकिल पर बैठे हुए देखा। तो उसने बुला कर कहा कि मैंने कहा था, छोटे बेटे को भी आधा-आधा। उसने कहा, आधा ही आधा कर रहे हैं। छोटा बेटा ऊपर की तरफ ले जाता है साइकिल; हम ऊपर से नीचे की तरफ लाते हैं--आधा-आधा।
अब पहाड़ी पर साइकिल को ले जाना, चढ़ने का तो सवाल ही नहीं। किसी तरह हांफता हुआ छोटा बेटा ऊपर तक पहुंचा देता है। और बड़ा बेटा उस पर बैठ कर नीचे की यात्रा कर लेता है। समान नहीं है; आधी-आधी नहीं है यात्रा। नीचे की यात्रा यात्रा ही नहीं है; गिरना है, पतन है; तुम जहां थे वहां से भी नीचे उतरना है।
तो जो व्यक्ति प्रेम को ईर्ष्या, आधिपत्य, पजेशन बना लेगा, वह जल्दी
ही पाएगा, प्रेम तो खो गया; आग तो खो गई प्रेम की, आंखों को अंधा करने वाला धुआं छूट गया है। घाटी के अंधकार में जीने लगा, पहाड़ की ऊंचाई तो खो गई और

पहाड़ की ऊंचाई से दिखने वाले सूर्योदय-सूर्यास्त सब खो गए। अंधी घाटी है; और रोज अंधी होती चली जाती है। तुम्हारे भीतर का पशु प्रकट हो जाता है सरलता से; उसके लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती।
जिसको प्रेम को ऊपर ले जाना है, उसे प्रेम को तो वैसे ही साधना होगा जैसे कोई योग को साधता है। क्योंकि दोनों ऊपर जा रहे हैं; तब साधना शुरू हो जाती है। प्रेम तप है; जैसे कोई तप को साधता है वैसे ही प्रेम की तपश्चर्या है। और तप इतना बड़ा तप नहीं है, क्योंकि तुम अकेले होते हो। प्रेम और भी बड़ा तप है, क्योंकि एक दूसरा व्यक्ति भी साथ होता है। तुम्हें अकेले ही ऊपर नहीं जाना है; एक दूसरे व्यक्ति को भी हाथ का सहारा देना है, ऊपर ले जाना है। कई बार दूसरा बोझिल मालूम पड़ेगा। कई बार दूसरा ऊपर जाने को आतुर न होगा, इनकार करेगा। कई बार दूसरा नीचे उतर जाने की आकांक्षा करेगा। लेकिन अगर हृदय में प्रेम है तो तुम दूसरे को भी सहारा दोगे, सम्हालोगे; उसे नीचे न गिरने दोगे। तुम्हारा हाथ करुणा न खोएगा; तुम्हारा प्रेम जल्दी ही क्रोध में न बदलेगा। कई बार तुम्हें धीमे भी चलना पड़ेगा, क्योंकि दूसरा साथ चल रहा है। तुम दौड़ न सकोगे। इसलिए मैं कहता हूं, तप इतना बड़ा तप नहीं है; क्योंकि तप में तो तुम अकेले हो, जब चाहो दौड़ सकते हो। प्रेम और भी बड़ा तप है।
लेकिन प्रेम के द्वार पर तो तुम ऐसे पहुंच जाते हो जैसे तुम तैयार ही हो। यहीं भूल हो जाती है। दुनिया में हर आदमी को यह ख्याल है कि प्रेम करने के योग्य तो वह है ही। यहीं भूल हो जाती है। और सब तो तुम सीखते हो, छोटी- छोटी चीजों को सीखने में बड़े जीवन का समय गंवाते हो। प्रेम को तुमने कभी सीखा? प्रेम को कभी तुमने सोचा? प्रेम को कभी तुमने ध्यान दिया? प्रेम क्या है? तुम ऐसा मान कर बैठे हो कि जैसे प्रेम को तुम जानते ही हो। तुम्हारी ऐसी मान्यता तुम्हें नीचे उतार देगी, तुम्हें नरक की तरफ ले जाएगी।
प्रेम सबसे बड़ी कला है। उससे बड़ा कोई ज्ञान नहीं है। सब ज्ञान उससे छोटे हैं। क्योंकि और सब ज्ञान से तो तुम जान सकते हो बाहर-बाहर से; प्रेम में ही तुम अंतर्गृह में प्रवेश करते हो। और परमात्मा अगर कहीं छिपा है तो परिधि पर नहीं, केंद्र में छिपा है।
और एक बार जब तुम एक व्यक्ति के अंतर्गृह में प्रवेश कर जाते हो तो तुम्हारे हाथ में कला आ जाती है; वही कला सारे अस्तित्व के अंतर्गृह में प्रवेश करने के काम आती है। तुमने अगर एक को प्रेम करना सीख लिया तो तुम उस एक के द्वारा प्रेम करने की कला सीख गए। वही तुम्हें एक दिन परमात्मा तक पहुंचा देगी।
इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम मंदिर है। लेकिन तैयार मंदिर नहीं है। एक-एक कदम तुम्हें तैयार करना पड़ेगा। रास्ता पहले से पटा-पटाया तैयार नहीं है, कोई राजपथ है नहीं कि तुम चल जाओ। चलोगे एक-एक कदम और चल-चल कर रास्ता बनेगा--पगडंडी जैसा। खुद ही बनाओगे, खुद ही चलोगे।
इसलिए मैं प्रेम के विरोध में नहीं हूं, मैं प्रेम के पक्ष में हूं।
और तुमसे मैं कहना चाहूंगा कि अगर प्रेम ने तुम्हें दुख में उतार दिया हो तो अपनी भूल स्वीकार करना, प्रेम की नहीं। क्योंकि बड़ा खतरा है अगर तुमने प्रेम की भूल स्वीकार कर ली। तो यह मैं जानता हूं कि तुम साधु-संतों की बातों में पड़ कर छोड़ दे सकते हो प्रेम का मार्ग, क्योंकि वहां तुमने दुख पाया है। तुम थोड़े सुखी भी हो जाओगे; लेकिन आनंद की वर्षा तुम पर फिर कभी न हो पाएगी। कैसे तुम चढ़ोगे? तुम सीढ़ी ही छोड़ आए! गिरने के डर से तुम सीढ़ी से ही उतर आए। चढ़ोगे कैसे? गिरोगे नहीं, यह तो पक्का है।
जिसको हम सांसारिक कहते हैं, गृहस्थ कहते हैं, वह गिरता है सीढ़ी से; जिसको हम संन्यासी कहते हैं पुरानी परंपरा-धारणा से, वह सीढ़ी छोड़ कर भाग गया। मैं उसको संन्यासी कहता हूं जिसने सीढ़ी को नहीं छोड़ा; अपने को बदलना शुरू किया, और जिसने प्रेम से ही, प्रेम की घाटी से ही धीरे-धीरे प्रेम के शिखर की तरफ यात्रा शुरू की।
कठिन है। जीवन की संपदा मुफ्त नहीं मिलती; कुछ चुकाना पड़ेगा; अपने से
ही पूरा चुकाना पड़ेगा; अपने को ही दांव पर लगाना पड़ेगा। और प्रेम जितनी

कसौटी मांगता है, कोई चीज कसौटी नहीं मांगती। इसलिए कमजोर भाग जाते हैं। और भाग कर कोई कहीं नहीं पहुंचता। प्रेम के द्वार से गुजरना ही होगा। हां, उसके पार जाना है, वहीं रुक नहीं जाना है। वह सिर्फ द्वार है।
जापान में एक मंदिर है--वैसे ही सब मंदिर होने चाहिए--वह मंदिर सिर्फ
एक द्वार है। उसमें कोई दीवाल नहीं है और भीतर कुछ भी नहीं है; सिर्फ एक द्वार है।
मंदिर एक द्वार है; किसी अज्ञात लोक की तरफ खुलता है; अतीत पीछे छूट जाता है, भविष्य की तरफ खुलता है; समय पीछे छूट जाता है, कालातीत की तरफ खुलता है; क्षुद्र, क्षणभंगुर पीछे छूट जाता है, शाश्वत के प्रति खुलता है। लेकिन सिर्फ एक द्वार है। जो मंदिर में रुक गया वह नासमझ है। मंदिर कोई रुकने की जगह नहीं; पड़ाव कर लेना, रात भर के लिए विश्राम कर लेना, लेकिन सुबह यात्रा पर निकल जाना है।
प्रेम को कैसे मंदिर बनाओगे? आधिपत्य मत करना जिससे प्रेम करो। जिससे प्रेम करो उस प्रेम के आस-पास ईर्ष्या को खड़े मत होने देना। जिसको प्रेम करो उससे अपेक्षा मत करना कुछ; दे सको, देना, मांगना मत। और तुम पाओगे, प्रेम रोज गहरा होता है, रोज ऊपर उठता है। और तुम पाओगे कि धीरे-धीरे, धीरे- धीरे नये पंख उगने लगे तुम्हारे जीवन में; चेतना नयी यात्रा पर जाने के लिए समर्थ होने लगी। लेकिन इन भूलों के प्रति सजग रहना। ये भूलें बिल्कुल सामान्य हैं और तुम प्रेम में पड़ते भी नहीं कि ये भूलें शुरू हो जाती हैं। तुम अपेक्षा शुरू कर देते हो। जहां अपेक्षा की वहां सौदा शुरू हो गया; प्रेम न रहा।
तुम जिसको प्रेम करो, उसे स्वयं होने की पूरी स्वतंत्रता देना। कई बार मौके होंगे, बहुत सी बातें होंगी जो तुम न चाहोगे। लेकिन तुम्हारी चाह का सवाल क्या है? दूसरा व्यक्ति पूरा व्यक्ति है अपनी निजता में; तुम हो कौन? वह जैसा है तुम उसे प्रेम करने के अधिकारी हो, लेकिन तुम उसे काट-छांट मत करना। तुम यह मत कहना कि तू ऐसा हो जा, तब हम तुझे प्रेम करेंगे।
एक महिला मेरे पास आती है। प्रेम-विवाह किया था; लेकिन एक छोटी सी बात
पर सब नष्ट हो गया कि पति सिगरेट पीते हैं। वह यह बरदाश्त नहीं कर सकती; उनके मुंह से बास आती है। रात उनके साथ सो नहीं सकती; दूसरे कमरे में पति सोते हैं। बीस साल इस छोटी सी बात की कलह में बीत गए हैं कि पति पर जिद्द है कि वह सिगरेट छोड़े। पति की भी जिद्द है कि पत्नी चाहे छूट जाए, सिगरेट नहीं छूट सकती। और दोनों प्रेम में थे, और मां-बाप के विरोध में शादी की थी। शादी बड़ी मुश्किल थी; दोनों अलग-अलग जाति के हैं, अलग धर्मों के हैं। दोनों के परिवार विरोध में थे। सब दांव पर लगा कर शादी की थी, और सब दांव सिगरेट पर लग गया। मैंने उन्हें कहा, तुम कभी यह भी तो सोचो कि तुमने किस छोटी सी बात के लिए सब खो दिया है! लेकिन अहंकार प्रबल है। और पत्नी कहती है कि मैं अपनी शर्त से नीचे उतरने को राजी नहीं हूं। बीस साल गए, और जिंदगी चली जाएगी।
लेकिन जब तुम किसी एक व्यक्ति को प्रेम करते हो, समझ लो उसे पायरिया
हो जाए तो क्या करोगे? उसके मुंह से थोड़ी बास आने लगे तो क्या करोगे? क्या प्रेम इतना छोटा है कि उतनी सी बास न झेल सकेगा? समझो कि कल वह आदमी बीमार हो जाए, लंगड़ा-लूला हो जाए, बिस्तर से लग जाए, तो तुम क्या करोगे? कल बूढ़ा होगा, शरीर कमजोर होगा, तो तुम क्या करोगे?
प्रेम बेशर्त है। प्रेम सभी सीमाओं को पार करके मौजूद रहेगा--सुख में, दुख में, जवानी में, बुढ़ापे में।
सिगरेट को पत्नी नहीं झेल पाती। प्रेम सिगरेट से छोटा मालूम पड़ता है, सिगरेट बड़ी मालूम पड़ती है। उसके लिए प्रेम खोने को राजी है, लेकिन प्रेम के लिए सिगरेट की बास झेलने को राजी नहीं है। पति पत्नी से दूर रहने को राजी है, लेकिन सिगरेट छोड़ने को राजी नहीं है। धुआं बाहर-भीतर लेना ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ता है, पत्नी कौड़ी की मालूम पड़ती है। यह कैसा प्रेम है? लेकिन अक्सर सभी प्रेम इसी जगह अटके हैं। सिगरेट की जगह दूसरे बहाने होंगे, दूसरी खूंटियां होंगी; लेकिन अटके हैं।

अगर तुमने चाहा कि दूसरा ऐसा व्यवहार करे जैसा मैं चाहता हूं; बस तुमने प्रेम के जीवन में विष डालना शुरू कर दिया। और जैसे ही तुम यह चाहोगे, दूसरा भी अपेक्षाएं शुरू कर देगा। तब तुम एक-दूसरे को सुधारने में लग गए। प्रेम किसी को सुधारता नहीं। यद्यपि प्रेम के माध्यम से आत्मक्रांति हो जाती है, लेकिन प्रेम किसी को सुधारने की चेष्टा नहीं करता। सुधार घटता है, सुधार अपने से होता है। जब तुम किसी को आपूर प्रेम करते हो, इतना प्रेम करते हो जितना कि तुम्हारे प्राण कर सकते हैं, रत्ती भर बाकी नहीं रखते, तो क्या प्रेमी में इतनी समझ न आ सकेगी तुम्हारे इतने प्रेम के बाद भी कि सिगरेट छोड़ दे? इतनी समझ न आ सकेगी इतने बड़े प्रेम के बाद? तब तो प्रेम बहुत नपुंसक है। और प्रेम नपुंसक नहीं है; प्रेम से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। तुम्हारा प्रेम ही छुड़ा देगा। लेकिन अपेक्षा मत करना। अपेक्षा की कि घाटी की तरफ तुम उतरने लगे। अपेक्षा की और सुधारना चाहा कि बस मुसीबत हो गई।
छोटे-छोटे बच्चे तुम्हारे घर में पैदा होंगे। उनको तुम प्रेम करते हो, लेकिन प्रेम से ज्यादा उनकी सुधार की चिंता बनी रहती है। बस उसी सुधार में तुम्हारा प्रेम मर जाता है। कोई बच्चा अपने मां-बाप को कभी माफ नहीं कर पाता, नाराजगी आखिर तक रहती है। पैर भी छू लेता है, क्योंकि उपचार है, छूना पड़ता है; लेकिन भीतर? भीतर मां-बाप दुश्मन ही मालूम होते रहते हैं। क्योंकि ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर उन्होंने बच्चे को सुधारने की कोशिश की। बच्चे को क्या समझ में आता है? उसे समझ में आता है कि जैसा मैं हूं वैसा प्रेम के योग्य नहीं; जैसा मैं हूं उतना काफी नहीं; जैसा मैं हूं उसको काटना-पीटना, बनाना पड़ेगा, तब प्रेम के योग्य हो पाऊंगा। बच्चे को इसमें निंदा का स्वर मालूम पड़ता है। निंदा का स्वर है।
ध्यान रखना, प्रेम सिर्फ प्रेम करता है, किसी को सुधारना नहीं चाहता।
और प्रेम बड़े सुधार पैदा करता है। प्रेम की छाया में बड़ी क्रांतियां घटती हैं। अगर मां-बाप ने बच्चे को सच में प्रेम किया है, बस काफी है। बस काफी है, उतना प्रेम ही उसे सम्हालेगा; उतना प्रेम ही उसे गलत जाने से रोकेगा; उतना प्रेम ही, जब भी वह राह से नीचे उतरने लगेगा, मार्ग में बाधा बन जाएगा। याद आएगी मां की, पिता की, उनके प्रेम की--और उनके बेशर्त प्रेम की-- बच्चे के पैर पीछे लौट आएंगे।
लेकिन तुम प्रेम नहीं करते, तुम सुधारते हो। जब तुम सुधारते हो तब तुम्हारे सुधारने की आकांक्षा ही बच्चे के पैरों को गलत मार्ग पर जाने का आकर्षण बन जाती है। बच्चे झूठ बोलेंगे, सिगरेट पीएंगे, गालियां बकेंगे, अभद्रता करेंगे, सिर्फ इसलिए कि तुम सुधारना चाहते हो। तुम उनके अहंकार को चोट पहुंचा रहे हो। वे भी अहंकार से उत्तर देंगे। एक संघर्ष शुरू हो गया। और संघर्ष बड़ा मूल्यवान है, क्योंकि मां-बाप से बच्चों को पहली दफा प्रेम की खबर मिलती थी, वह विषाक्त हो गई।
जो लड़का अपनी मां को प्रेम नहीं कर सका, वह किसी स्त्री को कभी प्रेम नहीं कर पाएगा, हमेशा अड़चन खड़ी होगी। क्योंकि हर स्त्री में कहीं न कहीं छिपी मां मौजूद है। हर जगह हर स्त्री मां है। मां होना स्त्री का गहरा स्वभाव है। छोटी सी बच्ची भी पैदा होती है तो वह मां की तरह ही पैदा होती है। इसलिए गुड्डियों को लगा लेती है बिस्तर से और सम्हालने लगती है, घर-गृहस्थी बसाने लगती है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बाहर गई थी। और छोटी लड़की ने, जिसकी उम्र केवल सात साल है, उस दिन भोजन की टेबल पर सारा कार्यभार सम्हाल लिया था और बड़ी गुरु-गंभीरता से एक प्रौढ़ स्त्री का काम अदा कर रही थी। लेकिन उससे छोटा बच्चा पांच साल का, उसे यह बात न जंच रही थी। तो उसने कहा कि अच्छा मान लिया, मान लिया कि तुम मां हो, लेकिन मेरे एक सवाल का जवाब दो कि सात में सात का गुणा करने से कितने होते हैं? उस लड़की ने गंभीरता से कहा, मैं काम में उलझी हूं, तुम डैडी से पूछो।
छोटी सी बच्ची! लेकिन हर लड़की मां पैदा होती है और हर पुरुष अंतिम जीवन के क्षण तक भी छोटा बच्चा बना रहता है। कोई पुरुष कभी छोटे बच्चे के पार नहीं जाता। हर पुरुष की आकांक्षा स्त्री में मां को खोजने की होती है

और स्त्री की आकांक्षा पुरुष में बच्चे को खोजने की होती है। इसलिए जब कोई एक पुरुष एक स्त्री को गहरा प्रेम करता है तो वह छोटे शिशु जैसा हो जाता है। और प्रेम के गहरे क्षण में स्त्री मां जैसी हो जाती है। उपनिषद के ऋषियों ने आशीर्वाद दिया है नव-विवाहित युगलों को कि तुम्हारे दस बच्चे पैदा हों और अंत में ग्यारहवां तुम्हारा पति तुम्हारा बेटा हो जाए। उन्होंने बड़ी ठीक बात कही है।
लेकिन मां से अगर बच्चे को प्रेम की सीख न मिल पाई--बेशर्त प्रेम की-- फिर कहां सीखेगा? पहली पाठशाला ही चूक गई। और अगर लड़की को अपने बाप से प्रेम न मिल पाया, वह किसी भी पुरुष को प्रेम न कर पाएगी। कुआं पहले झरने पर ही जहरीला हो गया। और फिर जब तुम प्रेम से उलझन में पड़ते हो तब तुम्हारे साधु-संन्यासी खड़े हैं सदा तैयार कि जब तुम उलझन में पड़ो, वे कह दें, हमने पहले ही कहा था कि बचना कामिनी-कांचन से, कि स्त्री सब दुख का मूल है। वे कहेंगे, हमने पहले ही कहा था कि स्त्री नरक की खान है।
तुम्हारे शास्त्र भरे पड़े हैं स्त्रियों की निंदा से। पुरुषों की निंदा नहीं है, क्योंकि किसी स्त्री ने शास्त्र नहीं लिखा। नहीं तो इतनी ही निंदा पुरुषों की होती, क्योंकि स्त्री भी तो उतने ही नरक में जी रही है जितने नरक में तुम जी रहे हो। लेकिन चूंकि लिखने वाले सब पुरुष थे, पक्षपात था, स्त्रियों की निंदा है। किसी तुम्हारे संत-पुरुषों ने नहीं कहा कि पुरुष नरक की खान। स्त्रियों के लिए तो वह भी नरक की खान है, अगर स्त्रियां पुरुष के लिए नरक की खान हैं। नरक दोनों साथ-साथ जाते हैं--हाथ में हाथ। अकेला पुरुष तो जाता नहीं; अकेली स्त्री तो जाती नहीं। लेकिन चूंकि स्त्रियों ने कोई शास्त्र नहीं लिखा--स्त्रियों ने ऐसी भूल ही नहीं की शास्त्र वगैरह लिखने की--चूंकि पुरुषों ने लिखे हैं, इसलिए सभी शास्त्र पोलिटिकल हैं; उनमें राजनीति है; वे पक्षपात से भरे हैं।
तब तुम्हारे साधु-संन्यासी तैयार हैं, अपनी बंसी में आटा लगाए बैठे हैं कि कब तुम घबड़ा जाओ कि फंस जाओ। जैसे ही तुम घबड़ाए गृहस्थी से, उनका राग जारी ही था, वे तैयार ही थे कि आ जाओ, भागो; हम पहले ही कहते थे; अब तक भटके, अब भागो, छोड़ दो सब।
लाखों-करोड़ों लोगों को प्रेम के जीवन से खींच लिया लोगों ने। और उससे उन्हें कुछ मिला नहीं। हां, इतना जरूर हुआ कि नरक खो गया; लेकिन सीढ़ी भी खो गई जो स्वर्ग तक ले जा सकती थी।
मैं चाहता हूं, तुम अपने जीवन को ठीक से पहचानो; यही जीवन सीढ़ी बनेगा स्वर्ग की। तुम जहां हो वहीं से मार्ग है। कहीं और भाग कर जाना नहीं है। नरक अभी है; वह तुम्हारे कारण है। जरा सी समझ, और नरक की हवाएं स्वर्ग की हवाओं में रूपांतरित हो जाती हैं, नरक की लपटें स्वर्ग की शीतलता में रूपांतरित हो जाती हैं। जरा सी समझ। जरा सा होश।
होशपूर्वक प्रेम मंदिर बन जाता है; मूर्च्छापूर्वक प्रेम कारागृह बन जाता है। इसलिए अगर तुम प्रेम के साथ ध्यान को जोड़ सको--प्रेम धन ध्यान-- फिर सब ठीक है। प्रेम धन मूर्च्छा--सब गलत है।
प्रेम से नहीं बचना है; प्रेम में ध्यान और जोड़ देना है। ध्यानपूर्ण प्रेम का नाम ही प्रार्थना है। और तब तुम्हारा छोटा सा बच्चा जिसे तुम प्रेम करते हो तुम्हें छोटा बच्चा नहीं दिखाई पड़ेगा; तुम्हें छोटे से बालकृष्ण के दर्शन उसमें होने शुरू हो जाएंगे। तब उसके ठुमक-ठुमक कर चलने में तुम्हें सूरदास के पदों का अर्थ दिखाई पड़ने लगेगा; तब उसके नन्हे- नन्हे पैरों में बजती पैजनिया उस परम परमात्मा का संगीत हो जाएगा।
जहां तुम हो, प्रेम से मत भागना, प्रेम में ध्यान को जोड़ लेना, इतनी ही मेरी शिक्षा है। और प्रेम मंदिर बन जाएगा।

दूसरा प्रश्नः हम हैं झूठे लोग और लाओत्से हैं सहज और सरल। क्या ये विपरीत छोर कभी मिल पाएंगे?

विपरीत छोर सदा मिल सकते हैं; गहरे में मिले ही हुए होते हैं। क्योंकि विपरीत छोर एक ही चीज के दो छोर हैं; अलग हैं नहीं। इसलिए तुम मिलाने की

कोशिश मत करना; मिलाने की कोशिश में मुश्किल होगी; तुम समझने की कोशिश करना कि मिले ही हुए हैं।
जटिलता और सहजता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सत्य और झूठ भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। रात और दिन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मिले ही हुए हैं। तुम्हारे मिलाने की कोई जरूरत नहीं है। जागने की और जानने की जरूरत है कि मिले ही हुए हैं। और जैसे ही तुम जाग कर जानोगे कि मिले ही हुए हैं, तुम तत्क्षण सरल हो जाओगे। लाओत्से होने के लिए तुम्हें अपनी जटिलता से संघर्ष नहीं करना है, नहीं तो छोर कभी न मिल पाएंगे। क्योंकि जटिलता से जितना संघर्ष करोगे, उतने और जटिल होते जाओगे। यह बड़े सोच लेने की जरूरत है कि जटिल आदमी जब जटिलता से लड़ता है तो और जटिल हो जाता है; जटिलता दुगनी हो जाती है। पहली जटिलता तो मौजूद ही होती है, अब एक लड़ाई की और जटिलता पैदा हो जाती है। और फिर अगर ऐसा ही तुम करते चले जाओ तो जिसको तर्क-शास्त्री कहते हैं इनफिनिट रिग्रेस, फिर तो तुम अनंतकाल तक करते चले जाओ, कुछ भी न होगा। एक झूठ से लड़ोगे; तुम्हें दूसरा झूठ खड़ा करना पड़ेगा। क्योंकि झूठ से लड़ना हो तो झूठ से ही लड़ा जा सकता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में बैठ कर घर आ रहा है। उसने ऊपर की सीट
पर एक टोकरी रखी है, जिस टोकरी के ऊपर कई छेद बने हैं। एक आदमी उस टोकरी में उत्सुक हो गया खास कर छेद क्यों हैं। उसने पूछा कि माफ करें, ऐसी टोकरी मैंने कभी देखी नहीं; इसमें इतने छेद क्यों बने हुए हैं?
नसरुद्दीन ने कहा कि इस टोकरी में एक नेवला है, उसको हवा लेने के लिए सांस की जरूरत है न।
वह आदमी और हैरान हो गया। उसने कहा, नेवला किसलिए है? कहां ले जा रहे हो?
तो नसरुद्दीन ने कहा, अब तुम पूरी बात ही समझ लो, अन्यथा तुम्हारी उत्सुकता बढ़ती चली जाएगी। मेरी पत्नी को रात सपने में सांप दिखाई पड़ते हैं, तो नेवला ले जा रहा हूं सांपों को डराने के लिए।
उस आदमी ने कहा, हद कर दी! सपने में दिखाई पड़ते हैं तो नकली हैं सांप।
तो नसरुद्दीन ने कहा, यह नेवला कोई सच है? है थोड़े ही; बस, ख्याल लिए जा रहे हैं। क्योंकि झूठे सांपों को डराने के लिए असली नेवले की थोड़े ही जरूरत है। और झूठे सांप से असली नेवले को मिलाओगे कैसे? झूठे सांप से तो झूठे नेवले की ही लड़ाई हो सकती है।
अगर तुम्हें कोई झूठी बीमारी पकड़ जाए तो असली चिकित्सा की जरूरत है?
तो और मुश्किल में पड़ोगे। झूठी अगर बीमारी पकड़ जाए तो एलोपैथ डॉक्टर के पास मत जाना, नहीं तुम बहुत झंझट में पड़ोगे। क्योंकि उसकी दवाई और जटिलता पैदा करेगी। अगर झूठी बीमारी पकड़ जाए तो उसके लिए ही संत हैं, साधु हैं, साईंबाबा हैं, वहां जाना। क्योंकि झूठी बीमारी के लिए झूठी राख की जरूरत है; वह काम करती है। असली बीमारी के लिए असली दवा की जरूरत है; झूठी बीमारी के लिए झूठी दवा की जरूरत है।
जब तुम एक झूठ से लड़ते हो तब तुम दूसरा झूठ खड़ा करते हो। फिर तुम और घबड़ा जाओगे कि दूसरा भी झूठ है तो इससे भी लड़ना है, तो तीसरा झूठ खड़ा करते हो। फिर इसका कोई अंत नहीं है। फिर दर पर्त, पर्त दर पर्त झूठ बढ़ता चला जाएगा। तुम अपने ही उपद्रव में ग्रस्त हो जाओगे।
नहीं, झूठ अगर है तो लड़ना नहीं है उससे, सिर्फ जानना है, जागना है। जागते ही झूठ गिर जाता है। तुम्हारी जटिलता झूठ है, वास्तविक तो नहीं। वस्तुतः तो तुम उतने ही सरल हो जितना लाओत्से। तुम्हारे प्राणों के प्राण में तो तुम उतने ही सरल हो जितना कि कोई बुद्ध पुरुष। जरा भी भेद नहीं है, रत्ती भर भेद नहीं है। क्योंकि अगर वहां भेद हो गया होगा तो फिर कोई सुधारने का उपाय नहीं है। वहां तो तुम वैसे ही सरल हो जैसे नवजात शिशु, सुबह पड़ी ओस, सांझ को निकला पहला तारा, एकदम ताजे। लाओत्से, बुद्ध और महावीर और कृष्ण की ताजगी में और तुम्हारी भीतर की ताजगी में रत्ती भर फासला नहीं है, फर्क नहीं है। तुम वही हो जो वे हैं। फासला है तो तुम्हारे ऊपर की पर्तों में है। वह तुमने जो झूठ के वस्त्र पहन रखे हैं।

उन झूठ के वस्त्रों से लड़ने की कोई जरूरत नहीं; सिर्फ समझ लेना है कि
वे झूठ हैं। उनको उतारना भी न पड़ेगा, क्योंकि उतारने का तो मतलब तब होता जब वे सच्चे होते। तुम हो तो नग्न ही; झूठ के वस्त्र पहने हुए हैं। उनको उतारना थोड़े ही पड़ेगा; जान लोगे, देख लोगे, उतर गए। होश काफी है। सजगता काफी है।
इसलिए तो सारे बुद्ध पुरुष एक ही बात कहे चले जाते हैंः ध्यान, ध्यान, ध्यान। ध्यान का अर्थ हैः तुम जाग जाओ, बस। तुम जरा होश से अपने को देखो। समझो तुम घर आए, पत्नी के लिए तुम द्वार पर ही तैयार होने लगे, तुमने ओंठों पर मुस्कान खींच ली, जो कि झूठ है। ओंठों का अभ्यास कर लिया है तो ओंठ खींच लेते हो तुम। कुछ लोग तो इतना अभ्यास कर लेते हैं कि नींद में भी उनके ओंठ ढीले नहीं होते, खिंचे ही रहते हैं। अभ्यास ज्यादा हो जाए तो हंसने की जरूरत ही नहीं रहती, बस ओंठ खिंचे ही रहते हैं। तुमने ओंठ खींच लिए हैं। अब क्या करना पड़ेगा इस झूठी मुस्कान से हटने के लिए?
जरा होश करो, ओंठ वापस लौट जाएंगे अपनी जगह। होश आते ही कि तुम्हारे भीतर कोई हंसी नहीं तो क्यों ओंठ पर ला रहे हो? और तुम किसे धोखा दे रहे हो? पत्नी को? दुनिया में कोई कभी नहीं दे पाया; तुम असंभव करने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारे खिंचे हुए ओंठ से कुछ अंतर न पड़ेगा। बल्कि तुम्हारे खिंचे ओंठ सिर्फ इतनी ही खबर पत्नी को देंगे कि जरूर कोई अपराध करके आ रहे हो। नहीं तो हंस क्यों रहे हो? मुस्कुरा क्यों रहे हो? किसको धोखा देने की कोशिश कर रहे हो? तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी है। तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो। थोड़े जागो। कुछ करो मत, मुस्कुराहट को खिंची रहने दो; तुम सिर्फ जाग कर देखो कि यह झूठ है। और तुम पाओगे कि ओंठ अपनी जगह आ गए।
यह मुट्ठी मैं बांधे हुए हूं जबरदस्ती। इसको खोलने के लिए कुछ करना थोड़े ही पड़ेगा; सिर्फ मुझे इतना समझ लेना जरूरी है कि मैं जबरदस्ती बांधे हूं, अकारण बांधे हूं, इसका कोई सार नहीं; मुट्ठी खुल गई। खोलना थोड़े ही पड़ती है, सिर्फ बांधना पड़ती है। और जब समझ आ गई तो बांधना छूट जाता है, खुल जाती है।
समझ सरल है; नासमझी जटिल है। ज्ञान बिल्कुल सरल है; अज्ञान बहुत जटिल है।
तो तुम यह मत पूछो कि लाओत्से जैसे सरल होने के लिए तुम्हें क्या करना पड़ेगा। तुम हो ही; बस जाग कर देखना है अपने स्वभाव को। संपदा तुम्हारे पास है, कहीं खोजने नहीं जाना; सिर्फ आंख खोलनी है। तुमने खोया कुछ भी नहीं है; सिर्फ ख्याल है कि खो दिया है। स्मरण ले आना है। खो तो तुम सकते ही नहीं, क्योंकि अगर खो सकते तो फिर पाने का कोई उपाय न था। कौन खोएगा? तुम्हारा स्वभाव है सरलता।
जटिल होने के लिए तुम्हें चेष्टा करनी पड़ती है। जटिल होने के लिए तुम्हें सदा अपने पहरे पर रहना पड़ता है। तुम ख्याल करोः जटिल होने के लिए कुछ करना पड़ता है। सरल होने के लिए क्या करना है? ऐसे ही समझो कि किसी आदमी को कहीं जाना हो तो चलना पड़ता है। और कहीं न जाना हो, घर में ही बैठना हो, तो चलना पड़ता है? आदमी बैठ जाता है। घर में तो है ही। जब भी तुम्हें कुछ करना पड़ता है, उसका अर्थ हैः कुछ तुम पाने चले हो जो तुम्हारे स्वभाव में नहीं है।
ऐसा हुआ, बोधिधर्म के पास चीन का सम्राट मिलने आया। और उस सम्राट ने कहा कि मैं बड़ा क्रोधित हो जाता हूं और कुछ क्रोध के लिए उपाय बताओ, कैसे इससे छुटकारा पाऊं? तो बोधिधर्म ने पूछा, तुम चौबीस घंटे क्रोध में रहते हो या कभी-कभी? उसने कहा कि चौबीस घंटे तो कौन क्रोध में रहता है? कभी-कभी! तो बोधिधर्म ने कहा, बहुत फिक्र मत करो। क्योंकि जो कभी-कभी है, वह स्वभाव नहीं हो सकता; स्वभाव तो चौबीस घंटे होता है।
स्वभाव का मतलब है कि सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते, खाते-पीते, पुण्य करते, पाप करते, चोरी में, साधुता में, सदा साथ है। स्वभाव यानी तुम। स्वभाव को कुछ करना थोड़े ही पड़ता है। स्वभाव कोई कृत्य थोड़े ही है; स्वभाव तो तुम्हारा बीइंग है, तुम्हारा अस्तित्व है।

इसलिए यह पूछो ही मत कि हम क्या करें कि विरोधी छोर मिल जाएं; विरोधी छोर मिले ही हुए हैं। तुम कृपा करके कुछ करो मत; थोड़ा न-करने में ठहरो; थोड़ी देर के लिए कुछ मत करो। थोड़ी देर तुम चुप बैठ जाओ और कुछ मत करो। रोज अगर तुम एक घड़ी भर चुप बैठ जाओ और कुछ न करो। विचार आएंगे, आने दो, जाने दो। उनको रोको भी मत, क्योंकि वह भी करना है। यह भी मत करो कि इनको न आने देंगे, क्योंकि वह भी करना है। तुम कुछ करो ही मत; जो हो रहा है होने दो। पाप के विचार उठ रहे हैं, उठने दो। तुम कौन है? आया है धुआं, चला जाएगा अपने आप; अपने आप आया है, अपने आप चला जाएगा। तुम जरा चुपचाप बैठे रहो, देखते रहो। अगर तुम इतना ही कर लो, घड़ी भर खाली बैठना, तुम अचानक एक दिन पाओगे लाओत्से भीतर अपनी पूरी गरिमा में प्रकट हो गया है; बुद्ध विराजमान हैं, तुम बोधिवृक्ष बन गए; तुम्हारी छाया में बुद्धत्व विराजमान है; तुमने पा लिया परम। उसे तुमने कभी खोया न था। सारी कठिनाई मूर्च्छा की है।
जो तुमसे कहता है, ईश्वर को खोजना है, कहीं ईश्वर आकाश में है, वह तुम्हें भटकाएगा। मैं तुमसे कहता हूं, ईश्वर को खोजना नहीं; तुमने कभी खोया नहीं; ईश्वर तुम्हारे भीतर है, तुम हो। तुम्हारे भीतर कहना भी ठीक नहीं, तुम हो। जरा धूल जम गई है यात्रा की; स्नान की जरूरत है, बस। लंबी यात्रा करके आ रहे हो, धूल-धूसरित हो गए हो। बहुत झूठ जीए हैं, झूठ की पर्तें तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठी हो गई हैं। लेकिन झूठ की ही पर्तें हैं, कुछ भय का कारण नहीं है। सत्य बलशाली है। झूठ की पर्तों का क्या बल है? सत्य का दीया जला, झूठ की पर्तें तिरोहित हो गईं; जैसे अंधेरा मिट जाता है दीये के जलते।
इसे अगर तुम स्मरण रख सको तो यह समस्त शास्त्रों का सार है कि तुम परमात्मा हो; थोड़े सोए हुए, थोड़े अलसा गए हो, थोड़ी झपकी खा गई; बस। थोड़ा आंखों में पानी मार लो, एक कप चाय पी लो, थोड़ा होश सम्हालो। कुछ कभी खोया नहीं है। किसी ने कभी कुछ खोया नहीं है। क्योंकि खोना संभव ही नहीं है।

तीसरा प्रश्नः आप बहुधा कहते हैं कि अति पर ही रूपांतरण घटित होता है; लेकिन लाओत्से कहते हैं कि शुरू में ही रुक जाना, बात छोटी हो तभी उसे सुलझा लेना। दोनों बातों को सुन कर साधक की उलझन बढ़ जाती है। कृपया इसका समाधान करें।

उलझन बढ़ाना ही चाहते हो तो हर चीज सुन कर बढ़ जाएगी। ऐसा लगता है उलझन
की तलाश में हो, खोज रहे हो कि कहां उलझन बढ़ जाए। अन्यथा बात बिल्कुल सीधी है, उलझन का कोई सवाल ही नहीं है।
दोनों में कोई विरोध नहीं है। पहला कदम भी अति है और अंतिम कदम भी अति
है; दोनों एक्सट्रीम हैं। पहला कदम उठाने के पहले ही रुक जाना, यह एक अति। और अंतिम कदम उठाने के बाद ही रुक सकोगे, यह दूसरी अति। इसमें भेद जरा भी नहीं है। लाओत्से भी कह रहा है कि अति पर ही रूपांतरण होगा; मैं भी कह रहा हूं, अति पर ही रूपांतरण होगा। लाओत्से कह रहा है, पहले कदम के पहले ही रुक जाना। और तुमने पहला कदम उठा लिया है, इसलिए मैं कह रहा हूं, अब आखिरी कदम उठा लो। अब तुमको लाओत्से काम नहीं आएगा, मैं काम आऊंगा। क्योंकि लाओत्से का अब तुम क्या करोगे? तुम पहला कदम तो कब का उठा चुके। कितना चल चुके संसार में! अब कोई पहला कदम उठाने का सवाल है? हजारों कदम उठा लिए, हजारों मील की लंबी यात्रा पर तुम आ चुके। तो अब मैं तुमसे कहता हूं, देर मत करो; अब पूरी ही कर लो यात्रा और आखिरी कदम उठा लो।
क्रांति या तो पहले कदम के पहले होती है या आखिरी कदम के बाद होती है, मध्य में नहीं हो पाती। क्योंकि मध्य में तुम अधकचरे होते हो। वहां क्रांति कैसे हो सकती है? या तो तब जब तुम बिल्कुल सरल बालक की तरह थे, कि जटिलता तुम्हें छुई ही न थी, तुम बिल्कुल कुंआरे थे, तुमने वासना जानी ही न थी, तब। और या फिर वासना को जान ही लो पूरा, उसके सब रूपों में जान लो, ताकि मन में अटका हुआ कहीं कोई भाव न रह जाए कि कुछ अनजाना रह गया। उसे जान लो सब रूपों में, शुभ-अशुभ, ताकि भर जाए मन, ताकि तुम ऊब जाओ, ताकि तुम अपनी पीड़ा से ही जागने लगो; आखिरी कदम उठा लो। कुनकुने-कुनकुने क्रांति नहीं होती।

लाओत्से बिल्कुल ठीक कहता है; जरा भी भूल नहीं है। लेकिन किसके काम पड़ेगी लाओत्से की बात? तुम्हारे काम पड़ेगी? तुमने काफी कदम उठा लिए हैं। कहां खोज पाओगे तुम वह आदमी जो पहला कदम नहीं उठाया है? कैसे खोजोगे उस आदमी को?
लाओत्से की बात ठीक है, लेकिन काम की नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह काम की है। मैं तुम्हें देख कर कह रहा हूं। मैंने अभी तक एक आदमी नहीं देखा जिसने पहला कदम न उठाया हो। क्योंकि वैसा आदमी मेरे पास भी कैसे आएगा? मेरे पास आने के लिए भी काफी कदम उठा लिए हों तभी तो आ पाओगे। तो इसलिए कहता हूं, आखिरी कदम उठा लो। और बहुत देर हो गई, ऐसे भी बहुत चल लिए; कुछ ज्यादा बचा नहीं है, थोड़े कोने-कातर में कहीं पड़ा रह गया है, उसको भी निबटा लो। मेरा आग्रह यह है कि कहीं तुम आधे मन से क्रांति में मत चले जाना, नहीं तो वह जो आधा मन पीछे रह गया है, बार-बार खींचेगा।
हमारे पास एक शब्द हैः योगभ्रष्ट। उसका कुल मतलब इतना ही होता है कि किसी आदमी ने आधे में कदम उठा कर योगी हो गया। अभी संसार से परिपूर्ण रूप से तृप्त न हुआ था या अतृप्त न हुआ था। अभी संसार कुछ रह गया था मन में, कहीं वासना दबी थी, कहीं रस कायम था; अभी सोचता था, कुछ जानने को बातें बाकी रह गईं, समय के पहले उठा लिया गया; कच्चा था, पका न था। कच्चा फल किसी ने तोड़ लिया; घाव रह गया वृक्ष में भी और फल भी अधूरा रह गया। अभी रसधार बह रही थी। अभी वृक्ष से टूटने का समय न आया था। अभी परिपक्वता न हुई थी। ऐसा कोई बीच में कोई दुर्घटना के कारण हो गया।
दुर्घटनाएं संभव हैं। पढ़ लिया कोई शास्त्र, हो गए प्रभावित क्षण भर को; क्षण भर में कर बैठे कोई गलती, निकल पड़े घर से। अब लौटना मुश्किल; लोग हंसेंगे। और साधु-संन्यासी तरकीब जानते हैं। जब भी वे किसी को दीक्षा देते हैं तो भारी बैंड-बाजा बजवाते हैं, ताकि सबको पता चल जाए कि यह आदमी ने संन्यास ले लिया। कोई मेरे जैसा चुपचाप थोड़े ही दे देते हैं कि किसी को पता ही नहीं चलता। तुमको ही पता नहीं चलता कि तुम कैसे संन्यासी हो गए, दूसरे की तो बात अलग। न कोई बैंड-बाजा बजता, न कोई हाथी पर यात्रा निकलती, शोभायात्रा। वह तरकीब है। उसके पीछे कारण है। वह बड़ा ट्रेड सीक्रेट है। क्योंकि जब हाथी पर निकल गई यात्रा तो अहंकार चढ़ गया हाथी। अब आसानी से लौट न पाओगे। खुद पत्नी हाथ जोड़ेगी।
ऐसा हुआ। मेरे एक मित्र जैन संन्यासी हैं। समझ आई कि यह तो आधे में भाग खड़े हुए। तो मैंने कहा, छोड़ दो। उन्होंने कहा, छोड़ दो? अपने बाप को पूछता हूं कि घर आ जाऊं? वे कहते हैं, अब हमारी बदनामी करवाओगे। पत्नी को पूछता हूं। पत्नी कहती है, भूल कर इस घर में कदम मत रखना। पहले छाती पीट-पीट कर रोती थी। और अब कहती है, अब बदनामी होगी।
वे हाथी पर चढ़ गए। अब अपने ही लोग लेने को तैयार नहीं हैं। अब कोई लेने
को तैयार नहीं है। अब जहां जाएंगे वहां पदभ्रष्ट, पतित समझे जाएंगे। वह चढ़ाना एक तरकीब है। वह तरकीब है जिससे लौटना संभव न रहे। इसलिए खूब बैंड-बाजे बजते हैं, स्वागत-समारंभ होता है, कोई बड़ी भारी घटना घट रही है।
हो क्या रहा है? क्या घटना घट रही है? एक आदमी घर छोड़ कर जा रहा है; इतने शोरगुल की क्या जरूरत है? अगर समझपूर्वक जा रहा है तो खुद ही कहेगा, यह शोरगुल किसलिए? अब तक नासमझ था, अब समझ आ गई, बात खत्म हो गई! अब तक नाली में पड़ा था, क्योंकि होश न था, अब होश आ गया। शराबी रात नाली में गिर गया, सुबह होश आ जाता है तो तुम बैंड-बाजा बजा कर जुलूस निकालते हो कि अब इसको होश आ गया? अब यह नाली से उठ गया? होश आ गया, अपने आप खुद घर पहुंच जाता है। लेकिन शोरगुल मचाने के पीछे कारण है। वह कारण यह है कि तुम्हारे अहंकार को इतना फुला दिया जाए कि जब तुम खुद ही घर में जाना चाहो तो दरवाजा छोटा मालूम पड़े और कोई तुम्हें लेने को राजी न होगा फिर। खुद तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे हाथ जोड़ेंगे कि अब तुम ऐसी भूल--एक भूल तो यह की कि भाग गए, अब यह दूसरी भूल और न करो। सारा संसार तुम्हें रोकेगा। अब तुम्हारे अहंकार का सवाल है, इज्जत का सवाल है।
तो उन संन्यासी को उनके पिता ने कहा कि आत्महत्या कर लो, लेकिन घर मत आना। हमारा भी तो कुछ सोचो।

अब वे संन्यासी पड़े हैं बेमन से। वासना घर की तरफ भाग रही है; परमात्मा की याद नहीं आती, पत्नी की याद आती है। पढ़ते हैं शास्त्र; मन में संसार चलता है। और दूसरों को भी समझा रहे हैं। वे मुझसे कहते थे, मेरी तकलीफ यह है कि अब मैं दूसरों को भी यही समझा रहा हूं कि छोड़ो, कहां पड़े हो! और मैं खुद मुसीबत में हूं कि क्यों छोड़ा। यहां आकर न तो कुछ आनंद मिल रहा है, न कोई मोक्ष का स्वाद आ रहा है। और अब ऐसा लगता है कि जो मिल रहा था, शायद वही मिल सकता है, और ज्यादा मिल नहीं सकता।
न घर के न घाट के। कहते हैं नः धोबी का गधा, न घर का न घाट का। वैसी दशा
हो जाएगी, कच्चा कोई टूट जाएगा तो। तो मैं नहीं कहता कि तुम कच्चे लौट जाना। इसलिए मैं कहता हूं, अति से क्रांति होती है। तुम जी ही लो, तुम भरपूर जी लो। तुम्हें जितना भोजन में रस हो उसे पूरा कर लो; वमन की स्थिति आ जाने दो। तुम खुद ही अपने अनुभव से परिपक्व हो जाओ। संसार में कुछ बचे ही न--इसलिए नहीं कि शास्त्र कहते हैं--इसलिए कि तुमने जाना। इसलिए नहीं कि साधु-संन्यासी गुणगान करते हैं मोक्ष के आनंद का; उससे कुछ न होगा; उससे तुम लोभ में पड़ जाओगे। बहुत से लोभी उसमें फंस गए हैं। वह दुर्घटना है। तुम, परमात्मा को मिलने से परम आनंद होगा, इस लोभ में मत पड़ना। क्योंकि जो परमात्मा में आनंद की तलाश में जा रहा है, अभी उसकी सुख की भूख समाप्त नहीं हुई। तुम यह मत सोचना कि मोक्ष में अहर्निश वर्षा हो रही है अमृत की। अमृत की आकांक्षा से अगर तुम जा रहे हो तो अभी मृत्यु का भय तुम्हारा समाप्त नहीं हुआ; अभी तुम मौत से डरे हुए हो। और यह मत सोचना कि स्वर्ग में अप्सराएं नाच रही हैं, जिनकी स्वर्ण-काया है, और जिनकी देह से पसीना और पसीने की बदबू कभी नहीं आती; सदा फूलों की बहार! और जो सोलह साल से ज्यादा जिनकी उम्र कभी होती नहीं, रुक गई हैं सोलह साल पर, रिटार्डेड, वहां से आगे वे बढ़ती नहीं हैं, ऐसी अप्सराएं तुम्हारे आस-पास नाच रही हैं स्वर्ग में। बैठे हैं कल्पतरु के नीचे, जो भी इच्छा है फौरन पूरी हो जाती है।
अगर इस वासना से तुम धर्म की तरफ गए हो तो दुर्घटना होगी। क्योंकि न
तो ऐसा कहीं कोई स्वर्ग है--यह तो साधुओं द्वारा फेंका गया जाल है मछलियों को फांसने के लिए--न कहीं कोई ऐसी अप्सराएं हैं, कंचन-स्वर्ण की कोई देह नहीं हैं कहीं, और न ही कहीं कोई कल्पतरु हैं जिनके नीचे बैठ कर सब वासनाएं पूरी हो जाएं। तो फिर तुम अभी वासनाओं से भरे हो। संसार में जो नहीं पूरा कर पाए, वह कल्पतरु के नीचे पूरा करने की चेष्टा कर रहे हो। संसार की स्त्रियों से जो नहीं मिल सका, वह अप्सराओं से आशा बांधे हुए हो। मगर फंसे हो; अभी अनुभव नहीं हुआ।
ज्ञानी तो कहेगा कि अगर स्वर्ग में भी अप्सराएं हैं तो फिर यहीं क्या बुरा? और अगर वहां भी वासनाएं ही तृप्त होंगी कल्पतरु के नीचे तो यहां क्या बुराई है?
मैंने तो एक उलटी ही कहानी सुनी है। मैंने तो सुना है कि एक फकीर रात सोया और उसने देखा कि वह कल्पतरु के नीचे बैठा है। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हैः कल्पतरु। निऑन के अक्षरों में लिखा है, चमक रहा है। अरे, उसने कहा, आ गए स्वर्ग! देखें शास्त्र में जो लिखा है, सच है या नहीं? उसने फौरन आज्ञा दी--कोई वहां दिखाई तो पड़ता नहीं--भोजन! बड़े सुंदर थाल सजे आ गए। उसने कहा, निश्चित है। अप्सराएं! अप्सराएं नाचने लगीं; वाद्य-संगीत बजने लगे।
ऐसा कुछ दिन चला। लेकिन कितनी देर चला सकते हो इसको? इससे भी ऊब आने लगी। जब भोजन कहो तब भोजन आ जाए; जब बिस्तर लगवाओ, बिस्तर लग जाए; जब अप्सराएं कहो, अप्सराएं नाचने लगें; कितनी देर चलाओगे इसको?
आदमी थोड़ा बेचैन होने लगा। उसने कहा कि भई, कुछ काम भी करने को मिल सकता है कि नहीं? आखिर बैठे-बैठे कब तक यह चलेगा; कुछ करना भी!
आवाज आई, यही तो तकलीफ है। यहां काम नहीं है। यहां तो तुम जो चाहो बिना काम के पूरा होता है। काम का कोई सवाल ही नहीं है।
तो उसने कहा, इससे तो नरक में बेहतर।
भीतर से आवाज आई, और तुम समझ क्या रहे हो कहां हो? यह नरक ही है!

तुम्हारे कल्पवृक्ष तुम्हें नरक में ही ले जाएंगे, क्योंकि तुम्हारे कल्पवृक्षों की तलाश ने ही तो तुम्हारे संसार को नरक बना दिया है। तुम्हारा संसार संसार के कारण थोड़े ही नरक है; तुम्हारी वासनाओं के कारण नरक है। वासनारहित होकर जब इसी संसार को कोई देखता है तो परमात्मा को विराजमान पाता है। सब जगह उसी का हस्ताक्षर, उसी के पदचिह्न; पत्ते-पत्ते में वही, कण-कण में वही, हर जगह वही, अनेक रूपों में वही रूपायित, हर आकार में वही निराकार। यह तो तुम्हारी वासना के कारण संसार नरक हो गया है; संसार के कारण संसार नरक नहीं है। संसार तो मोक्ष है। तुम हो नरक का सूत्र।
अधूरे टूट गए, तो तुम जहां भी जाओगे वहीं संसार बना लोगे।
मैंने सुना है। एक सूफी कहानी है। एक आदमी था। गांव के लोग उसको बुद्धू समझते थे, इसलिए उसका नाम बेवकूफ रख लिया था। और वह धीरे-धीरे आदी हो गया था; गांवों में ऐसा अक्सर हो जाता है। बेवकूफ ही उनका नाम हो गया था। और उनकी पत्नी का नाम फजीती था। फजीती, उपद्रव। और बेवकूफ की पत्नी होएगी ही फजीती। इसमें कोई, बिल्कुल बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है।
एक दफा फजीती से बेवकूफ का झगड़ा हो गया और फजीती भाग गई। तो उसे खोजने निकला। बड़ी मुश्किल में पड़ गया, क्योंकि बेवकूफ बिना फजीती के रह भी नहीं सकता। फजीती के साथ भी नहीं रह सकता बेवकूफ और बिना फजीती के भी नहीं रह सकता। तुम्हें भी पता है। पत्नी के बिना भी नहीं रह सकते हो और पत्नी के साथ भी नहीं रह सकते हो। यही तो फजीता है। खोजते हुए एक सूफी फकीर के पास पहुंच गया। और उसने कहा कि महाराज, यहां मेरी पत्नी को तो नहीं देखा? उसने पूछा, तुम हो कौन? उसने कहा कि मेरा नाम बेवकूफ है और मेरी पत्नी का नाम फजीती है, और वह घर छोड़ कर भाग गई है। उस सूफी फकीर ने कहा, नासमझ, बेवकूफ अगर पक्का है तो फजीती कहीं भी मिल जाएगी। तू फिक्र क्यों कर रहा है?
तो संसार तुम्हें कहीं भी मिल जाएगा। तुम फिक्र क्या कर रहे हो? आश्रम में मिल जाएगा, हिमालय पर मिल जाएगा। बेवकूफ होना जरूरी है, फजीती कहीं भी मिल जाएगी। संसार भरा है फजीतियों से; इसमें कहीं खोजने की जरूरत है? कहां भटक रहा है? तू सिर्फ बैठ जा, फजीती खुद आएगी। बेवकूफ होना पर्याप्त है। इसलिए तुम संसार को छोड़ कर न भाग सकोगे; तुम जहां जाओगे वहीं संसार आ जाएगा।
पक कर ही कोई क्रांति घटती है; कच्चे तो तुम नासमझ ही रहोगे। इसलिए कहता हूं, देर न करो; पको। अनुभव में जाओ। प्रत्येक चीज को होश से जीओ। और धीरे-धीरे तुम खुद ही देख लोगे, इस संसार में न तो कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य है।
इस बात को मैं फिर से दोहरा दूं। अगर तुम कच्चे हो तो तुम समझोगे, संसार में कुछ छोड़ने योग्य है। अगर तुम पके हो तो तुम पाओगे, न तो कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य है। त्याग करने योग्य भी क्या है यहां? जब भोग करने योग्य ही कुछ नहीं है तो त्याग करने योग्य भी कुछ नहीं है।
तो जो आदमी भोग के विपरीत त्याग करता है उसकी नासमझी बदलती नहीं। जिसके लिए भोग और त्याग दोनों व्यर्थ हो जाते हैं, न पकड़ने योग्य, न छोड़ने योग्य। यहां संपदा ही नहीं है, पकड़ोगे क्या और छोड़ोगे क्या? त्याग भी अज्ञानी करता है, भोग भी अज्ञानी करता है; ज्ञानी तो सिर्फ जाग जाता है और पाता है कि भोग-त्याग दोनों सपने के हिस्से थे, गहरी निद्रा में घटते थे, जागने पर नहीं घटते हैं। ज्ञानी तो सिर्फ जीता है; न भोगता, न त्यागता। ज्ञानी तो साक्षी होता है, न तो भोक्ता बनता और न त्यागी बनता, कर्ता नहीं बनता। कर्ता ही तो अज्ञानी होना है।
लाओत्से और मेरी बात में कोई विरोध नहीं है। लाओत्से वह बात कह रहा है
जो तुम्हारे बहुत काम की नहीं है। मैं वह बात कह रहा हूं जो तुम्हारे काम की है। बातें दोनों सही हैंः अति पर क्रांति घटित होती है।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा था, परमात्मा सामने मौजूद हो तो सोचो कि क्या मांगोगे? आप हमारे सामने मौजूद हैं और कहते हैं कि पूछना हो तो पूछो। मैं कागज और कलम लेकर बैठता हूं और मेरी मांगें और प्रश्न लिखना चाहता हूं।

घंटे निकल जाते हैं तो पाता हूं कि कागज कोरा का कोरा ही रह जाता है; लेकिन कागज और कलम हाथ से गिरते नहीं क्यों?

महत्वपूर्ण है। समझना जरूरी है।
तीन दशाएं हैं। एक तो तुम कागज-कलम लेकर बैठो कि क्या मांगना है, क्या पूछना है, और तत्क्षण हजारों प्रश्न उठ आएं, हजारों मांगें उठ आएं, जैसा कि सौ में निन्यानबे लोगों के लिए घटेगा। तुम यह तय न कर पाओगे कि अब क्या छोड़ें और क्या मांगें। हजार-हजार मांगें उठ आएंगी। तुम बड़ी बिगूचन में पड़ जाओगे कि क्या चुनें और क्या छोड़ें। कागज छोटा मालूम पड़ेगा, मांगें ज्यादा मालूम पड़ेंगी। कलम की स्याही पर्याप्त न मालूम पड़ेगी। प्रश्न बहुत उठेंगे, अनंत उठेंगे। एक तो यह दशा है।
साधारणतः जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी ध्यान का कोई अनुभव नहीं किया है, उसकी यह दशा है। अगर जीवन में ध्यान की थोड़ी झलक आनी शुरू हुई तो यह स्थिति पैदा होगी कि तुम कागज-कलम लेकर बैठोगे, हाथ रुके रहेंगे; कुछ भी सूझेगा न क्या पूछें! कुछ पूछने योग्य न लगेगा। कुछ मांगने योग्य न लगेगा। मन खाली रहेगा और मन की तरह ही कोरा कागज कोरा रह जाएगा। लेकिन हाथ से कलम-कागज गिरेंगे भी नहीं।
फिर एक तीसरी दशा है जो समाधिस्थ की दशा है। उसके हाथ से कागज-कलम भी गिर जाएंगे। क्योंकि ध्यान की अवस्था मध्य में है। तुम सोच भी नहीं पाते, क्या पूछें! कुछ उठे भी पूछने योग्य तो लगता नहीं पूछने योग्य, व्यर्थ मालूम पड़ता है, कूड़ा-कर्कट मालूम पड़ता है।
ध्यान की थोड़ी सी झलक ने सब प्रश्न व्यर्थ कर दिए; ध्यान की थोड़ी सी झलक ने सब मांगें व्यर्थ कर दीं। लेकिन अचेतन में ऐसा लगता है कि शायद कुछ पूछने जैसा बाकी हो; शायद कोई प्रश्न जो ख्याल में न आ रहा हो, अभी बाकी हो। इसलिए हाथ में कागज-कलम पकड़े रह जाते हो। संदेह है। ध्यान अभी समाधि नहीं बनी। अभी असंदिग्ध नहीं हो कि सच में ही कोई सवाल नहीं रहा; हो सकता है यह सवाल ठीक न हो, लेकिन कोई सवाल भीतर छिपा हो और पीछे आता हो। माना कि ये मांगें व्यर्थ हो गईं, लेकिन शायद कोई मांग हो अंतरतम में छिपी, जो कतार में बहुत पीछे खड़ी हो और आ रही हो पास। इसलिए छोड़ भी नहीं पाते कागज-कलम; शायद कोई ठीक-ठीक प्रश्न, कोई ठीक-ठीक मांग उठ ही आए। प्रतीक्षा करते हो! तीसरी अवस्था है समाधिस्थ की, जिसका चेतन और अचेतन एक हो गया। अब वह
सब तरफ देख पाता है। अचेतन छिपा नहीं है अंधेरे में; प्रतीक्षा की कोई जरूरत नहीं है; रोशनी है भीतर। कोई प्रश्न नहीं है, कोई मांग नहीं है; कागज-कलम गिर जाते हैं।
ये तीन दशाएं हैं। साधारण चित्त की दशाः प्रश्न ही प्रश्न, इतने कि कहां सम्हालो! मांगें ही मांगें, इतनी कि अंत नहीं मालूम होता! फिर ध्यान की मध्यस्थ अवस्था हैः जब विचार थोड़े शांत हो गए; मन थोड़ा तल्लीन होने लगा; उखड़ा वृक्ष थोड़ा-थोड़ा जमने लगा, जड़ें पकड़ने लगा। अभी पकड़ ही नहीं लीं पूरी जड़ें, आश्वस्त नहीं है, लेकिन अब चंचल भी नहीं है। अभी बिल्कुल मिट नहीं गया, लेकिन शांत हुआ। विक्षिप्तता चली गई है; विमुक्ति आने को है। जो व्यर्थ था वह जा चुका है; सार्थक के आने की प्रतीक्षा है। घर अभी खाली है। संसार हटने लगा पीछे मन से; परमात्मा अभी विराजमान नहीं हो गया है। सिंहासन संसार से तो खाली हो गया है; लेकिन प्रभु के पदार्पण की थोड़ी देर है।
तीसरी अवस्था है जब कि सिंहासन फिर भर गया। एक तो चंचल मन है--भरा हुआ मन, व्यर्थ कचरे से, कूड़े से। फिर ध्यानस्थ का मन है--शून्य मन, खाली मन। फिर समाधिस्थ का मन है--फिर भर गया, सार्थक से, सार से, परमात्मा से।
तो एक तो भरे हुए तुम हो, संसार से; फिर एक भरे हुए संत हैं, परमात्मा से। और तुम दोनों के बीच में साधक है; संसार से खाली, परमात्मा से अभी भरा नहीं। इसलिए ऐसा होगाः कोरा कागज कोरा रह जाएगा, फिर भी हाथ से कलम छूटने की हिम्मत न आएगी। लगेगा, शायद! शायद! अब आता हो, अब मांग उठती हो, कौन जाने? क्योंकि बहुत अंधेरा है भीतर। थोड़ा सा कोना प्रकाशित हो गया है। उस प्रकाशित में तो तुम आश्वस्त हो कि कोई मांग नहीं, कोई प्रश्न नहीं। लेकिन

अंधेरे में जो दबे कोने हैं, उनके संबंध में कौन भरोसा दिलाए? शायद कोई तरंग उठ आए। इसलिए।

लेकिन कीमती दशा है। इतना भी कुछ कम नहीं। विक्षिप्तता से इतना भी छूट जाना बहुत है, आधी मंजिल पूरी हो गई। और जब आधी पूरी हो गई तो शेष आधी भी पूरे होने में कोई देर नहीं है; वह भी जल्दी पूरी हो जाएगी। जिसने पहला कदम उठा लिया उसका आखिरी कदम भी उठ ही गया।
कहता है लाओत्से, एक-एक कदम चल कर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
बीज हाथ में आ गया तो वृक्ष को कितनी देर लगेगी? बीज आ गया तो वृक्ष आ
ही गया, संक्षिप्त में, सार में। अव्यक्त में आया है अभी, जल्दी ही व्यक्त हो जाएगा; अंकुरित होगा, शाखाएं निकलेंगी, पल्लवित होगा, फूल लगेंगे। पर बीज हाथ में आ गया।
ध्यान बीज है; समाधि वृक्ष। जल्दी ही, जल्दी ही, अगर कोई सम्यकरूपेण चलता जाए अपनी ऊर्जा को सम्हाल कर, व्यर्थ से बचा कर, राह से यहां-वहां ज्यादा न उतरे, समय और शक्ति को व्यय न करे; सम्हाल कर--क्योंकि अभी तुम्हारे पास ऊर्जा भी थोड़ी है--संचित किए हुए, संयमित किए हुए चलता जाए, जल्दी ही मंजिल आ जाती है। फिर कुछ सम्हालने की जरूरत नहीं रहती। फिर बहो बाढ़ आई नदी की भांति; फिर लुटाओ, फिर बांटो। और जितना कोई बांटता है उस संपदा को उतनी ही बढ़ती चली जाती है। परमात्मा को कोई कभी बांट कर चुका पाया? फिर अनंत के द्वार खुल गए।
लेकिन तब तक बहुत सम्हाल-सम्हाल कर एक-एक कदम रखना है; ऊर्जा कम है, शक्ति सीमित है, मार्ग लंबा है। मंजिल जब तक नहीं मिली, दूर ही समझना। है तो बहुत पास; लेकिन अगर पास समझ ली तो यह डर है कि तुम ऊर्जा को यहां-वहां व्यय कर दो कि इतने पास है, पहुंच ही जाएंगे। नहीं, मंजिल दूर है, ऐसा जानना। जब तक मिल ही न जाए तब तक मंजिल बहुत दूर है। जिसको मिल जाती है, वह कहता है, एकदम पास थी। साधक के लिए यही समझना उचित है कि मंजिल बहुत दूर है, राह लंबी है, चलना काफी है; और ऊर्जा कम है, सीमित है; संरक्षित करना है। पहुंचे हुए सिद्ध सदा कहते हैं, मंजिल मिली ही है। वे भी ठीक कहते हैं; वह दूर कभी थी ही नहीं। लेकिन यह मिल जाने के बाद का बोध है।
इसलिए सिद्धों के वचन भी बहुत सोच-विचार कर लेना। कभी-कभी सिद्धों के वचन भी तुम्हें भटकाने का कारण बन सकते हैं, क्योंकि तुम भटकने को इतने उत्सुक हो कि तुम उनके सहारे भी भटक सकते हो। अपने भटकने की उत्सुकता को ध्यान में रखना सदा और अपनी आकांक्षा को ध्यान में रखना कि तुम उलझन में पड़ने के लिए तत्पर हो। सम्हालना। अगर सम्हाले चले, अगर ध्यान आ गया है, जल्दी ही समाधि भी द्वार पर दस्तक देगी।
और एक बात ख्याल रखना, आखिरी बात, कि ध्यान तो तुम्हें करना पड़ता है, समाधि तुम्हें करनी नहीं पड़ती; वह आती है। तुम तो ध्यान किए चले जाओ। तुम तो कोरे कागज की भांति होते चले जाओ। तुम तो यही फिक्र करो कि सब समाप्त हो जाए--प्रश्न, मांग, आकांक्षाएं, अपेक्षाएं--सब समाप्त हो जाए; तुम तो कोरे कागज हो जाओ। जिस दिन तुम पूरे कोरे कागज हो जाओगे, अचानक पाओगे, उसी कोरे कागज पर परमात्मा का वेद उतरना शुरू हो गया है।
आज इतना ही।